श्री जवाहरलाल नेहरू से संबंधित
संस्मरण तथा ऐतिहासिक अवसरों
पर व्यक्त किये गए उनके विचार

•

•

१९६४

सस्ता साहित्य मण्डल-प्रकाशन

भारत के स्वाधीनता-संग्राम के प्रमुख सेनानी

लोक-जीवन के अग्रणी नेता

भारतीय गणराज्य के प्रथम प्रधान मंत्री

श्री जवाहरलाल नेहरू

को

पुण्य-स्मृति में

उनकी पिचहत्तरवीं वर्षगांठ के अवसर पर

सादर

१४ नवम्बर, १९६४

भूमिका

स्व० जवाहरलाल नेहरू की आगामी वर्षगांठ पर उनकी स्मृति में 'नेहरू: व्यक्तित्व और विचार' का प्रकाशन किया जा रहा है। मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि यह ग्रंथ, जो कि एक मूल्यवान संग्रह है, योग्य परामर्शदाता तथा सम्पादक-मण्डल द्वारा निकल रहा है। नेहरूजी के विषय में जो कुछ लिखा जायगा, वह अनावश्यक नहीं होगा। उनके विचारों का शाश्वत मूल्य असामान्य है। इस पीढ़ी तथा इससे भी अधिक आनेवाली पीढ़ियों के लोगों को उन आदर्शों की शिक्षा देनी होगी, जो नेहरूजी को अभीष्ट थे। इस महान व्यक्तित्व ने दुनिया पर गहरी और स्थायी छाप डाली है और इसलिए इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हम इस व्यक्तित्व को उन महानुभावों के विवरणों द्वारा जानें, जो उनके निकट सम्पर्क में आये थे।

मुझे आशा है कि यह ग्रंथ बड़े शानदार ढंग से भारत के इस सपूत की महानता और गरिमा को प्रतिबिम्बित करेगा, जिसने अपने देशवासियों के लिए एक अनमोल विरासत छोड़ी है।

—के० कामराज
(कांग्रेस-अध्यक्ष)

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी,
७, जंतर मंतर रोड,
नई दिल्ली
३१ अक्तूबर, १९६४

दो शब्द

किसी भी व्यक्ति के जीवन और कार्यों का मूल्यांकन करना आसान नहीं होता, विशेषकर उस पुरुष का तो और भी कठिन होता है, जिसका जीवन अत्यन्त प्राणवान और जिसकी प्रवृत्तियां बहुत ही व्यापक रही हों।

भारत के स्वाधीनता-संग्राम के प्रमुख सेनानी, लोकजीवन के अग्रणी नेता और भारतीय गणतंत्र के प्रथम प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू का व्यक्तित्व तो इतना प्रखर और जीवन इतना प्रवृत्तिमय था कि उस सबका शब्दों में चित्रण करना एक प्रकार से असंभव ही है। स्थूल कार्यों का लेखा-जोखा ले भी लें, तो भी उस अन्तर की झांकी कौन प्रस्तुत कर सकता है, जो सतत जागरूक रहा और जिसने उन्हें भारत के ही नहीं, विश्व के महान नेताओं में ऊंचा स्थान दिलवाया ?

जिस समय इस ग्रंथ को निकालने का विचार आया उस समय ऐसी कोई कल्पना नहीं थी और न बाद में रही कि इसमें नेहरूजी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का विधिवत रूप से अध्ययन किया जाय और उनकी सेवाओं तथा कार्यों का अंकन किया जाय।

'सस्ता साहित्य मण्डल' के प्रति नेहरूजी की बड़ी आत्मीयता थी और वह उसके प्रकाशनों एवं प्रवृत्तियों में बराबर सक्रिय दिलचस्पी लेते रहे थे। वह समय-समय पर उसकी पुस्तकों को देखते थे, उसकी कठिनाइयों को सुनते थे और कठिनाइयों से निकलने के लिए हल ही नहीं सुझाते थे, मदद भी करते थे।

पंडितजी की इस भावना का कारण यह नहीं था कि उनकी जितनी पुस्तकें हिन्दी में निकली हैं, वे मुख्यत: 'मण्डल' ने ही निकाली हैं, बल्कि वह इसलिए थी कि वह समूचे देश में उत्तम साहित्य का प्रसार चाहते थे और इस दिशा में 'मण्डल' सन् १९२५ से यत्किंचित सेवा करता आ रहा था।

पंडितजी के आकस्मिक विछोह से भारत का व्यथित होना तो स्वाभाविक था ही, सारे संसार ने गहरी वेदना अनुभव की। ऐसे अवसरों पर प्रेम और श्रद्धा की जो अभिव्यक्ति होती है, वह बड़ी मूल्यवान होती है, क्योंकि वह अंतर से सहज रूप में निकल कर आती है।

'मण्डल' को लगा कि ये विश्वव्यापी उद्गार एक स्थान पर संग्रहीत हो जायं तो अच्छा है। इस ग्रंथ के प्रकाशन के पीछे यही मूल प्रेरणा थी। लेकिन जब इस कल्पना को पल्लवित किया गया तो इसमें कुछ और भी चीज़ें जुड़ गईं।

प्रस्तुत ग्रंथ की सामग्री को दो विभागों में विभाजित किया गया है। पहले खण्ड में नेहरूजी के व्यक्तित्व से संबंधित रचनाएं दी गई हैं। हम चाहते थे कि इसमें केवल संस्मरण ही देते। बड़े-बड़े विशेषणों द्वारा किसी व्यक्ति को श्रद्धांजलि अर्पित करने की अपेक्षा उन संस्मरणों का अधिक मूल्य होता है, जिनकी घटनाएं स्वतः ही उस व्यक्ति के गुणों अथवा कार्यो पर प्रकाश डालती हैं। पर ऐसे घटना-प्रधान लेख या संस्मरण लिखना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि उसमें कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक बात कहनी होती है।

जो हो, पहले खण्ड में हमने ज्यादा-से-ज्यादा संस्मरण देने का प्रयत्न किया है। पंडितजी के सम्पर्क में आने का बहुतों को सौभाग्य मिला था। इस खण्ड में पाठकों को अनेक भावपूर्ण संस्मरण पढ़ने को मिलेंगे। कुछ घटनाएं तो ऐसी हैं, जो पहली बार प्रकाशित हो रही हैं। वैसे पूरे खण्ड की सामग्री इतनी भावपूर्ण और रोचक है कि पाठक उसे कहानी की भांति पढ़ेंगे।

कहा जाता है कि व्यक्ति का अस्तित्व उसके विचार होते हैं। इसलिए किसी भी व्यक्ति को जानने के लिए उसके विचारों का जानना आवश्यक है।

यही सोचकर ग्रंथ के दूसरे खण्ड में नेहरूजी के विचारों का समावेश किया गया है। विभिन्न विषयों पर नेहरूजी ने इतने भाषण दिये हैं और इतना लिखा है कि उसमें से अपेक्षित सामग्री को छांटना बड़ा मुश्किल है। फिर उनके द्वारा लिखे पत्रों की संख्या लाखों होगी। बहुत-से पत्र विचार-रत्नों से भरे पड़े हैं।

दूसरे खण्ड के सीमित पृष्ठों में हमने उनके उन ऐतिहासिक भाषणों, लेखों तथा पत्रों को देने का प्रयास किया है, जिन्होंने स्वराज्य मिलने से पहले तथा बाद के इतिहास पर अपना असर डाला। इसमें नेहरूजी के विचारों के क्रमिक विकास की कहानी भी आ जाती है। इन विचारों के अनुसार कांग्रेस का ध्येय भी किस प्रकार व्यापक बनता गया, इसकी पृष्ठभूमि भी इन रचनाओं में मिल जाती है।

इस खण्ड की पूरी सामग्री बड़े महत्व की है। कारण कि भारत के वर्तमान इतिहास की रचना इसीके आधार पर हुई है। इसे पढ़कर पता चलता है कि हमारे देश के कर्णधार किन-किन अवस्थाओं से होकर स्वाधीनता के लक्ष्य की ओर अग्रसर हुए और स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात उन्होंने राष्ट्र की नींव किन अधिष्ठानों पर रखने की चेष्टा की। आखिरी मंजिल तक पहुंचने के लिए यद्यपि अभी बहुत-कुछ प्रयत्न करना होगा, तथापि इतना निश्चित है कि देश को किधर जाना है और कहां पहुंचना है।

ग्रंथ में बहुत-से चित्र भी दिये गए हैं। पंडितजी का जीवन अत्यन्त क्रियाशील था। वह देश-विदेश में बराबर घूमते रहते थे। अतः उनके चित्रों का संग्रह बड़ा विपुल है। उसमें से चुनाव करना वास्तव में टेढ़ी खीर थी। प्रायः सभी चित्र इतने आकर्षक हैं कि उन्हें छोड़ने का लोभ संवरण नहीं होता। स्थानाभाव के कारण बहुत-से चित्र हमें अनिच्छापूर्वक छोड़ देने पड़े। जो चित्र दिये हैं, उनमें हमने नेहरूजी के जीवन के कुछ प्रमुख पहलुओं को सामने लाने की कोशिश की है। पंडितजी के मनोभावों को व्यक्त करने के लिए कुछ चित्र दिये हैं तो कुछ में उन्हें भारतीय नेताओं के साथ दिखाया है; कुछ में उनका अंतर्राष्ट्रीय नेता का रूप उभरता है तो कुछ में उनका बाल-प्रेम छलकता है और कुछ में वह प्रकृति-प्रेमी के रूप में सामने आते हैं; लोकनेता के रूप में कहीं वह असंख्य नर-नारियों के सामने बैठे भाषण देते दिखाई देते हैं तो कहीं जन-सामान्य के सुख-दुख के साथ एकाकार होते दीख पड़ते हैं; कहीं राष्ट्रनिर्माता

के रूप में उनकी झांकी मिलती है तो कहीं पशु-पक्षियों पर उनके प्रेम की वर्षा होती दिखाई देती है। इस प्रकार उनके नाना रूप इस चित्र-संग्रह में पाठकों को देखने को मिलेंगे।

ग्रंथ के विषय में हमें इससे अधिक कुछ नहीं कहना है। पाठक स्वयं ही इसे कृपया देखें, पढ़ें और अपनी राय बनावें।

हमारे अनुरोध को स्वीकार करके जिन महानुभावों ने इस ग्रंथ के लिए अपनी मूल्यवान रचनाएं भेजीं, उनके हम हृदय से आभारी हैं।

हमारे कांग्रेस-अध्यक्ष श्री कामराजजी कर्म में विश्वास करते हैं। वह कम बोलते हैं और कम ही लिखते हैं। फिर भी उन्होंने इस ग्रंथ की भूमिका लिख देने का अनुग्रह किया, हम उनका आभार मानते हैं। प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री के मूल्यवान संदेश भेजने के लिए हम उनके ऋणी हैं। अन्य भारतीय नेताओं, विद्वानों तथा समाज-सेवियों का भी हम आभार मानते हैं, जिन्होंने ग्रंथ को अधिकाधिक उपयोगी बनाने में अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं द्वारा हमारी सहायता की। स्थानाभाव के कारण कुछ सामग्री रोक देनी पड़ी, इसका हमें खेद है और उन रचनाओं के लेखकों से हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

चित्रों के संग्रह तथा प्राप्ति में हमें भारत सरकार के प्रेस इन्फर्मेशन ब्यूरो, हिन्दुस्तान टाइम्स तथा किशोर पारेख का विशेष सहयोग मिला, इसके लिए हम उनको हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

ग्रंथ की कुछ सामग्री का चयन विभिन्न आधारों से किया गया है। उनको धन्यवाद देना भी हमारा कर्तव्य है।

ग्रंथ के परामर्शदाता-मंडल का आभार मानना तो धृष्टता होगी। ग्रंथ में जो कुछ अच्छा है, उसका श्रेय उन्हींको है, पर ग्रंथ में जो कमियां रह गई हैं, उनके लिए हम जिम्मेदार हैं।

ग्रंथ का प्रकाशन हमारे महान नेता की स्मृति में, उनकी वर्षगांठ के अवसर पर, हो रहा है। अतः हमारी कामना है कि उनके जीवन और कार्य से हम सतत प्रेरणा लेते रहें और उनके उन स्वप्नों को पूरा करें, जो उन्होंने अपने प्यारे देश और विश्व के लिए देखे थे और जिनकी पूर्ति के लिए उन्होंने अपना सब-कुछ अर्पित कर दिया था।

—संपादक-मंडल

विषय-सूची

[खंड १ : व्यक्तित्व]

[चित्रों में नेहरू]

[खंड २ : विचार]

नेहरू

व्यक्तित्व

और

विचार

खंड : १

व्यक्तित्व

इस खण्ड में हमने स्व० जवाहरलाल नेहरू के प्रति देश-विदेश के राज-नेताओं, विद्वानों, साहित्यकारों तथा समाज-सेवियों द्वारा अर्पित की गई श्रद्धांजलियां और संस्मरण प्रस्तुत किये हैं।

खुद जवाहरलालजी भी किस तरह अनुशासन में रहते हैं, इसका उदाहरण सुनिये। पिछले वर्ष जब वह काश्मीर चले गये थे तब वेवल साहब को उनकी जरूरत पड़ गई। मौलानासाहब ने उन्हें बुलाना चाहा और मेरे समझाने पर वह वहां का संघर्ष छोड़कर राष्ट्रपति का हुक्म मानकर यहां चले आये थे।

आज जब अंग्रेज अपनी ताकत यहां से उठा रहे हैं, जवाहरलाल की जगह कोई ले नहीं सकता।

आज तो वह सारे हिन्दुस्तान में भी अद्वितीय हो रहे हैं।

ऋतुराज के प्रतीक

नये भारत के सिंहासन पर वैठने का अधिकार निस्सन्देह जवाहरलाल को है। जवाहरलाल की शानदार भूमिका है। उनका संकल्प अडिग है और उनके साहस को रोकने की क्षमता किसीमें नहीं है। उन्हें शिखर पर पहुंचाने का काम सत्य के प्रति उनकी अटूट निष्ठा और उनके बौद्धिक चरित्र ने किया है। जवाहरलाल ने पवित्रता का मापदण्ड उस राजनैतिक उथल-पुथल के बीच कायम रखा है, जहां प्रवंचना, आत्मप्रवंचना अक्सर चारित्रिक शुद्धता को नष्ट कर देती है। सत्य को अंगीकार करने से खतरा होने पर भी जवाहरलाल कभी सत्य से विमुख नहीं हुए और न सुविधाजनक होने के कारण कभी असत्य से रिश्ता जोड़ा। छल-प्रपंचपूर्ण कूटनीति से मिलनेवाली निकृष्ट और सुगम सफलता से जवाहरलाल का प्रवुद्ध मस्तिष्क हमेशा स्पष्ट रूप से अलग रहा है। नीयत की यह पवित्रता और सत्य के प्रति अटूट लगन ही जवाहरलाल की सबसे वड़ी देन है।

जवाहरलाल हमारा ऋतुराज है, जो प्रतीक है यौवन के पुनरागमन का और विजयपूर्ण उल्लास का। वह प्रतीक है वुराई के विरुद्ध संघर्ष का और स्वतन्त्रता के लिए ऐसी निष्ठा का, जो किसी प्रकार का समझौता करना नहीं जानती।

... ...

मैंने तुम्हारी महान् पुस्तक 'मेरी कहानी' अभी-अभी समाप्त की है। मैं तुम्हारी सफलता से अत्यन्त प्रभावित हूं और उसपर गर्व अनुभव करता हूं। उसके समस्त विवरणों के पीछे मानवता की एक गहरी धारा प्रभावित है, जो तथ्यों की गुत्थियों को पार करके हमें उस व्यक्ति तक पहुंचा देती है, जो अपने कार्यों की अपेक्षा अधिक महान् और अपने आस-पास के वातावरण की अपेक्षा अधिक सच्चा है।

... ...

यह आश्वासन मेरे लिए वड़ा मूल्यवान् है कि विपत्ति के समय और जब जीवन की पकड़ सहसा ढीली पड़ जाय तो तुम्हारे स्नेह का पूरा-पूरा भरोसा कर सकता हूं। इससे मेरा हृदय वहुत अभिभूत हुआ है। ●

सबके लाड़ले

जवाहरलाल और मैं साथ-साथ कांग्रेस के सदस्य, आजादी के सिपाही, कांग्रेस की कार्यकारिणी और अन्य समितियों के सहकर्मी, महात्माजी के, जो हमारे दुर्भाग्य से हमें जटिल समस्याओं के साथ जूझने को छोड़ गये हैं, अनुयायी और इस विशाल देश के शासन-प्रबंध के गुरुतर भार के वाहक रहे हैं। इतने विभिन्न प्रकार के कर्मक्षेत्रों में साथ रहकर और एक-दूसरे को जानकर हममें परस्पर स्नेह होना स्वाभाविक था। काल की गति के साथ वह स्नेह बढ़ता गया है और आज लोग कल्पना भी नहीं कर सकते कि जब हम अलग होते हैं और अपनी समस्याओं और कठिनाइयों का हल निकालने के लिए उन-पर मिल कर विचार नहीं कर सकते तो यह दूरी हमें कितनी खलती है। परिचय की इस घनिष्ठता, आत्मीयता और भ्रातृतुल्य स्नेह के कारण मेरे लिए यह कठिन हो जाता है कि सर्व-साधारण के लिए उसकी समीक्षा उपस्थित कर सकूं। पर देश के आदर्श, जनता के नेता, राष्ट्र के प्रधान मंत्री और सबके लाड़ले जवाहरलाल को, जिनके महान कृतित्व का भव्य इतिहास सबके सामने खुली पोथी-सा है, मेरे अनुमोदन की कोई आवश्यकता नहीं है।

दृढ़ और निष्कपट योद्धा की भांति उन्होंने विदेशी शासन से अनवरत युद्ध किया। युक्तप्रान्त के किसान-आन्दोलन के संगठनकर्ता के रूप में पहली 'दीक्षा' पाकर वह अहिंसात्मक युद्ध की कला और विज्ञान में पूरे निष्णात हो गये। उनकी भावनाओं की तीव्रता और अन्याय या उत्पीड़न के प्रति उनके विरोध ने शीघ्र ही उन्हें गरीबी पर जहाद बोलने को बाध्य कर दिया। दीन के प्रति सहज सहानुभूति के साथ उन्होंने निर्धन किसान की अवस्था सुधारने के आन्दोलन की आग में अपनेको झोंक दिया। क्रमशः उनका कार्यक्षेत्र विस्तीर्ण होता गया और शीघ्र ही वह उस विशाल संगठन के मौन संगठनकर्ता हो गये, जिसे अपने स्वाधीनता-युद्ध का साधन बनाने के लिए हम सब समर्पित थे। जवाहरलाल के ज्वलन्त आदर्शवाद, जीवन में कला और सौन्दर्य के प्रति प्रेम, दूसरों को प्रेरणा और स्फूर्ति देने की अद्भुत आकर्षण-शक्ति और संसार के प्रमुख व्यक्तियों की सभा में भी विशिष्ट रूप से चमकनेवाले व्यक्तित्व ने, एक राजनैतिक नेता के रूप में, उन्हें क्रमशः उच्च-से-उच्चतर शिखरों पर पहुंचा दिया है। पत्नी की बीमारी के कारण की गई विदेश-यात्रा ने भारतीय राष्ट्रवाद-संबंधी उनकी भावनाओं को एक आकाशीय अन्तर्राष्ट्रीय तल पर पहुंचा दिया। यह उनके जीवन और चरित्र के उस अन्तर्राष्ट्रीय झुकाव का आरम्भ था, जो अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विश्व-समस्याओं के प्रति उनके रवैये में स्पष्ट लक्षित होता है। उस समय से जवाहरलाल ने

कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। भारत में भी और बाहर भी उनका महत्व बढ़ता ही गया है। उनकी वैचारिक निष्ठा, उदार प्रवृत्ति, पैनी दृष्टि और भावनाओं की सचाई के प्रति देश और विदेशों की लाखों-लाख जनता ने श्रद्धांजलि अर्पित की है।

अतएव यह उचित ही था कि स्वातंत्र्य की उषा से पहले के गहन अन्धकार में वह हमारी मार्ग-दर्शक ज्योति बनें, और स्वाधीनता मिलते ही जब भारत के आगे संकट-पर-संकट आ रहा हो तब हमारे विश्वास की धुरी हों और हमारी जनता का नेतृत्व करें। हमारे नये जीवन के पिछले कठिन वर्षों में उन्होंने देश के लिए जो अथक परिश्रम किया है, उसे मुझसे अधिक अच्छी तरह कोई नहीं जानता। मैंने इस अवधि में उन्हें अपने उच्च पद की चिन्ताओं और अपने गुरुतर उत्तरदायित्व के भार के कारण बड़ी तेजी के साथ बूढ़े होते देखा है। शरणार्थियों की सेवा में उन्होंने कोई कसर नहीं उठा रखी और उनमें से कोई कदाचित ही उनके पास से निराश लौटा हो। राष्ट्र-संघ (कामनवैल्थ) की मन्त्रणाओं में उन्होंने उल्लेखनीय भाग लिया है और संसार के मंच पर भी उनका कृतित्व अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। किन्तु इस सबके बावजूद उनके चेहरे पर जवानी की पुरानी रौनक कायम है और वह सन्तुलन, मर्यादा-ज्ञान, धैर्य और मिलनसारी, जो आन्तरिक संयम और बौद्धिक अनुशासन का परिचय देते हैं, अब भी ज्यों-के-त्यों हैं। निस्सन्देह उनका रोष कभी-कभी फूट पड़ता है, किन्तु उनका अधैर्य क्योंकि न्याय और कार्य-तत्परता के लिए होता है और अन्याय या धींगा-धींगी को सहन नहीं करता, इसलिए ये विस्फोट प्रेरणा देनेवाले ही होते हैं और मामलों को तेजी तथा परिश्रम के साथ सुलझाने में मदद देते है। ये मानों सुरक्षित शक्ति है, जिनकी कुमक से आलस्य, दीर्घसूत्रता और लगन या तत्परता की कमी पर विजय प्राप्त हो जाती है।

आयु में बड़े होने के नाते मुझे कई बार उन्हें उन समस्याओं पर परामर्श देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जो शासन-प्रबंध या संगठन-क्षेत्र में हम दोनों के सामने आती रही हैं। मैंने उन्हें सदैव सलाह लेने को तत्पर और मानने को राजी पाया है। कुछ स्वार्थ-प्रेरित लोगों ने हमारे विषय में भ्रान्तियां फैलाने का यत्न किया है और कुछ भोले व्यक्ति उनपर विश्वास भी कर लेते हैं, किन्तु वास्तव में हम लोग आजीवन सहकारियों और बन्धुओं की भांति साथ काम करते रहे हैं। अवसर की मांग के अनुसार हमने परस्पर एक-दूसरे के दृष्टिकोण के अनुसार अपनेको बदला है और एक-दूसरे के मतामत का सर्वदा सम्मान किया है, जैसाकि गहरा विश्वास होने पर ही किया जा सकता है, उनके मनोभाव युवकोचित उत्साह से लेकर प्रौढ़ गम्भीरता तक बराबर बदलते रहते हैं। और उनमें वह मानसिक लचीलापन है, जो दूसरे को झेल भी लेता है और निरुत्तर भी कर देता है। क्रीड़ारत्त बच्चों में और विचार-संलग्न बूढ़ों में जवाहरलाल समान भाव से भागी हो जाते हैं। यह लचीलापन और बहुमुखता ही उनके अजस्र यौवन का, उनकी अद्भुत स्फूर्ति और ताजगी का, रहस्य है।

उनके महान् और उज्ज्वल व्यक्तित्व के साथ इन थोड़े-से शब्दों में न्याय नहीं किया जा सकता। उनके चरित्र और कृतित्व का बहुमुखी प्रसार अंकन से परे है। उनके विचारों में कभी-कभी वह गहराई होती है, जिसका तल न मिले, किन्तु उनके नीचे सर्वदा एक निर्मल पारदर्शी खरापन और यौवन की तेजस्विता रहती है और इन गुणों के कारण सर्वसामान्य, जाति, धर्म, देश की सीमाएं पार कर, उनसे स्नेह करते हैं। •

महान जन-नेता

पिछले तीस वर्षों से कुछ अधिक से भारत का इतिहास जवाहरलाल नेहरू के जीवन और कार्य-कलाप से अनिवार्यतः सम्बद्ध रहा है। देश के स्वतंत्रता-युद्ध में वह अग्रगण्य रहे हैं। न जाने कितनी बार वह सजा पा चुके हैं। अनेक वर्षों से कांग्रेस, उसकी अखिल भारतीय समिति और कार्यकारिणी समिति द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव उन्हींके प्रस्तुत किये हुए रहे हैं और कांग्रेस की मुख्य-मुख्य नीति-घोषणाओं के मसविदे भी उन्हींने तैयार किये हैं। कांग्रेस के सभापति-पद से अपने अथक कार्य, अपूर्व संगठन-शक्ति, अनुशासन, पालन और विस्तृत दौरों से वह न केवल जनता की सोई आत्मा को जगाने में सफल हुए, बल्कि साथ ही कांग्रेस जैसी महान संस्था के निर्माण में भी योगदायक हुए। अनेक महत्वपूर्ण अवसरों पर उन्होंने कांग्रेस की नीति को न केवल प्रभावित किया है, अपितु उसको निर्धारित भी किया है। इस संबंध में केवल एक उदाहरण यहां दिया जा सकता है। कांग्रेस ने 'स्वराज्य-प्राप्ति' अपना ध्येय निश्चित किया था। 'स्वराज्य' शब्द बहुत प्रशस्त अर्थ रखता है, जिसे अंग्रेजी के किसी एक शब्द द्वारा पूर्णरूपेण प्रकट नहीं किया जा सकता। किन्तु बहुतों ने यह अनुभव किया कि यद्यपि इसका अर्थ ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक और संपूर्ण स्वतंत्रता है, तथापि उससे औपनिवेशिक पद का आशय भी लिया जा सकता है। इसी आधार पर वे लोग कांग्रेस विधान की प्रथम धारा में कोई ऐसा शब्द रखना चाहते थे, जिसमें औपनिवेशिक स्वराज्य का अर्थ भी आ जाय। सन् १९२१ के कांग्रेस-अधिवेशन में इस आशय का प्रस्ताव रखा गया और तबसे यह एक वार्षिक प्रथा-सी हो गई। परन्तु दिसम्बर १९२७ में कांग्रेस के मद्रास-अधिवेशन में जब जवाहरलाल ने इसे अपने हाथ में ले लिया, तब प्रस्ताव को बल मिला और वह व्यावहारिक समझा गया। दिसम्बर १९२९ में कांग्रेस के लाहौर-अधिवेशन में, उन्हींकी अध्यक्षता में, विधान की पहली धारा में परिवर्तन भी किया गया। इसका यह आशय नहीं कि इस संशोधन में कांग्रेस के अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों का कुछ हाथ न था, परन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कांग्रेस-विधान के इस परिवर्तन का अधिकतम श्रेय जवाहरलाल को ही है।

यह किसीसे छिपा नहीं है कि उन्होंने महात्मा गांधी के उपदेशों को सहज बुद्धि से नहीं अपनाया। उनका जीवन और उनकी शिक्षा किसी ऐसे आकस्मिक परिवर्तन के अनुकूल नहीं थी। गांधीजी के सिद्धांतों को उन्होंने जितना भी स्वीकार किया, गहरे मानसिक संघर्ष और मन्थन के बाद। फिर भी, मैं सोचता हूं कि उनके संबंध में यह कहना अनुचित न होगा कि उन सिद्धांतों को वह मनसा भी पूर्णतया स्वीकार न कर सके। विभिन्न विचारों और सिद्धांतों में सत्य को पहचानने और परखने का यह गुण ही उनको महात्माजी

के निरे श्रद्धालु भक्तों से भी और असहिष्णु या नासमझ आलोचकों से भी पृथक करता है। अपनी सचाई और दूसरों का दृष्टिकोण समझने की क्षमता के कारण हमारे इतिहास के अनेक महत्वपूर्ण अवसरों पर वह अपनी नीति में परिवर्तन करके एक सम्मिलित कार्यक्रम में भाग ले सके हैं। यद्यपि किसी प्रस्ताव का विरोध वह अत्यन्त दृढ़तापूर्वक करते हैं और कभी-कभी बिगड़ भी उठते हैं, तथापि किसी प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने के बाद वह पूरी लगन से उसे कार्यान्वित करते हैं। अपने मताग्रह के बावजूद उन्होंने कांग्रेस के भीतर किसी दल अथवा वर्ग के साथ अपनेको सम्बद्ध नहीं किया है।

सितम्बर १९४६ में पद-ग्रहण करने के बाद, विशेष रूप से अगस्त १९४८ से, शासन-सूत्र उनके हाथों में रहा है और सरकार ने जो कुछ किया है, या नहीं किया है, उसके लिए वह किसी भी स्वाधीन राष्ट्र के प्रधान मंत्री की भांति ही उत्तरदायी हैं। देश को बड़े-बड़े और महत्वपूर्ण निर्णय करने पड़े और उन निर्णयों के दूरव्यापी परिणाम भोगने पड़े हैं। साधारण मनुष्य इतने बड़े उत्तरदायित्व के नीचे टूट जाता, लेकिन वह चट्टान की तरह दृढ़ खड़े रहे हैं और अपने कुछ अन्तरंग सहयोगियों के बढ़ते हुए विरोध के बावजूद उस पथ से नहीं हटे, जिसे उन्होंने ठीक समझा। अभी हम संकट से मुक्त नहीं हुए हैं। स्वाधीनता हमने प्राप्त की है, लेकिन उसे दृढ़ बनाने के लिए, बाहरी आक्रमण और भीतरी अव्यवस्था का सामना करने के लिए, अनवरत जागरूकता और सावधानी की आवश्यकता है। उनके महान साथी, सहकर्मी और—कहा जा सकता है—पूरक, सरदार पटेल ने भारत के एकीकरण में हमें सफलता दिलाई है। लेकिन गरीबी, बीमारी और निरक्षरता पर विजय पाकर ऐसे समाज की स्थापना करना, जो हमारे विधान के शब्दों में न्याय, स्वाधीनता, समानता और मैत्री का रक्षक होगा, एक गुरुतर कार्य है, जो अभी बाकी है। हमने स्वाधीनता की नौका असीम महासागर पर अभी ही उतारी है, भारत को अपने महान अतीत और महत्तर भविष्य के योग्य बनाने का कार्य अभी आरम्भ ही हुआ है। भविष्य में देखने के लिए गहरी दृष्टि चाहिए और उसकी साधना में वर्तमान को ढालने के लिए बड़ी दृढ़ता और योग्यता। जवाहरलाल में ये सभी हैं। उन्हें न केवल देशवासियों ने, बल्कि दूसरों ने भी महान् जन-नेता स्वीकार किया है। ●

जवाहरलाल नेहरू एक महान् राजनीतिज्ञ थे, जिन्होंने अपने सारे सद्गुणों को जनतान्त्रिक सामाजिक प्रगति और शांति की दिशा में लगा दिया था। इसका जबरदस्त असर हिन्दुस्तान के भाग्य पर और परिणामस्वरूप सारी दुनिया के भाग्य पर पड़ा। मैं फ्रांस की जनता और अपनी ओर से समवेदना प्रकट करता हूं। मुझे उस महान राजनेता की सदा याद रहेगी, जिसने अपने मुल्क और शांति के लिए अपना जीवन अर्पित कर रखा था।

—द गाल

जय !

देती रही रत्न जन-धन के तू मुझको चिरकाल से,
देगी आज प्रसाद रूप क्या प्रभु-पूजा के थाल से ?
पुण्यभूमि यह सुन जगती से बोली वचन रसाल-से,
"मेरा-सा तेरा आंचल भी भरे जवाहरलाल से।"

... ...

हम कोटि कोटि कुटुम्बियों की और विश्व विशाल की,
सुख-शान्ति-चिन्ता थी तुम्हारी सहचरी चिरकाल की।
तुम जागते थे रात में भी, जबकि सोते थे सभी,
जन-मात्र की सच्ची विजय है जय जवाहरलाल की !

मानव-जाति के मुक्तिदाता

इन शोक-विह्वल क्षणों में मैं अधिक कुछ नहीं कहना चाहूंगा। उसकी आवश्यकता भी नहीं है। ये ऐसे क्षण हैं जब हममें से प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बालक अपने विचारों को अपने ही तक सीमित रखना चाहता है और विह्वल स्वरों में उस महान विभूति के प्रति उद्‌गार और श्रद्धा प्रकट करना चाहता है, जिसका जीवन अनंत सेवा और समर्पण का जीवन था।

जवाहरलाल नेहरू हमारी पीढ़ी के एक महानतम व्यक्ति थे। वह एक ऐसे अद्वितीय राजनीतिज्ञ थे, जिनकी मानव-मुक्ति के प्रति सेवाएं चिरस्मरणीय रहेंगी। स्वाधीनता-संग्राम के योद्धा के रूप में वह यशस्वी थे और आधुनिक भारत के निर्माण के लिए उनका अंशदान अभूतपूर्व था। उनके जीवन और उनके कार्यों का गहरा प्रभाव हमारे चिंतन, हमारे सामाजिक संगठन और हमारे बौद्धिक विकास पर पड़ा है। नेहरूजी के सक्रिय और सार्वदेशिक नेतृत्व के बिना भारत के स्वरूप का चिंतन लगभग असंभव-सा लगता है। हमारे देश के इतिहास का एक युग समाप्त होगया है।

मानव के रूप में श्री नेहरू में चिंतन की सुकुमारता, भावना की अद्वितीय कोमलता और महान एवं उदार प्रवृत्तियों का अद्‌भुत सम्मिश्रण था। दुर्बल और हताश व्यक्तियों के प्रति उनके हृदय में गहनतम सहानुभूति उमड़ती थी। वह विख्यात लेखक थे। उनके आत्मचरित में उनके जीवन और उनके संघर्षों की जो कहानी दी गई है, उसमें न तो आत्म-प्रतारणा का स्पर्श है और न नैतिक अहम्मन्यता का। वह हमारे युग की एक अद्‌भुत पुस्तक है।

स्वाधीनता के आगमन से लगातार वह हमारे देश के प्रधान मंत्री रहे और अपने सुदीर्घ प्रधान-मन्त्रित्व काल में उन्होंने हमारे देश को प्रगति, विज्ञान, क्रियाशीलता और असाम्प्रदायिकता के आधार पर आगे बढ़ाया। उदारता के कुछ मूलभूत सिद्धांतों के प्रति वह सदा दृढ़तापूर्वक आस्थावान रहे, जिससे हमारे चिंतन और हमारे जीवन को एक दिशा मिली। उनकी अनंत विस्मयजनक रुझानों और कार्यों को हम तभी समझ सकते हैं, जब हम यह स्मरण रखें कि लोकतंत्र और राजनैतिक व्यवस्थाओं का उपयोग करके उन्होंने उनमें प्राण और नई स्फूर्ति का संचार किया।

नेहरूजी ने अपने सार्वजनिक भाषणों में लोकमत को उन सिद्धांतों का आदर करना सिखाया, जो उन्हें प्रिय थे। वह मानव-जीवन के उच्चतर स्तरों के लिए संघर्षशील रहे और उन्होंने अपने आदर्शों की ज्योति सर्वसाधारण के हृदयों में जगाई। अपने उन सशक्त और अनुगुंजित स्वरों में, जिन्हें हम अब कभी

न सुन सकेंगे, उन्होंने भारतीयों की एक सम्पूर्ण पीढ़ी का निर्माण किया, उसे प्रेरणा दी और [illegible]। उन्होंने इस पीढ़ी के मन में उन प्रमुख सिद्धांतों के प्रति आस्था बनाई, जो उन्हें अत्यधिक प्रिय थे। हमारे लिए इतना ही आवश्यक नहीं कि हमारे आदर्श महान हों, हमें उनको जीवन में उतारने के लिए भी सक्रिय होना है। समय, परिस्थिति के निर्माण के लिए काल, एक अनिवार्य तत्त्व है और काल की पवित्रता के प्रति श्री नेहरू के हृदय में गहरे आदर का भाव था। काल की निर्मम पुकार को कोई नहीं टाल सकता और इसीलिए आज हमारा नेता हमारे बीच में नहीं है।

उनका जीवन आराम और सुरक्षा के बीच आरंभ हुआ, लेकिन उन्होंने राष्ट्रीय संघर्ष में अपने-आपको पूरी तरह समर्पित कर दिया और वह गांधीजी के बाद हमारे सबसे बड़े नेता होगये। राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष में उनका जो योगदान था, और १९४७ में भारत की समस्या के अंतिम समाधान के लिए उन्होंने जो कुछ किया, वह भारत के ताजे इतिहास का अंग बन चुका है।

स्वाधीनता के आगमन से पहले ही श्री नेहरू ने अनुभव कर लिया था कि जबतक समन्वित आयो-जन को नहीं अपनाया जायगा, तबतक हमारे देश का आर्थिक पुनर्निर्माण नहीं हो सकेगा और हम प्रगतिशील आधुनिक जीवन की उपलब्धि नहीं कर सकेंगे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद उन्होंने योजना को जीवन्तता और बल प्रदान किया, जिनपर काम हो रहा है।

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के आरंभिक वर्षों में राष्ट्रनिर्माता के रूप में नेहरू के मार्ग में विचित्र कठिनाइयां थीं और उन्हें दुर्जय चुनौतियों का सामना करना पड़ा। देश के विभाजन के साथ इस उप-महाद्वीप के लाखों लोग एक भाग से दूसरे भाग में आये और यह सब भयंकर दंगों, लूटमार और अग्निकांड के बीच हुआ। इसके साथ ही ऐसी राजनैतिक और आर्थिक समस्याएं सामने आईं, जिनका समाधान लगभग असंभव दीखता था। अभी भी देश में यहां-वहां साम्प्रदायिक हिंसा भड़क उठती है। श्री नेहरू ने गांधीजी से जिन महान कार्यों को विरासत में प्राप्त किया था और जिन्हें उन्होंने स्वयं उठाया था, उनके बीच यह स्थिति उन्हें अवश्य ही बहुत दुखद लगती रही होगी।

श्री नेहरू का सदा यह विश्वास था कि भारत को विश्व के अन्य देशों से पृथक् करके नहीं देखा जा सकता। स्वाधीनता के आगमन से पहले ही वह बराबर इस बात पर बल देते रहे कि भारत की समस्या विश्व के तमाम ऐसे लोगों की समस्या का अंग है, जिनका दमन किया जा रहा है और जो उपनिवेश-वाद के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं। उनके मन में मुक्ति की कामना केवल अपने ही लोगों के लिए नहीं, बल्कि विश्व के सभी लोगों के लिए थी। इसीलिए अफ्रीका, एशिया और दक्षिण अमरीका में जहां कहीं भी कोई मुक्ति-आंदोलन हो रहा हो, उसके लिए उनके मन में सहानुभूति और समर्थन का भाव रहता था। उन्हें वर्ग, सम्प्रदाय या देश का विचार किये बिना सभीकी मुक्ति में आस्था थी।

विश्व-शांति और एक विश्व-सम्प्रदाय के विचार में उन्हें बड़ा विश्वास था। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य-पत्र के प्रति जितनी आस्था दिखाई, उतनी शायद ही किसी और ने दिखाई हो। वह अनुभव करते थे कि परमाणु अस्त्रों के इस युग में युद्ध का अर्थ होगा, सभ्यता के सभी मूल्यों का विनाश। इसीलिए वह मानते थे कि आज के विभ्रमित विश्व में राजनीतिज्ञ को अगर कुछ करना है तो यही कि

तनाव और संघर्ष कम किया जाय और सद्भाव तथा पारस्परिक सामंजस्य का वातावरण बनाया जाय, जिससे युद्ध की विभीषिका का सहारा लिये बिना अंतर्राष्ट्रीय मतभेद दूर किये जा सकें। कोरिया, लाओस, कांगो, वियतनाम आदि अनेक अंतर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर वह शांति और मित्रता के प्रवक्ता थे और उनकी आवाज आदर के साथ सुनी जाती थी।

उनके साहस, सूझ-बूझ और व्यक्तित्व के कारण हमारा देश एक होकर आगे बढ़ता रहा है। अगर हमें अपना अस्तित्व बनाये रखना है तो हमें उनके इन्हीं गुणों को विकसित करना होगा। आज हम जब उनके विषय में सोचते हैं तो हमारे सम्मुख एक ऐसा व्यक्तित्व आता है, जो मानव-जाति का महान मुक्ति-दाता था, जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन और शक्ति मानव-मन को राजनैतिक बंधन, आर्थिक दासता, सामाजिक दमन और सांस्कृतिक रूढ़िग्रस्तता से उबारने के लिए समर्पित कर दिया।

उनके निधन पर शोक मानने के लिए हम सब जो शेष रह गये हैं, उनके सामने यदि कोई सबसे महान कार्य है तो यही कि हम उन आदर्शों को कार्यरूप दें, जो उन्हें प्रिय थे। यही वह सर्वोच्च श्रद्धांजलि है, जो हम अपने दिवंगत नेता को अर्पित कर सकते हैं। ●

नेहरू का इससे बढ़कर कोई उपयुक्त स्मारक और श्रद्धांजलि नहीं हो सकती कि दुनिया में कोई युद्ध न हो।

दुनिया के सब नेताओं में सबसे अधिक उन्होंने मानव की शांति की इच्छा व खोज को बल दिया। आज हमारी दुनिया के सामने यही समस्या है। युद्ध-रहित दुनिया की खोज में उन्होंने सारी मानवता की सेवा की है। गांधीजी का भी यही आदर्श था और यही नेहरूजी का।

यह मेरा विश्वास है कि दुनिया के राजनीतिज्ञ उनकी स्मृति में उनके आदर्श को वास्तविक बनाने के लिए सचेष्ट होंगे। हमारा देश इस चेष्टा से प्रतिबद्ध है और इस महान् नेता की स्मृति में श्रद्धांजलि के रूप में आज हम अपनी इस प्रतिज्ञा को फिर दुहराते हैं।

—जानसन

वह क्रांतिकारी थे

परसों जो घटना घटी वह ऐसी अचानक हुई कि उसने हमारे ऊपर एक बड़ा घाव किया। ऐसी स्थिति है कि इसमें कुछ अधिक कहना भी मेरे लिए मुश्किल है। लेकिन अगर जवाहरलालजी के कदमों में बैठकर हमने कुछ सीखा है तो यही सीखा है कि चाहे जितना बड़ा घाव हो, हम हिम्मत नहीं हारेंगे, खड़े रहेंगे, मजबूती से खड़े रहेंगे और आगे बढ़ेंगे।

जवाहरलालजी केवल राष्ट्रीय नेता ही नहीं, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय नेता थे। अलग-अलग गुटों में चलनेवालों और काम करनेवालों को इस दुनिया में किसी एक व्यक्ति ने कुछ अपने ढंग से नजदीक लाने की कोशिश की है तो उसका श्रेय पंडित जवाहरलालजी को है।

जवाहरलालजी एक सिपाही और सिपहसालार भी थे। एक सिपाही की हैसियत से गांधीजी के झंडे के नीचे आजादी का बाना उन्होंने पहना। मुझे वह बात भूलती नहीं, जब १९२९ में लाहौर की कांग्रेस हुई। तब पंडित मोतीलाल नेहरू ने जवाहरलालजी को अपनी गद्दी सुपुर्द करते हुए एक फारसी का शेर कहा था, जिसका मतलब यह था कि जो बाप पूरा नहीं कर सका है, उसे बेटा पूरा करेगा। पिता ने जो कहा था, उसको जवाहरलालजी ने पूरा किया। किस शान से वह आजादी की लड़ाई लड़े, और उन्होंने उसको जीता। जवाहरलालजी क्रांतिकारी थे, बगावत करना जानते थे, लेकिन उनका बड़प्पन यह था कि वह विध्वंस और निर्माण दोनों जानते थे।

आज एक बड़ा बोझा वह हमारे ऊपर छोड़ गये हैं। हम जानते हैं कि घाव जबर्दस्त है। इसमें हम लड़खड़ा सकते हैं, इसमें हम कमजोर पड़ सकते हैं, लेकिन जैसाकि मैंने कहा, अगर हमें जवाहरलालजी के प्रति सच्ची वफादारी दिखलानी है तो हम हिम्मत दिखलायंगे और मुझे इस बात का भरोसा है कि यह देश एक रहेगा, हम मिलकर रहेंगे, हम मिलकर चलेंगे। छोटी-छोटी बातें, छोटे-छोटे मतभेद तो हर दिन, हर घर में हुआ करते हैं, हर कुटुम्ब में हुआ करते हैं। मगर यह देश एक रहेगा, हम तगड़े बनेंगे, हम अपने देश की चहार-दीवारियों की जी-जान से रक्षा करेंगे। साथ ही, हमारे देश की क्रांति का जो दीपक जवाहरलालजी ने जलाया है, उसे जलता रखेंगे। हमें गरीबी की जंजीर को तोड़-तोड़ करके मिटा देना है, हटा देना है और अपने देश में हरेक को काम देना है, हरेक बाल-बच्चे को हँसता और खेलता हुआ देखना है। वह नया समाज, वह नया क्रांतिकारी समाज, जिसका दीपक जवाहरलालजी ने जलाया है, उस मशाल को लेकर हमें आगे बढ़ना है। मुझे विश्वास है कि सारा देश इसमें साथ देगा और इसी सच्चे मानी में ईमानदारी के साथ पंडित जवाहरलालजी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करेगा। ●

गुलजारीलाल नन्दा

भारत के नये स्रजक

जब दिल भरा हुआ होता है तो आवाज बुलन्द करना बहुत मुश्किल हो जाता है। जिस रास्ते पर पंडित जवाहरलाल नेहरू देश को चला रहे थे उस रास्ते से हमें चलना है और हिम्मत से खड़े होकर चलना है। सबसे पहली बात जो हमारे ध्यान में आती है, वह यह है कि इस देश के किसी कोने में कहीं भी कोई आदमी दुखी न रहे। उनका हिन्दुस्तान उन लोगों का था, जो झोपड़ियों में रहते हैं, यानी छोटे आदमी, गरीब आदमी। उनका दुख-दर्द वह अपने दिल में लेकर बैठे रहते थे। कोशिश थी कि उनकी जिन्दगी में ही ऐसे हालात पैदा हो जायं कि देश में लोग सुखी बनें, उनका जीवन सुखी हो। उसके लिए दो बातें थीं, जिनके लिए उन्होंने हमेशा कोशिश की। एक तो यह कि देश में उत्पादन तो बढ़ेगा, मगर सामाजिक न्याय नहीं होगा तो फिर गरीब गरीब ही रह जायंगे। इसको समाजवाद कहिये, कुछ कहिये, यह बात हमेशा उनके सामने थी। जो चीज वह चाहते थे, जो अभी तक नहीं हुई, हम करके रहेंगे और जल्दी करेंगे। यह बात तय हो जाय कि इस देश में उत्पादन बढ़ेगा, देश की गरीबी दूर होगी, बेकारी दूर होगी और इसमें हमें जितना काम करने की जरूरत होगी, वह करेंगे और इसके लिए सामाजिक न्याय की स्थापना करेंगे। मैं देश की तरफ से पहला यकीन उनको यह दिलाता हूं।

दूसरी बात यह थी कि इस देश में लोकतंत्र की स्थापना उनके हाथों से हुई और उन्होंने इसको मजबूत किया। हमें भी एक प्रतिज्ञा करनी है, उनकी आत्मा के सामने, कि इस देश के अंदर जो तंत्र है, व्यवस्था है, वह बिगड़ेगी नहीं। इस देश के अंदर हमारा जो लोकतंत्र है, वह दिनों-दिन ज्यादा मजबूत होगा, यह बात हमें करके दिखानी है।

एक बात और है, वह यह कि जबतक हम सुरक्षित नहीं हैं, इस देश के अंदर बाहर के खतरों से भय है, तबतक हम कुछ भी करें, आजादी टिक नहीं सकती। इसलिए उनका ध्यान इस बात पर था और हमें इस बात का निश्चय करना है और यहां ऐलान करना है कि देश की आजादी को संभालने के लिए इस देश का एक-एक आदमी मर-मिटने को तैयार है और ऐसा करने में उसे बड़ी खुशी होगी। जब उनके सामने यह चीज आयगी कि यह देश आगे बढ़ रहा है, देश में लोकतंत्र मजबूत हो रहा है, देश सुरक्षित है और बाहर का कोई भय उसके सामने नहीं है तो उन्हें बड़ा हर्ष होगा।

उन्होंने इस बात पर भी बहुत जोर दिया कि देश को संभालना है। लोगों को शंका थी कि उनके जाने से देश के टुकड़े-टुकड़े हो जायंगे और देश में एकता नहीं रहेगी। मैं समझता हूं कि देश के लोग

ऐसी बेवफाई नहीं करेंगे। कोई बात ऐसी नहीं करेंगे, जिससे देश के अंदर कमजोरी आये। देश को मजबूत बनाकर रखेंगे।

नेहरूजी देश के चरित्र को ऊंचा उठाना चाहते थे, जिससे देश में प्रगति हो। वह देश के चरित्र को अमली तौर पर बढ़ते हुए देखना चाहते थे और उसको बढ़ाना चाहते थे।

...

अपने प्रिय नेता के निधन पर हमें जो दुःख पहुंचा है, उसे शब्द प्रकट नहीं कर सकते हैं। इस दुःख में सारा विश्व शामिल है और इस संबंध में देश-विदेश से मिली सहानुभूति वस्तुतः सान्त्वना प्रदान करती है। जवाहरलालजी समूची मानबता के भी उतने ही थे, जितने कि वह भारत के थे।

भारत के माध्यम से वह मानवता की सेवा कर रहे थे और भारत की समस्याएं तथा उसके अरमान तो मानव की स्वतंत्रता, शान्ति, सामाजिक न्याय, मानवीय मूल्यों तथा मानव की प्रतिष्ठा के लिए लड़ाई का एक भाग-मात्र थे।

उन्होंने राष्ट्रपिता से मिली स्वतंत्रता की मशाल को ऊंचा रखा। उन्होंने राष्ट्रीय उद्देश्यों को नया रूप तथा नई दिशा प्रदान की। वह हर तूफान और कठिनाई में गांधीजी की इस शिक्षा पर जोर देते रहे कि अंत में सही तरीकों की विजय होगी।

जवाहरलालजी ने जो कुछ जीवन-भर किया तथा वह जो कुछ थे, उनकी प्रशंसा के कोई शब्द या हमारी श्रद्धांजलि उनके प्रति न्याय नहीं कर सकती। वह इतने वर्षो तक भारतीय क्षितिज पर छाये रहे कि उनके बिना सूना-सा लगता है।

उनके लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता तो विशाल भविष्य का एक अंश मात्र थी और इसीलिए हमारे स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों का यह महान् नेता स्वतंत्र भारत का महान् निर्माता भी बन गया। जवाहरलालजी ने सत्रह वर्षो की निस्स्वार्थ सेवा से, जो हर माने में उत्कृष्ट है, एक नये भारत का सृजन कर दिया। उन्होंने भारत के विचारों और अरमानों को मोड़ा। वह देशवासियों के हृदय के प्रतीक थे। उनमें उनके आदर्श, उनकी इच्छाएं तथा उनका संघर्ष प्रतिबिम्बित था। उन्होंने अपने देशवासियों का विश्वास और बल जगाया तथा उनका मार्ग-दर्शन किया।

उन्होंने हमारे लिए एक शानदार विरासत छोड़ी है, जिसका मुकाबला नहीं है। उन्होंने भारत तथा मानव-जाति की सेवा के लिए अपनेको उत्सर्ग कर दिया तथा उनका जीवन आनेवाली कई पीढ़ियों के लिए बहुमूल्य संदेश देता रहेगा।

वह हमें राष्ट्र और विश्व की एक संकट की घड़ी में छोड़ गये हैं। उनके महान् सिद्धांत तथा उन-पर आधारित राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय नीतियां हमारा मूल आधार बनी रहेंगी। हमारे सामने महान् दायित्व हैं। मुझे विश्वास है कि लोग समय की मांग के अनुसार आचरण करेंगे।

हम सब भारत के निर्माण, एक सही सामाजिक व्यवस्था तथा अपनी स्वतंत्रता और लोकतंत्र को दृढ़ करने के लिए अपनी शक्ति लगायंगे और इस प्रकार संविधान में निहित उद्देश्यों को पूरा करेंगे।

लोकतंत्र तथा संसदीय संस्थाओं के कार्य के बारे में उनका दृष्टिकोण सार्थक था। वह सदैव सम्पूर्ण

राष्ट्र की प्रगति पर बल देते रहे, राष्ट्रीय जागरूकता ही उनका ध्येय रहा। वह स्वयं कहा करते थे, "यदि भारतीय जनता का संदेश सद्जीवन यापन करना है तो इसका निकट संबंध विश्व-शांति को बनाये रखने से ही नहीं, अपितु इसपर निर्भर भी है। इसलिए शांति कायम रखना निहायत जरूरी है और यह राष्ट्र की प्रगति के लिए अनिवार्य है।"

अर्द्ध-विकसित तथा निर्धन राष्ट्रों का अस्तित्व शांति-स्थापना के मार्ग में स्थायी खतरा है। निर्धनता से मुक्त मानव-समाज के निर्माण का लक्ष्य लेकर वह चले थे और जो कुछ परिश्रम इसके लिए उन्होंने किया, वह उसीका एक अंग था।

जनसेवा तथा जवाहरलालजी के आदर्शों की पूर्त्ति के लिए हम जुट जायं—यही सबसे बड़ी श्रद्धांजलि होगी। नेहरूजी ने इन आदर्शों के लिए अकेले ही आजीवन परिश्रम किया।

भारत को जवाहरलाल नेहरू पर गर्व है। भारत उनका कृतज्ञ है। हम उनके मिशन को पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। ●

विश्व नेहरूजी को सदा मानवीय इतिहास की प्रवृत्तियों के क्रांतिदर्शी विश्लेषक के रूप में याद करेगा।

इस युग के बहुत कम लोगों ने इतिहास पर जवाहरलाल नेहरू के जैसी जबरदस्त निशानी छोड़ी है। उन्होंने विश्व की घटनाओं को भी प्रभावित किया। वह न केवल एक महान् व्यक्ति थे, अपितु इतने अच्छे थे कि सभी देशों के लोग उन्हें प्यार करते थे। हिन्दुस्तान के इस शोक में संयुक्त राष्ट्र के हम सब लोग शरीक हैं।

—थांट

कुशल संसदज्ञ

जवाहरलाल नेहरू अपने देश में नहीं, बल्कि समूचे संसार में लोकतंत्र के महान् नेता और संरक्षक थे। वह कई अंतर्विरोध के समन्वय थे और उनमें महान् तत्वों का सम्मिश्रण था। वह सर्वांगतः कुलीन होते हुए भी जनता के आदमी थे तथा स्वप्नदर्शी और कल्पनाशील होते हुए भी राष्ट्र के कर्म-पुरुष थे। उन्होंने भारतीय राष्ट्र की एकता और सुदृढ़ता के लिए यथाशक्य लगन से कार्य किया। संसदीय लोकतंत्र में दृढ़ आस्था रखने के कारण उन्होंने लोकतंत्र की दीप-शिखा सगर्व प्रज्वलित रखी, जबकि उनके चारों ओर लोकतंत्र के अनेक दीप एक-एक करके बुझते रहे।

जवाहरलालजी पर जनता का अटूट विश्वास था। वह उसके राजनैतिक व अन्य अधिकारों के प्रति हमेशा सजग रहे। उनके स्थान पर यदि कोई अन्य व्यक्ति इतना लोकप्रिय, प्रभावशाली और सबल होता तो वह उस शक्ति का दुरुपयोग कर सकता था। एक बार उन्होंने अपने चिरस्मरणीय आकाशवाणी संदेश में कहा था कि "मैं दिल्ली में भारत के प्रधान मंत्री के रूप में अपनी नियुक्ति के कारण नहीं टिका हुआ हूं, बल्कि कारण यह है कि मुझे विश्वास है कि मैं जनता की इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करता हूं और मैं भारतीय जनता की कृपा से ही यहां विराजमान हूं।"

जवाहरलालजी के नेतृत्व में भारत ने संसदीय लोकतंत्र की राह पर कदम बढ़ाया। अन्य स्वाधीन नव लोक-राज्यों की दुर्दशा को देखते हुए इस मार्ग को सुगम नहीं माना जा सकता, किन्तु फिर भी भारत को इसमें सफलता मिली। लोकतांत्रिक सिद्धान्तों और पद्धतियों में आस्था के कारण वह अपनी प्रतिष्ठा को जोखिम में डालकर भी समस्याओं के तात्कालिक समाधानों को अस्वीकार कर देते थे, क्योंकि उन्हें इन समाधानों में अलोकतांत्रिक एवं असंसदीय पद्धति की गंध आती थी। उन्हें समयोचित माने जानेवाले कार्य हमेशा ही स्वीकार नहीं होते थे, हालांकि सभी नेताओं की भांति उन्हें भी कभी-कभी इसपर अमल करना पड़ता था।

उनके जीवन का निर्देशक सिद्धांत यह था कि पावन साधनों से ही पावन लक्ष्यों की पूर्त्ति होती है। लोकतंत्र में उनकी आस्था अटूट थी। उन्होंने संसदीय लोकतंत्र को ही पसंद किया, क्योंकि उनके कथनानुसार "लक्ष्य-प्राप्ति का, समस्याओं को शांतिपूर्वक हल करने का, यही सही तरीका है, साथ ही इससे वह दबाव भी हट जाते थे, जो अन्य प्रकार के शासनतंत्र जनता पर डाल सकते हैं। यह एक आत्मानुशासन है, जिसका अर्थ यह है कि वे लोग भी, जो इससे सहमत नहीं हैं, इसे स्वीकार करते हैं, क्योंकि संघर्ष मोल लेने

के वजाय इसे स्वीकार करना ज्यादा वेहतर है, इसे स्वीकार करके वाद में अगर जरूरत पड़े तो इसमें शांतिपूर्वक परिवर्तन करना ज्यादा अच्छा है। अगर यह शांतिपूर्ण नहीं है तो मैं इसे लोकतंत्र नहीं मान सकता। यह कोई दूसरी चीज हो सकती है।" लोकतंत्र-संबंधी अपनी मान्यता में उन्होंने समूचे राष्ट्र की प्रगति पर सबसे ज्यादा जोर दिया। उस प्रकार उन्होंने भारतीय संसद को बहुत जल्दी ही विचार और कर्म की दृष्टि से परिपक्व बना दिया, क्योंकि वह संसद को एक 'क्लासिक मंच' मानते थे, जिसपर वाद-विवाद, विचार-विमर्श, वक्तृता और पथ-निर्धारण होता है।

पहले-पहल सन् १९४६ में संविधान-सभा में प्रवेश किया और उस समय संसदीय कार्यविधि से अनभिज्ञ थे, पर उन्होंने शीघ्र ही पटुता अर्जित कर ली और कुशल संसदज्ञ हो गये। चाहे प्रश्नोत्तर काल हो अथवा किसी महत्वपूर्ण विषय पर वाद-विवाद, वह संसद को अपने बहुमूल्य समय का अधिकांश देते थे। इसके पीछे केवल कर्तव्य-भावना नहीं थी, वल्कि संसदीय प्रणाली में उनकी रुचि भी थी। शायद इसका कारण उनकी शिक्षा-दीक्षा एवं ब्रिटिश संसदीय प्रणाली के प्रति सम्मान की भावना था। राष्ट्रीय संघर्ष की कटु अवधि में भी वह ब्रिटिश संसदीय प्रणाली का सम्मान करते रहे।

जवाहरलाल नेहरू निस्सन्देह संसदीय कार्रवाही पर हावी रहते थे। लेकिन वह संसद की प्रतिष्ठा का पूरा ध्यान रखते थे और अपनी उपस्थिति के बारे में असाधारण रूप से सजग रहते थे। उन्हें लोकसभा में प्रविष्ट होते देखकर प्रसन्नता का अनुभव होता था। वह अपने आसन पर शान के साथ आसीन होते थे और अध्यक्ष के प्रति पूर्ण सम्मान प्रदर्शित करते थे। वह जब भी कभी सदन के अहाते में होते तो कोरम की घंटी वजने पर तेजी से दौड़कर सदन में उपस्थित हो जाते थे। अपनी बीमारी के दिनों में भी, कष्ट के वावजूद, बैठे रहने की प्रार्थना की उपेक्षा करके अपने स्थान पर खड़े होकर ही प्रश्न का उत्तर या भाषण देते थे। संसद सदस्यों की प्रार्थना का उत्तर वह हमेशा यही देते कि सदन की प्रतिष्ठा की रक्षा होनी चाहिए। उन्हें बीमारी के दौरान में खड़े होने का कष्ट उठाते देखना वस्तुतः वड़ा मार्मिक अनुभव था।

संसद-शास्त्री के रूप में जवाहरलालजी को निर्विवाद प्रथम कोटि में रखा जा सकता है। उनकी महत्ता की समता युद्धकालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल से की जा सकती है। संसद में उनके कुछ भाषण वक्तृता के आदर्श उदाहरण हैं, जो संसार की अन्य संसदों के सर्वोत्तम भाषणों के समकक्ष हैं।

जव जवाहरलालजी वोलते थे तो उनके तर्क संतोषप्रद और सबल होते थे। वह धैर्यपूर्वक तर्क करते थे और लिखित भाषणों के पाठन या नोट्स का सहारा नहीं लेते थे। उनके संसदीय भाषण सदन की भावनाओं का लाभ उठानेवाले परंपरागत सस्तेपन से दूर होते थे।

जवाहरलालजी की अंतर्चेतना उन्हें लोगों के दिलो-दिमाग में पैठने की सामर्थ्य देती थी। संसद में या वाहर सभाओं में जवाहरलालजी के मुकावले का संतोषजनक और प्रभावशाली वक्ता कोई नहीं था। सदन में वाद-विवाद के दौरान कुछ दिनों तो वह बिल्कुल ही मौन रहते थे और केवल संकेत, भाव-भंगिमा या मुद्रा द्वारा अपनी सतर्कता प्रदर्शित करते थे। जव वह बोलते थे तो उनका भाषण सुनने लायक होता था, चाहे कोई उससे सहमत हो या नहीं। वह अपनी वात को कम-से-कम शब्दों और समय में आसानी, दृढ़ता और सच्चाई से अभिव्यक्त करते थे।

वैदेशिक मामलों पर बहस के दौरान में उनका प्रदर्शन सर्वोत्तम रहता था। वह जिस विश्वास के साथ बोलते थे, वह विश्व-नेताओं में अन्यत्र दुर्लभ है। दैनिक कार्रवाहियों में वह अलंकारपूर्ण अभिव्यक्तियों और उतार-चढ़ाव से दूर रहते थे। लेकिन उनकी अभिव्यक्ति की सशक्तता का कारण भाषाई सरलता नहीं, बल्कि उचित स्थलों पर पर्याप्त जोर और विवेचन था।

प्रश्नोत्तरकाल में जवाहरलालजी हमेशा सक्रिय रहते थे। संसद-सदस्यों के शिकंजे में फंसे हुए अपने साथियों की सहायता के लिए उन्हें बार-बार हस्तक्षेप करना पड़ता था। उन्हें समग्र प्रशासन की विस्तृत जानकारी रहती थी, जिसे सदन को प्रेषित करने में वह कभी भी संकोच नहीं बरतते थे। उनके उत्तर सीधे और जानकारीपूर्ण होते थे। वह अपने श्रोताओं को पूर्ण संतोष प्रदान करने के लिए उत्सुक रहते थे और कई बार सूचना अपर्याप्त होनेपर अन्य मंत्रियों द्वारा दिये गए उत्तरों को पूर्णता प्रदान करते थे।

लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए संसद की मर्यादा और अधिकारों का रक्षण आवश्यक है। जवाहरलालजी से बेहतर संरक्षक अन्य कोई नहीं था। वह इन अधिकारों तथा सदन की मान-मर्यादा की रक्षा के मामले में पूर्ण सजग रहते थे।

अक्सर यह कहा जाता है कि जवाहरलालजी हठी थे और दूसरों की बात सुनने की ओर ध्यान नहीं देते थे। यह सत्य नहीं है। सदन के अंदर और बाहर वह श्रेष्ठ संसदज्ञ की भांति तथ्यों से अवगत रहने और मतभेद के मुद्दों पर विचार करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे।

जवाहरलालजी में घृणा के भाव का पूर्ण लोप था। यही मूलतः लोकतांत्रिक दृष्टिकोण की प्रकृति है कि मतभेद और विरोध के बावजूद घृणा उत्पन्न न हो। वह संसद के बाहर और अंदर, अपने कट्टर-से-कट्टर आलोचक से भी घृणा नहीं करते थे।

वह सहिष्णु थे और विरोधी सदस्यों के प्रति पूर्णतः शालीन थे। प्रतिपक्षी सदस्यों द्वारा बार-बार व्यवस्था का प्रश्न उठाये जाने से चिढ़ने के बावजूद वह हमेशा उन्हें प्रोत्साहित करते रहते थे कि वह संसदीय परंपराओं के निर्णय के लिए निष्ठापूर्वक प्रयत्नशील थे। एक बार उन्होंने कहा भी था, "मैं किसी भी ऐसे शासनतंत्र में पूर्ण विश्वास करता हूं, जहां कट्टर आलोचक और प्रतिपक्षी हों, क्योंकि आलोचना के बगैर लोग शिथिल हो जाते हैं और सरकार में उदासीनता घर कर जाती है। समूचा संसदीय लोकतंत्र आलोचना पर आश्रित है।"

प्रतिपक्ष की पूछताछ के प्रति अत्यधिक सचेत होने के कारण नेहरूजी कुछ ही घंटों के अंदर-अंदर उन्हें तुष्ट कर देते थे। प्रतिपक्ष की भावनाओं का सम्मान करते हुए उन्होंने अटर्नी जनरल और विधिमंत्री के विभाग मिलाने का सरकारी प्रस्ताव और अपने निधन से एक मास पूर्व व्यक्तिगत हस्तक्षेप करके संविधान १८वां संशोधन विधेयक वापस करा लिया।

हमारी संसदीय लोकतंत्रीय व्यवस्था में सरकार को महत्वपूर्ण विषयों पर प्रतिपक्ष से विचार लेने के अवसर कम ही मिलते हैं। लेकिन जवाहरलालजी एक कदम आगे बढ़ गये और एक बार सेना के कतिपय अधिकारियों की पदोन्नति-संबंधी विवाद का अंत करने के लिए उन्होंने किसी प्रतिपक्षी प्रतिनिधि या प्रतिपक्ष द्वारा गठित संसदीय समितियों को पदोन्नति-संबंधी फाइलों का निरीक्षण करने के लिए आमंत्रित कर दिया।

प्रतिपक्षी सदस्यों के मुकावले में जवाहरलालजी अक्सर करारे प्रहार भी करते थे। जब वह देखते कि सरकार का अपमान किया जा रहा है तो वह क्रोध में भरकर खड़े होजाते थे। वह प्रतिपक्षियों की आलोचना से कम ही उत्तेजित होते थे और "प्रवल आक्रमण या आवेश-पूर्ण आत्मरक्षा" पर कम ही उतारू होते थे। लेकिन जब कभी कोई व्यक्ति गंभीर विषय को हल्के ढंग से लेता था तो वह भड़क उठते थे और संसद में गैरजिम्मेदाराना व्यवहार के दमन के लिए पूर्ण आवेश प्रदर्शित करते थे।

जवाहरलाल अपने मखौल को बर्दाश्त भी कर लेते थे और कभी-कभी करारा जवाब भी दे देते थे। जब कभी कोई सदस्य खास तौर पर उनके बुनियादी विश्वासों पर आक्रमण करता था तो वह अपनी कटु व्यंग्य-पटुता का प्रभावशाली प्रदर्शन करते थे। वह व्यंग्य का उत्तर व्यंग्य में तत्काल देने में भी माहिर थे। एक बार बहस के दौरान उन्होंने कहा था, "भारत मुख्यत: कृषि-प्रधान देश है, लेकिन हम अपने देश-वासियों को पेट भरने लायक अन्न भी पैदा नहीं कर पाते। कुछ लोग कहते हैं कि हमारा देश औद्योगिक है। लेकिन हमारा औद्योगिक विकास आखिर है कहां? हम क्या जवाव दें?" एक विरोधी सदस्य ने मजाक में कहा, "धोबी का कुत्ता घर का न घाट का।" जवाहरलालजी ने तत्काल जवाब दिया, "माननीय सदस्य को अपने बारे में पूरा अनुभव है।" इस जवाब ने समूचे सदन को हँसा दिया और प्रतिपक्ष भी हँसे बिना न रह सका।

इस प्रकार नेता और संसदज्ञ दोनों रूपों में जवाहरलालजी अपना गौरव-चिह्न अंकित कर गये हैं। उन्होंने संसदीय परंपराओं पर अनवरत आचरण करके संसद को राष्ट्रीय जीवन में सम्मानपूर्ण ऊंचा स्थान प्रदान किया है। प्रशासन, संसदीय समितियों और सहायक संस्थाओं की बात ध्यान से सुनता है।

इसका श्रेय केवल नेहरूजी को ही है कि भारत में संसदीय परीक्षण, प्रो० मारिस जोन के शब्दों में "सुचारु ढंग से चल रहा है और संसदीय धाराएं कई यूरोपीय देशों के मुकाबले भारतीय जनता के जीवन में अधिक मजबूती से जम गई हैं।" इसी पृष्ठभूमि में कुछ पश्चिमी पर्यवेक्षकों ने भारतीय संसद को एशिया में अपनी तरह की एकमात्र संस्था करार दिया है, जो आदर्श ढंग से कार्य कर रही है। ●

नेहरू के दिवंगत होने का समाचार सुनकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। समस्त राष्ट्र-मण्डल की ही नहीं, बल्कि विश्व की शांति-प्रेमी जनता उनका शोक मनायगी।

—महारानी एलिजाबेथ

इतिहास के निर्माता

नेहरू एक महान् व्यक्ति थे। वह महान् यूरोपीय और साथ ही महान् भारतीय भी थे। मेरा अनुमान है कि राष्ट्रमंडल के राजपुरुष के रूप में उनका दर्जा स्मट्स से नीचे था। स्मट्स में उनसे कहीं अधिक व्यापक सूझ-बूझ थी और वह विश्व के दांव-पेंच के अधिक मर्मज्ञ थे।

विश्व के राजपुरुष के रूप में सचमुच नेहरूजी की अपनी सीमाएं थीं। मूलतः वह शांतिवादी थे। यदि उनका विकास ब्रिटिश राजनीति में हुआ होता तो वह द्वितीय जार्ज लेन्सबरी होते। वह एक आध्यात्मिक शक्ति तो होते, परंतु राष्ट्र-नेता के रूप में वस्तुतः न बढ़ पाते। वह अधिकार का मर्म समझते थे और काव्य का भी। लेकिन कहां एक का आरंभ होता है और कहां दूसरे का अंत होता है, इसको वह नहीं समझ पाते थे।

वह गांधीजी से बढ़कर राजपुरुष थे। गांधीजी यद्यपि थे तो बड़े अच्छे, तथापि कभी-कभी बड़े तिकड़मी प्रतीत होते थे। गांधी संत थे, लेकिन उनमें ग्लैडस्टन का थोड़ा पुट था। ग्लैडस्टन के बारे में सभी जानते हैं कि वह अपनी ही आस्तीन से ट्रम्प का पत्ता निकालते थे, लेकिन दूसरे से पूछ बैठते थे, "अरे, इसे वहां किसने रख दिया?" यदि गांधीजी कठिनाई न उपस्थित करते तो भारत में क्रिप्स मिशन सफल होगया होता। उन्होंने केवल हठ ही नहीं ठान रखा था, वरन् उनके बारे में यह बताना भी असंभव था कि वह चाहते क्या थे। उनकी तुलना में नेहरूजी को राजी कर लेना बिल्कुल आसान था। नेहरू का रुख व्यावहारिक, युक्तिसंगत और लचीला था और उनके व्यक्तित्व में अप्रतिम जादू था।

उनके मोहक व्यक्तित्व की चर्चा छिड़ते ही मुझे उस घटना का स्मरण हो आता है जब मैंने उनका परिचय विंस्टन चर्चिल से कराया था। एक रात दोनों ही व्यक्ति बकिंघम राजप्रासाद में थे। मैंने शाह को संबोधित करते हुए कहा, "जरा यह तमाशा देखिये कि यहां हैरो विद्यालय के शिक्षित दो व्यक्ति हैं, जो अभीतक एक-दूसरे से कभी नहीं मिले हैं।"

चर्चिल में भी ऐसा जादू है कि वह चाहें तो आपको अपनेपर लट्टू बना दें। उन्होंने नेहरूजी का अभिनंदन इन शब्दों में किया, "मैं यह कहने की इजाजत चाहता हूं कि बिहार के दंगे को आपने जिस ढंग से काबू में किया, उसकी मैं बड़ी सराहना करता हूं। वहां बलप्रयोग करने में आपने बड़ा साहस दिखाया।"

नेहरूजी ने कहा, "आपने युद्ध पर जो संस्मरण लिखे हैं, उन्हें मैंने बड़े चाव से पढ़ा है।"

दोनों बैठे रहे और आधे घंटे तक खूब मजे में बातचीत होती रही।

नेहरूजी से निभा लेना चर्चिल सदा असंभव मानते थे। हां, वह नेहरूजी को गांधीजी से अच्छा मानते थे। विंस्टन की दृष्टि में गांधीजी बिल्कुल निराशाजनक प्राणी थे।

नेहरूजी से साक्षात्कार होनेपर ऐसा महसूस होता था कि आप किसी अति श्रेष्ठ मानव तथा दिव्य व्यक्ति के सान्निध्य में हैं। वह अत्यन्त प्रिय भी थे। केवल एक बार मुझे उनपर क्रोध हुआ। वह प्रसंग था काश्मीर में जनमत-संग्रह के बारे में उनका व्यवहार। एक समय तो उन्होंने जनमत-संग्रह करना स्वीकार कर लिया था। लेकिन जब वह दूसरी बार प्रधान मंत्री-सम्मेलन में शरीक होने के लिए आये तो अपने साथ अपना मौलिक दृष्टिकोण ले आये। उसपर वह अड़ गये और ज़रा भी टस-से-मस नहीं हुए। मैंने मेंज़ीज से कहा कि तुम इन्हें अकेले में समझाओ। उनके अलावा दो-तीन और भी समझाते-समझाते थक गये, लेकिन नेहरूजी तिल-भर इधर-से-उधर नहीं हुए।

उनके प्रति औचित्य के ख्याल से विचार किया जाय तो स्वयं काश्मीरी ब्राह्मण होने के कारण उनका सच्चा विश्वास था कि भारत के लिए काश्मीर का इतना आध्यात्मिक मूल्य है कि चाहे जिस कीमत पर भी उसे भारत में बनाये रखना चाहिए। यदि हम आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि परिणाम के अनुकूल होने का विश्वास हुए बिना वह जनमत-संग्रह कराते, इसका मुझे यकीन नहीं।

अपने युग को नेहरूजी ने जो अंश-दान किया, वह बहुत है। द्रुत संक्रमण के इस युग में उन्होंने अपना दिल-दिमाग ठीक रखा और उग्रपन्थियों तथा कोरे सिद्धांतवादियों को चेतावनी दी कि इन अंग्रेजों से पिंड छुड़ाने में बहुत जल्दबाजी मत करो। मुझे दुःख है कि कुछ एशियाई तथा अफ्रीकी देशों ने इस नसीहत से लाभ नहीं उठाया।

चीन का मामला निश्चय ही नेहरूजी की बड़ी विफलता थी। मैं यह नहीं कह सकता कि जो घटनाएं घटित हो रही थीं, उन्हें वह नहीं समझना चाहते थे अथवा समझ ही नहीं सकते थे। मुझे आशंका है कि उन्होंने वास्तविकता का सामना करने से भी जी चुराया। पिछले कुछ वर्षों की घटनाओं से अवश्य ही उन्हें गहरा सदमा पहुंचा होगा और उनकी निर्णय-क्षमता पर आघात पहुंचा होगा। अवश्य ही उन्हींकी ठेस से इतनी जल्दी उनकी मृत्यु हुई।

कुछ हदतक नेहरूजी एक दुरन्त व्यक्ति थे। वह दृढ़ थे और समझते थे कि क्या करना है, लेकिन अपनी ही भावुकता और निर्णय करने में अपनी विफलता के प्रश्नों को उलझा देते थे और इस प्रकार उनके सामने रुकावट पैदा हो जाती थी। किन्तु जिस प्रकार रक्तपात तथा शस्त्र-बल का आश्रय लेनेवाले इतिहास के निर्माता होते हैं, उसी प्रकार दुरंत व्यक्ति भी इतिहास का निर्माण करते हैं। जब इस जमाने की प्रक्रिया की प्रमुख बातों का इतिहास लिखा जायगा तब नेहरूजी का नाम सबसे आगे हो सकता है। ●

बापू और नेहरूजी की समान भूमिकाएं

मोतीलालजी-जैसे मनस्वी और तेजस्वी पिता के लाड़ले जवाहर पिता का आदर करते थे। उनके सामने नम्र होते थे, लेकिन करते थे तो अपने मन का ही। आगे जाकर जब जवाहरलालजी ने देखा कि परिस्थिति पर अपना काफी प्रभाव जम गया है, तब पिता के वात्संल्य से लाभ उठाकर पिता को अपने पीछे खींचने से भी वह बाज न आये।

महात्मा गांधी तो युगपुरुष थे। धर्मपरायण भारतीय जनता ने ही उन्हें महात्मा की पदवी दी और धीरे-धीरे जनता ने उन्हें अवतारी पुरुष मान लिया। महात्माजी को अपने काबू में लाने का प्रयत्न ब्रिटिश नीति ने कम नहीं किया। लेकिन गांधीजी की दृढ़ता के सामने उसकी कुछ न चली। गांधीजी के प्रभाव से डरकर उनसे मिलने को टालनेवाले लार्ड विलिंग्डन को कहना पड़ा कि हारने पर भी यह आदमी किंकर्त्तव्य-विमूढ़ नहीं होता। अपनी हार से भी लाभ उठाकर आगे ही बढ़ता जाता है।

ऐसे गांधीजी को अपनी निष्ठा अर्पण करके उनका नेतृत्व स्वीकारते हुए जवाहरलालजी ने अपना व्यक्तित्व कायम रखा। इतना ही नहीं, बहुत-सी बातों में गांधीजी को अपनी ओर खींच सके।

समाज-सत्तावाद के प्रथम से पुरस्कर्ता थे जवाहरलालजी, तो भी उन्होंने स्वातंत्र्य के सेनानी गांधीजी का साथ छोड़ना पसंद नहीं किया। अपने समाज-सत्तावादी साथियों को साफ-साफ कहा कि देश को आजादी की ओर ले जाने की शक्ति महात्मा गांधी की है। इसलिए उनसे अलग होने के लिए वह बिल्कुल तैयार नहीं है।

जवाहरलालजी ने गांधीजी का खादी का संदेशा मंजूर किया, यह कहकर कि खादी हमारी आजादी की वर्दी है, गणवेश है। वह खादी पहनते थे, इतना ही नहीं, सूत कातना भी सीख गये।

इतना होते हुए न उन्होंने अपना समाज-सत्तावाद छोड़ा और न बड़े-बड़े कल-कारखाने इस देश में खोलकर भारत को पश्चिमी राष्ट्रों की बराबरी का बनाने की नीति छोड़ी।

अगर गांधीजी से उन्होंने कोई बात लेकर उसे पूर्णतया अपनाया हो तो यह केवल दो ही थीं: १. सब बातें गौण करके भारत को जल्द-से-जल्द स्वतंत्र करने के लिए परदेशी सत्ता के साथ प्राणपण से लड़ना और २. आज के युग में शस्त्र-युद्ध विजयी बन नहीं सकता, विनाश की ओर ही ले जा सकता है, यह समझकर अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार में अहिंसा को ही प्रधानता देना।

केवल इन दो बातों में ही वह गांधीजी के शिष्य अथवा अनुयायी थे। एक तीसरी बात भी यहां

गिननी चाहिए। धर्म, जाति, पंथ, भाषा आदि किसी भी तत्व की संकुचितता में न फंसते हुए अखिल भारत को अपना एक अखंड देश मानना और उसकी भावात्मक एकता सिद्ध करने के लिए चाहे सो त्याग करने के लिए स्वयं तैयार रहना और देश को वैसी ही प्रेरणा देना। गांधीजी के मन में और जवाहरलाल-लालजी के मन में पाकिस्तान के प्रति तनिक भी द्वेष नहीं था। एक ही घर के दो भाई जब साथ नहीं रह सकते तब अपने चूल्हे अलग करते हैं सही, लेकिन भूलते नहीं कि हम एक ही पिता के पुत्र हैं। चूल्हे अलग हुए, धन-दौलत का बंटवारा हुआ, लेकिन परिवार तो एक ही है, यह हम कैसे भूलें? यह वृत्ति जैसी गांधीजी में थी, वैसी ही जवाहरलालजी में थी। भारत के हों, या पाकिस्तान के हों, मुसलमानों के प्रति पक्षपात करने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं था। मुसलमान आदि भिन्न धर्मी लोगों को अपनाने का गांधीजी का और कांग्रेस का व्रत जवाहरलालजी ने उतनी ही निष्ठा से अपनाया। ऐसा करते उन्हें अनेक बार ठेस लगी होगी, लेकिन उन्होंने अपना व्रत कभी नहीं छोड़ा। इस बात में भी जवाहरलालजी गांधीजी के पूरे-पूरे अनुयायी रहे। उनके लिए यह कठिन भी नहीं था। किसीके बारे में मन में द्वेष-भाव रखना, बदला लेना अथवा किसीकी निंदा करना जवाहरलालजी के स्वभाव में था ही नहीं। वह अपने कार्य में और अपने मिशन में मस्त रहते थे और भले-बुरे सब तरह के लोगों से काम ले सकते थे। ऐसी मन की उदारता उनके लिए स्वाभाविक ही थी।

अंग्रेजों ने जितना गांधीजी को परेशान किया, उतना ही जवाहरलालजी को भी किया। लेकिन अंग्रेजों का इतिहास, उस राष्ट्र का चारित्र्य और उन लोगों का स्वभाव दोनों अच्छी तरह से जानते थे, इसलिए दोनों के मन में अंग्रेजों के प्रति आदर-भाव और क्षमावृत्ति की उदारता पूरी मात्रा में थी।

अहिंसा-व्रत का प्रचार इतना हुआ है कि अहिंसा-वृत्ति धारण करने की बात हम लोग समझ सकते हैं। उसका पालन भी हो सकता है। लेकिन अद्वेष व्रत का ऐसा नहीं है। अहिंसा धर्म का पालन जैसे उदारचरित महात्मा लोग कर सकते हैं, वैसे ही निर्वीर्य कायर लोग भी उसका पालन कर सकते हैं। कम-से-कम अहिंसा की दुहाई देकर अपनी कायरता को और अकर्मण्यता को ढंक सकते हैं। अद्वेष का ऐसा नहीं है। मनुष्य अपने द्वेष को छिपा नहीं सकता। द्वेष करने से मनुष्य छोटा बनता है। फिर तो उसकी वह कमजोरी प्रकट होती ही है।

गांधीजी में और जवाहरलालजी में द्वेष का माद्दा ही नहीं था।

इसीलिए हम कहते हैं कि गांधीजी और जवाहरलालजी दोनों में जीवन-दर्शन भिन्न होते हुए भी दोनों की आत्म-शक्ति एक-सा काम कर सकती थी। ●

नेहरूजी मेरी प्रेरणा के स्रोत थे। विश्व ने अपने युग के सबसे महान नेताओं में से एक को खो दिया।

—टुंकु अब्दुल रहमान

सबसे बड़ा वरदान

साबरमती आश्रम तथा शांतिनिकेतन में कुछ महीने रहने के बाद मैं सन् १९२६ के अंत में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में सम्मिलित होने गोहाटी गई। बड़ा आनंद आया, विशेषकर श्रीमती नायडू, अली-बंधु और नेहरूजी के माता-पिता के साथ के कारण, लेकिन उस समय पंडितजी स्वयं तो हमारे जेल में थे।

बाद में मैं उनसे जेल में मिलने गई। जेल का वार्डन उन्हें उनकी कोठरी से एक बड़े कमरे में लाया। हम लोग एक-दूसरे के सामने खड़े थे। बीच में लोहे ही पतली-सी जाली थी। सारा वातावरण अनगिनत ततैयों की भयंकर भनभनाहट से भरा हुआ था।

पंडितजी पीले और दुबले दिखाई दे रहे थे, लेकिन उनके चेहरे पर गंभीरता थी।

मुझे बड़ी शर्म आई, पर मैं जानती थी कि वह इसकी चर्चा पसंद नहीं करेंगे। इसलिए मैंने एक दूसरे ही विषय पर क्रोध व्यक्त करते हुए कहा, "ओह, मि० नेहरू, क्या आपकी कोठरी भी इन भयंकर शोर मचानेवाले जीवों से भरी है, जैसेकि यह कमरा भरा हुआ है ? अगर ऐसा है तो आप कैसे बर्दाश्त करते हैं ?"

वह मुस्कराये। बोले, "शुरू-शुरू में मुझे भी वैसा ही लगा जैसा कि आपको लग रहा है और मैंने उन्हें फुर्ती से मार डाला। लेकिन मैंने देखा कि अगले दिन फिर उतने ही नये ततैये इकट्ठे होगये। आखिर मैंने एक नया रास्ता निकाला। मैंने अहिंसा की शरण ली। समझौता किया कि आगे एक को भी नहीं मारूंगा, लेकिन उनको भी खिड़की के शीशे से आगे नहीं बढ़ना चाहिए। तब से उन्होंने ज़रा भी विघ्न उपस्थित नहीं किया। दोनों ने अपनी-अपनी शर्तों का पालन किया है।"

मैं पंडितजी से लंदन में और हिन्दुस्तान जाने पर वहां अक्सर मिलती रही। उनकी गहन बुद्धिमत्ता, दूसरे को तत्काल समझ लेने की क्षमता और अतुलित शक्ति, साथ ही शालीनता, चारों ओर व्याप्त होते गये और इनके कारण वह ऐसे बन गये कि उनपर कोई भी पूर्णतया निर्भर कर सकता था।

उनमें वह ताकत थी कि वह लोगों में, अपने अंदर तथा भविष्य में, विश्वास की वृद्धि कर सकते थे, और यह एक बड़ा, बहुत बड़ा वरदान था—शायद प्रभु का सर्वोत्तम वरदान।

पंडितजी की भावना संसार में व्यापक रूप से फैली है और कभी मर नहीं सकती। ●

हमारे पूज्य नेता

आज मेरे पास बोलने के लिए शब्द नहीं हैं। दुनिया ने मानवता का एक महान् पुजारी खोया है और देश ने जनता का अद्वितीय नेता। पर मैं ऐसा समझता हूं कि यह शोक करने का प्रसंग नहीं है। इस समय हम सबको हिम्मत रखनी चाहिए और परस्पर एकता, प्रेम और स्नेहभाव बढ़ाना चाहिए।

गांधीजी देश को छोड़ गये, तब देश की कठिन परिस्थिति थी, ऐसी हालत में वह गये। आज विकट परिस्थिति है और ऐसे मौके पर पंडितजी गये। पर उन्हें भारत के विषय में इतना प्रेम था कि वह देह में रहते हुए भारत की जितनी चिंता करते थे उससे आज ज्यादा चिंता करते होंगे।

आज यह खबर सुनने को मिलेगी, ऐसी कोई कल्पना नहीं थी। अनपेक्षित खबर आई। उसी क्षण विचार आया कि हमारा कर्त्तव्य क्या है? हिम्मत रखना, स्नेहभाव बढ़ाना––यही कर्त्तव्य है। मुझे ऐसा विश्वास है कि इसमें ईश्वरीय योजना है। हमारे लोग इधर-उधर गांव-गांव ग्रामदान के काम के लिए गये थे, यह खबर मिलने पर अब यहां आये हैं। हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम पहले से दुगुनी उत्कटता से कार्य में जुट जायं। गांव-गांव की जनता, देश के समस्त नागरिक, प्रेम में बंध जायं, दरिद्रता मिटे। भारत का सारे विश्व में जो कार्य है, अब वह पंडितजी के बाद हम सबको ज़ोरों से करना है।

गांधीजी गये, उस दिन आत्मा के अमरत्व का स्पष्ट आभास हुआ। बिल्कुल अनपेक्षित वह गये, यानी गये ही नहीं। वैसे पंडितजी भी अनपेक्षित गये, यानी गये ही नहीं। अब हमारा काम अच्छा चले, ऐसा उनका आशीर्वाद रहेगा और वह हमसे मिलते रहेंगे, बल देते रहेंगे, ऐसी मेरे हृदय में प्रतीति हो रही है।

अब हम स्थितप्रज्ञ का स्मरण करेंगे। स्थितप्रज्ञ के श्लोक बोलेंगे और पांच मिनट मौन रखेंगे। मौन-प्रार्थना करेंगे कि जो निर्वैरता तथा निर्भयता पंडितजी में थी वह हम सबमें व्याप्त हो। परमात्मा उनकी आत्मा को शांति देगा ही। राजनीति में बरतनेवाला ऐसा निर्वैर मनुष्य मेरे देखने में नहीं आया। उनकी पुण्य-विभूति की मैं वन्दना करता हूं।

... ...

कल हम एक छोटे देहात में थे। आज भी ऐसे ही देहात में हैं। अचानक खबर मिली, जिसकी कोई अपेक्षा नहीं थी, कि हमारे पूज्य राष्ट्रनेता पंडित जवाहरलाल नेहरू भगवान के दरबार में पहुंच गये। तो इस सिलसिले में कल कुछ चर्चा हुई, लेकिन मुझे शब्द नहीं सूझते थे। ज्यादा कुछ कह नहीं सका। आज भी बहुत शब्द नहीं सूझेंगे। उनके और मेरे बीच में जो गाढ़ा अनुराग था, वह शब्दों से परे था।

कल मैंने कहा था कि एक शख्स राजनीति में काम करता हो और पूर्ण निर्वैर-वृत्ति रखता हो, ऐसा कहीं देखने को मिलता नहीं। पंडितजी उस कोटि के पुरुष थे। उनके मन में ज़रा भी वैरभाव नहीं था। अंग्रेजी सल्तनत के सामने उनको लड़ना पड़ा। बल्कि भारत पूर्ण आज़ाद हो, उसकी सत्ता पर किसी प्रकार का अंकुश न हो, जनता पूर्ण मुक्त हो, इसलिए उन्होंने देश के सामने पूर्ण स्वराज्य का आदर्श रखा और उसका आग्रह रखा। इसके लिए उन्हें बरसों जेल में रहना पड़ा, लेकिन फिर भी उनके मन में अंग्रेज़ी के लिए, अंग्रेज़ी राष्ट्र के लिए वैर की भावना नहीं थी, यह चर्चिल ने भी महसूस किया। अपने उसूल के लिए लड़ते हुए भी किस प्रकार निर्वैर रह सकते हैं, इसका आदर्श उन्होंने दुनिया के सामने रखा। यही तो गीता का संदेश है और मैं मानता हूं कि वह नहीं होते तो आज जिस तरह इंगलैंड के साथ मीठा संबंध भारत का रहा, शायद नहीं रह पाता।

सबके साथ मैत्री हो, सब दुनिया में शांति बने, भारत तो आज़ाद हुआ, सब देश आज़ाद रहें, देशों के बीच सहयोग हो, यही उनका जीवन-कार्य था। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सोलह साल इस आलसी देश के लिए निरंतर उन्होंने परिश्रम किया। और अब वह पहुंचे हैं परमात्मा के पास। तो मैं महसूस कर रहा हूं कि वह हमारे साथ हैं। आज मैं यहां बोल रहा हूं तो उनका वियोग मैं महसूस नहीं कर रहा हूं, बल्कि उनकी उपस्थिति महसूस कर रहा हूं। उन्होंने विश्वमैत्री का संदेश हमको दिया है। उसपर हमको काम करना है।

जब उनके जीवन-कार्य का चित्र आंख के सामने खड़ा होता है, तब सम्राट् अशोक का स्मरण होता है। अशोक-चिह्न उन्होंने भारत के सामने रखा। सहयोगी सिंह खड़े कर दिये अशोक के अहिंसा-चिह्न के तौर पर। सिंह पराक्रमी होते हैं, लेकिन सहयोगी नहीं। चींटी सहयोगी है, लेकिन पराक्रमी नहीं, दुर्बल है। पराक्रमी और बलवान हो और सहयोग की भावना से बरतें, यह अहिंसा का चित्र उन्होंने हमारे सामने रखा।

वह चाहते थे कि भारत पराक्रमी, बहादुर बने और निर्वैर बने। वैसे दुनिया में सब राष्ट्र बलवान हों और सबका सहयोग हो, यह कोशिश उन्होंने की। सब दुनिया को मैत्री के साथ जोड़ने की, सबके साथ मीठा संबंध रखने की।

दुःख की बात है कि उनकी कोशिश के बावजूद चीन और भारत के संबंध अभी सुधरने को हैं, हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के संबंध अभी सुधरने को हैं। यह काम हमको पूरा करना है। और मुझे विश्वास है कि भारत की जनता, उन्होंने जो विश्वमैत्री का संदेश, पराक्रमयुक्त सहयोग का संदेश हमको दिया है, उसपर कायम रहेगी। मैं यह भी आशा करता हूं कि हिन्दुस्तान के संबंध पाकिस्तान के साथ पूर्णमैत्री के होंगे और चीन के साथ संबंध भी सुधरेंगे। मैं शांति-निकेतन गया था। वहां गुरुदेव ने एक 'चीनी-भवन' खड़ा किया है। उस भवन के हॉल में एक बाजू में पंडित नेहरू का और दूसरी बाजू में चाउ एन लाई का फोटो है। मैं आशा करता हूं कि महात्मा गांधी की आत्मा, गुरुदेव की आत्मा जो चीज़ चाहती थी, विश्व-शांति थी और जिसके लिए पंडित नेहरू ने अपना देह खपाया था, वैसा चित्र हमें जीते-जी देखने को मिलेगा। ख़ैर, जो बनेगा, ईश्वर के योजनानुसार बनेगा। उसका समय वही जानता है।

हमको ख्याल नहीं था और पंडितजी को भी नहीं था कि वह इतने शीघ्र जानेवाले हैं। उनके मन में काम करने की उत्कट अभिलाषा थी और काम पूरा करके ही वह जाना चाहते थे। लेकिन भगवान ने उनको बुला लिया है। उसका मतलब मैंने यह समझा है कि वह अशरीर होकर सबको प्रेरणा दें और हमसे काम करायें। अव्यक्त में रहकर, हमारा हाथ पकड़कर हमसे काम करवायें, ऐसी ईश्वर की इच्छा थी। भगवान वैसा बल हमको दे, यही भगवान के चरणों में मेरी प्रार्थना है।

पं० नेहरू हमारे देश के पूज्य नेता थे। यह बात सबको मालूम है कि उनका और मेरा अत्यंत निकटवर्ती संबंध था। इतना गाढ़ अनुराग दो व्यक्तियों में कदाचित् ही होता है, जितना कि हम दोनों में था। उनके जाने के कारण जिनको आघात लगा वह उनके अपार स्नेह के कारण था। उनके जाने के बाद सरकार ने बारह दिन तक शोक-दिवस पालन करने की ज़ाहिरात की। हमारे यहां ऐसी पद्धति है। लोग ऐसा सोचते हैं कि इन शोक के दिनों में मैं अपनी पदयात्रा स्थगित क्यों नहीं करता हूं? यह देखकर मुझे बहुत आनंद हुआ कि यहां लोगों का अपने नेता के विषय में आदर है। जिस गांव में अपने पूज्य नेता के विषय में आदर रखनेवाले जो लोग हैं, वे सहृदय हैं। ऐसे हृदयवान लोग संसार में क्रांति किये बिना नहीं रहेंगे।

मैं शास्त्रानुसार चलनेवाला मनुष्य हूं। शास्त्र जो आदेश देता है उसे लक्ष्य में रखकर चलता हूं। बचपन से ही मुझे शास्त्र-ग्रंथों का अभ्यास करने का शोक है और शास्त्रकारों ने जो उत्तम विचार कहे, तदनुसार चलने का मेरा प्रबल प्रयत्न चालू है। शास्त्रकारों ने कहा है कि यदि कोई आप्त, आदरणीय, प्रेमी मनुष्य चला गया तो उसके शोक के निमित्त भोग-विलास, मौज-मज़ा आदि बंद रखा जाय। कोई सिनेमा देखता हो तो शोक के दिनों में सिनेमा नहीं देखे, कोई सिगरेट पीता हो तो शोक के दिनों में बीड़ी-सिगरेट न पीये। कोई मदिरापान करनेवाला हो तो वह मदिरा छोड़े। कुछ लोग ताश, चौपड़ आदि खेलते हों तो वे कम-से-कम शोक के दिनों में उन्हें नहीं खेलें, ऐसी शास्त्रकारों की आज्ञा है।

इस प्रकार शोक के दिनों में भोग-विलास, मौज-मज़ा न करने के लिए कहा गया है, परंतु ऐसा नहीं कहा गया है कि शोक के दिनों में दान, धर्मकार्य, प्रेम-कार्य, करुणा-कार्य नहीं किया जाय, कोई बीमार होगया हो तो बारह दिन तक उसकी सेवा न की जाय। इसके विपरीत बीमार की सेवा अवश्य करनी चाहिए। दुखियों की अवश्य मदद करनी चाहिए। शास्त्रकार तो कहते हैं कि कोई प्रेमी व्यक्ति चला गया, कोई संकट आया, तब विशेष दानकार्य किया जाय। सूर्यग्रहण हुआ अर्थात् संकट आया, उस समय विशेष दान दिया जाय। इसलिए सामान्य बुद्धि से विचार करने पर लक्ष्य में आयगा कि शोक के दिनों में भूदान-ग्रामदान का कार्य बंद करने की शास्त्राज्ञा नहीं हो सकती। हमारे कार्यकर्ताओं ने भी मुझसे पूछा कि क्या शोक के निमित्त ग्रामदान का कार्य कुछ दूर ढकेला जाय? मैंने कहा कि खाना-पीना, भोग वगैरा का काम तो रोज़ चलता है, फिर दान ने ही क्या पाप किया? परमेश्वर के दरबार में गये उस महापुरुष को यदि ऐसा लगेगा कि मेरे बाद मेरे लड़कों ने दानकार्य बंद कर दिया है तो उसे आनंद न होकर दुःख होगा। इसलिए भूदान-ग्रामदान के कार्य को आगे ढकेलना योग्य नहीं होगा।

किसीने कहा कि पंडितजी की मृत्यु की ख़बर सुनते ही मैं शीघ्र दिल्ली गया होता तो अच्छा होता। गांधीजी गये, तब भी मैं दिल्ली नहीं गया। मैं सतत गांधीजी के पास रहा। उनके पास से ही मुझे धर्म-ज्ञान होता था। मैं उनके आज्ञानुसार बत्तीस वर्ष-पर्यन्त काम करता रहा। परंतु वह गये तब मुझे ऐसी प्रेरणा नहीं हुई कि मैं वर्धा में जो काम कर रहा हूं, उसे छोड़कर दिल्ली जाऊं। मेरा एक कर्त्तव्य था। कर्त्तव्य-क्षेत्र में रहना ही मेरा धर्म था। दिल्ली जाना मेरा धर्म नहीं था। धर्म सूक्ष्म था—"धर्मस्य गतिः सूक्ष्मा"। केवल ऊपर-ऊपर से देखने पर धर्म समझ में नहीं आता। जो धर्म जानता है वह मनुष्य पर्वत के समान निष्कपट रहता है। उसपर किसी प्रकार का आघात नहीं होता। मनुष्य इस जन्म में आकर मरने-वाला ही है। बाबा यदि अपनी यात्रा स्थगित कर दिल्ली गया होता और उतने में ही मर गया होता तो ऐसा होता कि वह मरते समय अपना कर्त्तव्य छोड़कर गया। वह उसके लिए शोभादायक नहीं होता। मृत्यु के पूर्व पांच दिन पहले ही पत्रकारों के समक्ष बोलते समय पंडितजी से किसीने प्रश्न पूछा कि "क्या आपने किसीको अपना वारिस चुना है या नहीं?" इसपर वह बोले, "मुझे अभी बहुत समय तक जीना है। मेरी जीवनावधि अभी समाप्त नहीं हुई है।" यह सुनकर लोगों को आनन्द हुआ और उन्होंने तालियां बजाई। पांच दिन पहले ही उन्होंने यह कहा था कि पांच दिन के बाद यह घटना घटी। ऐसी परिस्थिति में परमेश्वर के हाथ में ही सारी सत्ता है। आपके-हमारे हाथ में नहीं। इसलिए जिसे हम धर्मकार्य समझते हैं, उसे करते रहना चाहिए।

नेता के जाने के बाद हमारा क्या कर्त्तव्य है, इस बारे में यहांपर लोगों ने विचार किया। यह अच्छी बात है। परंतु वे अपने कर्त्तव्य को नहीं पहचानते। गीता में कहा है कि सात्त्विक, राजस और तामस ऐसी तीन प्रकार की बुद्धि काम करती है। तामस बुद्धि अधर्म को धर्म मानती है। लोगों की मान्यता है कि किसीके जाने पर रोते रहना चाहिए। शास्त्रकार तो कहते हैं कि रोना अधर्म है। हम रोते रहते हैं तो मरनेवाले की गति में बाधा पहुंचती है। परंतु संसार में रोना चलता है। भाई गया कि लोग रोते रहते हैं। कुछ स्थानों पर तो ऐसी प्रथा है कि किसीके जाने पर रोने के लिए मजूरी देकर मनुष्य को बुलाया जाता है, कीमत देकर रोने के लिए मज़दूर रखें—न आंखों में आंसू और न हृदय में प्रेम, इस तरह मज़दूरी पर बुलाये गए लोग छाती पीटकर रोते हैं। लोग ऐसा समझते हैं कि किसीके जानेपर न रोना बहुत अयोग्य है। पर शास्त्रकार कहते हैं कि रोना ग़लत है। उससे मरनेवाले की गति को बाधा पहुंचती है। इसलिए रोना योग्य नहीं। शास्त्रकार कहते हैं कि प्रिय मनुष्य गया तो उठो, जागो! हमारा मनुष्य-देह क्षणभंगुर है, ऐसा समझकर अपना कर्त्तव्य पूरा करो।

... ...

बापू के जाने के बाद लगभग एक महीना मैंने चिंतन में बिताया था। काम तो ऐसे भी कुछ चलता ही था, वह चलता ही रहा, लेकिन आगे किस दिशा में जाना होगा, क्या करना होगा, इस विषय पर चिंतन चलता था। अब यह दूसरा प्रसंग है अपने देश के सामने, जिसमें हम सबको शायद कुछ नये सिरे से चिंतन की ज़रूरत है। स्वराज्य-प्राप्ति के पहले और स्वराज्य-प्राप्ति के बाद (परिस्थिति में) इतना फ़रक पड़ता है कि उसके लिए ज्यादा चिंतन की ज़रूरत है। तिसपर उस मौके पर गांधीजी गये, इसलिए

विशेष कठिनता थी। वह कठिनता अब नहीं है, क्योंकि कुछ प्रवाह अब बन चुका है। इन सोलह-सत्रह सालों में हमारा सबका और राज्यों का एक प्रवाह बना है। इसलिए बिल्कुल अंधकार में ही हमको चिंतन करना है, ऐसा नहीं जैसा उस वक्त था, लेकिन फिर भी मुझे अपने लिए चिंतन की आवश्यकता महसूस हुई।

पंडितजी के जाने के बाद जिस दिन ख़बर मिली, उस दिन से उनके बारे में मैं पांच-सात दफ़ा सार्वजनिक व्याख्यान और चर्चा कर चुका हूं। एक व्याख्यान में कहा था कि अब हमको समझना होगा कि इसके आगे नेताओं के दिन नहीं हैं, गण-सेवकत्व के हैं। कांचीवरम् के सर्वोदय-सम्मेलन में देश के सामने मैंने गण-सेवकत्व शब्द रखा था। तो वे दिन अब आगये हैं। यह नहीं कि गांधीजी या नेहरूजी जैसे महान् इसके आगे होंगे नहीं, बल्कि मैं तो मानता हूं कि पूर्वापूर्व से आजतक जो महान् हुए, उनसे भी अधिक महान् भविष्य में होंगे, होने चाहिए, अगर मानव-विकास होना है और वह होना है, यह तो निश्चित है। लेकिन वे जो महान् होंगे, वे इतने महान् होंगे कि नेतृत्व की ज़िम्मेदारी कबूल नहीं करेंगे। छोटे लोग होते हैं वे, जो नेतृत्व की ज़िम्मेदारी किसी पर डालते हैं और लाचारी से उस ज़िम्मेदारी को वहन करते हैं वे मनुष्य, जो उन छोटों में बड़े होते हैं। लेकिन बड़े होते हुए भी वे छोटे ही होते हैं। आगे जो ज़माना आ रहा है वह नेतृत्व स्वीकार करने का छोटा काम मंजूर करनेवाला ज़माना नहीं होगा, अर्थात् आनेवाले ज़माने में कोई नेता बनना स्वीकार न करेगा, बल्कि वह ऐसा ज़माना होगा कि सबके साथ हम भी हैं और हमारे साथ सब हैं, सब भिन्न-भिन्न राय पेश करते हैं और हम भी राय पेश करते हैं, सब मिलकर फ़ैसला करते हैं और सब मिलकर अमल में लाते हैं।

यह नाटक तो हमने शुरू कर ही दिया है। जहां हरेक को एक वोट दे दिया है, वहां भविष्य के गर्भ में जो वास्तविकता है, उसकी कल्पना पर से किया है। अभीतक यह स्थिति नहीं है दुनिया में कि हरेक मनुष्य समान वोट की ज़िम्मेदारी वहन कर सके। लेकिन आगे जो होनेवाला है उसका पूर्व-प्रयोग कर रहे हैं। तो महान् पुरुष तो आगे होंगे, परंतु नेतृत्व नहीं होगा। यह बात मैंने पहले भी दो-तीन दफ़ा कही है। लेकिन अभी पंडितजी के जाने के बाद मेरा ख्याल है कि यह चीज़ अब प्रत्यक्ष में आ गई है।

... ...

बचपन में मैं कुछ कविताएं लिखता था। उनमें से एक कविता का स्मरण इस वक्त हुआ। वह कविता मराठी में थी। अर्थ यह था कि "हे प्रभु, मुझे पूर्णिमा का जुलूस नहीं चाहिए, बल्कि अमावस्या की रात्रि की स्वतंत्रता चाहिए। अमावस्या की रात्रि में एक-से-एक बढ़कर तारिकाएं होती हैं। ज्योतिर्वेत्ता जानते हैं कि एक तारिका कितनी महान् होती है। जो तारिकाएं छोटी दीखती हैं वे बड़ी दीखनेवाली से भी बड़ी होती हैं। सब आकाश को अलंकृत करती हैं और हरेक की अपनी स्वतंत्रता होती है। पर चंद्रमा के राज्य में यह दर्शन नहीं होता।" ऐसा एक कविता में मैंने लिखा था। यह एक बहुत बड़ा फ़रक भारत में प्रत्यक्ष में आया है कि गण-सेवकत्व का आदर्श हमको चरितार्थ करना होगा। उसकी कुछ ज़िम्मेदारियां हैं। उस दृष्टि से सारे देश को चेतन करना चाहिए।

एक विचार मन में ऐसा आता है कि जब पंडितजी थे तब तो अपने जो मतभेद थे, जो विचार-भेद थे, वे थे। मेरे भी थे। लोगों को मालूम थे। लेकिन उनपर मैं ज्यादा ज़ोर नहीं देता था और उसका

ज़िक्र टालता था और विचारों में जितना ऐक्य था, मतैक्य था, उसपर बहुत ज़ोर देता था। मेरे दूसरे साथी कहते थे कि तुम्हारे हृदय में उनके लिए कुछ 'साफ्ट कार्नर' है। मैं यह बात क़बूल करता था। लेकिन उसमें एक दृष्टि थी। हम एक-दूसरे को तोड़ते चले जायं तो नवोदित राष्ट्र के लिए वह अच्छा नहीं। जितना ऐक्य हो उसीपर ज़ोर देना अच्छा है। ऐसा एक विचार उसके पीछे था। अब उनके जाने के बाद मेरा वह विचार और पक्का होगया है। वह बहुत बड़े थे। हम आपस में लड़ते-झगड़ते थे, तो भी वह संभाल सकते थे। अब हम अगर छोटी-छोटी बातों पर विरोध करते रहेंगे तो मामला संभलेगा नहीं। मैं यह नहीं सूचित करना चाहता कि जो सिद्धांत हैं, उनको नज़र-अंदाज़ करें, या सिद्धांतहानि सहन करें, यह मैं नहीं सुझाता।

तीसरी बात, आज दुनिया में ऐसी हालत नहीं है कि किसी देश पर कोई दूसरा देश ज्यादा दिन तक कब्ज़ा रख सकेगा और कहीं भी इस प्रकार का आक्रमण हो तो उसकी परिणति तुरंत जागतिक युद्ध तक पहुंच सकती है और सारे विश्व को उससे हानि हो सकती है। अगर दुनिया की ऐसी स्थिति नहीं होती, तो इतने बड़े महान् नेता के अस्त का परिणाम यह होता कि इस देश पर चारों ओर से हमला होता। हम जानते हैं कि इतिहास में जब कोई महान् व्यक्ति चला गया उसके बाद तुरंत इस प्रकार से क्रांतियां हुईं। लेकिन इस वक्त दुनिया में विशेष परिस्थिति है, इसलिए ऐसी घटना का लाभ, ग़लत लाभ, लेने की प्रेरणा दूसरे राष्ट्रों को नहीं हुई, बल्कि उल्टा हुआ। सब राज्यों की कमोबेश सहानुभूति प्रकट हुई और प्रकट करने की प्रेरणा उनको हुई। हिन्दुस्तान नेतृत्वविहीन है तो चलो उसपर टूट पड़ो, इस विचार के बजाय उसके साथ सहानुभूति प्रकट करो, ऐसी प्रेरणा सबपर हुई। चाउ एन लाई ने भी राष्ट्रपति के नाम पर जो संदेश भेजा, वह मामूली संदेश नहीं था। एक शोक-वेदना प्रकट करना इतना ही उसका मतलब नहीं था। लेकिन उन्होंने उसमें कहा है कि हमारा जो झगड़ा है, वह क्षणिक है। प्राचीन काल से हमारी मैत्री थी और आगे भी रहेगी। हम पंचशील संभालेंगे।

... ...

अब दुनिया की बदली हुई परिस्थिति का तकाज़ा ध्यान में लेकर यह जो संदेश सब देशों से आये हैं, पाकिस्तान और चीन से भी जो सहानुभूति प्रकट हुई है, उन सबकी तरफ़ पुराने ढंग से नहीं सोचना चाहिए, याने अविश्वास की भूमिका से नहीं सोचना चाहिए। विश्वास रखने में खतरा होता है जब मूर्ख-विश्वास होता है। लेकिन बुद्धिमान, सोचनेवाला, जान-बूझकर विश्वास रखता है तब वह विश्वास हृदय-परिवर्तन की प्रेरणा दे सकता है। अगर हम पुराने अविश्वास के ढंग से सोचते रहेंगे तो जो विश्व-शक्तियां कुछ अनुकूल हुई हैं, उनकी अनुकूलता क्षणिक साबित होगी। एक महान् पुरुष के जाने के बाद जैसे क्षणिक वैराग्य आता है वैसा ही क्षणिक सहानुभूति का रूप साबित होगा, अगर हम अविश्वास से पेश आयंगे। लेकिन अगर हम दुर्बल की भूमिका में नहीं, बलवान की भूमिका में विश्वास प्रकट करेंगे तो संभव है कि जो मसले पंडित नेहरू के रहते हल नहीं हो सके थे, वे छोटे मनुष्यों के द्वारा हल हो सकते हैं, ऐसा मुझे आभास हुआ।

... ...

अभी शास्त्रीजी आये थे। उनसे कुछ बातें हुई। 'डेमोक्रेटिक सोशलिज्म' यह एक शब्द देकर पंडितजी गये, उसके बारे में मैं उनसे कुछ चर्चा करता था। उनका (पंडितजी का) सारा चिंतन पहले से उसी दिशा में था, लेकिन देश के द्वारा एक स्पष्ट शब्द के तौर पर वह बुलवा नहीं सके थे। आवड़ी में जो प्रस्ताव हुआ था वह भी ज़रा गोल भाषा में था। उसका विवरण जो हुआ वह विवरण उसके अर्थ को और क्षीण करनेवाला था। लेकिन भुवनेश्वर में यह शब्द उन्होंने दे दिया। मुझे कई कांग्रेसवाले ऐसा कहनेवाले मिले हैं कि उसमें कोई तथ्य नहीं है। एक ने तो यहांतक कहा कि यह तो 'मैरेज ऑव कनवीनियन्स' है। लेकिन मेरा ख्याल है कि वह शब्द देने के बाद पंडित नेहरू की अंतरात्मा ने समझा कि अब देह में रहने का प्रयोजन नहीं है। जैसे गांधीजी ने स्वराज्य-प्राप्ति के क़रीब-क़रीब जब हम थे तो 'सर्वोदय' शब्द हमको दे दिया और भगवान ने उनको बुला लिया। नया शब्द मिला है तो नये लोगों का काम है, उस नये शब्द का वाहन वे बनें। तो मुझे ऐसा लगा कि ईश्वरी संकेत कुछ है। उस मनुष्य ने एक शब्द दे दिया और उसका काम समाप्त होगया। अब दूसरों का काम होगा।

यह शब्द इतना ज़ोरदार है कि राजाजी को भी वह कबूल करना पड़ा। राजाजी ने एक लेख में लिखा है कि चलो भाई, लोगों के 'कान्स्टेन्ट यूज़'—सतत व्यवहार—के कारण हम सोशलिज्म शब्द मान भी लें। "लेट अस प्ले विद द वाल आव सोशलिज्म।" लेकिन सोशलिज्म हो तो वह सोशलिज्म किस टाइप का हो? क्या वह 'स्टेट केपिटलिज्म' का स्वरूप माना जाय? इत्यादि चर्चा उन्होंने की है। लेकिन उसमें यह शब्द मान्य करके वह चले हैं। यह शब्द (डेमोक्रेटिक सोलशिज्म) अब स्थायी होने के लिए आया है।

मुझे लगता है कि डेमोक्रेटिक सोशलिज्म शब्द लेकर हमने नान-एलाइनमेन्ट को पाज़िटिव कन्टेन्ट दिया है। दुनिया में कुछ देश हैं, जो सोशलिस्ट हैं। वे डेमोक्रेसी को मानते नहीं। कुछ देश हैं, जहां डेमोक्रेसी है, लेकिन वे सोशलिज्म को मानते नहीं। अब यह डेमोक्रेसी और सोशलिज्म दोनों को एक करके जो सम्मिलित शब्द बना है वह एक-दूसरे को काटनेवाला नहीं, कुछ अंश में एक दूसरे को मर्यादित करनेवाला है। तो ऐसा जो शब्द हमने बनाया, उसमें नान-एलाइनमेन्ट को रचनात्मक अर्थ, विधायक अर्थ दे दिया। वह केवल निषेधात्मक शब्द नहीं रहा, बल्कि हमने उसको अर्थघन बना दिया। जहां हम 'डेमोक्रेटिक सोशलिज्म' कहते हैं वहां उस डेमोक्रेटिक शब्द में ही व्यक्ति की स्वतंत्रता को मान्यता मिलती है, और उसमें अहिंसा आती ही है, यद्यपि राजनीति-वेत्ताओं ने मान्य किया है कि डेमोक्रेसी के साथ अहिंसा अनिवार्यरूपेण है। हम उसके साथ 'बाइ पीसफुल मीन्स' जोड़ देते हैं। वह पुनरुक्ति-सी ही है। किन्तु डेमोक्रेसी में अगर बहुजन ख़िलाफ़ खड़े हो जाते हैं और हिंसा से भी क्रांति कर लेते हैं तो डेमोक्रेसी उसको मान्यता देती है, बशर्ते कि वह सफल हो जाय। इस प्रकार आज की डेमोक्रेसी सशस्त्र हिंसा को भी मान्य करती है, इसलिए 'बाइ पीसफुल मीन्स' जोड़ना पड़ा। फिर इतने बड़े व्यापक देश का ख्याल रखते हुए सोशलिज्म डिसेन्ट्रलाइज्ड (विकेन्द्रित) ही होगा। इस तरह 'डिसेन्ट्रलाइज्ड डेमोक्रेटिक सोशलिज्म बाइ पीसफुल मीन्स' यह उसका विवरण हुआ। वह थोड़े में कहें तो सर्वोदय ही होता है।

लेकिन शब्द का मेरा आग्रह नहीं है। हमको शब्दों का आग्रह रखना नहीं चाहिए, क्योंकि उसके साथ ग्रह आ जाते हैं। शब्द अपने में व्यापक होते हैं, लेकिन वे हमारे साथ जुड़े हुए होते हैं, इसलिए

हमारी बुद्धि की मर्यादाओं की छाया उनपर आ जाती है और वे सीमित होते हैं, इसलिए शब्द का आग्रह न रखें। लेकिन समझना चाहिए कि यह प्रतिज्ञा सारे राष्ट्र की है, न कि किसी एक पार्टी की। एक राष्ट्र का ही यह आघोष हुआ है, ऐसा मैं मानता हूं। कुल मिलाकर इसका देश पर अच्छा असर पड़ा है। इतने बड़े देश में भिन्न-भिन्न सोचनेवाले होते ही हैं। लेकिन सबको, राजाजी को भी, सोशलिज्म शब्द मान्य है और उन्हें उसपर चिंतन करने की आवश्यकता महसूस हुई है, तो अब समझना चाहिए कि यह शब्द 'करेन्ट क्वाइन' हुआ है। उस हालत में हम सबपर बड़ी ज़िम्मेदारी आती है। वह सर्वोदय का ही पर्याय हो गया है। इसलिए मुझे लगा कि हमको बहुत व्यापक बनना चाहिए। मैं पहले से ही यह कहता आया हूं कि भाई, सर्वोदय शब्द पर ज्यादा आग्रह मत रखो। जैसे समुद्र अनेक नदियों को और नालों को समा लेता है वैसे जिसमें अधिक-से-अधिक विचार आ सकते हैं, ऐसा सर्वोदय शब्द होना चाहिए। यह इन दिनों मेरा चिंतन चला है।

... ...

इस तेरह साल की यात्रा के बाद शब्द-प्रयोग मैंने किया कि एक जंगली जानवर से सरकस को कहां-तक घुमाया करोगे। मेरी यात्रा ऐसा सरकस है, जिसमें एक ही जंगली जानवर है। उसको देखने को लोग आते हैं। तो अब ऐसी शक्ति होनी चाहिए कि हमने जो कार्यक्रम माना है वह उस यात्रा के बिना ही चल रहा है, ऐसी कोई खोज होनी चाहिए, नहीं तो जहां कमोवेश काम होगा, वह लाभदायी होगा, इसमें शक नहीं। लेकिन हम जो अपेक्षा करते हैं वह उससे पूरी नहीं होगी। बाबा की यात्रा की आखिर एक सीमा है ही। बाबा ने आग्रह रखा है अखंड यात्रा का। लेकिन फिर भी शरीर गिरने तक ही वह चल सकती है। उस माने में वह खंडित ही है। उसको नाम भले अखंड मिला हो। इस विषय पर मेरा चिंतन चल रहा है। अब यात्रा चले, न चले, बाबा की यात्रा से निरपेक्ष ग्रामदानादि कार्यक्रम कैसे चलें, यह सोचना चाहिए।

अभी मैं जब बीमार पड़ा था, चक्कर आते थे। ज़रा परिश्रम ज्यादा हुआ था। सहानुभूति के कई अनपेक्षित पत्र मेरे पास आये। उसका एक कारण यह भी था कि पंडितजी के जाने के कारण लोगों को भय हुआ कि शायद यह भी जा रहा है। उतनी परिस्थिति थी नहीं। लेकिन एक दिन यह होनेवाला है। तुकाराम का एक वाक्य मुझे याद आया—"आपुले मरण पाहिले म्यां डोला।" मैंने अपनी मृत्यु को अपनी आंखों से देखा और यह आनंद-महोत्सव हुआ। यह सब लोगों के लिए चिंतन का विषय है। जब मैं कहता हूं कि गण-सेवकत्व के दिन आये हैं, और यह घटना हुई है, और तेरह साल की यात्रा हो चुकी है, तो विचार आया कि ऐसा कुछ आयोजन हो कि हमारा काम व्यापक हो सके।

अभी मुझसे किसीने पूछा था कि पी० एस० पी० और सोशलिस्ट पार्टी एक हो रही हैं तो उसपर आपकी क्या राय है? मैंने कहा कि एक होती है तो अच्छा ही है, पार्टियां जितनी कम हों उतना ही अच्छा है। फिर पूछा कि कुछ सोशलिस्ट कांग्रेस में दाखिल हो रहे हैं, उसके बारे में आप क्या कहते हैं? मैंने कहा कि यह भी अच्छा है। ऐसे मुझे सब अच्छा दीख रहा है। काल की गति है, जिसके कारण सब एक हो रहे हैं। अभी जिस ढंग से कांग्रेस के नये नेता का चुनाव हुआ उससे भी मुझे बहुत संतोष

हुआ। अब इतने बड़े देश में इसपर कुछ चर्चाएं भी दो-चार दिन चलीं अखबारों में, और उसको कुछ विकृत रूप भी कहीं-कहीं आया, लेकिन कुल मिलाकर पृथ्वी गोल है—भले कई गड्ढे हैं, कई टीले हैं, लेकिन गोल है। एक राय से मनुष्य चुना गया, यह हमारे देश के लिए बहुत अच्छी बात है।

. . . .

इन दिनों ऐसी कई अच्छी-अच्छी चीजें हुई हैं। मेरा स्वभाव कुछ भोला है, कुछ मिस्टीसिज्म का असर है, कुछ अनुभव भी है या अनुभव का आभास है। उससे मुझे भास होता है कि पंडित नेहरू आज काम कर रहे हैं, विदेह अवस्था में। शास्त्रों का चिंतन है कि जिसके जो देवता होते हैं, उसमें वह लीन होता है। ब्रह्म-उपासना करनेवाला ब्रह्म में लीन होगा। कोई विष्णु की उपासना करता है तो विष्णु में लीन होगा। पंडित नेहरू लोगों के उपासक थे, जितना बापू भी नहीं थे। बापू का जीवन तो एक नाटक ही था। जैसे कृष्ण आदि के अवतार में नाटक दीखता है, (ऐसे लोग बाहर से एक काम करते हैं, लेकिन अंदर एक दूसरी धारा होती है) बापू की धारा ईश्वर के साथ जुड़ी हुई थी, वैसे वह देश की सेवा के लिए पेश थे। वह गुजराती में अक्सर कहा करते थे—"आपणे तो सेवा करि छूटिए"। यह जो 'छूटिए' शब्द है वह बापू हैं। पंडित नेहरू सच्चे अर्थ में लोकोपासक थे। मरने के बाद वह कहां जायंगे? लोगों में जायंगे। वह अब मुक्त होकर काम कर रहे हैं, देह-मुक्त होकर, विदेह स्थिति में। इसलिए झट-पट मसले हल हो रहे हैं।

मेरा एक और निरीक्षण है। कहांतक सही है, मैं नहीं कह सकता। कुछ महापुरुषों का विकास सतत् चलता रहता है। कुछ ऐसे होते हैं, जिनका विकास अंतिम क्षणों में बहुत ज्यादा होता है। प्रारंभिक जीवन में जिस हिसाब से हुआ हो, उस हिसाब से अंतिम क्षणों में बहुत ज्यादा होता है। इन दो-चार महीनों में पंडितजी का चिंतन उनकी हमेशा की ऊंचाई से अधिक ऊंचा होने लगा था, ऐसा मुझे भास हुआ। मैंने कहा कि मैं कह नहीं सकता कि वह कहांतक सही है, लेकिन मुझे भास हुआ। आखिर-आखिर में तो उनका मानसिक एटीट्यूड काफी समत्व में पहुंचा हुआ था, ऐसा मुझे लगा। वैसे तो वह समत्व की कोशिश हमेशा करते थे, उनका गुस्सा क्षणिक था, उसमें द्वेष नहीं था, लेकिन उनके चिंतन में समत्व की कोशिश थी। अंतिम दिनों में उनके चिंतन में, उनके चित्त में, समत्व आ रहा था। चिंतन की ऊंचाई अधिक ऊंची हो गई थी। यह विरासत हमें मिली है। इसलिए भी मुझे लगा कि अगर हम अपना चित्त खुश रखें, अनाग्रही रखें तो हमारे लिए उत्तरोत्तर अनुकूलता अधिक होनेवाली है। ●

नेहरू ने अपना शरीर छोड़ दिया है, लेकिन उनकी आत्मा भारत की आत्मा के साथ एक है, जो शाश्वत है।

—श्रीमां

उनका एकाकी संघर्ष

नेहरूजी तीस वर्ष से मेरे मित्र थे, उनके लिए मेरे हृदय में गहरा अनुराग था। मैं उन्हें मुख्यतः ऐसा एकाकी व्यक्ति मानता हूं, जो भारी नैतिक और राजनैतिक गुत्थियों के बीच प्रयत्नरत थे और महान् सफलताएं प्राप्त करने के साथ ही उत्तरोत्तर समस्याग्रस्त होते गये। मैंने उन्हें पहले-पहल इस शताब्दी के चौथे दशक में जाना, जब वह जेल से छूट चुके थे। वह यूरोप में स्पेन के गृहयुद्ध के विषय में भाषण किया करते थे। इसी तरह साम्राज्यवाद के विरुद्ध और भारत की स्वतन्त्रता के लिए वह विचार प्रकट करते थे। वह भारतीय छात्रों को सचेत करते रहते थे कि देश के भविष्य के प्रति उनकी क्या जिम्मेदारियां हैं।

मैंने उन्हें खूब अच्छी तरह से जनवरी, १९४८ में गांधीजी की हत्या के समय समझा, जब मैं उनका अतिथि था। मुझे याद आती है लार्ड माउण्टबेटन की यह आशंका कि कहीं अति निर्भीक नेहरूजी को गांधी-जी के बाद शिकार न बनाया जाय। उन्होंने अफसरों के द्वारा अपनी रक्षा स्वीकार नहीं की और उसी रात भारत से एकता की अपील करते हुए कहा कि गांधीजी की हत्या एक सम्प्रदायवादी के हाथ हुई। भारत को ऐसा धर्मनिरपेक्ष राज्य होना है, जिसमें सभी अल्पसंख्यक सुरक्षा के साथ रह सकें। उनकी सबसे बड़ी सफलता शायद यह रही है कि उन्होंने उस आदर्श को दृढ़ता से भारतीयों के समक्ष कायम रखा। वह भारत को आधुनिक विज्ञानवादी देश बनाना चाहते थे। उन लोगों से वह बहुत जल्दी रुष्ट हो जाते थे, जो अंधविश्वास और गोवध-विरोध के पीछे परेशान थे तथा मुसलमानों के प्रति घृणा की भावना रखते थे।

गांधीजी की अंत्येष्टि के अवसर पर असीम भीड़ में मैंने गाड़ी पर गांधीजी के शव के साथ नेहरूजी और सरदार पटेल को देखा। हममें से कुछ लोग हाथ-से-हाथ पकड़कर भीड़ को बढ़ने से रोक रहे थे। चिता की ओर इस भारी भीड़ के बढ़ने से खतरा होना स्पष्ट था। नेहरूजी ने तुरंत इस खतरे को समझ लिया और गाड़ी में से कूदकर वहां आगये, जहां मैं और पैट्रिक गार्डन वाकर लोगों को पीछे की ओर ढकेल रहे थे। उन्होंने हमारे हाथ छुड़ा दिये और भीड़ से बैठ जाने के लिए कहा। एक स्त्री ने इसपर ध्यान नहीं दिया तो उन्होंने उसे कंधा पकड़कर बैठा दिया। उनका तरीका प्रायः यही होता था। यदि सभा में कोई व्यक्ति ज्यादा गड़बड़ी करता था तो उसे ठीक से बैठाने के लिए वह मंच से उतर पड़ते थे।

इसके बाद मुझे उनके साथ काश्मीर में रहने का अवसर मिला, जहां वह हिन्दू और मुसलमान औरतों के शिविरों में जा-जाकर ढाढस बंधा रहे थे। उस समय मैंने अनुभव किया कि उस काश्मीर से

उन्हें कितना गहरा प्रेम था, जहां उन्होंने अपना बचपन बिताया और अवकाश बिताने आया करते थे। भारत या पाकिस्तान में मिलने का शीघ्र निर्णय न करनेवाले एकमात्र राज्य के प्रति उनका यह प्रेम अशांत और जटिल स्थिति को और पेंचीदा बना देनेवाला था।

जैसे-जैसे दिन बीतते गये, उनका यह लड़कों जैसा गुण, जो शायद शुरू में शेख अब्दुल्ला की मित्रता में सर्वाधिक पाया जाता था, प्रायः कम दिखाई पड़ने लगा, यद्यपि दौहित्रों के साथ, जन्तुशाला में मृगों, कुत्तों के साथ उनकी यह बालसुलभ चंचलता प्रायः देखने को मिलती थी। उनका जीवन एक प्रकार से विलासंपूर्ण सादगी का जीवन था। उनका भोजन बहुत सादा होता था, रोज सवेरे वह योग-साधन और समय मिलने पर घोड़े की सवारी करते थे। लेकिन पद की जिम्मेदारी ने उन्हें इतना ग्रस्त कर लिया कि पदारूढ़ होने के बाद वह वह जवाहरलाल नहीं रह गये, जो पहले थे, बल्कि पूर्णताप्राप्त राजनीतिज्ञ हो गये।

मैंने कभी नहीं सोचा कि हैदराबाद या गोवा की कार्रवाही के लिए उनकी आलोचना की जा सकती है। दोनों मामलों में वह समस्या को बिना रक्तपात के न्यायपूर्ण ढंग से हल करने को तैयार थे। वह कभी भी शांतिवादी नहीं थे और गांधीजी से अक्सर इस पर तर्क-वितर्क करते थे। लेकिन वह हमेशा शांति के प्रबल समर्थक थे, जैसा हिन्देशिया, हिन्द-चीन और कोरिया के मामलों में उन्होंने प्रदर्शित किया। भारत के लिए केवल एक नीति थी गुट-निरपेक्षता और नेहरूजी शीत युद्ध के संभाव्य विकल्प के प्रतीक बन गये।

जितनी भी बार मैं भारत गया, उनके एकाकी संघर्ष से मैं अधिक प्रभावित होता गया। यह बात उनमें उनके घनिष्ठ मित्र श्री रफी अहमद किदवई के निधन के बाद से विशेष रूप से देखने में आई। साथियों के प्रति उनकी निष्ठा कभी-कभी अविवेकपूर्ण होती थी। ऐसा लगता है कि जैसे वह अपने इस राजनैतिक एकाकीपन में यह नहीं सुनना चाहते थे कि कोई उनके बारे में यह कहे कि उन्होंने किसी ऐसे आदमी को छोड़ दिया, जो भारत की सेवा में योग्य साबित हुआ था। अधिकांश लोग जानते हैं कि उन्होंने कितने समय तक कृष्ण मेनन की आलोचना सुनने से इन्कार किया। श्री कृष्ण मेनन उनकी सरकार में एकमात्र ऐसे मन्त्री थे, जो समाजवादी थे और अंतर्राष्ट्रीय मामलों में पैठ रखते थे। वह अकेले मंत्री थे, जिनसे नेहरूजी पूरी तरह खुले दिमाग से और समानता के आधार पर वार्ता कर सकते थे। इस कारण तथा अन्य अनेक कारणों से मेरा हमेशा ख्याल रहा है कि शुरू से ही उस कांग्रेस को विभाजित न कर देने के लिए उन्हें गलत समझा गया, जिसमें सरदार पटेल पूंजीवादी शिविर के नेता थे और स्वयं नेहरू समाजवाद के समर्थक। उस समय वह ऐसे लोगों का भरोसा कर सकते थे, जो उनके विचारों के समर्थक थे। लेकिन उन्होंने अगणित प्रशंसकों और बुद्धि-जीवियों के असीम समर्थन के बावजूद कांग्रेस को समाजवादी बनने के लिए बाध्य किया। लेकिन वह अपनी अंतरंग मंडली में ऐसा समूह नहीं तैयार कर सके, जो उनका समाजवादी और धर्म-निरपेक्ष-दर्शन समझता हो और उनके कार्यान्वियन पर आमादा हो।

भारतीय जनता पर उनका जो बाधाकारी प्रभाव था, उसका उन्होंने कभी परित्याग नहीं किया। लाखों की संख्या में लोग उनका भाषण सुनने के लिए आते थे। जनता की भक्ति पर बराबर उन्हें भरोसा था। भारतीय जनता उनकी आधुनिक भारत की कल्पना पर विश्वास करती थी—ऐसा भारत, जो निर्धनता

से मुक्त हो। मुझे एक सभा का स्मरण आता है, जिसमें मैं उनके साथ खड़ा था। जनता ने जिस प्रकार उनकी बात सुनी, उससे मुझे आश्चर्य हुआ। उनका भाषण बहुत जोरदार नहीं था, वह सीधी-सादी भाषा में हृदय की बात बोलते थे। अक्सर भाषण में उनके विचारों का सिलसिला टूट जाता था। इसका कारण यह था कि वह जनता को शिक्षित करना चाहते थे और बातें इस प्रकार स्पष्ट कर देना चाहते थे कि उनका शासन जनता के साथ सहमति पर निर्भर है। वह अपनेको जनता में से ही एक समझते थे, यद्यपि वह थे ब्राह्मण और कुलीन।

१९६२ में चीनी हमले के बाद उनका पहले जैसा प्रभाव नहीं रह गया। चाऊ एन लाई के शब्दों पर उन्होंने अत्यधिक विश्वास किया। चीन द्वारा भारतीय सीमा स्वीकार न किये जाने से उन्हें बहुत सदमा पहुंचा। डाक्टर की सलाह के विपरीत वह सत्तारूढ़ बने रहे, शायद इस आशा में कि चीन से उपयुक्त समझौता हो जायगा। १५ दिन पूर्व बम्बई में उन्होंने अपने भाषण में चीन और रूस के मतभेद के फलस्वरूप भारत-चीन-संघर्ष के नये आयाम की चर्चा की थी। शायद वह काश्मीर के प्रश्न पर भी समझौते के लिए आशान्वित थे। शेख अब्दुल्ला से वार्ता के बाद राष्ट्रपति अयूब खां दिल्ली आनेवाले थे।

अपनी बहन कृष्णा हठीसिंग द्वारा प्रकाशित अपने पत्रों के संग्रह में नेहरूजी ने अपने लिए इस प्रकार के स्मृति लेख का प्रस्ताव किया है;

"यह ऐसा आदमी था, जिसने अपने दिल-दिमाग से भारतीय जनता को प्यार किया और इसके लिए जनता ने उसे खूब प्रश्रय दिया और दिया अत्यधिक तथा बड़ी उदारता के साथ अपना प्रेम।" ●

...श्री नेहरू केवल भारत के प्रधान मंत्री ही नहीं थे, बल्कि वह जनता के पिता भी थे। उन्होंने स्वतन्त्रता-संग्राम में जनता का नेतृत्व कर विजय की थी। उन्होंने यहां की जनता को स्वतंत्रता का सही अर्थ बतलाया तथा लोगों को उनके स्वत्व से परिचित कराया। श्री नेहरू ने भारतीय जनता के सम्मुख नए मूल्यों को रखा था। वह ऊंचे नैतिक आदर्शों के प्रतीक थे, दृढ़ चरित्र थे तथा निःस्वार्थ विशाल हृदय रखते थे। इन सब बातों के लिए हम उनका सम्मान करते थे, मगर यह सब उनके व्यक्तितत्व का आकर्षण था।

मुझे भारतीय इतिहास में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं दिखाई देता है, जिसके प्रति इतना आदर और प्यार प्रकट किया गया हो, जितना कि पंडितजी के प्रति था।

...उनकी याद हमें सदा शक्ति तथा प्रेरणा देती रहेगी। वह हमारे दिलों में हमेशा रहेंगे।

—जाकिर हुसैन

जे० वी० कृपालानी

पावन प्रतीक

मुझसे मांग की जा रही है कि मैं जवाहरलाल के वारे में कुछ लिखूं। किन्तु क्या यह समय उस महान् राष्ट्रीय नेता, जनता के प्यारे नेता के आलोचनात्मक अध्ययन के लिए उपयुक्त है? क्या हमारा शोक का समय वीत चुका है? क्या आलोचनात्मक आकलन से उनके कुटुम्व के सदस्यों और भारत तथा दुनिया के अनेक भागों में रहनेवाले वहुसंख्यक मित्रों और प्रशंसकों के अलावा राष्ट्र की नाजुक भावनाओं को आघात नहीं पहुंचेगा? यह कहा जाता है और शायद सही कहा जाता है कि जवाहरलाल ने इतिहास का नया युग आरंभ किया और उनकी मृत्यु के साथ वह युग पूरा होगया। क्या हम उस युग के वहुत निकट नहीं हैं कि उसका योग्य मूल्यांकन कर सकें? क्या राष्ट्र के जीवन के किसी विशिष्ट काल को ठीक तरह से देखने, परीक्षण करने और जांचने के लिए कुछ ऐतिहासिक दूरी नहीं होनी चाहिए?

इसके अलावा, जवाहरलाल अनेक मनोभावों, अनेक पहलुओं और अनेक रूपों वाले व्यक्ति थे। इन रूपों में हमेशा ही सामंजस्य भी नहीं होता था। उन्होंने वहुत लिखा और वोला, उससे भी अधिक वह अथक कर्मी थे। किन्तु क्या कोई ऐसा सूत्र है, जो इन सव प्रवृत्तियों को पिरोता हो और उनकी समन्वित इकाई बनाता हो? उदाहरण के लिए उनके जीवन के चार विशिष्ट कालों को लीजिए। पहला काल वह है, जो विद्यार्थी के रूप में इंगलैण्ड में वीता और वहां से लौटने के उपरान्त जव उन्होंने इलाहावाद में वकालत की शुरुआत की, जो कोई खास नहीं थी। दूसरा काल सन् १९१९ में शुरू हुआ, जवकि उन्होंने गांधीजी द्वारा चलाई गई देश की स्वतंत्रता की अनोखी अहिंसक क्रान्ति में अपने को झोंक दिया। तीसरा काल वह है जव स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद वह देश के प्रधान मंत्री वने और विश्व के राजनैतिक मंच के एक प्रमुख व्यक्ति वन गए। उनके जीवन का चौथा और अन्तिम काल सन् १९५९ के आस-पास शुरू हुआ कहा जा सकता है, जव हिमालय में चीन के आक्रमण के फलस्वरूप तेजी के साथ हमारी सीमा का अपहरण हुआ। इस आक्रमण को मुश्किल से समझा और स्वीकार किया गया। यह आखिरी काल भी दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक तो अक्तूवर १९६२ में चीन के वड़े आक्रमण के पहले का और दूसरा उसके वाद का। इस आक्रमण के फलस्वरूप हिमालय की सीमाओं पर भारतीय सेना को पीछे हटना पड़ा।

यह जानना दिलचस्प होगा कि क्या जवाहरलाल अपने जीवन की इन सभी मंजिलों में एक ही व्यक्ति रहे? क्या कोई ऐसी कड़ी हो सकती है, जो इन विशिष्ट कालों को एकसूत्र में वांधती हो?

अगर मुझमें ऐसी कोई क्षमता हो तो भी मैं इसे अपनी विश्लेषक और साहित्यिक क्षमता के परे समझता हूं। इस विषय के साथ न्याय करने के लिए किसी ऐतिहासिक प्रतिभा की आवश्यकता है। क्या कोई इतिहासवेत्ता जवाहरलाल की मृत्यु के बाद इतनी जल्दी इस महत्वपूर्ण विषय के साथ न्याय कर सकता है?

हम उनके जीवन पर एक और दृष्टि से विचार करें। जवाहरलाल क्या चाहते थे? अपने और अपने देश के लिए उनका क्या जीवन-दर्शन था? यह सही है कि स्वतंत्रता के पहले भी वह समाजवाद की चर्चा करते थे, किन्तु उन्होंने उसकी व्याख्या कभी नहीं की। इस देश में भी कम्युनिस्ट और विभिन्न प्रकार के समाजवादी यह नहीं मानते कि जवाहरलाल ने समाजवादी ध्येय को प्राप्त करने के लिए गंभीर प्रयत्न किया। सरकार के भीतर पुराना शाही तंत्र, शान-शौकत और फिजूलखर्ची ज्यों-की-त्यों बरकरार रही। आज पहले की अपेक्षा कहीं अधिक प्रत्यक्ष उपभोग है। एक भूतपूर्व कांग्रेस अध्यक्ष ने कांग्रेस की एक बैठक में स्वीकार किया कि स्वतंत्रता के बाद "धनी अधिक धनी हुए हैं और गरीब अधिक गरीब।" खुद जवाहरलाल ने अपने जीवन के आखिरी वर्ष में मंजूर किया कि "धनी अधिक धनी हुए हैं।" गरीबों के बारे में वह प्रयत्नपूर्वक चुप रहे।

अगर आम जनता की हालत पर विचार किया जाय तो भारत की अपेक्षा कोई भी आधुनिक देश ज्यादा समाजवादी होगा और आम जनता की हालत सुधारने के लिए ही स्वतंत्रता के पहले गांधीजी और कांग्रेस ने प्रयत्न किया। उन्नत देशों में मजदूरों और किसानों के पास भी रेडियो, टेलिविजन सेट, रेफरीजेटर और अन्य आधुनिक यंत्र मौजूद हैं। इसके विपरीत यहां हमारे करोड़ों देसवासियों को न्यूनतम जीवन-सुविधाएं भी मिली हुई नहीं हैं। अफ्रीका और एशिया के पिछड़े देशों में भी लोग खाद्यान्न के अभाव से पीड़ित नहीं हैं।

यह कहा जाता है कि जवाहरलाल विज्ञान के हिमायती थे। वह सोचते थे कि अब विज्ञान और तकनीक-शास्त्र का कुछ अधिक प्रयोग करें, तो हमारी सब मुसीबतों का अंत हो जायगा। उन्होंने कहा कि भविष्य विज्ञान का और विज्ञान से मित्रता करनेवालों का है। किन्तु यह सर्व-विदित है कि मंत्रिमण्डल के उनके अनेक साथी, सरकार में बने रहेंगे या नहीं, इस बारे में बराबर ज्योतिषियों से परामर्श करते थे और जवाहरलाल को इस तथ्य का पता था। एक सच्चा क्रान्तिकारी, जिसकी कोई विचारधारा या जीवन-दर्शन हो, अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त औजार और प्रतिनिधि चुनेगा। अगर उसे ये नहीं मिलते तो वह उनकी रचना करेगा, जवाहरलाल यह नहीं कर सके।

वह भारत को आधुनिक बनाना चाहते थे, फिर उसका कुछ भी अर्थ हो, किन्तु हम आधुनिक पश्चिम के बाह्याचारों की सिर्फ नकल ही कर पाये हैं। यह हमारे व्यवहार से स्पष्ट है। आधुनिक आदमी परिश्रमी और कार्यकुशल होता है। वह अपने समय का ध्यान रखता है। वह अपने वादों और नियत कार्यक्रमों का पालन करता है। हम भारत में क्या देखते हैं? जन-साधारण की बात छोड़ दें, अगर मंत्री भी अपने समय अथवा कार्यक्रमों का पालन करते हों तो यह आश्चर्य की बात होगी। उनके सम्मान में आयोजित भोजों में मंत्री एक घंटे या डेढ़ घंटे देर से आते देखे गये हैं। शोक-सभाओं में भी वे देर से पहुंचते हैं, हालांकि वे उनकी अध्यक्षता करने के लिए निमंत्रित होते हैं और इस निमंत्रण को उन्होंने स्वीकार

भी कर लिया होता है। जवाहरलाल में ये कमियां नहीं थीं; किन्तु वह उन लोगों की आदतों को नहीं वदल सके, जिन्हें उन्होंने अपने काम में मदद देने के लिए चुना था।

जवाहरलाल चाहते थे कि इस देश का उद्योगीकरण हो। इसमें संदेह नहीं कि राजकीय क्षेत्र में कुछ भारी उद्योग स्थापित हुए हैं, किन्तु जैसा कि अव स्वीकार किया जाता है, यह उद्योगीकरण कृषि की उपेक्षा करके हुआ है और कृषि ही उद्योग का आधार होती है। आज अमरीका और रूस में क्या अन्तर है? अमरीका ने अपने उद्योग को अत्यंत विकसित कृषि के आधार पर खड़ा किया है। आठ प्रतिशत जनता देश की जरूरत का अनाज उपलव्ध करती है और उसपर भी वह नष्ट करने और दूसरे देशों को भेजने के लिए वच रहता है। रूस की खेती अमरीका जितनी विकसित नहीं है और इसलिए वह औद्योगिक उत्पादन में भी अमरीका से पीछे है।

ये कुछ उदाहरण हैं कि कैसे राष्ट्रीय जीवन में जवाहरलाल के योग का लेखा-जोखा कठिन दिखाई देता है। समय आयेगा जब इतिहासवेत्ता उसका समुचित मूल्यांकन करेंगे। वे किसी को पवित्र मानकर नहीं चलेंगे। भारतीय जनता के लिए अगर मैं कहूं तो जवाहरलाल आज एक पावन प्रतीक हैं। अतः आज हम उनकी स्मृति में श्रद्धांजलि प्रकट करके ही संतोष मान लें। ●

मुझसे बारह वर्ष छोटे, परन्तु राष्ट्र के लिए बारह गुना अधिक महत्वपूर्ण, बारह सौ गुना देश के अधिक लाड़ले श्री नेहरू अचानक हमारे बीच से उठ गये और यह विषादपूर्ण समाचार सुनने और उससे आहत होने के लिए मैं जीवित हूं! मेरी तो विचार-शक्ति ही लुप्त होगई है। पिछले दस वर्षों से सार्वजनिक नीति में जो दोष मुझे दिखाई पड़ते थे, उनके लिए मैं उनसे लड़ता रहा हूं; परंतु यह भी मैं कभी नहीं भूला कि केवल वही उन दोषों को ठीक भी कर सकते थे, और कोई इस कार्य को पूरा नहीं कर सकता; और अब वह मुझे अपने संघर्षों में इतना कमजोर बनाकर चले गये, जितना कमजोर मैं कभी नहीं था। सारे मतामत से परे, मेरा एक अत्यंत प्रिय मित्र मुझसे विछुड़ गया है--वह जो हम सबमें सबसे अधिक सभ्य था। हममें से बहुत-से लोग अभी सभ्य नहीं हैं। . .वह भारत के प्रतीक और भारत की सच्ची आवाज थे। भगवान हमारे लोगों की रक्षा करे!

--चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

कलाप्रेमी नेहरू

किसीके मन का भेद जानना हो तो देखिये कि वह किस तरह के शब्दों का प्रयोग करता है। दो शब्द नेहरूजी को बहुत ही प्रिय थे—गतिशीलता और कलाकारिता और इसमें संदेह नहीं कि उनका जीवन, उनके विचार और उनके कार्य इन शब्दों की भावना से ओत-प्रोत हैं। जो कुछ उन्होंने कहा और किया है उससे उनकी जीवन्तशक्ति और ओजस्विता का पता चलता है, किन्तु उनके शब्दों और कार्यों में हमें एक प्रकार से भावना की अतिशय कोमलता और सुकुमारता भी मिलती है। क्या यह संयोग की बात है कि महात्मा गांधी के देहावसान के बाद उनके गुणानुवाद के प्रसंग में जिन शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया उनमें एक शब्द कलाकारिता था। गांधीजी की हत्या के बाद देश में दुःख, शोक और पीड़ा का जो वातावरण छा गया था, उसे दूर करने के लिए जवाहरलालजी ने बहुत से चिरस्मरणीय भाषण किये थे। इसी अवसर-पर किये गए भाषणों में उनका 'ट्रीस्ट विद डेस्टिनी' (नियति के साथ मिलन) वाला भाषण भी है, जो उनके लम्बे सार्वजनिक जीवन में किया गया अत्यंत ही स्मरणीय भाषण है। महात्माजी के बारे में जवाहरलालजी ने कहा था, "यहांतक कि उनकी मृत्यु में भी एक प्रकार की शोभा, श्री तथा कलाकारिता थी।"

यह उस व्यक्ति और उसके जीवन की, जो उसने जीया था, उपयुक्त परिणति थी। सच तो यह है कि इसने उनके जीवन से प्राप्त होनेवाली शिक्षा का महत्व और बढ़ा दिया है। जिस एकता के लिए उन्होंने जीवनभर प्रयास किया, जो उनको अत्यंत प्रिय थी, जिसे उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना रखा था और जिसके लिए पिछले साल डेढ़ वर्ष उन्होंने और विशेष रूप से काम किया, उसीके लिए वह शहीद होगये। उनकी मृत्यु एकाएक हुई, जैसी कि सब लोगों की होनी चाहिए।

गांधी के समान नेहरूजी भी कला की अपेक्षा प्रकृति को अधिक महत्व देते थे। लैंडर की तरह शायद दोनों ही कहते—प्रकृति से मैं पहले प्रेम करता हूं और उसके बाद कला से। जवाहरलालजी की कुछ सर्वोत्तम वर्णनात्मक रचनाओं के दर्शन हमें उनकी 'मेरी कहानी', 'हिन्दुस्तान की कहानी' (यद्यपि यह पुस्तक इतनी विस्तृत है कि उनकी उत्तम रचनाओं में स्थान पाने योग्य नहीं है तथापि इनमें कितने ही ऐसे स्थल हैं, जो अत्यंत सजीव है।) तथा स्फुट निबन्धों और लेखों में मिलते हैं, जो १९४१ में प्रकाशित 'भारत की एकता' में संगृहीत कर दिये गए हैं। आत्मकथा में कितने ही ऐसे अंश हैं, जो उद्धृत किये जाने योग्य हैं। वे अंश तो अवश्य ही पठनीय हैं, जिनमें जेल-जीवन की नीरसता से ऊबकर घर के प्रति अनुराग

प्रकट किया गया है, जिसमें प्राकृतिक सुषमा, अवकाश, प्रकाश और मुक्त वायु के सेवन की सुविधा प्राप्त हो सके। यहां ऐसे सभी अंश तो उद्धृत किये नहीं जा सकते, अतः मैं उन्हीं अंशों को उपस्थित करने की क्षमा चाहता हूं, जो मुझे प्रिय हैं।

ये अंश केवल सुन्दर अवतरण नहीं हैं। ये ऐसे उद्धरण हैं, जो पाठक के मन को आह्लाद से भर देते हैं, उसे भावाभिभूत कर देते हैं तथा उसमें ताजगी ला देते हैं। जवाहरलालजी लिखते हैं, "जेल में मनुष्य बहुत-सी चीजों से वंचित हो जाता है, किन्तु सबसे बड़ी चीज, जिसका अभाव उसे पीड़ा पहुंचाता है, ललनाओं की रसमयी वाणी और बच्चों की किलकारी है।

एक दिन लखनऊ जिला जेल में उन्हें सहसा स्मरण हुआ कि मैंने आठ महीनों से कुत्तों का भूंकना तक नहीं सुना है। जेल में ही उन्होंने अपनी पुत्री इंदिरा प्रियदर्शिनी को अपने प्रसिद्ध पत्र लिखने आरंभ किये थे। इस शृंखला का सबसे पहला पत्र नौ वर्ष बाद तब लिखा गया, जब वह फिर जेल भेज दिये गए। पत्र का आरंभ इस प्रकार होता है, "प्रियदर्शिनी, नेत्रों को प्रिय, किन्तु दृष्टि से ओझल होनेपर और भी प्रिय।"

लखनऊ जेल की बैठक के आंगन में लेटे-लेटे नेहरूजी एकटक आकाश में इधर-से-उधर उड़ते बादलों को देखा करते। उनकी गति में जो शोभा थी, वह उनको बरबस आकृष्ट किये रहती थी।

वह लिखते हैं, "कभी-कभी बादल जब हवा के झोकों से तितर-बितर हो जाते थे तो उनके भीतर से नील नभ की जो मनोरम छटा आंखों के सामने आती थी। वह मन को लुभा लेती थी। उसे देखकर उस आकाश के अनन्त स्वरूप का बोध होता थी, जिसका एक अंश आंखों के सामने आता था।"

जवाहरलालजी ने अपनी उस पुस्तक में एक-से-एक बढ़कर वाक्य लिखे हैं, किन्तु मेरा ख्याल है कि सर्वोत्तम तथा उनकी विशेषता प्रकट करनेवाला अंश वह है, जिसमें उन्होंने अपने पिता की मृत्यु तथा उनके शव के दाह-संस्कार के बाद घर लौटने की बात कही है। वह लिखते हैं, "जब हम एकाकी और असहाय लौटे तो तारे निकल आये थे और आकाश में जगमगा रहे थे।"

नेहरूजी चाहे देश में रहे हों या विदेश में, भारत उनके पीछे-पीछे चलता रहा है। निश्चय ही उन्होंने भारत की खोज की है—कम-से-कम उस भारत की, जिसमें किसान बसते हैं, जो कृषि और कृषक-प्रधान है। १९२० से, जब वह पहली बार प्रतापगढ़ के देहात में गये और किसानों के सम्पर्क में आये, बराबर ही वह किसानों के बारे में सोचते-विचारते रहे हैं। तब से जब कभी वह देश की समस्याओं पर विचार करते रहे हैं, उनकी दृष्टि में भूखे-नंगे किसानों का चित्र हमेशा रहता आया है। जीवन में पहली बार कृषक वर्ग से उनकी जो भेंट हुई उसका बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन उन्होंने 'मेरी कहानी' में किया है। वह लिखते हैं, "उनके दैन्य और उनकी दुर्गति के साथ ही उनकी अतिशय कृतज्ञता को देखकर मैं लज्जा और शोक से भर गया। लज्जा तो इसलिए कि कहां तो इनका कष्टमय जीवन और कहां मेरा सुख और सुविधाओं से पूर्ण जीवन तथा शहर की हमारी गन्दी राजनीति, जिसके पास भारत की इन अर्धनग्न संतानों की ओर ध्यान तक देने की फुरसत नहीं है, और शोक इस बातपर कि क्या हमारा देश इतना निर्धन है, क्या हम इतने गये-गुजरे हैं! इस स्थिति ने मेरी आंखों के सामने भारत का एक नया चित्र उपस्थित कर

दिया। यह ऐसा चित्र था, जिसमें भारत के नंगे, भूखे, दलित और अत्यंत दीन किसानों की आकृति उभरकर सामने आगई थी। जबसे मेरे सम्पर्क में इस वर्ग के लोग आये, तब से कभी-कभी वे लोग मेरे यहां आ जाया करते थे। मैं उनकी हालत देखकर परेशानी का अनुभव करता था। मैं यह महसूस करता था कि मेरे ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आगई है और यह ऐसी जिम्मेदारी थी, जिससे मैं भयभीत हो उठता था।"

जवाहरलाल देश के दृश्यों और देश की आवाज के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील थे। यह ध्यान देने की बात है कि वह किस प्रकार घटनाओं और व्यक्तियों से सम्बद्ध विवरण बिना किसी हेर-फेर के जैसा-का-तैसा उपस्थित करते हैं। 'हिन्दुस्तान की कहानी' उन्होंने १९३६ में किये गए अपने देशव्यापी दौरे का, जबकि वह गांव-गांवतक घूमे थे, विशद वर्णन करते हुए लिखा है, "मैंने भारत के इस नक्शे में तमिल, पंजाबी, मराठा, सिख, गुजराती, सिन्धी, आसामी, उड़िया और न जाने कितने ही लोगों के चेहरे देखे। इनमें बहुत सारे लोग अपढ़ और निरक्षर थे, फिर भी इसका भान उनमें था कि वे परम्परा से एक ही संस्कृति में पले चले आ रहे हैं। वह गरीब थे, दलित थे और दीन थे, किन्तु उनमें ऐसा प्रसादगुण था, जिसकी कोई समानता नहीं। वह विनम्र होते हुए भी स्वाभिमानी थे, उनकी सज्जनता सहज, स्वाभाविक थी।" हम बहुत बार देखते हैं कि किस प्रकार अजन्ता के भित्ति चित्रों के-से नरनारी आज भी भारत के शहरों में यत्र-तत्र दिखाई पड़ जाते हैं। नेहरू की पर्यवेक्षणशील आंखें उस चित्र को देख लेती हैं। वह कहते हैं, "यदा-कदा जब मैं देश के किसी भाग से गुजरता रहता था तो मैं यह देखकर चकित रह जाता था कि कोई-कोई ऐसे सुन्दर स्त्री-पुरुष मिल जाते हैं, जिन्हें देखकर किसी प्राचीन भित्ति-चित्र की याद आ जाती है।"

'मेरी कहानी' में नेहरूजी ने जिन स्त्रियों की चर्चा की है, उनमें सर्वाधिक कोमल भावना अपनी माता और पत्नी के प्रति उन्होंने व्यक्त की है। अपनी रुग्णा पत्नी को देखने के लिए (जो कुछ ही दिन बाद मर गई) जब वह ग्यारह दिन के लिए जेल से रिहा किये गए थे तो उस समय का उन्होंने बड़ा ही मार्मिक विवरण उपस्थित किया है। जब वह पुलिस अधिकारियों द्वारा उस मोटरतक, जो उन्हें फिर जेल ले जानेवाली थी, ले जाये जा रहे थे तो उनकी माताजी बाहें फैलाये हुए उनके पासतक दौड़ती गई, यद्यपि वह स्वयं रुग्ण और अशक्त थीं। जवाहरलाल लिखते हैं, "उनका वह चेहरा बहुत दिनोंतक मेरे दिमाग में घूमता रहा।"

उनकी सर्वाधिक संवेदनशील तस्वीर अपनी पत्नी कमलाजी की है, जिन्हें उन्होंने 'मेरी कहानी' यह लिखकर समर्पित की है, "कमला को, जिसकी अब याद ही रह गई।" 'हिन्दुस्तान की कहानी' में उन्होंने कमलाजी के बेडेनवेला स्थित जीवन के अंतिम काल का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। वह लिखते हैं, "कभी-कभी कमला की आंखों में झांककर देखते हुए मैं सोचता था कि मेरी ओर कोई अपरिचित व्यक्ति देख रहा है।" उन्हें उन दिनों की याद आ गई जब गुरु के राजनैतिक आन्दोलनों के समय तेज मिजाज और मसपर हावी हो जानेवाले अपने पिता के साथ नेहरू का झगड़ा हो जानेपर कमलाजी उनका साथ दिया करती थीं। इस बात को जवाहरलालजी साफ स्वीकार करते हैं कि मैंने अपनी पत्नी को बहुत

वाद में जाकर ठीक-ठीक पहचाना। वह स्वयं राजनैतिक आंदोलन में महत्वपूर्ण और स्वतंत्र रूप से भूमिका अदा करना चाहती थीं। अपने पति की छाया बनकर रहना उन्हें पसन्द नहीं था। लेकिन जवाहरलालजी इस वात को वहुत दिनोंतक समझ न पाये। वह अपने ही उद्धत स्वभाव तथा उग्रता की वातें कहकर रह जाते हैं।

नेहरूजी का जो जीवन-चरित मैंने लिखा है, उसमें मैंने उनके चरित्र के दो वैशिष्ट्यों की चर्चा की है—अनुग्रह और शक्ति। उनकी आवेशशीलता और निष्ठा इनकी रचनाओं की पंक्ति-पंक्ति में झलकती रहती है। कभी-कभी उनमें वड़ा चिड़चिड़ापन दिखाई पड़ता है, किन्तु उनके वास्तविक रोष की अपनी अपनी अलग शोभा और मर्यादा है। उन्हें अन्याय और निर्दयता से अत्यंत चिढ़ थी। निर्भयता तो उनमें कूट-कूटकर भरी थी। पत्रकार के रूप में मैं उनकी उस राय की वड़ी सराहना करता हूं, जो उन्होंने 'नेशनल हेराल्ड' के आरंभ होने पर (नवम्वर, १९३८) उसके सम्पादकीय विभाग के सदस्यों को दी थी। उन्होंने कहा, "आप जोकुछ भी लिखें, सदा निर्भय होकर लिखें। आपके मन में भय का संचार तक न होना चाहिए।" यह ऐसा उपदेश है, जो हर पत्र के सम्पादकीय विभाग में 'उद्देश्य-वाक्य' की तरह टंगा रहना चाहिए।

उनका मन सुविस्तृत क्षेत्र में विचरण किया करता था और इसीलिए उनकी विद्वता में कोरा पाण्डित्य न होकर, सुविज्ञता और बहुज्ञता थी, फिर भी उनके व्यक्तित्व में कला और विद्वत्ता अधिक उभर आई। प्रकृति का प्रेम उनमें अत्यधिक था। वह फूलों के, सुकुमार वच्चों के, पशुओं के, सुविस्तृत नील नभ के, सितारों के, प्रपातों के, नालों और पहाड़ों के वड़े प्रेमी थे। ऐसा लगता है, जैसे इन सवने उनको अपनी ओर खींच लिया है। काश्मीर की मनोहारिणी छटा का जो वर्णन उन्होंने किया है, उसे अनेक स्थलों पर उद्धृत किया गया है। उन्होंने उसके सौन्दर्य का तटस्थ दृष्टि से वर्णन किया है। वह लिखते हैं, "मुझे तो यह स्वप्नवत् और अवास्तविक लगता है, जैसे किसीकी ऐसी आशाएं और वांच्छाएं हों, जिनमें हमारा मन हर घड़ी रम रहा हो, किन्तु जो कदाचित ही पूरी हो पाती हों। मुझे यह स्वप्न में देखी उस प्रियतमा के मुखकमल की तरह लगा, जो जागने पर गायब हो जाता है।"

काश्मीर की जो कल्पना उनके मन में थी, वह ऐसी थी जैसी किसी नर-नारी के समन्वित रूप, गुण, की हो, जैसा कि वह स्वयं थे। जवाहरलालजी के स्वभाव में जहां पुरुषोचित गुण थे, वहां उनमें नारी-सुलभ सुकुमारता भी थी, जिसका आभास हमें कोमल पदार्थों के प्रति सहज प्रेम के रूप में मिलता है। इस सुकुमारता का प्रमाण वारीक सूत कातने के प्रति उनकी उत्कण्ठा में मिलता है। वह वहुत ही महीन तार अपने चरखे से निकालते थे। महादेव-भाई कहा करते थे कि जवाहरलालजी की संवेदनशीलता और कलाकारिता उनके काते सूत में भी झांका करती है।

गांधीजी की तरह नेहरूजी की मृत्यु में भी हमें एक तरह की शोभा और कलाकारिता दिखाई देती है। ●

सबके सुख-दुख के साथी

जवाहरलाल महान् थे, महामानव थे, युग-पुरुष थे। इसलिए कि वे युग को पहचानते थे, युग-धर्म को जानते थे, प्रत्येक मानव से सान्निध्य स्थापित कर लेते थे, अपनापन कायम कर लेते थे। व्याप्त हो जाते थे प्रत्येक में और प्रत्येक अनुभव करता था मानो उसके सुख-दुःख के साथी बन गये जवाहरलाल। इसी अर्थ में वह महामानव थे। यह उनके व्यक्तित्व का महान् और सबसे आकर्षक अंग था।

पिछले साल की बात है—अप्रैल १९६३ की। रोहतक के सभी बाल्मीकि स्त्री-पुरुष दिल्ली आ गये थे, जवाहरलाल की कोठी के फाटक पर, अपनी फरियाद सुनाने के लिए उनको। उनका पड़ाव पड़ गया था वहांपर।

उस दिन संध्या को आठ बजे मैं जवाहरलालजी से मिलने गया था किसी आवश्यक समस्या पर परामर्श करने। साढ़े आठ बजे तक बातें होती रहीं। फिर मैंने कहा कि अब चलता हूं, आपके भोजन का वक्त हुआ। उन्होंने कहा, "चलो, तुम्हारे साथ ही नीचे चलता हूं। तुम भी रहना। देखा नहीं रोहतक से आये हुए भंगियों का मजमा फाटक पर। उनके नुमाइंदों से बातें कर लूं।"

हम लोग नीचे आये। वहां वाल्मीकि भाइयों के चार-पांच प्रतिनिधि आये। उनसे बातें होती रहीं, करीब एक घंटे तक। फिर उन्होंने आग्रह किया कि पंडितजी सभी लोगों को जो फाटक के बाहर पड़े हैं, दर्शन दें। पंडितजी ने मुझसे पूछा, "तुम्हारी गाड़ी है। चलो, उसीपर चलें।"

गाड़ी से बाहर आये। भीड़ के सामने गाड़ी सड़क पर रुकी। जवाहरलालजी उछलकर गाड़ी के ऊपर बैठ गये, जिससे सभी उन्हें देख सकें। गाड़ी की छत चिकनी थी। सो फिसले जाते थे। मैं अपने हाथों का टेक लगाये था और वह मेरे हाथों को पकड़-पकड़ अपने संतुलन को कायम रखते रहे, और वाल्मीकि भाई-बहनों से घुल-मिलकर बातें करते रहे। अजीब नैसर्गिक दृश्य था। कौन स्वप्न में यह ख्याल कर सकता था कि एक महान देश का महान् प्रधान मंत्री उस देश के सबसे नीचे पड़े हुए दलित, शोषित और लांछित समुदाय के कुछ थोड़े से अशक्त व्यक्तियों के आंसू पोंछने के लिए इतना करे! मैं सोच रहा था और रोमांचित हो रहा था।

लगभग १०। बजे उन्होंने उन लोगों से विदा ली। उत्फुल्ल मुद्रा में मुझसे कहा—जैसे कहने की कोई जरूरत थी—"चलो, मुझे पहुंचा तो दो।" गाड़ी कोठी में जाकर बरसाती में रुकी। पंडितजी उतरे, मैं भी उतरा। "तुम क्यों उतर रहे हो? जाओ।" उन्होंने कहा।

"बदतमीजी कैसे करूं!"—मैंने कहा।

उन्होंने पीठ पर चपत जमाते हुए कहा, "अच्छा, जाओ।" मैंने प्रणाम किया और चला आया। सोचता रहा रास्ते भर कि इस महामानव के तेज-पुंज से विषमता और अभाव भस्मसात हो और इसकी ज्योति से मानवता आलोकित हो, विश्व प्रकाशित हो।

पिछले सत्रह वर्षों तक उनके साथ काम करने का सौभाग्य मिला, नजदीक से उन्हें देखने का सौभाग्य रहा। कितनी ऐसी घटनाएं हैं, जो आज भी मुझे अनुप्राणित करती रहती हैं, प्रोत्साहित करती रहती हैं—देश और विश्व के कल्याण के लिए अपने आपको खपा देने के लिए, और करती रहेंगी, न मालूम कितने लोगों को और कबतक!

दुनिया के जो तटस्थ देश हैं, जो देश विकास के रास्ते पर चल रहे हैं, वे सब और एक व्यापक अर्थ में सारी दुनिया ने शान्ति का एक महान योद्धा खो दिया।

...उनका विछोह सारे प्रगतिशील जगत् के लिए एक बड़ा धक्का है।

—टीटो

छोटी, पर बड़ी बातें

मैं उन्हें 'पंडितजी' कहता था और अपनी चिट्ठियों में 'प्रिय पंडितजी' से संबोधित करता था। पिछले दिनों एक बार जातिवाद के विरुद्ध विद्रोह भड़का और जाति-सूचक नामों और विशेषणों का प्रयोग न करने का आंदोलन चला।

मैंने सोचा कि जातिवाद से लड़ने का यह तरीका एक दिन सम्प्रदायवाद, धर्मवाद और नस्लवाद के विरुद्ध भी काम में लिया जायगा। तब किसी दिन ऐसी स्थिति भी आ जायगी कि 'बेगम सावित्री धर्मपत्नी श्री सेमसन' अथवा इसी प्रकार की संयुक्त शब्दावली काम में आने लगेगी। तब ब्राह्मणों को यह कहने की आवश्यकता न होगी कि वे ऋषियों की संतान हैं। किन्तु एक बार जो ब्राह्मण रहा, पर अब श्री सेमसन कहलाता है, वह अपने को अब्राह्मण की संतान कह सकता है। आखिर उच्चारण की दृष्टि से ब्राह्मण और अब्राह्मण में कितनी समानता है।

जब यह लहर चल रही थी तो मैं उलझन में था और मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं अपनी चिट्ठियों में पंडितजी को कैसे संबोधित करूं। इस अर्से में मैंने 'प्रिय जवाहरलाल' अथवा इससे मिलता-जुलता संबोधन लिखा होगा। किन्तु मुझे इससे अधिक समाधान नहीं हुआ।

इसलिए मैंने उन्हींसे इस विषय में पूछने का निश्चय किया। मैंने हमेशा यह समझा है कि शेर को उसकी मांद में पकड़ना ही अच्छा होता है।

मैंने अपनी परेशानी उन्हें बताई। उन्होंने प्रश्नसूचक दृष्टि से मेरी ओर देखा और साथ ही अपनी सारगर्भित मुस्कराहट के साथ कहा, "दिवाकर, तुम्हें मेरा संबोधन बदलने की कोई जरूरत नहीं। शब्द नहीं, बल्कि जाति की भावना छोड़नी चाहिए। अगर तुम जान-बूझकर अपने अभ्यास के विरुद्ध मेरा नाम छोड़ने की कोशिश करोगे तो तुम्हें हर बार जाति का कहीं अधिक भान रहेगा। मेरे ख्याल में जब तुम मुझे पंडितजी के नाम से संबोधित करते हो तो तुम्हें मेरी जाति का भान नहीं होता है। उदाहरण के लिए मुझे तो यह पता भी नहीं होता कि तुम या करमारकर किस जाति के हो। मैंने कभी पूछा ही नहीं।"

यह एक बड़ा सबक था। इन भेदों को दूर करने का कोई भी नकारात्मक तरीका सफल नहीं हो सकता।

निश्चयात्मक ऐच्छिक प्रयास से और शुरू से ही यह शिक्षा देने से कि सब स्त्री-पुरुष आदि और अन्त में स्त्री और पुरुष हैं, आदमी का मन सब मनुष्यों को समान समझने का अभ्यस्त हो सकता है।

तभी ऊंच और नीच, श्रेष्ठ और निकृष्ट का विचार जो जातियों, समुदायों, धर्मों और नस्लों के साथ जुड़ गया है, दूर हो सकता है। तभी मनुष्य सभी को समान आदर और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देख सकेगा।

... ...

पंडितजी ने कहा, "यह आदत है।" बात सन् १९६१ या उसके आस-पास की है। रात का समय था भोजन के बाद, जिसके लिए उन्होंने मुझे निमंत्रित किया था, वह मुझे विदा करने के लिए अपने मकान के दर्वाजे पर खड़े थे। हम अकेले थे। इससे पहले मैं प्रतिरोध कर चुका था और उनसे प्रार्थना की थी कि वह मुझे विदा करने के लिए आने का कष्ट न किया करें, कारण मैं रास्ता जानता हूं। तब उन्होंने मुझसे कहा था, "यह आदत है।"

मैंने कहा, "यह अच्छी आदत है, और यह आपके अचूक सौजन्य की निशानी है, जिसके लिए आप प्रसिद्ध हैं, किन्तु आपको मेरे जैसे सुपरिचित कार्य-कर्ताओं के साथ यह शिष्टाचार नहीं बरतना चाहिए, विशेषकर उस दशा में जब आप दिनभर के काम के भारी बोझ से थक गये हों।"

उन्होंने बस यही दोहराया, "आदत तो आदत होती है और वह कोई अन्तर नहीं करती।"

सामने कोई सम्मानित विदेशी अतिथि हो, अथवा कांग्रेस का सामान्य स्वयंसेवक, पंडितजी अपने शिष्टाचार में कभी नहीं चूकते थे। उनके संस्कारी लालन-पालन की यह निशानी थी।

... ...

अप्रैल १९६४ के अंतिम सप्ताह के आस-पास की बात है, जब मैं पंडितजी के निवास-स्थान पर पद्मजा नायडू से मिलने गया था। नायडू से बात कर चुकने के बाद मैं लौटते हुए बरामदे में था। वहां अकस्मात श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित से भेंट होगई। उनसे गांधीजी की उनके नाम लिखी चिट्ठियों के बारे में बात करने लगा। मुझे दिखाई दिया कि पंडितजी एक-दो आदमियों के साथ बरामदे के आखीर में खड़े हैं। जैसा कि हम सब जानते थे, उनकी तबियत बहुत अच्छी नहीं थी। चूंकि मैंने उन्हें देख लिया था, इसलिए मैं यह नहीं चाहता था कि उनसे मिलकर और उनसे बातकर उन्हें तकलीफ दूं।

किन्तु किसी ने कहा, पंडितजी हमारी ओर आ रहे हैं। अतः मैंने उनकी कुशल-क्षेम पूछे बिना जाना ठीक नहीं समझा। दरअसल, उन्होंने मुझे देख लिया था। वह सीधे मेरे पास आये और मेरे उस पत्र-व्यवहार का जिक्र किया, जो गांधी-शताब्दी के संबंध में उनके साथ हुआ था।

किन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात जो गांधीजी से संबंधित बातों में उनकी सतर्कता को व्यक्त करती है, यह थी कि उन्होंने मुझसे गांधी शांति प्रतिष्ठान की संचालक समिति की बैठक के बारे में चर्चा की, जो जल्दी ही होने वाली थी।

उन्होंने कहा, "क्यों यह बैठक १ मई को राष्ट्रपति भवन में हो रही है न? मैं उसमें आऊंगा।"

आवश्यक बातों के बारे में इस प्रकार की सतर्कता और सावधानी में उनसे बढ़कर कौन हो सकता है? ●

पुण्य-स्मरण

पहले-पहल मैंने जवाहरलालजी को प्रयाग में एक सभा में भाषण करते हुए देखा था। उस समय हमारे नेता सभाओं में बोलते हुए दूसरे सम्प्रदाय के विचार से हिन्दी को उर्दू रूप देने की चेष्टा किया करते थे। परन्तु उर्दू के लिए तो अपना स्वतन्त्र देश (पाकिस्तान) वन रहा था। इस देश की राष्ट्र-भाषा तो संस्कृत से संबंधित हिन्दी ही हो सकती थी। पंडितजी उस समय भी संस्कृत शब्दों का त्याग नहीं किया करते थे, यद्यपि वे अल्प ही होते थे। आगे चलकर वह हिन्दी के ही निकट आते गये। एक दिन मैंने हँसकर उनसे कहा था, "पंडितजी, आजकल आप क्या कहते हैं, इससे भी अधिक मेरा ध्यान आपकी भाषा पर रहता है।" वह वोले, "आज प्रातःकाल ही"––इतना कहकर वह हँस पड़े। "प्रातःकाल" की बात वहीं रह गई। मुझे उनके बहुत पहले के एक कार्ड का स्मरण आ गया, जो उन्होंने शिवप्रसाद गुप्त को लिखा था और जिसे मैंने उन्हींके यहां देखा था। वह नागरी में था और उसमें लिखा था–– "मैं परसों 'सुबू' तुम्हारे पास पहुंचूंगा।" इसे स्मरण कर मुझे लगा––कहां उस दिन का वह 'सुबू' अथवा 'सुबह' और कहां आज का यह 'प्रातःकाल'!

सन १९२० में दूसरी वार उन्हें कुछ निकट से देखने का अवसर मिला। 'प्रताप' की एक आलोचना पर रायबरेली जिले के एक ताल्लुकेदार ने सम्पादक गणेशजी और प्रकाशक शिवनारायणजी मिश्र पर मानहानि का अभियोग चलाया था। उसमें पंडितजी भी साक्षी के रूप में आये थे। उस समय उनकी लोकप्रियता उत्तरोत्तर वढ़ रही थी। वह वेश बदले हुए राजकुमार-से लगते थे। उनके मुख पर आभिजात्य की आभा जगमगाती दिखाई देती थी। उन दिनों की खादी मोटी ही होती थी। वह उनके सुकुमार गौर शरीर पर वल्कल जैसी लगती थी। 'सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं' वाली वात थी। पैरों में वर्मी चट्टी पहने वह गांव-गांव घूमते थे और ऐसे-वैसे स्थान में भी रात बिता देते थे। सुना, दो कुरते रखते थे और उन्हें नित्य वदलते रहते थे। धोते भी उन्हें आप ही थे। ठीक नहीं कह सकता कि तवतक जवाहरकट सदरी आई थी या नहीं। उनकी सुकुमारता में भी एक ऐसी दृढ़ता समाई दीखती थी कि अपने अभीष्ट की ओर जाने में उन्हें कोई डर न था, कोई बाधा न थी। यही उनका पहला प्रभाव मुझपर पड़ा। आगे उनके विषय में निरन्तर आदर-भाव बढ़ता ही गया।

प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन के एक अधिवेशन में एक सज्जन वड़े शब्दाडम्बर के साथ वोलने लगे। तनिक सुनने के पश्चात् पंडितजी ने नाक-भौं सिकोड़कर धीरे-से कहा, "क्या अशोक वाटिका लगा

किसीने उन्हें एक दौने में वेर भेंट किये। उन्हें लेकर उन्होंने एक-एक करके भीड़ के वच्चों में बांट दिया। एक स्वयं भी चखा।

झांसी लौटते हुए मैंने पंडितजी से कहा, "मार्ग से एक मील परीछा पर वेतवा-बांध है। मन हो तो देखते चलिये। वहां आप प्रसन्न होंगे। पन्द्रह मिनट से अधिक समय न लगेगा।" पंडितजी ने स्वीकृति दे दी और वहां जाकर वह सचमुच वहुत प्रसन्न हुए।

झांसी में घुसते ही एक वात अप्रिय हो गई। मार्ग के दोनों ओर से मोटर पर फूल फेंके जाने लगे। पंडितजी इससे रुष्ट हुए। बोले, "ये फूल मसले जा रहे हैं! क्या वाहियात वात है।" उन्होंने मोटर रुकवा दी। मैंने उतरकर हाथ जोड़ते हुए लोगों से कहा, "हमलोगों को ऐसा कोई काम न करना चाहिए, जिससे पंडितजी को पीड़ा हो।"

वहां जो सभा हुई, उसमें पंडितजी ने यह भी कहा था, "अंग्रेज तो अव गये ही समझना चाहिए। वे रह नहीं सकते। उनकी शक्ति तीसरी श्रेणी की रह गई है। इस समय आप लोग क्या सोचते हैं, मैं नहीं जानता, परंतु जब एक वड़ी इमारत गिरती है तव वह आस-पास की धरती को भी धंसा देती है। मुझे यही चिंता है कि हम इतने डाक्टर, इंजीनियर और शासक आदि का प्रवन्ध कैसे करेंगे—उनके जाने पर, जो अव जाने ही वाले हैं।"

जव कांग्रेस ने कौंसिलों में जाना स्वीकार किया तव पंडितजी ने ऐसा धुआंधार दौरा किया कि ब्रिटिश अधिकारियों ने वहुत सिर मारा, फिर भी वहुमत कांग्रेस का ही रहा। एक सभा में लाउड स्पीकर न देखकर पंडितजी चिढ़ गये। वोले, "आपलोगों को पता है, लाउड स्पीकर नाम की भी कोई चीज होती है?" एक अन्य सभा में लाउड स्पीकर गड़वड़ था। उन्होंने कहा, "आपकी मशीन ऐसी है कि मैं आपसे जो कहना चाहता हूं, उसे वह आपतक न पहुंचाकर मुझे ही लौटा देती है!"

१९५२ की वात है। मैं उन दिनों सीतानिवास, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में था। राय कृष्णदास और डाक्टर मोतीचन्द्र से वार्तालाप हो रहा था। एक आदमी दौड़ा-दौड़ा आया और वोला, "कलक्टर साहव आ रहे हैं।" घटना अतर्कित थी। हमलोग कुछ चकित हुए, तवतक वनारस के कलक्टर आ गये। हमलोगों ने उठकर उनका स्वागत किया। उन्होंने पूछा, "यहां मैथिलीशरणजी गुप्त हैं?"

मैंने कहा, "मैं हूं, कहिये। क्या आज्ञा है?"

उन्होंने कहा, "आपसे एकांत में कुछ वात करनी है।"

मैंने कहा, "ये लोग मेरे अंतरंग हैं। इनसे मेरा कोई दुराव नहीं है। फिर भी आप चाहें तो उधर के कमरे में चलिये।"

उनको यही अभीष्ट था। वहां उन्होंने वताया कि प्रधान मंत्री का फोन आया है कि आपसे पूछकर मैं उन्हें सूचित करूं कि आपको राज्य परिषद की सदस्यता स्वीकार करने में कोई आपत्ति तो नहीं?

मैंने कहा, "उनकी आज्ञा हो तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? फिर भी आइये, मैं अपने मित्रों से भी पूछ लूं।"

हमलोग फिर वैठक के कमरे में आ गये। मैंने दोनों वन्धुओं को वात वताई। वे हर्षित हुए और

वे अविस्मरणीय दिन

जवाहरलालजी से मेरी पहली भेंट दिसम्बर सन १९११ में लन्दन में इत्तिफाक से ही हुई थी। यों तो मैं कैम्ब्रिज में उसी कालेज अर्थात ट्रिनिटी कालेज में पढ़ने गया, जहां उन्होंने भी पढ़ा था। वह बाल्यावस्था में ही इंगलैंड के प्रसिद्ध हैरो स्कूल में पढ़ने गये थे और वहां से कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भर्ती हुए। वह सन १९१० में कैम्ब्रिज की शिक्षा समाप्त कर लन्दन में बैरिस्टरी की परीक्षाओं के लिए तैयारी करने लगे। मैं एक साल पीछे १९११ में कैम्ब्रिज गया। जवाहरलालजी के पिता से मेरे पिता की पुरानी मुलाकात थी, पर मैं जवाहरलालजी से कभी नहीं मिला था।

सन् १९११ के दिसम्बर में क्रिसमस के अवकाश में मैं लन्दन में रहा। जहां मैं रहता था उसके पास ही श्री भगवानदीन दुबे रहते थे। वह इलाहाबाद के थे और लन्दन में वकालत करते थे। उनकी स्त्री श्रीमती रामदुलारी देवी थीं। इनसे मेरी पहले मुलाकात हो चुकी थी। यह दम्पति शाकाहारी थे। मैं भी शाकाहारी होने के कारण भोजन के संबंध में काफी परेशान रहता था। श्रीमती दुलारीदेवी यह बात जानती थीं। एक दिन रास्ते में वह मिल गईं और मुझे सायंकाल के भोजन के लिए निमंत्रित किया। मैं समय से पहुंचा। पर मालम पड़ता था कि वह भूल गई थीं कि मुझे बुलाया गया है। पति-पत्नी भोजन करके अपने गोल कमरे में बातचीत कर रहे थे। मैं भी पहुंच गया। किसीने भोजन के लिए नहीं पूछा।

इतने में श्री जवाहरलाल आये। बहुत ही अच्छे अंग्रेजी वस्त्र पहने हुए थे। हमारा परस्पर परिचय कराया गया। इधर-उधर की बातें होने लगीं। इतने में जवाहरलालजी ने कहा, "बड़ी भूख लगी है। कुछ खाना तो मंगाओ।" तब कुछ खाना आयां। मुझे भी मिला। साधारण तौर से कोई इस प्रकार भोजन लाने को न कहता। मैंने उसी समय देखा कि नेहरूजी सटीक कपड़ा पहनने के शौकीन हैं। यह शौक उनका अंत तक बना रहा। चाहे अंग्रेजी कपड़ा पहने हों या देशी धोती-कुरता पहने हों या पाजामा-शेरवानी, उनके कपड़े हमेशा स्वच्छ और ठीक प्रकार के कटे हुए रहते थे। उनके कपड़ों में कोई त्रुटि नहीं रहती थी। कपड़ा सादा रहता था और साथ ही काफी मूल्यवान रहता था।

दूसरी बात यह थी कि नेहरूजी बहुत उपचार नहीं बरतते थे। उनके मन की जो भावना होती थी उसे वह फौरन प्रकट कर देते थे। उस दिन बातचीत करते हुए रात्रि के बारह बज गये। हम दोनों साथ-साथ बाहर निकले। मेरा मकान तो पास ही था। उस समय तक बस और सुरंग की सब गाड़ियां बन्द हो चुकी थीं। वहांपर कोई टैक्सी. भी नहीं दीख पड़ती थी। मैंने कहा, "रात बहुत हो गई है। कैसे

लाल स्वयं बहुत पत्र लिखते थे। प्रायः सभीका उत्तर देते थे। छोटे-बड़े सबके पत्रों पर वह ध्यान रखते थे।

१९२९ में महात्मा गांधी ने देश-भर का दौरा किया था। हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन मन्द पड़ गया था। उसे वह पुनः जाग्रत करना चाहते थे। उत्तर प्रदेश में (उस समय के संयुक्त प्रान्त में) भी उनका विस्तृत दौरा हुआ। प्रान्तीय कांग्रेस समिति के सभापति श्री जवाहरलाल थे और मैं सचिव था। वह प्रयाग के थे, मैं काशी का था। उन दिनों डाक, तार तथा टेलीफोन से मेरा उनका सम्पर्क रोज का था। गांधीजी के दौरे का कार्यक्रम हम दोनों ने मिलकर बनाया और बीच-बीच में हम दोनों या हममें से एक उनके साथ भी हो लेते थे। दौरा करते हुए सब लोग मसूरी पहुंचे। मुझे सिर-दर्द का कष्ट सदा से ही रहा है। जवाहरलालजी ने मुझसे एक बार कहा कि उन्हें सिर का दर्द कभी हुआ ही नहीं। वह जानते ही नहीं, यह क्या रोग है। अक्तूबर महीने का अन्त था। मसूरी में काफी सर्दी पड़ रही थी। रात्रि को मेरे सिर में बड़ा दर्द होने लगा।

श्री जवाहरलाल और मैं दोनों होटल के एक ही कमरे में ठहरे थे। महात्मा गांधी और उनके साथियों का शिविर अलग था। मैं बिस्तर पर पड़ गया। मेरा नौकर मेरा सिर दबा रहा था। रात्रि को दस बजे का समय रहा होगा। जवाहरलालजी कमरे में आये और मुझे ऐसा पड़ा हुआ पाया। हाल जानने पर वह फौरन बाहर निकले। कम-से-कम एक मील जरूर चले होंगे जब उन्हें केमिस्ट की दूकान मिली। वहां से दवा खरीदकर ले आये। मुझे उसकी दो गोलियां खिलाई। मेरी पीड़ा थोड़ी ही देर में शान्त हुई। मैं सो गया। एक बार सन् १९३३ में प्रान्तीय कांग्रेस कार्यकारिणी में एक साथी काशी विद्यापीठ के अध्यापक श्री रामशरणजी को यकायक सिर में दर्द उठा। जवाहरलालजी स्वयं उनका सिर दबाने लगे और पीड़ा की नसों पर अमृतांजन रगड़ने लगे। प्रधान मन्त्री की अवस्था में, ऐसी ही समिति में श्री पुरुषोत्तमदास टंडन को सहसा कष्ट में पाकर उनके हाथ-पैर दबाने लगे। इन घटनाओं से मालूम होता है कि जवाहरलालजी को अपने मित्रों का कितना ख्याल था। उनके लिए वह कितना कष्ट उठाने को तैयार थे। उनके हृदय में पीड़ितों के लिए कितनी सहानुभूति थी। उनको ऐसे मामलों में किसी प्रकार की झूठी शान नहीं थी।

... ...

उन्हीं दिनों की बात है। एक बार मैं उनके यहां आनन्द-भवन में ठहरा हुआ था। स्नान करने के बाद उनके स्नानागार में अपना साबुन छोड़ आया। कुछ दिनों बाद उन्होंने एक नवयुवक को मेरे पास भेजा, जिन्होंने पीछे चलकर काफी नाम कमाया और उसी समय विश्वविद्यालय से उच्च परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सार्वजनिक क्षेत्र में आने के इच्छुक थे। उनके साथ मेरा साबुन भी भेज दिया और कहलाया कि यह नवयुवक होनहार प्रतीत होते हैं, प्रान्तीय कांग्रेस के मन्त्री की हैसियत से मुझे उनका उपयोग करना चाहिए। यह घटना इस बात को सिद्ध करती है कि वह छोटी-छोटी बातों का कितना ध्यान रखते थे। भूल से छूटे हुए साबुन को उन्होंने बड़ी फिकर से वापस किया। वह छोटे-मोटे लोगों की भी बहुत फिकर करते थे। एक होनहार युवक को उन्होंने उत्साहित किया कि सार्वजनिक क्षेत्र में आये और काम करे।

... ...

घर जाओगे ?" उन्होंने कहा, "मेरी फिकर मत करो। मुझे तो घर पहुंचने में अभी देर है । मैं चला जाऊंगा।"

... ...

मैं १९१४ में घर लौटा। जवाहरलालजी १९१२ में ही लौट आये थे और इलाहाबाद के हाईकोर्ट में अपने पिता के साथ उन्होंने वकालत करना आरम्भ कर दिया था। १९१५ में एक बड़ा आन्दोलन हुआ कि प्रांत के गवर्नर की आन्तरिक परिषद में एक भारतीय लिया जाय। सब बात ठीक हो गई थी। जो लिये जानेवाले थे, उनका नाम भी एक प्रकार से घोषित हो गया था। पर अंत में अंग्रेजी शासन की राय बदल गई। लोग बहुत क्षुब्ध हुए। इलाहाबाद के मेयो हॉल में शासन के प्रति विरोध प्रदर्शन के लिए सभा हुई। उस समय के सब दिग्गज राजनीतिकगण मौजूद थे। काशी से भी बहुत-से लोग, विशेषकर वकीलगण, गये थे। मैं भी गया। उस समय घोर गर्मी पड़ रही थी। श्री जवाहरलाल अन्य युवकों के साथ ठंडा पानी और शरबत लेकर सभा में बैठ लोगों के पास जा-जाकर उनको दे रहे थे। यों तो वह जन्म से ही बड़े समझे जा सकते थे, क्योंकि बहुत बड़े पिता के इकलौते पुत्र, फिर कैम्ब्रिज से पढ़कर नये-नये आये थे। पर उनको झूठी शान कभी नही भायी। आतिथ्यसत्कार उनका सदा ही अनुपम था । अतिथियों को स्वयं पानी पिला रहे थे। यह छोटी बात समझी जाय, पर बात बहुत बड़ी है।

... ...

सन् १९१७ में श्रीमती एनी बेसेंट नजरबन्द की गई। प्रथम महायुद्ध हो रहा था। इंगलैंड को जर्मनी दबाये जा रहा था। श्रीमती एनी बेसेंट ने कहा कि अंग्रेजों की परेशानी का हमें लाभ उठाना चाहिए और स्वराज्य की मांग जोरों से पेश करनी चाहिए। उन्होंने घोर आंदोलन आरम्भ किया था। इसपर वह नजरबन्द कर ली गई। देश-भर में बड़ा विरोध हुआ। मैं उन दिनों इलाहाबाद में 'लीडर' पत्र में पत्रकारिता सीखने श्री सी. वाई. चिंतामणि के यहां रहता था। वहां बड़ी सार्वजनिक सभा हुई। श्री जवाहरलाल के पिता पंडित मोतीलाल नेहरू सभापति हुए। आशंका की गई कि गिरफ्तारियां होंगी। कड़ी भाषा में कई प्रस्ताव स्वीकृत हुए। पंजाब के गवर्नर सर माइकल ओड्वायर की विशेष रूप से भर्त्सना की गई थी। निश्चय किया गया कि प्रस्तावों की नकल विविध अधिकारियों के पास भेजी जाय, जिसमें माइकल ओड्वायर भी थे।

मुझे बड़ा कुतूहल हुआ। श्री सी. वाई. चिंतामणि को मैंने दस रुपये दिये और कहा कि सर माइकल ओड्वायर को जो तार भेजा जाय, उसमें यह खर्च किया जाय। मुझे यह मालूम नहीं था कि यह रुपया किसके द्वारा खर्च होगा। दूसरे दिन जवाहरलालजी का पत्र मुझे मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था, "तार के लिए जो रुपया तुमने भेजा, वह मिल गया। इसके लिए बहुत धन्यवाद है। यदि ऐसी उदारता और लोग भी दिखलाते तो हमारे काम में बड़ी सुविधा होती।" यह पहला पत्र था जो उन्होंने मुझे भेजा था। विगत ४७ वर्षों में मैंने हजारों पत्र जवाहरलालजी को लिखे होंगे, पर इस पत्र की स्मृति बनी हुई है। बहुत-सा चन्दा बहुत-से लोग बहुत कामों के लिए देते रहते हैं। पर एक छोटे-से चन्दे के लिए धन्यवाद देने की आवश्यकता बहुत कम लोग सोचते होंगे। यह छोटी-सी बात कितना महत्व रखती है। श्री जवाहर-

लाल स्वयं बहुत पत्र लिखते थे। प्रायः सभीका उत्तर देते थे। छोटे-बड़े सबके पत्रों पर वह ध्यान रखते थे।

१९२९ में महात्मा गांधी ने देश-भर का दौरा किया था। हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन मन्द पड़ गया था। उसे वह पुनः जाग्रत करना चाहते थे। उत्तर प्रदेश में (उस समय के संयुक्त प्रान्त में) भी उनका विस्तृत दौरा हुआ। प्रान्तीय कांग्रेस समिति के सभापति श्री जवाहरलाल थे और मैं सचिव था। वह प्रयाग के थे, मैं काशी का था। उन दिनों डाक, तार तथा टेलीफोन से मेरा उनका सम्पर्क रोज का था। गांधीजी के दौरे का कार्यक्रम हम दोनों ने मिलकर बनाया और बीच-बीच में हम दोनों या हममें से एक उनके साथ भी हो लेते थे। दौरा करते हुए सब लोग मसूरी पहुंचे। मुझे सिर-दर्द का कष्ट सदा से ही रहा है। जवाहरलालजी ने मुझसे एक बार कहा कि उन्हें सिर का दर्द कभी हुआ ही नहीं। वह जानते ही नहीं, यह क्या रोग है। अक्तूबर महीने का अन्त था। मसूरी में काफी सर्दी पड़ रही थी। रात्रि को मेरे सिर में बड़ा दर्द होने लगा।

श्री जवाहरलाल और मैं दोनों होटल के एक ही कमरे में ठहरे थे। महात्मा गांधी और उनके साथियों का शिविर अलग था। मैं बिस्तर पर पड़ गया। मेरा नौकर मेरा सिर दबा रहा था। रात्रि को दस बजे का समय रहा होगा। जवाहरलालजी कमरे में आये और मुझे ऐसा पड़ा हुआ पाया। हाल जानने पर वह फौरन बाहर निकले। कम-से-कम एक मील जरूर चले होंगे जब उन्हें केमिस्ट की दूकान मिली। वहां से दवा खरीदकर ले आये। मुझे उसकी दो गोलियां खिलाईं। मेरी पीड़ा थोड़ी ही देर में शान्त हुई। मैं सो गया। एक बार सन् १९३३ में प्रान्तीय कांग्रेस कार्यकारिणी में एक साथी काशी विद्यापीठ के अध्यापक श्री रामशरणजी को यकायक सिर में दर्द उठा। जवाहरलालजी स्वयं उनका सिर दबाने लगे और पीड़ा की नसों पर अमृतांजन रगड़ने लगे। प्रधान मन्त्री की अवस्था में, ऐसी ही समिति में श्री पुरुषोत्तमदास टंडन को सहसा कष्ट में पाकर उनके हाथ-पैर दबाने लगे। इन घटनाओं से मालूम होता है कि जवाहरलालजी को अपने मित्रों का कितना ख्याल था। उनके लिए वह कितना कष्ट उठाने को तैयार थे। उनके हृदय में पीड़ितों के लिए कितनी सहानुभूति थी। उनको ऐसे मामलों में किसी प्रकार की झूठी शान नहीं थी।

... ...

उन्हीं दिनों की बात है। एक बार मैं उनके यहां आनन्द-भवन में ठहरा हुआ था। स्नान करने के बाद उनके स्नानागार में अपना साबुन छोड़ आया। कुछ दिनों बाद उन्होंने एक नवयुवक को मेरे पास भेजा, जिन्होंने पीछे चलकर काफी नाम कमाया और उसी समय विश्वविद्यालय से उच्च परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सार्वजनिक क्षेत्र में आने के इच्छुक थे। उनके साथ मेरा साबुन भी भेज दिया और कहलाया कि यह नवयुवक होनहार प्रतीत होते हैं, प्रान्तीय कांग्रेस के मन्त्री की हैसियत से मुझे उनका उपयोग करना चाहिए। यह घटना इस बात को सिद्ध करती है कि वह छोटी-छोटी बातों का कितना ध्यान रखते थे। भूल से छूटे हुए साबुन को उन्होंने बड़ी फिकर से वापस किया। वह छोटे-मोटे लोगों की भी बहुत फिकर करते थे। एक होनहार युवक को उन्होंने उत्साहित किया कि सार्वजनिक क्षेत्र में आये और काम करे।

... ...

.सन् १९३० में वह अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष थे और मैं मंत्री। अहमदाबाद में महात्मा गांधी के यहां अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक होनेवाली थी। नमक-सत्याग्रह की तैयारी थी। यह तय हुआ था कि मैं भी इलाहाबाद चला जाऊं और वहां से दोनों साथ ही अहमदाबाद जायं। जिस दिन मैं इलाहाबाद पहुंचा, वह होली का दिन था। होली खेलने का जवाहरलालजी को बड़ा शौक था। प्रधान मन्त्री की हैसियत से भी वह इसे खूब खुलकर खेलते थे। मेरे पास जब रंग की पिचकारी लेकर सब लोग पहुंचे तो मैंने कहा कि दो ही तीन धोती-कुर्ते मैं लेकर आया हूं। अहमदाबाद जाना है। मुझे रंग से बचाया जाय। पर कौन सुनता? मेरी धोती पर इतना रंग लगा कि मैं उसे वहीं छोड़कर चला गया। कुछ दिन बाद प्रतापगढ़ में सार्वजनिक सभा थी, जिसमें मैं काशी से गया था और जवाहरलालजी प्रयाग से आये थे। उस समय उन्होंने अपना बक्स खोलकर मेरी धोती वापस की। इसे वह अच्छी तरह धुलाकर और साफ कराकर लाये थे। दिन-रात सार्वजनिक कार्य में व्यस्त कौन दूसरा पुरुष ऐसा होगा, जो इतना ख्याल रखे और छोटी-छोटी बातों को भी इस प्रकार सम्पन्न करे? वह ऐसा करते थे, इसी कारण बड़े-से-बड़ा काम भी वह कर लेते थे।

... ...

आज विगत ४७ वर्षों की व्यक्तिगत मैत्री और सार्वजनिक सहयोग की कितनी ही स्मृतियां जागृत हो रही हैं।

पिछले साल की बात है। दोपहर के भोजन के बाद दिल्ली में हम प्रधान मंत्री के निवास-स्थान पर बैठे बातचीत कर रहे थे। मैंने जवाहरलाल से पूछा, "१९१७ में श्रीमती बेसेंट के होमरूल आंदोलन से सक्रिय संबंध के बाद से हम दोनों राजनैतिक जीवन में साथ-साथ रहे हैं। एक दूसरे के अच्छे दोस्त भी हैं। आपकी याददाश्त में उस वक्त का कोई और आदमी भी है, जो जिन्दा है, और हमारे बीच है?"

उन्होंने सिर उठाया, कुछ सोचा और बोले, "जहांतक मुझे याद है, कोई भी जिन्दा नहीं है।"

मैंने कहा, "कितने काबिले-रहम बात है कि हमने आज इतने अर्से तक साथ-साथ काम किया और आज हालत यह है कि देश में जो कुछ हो रहा है उसके बारे में हमारे दृष्टिकोण भिन्न हैं।"

फिर हममें से कोई न बोला और हम बिछड़े तो दिलों में उदासी का पुट था।

... ...

इस एक बरस के दौरान हम यदाकदा एक-दूसरे को पत्र लिखते रहे, लेकिन मिले सिर्फ एक बार, वह भी एक ट्रस्ट की औपचारिक बैठक में, जिसके हम दोनों सदस्य थे। और तब वह देहरादून आये (२३ से २६ मई), जहां मैंने शहर से ऊपर मसूरी रोड पर एक कुटियानुमा मकान बना रखा है। मैं लगभग ७४ वर्ष का हूं—जवाहरलाल से नौ महीने छोटा। मुझे अखबारों के जरिये पता चला कि वह देहरादून आ रहे हैं। वह २३ मई को दोपहर से कुछ पहले पहुंच गये। इसके फौरन बाद एक व्यक्ति दो बड़े-बड़े सरदे भेंट लेकर आया। मैंने उससे प्रधान मंत्री का हालचाल पूछा। हाल ही में अखबारों में उनकी जो तस्वीरें छपी थीं, उन्हें देखकर मेरे जैसे पुराने दोस्त को उनकी सेहत के बारे में चिन्ता होनी स्वाभाविक ही थी।

इसके फौरन बाद डाक आई। ढेरों पत्रों में जवाहरलाल का २१ मई का लिखा हुआ पत्र था। लिखा था :

प्रिय प्रकाश,

परसों २३ मई को तीन दिनों के लिए देहरादून आने का इरादा है। यद्यपि मैं पूरा आराम करने के लिए आ रहा हूं, और घूमने-फिरने का खयाल नहीं है, फिर भी इन तीन दिनों में आपसे मिलने की कोशिश करूंगा। मैं वहां पहुंचने पर आपको टेलीफोन करूंगा।

सस्नेह

जवाहरलाल

इसके बाद मेरे निवास-स्थान के इर्द-गिर्द पुलिस की गतिविधियां आरम्भ हो गईं। मेहतरों की फौज सड़क और आस-पास की जगह साफ करने लगी। एक पुलिस अफसर ने, जो मेरे यहां टेलीफोन करने आया था, बताया कि प्रधान मंत्री कल दोपहर बाद आपसे मिलने आयंगे।

दूसरे दिन सुबह सरकारी सरगर्मियों की रफ्तार और भी तेज हो गई। डिवीजन का कमिश्नर मिलने आया, इसके बाद कलक्टर और जिला सुपरिन्टेंडेंट पुलिस भी आये। उन्होंने कहा, "प्रधान मंत्री यहां आना चाहते हैं, लेकिन डाक्टरों का खयाल है कि वह बहुत कमजोर हैं और उन्हें इतना लम्बा मोटरमार्ग नहीं तय करना चाहिए। क्या यह मुमकिन है कि आप उनके यहां पहुंचने से पहले ही सर्किट हाउस पहुंच जायं ?"

"बड़ी खुशी से" मैंने जवाब दिया, "लेकिन अगर उनकी तबीयत ठीक नहीं है और आराम के लिए यहां आये हैं तो मैं उन्हें तकलीफ नहीं दूंगा।"

"आपको कोई एतराज न हो तो इन्दिराजी से टेलीफोन पर बात कर लीजिये।" उन्होंने कहा।

उन्होंने टेलीफोन मिलाया। मैंने लाडली बेटी से पूछा, "पापा की सेहत कैसी है ?" मुझे बताया गया, वैसे तो ठीक हैं, लेकिन कमजोर हैं। यह तय पाया कि मैं शाम के पांच बजे सर्किट हाउस पहुंच जाऊं, लेकिन अगर वह मेरे यहां जरूर जाना चाहते हों तो फोन से सूचना दे दी जायगी। फिर कुछ देर बाद फोन आया कि आप आ जाइये, इन्तजार किया जायगा।

मैं गया। इन्दिराजी मुझे उनके दफ्तर के कमरे में ले गईं, जहां बिजली के लैम्प-तले जवाहरलालजी काम कर रहे थे। जैसे ही मैं अन्दर दाखिल हुआ, वह उठ खड़े हुए। सदा की भांति गले मिलने के बाद हम बाहर बरामदे की ओर चल पड़े। जनवरी में वह भुवनेश्वर में एकाएक बीमार हो गये थे। उसके बाद मैं उनसे नहीं मिल सका। पहले कभी भी उन्हें ऐसी हालत में नहीं देखा था। उनके कंधे लटक-से गये थे, कमर झुक गई थी, वह आहिस्ता-से और मुश्किल-से चल पा रहे थे।

मैंने कहा, "जवाहरलाल, मैंने पहले कभी तुम्हें ऐसी हालत में नहीं देखा था, न इसकी कल्पना कर सकता था। मुझे तो रोना आता है।" दो आंसू मेरे गालों पर लुढ़क गये। हम बरामदे में बैठ गये और बीते दिनों की बातें करने लगे, जैसाकि अक्सर दो पुराने दोस्त देर से मिलने पर किया करते हैं। वह चुप थे और उनकी यह चुप्पी असाधारण थी। पहले जब कभी मिलते थे, बोलते वह और सुनता मैं। उस दिन मैं ही बोलता रहा, वह गुपचुप-से होकर सुनते रहे।

मैंने उन्हें बताया कि आज़ादी मिलने के बाद ऊंचे ओहदे पर रहते हुए मुझे कभी यह पता नहीं चला था कि आम आदमी को स्वराज्य से क्या मिला। वह तो तब मालूम हुआ जब मैंने १९६२ में महाराष्ट्र के राज्यपाल के पद से अवकाश ग्रहण किया। यद्यपि चारों तरफ मेरी इज्जत हुई, लोगों ने मेरा बड़ा ख्याल किया, तो भी मैं यह कहूंगा कि गैर-सरकारी लोगों की हालत अच्छी नहीं है। जैसे-जैसे सरकार अधिक-से-अधिक सत्ता अपने हाथ में लेकर जन-जीवन में हस्तक्षेप कर रही है, एक आम नागरिक का जीना मुश्किल हो रहा है। संयुक्त सदाचार समिति बनाकर भ्रष्टाचार को जड़ से खत्म करने के लिए श्री नन्दा की कोशिशों का जिक्र करते हुए मैंने कहा, "मुझे उनके सेक्रेटरी का खत मिला है कि मैं भी समिति में शामिल हो जाऊं। मैं जरूर हो जाता, लेकिन मुसीबत यह है कि वह मुझसे एक शपथ-पत्र पर हस्ताक्षर करने को कहते हैं कि मैं रिश्वत लूंगा-दूंगा नहीं और न रिश्वत लेने-देनेवालों से कोई वास्ता रखूंगा।

मैंने हँसते हुए प्रधान मन्त्री से कहा कि मैं यह तो कसम खा सकता हूं कि मैं रिश्वत नहीं लूंगा, लेकिन अगर कहीं जाना बहुत जरूरी हो और रिश्वत के बिना टिकट मिलना नामुमकिन हो तो मैं यह शपथ नहीं ले सकता कि टिकट लेने के लिए घूस नहीं दूंगा और न अपने उस घरेलू कर्मचारी को निकाल सकता हूं, जिसका बयान है कि एक कागज पर दस्तखत करवाने के लिए सब-रजिस्ट्रार ने रिश्वत मांगी, जो उसको देनी पड़ी। अगर मैं अपने नौकर को जवाब दे दूं, तो मुझ विधुर को खाना कौन देगा? अगर किसी रेलवे अधिकारी से मुझे कोई शिकायत हो तो उच्चाधिकारी को अवश्य लिखूंगा, लेकिन जब मैंने अपने नौकर से घूस मांगनेवाले उस सब-रजिस्ट्रार का विवरण मांगा, ताकि मुख्य मंत्री से उसकी शिकायत कर सकूं तो मेरे कर्मचारी ने इन्कार कर दिया। बोला, "हुजूर, नदी में रहना और मगर से वैर?"

इसपर प्रधान मंत्री खूब हँसे और कहने लगे कि आखिर इलाज क्या है? मैंने अपना घिसा-पिटा नारा दोहरा दिया कि जनता को देशभक्ति और समाजसेवा की शिक्षा दी जाय।

मैंने एस्टेट ड्यूटी उत्तराधिकार प्रमाणपत्र-संबंधी कानूनों आदि का उल्लेख किया कि वे कितने सख्त हैं और इनसे संबंधित अधिकारियों का रवैया कितना असहानुभूतिपूर्ण है। मैंने अपने परिवार के कुछ उदाहरण दिये कि एक के बाद एक कई मौतें होने पर दस साल के अन्दर-अन्दर एक ही सम्पत्ति पर हमें सात एस्टेट ड्यूटी टैक्स देने पड़े।

यह सब सुनकर उन्हें खेद हुआ। वह इन बातों को नोट कर रहे थे। बड़े दुःख से मैंने हाल ही की कुछेक विमान-दुर्घटनाओं का उल्लेख किया, जिनमें नौजवान फ्लाइंग पाइलट आफिसर मारे गये। एक दुर्घटना में मेरा धेवता मारा गया, जो मेरी बड़ी लड़की का इकलौता था। इस संबंध में सरकारी रवैया बताते हुए मैं कुछ कटु भी हो गया। मैंने कहा, "परिवार को जांच-पड़ताल की रिपोर्ट तक नहीं दिखाई गई।"

वह जरा सीधे होकर बैठ गये, बोले, "वह तो माता-पिता को प्राप्त होती है।"

मैंने कहा, "रक्षा-मंत्री ने उसे दिखाने से इन्कार कर दिया। हम उस लड़के की मौत पर अटकलें लगाते रह गये।"

जब मैंने राज्यपालों के प्रति मंत्रियों की अशिष्टता, सरकारी सचिवों की गुस्ताखियों और हमारे विदेशी दूतावासों में तैनात अधिकारियों के दुर्व्यवहार का जिक्र किया तो जवाहरलाल इन सबकी जांच करवाने के बारे में सोचने लगे। उन्होंने मुझसे मेरे अनुभव के आधार पर विवरण मांगे, जो मैंने उन्हें दिये।

मैंने महसूस किया कि मेरी बातों से वह कुछ उदास-से हो गये हैं। इसपर मैंने विषय बदलकर पुराने जमाने की सुखद बातें शुरू कर दीं कि किस तरह हमने आज़ादी के लिए काम किया, आजादी हासिल करना इतना मुश्किल नहीं था, जितना उसे कायम रखना। हमने इलाहाबाद और बनारस में अपने घरों की, घरेलू नौकरों की और अपने बच्चों की बातें की।

बड़ी जल्दी एक घंटा बीत गया। मैं जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। वह अपने कमरे में गये। कोट पहना और मुझे घर तक छोड़ने के लिए तैयार हो गये। हम कार में जा रहे थे कि एक जगह सड़क पर बांस का फाटक-सा लटक रहा था, जिसे चुंगीवाले रास्ता बन्द कर चुंगी वसूल करते हैं। मैंने कहा, "यह स्वराज्य की खास देन है कि हर जगह लोग मेरा मान करते हैं, लेकिन इस चुंगी पर नहीं। यहां तैनात आदमी पैसे लेकर ही आगे बढ़ने देता है और कभी-कभी जरूरत से ज्यादा इन्तजार करवाता है। जब मैं सरकार में ऊंचे ओहदे पर था तो मुझे कुछ नहीं देना पड़ता था और फौरन ऐसे रास्तों से गुजर जाता था। अब नहीं।" प्रधान मंत्री मेरे इस मज़ाक पर हँसने लगे।

आठ मील का रास्ता जल्दी तय हो गया। अपने घर विश्रान्ति कुटीर के पुस्तकालय में एक और घंटा विताया। हमने जलपान किया। उन्होंने मुझे ऐसी खूबसूरत जगह चुनने पर बधाई दी। मैं उन्हें अपनी योजनाएं बताता रहा। बड़ी उत्सुकता से उन्होंने कुछ कमरों का चक्कर लगाया, जो अभी बन रहे हैं। उन्होंने पूछा, "आजकल क्या-क्या पढ़ रहे हो?" मैंने आध दर्जन किताबों के नाम गिना दिये और यह भी बताया कि मैं अखबारों के लिए क्या-क्या लिखता हूं।

मैंने मिन्नत के लहजे में कहा, "आप ज्यादा काम का बोझ अपने पर न लें।" ऊपर मैंने जिस पत्र का उल्लेख किया है उससे पहले ३ मई का लिखा ख़त मिला था :

प्रिय प्रकाश,

मैं कल गण्डक बांध के लिए नेपाल की सीमा पर भैंसालोटन जा रहा हूं। नेपाल के राजा वहां आ रहे हैं। उम्मीद है, दूसरे दिन लौट आऊंगा। जनवरी के शुरू में भुवनेश्वर से आने के बाद मैं दिल्ली से बाहर नहीं गया हूं।

शुभ कामनाओंसहित,

सस्नेह
जवाहरलाल

भैंसालोटन के नाम पर हम खूब हँसे। मैंने झिड़की दी कि इतने लम्बे सफर मत किया कीजिये। मज़ाक-मज़ाक में मैंने यह भी कहा कि अगर आप अपने कन्धों से लाओस और इण्डो-चीन के मामले उतारकर किसी और के सुपुर्द कर दें—आपने दुनियाभर की मुसीबतों का ठेका थोड़े ही ले रखा है,—तो

मेरी तरह सीधे होकर खड़े हो सकेंगे। पिछले तीन-चार बरसों में मैं कई बार उनसे यह बात कह चुका था, लेकिन उन्होंने मेरी एक न सुनी।

वह जाने को हुए। मैं उन्हें फाटक तक छोड़ने गया। मिलते-बिछुड़ते वक्त हम हमेशा गले मिलते थे। उस वक्त बिछुड़ते हुए वह मुझसे गले मिले और इस तरह मिले कि पिछले पैंतालीस सालों में कभी नहीं मिले थे। क्यों? उस समय नहीं समझ सका। मुझे क्या पता था कि हम एक दूसरे को अन्तिम बार अपनी बाहों में लिये हुए हैं और वह मुझे आखिरी अलविदा कह रहे हैं। मैं इस बात का श्रेय नहीं लेना चाहता कि वह अलविदा कहने के लिए खास तौर से देहरादून आये थे। लेकिन हुआ तो यही। यह २४ मई की बात है। वह २६ मई को देहरादून से चले गए और २७ को चल बसे!

कितनी अजीब बात है कि उस दिन देहरादून में देर से मिलनेवाले दिल्ली के अखबारों में यह खबर पढ़कर कि वह दिल्ली लौट गये हैं, मैंने कलम और काग़ज़ उठाया कि लिखूं कि आपके मेरी कुटीर में आने पर मुझे कितनी खुशी हुई। तभी घर से एक व्यक्ति दौड़ा-दौड़ा आया और बोला देहरादून से फोन आया है कि प्रधान मन्त्री का देहावसान हो गया। अपने कानों पर यकीन न हुआ, लेकिन बुरी खबरें अक्सर झूठी नहीं होतीं। यही तो हमारी बदकिस्मती है और इस तरह जवाहरलाल, विश्वमंच का महान नायक, मेरा दोस्त, मेरा साथी, चल बसा। मुझे अफसोस नहीं है कि वह चले गये, क्योंकि संसार के सारे दुख-दर्दों से उन्हें मुक्ति मिल गई है। मुझे दुःख है तो इस बात का कि मैं अभी तक जिन्दा हूं। वह मेरे सबसे पुराने मित्रों में थे, मेरा एकमात्र सहारा। वह भी चले गये। मैं आज उदास हूं, बहुत उदास। ईश्वर को यही मंजूर था। ●

नेहरू के प्रति

युद्ध के वातावरण पर शान्ति के आह्वान
क्रुद्ध गर्जन पर सुखद बागेश्वरी की तान,
वैमनस्यों की धरा पर प्रीत की सौगन्ध
श्वास की अन्तिम घड़ी तक कर्म के अनुबन्ध,

काल की सीमित परिधि पर पार वाली दृष्टि,
भाग्य-लेखे पर विहंसती आदमी की सृष्टि
सेतु तम के सिन्धु पर, ओ, आस्था, विश्वास के,
कल हमारे, आज हो तुम पीढ़ियों, इतिहास के।

—रामानन्द दोषी

अब कहां जाऊं ?

भगवान सर्वव्यापक है इसका विश्वास तो सभीको है, पर अनुभव शायद ही किसीको हो। अपने ४४ वर्ष के साथी और नेता के निधन के समय मुझे अपने जीवन में पहली बार अनुभव हुआ कि व्यापकता का वास्तविक अर्थ क्या है। उन्हें गये कुछ समय हो गया है, पर मन की तली में वह मुस्कराती, शरमाती, धमकाती और उकसाती सूरत, छाती पर गुलाब लगाये, अभी तक ऐसी समाई हुई है कि भुलाई नहीं जाती। जब कोई भी समस्या सामने आती है तो पुरानी आदत के अनुसार अनायास जवाहरलाल से मिलने, टेलीफोन करने या चिट्ठी लिखने की प्रवृत्ति होती है, फिर जागृत बुद्धि कहती है––"पागल" !

'व्यापक' के अर्थ हैं 'छवि का प्रसार'। जैसे मां के मन पर उसका बच्चा व्याप्त रहता है, उसी प्रकार जवाहरलाल नेहरू भी अपने साथियों के मन पर छाये हुए हैं। शरीर तो नष्ट हो गया, पर उसकी छवि तो हमारे हृदयों पर छाप लगाये बैठी है। जवतक हम लोगों के दिल ज़िन्दा हैं, जवाहरलाल ज़िन्दा हैं। पर यह क्या बात है कि मुझे उनकी मरने की खबर से जितना धक्का लगा, उससे कहीं अधिक दुःख उनकी दाहक्रिया से लौटने पर हुआ। संगम में अस्थि-प्रवाह करने के बाद उससे भी अधिक। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, दुःख बजाय कम होने के बढ़ता ही जाता है।

महात्मा गांधी ने इस अंधकारमय भारत की सेवा के लिए हज़ारों-लाखों व्यक्तियों को प्रेरणा देकर स्वतंत्रता प्राप्त की; और जैसे दीपावली में दीपमालाएं सजाई जाती हैं, बापू ने इसी तरह भारत के कोने-कोने में अपने अनुयायियों को प्रहरी बनाकर रखा था। दीपावली के लट्टू की भांति हम सब दमक रहे थे कि आज जवाहरलाल के निधन से हमारा प्रकाश-स्रोत उखड़ गया और सारे लट्टू बुझ गये; पर चूंकि फ्यूज़ नहीं हुए थे, इसलिए हमने फौरन ही श्री लालबहादुर शास्त्री को अपना प्रकाश-स्रोत बना लिया और फिर से टिमटिमाने लगे।

मुझे पूरी तरह याद है कि खिलाफत-आन्दोलन के समय एक बार जवाहरलाल बिजनौर आये। उन दिनों मैं ज़िला कांग्रेस कमेटी का मंत्री था। साथियों की एक टोली के साथ कांग्रेस के सदस्य बनाने और 'तिलक स्वराज्य फण्ड' के लिए चन्दा इकट्ठा करने बाज़ार से निकले तो एक दूकान के सामने जवाहर-लालजी ने अपना कुर्ता फैलाकर भिक्षुक के रूप में चन्दा मांगा। लोगों ने धड़ाधड़ रुपये और पैसे फेंककर चरण छूना शुरू कर दिया––"मोतीलाल का बेटा हमारी दूकान पर भीख मांगे !" लोग पागल बन गये। इसी तरह रायबरेली और प्रतापगढ़ के ज़िले में धोती-चप्पल पहने गांव-गांव किसान-आन्दोलन के सिलसिले

में पैदल सफर को निकले थे। वे दिन याद करके मन को धक्का लगता है। भगवान फिर से वही देश-भक्ति और सेवा-भाव का उत्साह जागृत कर दे।

कांग्रेस में शायद अकेला मैं ही उनका एक पुराना साथी ऐसा रह गया था, जिसके साथ वह खुली डांट-डपट कर लेते थे और मेरी भी हर तरह की कड़वी-मीठी सुन लेते थे। असल बात यह थी कि हम थे तो एक ही थैली (गांधी-परिवार) के चट्टे-बट्टे, पर वह विलायत के पढ़े हुए थे और मैं ठेठ देहाती। हममें से जो खुशामद के द्वारा काम निकालनेवाले थे, उनका काम तो हो जाता था, पर मुझे पता है कि जवाहरलाल के दिल में उनकी खाक भी कदर नहीं थी। वह उनको 'छोटा आदमी' कहते थे। जैसे खाने के बाद इलायची या पान खा लेते हैं, ऐसे ही दिन-भर की थकावट के बाद यदि कोई अपनी आंखोंदेखी बातों पर उनकी खुशामद न करके किसी दूसरे से सुनी हुई प्रशंसा की चर्चा करे तो शौक से सुन लेते थे। एक आदत और थी। वह यह कि यदि आप उनके किसी साथी या मित्र की बुराई करें तो चाहे वह सच्ची भी क्यों न हो, वह जान-बूझकर कहा करते थे, "मैं उनको आपसे ज्यादा जानता हूं। आपको ऐसी फजूल की बातें नहीं करनी चाहिए।" मुझसे हर तरह की कच्ची-पक्की बात हो जाती थी, क्योंकि वह मुझे 'बेवकूफ' मानते थे और बेवकूफ आम तौर पर ईमानदार होते हैं।

... ...

एक बार जब मैं सुरक्षा संगठन मंत्री था, हम सब कांग्रेस पार्टी के लोग होली खेलने जवाहरलालजी के घर पर गये। होली का त्योहार तो प्रेम के हुर्रे बखेरने का होता ही है, इस दिन सब खता माफ समझी जाती है। सब लोग जवाहरलालजी के मुंह पर हरा, पीला, लाल गुलाल लगा लगाकर गले मिल रहे थे। पन्तजी भी वहीं खड़े थे। जब मेरी बारी आई तो गुलाल मलने के बाद गले मिलते हुए मैंने जवाहरलाल की लम्बी-सी चुमकारीदार चुम्मी काट ली। प्रधान मंत्री के गालों को चूमना कोई आसान काम था? सब साथी हक्के-बक्के-से रह गये। उनकी बचपन की आदत, अपने रंगे मुंह को रूमाल से पोंछते हुए बोले, "यह क्या बदतमीजी है! मुंह जूठा कर दिया।" मैंने कहा, "माफ कीजिये, कश्मीरी गाल हिन्दुस्तान-भर में इसी काम आते हैं।" सबने "होली है"—कहकर मजाक उड़ा ली। ऐसे थे वह लाल-लाल गाल, गाली गुस्सा तो करते थे, पर चूमनेवालों को बड़े चाव से चुमकारकर अपने पास बिठा लेते थे।

... ...

मैं उसी पेन से लिख रहा हूं, जो जवाहरलालजी की जेब से चुराई थी। उनको कमजोरी बहुत आ गई थी। कांग्रेस पार्लामेंटरी पार्टी की बैठक उन्हींके घर पर हुई। उनके चेहरे को देखकर सब सुस्त-से पड़ गये थे। ऐसा लगा, हमारी इस मौन अवस्था को देखकर इनके मन पर बुरा असर पड़ेगा। बस, मैं उठकर उनके नजदीक की कुर्सी पर जा बैठा। वह सामने गलीचे पर बैठे हुए मित्रों के उतरे हुए चेहरों को देख रहे थे कि मैंने लम्बा हाथ बढ़ाकर उनकी जेब में जो सुन्दर-सा बॉल पेन लगा था, खेंचकर अपनी जेब में सजा लिया। उन्होंने हँसते हुए कहा, "यह क्या!" मैंने कहा, "अब 'जेब-कतरेपन' का अभ्यास कर रहा हूं।" उन्होंने कहा, "तुम इस कला में भी सफल नहीं हो सकते। जेब ऐसे काटनी चाहिए कि किसीको पता न चले। तुम तो डकैती के योग्य हो।" बात आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा, "पार्टी की राय

है कि आपको ज्यादा काम नहीं करना चाहिए। जबतक आपके हाथ में कलम रहेगी, आराम नहीं कर सकोगे। इसलिए जिसकी जेब उसीकी कलम।" वह बोले, "अच्छा भाई, लड़ते क्यों हो, ले लो।" मैंने कलम हाथ से लेकर कहा, "शर्म नहीं आती, भारत के प्रधान मंत्री और यह चवन्नी वाली कलम!" बोले, "कांग्रेस सदस्य भी तो सब चवन्नीवाले कहलाते हैं।"

... ...

इसी तरह १९५२ में जब मैं आय-व्यय (रेवन्यू एंड एक्सपेण्डीचर) का मंत्री था तो आएदिन किसी मंत्रालय से खर्चे की स्वीकृति देने में मतभेद हो जाने पर मुझे केबिनेट में जाना पड़ता था। एक दिन मैं तीन मिनट देर करके पहुंचा तो जवाहरलाल बोले, "मंत्री होते हुए भी समय की पाबन्दी नहीं करते?" मैंने कहा, "अपने गृह-मंत्री डा० काटजू से पूछो कि उन्होंने लोक-सभा से निकलते ही मेरी जेब से घड़ी छीनकर अपनी जब में रख ली और ले गये। मैं बिना घड़ी के रह गया। फिर समय की पाबन्दी कैसे करूं!" बोले, "अच्छा, मैं तुमको एक घड़ी दूंगा।" दो महीने बीत गये, पर घड़ी नहीं मिली। एक दिन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने राष्ट्रपति-भवन में किसी समारोह के अवसर पर चाय दी। काफी भीड़ थी। मैंने जवाहरलालजी का हाथ पकड़कर कहा, "ज़रा राजेन्द्रबाबू के पास तक चलो।" सामने खड़ा करके बोला, "राष्ट्रपतिजी, एक दावा महावीर त्यागी बनाम पं० जवाहरलाल नेहरू वल्द पं० मोतीलाल नेहरू आपकी अदालत में पेश है।" जवाहरलाल बोले, "मुकदमे से पहले आपस में समझौता नहीं हो सकता?" मैंने कहा, "नहीं। मेरा दावा है कि हुज़ूर के गृहमंत्री एक कश्मीरी सज्जन हैं। उन्होंने पार्लामेंट में मेरी जेब से घड़ी निकाल ली। जब एक दिन मुझे केबिनट जाने में देर हो गई तो दूसरे कश्मीरी आपके प्रधान मंत्री ने मुझे एक घड़ी देने का वायदा किया, पर आज दो महीने हो गये, घड़ी नहीं मिली।" जवाहरलाल ने राष्ट्रपति के सामने गर्दन झुकाकर कहा, "आई प्लीड गिल्टी (मैं अपराध स्वीकार करता हूं।) राजेन्द्रबाबू ने हँसकर कहा, "अब तो तुम्हारी डिग्री हो गई। अगर घड़ी नहीं मिली तो कुर्की करा सकते हो।"

अगले ही दिन जवाहरलाल ने बुलाकर एक घड़ी निकालकर मेरे हाथ में रख दी और बोले, "जानते हो, यह किसकी है? यह 'भूतनी' ने मुझे भेंट की थी।" मैंने पूछा, "भूतनी कौन?" बोले "भूल गये! प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी में तुमने कहा था कि मेरे सिर पर भूतनी सवार हो गई है।"

बीस-पच्चीस वर्ष की कही तीखी बात उन्हें अभी तक याद थी। बात असल में यह थी कि चांकाई शेक उन दिनों चीन के नेता थे और चीन की क्रान्ति में उनका बड़ा हाथ था। हम लोग अपने देश के स्वतंत्रता-संग्राम में लगे थे। मैडम चांकाई शेक भारत आईं तो हम लोगों ने उनका बहुत स्वागत किया था। उस दिन प्रदेश कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी में पं. जवाहरलाल आध घण्टे तक मैडम चांकाई शेक के ही किस्से सुनाते गये। और भी कई विषयों पर विचार करना था। मैं मंत्री था। इसलिए मुझे झुंझलाहट आ गई तो मैंने ज़ोर से कहा, "और भी बहुत आवश्यक बातों पर विचार करना है। यह मैडम चांकाई शेक भूतनी की तरह तुम्हारे सिर पर सवार हो गई हैं कि उसीके किस्सों में सारा समय खो दिया!" पन्तजी, बालकृष्ण शर्मा, आचार्य नरेन्द्रदेव और टण्डनजी आदि सब ठहाका मारकर हँस पड़े और जवाहरलाल भी

हक्के-बक्के-से होकर मुस्करा दिये। घड़ी लेते हुए मैंने कहा, "जब मैडम चांकाई शेक तुम्हारे मन से उतर गई तो उसकी घड़ी मेरे हिस्से में आई।"

घड़ी बहुत कीमती है। अभी मेरे पास सुरक्षित है।

... ...

मरने से सवा महीने पहले टेलीफोन आया कि आज शाम के ५ बजे आ जाओ, प्रधान मन्त्री मिलना चाहते हैं। मेरे नाती (अनिलकुमार, ११ वर्ष) ने कहा, "पापा, तुम्हें मिनिस्ट्री दें तो मत लेना।" मैंने पूछा, "क्यों न लूं!" बोला, "जब अच्छे लोगों ने कामराज योजना में मिनिस्ट्री छोड़ दी तो तुम्हारे लिए वह ठीक नहीं।" मैं बहुत खुश हुआ अपने नाती की समझ पर।

५ बजे प्रधान मंत्री के घर पहुंचा तो आधे घण्टे कश्मीर आदि की बातें करने के बाद बोले, "हां, मुझे तुमसे खास बात यह कहनी थी कि पूर्वी बंगाल के शरणार्थियों की समस्या बहुत जटिल होती जा रही है। अब तुम मंत्रिमण्डल में आ जाओ और इस काम को संभालो।"

मंत्रिमण्डल से निकले सात वर्ष हो चुके थे। फिर भी दिल के बुझे हुए कोयले भड़क उठे। मित्रों से कहा करता था कि मंत्रित्व करने की इतनी इच्छा नहीं कि जितनी उसके न्यौते को ठुकराने की है। बस एकदम अपने नाती की बात दोहरा दी।

खूब हँसे और बोले, "उमा के लड़के ने ऐसा कहा? तो तुम मेरी बात मानोगे या उस बच्चे की?"

आपस में हम एक-दूसरे को 'तुम' कहकर बोलते थे। मैंने कहा, "जवाहरलालजी, बीमारी के कारण तुम्हारा दिमाग कमजोर पड़ गया है क्या? अच्छा-खासा पार्टी का काम चला रहा हूं। क्या तुम्हारी केबिनट पार्टी से भी अधिक महत्व की है! लोग मुझे क्या कहेंगे?"

उन्होंने कहा, "मैं बताऊं, क्या कहेंगे! लोग कहेंगे कि यह बड़ी लम्बी-लम्बी बात करते थे। जब इम्तिहान का वक्त आया तो बुजदिलों की तरह पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए।"

मैंने कहा, "लोग तुम्हें भी तो कहेंगे कि क्योंकि लम्बी-लम्बी बात करता था, इसलिए मिनिस्टर बनाकर इसका मुंह बन्द कर दिया।"

बोले, "यह हो सकता है, पर कुछ लोग ऐसा भी कहेंगे कि देखो जवाहरलाल कितना उदार-चित्त है कि अपने नुक्तेचीन के लिए भी जगह रखता है।"

मैंने पूछा, "क्या तलाक हो चुकने के बाद भी मियां बीवी शादी कर सकते हैं?"

बोले, "हां, बदचलन हों तो कर सकते हैं।"

मैंने कहा, "फिर तो हम दोनों ही बदचलन हुए न!"

बोले, "बेवकूफी की बातें करोगे तो फिर सुननी पड़ेंगी।"

मैंने कहा, "अब आये हो ठिकाने पर। आज ४२ वर्ष हुए, सन् १९२२ में जब लखनऊ-जेल की ६ नं० बैरक में तुम हम लोगों को फ्रेंच पढ़ाया करते थे और हम तुम्हें बरगू मास्टर कहा करते थे, तो एक दिन किसी शब्द का उच्चारण कई बार बताने पर भी ठीक न कर सकने पर तुमने मुझे 'डैमफूल' कहा था, और फिर सन् १९२४ तक अपने सब साथियों को 'तुम बड़े चुग़द हो' कहा करते थे, फिर

एकदम चुग़द कहना बन्द कर दिया और मुझे 'बेवकूफ' 'बदतमीज', 'अनमैनरली' और 'अनकूथ' कहा करते थे। जब आपका डिफेन्स मिनिस्टर था तब भी कई बार बेवकूफ, बदतमीज कहते थे। अब मंत्रिपद से हटाते ही हम 'श्री त्यागीजी' और 'मिस्टर त्यागी' हो गये हैं। अब तो मुझे 'आप' कहकर पुकारते हो। मेरा तुम्हारा रिश्ता बदल गया है जवाहरलालजी, अब मैं तुम्हारी केबिनट में कैसे आ सकता हूं।"

मुस्कराते हुए बोले, "तो क्या तुम्हें बेवकूफ कहलाना पसन्द था?"

मैंने कहा, "हां, उसमें मुहब्बत और प्यार की बू आती थी।"

बहुत हँसे और मस्त आंखें मेरी आंखों में डालकर बड़े प्यार से मुस्कराते हुए बोले, "भाई, मुझे माफ करना, मैंने तुम्हें बेवकूफ कहना इसलिए बन्द कर दिया था कि सचाई की मज़ाक अच्छी नहीं होती है, और काने को काना नहीं कहना चाहिए।"

फिर क्या था, मुशायरे का मज़ा आ गया। दोनों हँसी में ऐसे तन्मय हो गये कि सारी शिकायतें दूर हो गईं। फिर वह बोले, "अब तो बेवकूफ कह दिया, अब तो मान जाओ।"

मैंने उनसे आज्ञा चाही कि मैं श्री लालबहादुर से सलाह कर लूं। बोले, "ज़रूर कर लो, पर कभी फिर यह न कहो कि मैंने बात छिपा ली, मैं लालबहादुर से सलाह कर चुका हूं।"

अगले दिन मैं जान-बूझकर लालबहादुर शास्त्री के पास नहीं गया। फिर उन्होंने टेलीफोन किया तो गया और जाते ही मैंने कहा, "क्यों भाई, मेरे साथ मुंशीपना कर गये न! मुझे खबर भी नहीं की और फंसवा दिया जवाहरलाल के जाल में।" बोले, "बात तो बहुत दिनों से चल रही थी, पर बिना जवाहर-लालजी की आज्ञा के मैं जिक्र कैसे करता?"

फिर बुलावा आया तो मैंने जवाहरलालजी से कहा कि श्री मेहरचन्द खन्ना के पास दो बड़े-बड़े विभाग होते हुए भी वह 'मिनिस्टर आव स्टेट' रहे और मुझे उनका आधा काम देकर केबिनट मिनिस्टर बनाओगे तो उन्हें तुमसे शिकायत होगी।"

बोले, "यह तुम ठीक कहते हो, पर अब तो मैं तुम्हें निमंत्रित कर चुका।"

मेरे यह कहने पर कि "क्या यह निमंत्रण सरकारी विज्ञप्ति है? मेरा इतना भी एतबार नहीं?" मेरे कन्धे पर हाथ रखकर बोले, "भाई, माफ करना, मेरा मतलब यह नहीं था। तुम्हारी बड़ी उदारता है। अब मैं तुम्हें मजबूर नहीं करूंगा। तुम पार्टी-संगठन का काम करो। मैं इस काम में पूरी तरह सहयोग दूंगा, मिनिस्ट्री खतम।" हम एक-दूसरे से हाथ मिलाकर विदा हो गये।

तीसरे दिन फिर बुलाया और बोले, "मैंने उस बात पर फिर गौर किया। खन्ना को क्या शिकायत हो सकती है? क्या वह नहीं जानते कि हमारी पार्टी में मेरे बाद तुम सबसे सीनियर कांग्रेसमैन हो। इसके अलावा मैं पुनर्वास विभाग के साथ कुछ पिछड़े हुए क्षेत्र शामिल करके इसकी शक्ल बदल दूंगा। अब मंजूर कर लो।"

मैंने कहा, "अच्छा, पर एक सुझाव और है कि मुझे खन्नाजी का पार्लमेन्टरी सेक्रेटरी बना दो और अखबारों में छपवा दो कि इसे मिनिस्ट्री के लिए आमंत्रित किया था। इसने मिनिस्ट्री स्वीकार न करके पार्लमेन्टरी सेक्रेटरी होना मंजूर किया।"

बड़े खुश हुए। बोले, "इससे देश में तुम्हारी ख्याति तो बढ़ेगी ही, पर कांग्रेस और सरकार की शान भी ऊंची उठेगी। पर मुझे यह विभाग अलग करना है और कोई विभाग पार्लमिन्टरी सेक्रेटरी के सुपुर्द हो नहीं सकता।"

इस तरह दस दिन तक बातें चलीं। आखिर १६ अप्रैल को मिनिस्ट्री की शपथ दिला दी। पर मुझे यह क्या पता था कि यह मिनिस्ट्री मुझे वसीयत के रूप में दी जा रही है। 'पुनर्वास' मेरे सुपुर्द करके स्वयं 'स्वर्गवास' कर गये। जब मेरे नगर देहरादून जा रहे थे तो मैंने भी अपना कलकत्ते का कार्यक्रम छोड़कर देहरादून जाना चाहा, तो फिर 'बेवकूफ' कह दिया और हिदायत कर दी कि कलकत्ते में शरणार्थियों के साथ-साथ मुस्लिम बस्तियों का भी निरीक्षण करना और लौटकर मुझे सब हाल बताना। वह आये और दिन निकलने से पहले ही बेहोश हो गये। उन्हें रिपोर्ट न दे सका। अब कहां जाऊं? ●

ज्योति-पुंज बुझा नहीं

आज जब सुना—
देश के जवाहर को
क्रूर काल के लुटेरे ने
हमसे छीन लिया—
तो शोक की शीत लहर
(२७ मई की गर्मी में भी)
भारत में फैल गई
और सबका रक्त जम गया।
आज गलियों व बाजारों में
हलचल मौन है,
बाहर की खामोशी
अन्दर चीखती है।
सब काम बन्द हो गए हैं,
केवल दिल की धड़कनें तेज हैं।
लोग खड़े हैं या चल रहे हैं,
मानो सब पुतले हैं
महाकाल की डोरी में बंधे।
सूनापन और गहरा
हो गया है;
पर, एक विश्वास
अभी हमारा है—
ज्योति-पुंज बुझा नहीं;
बस, हो गया है
बादलों की ओट में,
जो चमकता ही रहेगा
युग-युगों तक
चन्द्र की-सी तरलता
सूर्य की-सी उष्णता,
उस पुंज से
पाते रहेंगे सर्वदा।

—रत्नलाल शर्मा

नेहरू : गांधी

गांधीजी से मेरा परिचय सबसे पहले सन् १९१५ में हुआ, जब वह दक्षिण अफ्रीका से लौटकर नये-नये भारत आये थे और यहां के राजनैतिक जीवन में भाग लेने से पहले एक वर्ष तक अहमदाबाद में बैठकर उस समय की देश की परिस्थिति से पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त कर लेने की कोशिश कर रहे थे। जवाहरलालजी से मेरा पहला परिचय इसके कुछ महीने बाद सन् १९१६ में हुआ, जब मैं पांच वर्ष तक इलाहाबाद से बाहर रहने के बाद इलाहाबाद लौटा और होमरूल लीग के बंगले में बीमार पड़ा हुआ था। तबसे ही गांधीजी और जवाहरलालजी दोनों के साथ मेरा संबंध और गांधीजी के स्वाधीनता-संग्राम में सहयोग बढ़ता चला गया।

किसीने एक बार गांधीजी से पूछा कि आपके और जवाहरलालजी के विचारों में क्या अन्तर है? गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैं चाहता हूं कि अंग्रेजियत इस देश से चली जाय, चाहे अंग्रेज व्यक्तिगत हैसियत से भले ही बने रहें। इसके विपरीत जवाहरलालजी चाहते हैं कि अंग्रेज यहां से चले जायं और अंग्रेजियत बनी रहे।" गांधीजी के ये शब्द देखने में बहुत साधारण थे, किन्तु वास्तव में अत्यन्त अर्थसूचक थे। गांधीजी का अपना एक विशेष व्यक्तित्व था। धार्मिक, नैतिक और राजनैतिक, सब मामलों में उनका एक अपना दृष्टिकोण था। जवाहरलालजी का भी इन सब मामलों में अपना एक अलग दृष्टिकोण था। किन्तु, इस पर भी, गांधीजी और जवाहरलालजी में शुरू से एक दूसरे के लिए एक विशेष आकर्षण था। असहयोग-आन्दोलन के उन उत्साहभरे दिनों में मैंने स्वयं शायद सैकड़ों ही बार दोनों को साथ बैठे हुए और एक दूसरे से बात करते हुए देखा होगा। गांधीजी के चार बेटे थे। उनमें से शायद इस समय केवल रामदासजी जीवित हैं। सेठ जमनालाल बजाज को गांधीजी अपना पांचवां बेटा, बल्कि 'दत्तक पुत्र' कहा करते थे, लेकिन मेरा सैकड़ों बार का यह अनुभव है कि शायद ही कभी किसी बाप को अपने बेटे से उससे अधिक प्रेम रहा हो, जितना गांधीजी को जवाहरलालजी से था और शायद ही किसी बेटे को अपने बाप से उससे अधिक मोहब्बत रही हो, जितनी जवाहरलालजी को गांधीजी से थी।

जिस समय बिड़ला-हाउस, दिल्ली में गांधीजी को गोली लगी उस समय मेरे और गांधीजी के बीच मुश्किल से तीन फुट का फासला रहा होगा। वह सारी रात मैंने गांधीजी की लाश के पास बैठकर काटी। कोई आदमी, जिसके सीने में दिल हो, उस रात को भूल नहीं सकता। गांधीजी की मृत्यु का समाचार फैलते ही सबसे पहले सरदार वल्लभभाई पटेल आकर कमरे में दाखिल हुए। मैं और कुछ और लोग लाश के

पास बैठे थे। सरदार पटेल मेरे पास आकर बैठ गये। इसके कुछ मिनट बाद जवाहरलालजी कमरे में दाखिल हुए। जिस तरह होश उड़े हुए, लड़खड़ाते हुए पैरों से जवाहरलालजी कमरे में आये, जिस तरह एक टूटी हुई दीवार की तरह वह धम-से लाश के ऊपर गिर पड़े, जिस तरह वह उस समय दहाड़ मारकर, चीखकर, रोये और जिस तरह वल्लभभाई ने जवाहरलालजी की कमर में हाथ देकर उन्हें लाश से हटाया, वह सब करुण दृश्य आज तक मेरी आंखों के सामने है और गांधीजी के साथ जवाहरलाल के पुत्रवत् प्रेम की याद दिलाता रहता है।

दोनों के दृष्टिकोण और जीवन-आदर्शों में जो अन्तर था, वह स्वाभाविक परिणाम था दोनों की आरम्भ से अलग-अलग शिक्षा-दीक्षा का। गांधीजी एक धार्मिक घराने और धार्मिक वातावरण में पैदा हुए थे। जवाहरलालजी जिस घर में पैदा हुए थे, वह उस समय देश में पश्चिमी आचार-विचार से विशेष प्रेम के लिए प्रसिद्ध था। गांधीजी को इंगलैण्ड में रहकर भी अपनी धर्मनिष्ठ माता के भावों और आज्ञाओं का ध्यान रहता था । जवाहरलालजी इंगलैंड में रहकर वहां के उस समय के एक विशेष वर्ग के जीवन से काफी प्रभावित हो चुके थे। गांधीजी स्वभाव से ही धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य थे। जवाहरलालजी के विचार इस संबंध में बिल्कुल भिन्न थे। यह एक स्वाभाविक बात थी कि गांधीजी की विशेष ढंग की धार्मिक प्रवृत्तियों और सत्य और अहिंसा जैसे सिद्धान्तों पर उनका इतना अधिक आग्रह जवाहरलालजी को बहुत अधिक रुचिकर नहीं हो सकता था।

जवाहरलालजी किसी दूसरे मनुष्य से भारत की स्वाधीनता के लिए कम उत्सुक नहीं थे। उनकी देशभक्ति किसीकी देशभक्ति से कम नहीं थी। एक बड़े दर्जे तक यही गांधीजी और जवाहरलालजी को एक-दूसरे के निकट लाने और एक दूसरे से मिलाये रखनेवाला रेशमी बन्धन था । किन्तु इस मामले में भी दोनों के दृष्टिकोणों में काफी अन्तर था। इस सम्बन्ध में मुझे आज से तीस-बत्तीस साल पहले की एक छोटी-सी घटना याद आ रही है।

शायद सन् १९३३ की बात है। गांधीजी महाबलेश्वर में ठहरे हुए थे । जवाहरलालजी, मन्जरअली सोख्ता और मैं वहां उनसे मिलने गये। उन्हीं दिनों राजाजी भी गांधीजी से सलाह-मशविरे के लिए महाबलेश्वर गये थे। एक दिन रात को हम चार आदमियों के बीच, यानी जवाहरलालजी, गांधीजी, मंजरअली, और मैं, स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपाय पर बातचीत हो रही थी। गांधीजी आम तौर पर रात के नौ बजे सो जाया करते थे। उस दिन दस से ऊपर हो चुका था। लगभग दो घंटे की बातचीत के बाद गांधीजी के मुंह से जो दर्द-भरे शब्द निकले, वे मुझे आजतक याद हैं। वे शब्द ये थे, "जवाहरलाल, तेरह वर्ष साथ काम करने के बाद तुम मुझे नहीं समझे तो मुझे कौन समझेगा।"

आजकल की दुनिया में गांधीजी शायद पहले आदमी थे, जिन्होंने राजनीति को सदाचार से जोड़ देने का प्रबल प्रयत्न किया। इसके विपरीत जवाहरलालजी के मुंह से बहुतों ने यह वाक्य सुना है, "राजनीति का सदाचार-नीति से क्या सम्बन्ध ?"

गांधीजी और जवाहरलालजी दोनों गरीबों के सच्चे हितचिन्तक थे। दोनों देश से गरीबी को मिटाना चाहते थे, परन्तु इस लक्ष्य तक पहुंचने के दोनों के उपायों में बहुत बड़ा अन्तर था। आर्थिक

और औद्योगिक मामलों में जवाहरलालजी के विचार लगभग वही थे, जो आजकल के एक साधारण 'प्रगतिशील' कहलानेवाले अंगरेज सोशलिस्ट के होते हैं। एक अंगरेज सोशलिस्ट का मुख्य लक्ष्य यह है कि अपने देश की कुल दौलत को, जहांतक हो सके, बढ़ाया जाय और जबतक हो सके, उस बढ़ोतरी को कायम रखा जाय, बिना इस बात की परवा किये कि वह दौलत देश के अन्दर किस-किसके हाथ में जाती है या किस-किसको बंटती है। इसके विपरीत गांधीजी के अनुसार किसी भी देश की आर्थिक सफलता की असली कसौटी यह नहीं है कि उस देश के कुछ ऊपर के लोगों के पास कितना धन है, असली कसौटी यह है कि देश के गरीब-से-गरीब लोग अपनी जिन्दगी किस तरह बसर करते हैं। गांधीजी ने बार-बार और साफ शब्दों में कहा है कि थोड़े-से लोगों के हाथों में धन को या पैदावार के साधनों को जमा हो जाने देना, जबकि नीचे के लोग स्वाभिमान के साथ मानवोचित जीवन भी व्यतीत न कर सकते हों, मानव-समाज के साथ अन्याय करना और पाप है। गांधीजी और जवाहरलालजी दोनों हिन्दू-मुस्लिम एकता या साम्प्रदायिक एकता अथवा राष्ट्रीय एकता के प्रबल समर्थक थे। दोनों के दिल इस विषय में पूरी तरह निष्पक्ष और शीशे की तरह साफ थे। लेकिन इस सवाल के हल करने के लिए भी दोनों के उपायों में आकाश-पाताल का अन्तर था। गांधीजी इस प्रश्न को एक दूसरे के धर्मों की जहांतक हो सके सच्ची जानकारी, सहिष्णुता, एक दूसरे के लिए सच्चा आदर और आध्यात्मिकता की नींव पर हल करना चाहते थे। गांधीजी का दृष्टिकोण एक बड़ी हदतक जलालुद्दीन रूमी, कबीर साहब और गुरू नानक का दृष्टिकोण था। जवाहरलालजी का दृष्टिकोण धर्म-मजहब को अलग रखकर आजकल के एक भौतिकवादी पाश्चात्य अर्थशास्त्री का दृष्टिकोण था।

बहुत-से राजनैतिक मामलों में गांधीजी और उनके बहुत-से बड़े-बड़े कांग्रेसी अनुयायियों के विचारों में कितना अधिक अन्तर था, इसकी कुछ मिसालें ये हैं।

गांधीजी पश्चिम की पार्लमेंटरी शासन-प्रणाली को अच्छी निगाह से नहीं देखते थे। इंगलैंड की पार्लमेंट को, जो दुनिया की 'पार्लमेंटों की जननी' (मदर ऑव पार्लमेंट्स) कही जाती है, वह 'बांझ वेश्या' (ए बैरेन प्रोस्टीट्यूट) कहा करते थे। पाश्चात्य ढंग की पार्टी पालिटिक्स अर्थात् दलगत राजनीति और विधानसभाओं के अंदर ट्रेजरी बेन्चेज (सरकारी पक्ष) और आपोजीशन बेन्चेज (विरोधी पक्ष) के बंटवारे को वह सुशासन और और सच्चे लोकशासन दोनों के लिए हानिकर मानते थे। आज़ादी के बाद भारत में जब पार्लमेंटरी हुकूमत कायम हुई तो गांधीजी चिल्ला पड़े थे, "यह तो बला आ गई, इससे तो मुझे लड़ना पड़ेगा।" इन सब बातों में गांधीजी के विचारों और जवाहरलालजी व दूसरे कांग्रेसी नेताओं के विचारों में जमीन-आसमान का अन्तर था।

अपनी मौत से दो दिन पहले गांधीजी ने कांग्रेस के नेताओं को यह सलाह दी थी कि वे कांग्रेस को तोड़ दें, सरकार में से और सब धारा-सभाओं में से, यहांतक कि पार्लमेंट में से, निकल आयें और एक 'लोकसेवक संघ' बनाकर उनके साथ गांव-गांव जनता के पास चलें, जनता की सेवा करें और जनता की शक्ति और समर्थन से सरकार से बाहर रहकर सरकार को जनता की राय के अनुसार चलाने का प्रयत्न करें। गांधीजी की यह सलाह उस समय के किसी भी अधिकार-प्राप्त कांग्रेसी नेता को पसन्द न आई।

राजनीति और शासन-कार्य में हद दर्जे 'विकेन्द्रीकरण' के वह समर्थक थे। कांग्रेसी नेता अधिकतर 'केन्द्रीकरण' के माननेवाले थे। गांधीजी कभी भविष्य में सरकार-नामी संस्था के अन्त हो जाने (विदरिंग अवे ऑव दी स्टेट) का भी सपना देख रहे थे। कांग्रेसी नेता कोई इस मामले में गांधीजी से सहमत नहीं थे। जवाहरलालजी उन नेताओं में सबसे आगे-आगे थे।

इन सब मतभेदों के होते हुए गांधीजी ने, लगभग प्रारम्भ से ही, अपने आस-पास के सब लोगों में से जवाहरलाल को ही अपना उत्तराधिकारी चुना और सदा इसका खुला एलान किया। उनके ऐसा करने के कारण भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। गांधीजी के उत्तराधिकारी में और स्वाधीन भारत के पहले प्रधान मंत्री में जो गुण और जिस तरह की योग्यता होनी चाहिए थी, वह गांधीजी को और सबसे अधिक जवाहरलालजी में ही दिखाई दी।

इन गुणों में सबसे अधिक चमकता हुआ गुण, जिसकी गांधीजी प्रायः चर्चा भी किया करते थे, जवाहरलालजी का अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण था। जवाहरलालजी शुरू से ही—और यह भी उनके स्वभाव व शिक्षा दोनों का परिणाम था—अपनेको न केवल भारत का एक नागरिक समझते थे, बल्कि सारी दुनिया का भी एक नागरिक अनुभव करते थे और मानते थे। अपने विशेष दृष्टिकोण के अधीन वह संसार के सब राष्ट्रों और सब मनुष्यों के बीच बराबरी, भाईचारा, एक-दूसरे का आदर और मित्रता के सम्बन्ध कायम करने के प्रबल समर्थक थे और अन्त तक रहे। उनका व्यक्तित्व ही एक विशेष अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व था।

एक और बात जवाहरलालजी का एक विशेष घराने में पैदा होना और देशवासियों के एक विशेष वर्ग या समूह से सम्बन्ध रखना था। गांधीजी की दृष्टि सदा अपने स्वतंत्रता-आन्दोलन की अन्तिम विजय पर रहती थी। जहांतक संभव था वह देश के सब तरह के लोगों को साथ लेकर चलना चाहते थे। इसमें भी संदेह नहीं कि इस प्रयत्न में उन्हें आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई। इस सम्बन्ध में गांधीजी और जवाहरलालजी के बीच की एक और छोटी-सी घटना यहां बयान करने योग्य है।

सन् १९२० के कुछ बाद की बात है। जवाहरलालजी पर गांधीजी के सरल जीवन और उनकी तपस्या का भी कुछ प्रभाव पड़ने लगा था, यहांतक कि जवाहरलालजी ने आनन्द भवन में रहते हुए गद्दों पर सोने के स्थान पर जमीन पर सोना जैसी बातें शुरू कर दी थीं। कुछ दिनों तक खाने-पीने के मामले में भी वह शुद्ध निरामिषभोजी रहे। इसपर उनके पिता-माता दोनों को बड़ा दुःख हुआ। घर में चख-चख होने लगी।

थोड़े दिनों बाद की एक और छोटी-सी घटना इस सम्बन्ध में खासी मनोरंजक है। राजनैतिक कार्य के सिलसिले में ही पंडित मोतीलालजी कहीं दौरे पर गये हुए थे। भोजन का समय आ गया। किसीने पंडित मोतीलालजी से आकर कहा, "पंडितजी भोजन तैयार हैं।" पंडित मोतीलालजी ने तुरन्त उत्तर दिया, "जनाब, मैं भोजन नहीं करता। भोजन जवाहरलालजी करते हैं, मैं खाना खाता हूं।" 'भोजन' से मोतीलालजी का मतलब निरामिष भोजन से और खाने से मतलब सामिष खाने से था।

उन दिनों गांधीजी ने हर प्रान्त में एक 'तिलक स्वराज्य फंड' कायम कर रखा था। उस फंड से उन असहयोगी वकील आदि को गुजारे के लिए मासिक वेतन दिया जाता था, जो अपना सारा समय

स्वतंत्रता-आन्दोलन को देना चाहते थे। जवाहरलालजी वैरिस्टरी छोड़ चुके थे। उन्होंने गांधीजी से कहा कि आप तिलक स्वराज्य फंड से कुछ माहवार रकम मुझे दीजिये तो मैं खुशी से आनन्द भवन से निकल-कर वाहर किसी छोटे-से मकान में रहकर सादा जीवन व्यतीत करके अपना सारा समय आन्दोलन को देता रहूंगा। अधिक-से-अधिक जो उस समय इस तरह के किसी कार्यकर्त्ता को मिलता था, वह १५० रुपये महीना था। गांधीजी ने कई दिन तक जवाहरलालजी के इस सुझाव पर विचार किया। अन्त में जो शब्द उन्होंने जवाहरलालजी से कहे वे लगभग ये थे, "तुम इस तरह आओगे तो मुझे अच्छा लगेगा, लेकिन अगर तुम कुछ दिन और ठहर जाओ और पिताजी को साथ लेकर आओ तो मुझे ज्यादा अच्छा लगेगा।"

गांधीजी की इस वात ने जवाहरलालजी के तपस्या के उस जोश पर ठंडा पानी ही डाला, जिसका असर उनपर अन्त तक रहा। किन्तु गांधीजी के आन्दोलन को पं० मोतीलालजी मिल गये और जेल भी चले गये।

जवाहरलालजी और उनके घराने का उस समय के वड़े-से-वड़े अंग्रेज शासकों के साथ सम्वन्ध भी था, जो गांधीजी के अहिंसात्मक आन्दोलन के लिए एक तरह से उपयोगी ही था।

इन सब वातों से वढ़कर जिस वात ने गांधीजी को इस ओर झुकाया कि वह जवाहरलालजी को अपना उत्तराधिकारी घोषित करें, वह यह भी थी कि जवाहरलालजी अपनी शिक्षा-दीक्षा व स्वभाव तीनों से इस तरह की हर संकीर्णता से विल्कुल ऊपर थे, जैसे धार्मिक संकीर्णता, साम्प्रदायिक संकीर्णता, जात-पांत की संकीर्णता, सूवाई संकीर्णता, भाषाई संकीर्णता इत्यादि। यह दूसरी वात है कि इन संकीर्णताओं के गांधीजी के हल और जवाहरलालजी के हल में कहीं-कहीं बुनियादी अन्तर था, परन्तु इस वात में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि इस तरह की सव संकीर्णताओं और कट्टरताओं से जवाहरलालजी का दिल और दिमाग़ दोनों बिल्कुल पाक थे। गांधीजी अच्छी तरह देख रहे थे कि उस जमाने में इस देश की सबसे खतरनाक वीमारी यही संकीर्णता थी। अंग्रेज़ शासक सदा इन संकीर्णताओं से पूरा-पूरा फायदा उठाते रहे और अपना राजनैतिक स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उन्हें वढ़ावा देते रहे। देश का अप्राकृतिक बंटवारा इसी संकीर्णता की उपज थी। गांधीजी इस संकीर्णता से जीवन-भर लड़ते रहे। इसी प्रयास में उन्होंने अपनी जान कुरवान कर दी। जहांतक निगाह जाती थी, गांधीजी को इस देश में जवाहरलालजी से बढ़कर आदमी मिलना कठिन था, जो उनके जीवन के इस पवित्र और महत्वपूर्ण उद्देश्य को उनके वाद आगे बढ़ा सके।

दुनिया में शायद कोई मनुष्य पूर्ण या कामिल नहीं होता। आमतौर पर मानव-स्वभाव की हर भलाई के साथ एक वुराई और हर वुराई के साथ एक भलाई चलती ही है। भारतीय स्वभाव पर और अच्छे-से-अच्छे भारतीयों के दिल और दिमाग पर दोसौ वर्ष के विदेशी शासन के भी अच्छे और वुरे दोनों तरह के प्रभाव पड़े। गांधीजी स्वयं कहा करते थे कि "अगर मैंने अंग्रेजी शिक्षा न पाई होती तो मैं देश को इससे जल्दी आजाद कर पाता।" हजरत मोहम्मद की दो हदीस इस सम्वध में ध्यान देने योग्य हैं। एक यह कि वह कहा करते थे, "जो मैं करता हूं, वह न करो; जो मैं कहता हूं वह करो।" दूसरी यह कि एक अवसर पर उन्होंने कहा, "यह वह समय है, जव जो कुछ मैं कहता हूं, उसमें से कम-से-कम नौ वटा दस, यानी अठारह विसवे पर अमल करनेवाला ही 'मोमिन' यानी ईमानवाला कहला सकता है।

इसके वाद वह समय आयगा जव जो कुछ मैं कहता हूं, उसमें से एक वटा दस यानी दो विसवे पर अमल करनेवाला सच्चा 'मोमिन' होगा और नौ-वटा दस यानी अठारह विसवे पर अमल करनेवाला काफिर यानी कृतघ्न होगा।" हर देश और हर राष्ट्र को यह भी अधिकार है, वल्कि कभी-कभी उसका यह धर्म या फर्ज हो जाता है कि किसी भी नेता की जिस वात को या उसकी जिस नीति को वह अपने लिए उपयोगी समझे, उसे वनाये रखे और जिसे उपयोगी न समझे, उसे वदल दे। फिर भी इसमें दो मत नहीं हो सकते कि प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू अपने समय में इस देश के सवसे वड़े व्यक्ति, भारतीय देशभक्तों के सरताज और भारत-माता की सवसे अधिक मूल्यवान सम्पत्ति थे। संसार और मानवजाति के लिए उनका व्यक्तित्व एक वहुमूल्य व्यक्तित्व था। उनका उठ जाना देश के लिए और संसार के लिए एक ऐसी कमी का पैदा हो जाना है, जो आसानी से पूरी नहीं की जा सकती। हम सवका ईश्वर-अल्लाह हमें शक्ति दे कि हम उनके जीवन के ऊंचे-से-ऊंचे उद्देश्यों अर्थात् सच्ची राष्ट्रीय एकता, दुनिया के सव देशों की आजादी, इन्सानी भाईचारा और विश्वशांति के कायम करने में अपनी पूरी शक्ति लगा सकें। ●

अमर हो आत्मा के सुत जवाहर "तुम"

अभी तक भी नहीं विश्वास होता मन अकेले को
कि ध्रुव टूटा करोड़ों धड़कनों के मौन अम्बर का।
सरासर झूठ है, वहुमूल्य हीरे की कणी टूटी
कि कोई ले गया थैला चुरा आलोक दिनकर का।

... ...

कहें सव मर चुके तुम, पर नहीं स्वीकार सकता मैं
कि मेरी दृष्टि में तो भाखरा-नांगल तुम्हीं तो हो।
टंगा है चित्र जो निर्माण का, नूतन सवेरे का
नहर की हर रुपहरी आंख के कागज तुम्हीं तो हो।

... ...

अजर हो तुम, अमर हो आत्मा के सुत जवाहर तुम!
मरे हो तुम नहीं, वस मृत्तिका की देह वदली है।
यहां जो आंकते हैं आंसुओं से मूल्य मानव का,
न उनकी आंख दर्पण है, न उनकी दृष्टि उजली है।

व्रजेश 'चंचल'

आदर्शवादी व्यक्तित्व

मनुष्य प्राय: अपने कामों से ज्यादा बड़ा होता है । सिद्धि या सफलता उसके व्यक्तित्व का आंशिक प्राकट्य मात्र है, जो वाहरी प्रभावों से अक्सर विरूप हो जाती है। भारतीय स्वतंत्रता के सेनानी के रूप में, स्वतंत्रता-संग्राम के एक प्रचंड योद्धा के रूप में, महान शक्ति और आकर्षण के केन्द्रीभूत नेता के रूप में, अंतर्राष्ट्रीय संघ में भारत को अत्यंत सम्मानित स्थान दिलानेवाले प्रधान मंत्री के रूप में, पंडितजी की सिद्धि या उपलब्धियां बहुत महत्व रखते हुए भी, उनके व्यक्तित्व में, या जो वह हैं, उसमें, मामूली दखल रखती हैं।

जिस आदमी को मैं दिन-प्रति-दिन या कभी-कभी घड़ी-घड़ी देखता हूं, वह कोई और ही है! जो कुछ वह करता है, उसकी अपेक्षा वह ज्यादा महत्वपूर्ण है। वरसों पहले, 'होमरूल लीग' के जमाने में उसकी पहली छाप एक फैशनेवल युवा के रूप में पड़ती थी, यद्यपि जो उसे विशेष रूप से जानते थे, उनके लिए वह उस समय भी आदर्शवाद की जलती हुई दीपशिखा था। उसी फैशनेवल युवा के कंधों पर संसार के सर्वोच्च उत्तरदायित्वपूर्ण पदों में से एक का भार था; ऐसा लगता था कि वह एक दुखी और अकेला आदमी है, जिसकी चिंतालीन दृष्टि दूर कहीं किसी लक्ष्य पर टिकी है, किसी ऐसी वस्तु पर जो अलभ्य है।

पंडितजी और नेहरू-परिवार के अन्य सदस्यों के वीच गहरा अनुराग था। उनके निकट मित्रों का एक छोटा-सा घेरा था, स्त्रियों और पुरुषों का, जो उनके कुछ खाली क्षणों के सहभागी हो सकते थे। वे मित्र उनके प्रति अपना प्रेम मुक्तता से उंडेलते थे। एक व्यक्तिगत 'हीरो' के प्रति वह स्वाभाविक भी था, जो इत्तफाक से प्रधान मंत्री भी था। उनके प्रति पंडितजी की सत्यता अविचल थी। लेकिन मुझे संदेह है, शायद उन्होंने अपनी चिंताओं और अपनी खुशियों को किसीके साथ वांटा हो। एक वार मैंने उन्हें अपने कुछ गहरे मित्रों को विदा करते हुए देखा था। शब्दों के वहाव और प्रेमपूर्ण लगावों के वीच वह मूर्ति की तरह खड़े रहे, उनका एकमात्र उत्तर, उनकी थकी हुई मुस्कान थी। मैंने उनको गांधीजी की मृत्यु-शय्या के किनारे एक टूटे हुए आदमी की तरह बैठे हुए देखा था। हम सवके समान ही, शायद पंडितजी के लिए भी वापू, वह परम पिता थे, जिनके सम्मुख हम अपना अपराध-निवेदन करते थे।

इसमें आश्चर्य कुछ भी नहीं है। पंडितजी अपने एक अलग संसार में ही रहते थे—आदर्शों का संसार, जिसमें उनके खयालों की मुठभेड़ सारे संसार के अन्याय तथा भाग्य-पीड़ित व्यक्तियों से अमूर्त रूप

में होती थी। उस संत से उनमें अंतर था, जिसके लिए संसार परिवार है: 'वसुधैव कुटुम्वकम्'। उनकी भावनाओं ने उन्हें किन्हीं महान् और उदात्त कारणों के लिए अपना जीवन समर्पित करने को इस प्रकार बाध्य किया, जो उनके मन की गतिविधियों से अनजान आदमी के लिए, प्रायः वास्तविकताओं से असंबंधित प्रतीत होता है। उनकी चतुराई और बुद्धि की सूक्ष्मता कभी-कभी मात्र शर्मीली नौकरानियों की तरह रह जाती थी, जो खामोशी से इंतजार करती हैं, जब उनके आदर्श उन्हें उदार चेष्टाओं की ओर प्रवृत्त करते थे।

पंडितजी को सम्पूर्णतया भगवान का आदमी नहीं कहा जा सकता। मुझे नहीं मालूम कि कभी उन्होंने प्रार्थना भी की। उनके पाश्चात्य लालन-पालन ने उनके लिए यह कठिन कर दिया कि वह भगवान में व्यक्त श्रद्धा का अर्जन कर सकते या जीवन को भगवान के अस्त्र के रूप में देखने का प्रयास करते। श्रीकृष्ण का यह उपदेश 'सर्वान्कामान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' उन्हें आकर्षित कर नहीं सकता था। लेकिन मोलियर के नाटक के नायक के समान, जो 'गद्य' को जाने बगैर उसकी वात करता था, पंडितजी अपने अनजाने ही भगवान के आदमी थे।

उनका जीवन उनकी कुल-परम्परा के अनुकूल था। एक उच्च ब्राह्मण की तरह वह उन्नत आत्मा, अनुशासनशील और जीवन को संकल्पित दान की भांति देखनेवाले थे। उनका हर पल उदात्त आदर्शों के सांचे में कठोर यथार्थों के महान कार्यों के प्रति समर्पित था। जब उनकी राह में बाधाएं आती थीं, तब उनके भीतर ज्वालामुखी की अदम्यता का दर्शन होता था। वह चीजों को अस्वीकार कर देते थे, वह आवेश के प्रचण्ड आवेग में फूट पड़ते थे। पर इन विक्षोभों में कोई विद्वेष या क्रोध का भाव मूलगत रूप से नहीं होता था। ये चीजें तो मानो उनके आग्नेय अधैर्य को शांत करने में सहायभूत हो जाती थीं।

यद्यपि उनका समर्पण भगवान के प्रति नहीं था, लेकिन एक ऐसे परम आदर्श के दर्शन के प्रति तो था ही, जिसे मनचाहे रूप में अस्तित्व में लाना वह दुःसाध्य पाते थे। उनका यह आत्मार्पण राजनैतिक सत्ता-संघर्षों की समस्याओं के समक्ष भी उन्हें उद्देश्य की शुद्धता से चिपटे रहने को बाध्य करता था। काश्मीर के मामले में हस्तक्षेप करने के लिए उनका संयुक्त राष्ट्रसंघ को प्रेरित करना और हैदराबाद की समस्या पर लम्बे समय तक निर्णय को स्थगित रखना, उचित और आवश्यक के बीच के उनके भीतरी आध्यात्मिक संघर्ष का ही परिणाम था। अंतर्राष्ट्रीय मामलों में व्यवहार की शुद्धता की उनकी भावना का भीतरी उद्गम भी यही था। इसीसे किसी भी कशमकश की स्थिति के सम्मुख वह क्या निर्णय ले लेंगे, इस बारे में उनके साथी प्रायः असमंजस में रहते थे।

ऐसा आदर्शवादी और उच्च-पदस्थ व्यक्ति जब अपने साथियों की दलीलों पर गौर करना मंजूर करता है और सामने से आ रहा विरोध यदि सच्चा और सुदृढ़ बुनियाद पर हो तो अपनेको उसके अनु-रूप मुड़ जाने देता है, तो उसे देखकर हम नव-चैतन्य से भर उठते हैं। अपने सारे पूर्वाग्रहों के बावजूद वह पार्टी, संसद अथवा देश की आन्तरिक भावना को अनुभव कर लेते थे और विजय पाने के लिए झुक जाते थे। उम्र और अनुभव ने उन्हें नम्र कर दिया था। भारत के संकटों के विशाल रूप ने उनके भीतरी संघर्ष के तनाव को ढीला कर दिया था।

अक्तूबर १९४६ के बाद उनका व्यक्तित्व महत्तर हुआ था। वास्तविकता की उनकी अनुभूति पहले से ज्यादा गहरी हो गई थी। राजनीति में उन्होंने ऐसी दुर्लभ स्थिति प्राप्त कर ली थी कि वह एक ऐसे राजपुरुष हो गये थे, जिसके पैर धरती पर टिके थे, पर जिसका मन-मस्तिष्क नैतिक मूल्यों के सूर्यालोक से प्रकाशित था और जिसका हृदय मुक्ति को समर्पित था।

पंडितजी के व्यक्तित्व का सबसे सम्मोहक पहलू था उनकी सौंदर्य-भावना। उनकी मोहिनी मुस्कान, उनकी शेरवानी में लगा गुलाब, सुसंस्कृत लोगों द्वारा घिरे रहने की उनकी चाह, इस सबसे सौंदर्य के प्रति उनकी भूख प्रकट होती थी—बकौल प्लेटो के—'सम्पूर्ण सौंदर्य' के लिए एक गहरी तलब। गांधीजी ने अपने प्रचंड व्यक्तित्व और प्रगतिशील उपदेशधारा के द्वारा कठोर सादगी, और सौंदर्य पर उपयोगिता को तरजीह देनेवाले युग का सूत्रपात किया था। पंडितजी उन थोड़े-से गिने-चुने लोगों में से थे, जो गांधीजी के निकटतम सम्पर्क में आये, पर उनके उस उपयोगितावादी दर्शन के संपूर्ण आशय से अछूते रहे। यद्यपि उन्होंने अपने गुरु के मार्गदर्शन में, कठोर साधना के प्रति अपनेको समर्पित कर दिया था, फिर भी उनकी सौंदर्य-दृष्टि ने पंडितजी का साथ कभी नहीं छोड़ा। सुरुचिपूर्ण परिवेश में, सुषमा और संगति, रंग और रूप के लिए उनके प्यार में, उनकी यह सौंदर्य-दृष्टि सदा व्यक्त होती थी। सच्ची कला और साहित्य के प्रति उनका प्रेम सदा ही अमंद रहा था। अपनी तरुणाई के दिनों से ही स्वातंत्र्य-संग्राम में व्यस्त रहने के बावजूद साहित्य-कला के प्रति वह सदा संलग्न रहे थे। उनकी पुस्तकें एक सच्चे साहित्यिक कलाकार का परिचय देती हैं और कला पर उनकी छुट-पुट अभिव्यक्तियां कलात्मक पूर्णत्व के लिए उनकी प्रखर वासना को प्रकट करती हैं।

पंडितजी की सौंदर्य-भावना उनके आदर्शों के साथ पूर्णरूप से संगत थी। शायद उनके ये दोनों पहलू एक ही सत्य-दर्शन के दो परस्पर पूरक पक्ष थे। उनके रूप में एक कलाकार स्वातन्त्र्य-युद्ध में ही नहीं फेंका गया था, लेकिन राजनैतिक सत्ता-संघर्षों के वात्याचक्रों में भी पड़ गया था। अन्य सब चीजों से परे यह चीज उन्हें हमारे समय की अंधियारी पृष्ठभूमि पर खड़ा कर देती थी। उनकी सौंदर्य-भावना जरूरी तौर पर कलात्मक प्रकार की नहीं थी। उनके लिए सौन्दर्य न्याय था और न्याय सौंदर्य था—उनकी निगाहों में सौंदर्य था, अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, सामाजिक और वैयक्तिक सभी पहलुओं पर न्याय की दृष्टि। एक दिन अन्न-समस्या पर आवेशपूर्ण ढंग से बोलते हुए उन्होंने कहा, "मैं फूलों को प्यार करता हूं, लेकिन आज केलों के गुच्छों का नजारा मेरी आंखों को किसी भी फूल से ज्यादा मधुर और खुशगवार लग रहा है।" ●

प्रियदर्शी का चित्र

गीतिकाव्य-सा जीवन उसका,
महाकाव्य-सा कर्म !
पोथी वाला नहीं, आचरित
स्वयंसिद्ध था धर्म !
मानवता का महामात्य वह,
एक व्यक्ति में विश्व;
मंत्र लिये बिन, जान लिया था
कर्मसुकौशल मर्म !

उसे संशयात्मा मानूं या
मूर्त्त आत्म-विश्वास ?
अति जनप्रिय अतिशय मनमाना---
दूरी में भी पास !
क्षण-क्षण तैल बिन्दु-सा जल पर,
पल-पल नूतन रंग;
आस्था सुदृढ़ मेरु-सी, जिसपर
शुभ्र हिमानी हास !

शुभ्र वेष, खिलते गुलाब-सा
खुले हृदय का फूल !
निष्ठा की निर्भ्रान्ति साधना,
कभी-कभी कुछ भूल !
शीलवान भारत का शैशव,
तरुणाई साकार !

सदा रहा अनुकूल राष्ट्र के,
इसे-उसे प्रतिकूल ;
मनोनीत था निर्विरोध वह,
विमल विरोधाभास !
रीतिबद्ध होकर, न रचा वह
ब्रह्मा ने सायास !
श्रेय राम का, प्रेय श्याम का,
लेकर दोनों तत्व---
स्वत्वशील को रचा, दिखाने
विधि ने कला-विलास !

पार्थ-सारथी-सदृश निहत्था
अर्जुन-सा निष्णात !
गीता सुनकर, भूल गया ज्यों
पूर्वजन्म की बात !
शोणित में पावक, प्राणों में
पूर्ण चन्द्र का सोम;
गौतम का संन्यास हृदय में,
अकबर का दृढ़ घात !

बहुतों के स्वार्थों का रक्षक,
स्वयं सतत निःस्वार्थ !
आदर्शों का प्रकृत पुजारी,
साधा सदा यथार्थ !

शाश्वत भारत-तीर्थ हृदय में,
नूतन का उत्साह;
परम्परा को लिये संग में
चला प्रगति का सार्थ !

नपा-तुला व्यवहार, प्यार-सा
अतुल अमित अतिशील !
कभी उछलता चला नदी-सा,
कभी बन गया झील !
महाभाव था वह समष्टि का,
व्यष्टि विचित्र-स्वभाव;
विरज और रज, अवनी अम्बर,
लोहित-शुभ्र-सुनील !

शक्ति इन्द्र की, भक्ति भूमि की,
अनासक्त आसक्ति !
भावों में अविभक्ति, वचन में
व्याकृत शब्द-विभक्ति !
हकलाहट, आवेग, नवागत—
की आहट का बोध;
क्रोध, मोह, मद, मत्सर पर जय,
छंद मुक्तलय व्यक्ति !

अधुना की धुन, सुरखों के गुन,
चुन लेने में दक्ष !
कोटि कोटि पर न्यौछावर वह,
एकायन उर-कक्ष !
मन के इकतारा पर झंकृत
सप्तक सप्त अगीत,
मर्म न मन का जाना कोई,
सबके रहा समक्ष !

रागी और विरागी, योगी
और वियोगी व्यक्ति !
एकनिष्ठ उस दृढ़-चरित्र की
चिर नूतन अभिव्यक्ति !
कविर्मनीषी के मानस का
अद्भुत रस साकार—
कर्मधार्य तत्पुरुष द्वन्द्व की
सामासिक अतिशक्ति !

अन्तर में समाधि, बाहर थी
आठों पहर उपाधि !
स्वस्थचित्त ऐसा, कि न व्यापी
उसे आधि या व्याधि !
नाद-बिन्दु, ऊर्जा-तरंग में,
विविधायित हो, अंत—
हुआ तिरोहित, भरतभूमि ही
शाश्वत शान्ति-समाधि !

किसी चौखटे में हम उसको
जड़ न सकेंगे मित्र !
कभी एकरस हुआ, न होगा
प्रियदर्शी का चित्र !
रेखागणित न लागू जिसपर,
रेखाचित्र सजीव;
पात्र नहीं, उत्क्रान्त सुविकसित—
वह था एक चरित्र ! ●

उनकी आत्मीयता

एक बार महात्मा गांधी ने कहा था कि यह भारत का, भारत की जनता का, बहुत बड़ा सौभाग्य है कि उसे जवाहरलाल जैसा रत्न मिला है । यह बात बापू ने केवल स्नेहवश कही हो, ऐसी बात नहीं है। इसके पीछे उनकी पैनी दृष्टि, व्यक्ति की पहचान और देश के लिए उसके महत्व का स्पष्ट संकेत था । बाद के वर्षों ने, जो पग-पग पर कठिन परीक्षाओं और दुर्धर्ष संघर्ष से भरे थे, यह सिद्ध कर दिया कि नर-नाहर जवाहर यथार्थ में असाधारण रत्न है। १२ जुलाई १९५५ को जो उन्हें स्वतन्त्र सर्वतन्त्र भारतीय प्रजातन्त्र की ओर से 'भारत-रत्न' के सम्मान से विभूपित किया गया, वह तो भारतीय जन-प्रशासन और जनता-जनार्दन द्वारा इस उज्ज्वल तथ्य की औपचारिक स्वीकृति थी। आज, जब पण्डितजी हमारे बीच नहीं रहे, तो लगता है जैसे वह भारत के ही नहीं, विश्व के रत्न थे; समूचे विश्व के पीड़ित, शोषित और दलित जन की आशा और आकांक्षा के केन्द्र थे ।

आज जबकि विधाता ने उस अप्रतिम रत्न को अपने पास बुला लिया है और हमारे पास सतत मार्ग-दर्शन के लिए उसका उज्ज्वल प्रकाश ही रह गया है, उसका यथार्थ एवं सम्यक् मूल्यांकन सम्भव नहीं। वह एक ऐसा रत्न था, जिसका मूल्य और महत्व, जिसकी चमक और उज्ज्वल प्रकाश, ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा, निरन्तर बढ़ता ही जायगा। ऐसे महान् तेजस्वी रत्न को न केवल निकट से देखने, बल्कि उसका घनिष्ठतम स्नेह और अपनत्व पाने का जो सौभाग्य मुझे मिला है, वह मानो स्मृति-पटल पर स्वर्ण-रेखा-सा चिरन्तन अंकित रहेगा। इसे मैं अपने जीवन का बहुत बड़ा सौभाग्य मानता हूं ।

पहली बार पंडितजी के सम्पर्क में आने का सुयोग मुझे नागपुर-कांग्रेस के पहले सन् १९२१ में मिला, जब वह असहयोग-आन्दोलन के सिलसिले में गांधीजी के त्रि-सूत्री कार्यक्रम के पक्ष में जनमत जाग्रत करने के लिए बिहार का दौरा करने गये थे। उनकी प्रतिभा, लगन, परिश्रमशीलता और साथ ही सौजन्य देखकर मैं पहली बार की भेंट में उनसे बहुत प्रभावित हुआ और मुझे लगा कि यह प्रतिभावान देशभक्त किसी दिन सचमुच बहुत बड़ा नेता बनेगा ।

दूसरी भेंट पंडितजी से १९२८ में हुई, जब वह किसानों के संघटन के सिलसिले में फिर बिहार का दौरा करने गये थे। चम्पारन-सत्याग्रह के समय से ही गांधीजी बिहार की जनशक्ति के प्रबल प्रभाव के कायल हुए थे। वह जानते थे कि मन, वचन और कर्म से बिहार के किसानों को संघटित कर उन्हें स्वाधी-नता-संग्राम के झंडे के नीचे लाने का काम श्री नेहरू से अच्छा कोई दूसरा जन-नेता शायद ही कर सके।

यह एक तरह से पंडितजी के बाद में तूफानी दौरों की भूमिका-सी थी। इस दौरान वह इतनी तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे कि काम के सिवा और किसी तरह की बात-चीत का समय या अवसर ही उन्हें नहीं मिलता था। इसी समय मैंने लक्ष्य किया कि यात्रा, भाषण और काम करने की इतनी अजस्र शक्ति पंडितजी में थी कि देश ने उन्हें जो युवक हृदय-सम्राट् कहना आरम्भ किया, उसमें तनिक भी अतिरंजना नहीं थी, बल्कि मुझे तो सन्देह था कि उस समय या आज भी कोई युवक उनके जितना काम और दौड़धूप कर सकता हो।

सन् १९३४ में बिहार में आये भयंकर भूकम्प से जन-धन की जो अप्रत्याशित क्षति हुई, उसे कौन भूल सकता है? उन दिनों मुझे कांग्रेस की ओर से दरभंगा जिले में भूकम्प-पीड़ितों के सहायतार्थ होनेवाले काम का इन्चार्ज बनाया गया था। सारे कार्य को देखते हुए नेहरूजी हमारे क्षेत्र में भी आये और विस्तार-पूर्वक काम का निरीक्षण किया। उस समय उनकी तेजस्विता देखते ही बनती थी। ब्रिटिश अधिकारी स्वयं तो पीड़ितों की विशेष सहायता कर नहीं रहे थे और साथ ही यह भी नहीं चाहते थे कि कांग्रेस को व्यापक रूप से सहायता-कार्य करने दिया जाय। उसकी आशंका के दो कारण थे। पहला तो यह कि इससे जन-साधारण में शासन के प्रति जहां घृणा और क्षोभ पैदा होंगे, वहां कांग्रेस के पक्ष में उनके मन में अधिक सहानुभूति, समर्थन और अपनत्व पैदा होगा। दूसरा कारण संभवतः यह था कि शासक कांग्रेस की शक्ति और प्रभाव को फूटी आंखों भी देखना नहीं चाहते थे। पर नेहरूजी उनके इस रुख-रवैये की तनिक भी परवा किये या विचलित हुए विना अपना कार्य वड़े धैर्य और निर्भीकता के साथ कर रहे थे। सच तो यह है कि इस समय उनके मन में किसी भी तरह का राजनैतिक लाभ उठाने की भावना का लेशमात्र भी नहीं था। उनका एकमात्र ध्यान इस ओर था कि अधिक-से-अधिक भूकम्प-पीड़ितों को कम-से-कम समय में सेवा-सहायता पहुंचाई जाय। उनके इस दौरे ने कार्यकर्ताओं में बड़ी ही प्रेरणा और तत्परता का संचार किया।

इसके वाद तो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की वैठकों में प्रायः पण्डितजी से मुलाकात और बातचीत होती। मैंने देखा कि उनकी सूझवूझ बड़ी संगतिमय हुआ करती थी। साध्य और साधन की पवित्रता में उनका अटूट विश्वास देखकर उनके प्रति आदर और भी बढ़ जाता था। १९३९ में जब सुभाषबाबू के दुबारा कांग्रेस-अध्यक्ष बनने के आग्रह से कांग्रेस में न टाला जा सकनेवाला संकट पैदा हुआ तो सरदार पटेल ने त्रिपुरी-कांग्रेस के समय प्रायः सभी नेताओं से बातचीत करने का काम मुझे ही सौंपा। उस समय मैंने बहुतों को चिन्तित और व्यग्र पाया। पर पंडितजी के खिले हुए चेहरे की मुस्कराहट कभी गायब या मलिन नहीं हुई। वह ऐसी बातों से जैसे एकदम अछूते और अविचलित रहने के अभ्यासी हो चुके थे। पर ऐसे अवसर पर भी मैंने उनकी वाणी से कभी किसीके लिए कोई हल्की, उत्तेजना या अप्रसन्नता-पूर्ण बात नहीं सुनी। उनका धीरज, साहस और स्थितप्रज्ञ की स्थिति देखकर कभी-कभी तो बड़ा ही आश्चर्य होता था।

२ जून, १९४६ को जब अन्तरिम सरकार बनी तब नेहरूजी उपराष्ट्रपति और मैं चीफ ह्विप बना। उस दिन से पंडितजी के अन्तिम क्षणों तक हम दोनों का साथ रहा। बाद में जब वह कांग्रेस संसदीय दल

के नेता और प्रधान मन्त्री बने तब चीफ ह्विप के रूप में मेरा उनसे निकटतम सम्पर्क हो गया। रोज कई-कई बार मिलना और कई बातों को लेकर आलोचना-चर्चा करना हमलोगों का दैनिक काम हो गया। इस बीच अनेक बार ऐसे अवसर आये हैं कि हम दोनों एक-दूसरे से सहमत नहीं हो सके। पंडितजी अपने विचारों और विश्वासों की दृढ़ता के लिए प्रख्यात थे। पर उनके स्नेह, सौजन्य और अपनत्व के कारण मैं भी कुछ ऐसा ढीठ हो गया था कि जो बात मुझे सही जान पड़ती थी, उसपर अड़ जाता और पंडितजी के समझाने-बुझाने पर भी टस-से-मस न होता। दूसरे लोग शायद सोचें कि इसपर पंडितजी अवश्य अप्रसन्न होते होंगे, क्योंकि उनकी तुनुकमिजाजी प्रसिद्ध थी। पर दरअसल बात उससे एकदम उलटी थी। मेरे जिद्द करने पर वह मेरी बात मान लेते थे। मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नहीं आता, जब उन्होंने मेरी बात न मानी हो। हां, पहले वह बड़े झुंझलाते तरह-तरह के तर्क देते, पर अन्त में मुझे निराश न करते। इसे मैं उनका बड़प्पन ही कहूंगा। उन्हें इस बात का विश्वास हो गया था कि मैं उन्हें कभी गलत नहीं कहूंगा कभी उनके विश्वास का दुरुपयोग नहीं करूंगा।

पर पंडितजी मुझे कितना स्नेह करते थे, कितना अपना समझते थे, यह जानने-समझने का अवसर मुझे पिछले चुनावों के समय ही मिला। अपने बिहार के दौरे के सिलसिले में जब वह मेरे जन्म-स्थान समस्तीपुर (जिला दरभंगा) आने को हुए तो कई अधिकारियों ने उन्हें सलाह दी कि इतना बड़ा नेता और शासन का प्रधान भला समस्तीपुर जैसे छोटे-से सब डिवीजनल स्थान में क्या ठहरेगा? उन्हें तो मुजफ्फरपुर के सर्किट हाउस में ही ठहराना ठीक होगा। पर जब नेहरूजी को इस व्यवस्था का पता चला तो उन्होंने यह कहकर इसे उलट दिया, "जब समस्तीपुर में मेरा अपना घर है तो भला मुजफ्फरपुर के सर्किट हाउस में क्यों ठहरूंगा?" और, वह मेरे घर पर ही कुछ घंटे ठहरे। इस बीच वह घर-भर में बाल-बच्चों तक से, ऐसे घुलमिल गये मानो हमारे परिवार के ही चिर-परिचित सदस्य हों। मैंने जब उनसे पूछा कि रात्रि भोजन के समय कुछ अधिकारियों तथा प्रमुख नेताओं को बुला लिया जाय तो कैसा रहेगा तो बिना किसी द्विविधा या विलम्ब के उन्होंने उत्तर दिया, "नहीं, किसी बाहरी आदमी को बुलाने की जरूरत नहीं। मैं चाहता हूं कि यह सिर्फ घरवालों का भोज हो। उसमें परिवार के ही सदस्य हों।" उनका यह स्नेह और अपनत्व देखकर मेरा मन भर आया।

आज ऐसी ही बातों को याद करके बरबस आंखें डबडबा आती हैं और लगता है कि न सिर्फ भारत की जनता ने ही बहुत बड़ा जन-नेता खो दिया है, भारत सरकार ने असाधारण प्रधान मंत्री खो दिया है, बल्कि मैंने अपना सच्चा सखा, हितचिन्तक और परिवार का प्रियतम सदस्य खो दिया है। ●

सुरेन्द्र कुमार दे

सबके भाई

वह सो रहे थे । अब उनकी निद्रा कभी न टूटेगी । वह लोगों के आंसुओं और मर्माहत आह के प्रति बेखबर थे। वह थकान से चूर बालक की तरह बेसुध सो रहे थे।

जबसे देश का स्वाधीनता-आंदोलन गतिशील हुआ, वह देश पर तूफान की तरह छाये रहे। देश-विदेश में जहां कहीं भी मानवता को चुनौती मिली, जहां कहीं 'अतीत' स्वर्णिम 'भविष्य' के मार्ग में बाधक बना, वह उससे लोहा लेने के लिए जा डटे ।

बापू राष्ट्रपिता हैं और नेहरूजी सबके भाई । छोटे-बड़े सब उनके पास मुक्त रूप से जा सकते थे। छोटे-से-छोटा आदमी भी उनसे बंधुत्व पाता था। निन्दित लोगों के लिए भी उनके दरवाजे बन्द न थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि 'सब लोग भाई-भाई हैं।'

उन्होंने अन्ध-विश्वासों और कुरीतियों का विरोध किया। उन्होंने भारत के 'भविष्य' का निर्माण किया और बताया कि मानव के विकास के लिए उसे क्या करना है।

समाजवाद को उन्होंने नया अर्थ और नई दिशा दी। जिस नये लोकतन्त्र की उन्होंने कल्पना की थी—पंचायती राज, सहकारी समाज और सामूहिक विकास उसके तीन आधार-स्तम्भ थे ।

आलोचक हँसे और छिद्रान्वेषियों ने नाक-भौं चढ़ाई। पर वह अटल रहे, क्योंकि उन्हें अपने देशवासियों पर विश्वास था। उन्होंने कहा, "सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात लोगों के गुण हैं।" वह जानते थे कि राष्ट्र का निर्माण लोग केवल अपने सामर्थ्य से ही कर सकते हैं ।

कुछ लोग कहते हैं, "नेहरूजी नहीं रहे।" पर ये लोग नहीं जानते कि वह क्या कह रहे हैं? केवल वह शरीर, जिससे हमने इतनी बेरहमी से काम लिया, विद्रोह कर उठा और चुपचाप उस आराम के लिए चला गया, जो उसे मिलना चाहिए था। उनकी आत्मा अमर है और सदा की तरह वह जाज्वल्यमान है ।

इस देश की बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओं—विशाल बांधों, पुलों, राजमार्गों, कारखानों, विश्वविद्यालयों, कालेजों, स्कूलों, उद्यानों, सरकारी खेतों और घरों के पिछवाड़े लगे सब्जी के छोटे-छोटे बगीचों, सबपर अद्वितीय कलाकार की छाप है, जिसे समय भी नहीं मिटा सकता।

वर्तमान और भावी पीढ़ियों को उन्होंने जबर्दस्त चुनौती दी है। क्या हम यह जानते हैं कि उन्हें किन बातों से प्यार था और उन्होंने किन आदर्शों के लिए अपना जीवन लगा दिया, या हम उन्हें केवल अपने व्यक्तिगत लाभ का साधन भर मानते थे? सचाई क्या है, केवल भविष्य ही बतायगा । ●

के नेता और प्रधान मन्त्री बने तब चीफ ह्विप के रूप में मेरा उनसे निकटतम सम्पर्क हो गया। रोज कई-कई बार मिलना और कई बातों को लेकर आलोचना-चर्चा करना हमलोगों का दैनिक काम हो गया। इस बीच अनेक बार ऐसे अवसर आये हैं कि हम दोनों एक-दूसरे से सहमत नहीं हो सके। पंडितजी अपने विचारों और विश्वासों की दृढ़ता के लिए प्रख्यात थे। पर उनके स्नेह, सौजन्य और अपनत्व के कारण मैं भी कुछ 'ऐसा ढीठ' हो गया था कि जो बात मुझे सही जान पड़ती थी, उसपर अड़ जाता और पंडितजी के समझाने-बुझाने पर भी टस-से-मस न होता। दूसरे लोग शायद सोचें कि इसपर पंडितजी अवश्य अप्रसन्न होते होंगे, क्योंकि उनकी तुनुकमिजाजी प्रसिद्ध थी। पर दरअसल बात उससे एकदम उलटी थी। मेरे जिद्द करने पर वह मेरी बात मान लेते थे। मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नहीं आता, जब उन्होंने मेरी बात न मानी हो। हां, पहले वह बड़े झुंझलाते तरह-तरह के तर्क देते, पर अन्त में मुझे निराश न करते। इसे मैं उनका बड़प्पन ही कहूंगा। उन्हें इस बात का विश्वास हो गया था कि मैं उन्हें कभी गलत नहीं कहूंगा कभी उनके विश्वास का दुरुपयोग नहीं करूंगा।

पर पंडितजी मुझे कितना स्नेह करते थे, कितना अपना समझते थे, यह जानने-समझने का अवसर मुझे पिछले चुनावों के समय ही मिला। अपने बिहार के दौरे के सिलसिले में जब वह मेरे जन्म-स्थान समस्तीपुर (जिला दरभंगा) आने को हुए तो कई अधिकारियों ने उन्हें सलाह दी कि इतना बड़ा नेता और शासन का प्रधान भला समस्तीपुर जैसे छोटे-से सब डिवीजनल स्थान में क्या ठहरेगा ? उन्हें तो मुजफ्फरपुर के सर्किट हाउस में ही ठहराना ठीक होगा। पर जब नेहरूजी को इस व्यवस्था का पता चला तो उन्होंने यह कहकर इसे उलट दिया, "जब समस्तीपुर में मेरा अपना घर है तो भला मुजफ्फरपुर के सर्किट हाउस में क्यों ठहरूंगा ?" और, वह मेरे घर पर ही कुछ घंटे ठहरे। इस बीच वह घर-भर में बाल-बच्चों तक से, ऐसे घुलमिल गये मानो हमारे परिवार के ही चिर-परिचित सदस्य हों। मैंने जब उनसे पूछा कि रात्रि भोजन के समय कुछ अधिकारियों तथा प्रमुख नेताओं को बुला लिया जाय तो कैसा रहेगा तो बिना किसी द्विविधा या विलम्ब के उन्होंने उत्तर दिया, "नहीं, किसी बाहरी आदमी को बुलाने की जरूरत नहीं। मैं चाहता हूं कि यह सिर्फ घरवालों का भोज हो। उसमें परिवार के ही सदस्य हों।" उनका यह स्नेह और अपनत्व देखकर मेरा मन भर आया।

आज ऐसी ही बातों को याद करके बरबस आंखें डबडबा आती हैं और लगता है कि न सिर्फ भारत की जनता ने ही बहुत बड़ा जन-नेता खो दिया है, भारत सरकार ने असाधारण प्रधान मंत्री खो दिया है, बल्कि मैंने अपना सच्चा सखा, हितचिन्तक और परिवार का प्रियतम सदस्य खो दिया है। ●

सुरेन्द्र कुमार दे

सबके भाई

वह सो रहे थे । अब उनकी निद्रा कभी न टूटेगी । वह लोगों के आंसुओं और मर्माहत आह के प्रति बेखबर थे। वह थकान से चूर बालक की तरह बेसुध सो रहे थे।

जबसे देश का स्वाधीनता-आंदोलन गतिशील हुआ, वह देश पर तूफान की तरह छाये रहे। देश-विदेश में जहां कहीं भी मानवता को चुनौती मिली, जहां कहीं 'अतीत' स्वर्णिम 'भविष्य' के मार्ग में बाधक बना, वह उससे लोहा लेने के लिए जा डटे।

बापू राष्ट्रपिता हैं और नेहरूजी सबके भाई । छोटे-बड़े सब उनके पास मुक्त रूप से जा सकते थे। छोटे-से-छोटा आदमी भी उनसे बंधुत्व पाता था। निन्दित लोगों के लिए भी उनके दरवाजे बन्द न थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि 'सब लोग भाई-भाई हैं।'

उन्होंने अन्ध-विश्वासों और कुरीतियों का विरोध किया। उन्होंने भारत के 'भविष्य' का निर्माण किया और बताया कि मानव के विकास के लिए उसे क्या करना है।

समाजवाद को उन्होंने नया अर्थ और नई दिशा दी। जिस नये लोकतन्त्र की उन्होंने कल्पना की थी—पंचायती राज, सहकारी समाज और सामूहिक विकास उसके तीन आधार-स्तम्भ थे ।

आलोचक हँसे और छिद्रान्वेषियों ने नाक-भौं चढ़ाईं। पर वह अटल रहे, क्योंकि उन्हें अपने देशवासियों पर विश्वास था। उन्होंने कहा, "सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात लोगों के गुण हैं।" वह जानते थे कि राष्ट्र का निर्माण लोग केवल अपने सामर्थ्य से ही कर सकते हैं।

कुछ लोग कहते हैं, "नेहरूजी नहीं रहे।" पर ये लोग नहीं जानते कि वह क्या कह रहे हैं? केवल वह शरीर, जिससे हमने इतनी बेरहमी से काम लिया, विद्रोह कर उठा और चुपचाप उस आराम के लिए चला गया, जो उसे मिलना चाहिए था। उनकी आत्मा अमर है और सदा की तरह वह जाज्वल्यमान है।

इस देश की बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओं—विशाल बांधों, पुलों, राजमार्गों, कारखानों, विश्वविद्यालयों, कालेजों, स्कूलों, उद्यानों, सरकारी खेतों और घरों के पिछवाड़े लगे सब्जी के छोटे-छोटे बगीचों, सभीपर अद्वितीय कलाकार की छाप है, जिसे समय भी नहीं मिटा सकता।

वर्तमान और भावी पीढ़ियों को उन्होंने जबर्दस्त चुनौती दी है। क्या हम यह जानते हैं कि उन्हें किन बातों से प्यार था और उन्होंने किन आदर्शों के लिए अपना जीवन लगा दिया, या हम उन्हें केवल अपने व्यक्तिगत लाभ का साधन भर मानते थे ? सचाई क्या है, केवल भविष्य ही बतायगा। ●

भारत उनका सदा ऋणी रहेगा

मार्च, १९४२ की बात है। 'भारत छोड़ो'-आंदोलन के कुछ महीने पहले वर्धा में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का एक विशेष अधिवेशन बजाजवाड़ी के पीछे के खुले स्थान में हुआ था। उस अधिवेशन में भाषण देते हुए गांधीजी ने भावपूर्ण शब्दों में कहा, "मेरे बाद मेरा वारिस जवाहरलाल होगा। मेरे रहते वह शायद ऐसी बातें कहे, जो मेरे विचारों से मेल न खाती हों, लेकिन मेरे बाद वह मेरी भाषा बोलेगा।" ये शब्द मेरे कानों में हमेशा गूंजते रहे हैं। आदरणीय पंडितजी से मेरा संपर्क लगभग १९३६ से रहा। संसद का सदस्य बनने के बाद १९५२ से तो उनके काफी नजदीक काम करने का मौका मिला। उन्हींके आदेशानुसार मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का प्रधान मंत्री बना और फिर बाद में योजना कमीशन का सदस्य। मैंने हमेशा देखा कि पूज्य बापू के जाने के बाद वह उनके विचारों व आदर्शों से अनायास बहुत प्रभावित रहे। वह अक्सर सोचा करते थे कि अमुक परिस्थिति में और किसी विशिष्ट समस्या के बारे में गांधीजी क्या सोचते। एक बार उन्होंने मुझसे कहा, "मैं नहीं जानता कि ऐसे हालात में बापू की क्या राय होती, किन्तु इस समय तो बापू हमारे बीच नहीं हैं, तुम विनोबाजी से राय लेकर मुझे बताना। बापू के विचारों से ज्यादा-से-ज्यादा नकदीक वह ही हैं।" मैंने यह भी पाया कि गंभीर विषयों पर विचार करते समय पंडितजी की पहली प्रतिक्रिया गांधीवादी ही होती थी। बाद में विभिन्न दृष्टियों को ध्यान में लेकर वह लोकशाही के आधार पर निर्णय लिया करते थे।

... ...

आदरणीय पंडितजी के स्वर्गवास के बाद पूज्य विनोबाजी ने उन्हें "लोकदेव' के नाम से पुकारा है। मैंने कितनी ही बार देखा कि भीड़ को देखकर पंडितजी ताजा हो जाते थे और जनता से बातें करते हुए वह अपनी थकान भूल जाते थे। उनके लिए जन-समूह ही परमेश्वर का प्रतीक था। जनता को वह निरंतर प्रेरणा देते रहे और जनता से ही उन्हें स्वयं प्रेरणा मिलती रही।

... ...

अगस्त, १९५३ की बात है। उस समय पंडितजी विदेशों का भ्रमण करके पालम हवाई अड्डे पर उतरे। उनके स्वागत के लिए जनता की बहुत भीड़ थी। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने उनसे धीरे-से कहा कि इस समय लोग बहुत तादाद में खड़े हैं। उनके पास जाने से इंतज़ाम गड़बड़ हो जायगा। इसलिए आप भीड़ को बचाकर मोटर में बैठकर सीधे घर चले जायें। मैं पास ही खड़ा था। पंडितजी ने गंभीर

होकर उत्तर दिया––"मौलाना साहब, मैं बुजुर्गों को भले ही कभी धोखा दे दूं, लेकिन जनता को कभी धोखा नहीं दे सकता।" यह कहकर भीड़ के नज़दीक गये और लोगों को प्रणाम किया। जनता ने उनका जय-जयकार किया!

. . . .

पंडितजी ने देश की आज़ादी के लिए अंग्रेज़ी साम्राज्य से पूरी शक्ति से टक्कर ली और अंत में गांधीजी के मार्गदर्शन में भारत स्वतंत्र हुआ। किन्तु पंडितजी ने भारत को ब्रिटिश कामनवेल्थ में शामिल रखा और काफ़ी विरोध के बावजूद यह पसन्द किया कि भारत और ब्रिटेन के पारस्परिक संबंध जारी रहें। जो ब्रिटिश सरकार उन्हें अपना दुश्मन समझती थी वह भी उनका गहरा आदर करती रही।

. . . .

१९५३ में आगरा में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। उसके कुछ समय पहले ही पंडितजी प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन में उपस्थित होकर लंदन से वापस आये थे। उस समय विंस्टन चर्चिल ब्रिटेन के प्रधान मंत्री थे। वर्किंग कमेटी की एक बैठक में पंडितजी ने हमें बताया कि किस प्रकार चर्चिल साहब ने मीटिंग में उनकी तारीफ़ की और कहा––"इस समय दुनिया में दो प्रकार की भावनाएं प्रभावशाली हैं––नफ़रत और डर। किन्तु नेहरू ने उन दोनों को जीत लिया है।" अहिंसा की इससे अधिक और क्या विजय हो सकती थी? पंडितजी ने यह भी बताया कि चर्चिल साहब उसी समय इंदिरा की ओर मुड़कर विनोदपूर्वक कहने लगे––"नौजवान महिला, चूंकि मैंने तुम्हारे पिता को १० वर्ष कारावास में रखा, इसलिए तुम तो मुझसे बहुत नफ़रत करती होगी!"

इस प्रकार पंडितजी ने अपने व्यक्तित्व की गहरी छाप ब्रिटेन के उन नेताओं पर भी डाली थी, जो एक समय उन्हें अपना सबसे बड़ा शत्रु समझते थे।

. . . .

जुलाई १९५२ में एक दिन मैंने संसद में भाषण दिया और सरकार की आर्थिक नीति की कुछ कड़ी आलोचना की। ज्योंही मैं भाषण देकर अपनी सीट पर बैठा त्योंही पूज्य पंडितजी ने एक संसद सदस्य से कहला भेजा कि वह मुझसे मिलना चाहते हैं। मैं समझा कि शायद मेरे आलोचनात्मक भाषण से नाराज़ होकर वह मुझे बुला रहे हैं। मैं जैसे ही उठकर चलने लगा तो दूसरा व्यक्ति दौड़कर आया और कहने लगा कि प्रधानमंत्रीजी आपको जल्दी बुला रहे हैं। जब मैं तेजी से पंडितजी के दफ्तर की ओर जा रहा था तो उनके कार्यालय का एक दूसरा व्यक्ति मिला। मैं समझा कि जरूर डांट पड़ेगी। दफ्तर में पहुंचते ही श्रद्धेय पंडितजी ने फौरन अन्दर बुलाया। मैं काफी घबड़ाया हुआ था, फिर भी शान्त चित्त से उनके पास जाकर बैठ गया। कोई नाराजी की बात के बजाय उन्होंने बड़े प्रेम से कहा, "मैं चाहता हूं कि तुम कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य बन जाओ और उसके सेक्रेटरी का भी काम करो।" यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने पंडितजी से धीमे-से कहा, "मुझे तो इस बात की बिलकुल कल्पना ही नहीं थी। मैं तो यही समझा कि आज के मेरे भाषण से आप नाराज़ हुए होंगे, इसलिए बुलाया। मैं तो ए. आई. सी. सी. का सदस्य भी नहीं हूं। फिर वर्किंग कमेटी का सदस्य व सेक्रेटरी कैसे बनूंगा?"

"क्या तुम कांग्रेस के चवन्नी के सदस्य भी नहीं हो?" पंडितजी ने पूछा।

"जी, चवन्नी का सदस्य तो हूं, क्योंकि कांग्रेस टिकट पर संसद का सदस्य चुना गया हूं। किन्तु मैंने आजतक कांग्रेस की राजनीति में कोई हिस्सा नहीं लिया है।"

"खैर, ए. आई. सी. सी. आदि के सदस्य चुने जाने में कोई खास दिक्कत नहीं होनी चाहिए। मैं चाहता हूं कि तुम कल से ही ए. आई. सी. सी. के दफ्तर में जाना शुरू करो और धीरे-धीरे काम समझ लो, ताकि मंत्री का पद सम्भाल सको।" पंडितजी ने कहा।

मैंने विनम्रता से उत्तर दिया, "आपकी जैसी आज्ञा। मैं इस काम को अपनी शक्ति के अनुसार सम्भालने का पूरा प्रयत्न करूंगा।"

... ...

जब मैं पहले पहल कांग्रेस का प्रधान मन्त्री बना तो दो वर्ष तक पंडितजी ही अध्यक्ष थे। उनके साथ कार्य करते समय कई अमूल्य अनुभव प्राप्त हुए। उनको जब कभी कांग्रेस-दफ्तर से हम कोई फ़ाइल शाम को भेजते थे तो दूसरे दिन सुबह निश्चित रूप से उनका उत्तर मिल जाता था। यह बात इतनी ही निश्चित थी जितनी कि रात्रि होने के बाद दूसरे दिन सुबह सूरज उगता है। पंडितजी का नियम था कि रात को अपनी मेज़ की सभी फ़ाइलें निपटाकर वह सोते थे। सुबह उनकी चिठ्ठियां मोटर-साइकिल पर चढ़े एक फ़ौजी पत्रवाहक द्वारा मिलती थीं। उनके स्वर्गवास के एक दिन पहले भी ऐसा ही हुआ। तारीख २६ मई की शाम को मुझे इसी प्रकार पत्रवाहक ने मोटर-साइकिल पर आकर उनकी चिट्ठी दी, जिसमें मेरी नवीनतम पुस्तक के लिए प्राक्कथन भेजा गया था। तारीख २६ की शाम को ७ बजे वह देहरादून से वापस आये और ७–३० बजे मेरे घर पर उनकी चिट्ठी मिल गई।

... ...

कांग्रेस के प्रति पंडितजी का अगाध प्रेम था, श्रद्धा थी। वह हमेशा कहा करते थे कि भारत के उत्थान में कांग्रेस का एक विशेष मिशन है, जो उसे अवश्य पूरा करना चाहिए। वह मिशन है भारत की एकता कायम रखना। भारत में विभिन्न धर्म, जातियां, भाषाएं व प्रांत हैं। यदि हम तंग नज़रिये से काम करेंगे तो देश के टुकड़े हो जायंगे। कांग्रेस ही एक ऐसी संस्था है, जो देश को एक बनाये रखने में सफल हो सकती है।

वह जानते थे कि कांग्रेस में बहुत-सी बुराइयां हैं और उन्हें दूर करना आवश्यक है। किन्तु वह कभी निराश नहीं होते थे और कार्यकर्त्ताओं को समझाते थे कि हमेशा आगे बढ़ते जायं। यदि बीच में ठोकर खाकर गिरना भी पड़े तो फिर उठ खड़े हों और बहादुरी से चलने लगें।

एक बार अजमेर के अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन के समय कुछ प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्त्ता उनके पास आये और कहने लगे कि अमुक उपचुनाव में यदि कांग्रेस की ओर से कोई व्यक्ति खड़ा किया जाय तो वह निश्चित रूप से हार जायगा और उन्होंने पूछा, "क्या यह अच्छा नहीं होगा कि इस चुनाव में हम कोई उम्मीदवार खड़ा न करें? हार जाने से कांग्रेस कमज़ोर न हो जायगी?"

पंडितजी ने बुलंद आवाज़ से उत्तर दिया, "चुनाव न लड़ने का सवाल ही क्या है? हमें सब

जगह अपने उम्मीदवार ज़रूर खड़े करने चाहिए। हारने से डरना क्या? सिर झुकाकर भी लड़ते रहना है। हार से भी हमें सबक लेना चाहिए। इसी तरह कांग्रेस मज़बूत बनी रह सकती है।"

... ...

मई, १९५८ में एक दिन पूज्य पंडितजी ने अपने दफ्तर में बुलाया और कहने लगे, "योजना-आयोग के डिप्टी चेयरमैन श्री वी. टी. कृष्णमाचारी मुझसे कई बार कह चुके हैं कि तुम्हें आयोग का सदस्य बनाना चाहिए। क्या तुमसे ढेबरभाई ने कुछ बातचीत की है।"

"जी नहीं, मुझे तो इस संबंध में कुछ भी पता नहीं है?"

"लेकिन मेरा ख्याल है कि तुम योजना-आयोग में आ जाओ तो अच्छा रहेगा। श्री कृष्णमाचारी बहुत इच्छुक हैं।"

मैंने कहा, "पंडितजी, आपने ही मुझे ६ वर्ष पहले एक दिन अचानक बुलाया था और ए. आई. सी. सी. का प्रधान मन्त्री बनने के लिए आज्ञा दी थी। ६ वर्ष तक मैंने इस काम को भरसक संभालने की कोशिश की है। अब यदि आपका आदेश है कि मैं योजना-आयोग का सदस्य बन जाऊं तो मैं इन्कार किस प्रकार कर सकता हूं। यह तो आपको ही तय करना है कि मैं ए. आई. सी. सी. में काम करूं या योजना-आयोग में।"

"अच्छा, मैं ढेबरभाई से बातचीत करके फिर तुमसे कहूंगा।" पंडितजी ने उत्तर दिया।

कुछ दिन बाद उन्होंने एक दिन मुझे बुलाया और कहा, "मैंने ढेबरभाई से बातचीत कर ली है। अब तुम जितनी जल्दी हो सके योजना-आयोग का काम संभाल लो।"

मैंने उत्तर दिया, "कुछ दिनों बाद वर्किंग कमेटी की बैठक होनेवाली है। उसमें कुछ महत्व के विषयों पर चर्चा होगी। यदि आप ठीक समझें तो मैं वर्किंग कमेटी के बाद ही योजना-आयोग का काम देखूं।"

पंडितजी ने यह बात पसन्द की और मैं इस प्रकार १५ जुलाई, १९५८ से योजना-आयोग का सदस्य बना और आजतक उसी हैसियत से कार्य कर रहा हूं।

१४ जुलाई की शाम को श्री ढेबरभाई के साथ पूज्य पंडितजी से उनके निवास पर मिलने गया। कांग्रेस-संबंधी कई विषयों पर बातचीत होने के बाद जब मैं चलने लगा तो पंडितजी ने बड़े प्रेम से मेरी पीठ पर हाथ रखा और कहा, "अब कलसे तुम्हारा और मेरा एक नया रिश्ता शुरू होगा। मैं योजना-आयोग का अध्यक्ष हूं न?"

मैंने सिर झुकाकर कहा, "योजना-आयोग में भी आपसे मेरा सम्पर्क बना रहेगा, यह मेरे लिए बड़े संतोष की बात है।"

पिछले छः वर्षों में योजना-आयोग के काम की दृष्टि से पूज्य पंडितजी से काफी सम्पर्क रहा। वह हमारे यहां की बैठकों के लिए तो आते ही रहे और बहुत-से विषयों पर उनसे चर्चा भी हुई। बीच-बीच में उनसे अलग भी मिलता रहा और जो बातें मेरे मन में होतीं थीं वे उनके सामने निस्संकोच रख देता था। कभी-कभी कुछ कटु बातें हुईं। लेकिन उन्होंने हमेशा मेरे सुझावों पर प्रेम व गंभीरता से ध्यान दिया। कभी यह नहीं कहा कि तुम्हारी बात ठीक नहीं है। यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है कि

आदरणीय पंडितजी से लगभग बारह वर्ष के नजदीकी संबंध में ऐसा कोई मौका नहीं आया कि वह किसी बात पर मुझसे नाराज हुए हों।

उनके साथ योजना-आयोग की आखिरी बैठक ९ मई को उनके निवासस्थान पर हुई, जिसमें चौथी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा पर विचार किया गया और उनके स्वर्गवास के एक दिन पहले मुझे उनका अंतिम पत्र मिला, जिसमें उन्होंने मेरी नवीनतम पुस्तक के लिए अपना प्राक्कथन भेजा था। यह प्राक्कथन भारतीय समाजवाद और संयोजन के संबंध में उनका अंतिम सार्वजनिक वक्तव्य है। यह भी मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात रही।

... ...

तीन वर्ष पहले की बात होगी। पूज्य पंडितजी का मेरे पास फोन आया और उन्होंने पूछा, "कुछ दिन पहले विनोबाजी ने सियासत व रूहानियत के बारे में एक संदेश किसी कालेज को भेजा था। क्या उसकी कापी तुम्हारे पास है?"

"मेरे पास प्रतिलिपि तो नहीं है। किन्तु मैं उसकी एक कापी आज ही मंगाकर आपको अवश्य भेज दूंगा।" और मैंने ऐसा ही किया।

पूज्य विनोबाजी ने अपने संदेश में कहा था कि अब राजनीति व मजहब के दिन लद गये हैं और विज्ञान तथा रूहानियत का जमाना आ रहा है। इस विचार से पंडितजी बहुत ही प्रभावित हुए। उन्होंने कुछ दिन बाद मुझसे कहा, "विनोबाजी का राजनीति, मजहब, विज्ञान व रूहानियत का विचार बहुत ही गहरा है। मुझे वह बहुत अच्छा लगा है। मैंने उसका जिक्र इस वर्ष की सायंस कांग्रेस में किया था। तुमने अखबारों में देखा होगा।"

बाद में पूज्य विनोबाजी के नाम से पंडितजी ने इसी विचार को वाशिंगटन व मास्को में भी दोह-राया। वह स्वयं वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते थे। उन्हें दकियानूसी मजहब से चिढ़ थी। राजनीतिज्ञ तो वह थे ही, किन्तु वह समझते थे कि दलगत राजनीति बिना रूहानियत का सहारा लिये अधिक दिन नहीं चल सकती। इसलिए वह कांग्रेस कार्यकर्ताओं को भी हमेशा समझाते थे कि अपने दृष्टिकोण को व्यापक रखो और तंग दिल से काम न लो। दुनिया तेजी से विज्ञान की ओर जा रही है और हमें भी उसके साथ अपने दिल और दिमाग़ को बड़ा कर लेना चाहिए, नहीं तो जमाना हमारे ऊपर से निकल जायगा और हम जहां-के-तहां रह जायंगे।

यद्यपि पंडितजी को गांधीजी के कई विचार पूरे तौर से नहीं जंचते थे, फिर भी गांधीजी के प्रति उनके मन में बहुत ही गहरी श्रद्धा थी। योजना-आयोग की चर्चाओं में मैंने हमेशा पाया कि पंडितजी का भी बुनियादी दृष्टिकोण गांधीवादी रहता था। बाद में सब पहलुओं पर विचार करके सोलहों आने उसे स्वीकार न कर सके, यह अलग बात है। कुछ समय पहले आयोग की एक बैठक में उन्होंने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा :

"हमने पिछले दस वर्षों में काफी काम किया है और देश की आर्थिक स्थिति में ठोस प्रगति भी हुई है। लेकिन मैं पाता हूं कि अब भी हमारे देश के शहरों और देहातों में बहुत-से तबके हैं, जो गरीब हैं।

उनकी यह गरीबी तेजी से दूर करना हमारा फर्ज है। मैं जितना भी सोचता हूं, यह ध्यान में आता है कि आखिर हमें गांधीजी का तरीका ही अपनाना होगा। वह ग्रामोद्योगों पर और सादा जीवन पर जोर देते थे। हमें आखिर में उन्हींके विचारों का सहारा लेना होगा।"

... ...

पंडितजी विनोबाजी के लिए बहुत आदर रखते थे। उनकी हमेशा इच्छा रहती थी कि साल में कम-से-कम एक बार किसी मौके पर विनोबाजी से मिलना हो जाय। मेरा भी सदा यही प्रयत्न रहा कि बीच-बीच में बापूजी के ये दो महान् शिष्य आपस में मिलते रहें। छः या सात बार इस प्रकार का मधुर मिलन हुआ। पूज्य विनोबाजी भी पंडितजी के लिए गहरा आदर रखते थे। जब पंडितजी उनसे मिलने जाते थे तो कुछ मिनटों तक तो विनोबाजी गद्गद् हो जाते थे और प्रेम के आंसू बहने लगते थे। कुछ समय के बाद ही दोनों में बातचीत शुरू होती थी।

जब कभी पंडितजी विनोबाजी से मिलते थे तो उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछते थे और कहते थे कि बीच-बीच में कुछ आराम भी लीजिए। भूदान व ग्रामदान ये आंदोलन की प्रगति के बारे में भी चर्चा होती थी। यलवल के ग्रामदान-सम्मेलन के लिए तो पंडितजी दो दिन के लिए ख़ासतौर पर मैसूर गये और ग्रामदान के विचार की सराहना की। विनोबाजी से पंडितजी की आख़िरी मुलाकात १९६३ को २५ दिसम्बर को बंगाल के नवग्राम गांव में हुई थी। उस समय भी मैं उपस्थित था। पिछली मुलाकातों के अवसर पर तो मैं भी बराबर हाज़िर रहा, ताकि बातचीत का सिलसिला जारी रहे। किन्तु नवग्राम में दोनों महापुरुषों की आपस में ही बातें होती रहीं और दूसरा कोई उपस्थित न रहा। लगभग दो घंटे तक विभिन्न विषयों पर गंभीर चर्चा होती रही। बाद में सार्वजनिक सभा में दोनों के भाषण हुए। पंडितजी ने कहा, "यह सही है कि आज हमारे बहादुर जवान सीमा के पहाड़ों पर चीन का मुकाबला कर रहे हैं। मुझे विश्वास है कि इस काम में उन्हें सफलता मिलेगी और हम चीन को आगे बढ़ने से रोकेंगे। किन्तु हमारा असली दुश्मन तो देश की गरीबी व बेकारी है। हमें इस दुश्मन पर भी हावी होना है। इस दृष्टि से ग्रामदान-आंदोलन बहुत अहममियत रखता है।"

इस वर्ष अप्रैल के अंत में आदरणीय पंडितजी की बहुत इच्छा थी कि पूज्य विनोबाजी एक बार कुछ दिन के लिए आ जायं। स्वास्थ्य के कारण वह उनसे मिलने के लिए वर्धा जाने में असमर्थ थे। पंडितजी की बड़ी इच्छा थी कि विनोबाजी से चीन, पाकिस्तान, कश्मीर व साम्प्रदायिक दंगों के बारे में विस्तृत बातचीत करें। मैंने भी काफ़ी प्रयत्न किया कि विनोबाजी पंडितजी से मिलने के लिए पदयात्रा का आग्रह न रखकर ट्रेन या हवाई जहाज़ से दिल्ली आ जायं। किन्तु यह शक्य न हो सका।

इन्हीं दिनों जब मैं पंडितजी से मिलने गया तो उन्होंने मुस्कराकर मुझसे पूछा—"तुम्हें मालूम है कि विनोबाजी ने मेरे लिए २४ घंटे का प्रोग्राम बनाकर भेजा है, उसमें उन्होंने सुझाया है कि मैं कम-से-कम एक घंटा बांसुरी बजाऊं या ताश खेलूं।" फिर बालभाव से सहज में बोले, "यह हिदायत मैं कैसे पूरी करूं? मैंने तो न कभी बांसुरी बजाई और न कभी ताश खेलना सीखा।" मैंने भी मुस्कराकर कहा, "पंडितजी, विनोबाजी का तो यही मतलब होगा कि आप एक घंटा बिल्कुल 'रिलैक्स' किया करें, ताकि

किसी प्रकार का मानसिक व शारीरिक तनाव न रहे। अच्छा हो, यदि आप रोज़ एक घंटे अच्छा संगीत सुनें।" बाद में मुझे मालूम हुआ कि बीच-बीच में पंडितजी कुछ अच्छे कलाकारों के संगीत सुनते भी थे।

... ...

दुनिया पंडितजी को एक बड़े राजनैतिक नेता के रूप में ही जानती थी। वह मज़हब से कोई वास्ता नहीं रखते थे और संकुचित धर्मभाव को बुरा भी समझते थे; किन्तु भगवान बुद्ध के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी और योगायोग भी ऐसा हुआ कि २६ मई को बुद्ध-जयन्ती थी और दूसरे दिन सुबह ही पंडितजी ने अपना पार्थिव देह त्याग दिया, मानो वह बुद्ध भगवान के चरणों में समा गये।

'अस्थि-स्पेशल' के साथ मुझे भी प्रयाग जाने का अवसर मिला। रास्ते-भर गीत, पाठ और भजन होते रहे। हरएक स्टेशन पर लाखों की भीड़ थी। छोटे-छोटे स्टेशनों पर भी हज़ारों लोग उनके अस्थि-कलश के दर्शन करने और उसपर फूल चढ़ाने आये। साधारणतः बड़े साधु-संतों व महात्माओं की अस्थियों पर ही लोग फूल चढ़ाने आते हैं। किन्तु हमने अजीब दृश्य देखा कि राजनैतिक पुरुष होते हुए भी पंडितजी के अस्थि-कलश के प्रति लोगों की भावना राजनैतिक नहीं, किन्तु आध्यात्मिक थी। कितने ही लोग खिड़कियों से कूदकर हमसे कहते थे, "भाईजी, हमें अस्थि-कलश पर पड़ा हुआ एक फूल ही दे दीजिये, फूल न हो तो एक पंखुड़ी ही दे दीजिये। हम बहुत दूर से आये हैं। आपका जीवन-भर एहसान न भूलेंगे।" इंदिराजी व विजयलक्ष्मीजी का आदेश था कि किसीको फूल न दिया जाय। एक को देंगे तो बड़ी अव्यवस्था हो जायगी और भीड़ में स्त्रियां व बच्चे कुचल जायंगे। इसलिए हमने किसी को फूल तो न दिया, लेकिन प्रेम व श्रद्धा-भरी उनकी आंखों का स्मरण सदैव बना रहता है।

... ...

पंडितजी ने भारत की जनता को पूरे दिल से प्यार किया। दिन-रात उनकी यही तमन्ना थी कि वह अपनी सारी शक्ति देश की गरीब जनता को ऊंचा उठाने में लगाते रहें। वह चाहते थे कि अंतिम घड़ी तक भारत की सेवा में ही उनका तन और मन लगा रहे और ऐसा ही हुआ। उनकी इच्छानुसार उनकी मुट्ठी भर राख गंगा के पवित्र जल में प्रवाहित की गई और शेष राख भारत की उस भूमि में मिल गई, जहां किसान कड़ी मेहनत करता है।

पंडितजी आज शरीर से हमारे बीच नहीं हैं, किन्तु हिन्दुस्तान की मिट्टी के कण-कण में उनकी स्मृति सदैव उज्ज्वल रहेगी। ●

प्रकृति के उपासक

स्वर्गीय पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व तथा राजनीति, प्रशासन और राजनय के क्षेत्र में उनकी उपलब्धियों के संबंध में पिछले कुछ महीनों में बहुत-कुछ देखने-पढ़ने में आया है। उन सभी लोगों के लिए, जिन्हें उनके साथ निकट सम्पर्क का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनके व्यक्तित्व तथा सफलताओं के बारे में कही गई बातें केवल जानकारी अथवा सूचना के रूप में ही नहीं मिलीं। पंडितजी से परिचित लोगों की प्रतिक्रिया इन सब विचारों के प्रति आत्मगत और उसके परिणामस्वरूप भावात्मक होनी आवश्यक है। हमलोगों ने उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में बदलती हुई परिस्थितियों के बीच कार्य करते देखा है। अनुकूल स्थिति में भावावेश से और प्रतिकूल स्थितियों में विरोधाभासों से टकराते भी हमने उन्हें देखा है। यह ठीक है कि कभी-कभी विषमताएं उन्हें विह्वल और अधीर बना डालती थीं, किन्तु उनकी समन्वयात्मक प्रतिभा के आगे विरोधाभास अधिक टिक नहीं पाते थे। इस प्रतिभा और अन्य मानवीय गुणों के कारण ही वह वर्षों तक भारत जैसे विशाल राष्ट्र के सर्वोपरि नेता रहे।

सन् १९५० से मई १९६४ तक लोकसभा के सदस्य, संसदीय कांग्रेस दल के मंत्री तथा खाद्य व कृषि-मंत्रालय में कृषि-मंत्री की हैसियत से मुझे पंडितजी के निकट सम्पर्क में आने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। संसदीय कांग्रेस दल सम्भवत: एक ऐसा संगठन है, जो अन्य संगठनों की अपेक्षा पंडितजी के अधिक निकट था। विवादास्पद समस्याओं पर दल सदैव अपने नेता के विचार जानने के लिए उत्सुक रहता था। जब कभी दल में मतभेद होता था तो पंडितजी द्वारा प्रशस्त मार्ग का सभी आदर करते थे। ऐसे अवसरों पर उनकी स्पष्टवादिता बेजोड़ होती थी। पंडितजी में एक विशेष गुण यह था कि वह किसी भी प्रश्न के महत्व को——चाहे वह छोटा हो या बड़ा——कम नहीं करते थे। साथ ही, दल की बैठकों में जो भी विषय विचाराधीन होता था, उसपर उनका पूरा ध्यान रहता था और वह विरोधियों के तर्कों को ध्यान से सुनते थे। दूसरी विशेषता पंडितजी में उनके स्वभाव की समानता थी। यद्यपि वह भावुक समझे जाते थे तथापि कांग्रेस संगठन के मामलों में मैंने उन्हें बहुत कम अधीर होते देखा है।

खाद्य और कृषि-मंत्रालय में मेरा पंडितजी के साथ वैसा ही निकट का संबंध बना रहा। वह वनस्पति विज्ञान और जीव-विज्ञान के गंभीर विद्यार्थी थे। अपने विद्यार्थी-जीवन में उन्होंने इन विज्ञानों का गहन अध्ययन किया था और तभी से प्रकृति-प्रेम की छाप उनके जीवन पर पड़ गई थी। पशु-पक्षियों को देखकर वह बहुत प्रसन्न होते थे। नई दिल्ली के चिड़ियाघर में वह जब-जब भी गये, उन्होंने पशुओं के

संबंध में सदा गहरी दिलचस्पी का परिचय दिया। वास्तव में चिड़ियाघर के निर्माण और उसके निरंतर कार्य में केन्द्रीय कृषि-मंत्रालय को पंडितजी से सदा प्रोत्साहन तथा सहायता मिली।

पौधों और वृक्षों के प्रति नेहरूजी का जो स्नेह था, मुझे उसे निकट से देखने का अवसर मिला। मैं कह सकता हूं कि इनमें उनकी इतनी ही गहरी दिलचस्पी थी, जितनी किसी भी और मानव-समाज-संबंधी समस्या के सुलझाने में। प्रकृति के उपासक और विज्ञानवेत्ता तो वह थे ही, एक साहित्यिक होने के नाते उनकी भावात्मक अभिव्यक्ति और भी विलक्षण हो उठती थी। कांग्रेस नेता की हैसियत से और बाद में प्रधान मंत्री के रूप में उन्होंने जब-जब देश के विभिन्न भागों का दौरा किया, प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर उनकी साहित्यिक प्रवृत्ति जागृत हुए बिना नहीं रह सकी। असम में सूरा घाटी को देख और अस्ताचल की ओर अग्रसर सूर्य की अरुण छटा को निहार उन्होंने जो कुछ लिखा वह साहित्य में सदा अमर रहेगा। इसी प्रकार हिमाच्छादित नन्दादेवी के शिखर को देख और अलकनन्दा घाटी की प्राकृतिक सुषमा के संबंध में पंडितजी ने जो कुछ लिखा, वह एक पारंगत साहित्यकार और संवेदनशील प्रकृति-प्रेमी ही लिख सकता है। वन-महोत्सव के अवसर पर और अन्य अवसरों पर जब उन्हें वृक्षों अथवा वनों के संबंध में कुछ कहना होता था, हमें उनके विचारों से बहुत प्रेरणा मिलती थी।

भारतीय कृषि के संबंध में पंडितजी के जो विचार थे, उन्हें आधुनिकता और परम्परागत विचार-धारा का पूर्ण समन्वय कहा जा सकता है। वह भारतीय किसान को निरर्थक रूढ़ियों से निकालकर वैज्ञानिक तरीकों की ओर लाना चाहते थे, परन्तु इसके साथ ही भारतीय जीवन के साथ चिरकाल से खेती-बाड़ी का जो संबंध रहा है, उसे भी वह बनाये रखना चाहते थे। जहांतक मैं समझता हूं, उनका ध्येय परम्पराओं का उन्मूलन नहीं, बल्कि समय के अनुसार उनका संशोधन था। यही कारण है कि जहां कहीं वह जाते, खेतिहर और ग्रामीण लोग भारी संख्या में उनका स्वागत करते और श्रद्धा से उनका भाषण सुनते। इन लोगों की श्रद्धा का आधार यह दृढ़ धारणा थी कि पंडितजी इनके सच्चे हितैषी हैं और ग्रामीण जनता के प्रति उनकी सहानुभूति असंदिग्ध है। इसी धारणा के बल पर गत वर्ष गाजियाबाद के किसानों ने दिल्ली में डेरा डाल दिया था। उन्हें यह विश्वास था कि देर-सवेर पंडितजी उनकी बात सुनेंगे और उनकी सहायता करने का यत्न करेंगे।

इन्हीं मानवीय गुणों के कारण प्रत्येक भारतीय नेहरूजी में कोमलता तथा आत्मीयता की झलक देखता था। यदि किसान लोग और देहातों में रहनेवाली जनता उन्हें अपना सबसे बड़ा हितचिंतक मानती थी तो मजदूर और उद्योग-धन्धों में काम करनेवाले लोग उन्हें अपना सर्वस्व समझते थे। ●

अशोक मेहता

भारत के निर्माण में उनका योगदान

पण्डित नेहरू के व्यक्तित्व की छत्रछाया में बड़े हुए लोगों को इसका बहुत कम भान हो सकता है कि उनके विचारों एवं दृष्टिकोण को नेहरूजी ने किस हद तक गढ़ा-संवारा। भारत में और अन्य देशों में भी लाखों-करोड़ों लोग उनकी मानस संतति हैं, जिनका विश्व-दर्शन नेहरू के विचारों और मुहावरों की प्रतिच्छाया है। युग-प्रवर्त्तक नेहरू एक नवीन पीढ़ी के निर्माता थे।

पंडित नेहरू में ऐसे तीन गुणों का सह-समुच्चय था, जो एक-साथ बहुत कम पाये जाते हैं। प्रथम, ज्ञान-पिपासा। उनके लिए जिज्ञासा का कोई भी क्षेत्र अगम्य नहीं था। जिस उत्साह से मानव-जाति में वह संचरण करते थे, ज्ञान-जगत में भी वह उसी उत्साह से आदान-प्रदान करते थे। द्वितीय, उनकी अन्तर्-दृष्टि एक इतिहासकार की थी। घटनाओं के ज्वारभाटे में वह मानवीय उद्देश्य के ढांचों को परखते थे। घटनाओं को ऐतिहासिक भूमिका के दृष्टिकोण से देख सकने के कारण वह उनको सक्रिय निरपेक्षता से मापने में समर्थ थे। साथ ही, उन्हें मानव-समाज के क्षुद्रतम व्यक्ति के भी मान की महती चिन्ता रहती थी। उनकी मूलभूत प्रेरणा सबके व्यक्तित्व के उच्चतम विकास और उसे पाने में सहायता देने की थी।

मानव की प्रतिष्ठा के प्रति गूढ़ आस्था और चिंतन ने ही उन्हें स्वतंत्रता का महान सेनानी, लोक-तंत्रवादी और समाजवादी बनाया।

नेतृत्व का बाना पंडित नेहरू को सहज-स्वाभाविक रूप से सुशोभित करता था। उनका दर्शन मात्र श्रद्धोत्पादक था। इस सहज आकर्षण का प्रयोग वह लोगों के उत्थान और मन तथा हृदय की बंधनमुक्ति के लिए करते थे। जन-समुदाय पर उनका गुरुत्वाकर्षण अब कथाओं की-सी घटना है। उसे निरंतर दीर्घ-कालीन वर्षों तक बनाये रखने या सुदृढ़ करने के लिए उन्होंने कभी भी तर्कहीन अपीलों का सहारा नहीं लिया। प्राचीन धर्म-संस्थापकों की भांति उन्होंने लोगों में आस्था का उद्रेक उनका उत्थान करके किया, साधारणतया राजनीतिज्ञों की तरह जन-मानस का पतन करके नहीं।

तर्क को भावना-सम्मत बनाना उनका अद्वितीय गुण था। यदि वह कभी जन-भावनाओं के प्राकृत-स्तर को उद्वेलित करते भी थे——लोगों को औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध भड़काने के लिए ऐसा करना उनके लिए आवश्यक भी था——तो भी उनमें बृहत्तर उद्देश्य के प्रति अनुशासन की भावना को सहज ही बनाये रखते थे। उन्होंने संघर्षशील राष्ट्रीयता को उन्मुक्त गगन की झांकी दिखाकर सफलता की अग्रिम उषा में ही उसपर अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों को आरोपित किया। वह राष्ट्र, धर्म, भाषा या वर्ग के प्रति

जनता की सीमित वफादारी को जानते थे और उसका आदर करते थे। लेकिन उनको स्वीकार करते हुए भी उनकी एकान्तिकता को घटाने तथा उन्हें परिवर्तित करने का सतत प्रयत्न करते थे। लोग चाहे कितनी ही ऊंची उड़ान क्यों न भर लें, वह उनमें नील गगन के चुम्बन की अभिलाषा का संचार करते थे। हर प्रकार की संकीर्णता से उन्हें चिढ़ थी, क्योंकि विशालता का सजीवता के साथ अपरिहार्य संबंध वह स्पष्ट देखते थे।

प्राथमिक सिद्धान्तों के अटूट समर्थन में उनकी गहरी रुचि थी। इसी कारण उन्होंने इसपर जोर दिया कि कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य के उद्देश्य को स्वीकार करे, हालांकि उनका विश्वास था कि विभिन्न राष्ट्रों का अन्योन्याश्रित संबंध है—और, वास्तव में, वह (ब्रिटिश) राष्ट्रमंडल के नितांत परिवर्तित रूप के निर्माता बने। इसी प्रकार, उन्होंने कांग्रेस को लोकतंत्रात्मक समाजवाद स्वीकार करने के लिए धीरे-धीरे धकेला, यद्यपि व्यावहारिक प्रक्रिया में उन्होंने कई समझौते स्वीकार किये। उन्होंने उद्देश्यों की सुस्पष्टता पर विना किसी समझौते के जोर दिया, क्योंकि उनका विश्वास था कि इस प्रकार की सुस्पष्टता से लोगों को वांछित पथ ढूंढने में ठीक उसी तरह से सहायता मिलती है, जिस प्रकार पर्वत-शिखर का प्रकाश-स्तम्भ यात्रियों का मार्गदर्शन करता है। दैनिक जीवन में भी समझौते होते ही हैं, पर उद्देश्यों की रजत-प्रभा ही लोगों को दलदल में फंसने से बचाती है। लोगों के दैनिक प्रयत्न उनकी घटने और बढ़नेवाली शक्ति का परिणाम होते हैं, किन्तु निरंतर अक्षय शक्ति-प्रवाह का आश्वासन निर्दिष्ट उद्देश्यों के स्पष्टतम चित्रण पर निर्भर करता है।

लोगों की सृजनशीलता में उनका अटूट विश्वास था। वह मूलतः एक अनुप्राणित कलाकार थे, जिनका माध्यम था उनके चारों ओर का जन-समुदाय। जिस प्रकार केवल मूर्तिकार को ही संगमरमर में उस मूर्ति की रेखाएं भासती हैं, जिसे वह गढ़ना चाहता है, उसी प्रकार जवाहरलाल को लोगों में अपनी सभी प्रिय संभावनाएं अनावृत होती-सी लगती थीं। उनमें हमको एक ऐसा सफल क्रांतिकारी, स्वतंत्रता-आंदोलन का नायक, समाजवादी और आधुनिकतावादी मिलता है जो संगठनों के प्रति उदासीन था, और यह आश्चर्यजनक है। उनका विचार था कि व्यक्तियों को केवल संगठनों की परिधि में बांधने से उनमें लघुता आती है और उनकी संवेदना घटती है, इसीलिए उन के दृष्टिकोण के क्षितिज को विस्तृत करके तथा उनकी भावनाओं के तर्कपूर्ण परिमार्जन द्वारा जनता की सहानुभूति प्राप्त करके, नेहरूजी ने लोगों की विशालता और स्वतंत्रता में अभिवृद्धि की। संगठनों के इस युग में अपने साथियों के साथ संबंध कैसा होना चाहिए, इस विषय में वह 'तुम' और 'मैं' के आत्मीय संबंध के सर्वोच्च व्याख्याता रहे।

उन्होंने भारतीय संसद को शीघ्र ही प्रौढ़ता प्रदान की, क्योंकि संसद उनके लिए सर्वश्रेष्ठ अभिकरण था, जहां व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति, तर्क-वितर्क, व्याख्या इत्यादि कर सकता है। संसदीय कार्य के साथ उन्होंने असंख्य जन-सभाएं भी जोड़ीं, जहां लाखों लोगों को आमने-सामने बैठकर उनके सह-सम्पर्क का अवसर मिला। वह एक ऐसे कुलीन, विद्वान्, राजनीतिज्ञ थे, जो किसी एक व्यक्ति के सामने नहीं वरन् जनता के सम्मुख ही दिल खोलकर, विना किसी हिचक के, अपने अंतरंग विचार रख सकते थे; क्योंकि वास्तव में वह सभा से नहीं, वल्कि प्रत्येक व्यक्ति से वातें करते थे। वह भाषण नहीं, सदा ही वार्तालाप करते थे।

जिस प्रेरणा से उन्होंने संसद को एक संस्था के रूप में प्यार किया, उसी प्रकार योजना-आयोग को भी अद्वितीय महत्व दिया और उसका लालन-पालन किया। इस आयोग से आशा की जाती थी कि योजनाओं तथा परियोजनाओं के माध्यम से लोगों के प्रयत्नों को तर्क की संगति प्रदान करे तथा इन प्रयासों के मार्गदर्शक प्रेरक लक्ष्यों का सार्थक रूपांतर करे। यहां भी लोगों को किसी संगठन का सिलसिला या जामा नहीं पहनाया गया था, बल्कि यह एक प्रयास था क्षितिज के विस्तार का, सूझ-बूझ को गहरा बनाने का और सामाजिक परिवर्तन के कार्य में जन-शक्ति को लगाने का। गुरु (गांधीजी) की भांति उनका अनुयायी शिष्य (पंडित नेहरू, भी सदा साध्य को साधन द्वारा निखारने में संलग्न रहता था। इस यात्रा में प्रत्येक पद का संचार तीर्थ की प्रदक्षिणा का महत्व रखता था।

लोगों का उनतक पहुंचना सबसे आसान था। उनके सम्पर्क में सभी तनाव ठंडे पड़ जाते थे। गांधीजी की भांति उनका स्पर्श भी पीड़ा को हर लेने की शक्ति रखता था। उनके प्रभाव में लोग योंही समझौते—खानापूरी नहीं करते थे, वह किसी भांति अपने खंडित विश्वासों से ऊपर उठकर उस सार्वभौमिकता का आभास पाते थे जो नेहरू की मार्गदशक थी। प्रत्येक अपस्वर में सदा सुरीली अभिव्यक्ति की संभावना भी निहित रहती है, जिसे अनावृत किया जा सकता है। जब दृढ़ता के साथ मर्यादा स्थापित की गई तभी विचारों के विरोध, अविश्वास और विवेकहीनता की खाई में पटान की संभावनाएं दृष्टिगत हुईं। इसीलिए जवाहरलाल नेहरू असहिष्णुता का सतत विरोध करते रहे—चाहे वह धार्मिक थी या अन्तर्राष्ट्रीय।

उनकी ऐतिहासिक महायात्रा के विवरण ग्रंथ 'हिंदुस्तान की कहानी' (डिस्कवरी ऑव इंडिया) से प्रकट होता है कि अतीत के वह कितने संवेदनशील और गहन प्रशंसक थे। लेकिन शुष्क परंपराओं से वह त्रस्त हो उठते थे। सत्तर साल से अधिक आयु तक वह यौवन के प्रतीक रहे, मानो नवजीवन प्रस्फुटित करते हों। विकास, परिवर्तन, अंकुरण से उनका सशक्त अग्रगमन होता था। उनमें निहित शक्ति के सहारे लोग मुक्त हो सकते थे। हठधर्मिता, रूढ़िवादिता और प्रगति-विरोध लोगों को कई प्रकार से परिधियों में जकड़कर उनकी कब्र बन जाते हैं। ये तो वे बंदीगृह थे, जिन्हें तोड़ा जाना चाहिए था, विश्रामगृह नहीं जिनकी शरण ली जाती।

उन्होंने विज्ञान के एक विद्यार्थी के नाते विज्ञान और टैक्नोलॉजी के क्रांतिकारी प्रभाव को समझा और उसका स्वागत किया। वह अपने देशवासियों की भूख और गरीबी के भार को दूर करने के लिए इन शक्तियों से लाभ उठाने के प्रयत्न करते रहे। उन्हें आशा थी कि देश को विशाल एवं उपयोगी परि-योजनाओं से आच्छादित कर देंगे और उन्होंने सगर्व इन स्थलों को 'नये तीर्थ' की संज्ञा भी दी। उनके मानस में यह सुस्पष्ट था कि राजनैतिक स्वतंत्रता के बाद सामाजिक स्वतंत्रता लानी ही पड़ेगी और इस उद्देश्य की सिद्धि आर्थिक विकास से ही हो सकती है। वह यह भी जानते थे कि आर्थिक विकास के लिए साइंस और टैक्नोलॉजी का पूर्ण उपयोग करके देश के अछूते प्राकृतिक साधनों का लाभपूर्ण सदुपयोग करना होगा। यहां भी वह अभीष्ट ध्येय की पूर्ति के लिए अच्छे साधनों को अपनाने के बारे में चिंतित रहते थे, और इसी भावना के कारण उन्होंने विकास के समाजवादी तरीकों को अपनाया।

अपने साथी मानवों में दृढ़ विश्वास ने ही उन्हें परिपक्व लोकतंत्रवादी बनाया। वह लोगों को

ज्यादा अधिकार तथा दायित्व सौंपने में कभी नहीं हिचकते थे, क्योंकि उन लोगों की सद्प्रयोग की योग्यता पर उन्हें किसी प्रकार का संदेह नहीं होता था। इसी विश्वास ने उन्हें धर्मनिरपेक्ष दृष्टि प्रदान की। यदि धर्म और केवल मात्र धर्म से ही जीवन तथा संस्कृति के सभी क्षेत्रों का निर्माण होता तो मानव के उस परतर विश्वास का क्या होगा, जिसे रवींद्रनाथ टैगोर ने 'मानव धर्म' की उपयुक्त संज्ञा दी ? जिस प्रकार राष्ट्रीयता को अन्तर्राष्ट्रीयता की सूझ-बूझ के अनुरूप ढालने से ही वह रचनात्मक और सार्थक रह पाती है, उसी प्रकार धार्मिक विश्वास भी सहिष्णुता और परस्पर सत्कार के ढांचे में ही सक्षम रह सकता है।

मानव को रूढ़िवादिता से मुक्ति दिलाकर उसके व्यक्तित्व का निर्माण करना तथा समाजवादी बनाना, और फिर उसकी शक्ति एवं उत्साह को परिवर्तन तथा विकास के सहकारी कार्य में जुटाना, यही है वह मूल तर्क जो जवाहरलाल के समाजवादी विश्वास का संबल था।

वह अपने आस-पास के सभी व्यक्तियों को—केवल बच्चों को ही नहीं—और प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को, जिस तक वह पहुंच पाते थे, प्यार करते थे। प्रेम के इस अतुलित प्रवाह के कारण मानव-मात्र ने उनके प्यार का जो प्रत्युत्तर दिया, उसकी तीव्रता दुर्लभ है। जिस प्रकार संगीत का एक साधारणतम वाद्य-यंत्र भी निपुण कलाकार के हाथ में पड़कर अपने सुस्वर मुखरित कर उठता है, उसी प्रकार मनुष्यों में नगण्य जीवन भी जवाहरलाल से प्रभावित होकर रचनात्मक स्रोत के उस नैसर्गिक उद्गम तक पहुंच जाता था, जो प्रत्येक मानव में अंतर्निहित है। उनका मानव में यह अटूट विश्वास तर्क के प्रति अडिग श्रद्धा से संयुक्त था। श्रद्धा और तर्क के इस संगम ने नेहरू को अद्वितीय निर्भीक जननायक बना दिया, जो वह यथार्थतः थे। ●

आराम हराम

आह !
इन गुलाब के फूलों को मत तोड़ो,
क्योंकि इनमें
युग के महान नेता की
आत्मा सो रही है।

उसे लेने दो
चिर विश्राम—

जो जीवन-भर
करता रहा
काम, काम,
जिसके लिए
सदा रहा
आराम हराम।

—श्याममोहन दुबे

नेहरू का वकालती जीवन

पंडित जवाहरलाल के इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकील के रूप में कार्य करने के बारे में अक्सर लोग मुझसे पूछा करते हैं। १९१२ में इंगलैंड में उन्होंने वकालत पास की थी और उसी साल स्वदेश आकर इलाहाबाद-बार में शामिल हुए। उनके पिता पंडित मोतीलाल नेहरू उन दिनों चोटी के वकील थे और संयुक्त प्रांत-भर में उनका नाम था।

कानपुर की अदालतों में छः बरस तक काम करने के बाद मैं इलाहावाद आ गया और १९१४ में इलाहावाद हाईकोर्ट-बार का सदस्य बन गया। जवाहरलाल, जैसाकि उन्होंने अपनी आत्म-कथा में लिखा है, १९१६ में श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा चलाये होम-रूल-आंदोलन की ओर आकर्षित हो गये; वह तन-मन से इस आंदोलन में काम करने लगे। यह १९१७ की बात है। उसके बाद पंजाब के मार्शल ला और उसके बाद ही घटनाएं जवाहरलाल को अदालतों के रंगमंच से दूर ले गईं। इस प्रकार जवाहरलाल के अदालती जीवन की अवधि कुछ ही वर्ष रही। वह और मैं एक-दूसरे को भली प्रकार जानते थे, लेकिन बहुत घनिष्ठता नहीं थी। १९१९ के बाद जब जवाहरलाल गांधीजी के प्रभाव में आये और उन्होंने तन-मन से अपने-आपको कांग्रेस-आंदोलन में झोंक दिया, तभीसे वह जनता में मिलने लगे और तभीसे मेरे संबंध भी उनके साथ घनिष्ठ हो गये।

लोगों को इस वात का शक है कि जवाहरलाल अपने पिता के समान ही अदालती काम में सफल होते या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है और इसके विषय में केवल कल्पना ही की जा सकती है। अदालती सफलता का भेद वस्तुतः कई सदियों से एक रहस्य ही है। जवाहरलाल ने वकालत-जीवन को पंडित मोतीलाल नेहरू के पुत्र के तौर पर शुरू किया था, जिससे उनको भारी लाभ था। सामाजिक रूप से सभी जज उन्हें जानते थे और उनका व्यावसायिक रूप में संयुक्तप्रांत के प्रमुख परिवारों, जमींदारों और उद्योगपतियों के साथ भी सामाजिक सम्बन्ध हुआ होगा, जो कानूनी पेशे की खुराक है। मुझे भली प्रकार याद है कि एक वर्ष से भी अधिक काल कत उन्होंने मशहूर लखना-केस में, जिसकी विस्तृत चर्चा आगे करूंगा, पंडित मोतीलाल नेहरू के जूनियर वकील के तौर पर वड़ी कड़ी मेहनत की थी। यह मुकदमा कई बरसों तक चलता रहा था और आखिरी दौरान में मैं भी पंडित मोतीलालजी के यहां जूनियर के तौर पर काम करता रहा था। अपनी वकालत के थोड़े से काल में मेरा और उनका बहुत कम वास्ता पड़ा; लेकिन, दो मुकदमे मुझे याद हैं, जिनमें वह और मैं साथ-साथ पेश हुए थे।

पंडित मोतीलालजी ने कानपुर में १८८० के आसपास वकालत शुरू की थी और कानपुरवासी आजीवन उनका मान करते रहे। वह उन्हें प्रेम करते थे और उन्हें अपना आत्मीय समझते थे। उनके युवाकाल के वहां कई मित्र थे, जिनके साथ श्री मोतीलालजी का नजदीकी सम्बन्ध था। उनमें एक बाबू बंसीधर थे, जो कानपुर में स्नेहवश बंसीबाबू के नाम से मशहूर थे। इलाहाबाद के नेहरू-परिवार और कानपुर जिला अदालत के प्रमुख नेता पंडित पृथ्वीनाथ के साथ उनकी बड़ी घनिष्ठता थी। मैं समझता हूं कि बंसीबाबू ने जवाहरलाल को बचपन में जरूर खिलाया होगा और १९०८ में जब मैंने कानपुर में अपना जीवन आरंभ किया था और बंसीबाबू को मालूम हुआ कि मैं पंडित पृथ्वीनाथ का जूनियर हूं, तो तत्काल उन्होंने मुझे अपने आश्रय में ले लिया। बंसीबाबू के जीवन की अनेक दिशाएं थीं। वह जमींदार थे, एक तरह से साहूकार थे और सबके मित्र थे। उनकी बिरादरी का एक नौजवान था, जिसने बैंक में नौकरी करनी चाही थी, उससे अच्छे आचरण के प्रमाण के लिए कहा गया। वह बंसीबाबू के पास गया और उन्होंने फौरन दो हजार रुपयों की जमानत दे दी। इस आदमी को नौकरी तो मिल गई; लेकिन कुछ बरसों बाद बैंक से कुछ रुपया गायब हो गया। आदमी देनदार ठहराया गया और जमानती होने के कारण बंसीबाबू को वह हानि पूरी करने के लिए कहा गया। स्वभावतः ही वह इस जिम्मेदारी से छूटना चाहते थे। प्रश्न यह था कि जमानत की शर्तें इस मुकदमे के अनुकूल हैं। बैंक ने अदालत में मुकदमा किया और कानपुर की अदालत ने फैसला दिया कि बंसीबाबू देनदार हैं और उन्हें वह अदायगी करनी होगी। वह इलाहाबाद आये और इस मामले को अपने परम मित्र पंडित मोतीलाल और डाक्टर तेजबहादुर सप्रू के पास ले गये। बंसीबाबू जब कभी इलाहाबाद आया करते थे, तो मेरा खयाल है कि वह हमेशा आनन्दभवन में ठहरा करते थे। दोनों ने ही इस मामले को निराशापूर्ण बताया। उसके बाद वह मेरे पास आये। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन वह बिलकुल स्पष्टवादी थे। उन्होंने कहा कि पंडित मोतीलाल से मैंने सलाह ली थी। मोतीलाल ने कागजात भी पढ़े, परन्तु बताया कि इस मामले में जान नहीं है। साथ ही, उन्होंने यह भी कहा कि यह मामला बहुत-ही मामूली-सा है। मुझे उम्मीद नहीं है, लेकिन मेरा सुझाव है कि इन छोटे मुकदमों के लिए तुम्हें जवाहरलाल और कैलासनाथ जैसे नये खिलाड़ियों के पास जाना चाहिए। उन्हें अपने कागजात दिखाओ। उनके पास काफी समय है और बहुत मुमकिन है कि वे कोई नुक्ता खोज निकालें। न तो मेरे पास और न तेजबहादुर के पास समय है और न हमारी इसमें कोई दिलचस्पी है। इस तरह बंसीबाबू मेरे पास आये थे। ये बातें दोहराने के बाद वह मुझसे बोले, "मैं जवाहरलाल से तो मिल चुका हूं और अब मैं आपके पास आया हूं। चाहे कुछ भी हो, इसकी मुझे परवा नहीं, लेकिन मैंने इस मामले पर अदालत में लड़ने का फैसला किया है। मैं अभी तक किसी मुकदमे में हारा नहीं हूं और मुझे विश्वास है कि आप दोनों मेरे इस मुकदमे को जीतेंगे।" मैं हँसा और बोला, "यह तो सलाह मांगना नहीं, बल्कि आदेश देना है।" इसके बाद जवाहरलाल और मैंने इस मामले का अध्ययन किया और हमें उसमें कुछ तत्त्व दिखाई दिया। हमने अपील के मुद्दे लिखे और मैंने जवाहरलाल से कहा, "अपील की स्वीकृति की प्रारम्भिक बातों को अब तुम पूरा कर जाओ।" जवाहरलाल ने बड़ी कामयाबी के साथ वह काम किया। यह मामला तो मंजूर हो गया; लेकिन तभी बेचारे बंसीबाबू स्वयं ही चल बसे और अपील की आखिरी

पेशी से पहले ही जवाहरलाल राजनीति में चले गये।

एक और मामले में हम एक-दूसरे के विरोधी थे। गर्मियों के दिनों में एक रोज नारायणदास नामक (बंशीबाबू की बिरादरी का) एक व्यक्ति एक मुकदमे के फैसले के साथ आया। कानपुर में वह यह मुकदमा हार चुका था और उसने मुझे अपील दायर करने को कहा। उसने मुझे बताया कि मुकदमा तो बिलकुल बेजान है, लेकिन अपील दायर करनी ही होगी, क्योंकि यदि फैसला बहाल रहा तो वह उस एक मकान से बेदखल हो जायगा, जिसमें उसका परिवार लगभग पचास बरसों से रह रहा था। इसके अलावा इस समय कानपुर में कोई मुनासिब मकान भी नहीं है और बरसात के दिन नजदीक हैं। इसलिए वह बेदखली को कुछ दिन टालना चाहता है और वह केवल अपील दायर करने से ही हो सकता है। मैंने कागजों को पढ़ा और सचमुच यह मुकदमा बिलकुल निकम्मा था। इसकी शुरुआत औरतों के झगड़े से हुई थी। पता लगा कि एक सम्पन्न व्यक्ति (नारायणदास के नाना) के तीन बेटे और एक बेटी थी। उसके पास बहुत-सी जायदाद और कई रिहायशी मकान थे। बेटी एक मध्यम वर्ग के परिवार में ब्याही गई थी और पिता ने अपनी बेटी को इन मकानों में से एक में रिहायश की मंजूरी दे दी थी। वह न केवल अपने पिता के जीवन-काल में ही वहां रही, बल्कि उसकी मृत्यु के वाद भी अपने भाइयों की रजामन्दी से रहती थी। ये लोग असंदिग्ध रूप में उस सम्पत्ति के मालिक थे। कमेटी के रजिस्टरों में मालिकों के तौर पर उनके नाम दर्ज थे, वे सब तरह के टैक्स अदा करते थे और अगर मैं गलती नहीं करता तो वे मकान के एक हिस्से में अपनी गायों को भी रखा करते थे। आखिरकार तीनों भाइयों ने अपना बंटवारा कर लिया। यह मकान उनमें से उस एक के हिस्से आया, जो स्वत: निस्संतान था और उसकी मृत्यु के बाद उसकी पत्नी उत्तराधिकारिणी होने के नाते इस मकान की मालकिन बन गई। यह १९१४ की बात है। इस मकान में इस औरत की ननद अपने बच्चों और पोतों के साथ रहती थी। मुझे बताया गया कि दोनों औरतों में मेल-जोल था; लेकिन कुछ दिन हुए, उनमें आपस में कुछ अनबन हो गई। इसपर मकान मालकिन ने ननद से कह दिया, "मेरे मकान से निकल जाओ।" वह निकली नहीं और इसलिए मुकदमा चला। इस मामले का कोई जवाब नहीं था और न कोई वसीयत थी। इतने पर भी प्रतिवादी के वकीलों ने समय लेने के लिए विपरीत स्वत्वाधिकार का समर्थन किया और एक छोटे जज ने उनके पक्ष में फैसला भी दे दिया। जिला जज की अदालत में अपील करने पर यह मामला खत्म हो गया, क्योंकि विपरीत स्वत्वाधिकार का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था। जिला जज ने मकान मालकिन के हक में फैसला दे दिया। जैसाकि मैं पहले भी कह चुका हूं, नारायणदास खुद भी जानता था कि इस मामले में जान नहीं है, और वह चार महीने तक इस मकान में और रहना चाहता था। मैंने उससे साफ-साफ कह दिया कि यह मामला मेरी ताकत के बाहर है। अगर मेरे जैसे जूनियर वकील ने इसकी अपील की प्रारम्भिक पेशी में बहस की तो मुमकिन है कि यह मंजूर ही न हो। इसलिए किसी बड़े वकील को ही करना चाहिए। नारायणदास फौरन मान गया और मैंने डाक्टर तेजबहादुर को प्रेरणा दी कि वह मुकदमे में मेरे बड़े वकील बन जायं। अपील एक जज के सामने पेश हुई, जो मंजूरी देने में तनिक उदार थे। डाक्टर सप्रू उठे और उन्होंने कहा, "कानूनी प्रश्न अवधि-संबंधी है।" और विद्वान जज ने कहा, "नोटिस जारी कर

दिया जाय।" इस तरह एक बाधा तो पार की गई और उसके बाद मैंने बेदखली की आज्ञा को रोकने की दरख्वास्त दी, जो यथाक्रम मंजूर कर ली गई। कुछ सप्ताहों के बाद वकीलों की लाइब्रेरी में पंडित मोतीलाल ने विनोद में कहा, "कैलासनाथ, क्या तुमने यह नियम ही बना लिया है कि कानपुर के हरेक मुकदमे की अपील की जाय?" पहले तो मैं समझा नहीं और बोला, "भाईजी, क्या बात है?" इसपर वह बोले, "वह बुढ़िया औरत आनन्दभवन में आई थी और जवाहरलाल की मां के पास गई थी। उसने अपना सारा मामला उनसे कहा था। इसके बाद उन्होंने इस विषय में मुझसे चर्चा की और मुझे उसे मंजूर करना पड़ा। यह बिलकुल ही निकम्मा मुकदमा है। तुमने इसकी अपील कैसे की?" इसपर मैंने उन्हें सारी कहानी सुनाई और उन्होंने वादी का मामला लेना स्वीकार किया।

मैं समझता हूं कि लगभग दो बरस बाद वह अपील चीफ जज सर हेनरी रिचर्ड्स और श्री जस्टिस रफीक के सामने पेश हुई। पंडित मोतीलाल उस दिन थे तो इलाहाबाद में ही; लेकिन संभवतः उन्हें घर पर ही कोई अधिक आवश्यक काम था, इसलिए उन्होंने इस मुकदमे की अपील जवाहरलाल को सौंप दी। इस तरह जवाहरलाल अपने पिता की ओर से इस मुकदमे में पेश हुए।

अदालत के कमरे में बड़ी भीड़ थी। मेरे बड़े वकील डाक्टर तेजबहादुर मेरे पास बैठे थे। डाक्टर सप्रू और मैं दोनों ही जानते थे कि यह मुकदमा निकम्मा है। जब मुकदमा पेश हुआ, तो स्वभावतः मैं आशा करता था कि डाक्टर सप्रू खड़े होंगे। लेकिन उन्होंने मुझसे कहा, "कैलासनाथ, इसमें है तो कुछ नहीं। तुम्हीं जवाब दो और इसे खत्म करो।" मैं उठा और मैंने नाटक शुरू किया। मैंने केवल तथ्य ही पेश किये और कई बार दोहराया कि बेटी और उसका परिवार चालीस साल से भी ज्यादा समय से मकान में रह रहा है और अधिक जोर देने के लिए मैंने कहा, "श्रीमान नारायणदास तो दरअसल इस मकान में ही पैदा हुआ था।" जब मैंने यह कहा तो मैंने देखा कि सर हेनरी रिचर्ड्स ने अपना मुंह एक कापी से ढंक लिया और उन्हें झपकी आ गई। साथी जज ने भी इस बात को भांप लिया और उन्होंने बड़े टेढ़े-मेढ़े सवाल मुझसे किये। जब यह सवाल-जवाब जारी थे, तो मैंने देखा कि सर हेनरी के मुंह पर पड़ी कापी हिलने-डुलने लगी है। जाहिर था कि वह जाग गये थे और हर किसीको यह दिखाने की कोशिश कर रहे थे कि वह वास्तव में सोये नहीं थे। बड़ी गहराई के साथ मुकदमे का अध्ययन कर रहे थे। मैंने उन्हें देखा कि वह मुकदमे को उस जगह पर पढ़ रहे थे, जहां नारायणदास को पैंतीस वर्ष की उम्र का बताया गया था। उनके सोने से पहले मैंने यह आखिरी शब्द कहे थे—"श्रीमान, नारायणदास इस घर में ही पैदा हुआ था।" मैंने देखा कि उन्होंने फिर पन्ना पलटा और एकाएक मुझसे पूछा, "क्या आपने यह कहा था था कि नारायणदास इस घर में पैदा हुआ था?" मैंने कहा, "हां, जनाब, कहा था।"

चीफ जज बोले, "लेकिन नारायणदास की उम्र तो पैंतीस वर्ष की है।"

मैंने जवाब दिया, "जनाब, यही तो मेरा तर्क है। यह परिवार इस मकान में पिछले पचास वर्ष से है और बच्चे और पोते इसमें पैदा हुए हैं।"

चीफ जज बोले, "बड़ी फिजूल बात है। दूसरी ओर से कौन है?"

इससे पहले कि मैं अपनी बात की पुष्टि में कुछ और निरर्थक बातें कहने की कोशिश करूं, डाक्टर

सप्रू ने मेरे चोंगे के छोर को खींचा और फुसफुसाये कि बस करो, और मैंने वैसा ही किया। अब जवाहरलाल की बारी थी। जवाहरलाल ने बड़ी शान्ति के साथ कहा कि यह मामला स्वत्वाधिकार के प्रश्न का है और जिला जज ने इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है। सर हेनरी रिचर्ड्स ने निर्णयात्मक ढंग से कहा, "हां, मुझे मालूम है। यह तथ्य मालूम करने का मामला है और इसमें हम दखल नहीं दे सकते; लेकिन मैं आपको यह बता दूं कि तथ्य जानने का यह सर्वथा विपरीत रूप है। वादी के पक्ष में कोई न्याय की बात नहीं है।" सर हेनरी कुछ समय तक ऐसा ही कुछ कहते रहे और तब एकाएक बोले, "लेकिन आपका पक्ष तो औरत का है। इस मामले में औरत का अस्तित्व कहां से आ गया?"

जवाहरलाल ने तीन भाइयों के बंटवारे का उल्लेख किया और कहा कि उनके मुवक्किल को यह मकान उसके पति के उत्तराधिकार से प्राप्त हुआ है। लेकिन चीफ जज ने कुछ नहीं सुना। वह बोले, "यह संयुक्त परिवार की सम्पत्ति है। एक हिन्दू स्त्री उस संयुक्त परिवार में उत्तराधिकार नहीं पा सकती। आपको तीन भाइयों में बंटवारे का सबूत देना होगा।"

इसपर जवाहरलाल ने जिला-जज के फैसले में से एक-दो वाक्यों का उल्लेख किया, लेकिन सर हेनरी पर कोई असर न हुआ।

चीफ जज ने कहा, "यह तो एक सरसरी बात है; यह तथ्य-ज्ञान नहीं है। दिखाइये, आपने कहां इस बात का उल्लेख किया है कि आपको यह मकान इस ढंग से हासिल हुआ? बंटवारे का क्या प्रमाण है?"

इसके बाद जवाहरलाल ने कहा कि प्रतिवादियों ने इस तर्क से कहीं इन्कार नहीं किया और अगर जनाब का यह खयाल है कि उसे उचित रूप में पेश नहीं किया गया तो यह मामला उचित निर्णय के लिए निचली अदालत के पास भेज देना चाहिए।

सर हेनरी ने कुछ नहीं सुना और तनिक कठोरता से बोले, "यह ऐसा मुकदमा नहीं है, जिसमें अदालत आपकी किसी रूप में रत्ती-भर भी सहायता कर सके। यह आपका काम था कि आप इस आपत्ति को अपने बयान में ठीक ढंग से पेश करते, जिससे निर्णयात्मक प्रश्न प्रमाण के लिए उपस्थित हो जाता। इस स्तर पर हम इसे निचली अदालत में नहीं भेजेंगे।"

जवाहरलाल ने एक घंटे से भी अधिक समय तक संघर्ष किया, लेकिन सब बेकार रहा। तत्काल फैसला कर दिया गया और अपील मंजूर हो गई। मुकदमा मय खर्चे के खारिज हो गया।

इस फैसले से मकान-मालकिन को बड़ा आघात पहुंचा और वह रोती-चिल्लाती फिर मोतीलालजी के पास आनन्दभवन में आई। मोतीलालजी ने फैसले की नजरसानी के लिए दरख्वास्त दी और कई महीने के बाद इसकी सुनवाई हुई। मोतीलालजी जैसे ही उठे और उन्होंने संक्षेप में तथ्यों का वर्णन करने के बाद बहस शुरू करनी चाही, सर हेनरी बोले, "पंडितजी, मुझे यह मुकदमा अच्छी तरह से याद है और जवाहरलाल ने बहुत अच्छी तरह इसपर बहस की थी। गलत या सही, हम इस अदालत में मुकदमों पर दुबारा बहस नहीं होने देंगे। दरख्वास्त नामंजूर। अगला मुकदमा बुलाओ।"

सर हेनरी ने ये शब्द इतने विनोदपूर्ण ढंग से कहे कि मोतीलालजी भी बिना हँसे न रह सके।

इस सिलसिले में मुझे उस मुकदमे की याद हो आई है, जिसका उल्लेख मैंने आरम्भ में किया था, यानी लखना का मुकदमा। जवाहरलाल अपने पिता मोतीलालजी के साथ इटावा और मैनपुरी की जिला अदालतों में इस सनसनीपूर्ण मुकदमे में पेश हुए थे, जो केवल भारत के ही नहीं, वल्कि दुनिया-भर के कानूनी इतिहास में ला-मिसाल था। लखना एक वहुत वड़ी जमींदारी थी, और १८७५ में इसके मालिक राजा जसवंतसिंह थे। उनका पुत्र वलवंतसिंह पहली पत्नी से था। उसकी मृत्यु के वाद उन्होंने एक दूसरी स्त्री से शादी की, जो रानी किशोरी कहलाई।

पुत्र वलवंतसिंह बाद में वहुत ही बुरा आदमी सावित हुआ। कतल का एक मुकदमा उसके खिलाफ चला और उसे उम्र कैद की सजा हुई। इससे उसके पिता राजा जसवंतसिंह का दिल टूट गया। इसपर राजा ने अपने पुत्र को उत्तराधिकार से वंचित कर दिया और उन्होंने अपनी सारी जायदाद अपनी पत्नी रानी किशोरी को भेंट-स्वरूप वसीयत कर दी। लेकिन इस भेंट के पट्टे में उन्होंने एक शर्त यह जोड़ दी कि अगर कभी वलवंतसिंह के पुत्र पैदा हो तो इक्कीस वरस की उम्र हो जाने पर रानी किशोरी इस भेंट को, जायदाद को, उसके सिपुर्द कर दे।

इस वसीयत के चार ही वर्ष के अन्दर-अन्दर १८७९ में राजा जसवंतसिंह की मृत्यु हो गई। १८८३ में पुत्र वलवंतसिंह अंडमान की जेल से रिहा हो गया। रानी किशोरी ने वापसी पर उसको आदर के साथ घर में स्थान दिया, लेकिन कुछ ही दिनों में उनमें अनवन हो गई। वलवंतसिंह लखना-जमींदारी को जल्द-से-जल्द अपने कव्जे में ले लेना चाहता था, लेकिन रानी किशोरी ने उसकी एक न सुनी। वलवंतसिंह ने जायदाद पर कव्जा पाने के लिए मुकदमा दायर किया, लेकिन कामयाव न हुआ। इसके वाद उसे भेंट की वसीयत की उस शर्त का खयाल आया, जिसके मूजिव रानी किशोरी को हिदायत की गई थी कि अगर कभी वलवंतसिंह के लड़का हो तो वह उसे यह जायदाद सौंप दे। उसकी जिन्दा पत्नी वूढ़ी हो चुकी थी और खुद भी वह ४९ वरस का था। इतने पर भी १८९३ में उसने एक जवान औरत दुन्नाजु से शादी की। शादी के वारह महीने के अन्दर-अन्दर १८९४ में यह जाहिर किया गया कि दुन्नाजु ने एक पुत्र को जन्म दिया है। उसका नाम नरसिंह रखा गया। रानी किशोरी ने फौरन ही इस पुत्र-जन्म का विरोध किया। उसका कहना था कि दुन्नाजु तो कभी गर्भवती तक नहीं हुई और उसके कोई वच्चा भी पैदा नहीं हुआ। नरसिंहराव महज़ एक कल्पित वच्चा है, जिसे रानी किशोरी को हानि पहुंचाने की खातिर परिवार में शामिल किया गया है।

इस तरह १८९४ से यह कहानी शुरू होती है। वलवंतसिंह छ: बरस और जिया और लगातार इन छ: वरसों में वह नरसिंहराव को वेटे की तरह मानता रहा तथा दूसरों को भी उसने उसे अपना पुत्र ही बताया। वलवंतसिंह के पास भी अपनी बहुत बड़ी जायदाद थी। १९०० में उसकी मृत्यु के वाद उस जायदाद के उत्तराधिकार के मामले पर नरसिंहराव और सौतेली मां नरैनी कौर में, जो वलवंतसिंह की पहली पत्नी थी, मुकदमा चला।

नरैनी कौर ने नरसिंहराव के पुत्रत्व का विरोध किया और मालगुजारी की अदालतों में इस मामले पर सरगरमी के साथ मुकदमा चला। पुत्र-जन्म के बारे में बहुत-सी जबानी गवाहियां पेश की गई

और दुन्नाजु अपने पुत्र की ओर से बतौर गवाह पेश हुई। नरैनी कौर की ओर से एक दर्खास्त पेश की गई कि डाक्टरों से दुन्नाजु की यह जानने के लिए जिस्मानी जांच कराई जाय कि क्या कभी उसके बच्चा पैदा भी हुआ है या नहीं। दुन्नाजु ने इस तरह की किसी भी जांच के लिए सख्ती के साथ इन्कार कर दिया। उसने कहा कि यह उसे अपमानित करने तथा एक खानदानी ब्राह्मण विधवा को सारी जाति की आंखों में गिराने की चेष्टा मात्र है। अदालतों का खयाल था कि उसका दृष्टिकोण ध्यान देने लायक है और उसका इन्कार करना वाजिब है। तदनुसार, अदालतों ने गवाही के आधार पर फैसला किया कि नरसिंहराव बलवंतसिंह का पुत्र है, और दुन्नाजु ने ही उसे जन्म दिया है।

१९१५ में नरसिंहराव २१ बरस का हो गया। अगले बरस १९१६ में उसने अपने दादा जसवंत-सिंह की वसीयत के अनुसार लखना-जमींदारी का कब्जा हासिल करने के लिए मुकदमा दायर कर दिया। रानी किशोरी ने इस दावे का सख्ती के साथ विरोध किया। उसने नरहिंसहराव के पितृत्व के बारे में भी इन्कार किया। उसका कहना था कि वलवंतसिंह और दुन्नाजु से उसका कोई संबंध नहीं और यह केवल उनका कल्पित बच्चा है। नरसिंहराव ने अपने पुत्र होने के सबूत में अपनी मां दुन्नाजु-सहित बहुत-से गवाह पेश किये। मोतीलालजी ने जवाहरलाल को दुन्नाजु की सहायता से गवाही के सिलसिले में उससे काफी लम्बी जिरह की। जिरह के आखिरी दौर में मोतीलालजी ने दुन्नाजु से पूछा कि क्या वह इस वात के लिए रज़ामन्द है कि डाक्टरों से उसकी जिस्मानी जांच कराई जाय। उनका खयाल था कि सन् १९०० में जिस तरह उसने इन्कार किया था, अब भी इन्कार ही कर देगी। मोतीलालजी ने उसके इन्कार की स्पष्ट कल्पना कर ली थी, लेकिन इस भ्रम के बदले उन्हें स्पष्ट और जोरदार यह जवाब मिला, "हां, एक नहीं, बीस बार, और एक नहीं सौ लेडी डाक्टरों से बशर्ते कि रानी साहिबा (यानी रानी किशोरी) अपने खजाने की सोने की थैलियों का मुंह नहीं खोले।"

मोतीलालजी दुविधा में फंस गये, लेकिन इस चुनौती को स्वीकारने के अलावा कोई चारा नहीं था। सवाल करते वक्त वह इतना तक नहीं जानते थे कि लगभग पच्चीस साल के अर्से के बाद भी जिस्मानी जांच हो सकती है या नहीं, अथवा नारी-रोगों के डाक्टर इस बारे में कोई राय भी दे सकेंगे या नहीं। उन्होंने वे-सोचे-समझे ही यह सवाल कर दिया था। और अब तो उन्हें इसका मुकाबिला करना ही था। बड़े-बड़े डाक्टरों से मशविरा करना जरूरी था। यह काम मोतीलालजी ने जवाहरलाल को सौंपा। जवाहरलाल हिन्दुस्तान-भर में इधर-से-उधर घूमे। उन्होंने जहां भी मौका मिला, बड़े-बड़े डाक्टरों से मशविरा किया। डाक्टरों की राय थी कि पूरे वक्त पर पैदा हुए बच्चों के कारण ऐसे स्थायी निशान रह जाते हैं, जो मां बननेवाली औरत के शरीर पर नहीं होते। डाक्टरों ने यह करार दिया कि यदि निशान नहीं है, तो निश्चित नतीजा यह है कि वह औरत कभी मां नहीं बनी। इसके विपरीत, यदि निशान मौजूद हैं तो वह निशान या तो बच्चे की पैदायश के कारण होंगे अथवा किसी बीमारी की वजह से। और निशानों की मौजदगी वस्तुतः भ्रमकारी भी हो सकती है।

डाक्टरी स्थिति का सही अन्दाज करके दुन्नाजु की गवाही के कई महीने बाद मोतीलालजी ने उसकी डाक्टरी जांच के लिए दरख्वास्त दी। इससे अदालत में बड़ा हंगामा मच गया। नरसिंहराव के वकील ने

देरी की दलील के आधार पर कड़ा विरोध किया। उन्होंने यह भी कहा कि प्रतिवादी रानी किशोरी हिंदुस्तान-भर के हर नारी-रोगों के डाक्टर तक पहुंच चुकी है, और अब तो एक भी ऐसा डाक्टर मिल नहीं सकता जो निष्पक्ष राय दे सके। जिला जज ने इस मामले को बहुत गम्भीरता दी और कहा कि वह पूरी तरह से निष्पक्ष जांच का प्रबन्ध करेगा। और अंततः दोनों पक्ष सहमत हो गये कि तीन डाक्टरों का एक बोर्ड दुन्नाजु की जांच करेगा, इनमें एक-एक वादी और प्रतिवादी का नामजद होगा, तथा तीसरा अदालत की ओर से। अदालत की ओर से जो डाक्टर होगा, उसका नाम दोनों पक्षों से कतई गुप्त रखा जायगा। इस तरह घिर जाने के बाद वादी की पारी थी कि वह 'हां' या 'ना' में जवाब दे। और आखिरकार उसने कहा कि दुन्नाजु अब उसके लिए तैयार नहीं है। उसने इस आधार पर डाक्टरी जांच से इन्कार किया कि इसके कारण मेरी जाति में मेरी बेइज्जती और बदनामी होगी। इसके अलावा मुझे यह भी सलाह दी गई है कि भीतरी डाक्टरी जांच, यदि अयोग्यतापूर्वक की गई तो, उससे नुकसान भी पहुंच सकता है।

इस प्रकार उसके इन्कार के कारण सारी स्थिति ही बदल गई। अब तो जज को भी शक हो गया, जबकि वह थोड़ी ही देर पहले तक नरसिंहराव के काफी हक में था। नारी-रोगों के विशेषज्ञ जानकारों की राय दोनों पक्षों की ओर से पेश की गई। डाक्टरों के एक दल का कहना था कि तेईस बरस गुजर जाने के बाद डाक्टरी जांच बिलकुल बेमानी है, दूसरे का कहना था कि यह बहुत ही अर्थपूर्ण है। समूची गवाही पर जो तर्क पेश किये गए थे, उनसे मामला काफी साफ हो चुका था, लेकिन इस खास घटना का हल नहीं हो रहा था। इससे मुकदमा खत्म हो गया। जज ने फैसला दिया कि नरसिंहराव यह साबित नहीं कर सका कि वह बलवंतसिंह का पुत्र है।

यह १९१८ की बात है। इसके बाद जालियांवाला बाग का काण्ड हुआ और जवाहरलाल इस मामले से हट गये और इसके साथ उनका कोई संबंध नहीं रहा।

१९१९ के बाद, मैं समझता हूं कि जवाहरलाल कई बार अदालतों में पेश हुए हैं; लेकिन वकील के रूप में नहीं, बल्कि एक कैदी के रूप में। अंतिम बार वह १९४५ में आजाद हिंद फौज के मुकदमे में दिल्ली के लाल किले में उपस्थित हुए थे। निश्चय ही इस ऐतिहासिक अवसर पर वह एक वकील के रूप में पेश हुए थे। ●

न भूलनेवाली घटनाएं

नेहरूजी से मेरा परिचय सन् १९२१ में हुआ था। उस समय मैं बीकानेर में अध्यापन कर रहा था। मैंने नेहरूजी को सूचित किया कि मैं त्यागपत्र देकर कांग्रेस में शामिल होना चाहता हूं। इस प्रकार पहली बार हम पत्राचार द्वारा सम्पर्क में आये और हमारी सर्वप्रथम भेंट अगले वर्ष जेल में हुई। यह पहली भेंट, जिसे बतलाने में मुझे प्रसन्नता के साथ-साथ गर्व भी है, एक-दूसरे के प्रति उत्साहपूर्ण घनिष्ठता के रूप में विकसित हो गई, जो सैकड़ों मतभेदों के बावजूद अटूट रही। जवाहरलालजी और चाहे जो कुछ रहे हों, पर नख से शिख तक, अन्तर से बाह्य तक, भद्र पुरुष थे।

सम्पर्क के बाद शुरू-शुरू में, जवाहरलाल इस बात पर एतराज करते रहे कि मैं उन्हें 'पंडितजी' कहकर और लिखकर सम्बोधित करता हूं। वह सिर्फ जवाहरलाल कहलाना पसंद करते थे। किसी-न-किसी तरह कालान्तर में मैंने यह सम्बोधन छोड़ दिया, हालांकि पूरी औपचारिकता अवश्य नहीं छोड़ सका। तभी से वह मेरे लिए केवल 'जवाहरलालजी' रहे हैं।

सार्वजनिक हित के मामलों पर उनसे मेरा जो सर्वप्रथम विचार-विनिमय हुआ था, उसकी स्मृति आज भी ताजा है। हम दोनों को जिला राजनैतिक सम्मेलन में भाग लेने के लिए गाजीपुर (उत्तर प्रदेश) बुलाया गया था। मेरे ख्याल से यह १९२२ की बात है। हमलोग तड़के ही गंगा-स्नान को गये। रूस में प्रकाशित कुछ साम्यवादी साहित्य मेरे हाथ लग चुका था। मैंने देश में समाजवाद लाने के विषय पर बात शुरू की और एक यह सुझाव दिया कि जिस तरह रूसी साम्यवादियों ने जार की संसद डयूमा में प्रवेश करके अपना काम शुरू किया था, उसी तरह कांग्रेसी भी विधानमंडलों और संसदों में प्रविष्ट होकर काम करना शुरू कर दें। इस बहस का अधिकांश तो मैं भूल गया हूं, पर यह मुझे भलीभांति याद है कि जवाहरलालजी को संसदीय कार्य में रूस की उक्त मिसाल का सफल अनुसरण करने के विषय में हमारी क्षमता पर भारी संदेह था। हम सभी जानते हैं कि जवाहरलालजी इस हेरफेर के विरोध में डटे ही रहे, हालांकि पं० मोतीलालजी परिवर्तन के हिमायती थे।

जवाहरलालजी एक लम्बे अर्से तक हिंदुस्तानी सेवादल के प्रधान रहे। उत्तर प्रदेश प्रांतीय कांग्रेस कमेटी ने भी मुझे प्रांत में ऐसा ही पद-भार प्रदान किया था। मैं १९३०–३२ के आस-पास की बात कर रहा हूं। मुझे अपने काम में जवाहरलालजी से काफी नैतिक सहायता और एक बार तो आर्थिक सहायता भी मिली। यह नैतिक सहायता १९३५ ई० में कांग्रेस लखनऊ-अधिवेशन के मौके पर खासतौर से मूल्यवान सिद्ध हुई।

मैं स्वयंसेवक दल का जी० ओ० सी० था। उसमें एक जिला विशेष का दस्ता, खास तौर पर शरारत पर उतारू था और चारों ओर अनुशासनहीनता फैलाना चाहता था। उस दस्ते के एक सदस्य ने अ० भा० सेवा दल के निर्देशक अधिकारी डा० हार्डीकर का खुले आम अपमान किया। मैंने उस स्वयं-सेवक को शिविर से वाहर निकाल दिया और अनुशासन को सख्त कर दिया। इससे उन लोगों के हौसले टूट गये जो असंतोष फैलाने के लिए इस घटना का सहारा लेना चाहते थे। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि शरारती तत्वों को दबाने में मुझे इस बात से काफी मदद मिली कि लोगों की जानकारी में अधिवेशन के अध्यक्ष जवाहरलालजी का समर्थन मुझे प्राप्त था।

यू० पी० प्रांतीय कांग्रेस समिति की अनेक बैठकों की स्मृतियां मेरे मस्तिष्क पर उभर रही हैं। कई महत्वपूर्ण अवसरों पर कार्यसमिति ने प्रस्तावों के मसाविदे वनाने की संयुक्त जिम्मेदारी मुझपर और जवाहरलालजी पर डाली। इसके पीछे प्रयोजन यह था कि मैं मसविदे की मूल रूपरेखा वनाकर दूं और जवाहरलालजी उसमें भाषाई शुद्धि के लिए जरूरी संशोधन करें। लेकिन कभी-कभी तो ऐसे प्रस्ताव भी अछूते पारित नहीं हो पाते थे। टण्डनजी वहां उपस्थित थे और छोटे-से-छोटा दोष भी उनकी नज़रों से नहीं छिप सकता था। वर्णमाला, विराम, अर्द्धविराम आदि संबंधी नगण्य अशुद्धियां भी नहीं छूट पाती थीं। मुझे अभीतक याद है कि एक वाक्य की व्याकरण-संबंधी शुद्धता पर घंटों वहस होती रही थी। इसमें टण्डनजी के विरुद्ध मोर्चा श्रीप्रकाशजी ने सम्भाला और हमलोग मात्र दर्शक बने रहे।

कुछ वर्षों पूर्व राष्ट्रपति-भवन में भोज दिया गया। भोजन के वाद सिगार पेश किये गए। जवाहर-लालजी जानते थे कि मैं अच्छे सिगार का शौकीन हूं, क्योंकि कई वार मैं उनके निवासस्थान पर सिगार पी चुका था। वह यह भी जानते थे कि वहां कई लोग उपस्थित थे, जिनके सामने मैं धूम्रपान नहीं करता था। ये लोग थे राजेन्द्रवावू, पंतजी और टण्डनजी। जव वटलर सिगार का डिव्वा लेकर उनके पास तक पहुंचा तो उन्होंने उसमें से एक सिगार उठा लिया और मेरी जेब में डालते हुए कहा, "तुम यहां तो पीयोगे नहीं, घर पर जाकर पीना। मैंने तुम्हारे लिए एक सिगार चुराया है।"

वह बहुत धीमे स्वर में वोले थे, पर फिर भी उनकी आवाज कुछ तेज होने के कारण सभीको सुनाई पड़ गई। उनका अभिप्राय भी यही था। यह स्थिति मेरे लिए परेशानी पैदा करनेवाली थी और राजेन्द्रवावू तथा पंतजी मुश्किल से ही अपनी मुस्कराहट दबा सके। ●

व्यापक प्रभाव

जहांतक मुझे याद है, पंडितजी को मैंने सबसे पहले गांधीजी के साबरमती-आश्रम में देखा था । वहां मैं बार-बार जाती थी, इसलिए मात्र उन्हें ही नहीं, बल्कि पंडित मोतीलाल नेहरू, श्रीमती कमला नेहरू, श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित, श्रीमती कृष्णा हठीसिंग और कुमारी इंदिरा, सभीसे परिचय का लाभ वहां हुआ। इन सभीके जीवन, देशभक्ति तथा बलिदान के बारे में मैंने अनेक बातें सुनीं और अत्यंत प्रभावित हुई। मोतीलालजी और जवाहरलालजी के प्रति गांधीजी और आश्रमवासियों के हृदय में एक विशिष्ट स्थान था।

इसके बाद मैंने पंडितजी को इलाहाबाद की नैनी-जेल में देखा । सन् १९३० के सत्याग्रह में जेल जाने के बाद श्री मुन्शीजी वर्किंग कमेटी की मीटिंग के लिए गये थे, मैं भी उनके साथ थी । उसी समय पंडितजी से मिलने उनके परिवार के लोग आये थे। हम भी गये। नेहरू-परिवार के प्रत्येक सदस्य की, विशेषकर पंडितजी की देशभक्ति देखकर हम दोनों को बहुत प्रेरणा मिली।

इसके बाद पंडितजी से मिलने का मौका कई बार मिला । श्री मुन्शीजी के केन्द्रीय मंत्रिमंडल में शामिल होने पर जब मैं रहने के लिए दिल्ली गई, तब तो और भी अधिक। तब मैं देख सकी कि पंडितजी का प्रभाव कितना व्यापक था। छोटी-से-छोटी बात भी वह नजरन्दाज नहीं करते थे।

वह पूर्णरूप से सज्जन व्यक्ति थे। उनकी सुरुचि और व्यवहार आकर्षक था । लोकसभा में उनके भाषण प्रेरणात्मक थे। उनसे भिन्न मत रखनेवाले व्यक्ति भी उनके गुणों के प्रशंसक थे और उनका समर्थन करनेवाले लोग तो उनके निकट मित्र थे ही।

अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में उनका स्थान अत्यंत आदरणीय था। प्रत्येक देश में उनके मित्र थे। प्रत्येक देश के कर्णधार उनके विचारों का आदर करते थे। पंडितजी अंतर्राष्ट्रीय शांति और समझौते के हिमायती थे और दुनिया के दलितों और पीड़ितों के मित्र थे।

हिंदू स्त्रियों पर तो उनका विशेष ऋण है। स्त्रियों की समानता के वह समर्थक थे। हिंदू कोड में जो फेरफार हुए, वह उनके समर्थन के बिना लोकसभा में पारित नहीं हो सकते थे।

उनके हृदय में बालकों के लिए विशिष्ट स्थान था। पंडितजी उनके प्रिय नेहरू चाचा थे।

गांधीजी के बाद भारत की जनता ने अगर किसीको अधिकाधिक अपना प्रेम प्रदान किया तो श्री जवाहरलाल नेहरू को, और जगत के सभी देशों में यदि किसीको सबसे अधिक माने मिला तो वह भी उनको ही। ●

गुरुमुखसिंह मुसाफिर

युग-पुरुष

जहांतक मुझे स्मरण है, मैंने जवाहरलाल को पहली बार समीप से सन् १९२३ में देखा। दूर-दूर से तो पहले भी देखा था। एक असाधारण व्यक्ति के चिन्ह तो उनमें थे ही, पर देखनेवाली आंखें, उन चिह्नों को उनसे मिलकर ही देख सकती थीं। अपनी लम्बी और कठोर जीवन-यात्रा में उन्होंने कदम-कदम पर अपने अमल से सिद्ध कर दिया कि वह केवल शाही नेता ही नहीं, बल्कि ऐसे मनुष्य थे, जो मनुष्य के साथ मनुष्य के रूप में प्यार करना और नाता जोड़ना जानते हैं। यह एक ऐसी विशेषता है, जिसका स्वामी आसानी से अपनी जगह पूरी नहीं होने देता। जवाहरलाल ने देश-विदेश में जो सत्कार पाया, उससे स्पष्ट है कि वह सच्चे देश-भक्त थे। देश के लिए उन्होंने कष्ट उठाये। उनमें त्याग की ऊंची भावना थी। वह सदाचारी थे, विद्वान् थे, मगर ये सारी खूबियां उनकी उस एक खूबी के अधीन थी, जिसकी चर्चा मैंने ऊपर की है। वह सच्चे अर्थों में महापुरुष थे।

वह बहुत ऊंचे स्थान पर गये। इसलिए नहीं कि लोग उन्हें बहुत ऊंचा समझें, बल्कि इसलिए कि वह सबकी तरफ अच्छी तरह से देख सकें और चारों ओर उनकी नज़र रहे। इसी दूर-दृष्टि के कारण भारत और जवाहरलाल ऐसे घुल-मिल गये कि उनमें कोई अन्तर ही नहीं रहा। उन्होंने अपने जीवन में अपना सबकुछ भारत के सामने अर्पित कर दिया। उनके देहान्त के बाद जो वसीयत सामने आई है, उससे साफ है कि आज से दस वर्ष पहले ही उन्होंने सोच लिया था कि मरने के बाद शरीर का जो कुछ बाकी रह जाता है, वह भी उनके नाम न रहे।

भारत से जवाहरलाल को अलग नहीं किया जा सकता। एक छोटे-से-छोटे बच्चे का दिल भी यही समझता है, चाहे वह बच्चा देश का हो, या विदेश का। सन १९५८ की बात है। मुझे रूस जाने का अवसर मिला। मेरे साथ थे डा. अनूपसिंह, मुल्कराज आनन्द, हरिश्चन्द्र माथुर और हमारी पार्टी की नेता थी श्रीमती रामेश्वरी नेहरू। हम मास्को के सेंट्रल पार्क में घूम रहे थे। वहां एक पेड़ के तने पर दुनिया का नक्शा लटक रहा था। नक्शा देखने के लिए हम खड़े हो गये। सामने ही एक किण्डरगार्टन स्कूल था, जिसमें छोटे-से-छोटे लड़के-लड़कियां पढ़ रहे थे। एक बच्ची, जिसकी उम्र सात साल से अधिक क्या होगी, दौड़कर हमारे पास आई। उसके पास एक छोटी-सी छड़ी थी। मुझे और रामेश्वरीजी को देखकर उस लड़की ने अन्दाजा कर लिया होगा कि हम हिन्दुस्तानी है, क्योंकि दाढ़ी और साड़ी हिन्दुस्तानी होने की प्रकट निशानी हैं। उस लड़की ने आते ही नक्शे में हिन्दुस्तान पर अपनी छड़ी टिकाई और कहा, "नेहरू!"

देखनेवाले सब हँस पड़े। पर सच यह है कि भारत और नेहरू उसकी निगाह में एक ही थे।

इसी यात्रा के आरम्भ में हमें स्टाकहौम (स्वीडन) से हेलसिंकी (फिनलैण्ड) जाना था। यह सफर हमें पानी के जहाज में करना था। शनिवार का दिन था। शाम हो गई। हमारे वीसा न बन सके। दूसरे दिन इतवार को हमारा जहाज रवाना होनेवाला था। हमने अपने राजदूतावास की मदद लेनी चाही, मगर जवाब मिला कि दफ्तर बन्द है। कल इतवार है, इसलिए वीसा बनना असंभव है। यदि उस जहाज में हम न जाते तो हम एक सप्ताह देर से पहुंचते। हम परेशान हो रहे थे। परेशानी की हालत में हम स्टाकहोम के एक स्टोर को देखने चले गये। संयोग से उस स्टोर में स्वागत करनेवाली एक फिनिश लड़की थी। डा० अनूपसिंह ने उससे कहा कि हम लोगों को कल तुम्हारे देश जाना था, मगर दफ्तर बन्द हो जाने की वजह से हमें वीसा नहीं मिल सके। हमारी बात सुनते ही वह लड़की कहने लगी कि यह कैसे हो सकता है कि कोई हिन्दुस्तानी फिनलैण्ड जाना चाहे और उसके वीसे में रुकावट पड़े? हमने कहा, "छुट्टी की वजह से ऐसा हुआ है।" वह कहने लगी, "नेहरू के मुल्क से आये हुए लोगों के रास्ते में छुट्टी की रुकावट नहीं रहनी चाहिए।"

हम हैरान होकर उस लड़की के चेहरे की ओर देखने लगे। वह कितने भरोसे और विश्वास से बात कर रही थी। उसने तुरन्त किसी जगह फोन किया और कहने लगी, "मेरे साथ चलो।" वह अपना काम किसी दूसरे को सौंपकर हमारे साथ चल दी।

चलते-चलते बोली, "मेरा साथ चलना जरूरी था। यों जगह पास ही है, पर यहां के लोग अंग्रेजी बहुत कम जानते हैं। इसलिए आपका अकेले वहां पहुंचना कठिन होता।"

वह इस कदर जोश के साथ चल रही थी, जिस तरह कोई अपने अत्यन्त प्रियजन का काम करता है। रास्ते में उसने हमें बताया कि जब रूस ने फिनलैण्ड को छोटा-सा मुल्क समझकर दबाने की कोशिश की थी तो उस समय जवाहरलाल नेहरू ने हमारे पक्ष में आवाज उठाई थी। फिनलैण्डवाले हिन्दुस्तानियों के बड़े आभारी हैं।

दफ्तर में पहुंचकर उसने वीसा के लिए संबंधित अधिकारी से बात की और अगले दिन सबेरे ९ बजे का समय निश्चित कर लिया। हमारा जहाज ११ बजे चलता था।

दूसरे दिन ९ बजने में पांच मिनट बाकी थे कि हम फिनलैंड के राजदूतावास के दरवाजे पर पहुंचे। देखते क्या हैं कि एक महिला कर्मचारी हमारी प्रतीक्षा कर रही है। एक मिनट में उसने हमारा काम निबटा दिया। जिस चीज को हमारे राजदूतावास के कर्मचारियों ने असंभव बताया था, उसीके होने में देर न लगी।

रूस एक लड़ाका देश है। जवाहरलाल की विश्वशान्ति की नीति का उसपर क्या प्रभाव हुआ, इस संबंध में एक घटना का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। सन् १९५४ के जून की बात है। लेनिनग्राड के एक मजदूर से मैं वार्तालाप कर रहा था। मास्को रेडियो से खबर आई कि जवाहरलाल ने नांगल की एक नहर का उद्घाटन किया। इस मजदूर ने यह खबर सुनी तो बड़े उत्साह के साथ कहने लगा, "तुम्हारे पास एक ऐसी चीज है, जो रूस और यूरोप के किसी दूसरे देश के पास नहीं है। तुम्हारा देश उस चीज के कारण तामीरी काम के संबंध में सबसे आगे निकल जायगा। वह चीज है जवाहरलाल नेहरू।"

मैंने उससे पूछा, "तुम जवाहरलाल में क्या खूबी देखते हो?"

वह वोला, "जवाहरलाल ने हमें यह वताया है कि आपस में झगड़े करने के वजाय वातचीत से मतभेद मिटाने अच्छे होते हैं।"

फिर कुछ रुककर उसने कहा, "यह लेनिनग्राड, जो तुम देख रहे हो, सन् १९४८ में दूसरी वड़ी लड़ाई के वाद वना है। १९१७ में आजादी मिलने के वाद हमने जो लेनिनग्राड वनाया था, उसे हिटलर ने तवाह कर दिया। अव भी कोई हिटलर पैदा हो सकता है, जो इसे भी वरवाद कर दे। लड़ाइयों में फंसे हुए मुल्क कोई काम नहीं कर सकते। वे गिराने, वनाने और फिर गिराने में लगे रहते हैं। जवाहरलाल ने 'आप जियो और दूसरों को जीने दो' का संदेश दुनिया को दिया है। रूस ने इस संदेश को अच्छी तरह ग्रहण करने का यत्न किया है।"

लेनिनग्राड के मजदूर के जवाहरलाल के संवंध में ये विचार सुनकर मुझे प्रसन्नता और हैरानी हुई। हैरानी इसलिए कि जवाहरलाल की खूवियों को जितना रूस के एक मजदूर ने समझा है, उतना उनके अपने देशवासियों ने नहीं समझा। 'चिराग तले अंवेरा' की कहावत मुझे याद आ गई। राष्ट्रपिता का मुख्य उद्देश्य यही था, जिसका पालन उनके उत्तराविकारी ने सफलतापूर्वक किया। मैं समझता हूं कि इस एक खूवी की वजह से जवाहरलाल ने देश-विदेश में भारी मान पाया।

जार्जिया रूस का एक प्रसिद्ध राज्य है। इसीकी राजवानी में मेरी भेंट एक जार्जियन कवि से हुई। मैंने उन्हें अपनी एक पंजावी कविता सुनाई, जो मैंने मास्को में स्टालिन और लेनिन के मृत शरीरों को एकसाथ पड़े देखकर लिखी थी। परिवाचिका ने जव उस कविता का भाव जार्जियन भाषा में उसे सुनाया तो उसनें खुश होकर कहा कि मैंने जवाहरलाल पर जरूर कुछ लिखा होगा। उसे वह सुनना चाहेगा।

उसकी वात सुनकर मैं शर्मिन्दा हुआ। उस समय तो गोलमाल जवाव देकर मैंने उसको टाल दिया, पर जवाहरलाल के वारे में कुछ-न-कुछ लिखने के लिए मैं चिंतित हो उठा। नतीजा यह हुआ कि जवाहरलाल पर मैंने चार सतरें लिखीं, जिनका भाव यह था कि जवाहरलाल मोतीलाल का सुपुत्र है। मोती समुद्र में होता है और लाल पहाड़ में मिलते हैं। जवाहरलाल में समुद्र जैसी गंभीरता और पर्वत-जैसी दृढ़ता है। ये दोनों चीजें उसे विरासत में मिली हैं। अव देश के निर्माण की आवश्यकता है। वह वड़ी गंभीरता तथा स्वच्छ नीति से मुल्क के निर्माण में लगा हुआ है। जव देश गुलाम था तो उसने वड़ी वीरता से आजादी के आंदोलन में हिस्सा लिया। पंजावी में पंक्तियां इस प्रकार थीं :

सागरो मोती मिलन, विच पर्वतां दे लाल ने। गम मीटता ते विरता, दोवें ही नालो नाल ने।

सौच दुनुगी सागरौ, पर्वत मजवूत लाई। अंश मोतीलाल दी, मेरे जवाहरलाल ने।

रात के खाने पर जार्जियन कवि मिला तो ये सतरें मैंने उनको सुनाईं। इनका भाव उसे जार्जियन भाषा में वताया गया तो वह वड़ा खुश हुआ और कहने लगा कि यह कविता इसी भाषा और इसी लिपि में लिखकर दे दो। मैं इसे एक पवित्र निशानी के तौर पर अपने पास रक्खूंगा। इस वात से साफ पता लगता है कि जवाहरलाल का दूर-दूर देशों तक कितना प्रभाव था।

अफगानिस्तान के प्रवान मंत्री एक वार दिल्ली आये। पार्लमेंट के सेंट्रल हॉल में सदस्यों के सामने

भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि जवाहरलाल से हाथ मिलाकर मुझे बहुत खुशी होती है। पार्लमेन्ट के एक एक बहुत पुराने मेम्बर ने यों ही कह दिया कि आपको क्यों इतनी खुशी होती है। उसने उत्तर दिया कि इस बात का ज्ञान आपलोगों को मुझसे अधिक होना चाहिए। मेरे मन में जवाहरलाल की इज्जत इसलिए है कि वह एक ऐसे मुल्क का प्रधान मंत्री है, जिसकी पालिसी 'खुद जीओ और दूसरों को जीने दो' की है। मुझे उसके भाषण के ठीक-ठीक शब्द तो याद नहीं, परन्तु उसका भाव यही था।

मि० जिन्ना ने जब एक छोटा-सा मुल्क पाकिस्तान बनवाने का निश्चय किया तो उनके मन में यह बात थी कि पाकिस्तान एक तरफ अफगानिस्तान के साथ संबंध का जरिया होगा और दूसरी ओर कराची से लेकर दूसरे इस्लामी मुल्कों के साथ संबंध जोड़ने के लिए एक वसीला बनेगा। इंडोनेशिया तक के इस्लामी मुल्क मिलकर एक बहुत बड़ी इस्लामी सल्तनत बन जायगी, जिसका दुनिया के लोगों पर सिक्का बैठ जायगा। जवाहरलाल ने अपनी अंतर्राष्ट्रीय नीति से मि० जिन्ना के इस स्वप्न को पूरा नहीं होने दिया। जवाहरलाल ने अपनी जिंदगी में ऐसा चक्कर चला दिया कि इस्लामी मुल्क कराची के बजाय दिल्ली के इर्द-गिर्द घूमने लगे। आज दुनिया का राजनैतिक आसमान कुछ धुंधला-सा है। बड़ी-बड़ी तब्दीलियां हो रही हैं। परंतु ले-देकर वह आखिर संसार की राजनीति को इसी रास्ते पर आना होगा, जिसपर चलने के लिए जवाहरलाल बराबर कोशिश करते रहे।

सच यह है कि जवाहरलाल प्राणिमात्र की सेवा करने के लिए ही पैदा हुए थे। सेवा के लिए विद्या प्राप्त की और सेवा करते हुए ही परलोक को सिधार गये। भुवनेश्वर-कांग्रेस के मौके पर जिस दिन वह बीमार हुए, उस दिन की बात है। पहले दिन का अधिवेशन समाप्त हुआ, वह मंच पर से उठनेवाले थे कि मैं पंजाब के कुछ साथियों को लेकर उनसे बात करने के लिए आगे बढ़ा। अपने जूते पहनते हुए उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रखा। हमें जो बात उनसे करनी थी, वह कह ली। बात करने के बाद मैंने पंडितजी के चेहरे की ओर ज़रा अधिक ध्यान से देखा। उनकी निगाह भी मेरी तरफ हुई। मैंने बड़ी निर्भयता से कहा, 'पंडितजी, एक अर्ज करूं?''

वह तुरंत बोले, 'मुझे पता है कि तुम क्या कहना चाहते हो। तुम्हें भी वही कहना है, जो आजकल सब लोग कहते हैं। पर मैं कहता हूं कि काम ही तो जिंदगी है। बगैर काम के जिंदगी का फायदा क्या?'' मैं आगे क्या कहता!

२२ अप्रैल, १९६४ को जलियांवाला बाग ट्रस्ट की उनके कमरे में मीटिंग थी। इस ट्रस्ट के बहुत-से ट्रस्टियों का स्वर्गवास हो गया था। पिछले वर्ष डा० किचलू, राजकुमारी अमृतकौर भी चल बसीं। आज की मीटिंग में हम तीन ही थे—पंडितजी, श्री लालबहादुर शास्त्री और मैं। पंडितजी ने उसी दिलचस्पी से फैसले करवाये, जिस तरह वह हमेशा करते थे। अखिल भारतीय कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन में जिन लोगों ने उन्हें देखा, वे इस बात के साक्षी हैं कि पंडितजी अगर्चे शारीरिक रूप में कमजोर हो चुके थे, मगर उनका मन जवानी के जोश से ही अपने फर्ज को पूरा कर रहा था।

पंडितजी चले गये, लेकिन उनका काम और उनका नाम अमर रहेगा। ●

रमेशचन्द्र खांडेकर

अनुशासननिष्ठ नेहरू

राज्य सभा में चुने जाने के पूर्व मेरा जवाहरलालजी से व्यक्तिगत परिचय नहीं था, सिवा इसके कि मैंने उन्हें चुनावों की बड़ी-बड़ी आम सभाओं में व अन्यत्र दूर खड़े होकर देखा था। लेकिन सन् १९६२ में राज्य सभा में 'प्र.सो.पा.' के टिकट पर चुने जाने के पश्चात इन दो वर्षों में संसद के अधिवेशन में प्रायः प्रतिदिन व खासकर के प्रति मंगलवार को, जो उनके विदेश मंत्रालय के बारे में प्रश्न पूछे जाने का खास दिन था, उनसे काफी निकट सम्पर्क आता रहता था। इसके अतिरिक्त उनके विभाग के बारे में चलनेवाली चर्चा के समय अथवा राष्ट्रपति के अभिभाषण पर चलनेवाले विवाद में भी उनकी उपस्थिति आवश्यक होने से उनसे अधिक सम्पर्क रहा करता था। प्रश्नोत्तर काल में तो मेरा सौभाग्य रहा है कि मेरे कुछ प्रश्न रहते थे, जिनका उत्तर पूरक प्रश्नों के साथ वह स्वयं खड़े होकर देते थे। इन दो वर्षों में उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का मुझपर जो प्रभाव पड़ा और मेरे स्मृतिपटल पर उनकी जो अमिट छाप है, उसे मैं अत्यन्त संक्षेप में लिखना चाहता हूं।

इस देश में जनतंत्र की नींव जमाने व उसे मजबूत करने का श्रेय किसी एक व्यक्ति को है तो वह केवल जवाहरलाल नेहरू को ही है। उन्होंने जनतन्त्र की नींव इस देश में केवल जमाई ही नहीं, बल्कि उसको मजबूत करने के लिए स्वयं जीवन के अंतिम क्षण तक प्रयत्न किया। यह उनका एक महान कार्य है। उच्च आदर्शों के बारे में लिखना या बोलना बहुत आसान बात है, किन्तु उन्हें कार्यरूप में परिणत करना अत्यंत कठिन है। इस कठिन कार्य को जवाहरलालजी ने करके दिखाया। इसका मुझपर भारी प्रभाव पड़ा है।

पंडितजी जब कभी सदन में आये, पहले कुर्सी को, फिर कुर्सी पर उपराष्ट्रपति विराजमान हों, या उपाध्यक्ष उन्हें प्रणाम किये बिना कभी भी अन्दर नहीं आये और न अपनी जगह पर बैठे। मैंने कई मन्त्री देखे हैं, जिन्हें इस बात का ध्यान नहीं रहता, किन्तु सदन की मर्यादा एवं प्रतिष्ठा का समादर और निर्वाह किये बिना पंडितजी अपनी कुर्सी पर कभी नहीं बैठे। यही बात सदन से बाहर जाते समय भी पूरी तरह निभाई। मैं इसको बहुत बड़ी बात मानता हूँ। यों देखने में यह बात बहुत ही छोटी दिखाई देती है, लेकिन जनतंत्र को सर्वोपरि समझकर उसकी प्रस्थापना के हेतु सदन की मान-मर्यादा का उन्होंने सदा ध्यान रखा।

दूसरी एक और बात वैसे बड़ी छोटी-सी है, लेकिन मेरी दृष्टि में उसका बड़ा महत्व है। वह है समय पर आना। पंडितजी ठीक समय पर आते थे। सदस्य अपनी घड़ी उनके आगमन से ठीक करते थे—न कभी एक मिनट पहले, न एक मिनट देर से। हर संसद के अधिवेशन में प्रारंभ से अंत तक हर मंगलवार

को ठीक ११ बजे मैंने उनको सदन में प्रवेश करते देखा। ऐसे मंत्री भी हैं, जो अपने विभाग का काम-काज होने पर भी सदन में समय पर उपस्थित नहीं होते, फलस्वरूप कई बार समग्र कार्यवाही स्थगित करनी पड़ती है और दूसरे दिन मंत्री महाशय सदन से माफी मांगते हैं। पर पंडितजी को कभी ऐसा नहीं करना पड़ा। वास्तव में इसे मैं एक बहुत बड़ा आदर्श मानता हूं। जब भी विदेश मंत्रालय के बारे में सदन में बहस होती थी, पंडितजी स्वयं अपनी कुर्सी पर बैठकर दूसरों के भाषणों को बड़ी सावधानी से सुनते थे और आवश्यकता पड़ने पर उनके नोट लेते जाते थे। और जवाबी बहस में उनका उत्तर देते थे। बहस छः-छः घंटे तक भले ही चले, लेकिन मैंने पंडितजी को सिवा खाने का समय छोड़ बहस में बराबर बैठे देखा। इतना ही नहीं, वह सब सदस्यों के भाषणों को सुनते थे। यह नहीं कि कांग्रेस का सदस्य बोल रहा है तो उसे ध्यान से सुनना या कोई विरोधी पक्ष का नेता बोल रहा है तो उसकी तरफ ध्यान न देना। कोई भी व्यक्ति हो, साधारण-से-साधारण, किसी भी पार्टी का सदस्य हो, उसका भी भाषण वह उतने ही ध्यान से सुनते थे जितने ध्यान से वह बड़े-से-बड़े नेता को सुनते थे। यह गुण कोई साधारण नहीं है। सब सदस्यों को सदन में या सदन के बाहर एक दृष्टि से देखना और उनका सम्मान करना, जनतंत्र को मजबूत करने की व जनतंत्र में विश्वास उत्पन्न करने की सबसे बड़ी बात थी, जिसका उन्होंने पालन किया।

प्रश्नोत्तर के समय वह हमेशा खड़े होकर उत्तर देते थे। भुवनेश्वर में बीमार होने के बाद भी जब वह सदन में आये और अध्यक्ष महोदय ने उन्हें बैठकर उत्तर देने का आग्रह किया, फिर भी उन्होंने बैठ-कर कभी भी उत्तर नहीं दिया। हमेशा सदन की मर्यादा को ध्यान में रखा। अध्यक्ष का मान रखा। सवाल पूछनेवाले सदस्य का मान रखा। उनको बैठने में या खड़े होने में तकलीफ होती थी, फिर भी उन्होंने हमेशा कुर्सी से उठकर प्रश्नों का उत्तर दिया। उत्तर देते समय भी उन्होंने कभी यह नहीं देखा कि प्रश्नकर्ता कौन है, किस पार्टी का है, कोई नेता है या कांग्रेसी सहयोगी है। उन्होंने सबको बराबरी का मानकर उसके सवालों का जवाब देने का प्रयत्न किया।

पंडितजी में व विरोधी सदस्यों में अनेक विषयों के बारे में मतभेद होता था। कभी-कभी तो चीन-पाकिस्तान के सम्बन्ध में गरमागरम प्रश्न पूछे जाने पर वह भी नाराज होकर, चिढ़कर उत्तर देते थे, किन्तु उसके बाद सदन के बाहर उनके मन में विरोधियों के प्रति कभी भी कटुता नहीं रही। सच्चे जनतंत्र के लिए इस प्रकार की मनःस्थिति अत्यन्त आवश्यक है।

२७ मई, १९६४ को संसद का विशेष अधिवेशन बुलाया गया था। ११ बजे सदन में पंडितजी की प्रतीक्षा की जा रही थी। सोचा जा रहा था कि वह काश्मीर-समस्या पर कोई बयान देंगे और उसपर चर्चा होगी, किन्तु ११ बजे सदन में कहा गया कि उनकी हालत चिंताजनक है। सदन में वह बाहर एकदम सन्नाटा-सा छा गया। किसीको सदन भी कार्यवाही की में रुचि नहीं रही। फिर भी सदन का कामकाज चलता रहा। अचानक ढाई बजे सदन में कहा गया कि पंडितजी नहीं रहे। दीप-ज्योति बुझ गई। सर्वत्र अंधेरा छा गया। महान वज्रपात हुआ।

आज जब हम नेहरूजी की कुर्सी की ओर देखते हैं तो उनके बिना सदन में अपूर्णता-सी प्रतीत होती है। सदन के जर्रे-जर्रे में उनकी स्मृतियां अंकित हैं। हमारे दिलों में भी उनकी याद सदा बनी रहेगी। ●

वह सारी दुनिया के थे

विश्व-मानव जवाहरलालजी के आगे 'स्वर्गीय' शव्द लगाते हुए हृदय को धक्का-सा लगता है। अभी कुछ दिन पहले तक जो हमारे बीच विद्यमान थे और पिछले पैंतालीस वर्ष से जो भारतीय राजनैतिक आकाश पर देदीप्यमान सूर्य की तरह छाये हुए थे, उनके एक साथ विलीन हो जाने की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

हमारे देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जो उन्नति हो रही है, क्या सामाजिक और क्या औद्योगिक, क्या आर्थिक और क्या शिक्षा-संवंधी, उस सवमें जवाहरलालजी का हाथ साफ नज़र आ रहा है। हमारी पंचवर्षीय योजना के तो वह प्रवर्तक और संचालक थे ही।

इतना सब होते हुए भी जवाहरलालजी को कोरमकोर भारतीय समझना भारी भूल होगी। वह सिर्फ हिन्दुस्तान के नहीं, सारी दुनिया के थे। या यों कहिये कि वह विश्व-नागरिक थे। उनकी वजह से सारे संसार में भारत का नाम उजागर था। जब कोई हिन्दुस्तानी वाहर जाता है तो मामूली राहगीर उससे यही पूछता है—

"क्या आप गांधी और जवाहरलाल के देश के हैं?"

रूस की सड़कों पर टहलते हुए हमें यही अनुभव हुआ था। कई व्यक्तियों ने दुभापिये की मार्फत हमसे यही कहा था, "जवाहरलाल को हमारी नमस्ते कह देना।"

प्रधान मंत्री बनने के बहुत वर्ष पूर्व ही जवाहरलालजी की कीर्त्ति देश-विदेश में फैल चुकी थी। जब जवाहरलालजी लाहौर-कांग्रेस के प्रधान बने थे तो उनके भाषण को पढ़कर सम्पादकाचार्य रामानन्द चट्टोपाध्याय ने लिखा था, "जवाहरलालजी के भाषण को पढ़ने के वाद हमलोग इस वात में गौरव अनुभव करेंगे कि हम जवाहरलाल के देशवासी हैं।" और कवींद्र श्री रवींद्रनाथ ठाकुर ने उन्हें 'भारत का ऋतुराज' —वसन्त ही कहा था।

स्वर्गीय पंडितजी के प्रति आज समस्त संसार के प्रमुख-प्रमुख व्यक्ति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं, इसलिए इस अवसर पर उनके गुणों के विषय में कोई नई बात नहीं कही जा सकती। हां, यदि हमारे-जैसे साधारण व्यक्ति, जिन्हें थोड़ी देर के लिए भी उनके सम्पर्क में आने का मौका मिला था, अपने-अपने संस्मरण लिख दें तो उनसे पंडितजी के गौरवमय चरित्र पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है।

सन् १९२१ की वात है। मैं उन दिनों शान्ति-निकेतन में दीनवन्धु ऐण्ड्रूज के साथ रह रहा था। महात्माजी का आदेश पाकर मैं वम्बई मेल द्वारा वर्दवान से रवाना हुआ। जिस इण्टर क्लास के डिव्वे

में मैं सफर कर रहा था उसीमें इलाहाबाद के निकट छिउकी स्टेशन पर दो व्यक्ति सवार हुए—एक तो महादेवभाई देसाई और दूसरे पं० जवाहरलाल नेहरू। देसाईजी ने तो पूछा भी कि कहां चल रहे हो, पर जवाहरलालजी से नमस्कार के सिवाय कोई बातचीत नहीं हुई। पंडितजी अपने समय का उस समय भी इतना ख़याल रखते थे कि तुरंत ही वह अपने लिखने-पढ़ने के काम में जुट गये। उसी डिब्बे में एक आगाखानी खोजा भी यात्रा कर रहा था। उसका विश्वास था कि हिज़-हाईनेस आगाखां हिन्दुओं के यहां बतलाये हुए कल्कि अवतार हैं। उसके साथ बहस-मुबाहिसे में मेरे दो-ढाई घंटे बर्बाद हो गये, पर पंडितजी तथा महादेवभाई अपने-अपने काम में लगे रहे।

इसके बाद तो पंडितजी से कई बार मिलना हुआ और साहित्य अकादमी में तो पांच वर्ष तक उसकी प्रबन्धकारिणी समिति में दो महीने में एक बार उनके दर्शन हो ही जाते थे। एक बार पंडितजी कलकत्ता आये हुए थे और डाक्टर विधानचन्द्र राय के मकान पर प्रवासी भारतीयों के विषय में पन्द्रह मिनट तक उनसे बातचीत हुई थी। सन् १९३२–३३ की बात होगी। मेरे मुंह से यह निकल गया कि मैंने "केनिया डेली मेल' (मोम्बासा) को एक लेख भेजा है, जिसमें निवेदन कर दिया है कि प्रवासी भारतीय भारत की किसी विशेष राजनैतिक पार्टी से अपना संबंध न रखें, क्योंकि उनके लिए कांग्रेस और लिबरल पार्टी दोनों ही समान थीं, दोनों दलों में ही उनके शुभचिन्तक पाये जाते थे। जब पंडितजी ने वह लेख पढ़ा तो नाराज होकर कहा, "आप भी अजीब आदमी हैं; किस तरह की बातें लिख भेजते हैं। प्रवासी भारतीय क्यों न हमारी कांग्रेस से ताल्लुक रखें?" ऐसा कहते हुए उन्होंने मेज पर एक घूंसा जमाया। मुझे इससे आश्चर्य तो हुआ, फिर भी मैंने विनम्रतापूर्वक इतना ही कहा, "ये तो अपने-अपने विचार हैं।"

प्रयाग में मैंने आल-इंडिया कांग्रेस कमेटी के आफिस में पंडितजी को प्रवासी भारतीय-संबंधी अपने ग्रंथ दिखलाये और कांग्रेस में प्रवासी विभाग कायम करने के लिए मैंने जो आन्दोलन किया था, उसकी फाइलें भी दिखलाईं। उन्हें देखकर पंडितजी ने सिर्फ इतना ही कहा—

"कांग्रेस में वैदेशिक विभाग कायम कराने के लिए आपको बहुत मेहनत करनी पड़ी। मैंने तो कलकत्ता में सिर्फ एक प्रस्ताव से ही उसे पास करा लिया था।" इस कथन का सिर्फ एक ही उत्तर हो सकता था, "बड़े-बड़े नेताओं के लिए जो काम आसान होता है, छोटे कार्यकर्ता उसे वर्षों की कोशिश के बाद कर पाते हैं।" पर यह उत्तर देने की हिम्मत मुझमें थी नहीं।

जब मुझे कांग्रेस ने सन् १९२४ में अपना प्रतिनिधि बनाकर पूर्वी अफ्रीका भेजा था, उस समय मार्ग-व्यय इत्यादि के लिए दो हजार रुपये पंडितजी ने ही भिजवाये थे। यात्रा से लौटने के बाद जब मैंने उन्हें हिसाब भेजा तो पंडितजी ने उसके कई खर्चों पर एतराज कर दिया। अमुक-अमुक स्कूलों में मिठाई क्यों बांटी गई! कपड़ों पर क्यों व्यय किया! इत्यादि-इत्यादि। दरअसल गलती मेरी ही थी। मैंने अपने मामूली वेतन यानी एक सौ तीस रुपये महीने पर ही अफ्रीका-यात्रा स्वीकार कर ली थी और दैनिक भत्ते इत्यादि के लिए एक पैसा भी नहीं रखा था। यही नहीं, मजबूरन डैक यात्रा करके कांग्रेस के ढाई सौ रुपये बचा भी दिये थे। पर पंडितजी नियमों के बड़े पाबन्द थे। महात्माजी ने बीच में पड़कर मुझे बचा लिया, नहीं तो वह यात्रा मेरे लिए बहुत घाटे की रहती!

ऊपर से पंडितजी भले ही कठोर मालूम होते हों, पर वह बड़े सहृदय व्यक्ति थे। अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद की माताजी के विषय में मैंने एक चिट्ठी सौ० बहन सत्यवती मल्लिक को दिल्ली भेजी थी। उन्होंने मेरा वह पत्र पंडितजी की सेवा में भेज दिया। पंडितजी ने तुरन्त ढाईसौ रुपये का चेक मेरे नाम भेज दिया कि वह रकम माताजी तक पहुंचा दी जाय। इसी प्रकार मेरी चिट्ठी मिलने पर पंडितजी ने स्व० सैयद अमीर अली 'मीर' की विधवा को दोसौ रुपये भेज दिये थे और मार्शल लॉ के कैदी बाबा तीरथराम को डेढ़ सौ।

फिरोज़ाबाद के दो वाल्मीकि युवक बी० ए० पास कर लेने के बाद भी घर पर बेकार बैठे हुए थे। यहां ६०–६० रुपये महीने की भी कोई नौकरी उन्हें नहीं मिली थी। बी० ए० उन्होंने तीसरी डिवीजन में पास किया था। मैंने उनका प्रार्थना-पत्र माननीय जगजीवनरामजी की सेवा में भेज दिया और उन्होंने उसे पंडितजी के पास पहुंचा दिया। पंडितजी का पत्र तुरन्त मेरे पास आया, जिसका आशय यह था कि आपने यह नहीं लिखा कि उन युवकों ने कौन-कौन से विषय लिये थे। ग्रेजुएट तो हमारे यहां बहुत-से होते हैं, पर सरकारी नौकरियों की संख्या थोड़ी ही है। हम वचन तो नहीं देते, पर प्रयत्न करेंगे।

दोनों युवक दिल्ली बुलाये गए, परीक्षा ली गई और दोनों भाइयों को २८०–५००) के ग्रेड में काम मिल गया।

पार्लमेंट की ओर से एक शिष्ट-मण्डल रूस जानेवाला था। मैंने पंडितजी की सेवा में एक पत्र भेज दिया और यह प्रार्थना कर दी कि उसमें मेरा नाम भी शामिल कर दें तो बड़ी कृपा होगी। उस पत्र में धृष्टतापूर्वक मैंने यह भी लिख दिया, "मैं अपने बारे में किसीको मुगालते में नहीं रखना चाहता। मेरा विश्वास तो अराजकवाद में है।"

अगर कोई दूसरा आदमी होता तो अवश्य ही मुझे डांट बताता, क्योंकि मैं तो शासनारूढ़ कांग्रेस पार्टी का एक अदना सदस्य था और अराजकवाद की बात मुझे कहनी ही नहीं चाहिए थी, पर पंडितजी लेखकों के प्रति और भी उदार थे और उनकी सनकों के प्रति सहिष्णु।

साहित्य अकादमी की प्रबंधकारिणी के १४–१५ सदस्यों में मैं भी एक मनोनीत सदस्य था और उसकी मीटिंग दो महीने में एक बार तो होती ही थी। पंडितजी हमारे प्रधान थे। पंडितजी ने कभी रौब-दाब से काम नहीं लिया। वह स्वयं उच्चकोटि के साहित्यिक थे और साहित्यिकों के व्यक्तित्व का सम्मान करते थे।

पिछले वर्ष 'गणेशशंकर विद्यार्थी दिवस' पर पंडितजी पधारे थे और उन्होंने भावपूर्ण श्रद्धांजलि भी गणेशजी को अर्पित की थी। मंच पर से नीचे आते हुए उन्होंने मुझे खड़ा हुआ देखा और कहा, "कहिये चतुर्वेदीजी, क्या हाल हैं?" मैंने विनम्रतापूर्वक इतना ही निवेदन किया, "शहीदों के काम में लगा हुआ हूं।" पंडितजी मुस्कराकर आगे बढ़ गये। उनके अन्तिम दर्शन होली के अवसर पर उन्हींके निवासस्थान पर हुए थे। इस देश में मेरे-जैसे सहस्रों, बल्कि लाखों ही ऐसे व्यक्ति होंगे, जो पंडितजी के बारे में इसी प्रकार की छोटी-छोटी बातें लिख सकते हैं। पंडितजी की स्मृति-रक्षा के लिए हम क्या करें, यह विषय ही दूसरा है और इसपर एक अलग लेख लिखा जा सकता है। यहांपर सिर्फ इतना कहना ही काफी होगा कि यदि

हमलोग मेहनत और ईमानदारी के साथ अपनी-अपनी जगह पर अपने फर्ज अदा करें, तो उससे पंडितजी की आत्मा को स्वर्ग में संतोष मिलेगा।

"स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धि लभते नर:।"

गीता का यह उपदेश है और पंडितजी गीता के बड़े भक्त थे।

एक बार दूसरे महायुद्ध के दरम्यान, जब चारों ओर जर्मन बम बरस रहे थे, ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल एक भूमिगत कार्यालय का मुआयना करने गये; तो वहां के कर्मचारियों ने न तो उनकी ओर देखा, न उनका अभिनंदन ही किया, बल्कि तन्मयता के साथ अपने-अपने काम में लगे रहे। चर्चिल इस बात से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने कहा भी कि जो कौम इस तरह अपना फर्ज अदा करती है, उसे कोई नहीं हरा सकता।

दूसरी मिसाल महात्माजी की है। वह भी वियोगी हरिजी के साथ हरिजन कॉलोनी का निरीक्षण कर रहे थे। जब वह रसोईघर की तरफ से गुजरे तो एक लड़का उन्हें रोटी बनाने में इतना व्यस्त दीख पड़ा कि वियोगी हरिजी को कहना पड़ा, "अरे भाई, देखता भी नहीं! बापू आये हैं। उनके दर्शन तो कर ले!" महात्माजी ने तुरंत ही कहा, "वह तो रोटी में ही मेरे दर्शन कर रहा है।"

जब हमलोग इसी प्रकार मन लगाकर अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करेंगे तो हमारे नेता जवाहरलालजी के स्वप्नों के भारत का निर्माण होने में कोई मुश्किल न रहेगी। रहे श्री जवाहरलालजी के दर्शन, सो वह हमें अपनी भूमि के प्रत्येक रचनात्मक कार्य में प्राप्त हो सकते हैं—भाखड़ा के पुण्य तीर्थ में, चंबल के वांध में, राजस्थान की नहर में और भिलाई के कारखाने में। इन नवीन मन्दिरों में उन्हींकी मूर्ति अदृश्य रूप से मौजूद है।

"ताहॉराइ प्रतिमा गड़ी मन्दिरे मन्दिरे।" ●

भूली-बिसरी यादें

मैं अकरा असेम्बली का एकमात्र भारतीय प्रतिनिधि होने के नाते मार्च में अकरा असेम्बली की कार्यकारिणी की बैठक में भाग लेने स्वीडन गया था। अपनी यात्राओं के प्रयोजनों से ज़वाहरलालजी को सूचित करना मेरी आदत रही है और वह भी हमेशा विभिन्न देशों की जनता को परस्पर निकट लानेवाली इन यात्राओं के लिए मुझे प्रोत्साहन देते रहे। मैं सुबह पालम हवाई अड्डे पर उतरकर घर पहुंचा और निवृत्त होकर जवाहरलालजी के हाल-चाल पूछने के लिए उनकी कोठी पर गया। वहां मेरी भेंट इंदिरा गांधी से हुई, जिन्होंने मुझे बाहर दीवार के पास जाने को कहा, जहां नेहरूजी बैठे हुए थे। श्रीमती इंदिरा गांधी ने मुझे जल्द बातचीत खत्म करने की सूचना दी। उनकी पितृभक्ति, सेवा-सुश्रूषा और स्नेह किसीके भी हृदय को प्रभावित किये बगैर नहीं रह सकते थे।

मुझे देखते ही नेहरूजी का चेहरा खिल उठा, क्योंकि आखिर हमारी जान-पहचान पचास वर्षो पुरानी थी। वह अपने मकान की दीवार के पास पटरी पर बैठे थे और उनके सामने मेज पर ढेरों कागज-पत्र थे। मैंने कहा, "क्या यह ठीक नहीं रहेगा कि हिन्दुस्तान के आग की लपटों में जलने से पहले इन कागजों को ही आग के सुपुर्द कर दिया जाय?" मेरे कहने का मतलब यह था कि उन्हें आराम करना चाहिए और अब अपने-आपको देश के मामलों में उलझाकर ज्यादा थकाना नहीं चाहिए। मेरी बात के उत्तर को उन्होंने हँसी में उड़ा दिया।

मैंने पूछा कि उन्हें रात को नींद ठीक तरह आती है या नहीं। उन्होंने उत्तर दिया कि चौबीसों घंटे सोने के सिवाय और करता भी क्या हूं। स्पष्ट था कि वह स्वयं को इतना थका चुके थे कि प्रकृति पूरा-पूरा बदला ले रही थी और वर्षो का निद्राभाव अब पूरा हो रहा था। मुझे याद है कि १९५३ में नेहरूजी ने हमको लंदन में नाश्ते के लिए सुबह क्लारिज होटल में आने को कहा था। हम वक्त पर पहुंच गये नाश्ता लग चुका था। उसमें एक मक्खन का पैकेट भी था, जो लार्ड माउण्टबेटन के फार्म से आया था। लड़ाई के उस जमाने में मक्खन इंगलैंड में दुर्लभ था। हम प्रतीक्षा कर रहे थे। नेहरूजी ने आते ही विलम्ब के लिए क्षमा याचना की। उन्होंने बतलाया कि वह रात को दो बजे तक भारत से आये हुए तार पढ़ रहे थे और एक तार पढ़ते-पढ़ते ही सो गये थे। प्रकृति अब इसी थकानकारी क्रम का बदला ले रही थी।

मैंने दूसरा प्रश्न किया—"आप भोजन तो ठीक तरह कर पा रहे हैं?" नेहरूजी ने बतलाया कि

विस्थापितों को मदद पहुंचाने का काम भरसक करेंगे। इसी घटना से शरणार्थी संरक्षण समाज की नींव पड़ी।

और आज जब मैं नेहरूजी से अपने वर्षों के संबंधों पर विचार करता हूं तो मेरे मस्तिष्क में अनेक विचारों और घटनाओं की स्मृतियों का मेला लग जाता है। वह अपने देशवासियों को असीम प्यार करते थे। राजधानी के ३५ लाख लोग, उनके निधन और अन्त्येष्टिवाले दिनों में अपने चूल्हे तक जलाना भूल गये, जो अपने इस प्रिय नेता से प्राप्त प्यार के गवाह हैं। उन जैसा दूसरा हमको कभी नहीं मिलेगा। वर्षों पूर्व होरेस ने कहा, "इतने प्रियजन के शोक की सीमा हो ही क्या सकती है?" सम्मान और न्याय की बहन श्रद्धा और परम सत्य को ऐसा नायक कब-कब मिल सकता है? उत्तर है, "कभी नहीं, कभी नहीं।" ●

जग-प्रदीप हे!

पंचशील को भव्य प्रतिष्ठा देनेवाले,
डिगे न व्रत से, पांव तुम्हारे टले न टाले।
तर्जन करते रहे मेघ, तूफान, बवण्डर;
जगे रहे तुम जग-प्रदीप हे, सेवा-तत्पर।
वाणी के वरपुत्र, उजागर चरित तुम्हारा,
हरता रहा अथक, जग-जड़ता का अंधियारा।
रक्त रहे निःस्वार्थ, सर्वजनहितसाधन में;
लाभ लोक का ही चिन्तन बन निवसा मन में।
ललित तुम्हारे भाव जहां बनते थे प्रवचन,
नेहमयी प्रेरणा स्पर्श करती थी जन-मन।
हरो शोक, शिवलोक गए हे शंकर-मानव!
रूपायित हो स्वप्न-निर्दाशित भारत-गौरव।

-रामगोपाल 'रुद्र'

दो स्मरणीय प्रसंग

बात उस समय की है, जब सन् १९४७ में आजादी मिलने के बाद देशी राज्यों की इकाइयां बनाई जा रही थीं और उनमें स्वायत्त शासन की स्थापना की जा रही थी। ईस्टर्न स्टेट्स एजेंसी की ३९ रियासत थीं, जिनमें उड़ीसा के २५ और छत्तीसगढ़ के १४ ऐसे राज्य थे, जिन्हें उड़ीसा और मध्य प्रदेश में विलीन कर दिया था। दूसरी रियासतों की इकाइयों में जनता को जो अधिकार प्राप्त हो गये थे, उन्हें देखकर छत्तीसगढ़ की रियासतों की जनता के प्रतिनिधित्व की मांग और राज्यों में सुधार करने की इच्छा स्वाभाविक थी। इसी उद्देश्य के लिए छत्तीसगढ़ रियासतों के कार्यकर्त्ताओं की एक कांफ्रेंस बुलाई गई थी और उसमें कई प्रस्ताव पास किये गए थे। उसके बाद दिल्ली में ये प्रस्ताव श्री नेहरू के सामने उनकी जानकारी के लिए रख गये थे। उन्होंने करीब एक घंटे तक परिस्थिति समझी और उसके बाद बड़ी उत्सुकता से पूछा कि प्रस्ताव समाचार-पत्रों में प्रकाशित करने के लिए भेजे गये या नहीं। मेरे यह कहने पर कि प्रस्ताव प्रकाशनार्थ नहीं भेजे गये, उन्होंने कहा कि आप पत्रों की शक्ति को नहीं समझते हो और उन्होंने शीघ्र ही प्रस्ताव को पत्रों में प्रकाशित करवाने के लिए कहा। उसके बाद उन्होंने प्रस्तावों में दिये गए सुझावों का हमेशा ध्यान रखा और मार्गदर्शन करते रहे। इस घटना से स्पष्ट है कि जनता में प्रजातंत्रात्मक भावनाएं फैलाने का उनका तरीका क्या था? मैंने हमेशा देखा कि वह दूसरों पर कभी अपनी बात थोपने का नहीं, बल्कि अपनी बात समझाने का रास्ता अपनाते रहे। उनका व्यक्तित्व जितना प्रभावशाली था, उनके कार्य भी उतने ही प्रजातंत्रात्मक थे।

... ...

पार्लमेंट के सेंट्रल हॉल में एक मीटिंग का आयोजन किया गया था। हाल दर्शकों से भरा हुआ था। नेहरूजी सदस्यों से मिलते-जुलते रहे और मीटिंग शुरू होने का समय आ गया। उन्होंने आगे की बेंचों पर निगाह दौड़ाई। वे भरी हुई थीं। एक तीन सीट की बेंच पर श्री हरेकृष्ण महताब, श्री जगजीवनराम और मैं बैठा हुआ था। नेहरूजी उस समय सामने ही खड़े थे। उन्होंने तपाक से कहा, "वाह, मेरे लिए कहीं जगह ही नहीं है?" और सीटों के सामने की डेस्क पर से कूदकर वह हमलोगों की गोद में आ गिरे। आस-पास के लोगों ने यह देखा तो उन्हें हँसी रोकना मुश्किल हो गया। पंडितजी कितने सरल थे और कितनी आत्मीयता उनके हृदय में भरी थी। साथ ही, कितने विनोदी थे, उसका यह एक उदाहरण है। ●

सबसे निराले

पंडितजी को दूर से तो मैं वैसे कई सालों से देखता आ रहा था, पर पहले-पहल मेरी मुलाकात उनसे १९२४ में हुई। गांधीजी अपने अपेंडिक्स के ऑपरेशन के बाद जेल से छूटकर आये थे और स्वास्थ्य-लाभ के लिए जुहू में ठहरे हुए थे। एक रोज मैं गांधीजी से मिलने को जुहू गया तो बातों-ही-बातों में उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या जवाहरलाल को जानते हो?"

"दूर से ही देखा है। कभी मिला नहीं हूं।" मैंने कहा।

"तो मिल लो और मैत्री करने की कोशिश करो।"

मैं गांधीजी के पास से उठकर पंडितजी के पास गया। वह बरामदे के एक कोने में बैठे थे। वह दृश्य मुझे स्पष्ट याद है। उनके चेहरे पर ताज़गी थी, सौन्दर्य था, और जवानी थी। मुझे ऐसा भी स्मरण है कि उनके हाथ में गीता की पुस्तक थी, जिसका वह अध्ययन कर रहे थे। उस समय जो पहली छाप मुझपर पड़ी, उससे मुझे लगा कि मैं उनके हृदय में शायद ही कभी प्रवेश कर सकूं। मेरी वह प्रथम धारणा आज भी मुझे सही ही लगती है।

मैं स्वनामधन्य पंडित मोतीलालजी के पास काफी उठा-बैठा हूं। लाला लाजपतराय और पंडित मालवीयजी की सेवा मैंने की है। बापू के चरणों में ३२ साल तक रहा, पर पंडित जवाहरलालजी इन सबसे मुझे निराले ही दीखे हैं। मालवीयजी एक निर्मल जल के सरोवर जैसे लगते थे, जिसमें प्रवेश करने में मुझे कभी झिझक नहीं होती थी। बापू ऐसे लगते थे, जैसे गंगा की पवित्र धारा। इसमें स्नान करने से सुख और शान्ति मिलती थी और पाप और परिताप से मुक्ति मिलती थी। इन दोनों ही जलों में गोता लगाना मुझे आसान मालूम देता था। पर पंडितजी मेरी दृष्टि में सदा एक अगाध समुद्र रहे हैं, जो विशाल है, बृहत है, अपनी ओर खींचता है, अपने लिए श्रद्धा पैदा करता है और प्रभावान्वित भी करता है, पर जिसका अवगाहन भयप्रद है।

सन् १९२४ के बाद मैं पंडितजी के काफी परिचय में आया। उनका काफी अध्ययन किया। उनके साहित्य को पढ़ा। पर मैं नहीं कह सकता कि मैं आज भी उन्हें जान पाया हूं। पंडितजी मेरे लिए सदा ही समुद्र की तरह 'अनवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा' रहे हैं।

एक बार मैंने स्वर्गीय महादेवभाई देसाई से पूछा था, "महादेवभाई, जवाहरलालजी को जानते हो? जानते हो तो बताओ वह क्या हैं?"

उन्होंने कहा, "जवाहर ग्रीक फिलासफर है। वह सौन्दर्य का उपासक है। वह कभी सौन्दर्यहीन काम नहीं कर सकता।"

गोल्डस्मिथ ने कहा है, "सुन्दर वह है जो सुन्दर करता है।" संभव है, महादेवभाई का तात्पर्य सत्यं, शिवं, सुन्दरम् से रहा हो। जो सुन्दर है वह सत्य भी होना चाहिए, कल्याणकारी भी होना चाहिए।

मैंने समालोचक बनकर पंडितजी का अध्ययन किया है और मुझे लगता है कि पंडितजी के संबंध में महादेवभाई का चित्रण अक्षरशः सही है। पंडितजी चाहे एक क्षण के लिए आवेश में आ जायं, पर उनकी न्याय-बुद्धि उन्हें कभी नहीं छोड़ती। एक विशिष्ट पुरुष ने मुझसे एक मर्तबा कहा था, "जवाहरलाल क्रांतिकारी नहीं, एक उच्च कोटि का लिबरल है, जो हर चीज के दोनों पहलुओं को मद्देनज़र रखकर निर्णय करता है और कभी-कभी दोनों पहलुओं को इतना तौलता है और मापता है कि स्पष्ट निर्णय में भी कठिनाई पाता है।" इन सब वर्णनों के बाद मुझे आश्चर्य नहीं हुआ जब गांधीजी ने अपनी मृत्यु के कुछ ही दिन पहले मुझसे एक बार कहा, "जवाहर विचारक है, सरदार कारक है।"

पंडितजी के भीतर जो मंथन और संघर्ष चलता रहता था, उसकी छाप हर बारीकी से अध्ययन करनेवाले पर पड़े बिना नहीं रहती थी। हर चीज के स्पष्ट निर्णय में जो एक विचारक को कठिनाई पड़ती है उसका आभास उसकी भावभंगी से मिलता है। पंडितजी हंसते थे तो भी एक तरह की उदासी उनके चेहरे पर से कभी नहीं हटती थी। दिलीप के बारे में कालिदास ने कहा है कि उसमें 'वृद्धत्वं जरसा विना' था। पंडितजी में 'वृद्धत्वं जरसा विना' और 'विना बाल्येन चापल्यं' दोनों थे। नम्रता थी तो आवेश भी था। उत्साह था तो थकान भी थी। दिल गरीब था तो तबीयत रईससाना भी थी। हठ था, पर समन्वय था। बहादुर थे तो लोकमत के सामने झुकते थे। कुशाग्रबुद्धि थे, पर उनमें सीधापन भी था। यह सब द्वंद्व इस तरह से भीतर संग्राम करते थे कि इसका प्रतिबिंब पंडितजी के चेहरे पर आ ही जाता था।

साधारण मान्यता है कि पंडितजी को धर्म में कोई श्रद्धा नहीं थी, न उन्हें ईश्वर मान्य था। कभी-कभी पंडितजी के सार्वजनिक उद्गारों में इस कथन का समर्थन भी होता था। पर इसमें भी मतभेद की काफी गुंजायश लगती है। धर्म क्या है और ईश्वर क्या है, इसकी सम्पूर्ण व्याख्या के बाद ही यह निर्णय हो सकता है कि पंडितजी के ईश्वर-संबंधी मन्तव्य क्या थे। पर गांधीजी इस कथन का भी विरोध करते थे। बहस में एक बार उन्होंने मुझसे कहा, "जवाहर नास्तिक नहीं है। जो मनुष्य कहता है, आजादी अवश्य मिलेगी, उसके इस कथन का आधार विज्ञान नहीं, श्रद्धा है। और श्रद्धा आस्तिकता का प्रदर्शन है, नास्तिकता का नहीं।" यह सही है। कुछ दिन पहले इलाहाबाद साइंस कांग्रेस में व्याख्यान देते समय पंडितजी ने कहा, "मैं पंतजी से सहमत नहीं हूं, जब वह कहते हैं कि कुदरत का कानून अस्थायी है। असल में तो कुदरत का कानून अटल और अजेय है। मनुष्य उसे समझने में और उसपर विजय पाने में अबतक निष्फल रहा है। जो कुछ हुआ करता है वह इतना ही मनुष्य कुदरत से सहयोग करके उसका उपयोग करता रहा है।" यह नास्तिकता नहीं, परले सिरे की आस्तिकता है।

साधन और साध्य में सामंजस्य को गांधीजी ने अपने प्रवचनों में काफी महत्व दिया है। अच्छे

ध्येय के लिए भी बुरे साधनों का प्रयोग त्याज्य है। इसपर गांधीजी ने जितना जोर दिया है, उतना हमारे प्राचीन लोगों ने शायद ही दिया हो।

राजनैतिक दांव-पेंच हर युग में चलते रहे और हमारे पूर्वज भी इन दांव-पेंचों से वंचित न थे। देव-दानवों के संघर्ष में देवों की गिरती आई तो वामन ने बलि को धोखा दिया। पहले भी विष्णु ने मोहिनी बनकर दैत्यों से अमृत चुराया। राम ने छिपकर बालि को मारा। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। भारत की भावी पर-राष्ट्रनीति इन दांव-पेंचों का तिरस्कार करेगी, ऐसा मानने की भी गुंजायश नहीं। पर गांधीजी इस पैंतरेबाजी से परे थे और उस नीति का जवाहरलालजी पर प्रभाव पड़ा था, ऐसा उनके उद्गारों से पता चलता है।

जवाहरलालजी एक महान् व्यक्ति थे। उनमें महत्ता थी, इसका विश्लेषण कष्ट-साध्य है। सोना या हीरा महज अपने बुनियादी तत्वों के कारण ही कीमती नहीं होता। कहते हैं, जो तत्व हीरे में हैं, वे कोयले में भी है। पर कोयला कोयला ही है और हीरा हीरा। पंडितजी में अभय था, न्याय-बुद्धि थी, कुशाग्रता थी, तेजस्विता थी, विद्वत्ता थी और ऊंचे दर्जे की साहित्यिक कला-कुशलता थी। पर उन्हें किस चीज ने बड़ा बनाया, यह बताना असंभव है। ●

वह इन्सान था

जवाहरलाल ने २७ मई को, दिन के २ बजे, सोते-सोते ही अपना जीर्ण वस्त्र उतारकर रख दिया। बिना किसी कष्ट के शान्तिपूर्वक देहोत्सर्ग था वह।

सारा ही विश्व स्तब्ध रह गया। भूमि भी डोल उठी, जैसे कुछ अचानक हुआ।

उस चोले के आगे ही जनता चीटियों की तरह सारी रात रेंगती रही, फूट-फूटकर रोई। उसने महसूस किया सबकुछ सूना-विहूना-सा।

विश्व-शान्ति के बढते कदम वहीं-के-वहीं ठिठक गये। राजनीति कांप उठी। उसे लगा कि उसकी लाज लुट गई।

वृद्धों ने लम्बी आयु को धिक्कारा, और सराहा भी कि शान्ति-घाट पर गीली आंखों से उन्होंने उस दिन वह कुछ देखा, जो अपूर्व था, और अद्‌भुत था, और जो उनको एक मूक सन्देश दे रहा था।

युवकों ने देखा, उनका हृदय-सिंहासन खाली पड़ा था। तो क्या उनका सम्राट् उनसे रूठकर चला गया? नहीं, वे भूल रहे थे। सिंहासन वह खाली नहीं था। सम्राट् की दी हुई सलाह और हिदायत उसपर वैसी ही आसीन थी। फिर भी वे अपने अन्दर की आवाज उस क्रन्दनं-कोलाहल में सुन नहीं पा रहे थे। युवकों की आंखें तो सदा साफ रहती हैं, आंसुओं में वे डूब नहीं जातीं।

और, विसूरती नारियों का रोना-बिलखना पत्थरों की छाती को फोड़ रहा था। उनकी आंखों का गंगाजल फूलों से लदे शव को बार-बार नहला रहा था। कोस रही थीं कि वे उनका 'लाल' कौन लुटेरा छीन ले गया उनकी मजबूत मुट्ठी में से!

नन्हें-नन्हें बच्चे हठ पकड़ रहे थे कि आज की बेरहम लपटों को वे उस कच्चे चबूतरे पर हर्गिज गुस्ताखी नहीं करने देंगे। वे सिसक रहे थे, पर उन्हें गोदी में उठाकर दुलारनेवाला न जाने क्यों उस दिन इस कदर निष्ठुर बन गया!

अन्दर के कोश में से चुन-चुनकर न जाने कितने अनूठे शब्दों में कई दिनों तक श्रद्धांजलियां चढ़ाई गईं, विश्व-शान्ति के उस दिव्य दूत को। कुछ-न-कुछ उसकी पवित्र याद में सभीने तो कहा। उस महामेले में आ जुटे थे उसका स्तुति-गान करनेवाले समीप के और बहुत दूर-दूर के सैकड़ों-हजारों प्रशंसक और पुजारी।

साधारण और विशिष्ट जनों में कोई भेद नहीं दिखा उस घड़ी, उस क्षण-लोक-नेता और राजनेता,

कवि और गायक, शिल्पी और कलाकार, किसान और मजदूर, आस्तिक और नास्तिक, सबों की वाणी से एक ही शब्द, एक ही स्वर, फूट रहा था—"वह इन्सान था ? सबका आदर और सबकी पूजा पाने का सच्चा हकदार।"

बहुतों ने मन-ही-मन अपनी भूलों को सुधार लिया—यह भ्रम था कि वह धर्म और ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानता था। नहीं, उनकी अपनी व्याख्याएं ही गलत थीं।

पता नहीं कि दुनिया की राजनीति ने भी अपनी भूल को सुधारा या नहीं। उसका स्वभाव शक्की और जिद्दी है न। लेकिन इतना तो साफ है कि राजनेताओं ने अपने अंतर में कुछ ऐसी खाली-खाली जगह महसूस की कि जिसने मजबूर कर दिया सोचने को, जो उन्होंने कभी सोचा नहीं था। उन सबोंने राजनीति का सस्ता-सा चश्मा चढ़ाकर ही देखा था, जबकि इस आदमी ने एक दूसरी ही दृष्टि पाई थी।

और, उसे सदा ही कृतज्ञ पाया अपने गुरु के प्रति कि उसे कितना अधिक मिला उससे, ताकि अशान्त विश्व को वह कुछ दे सके।

और, उसने जो दिया, दोनों हाथों जो बांटा, उसको दुनिया एक अनमोल खजाने के तौर पर सदा संजोकर रखेगी।

दिया यह, कि हर शक्ल और सूरत के अन्दर एक-सी ही न बुझनेवाली रोशनी मौजूद है, जो हमेशा प्यार करने की चीज है।

दिया, यह कि जिन्दगी को तभी निर्मल और सफल बनाया जा सकता है, जबकि उसमें से अविश्वास और बैर के जहर को निकालकर बाहर कर दिया जाय, और वह खाली जगह विश्वास और प्रेम-प्रीति की खुशबू से भर दी जाय।

यह भी दिया कि हर किसी आफत का, हर किसी तूफान का, सामना शान्ति और धीरज से, मगर दृढ़ता से किया जाय।

और, यह भी कि अपनी खुद की नाचीज हस्ती से देश बहुत बड़ा और बहुत ऊंचा है, और विश्व तो उससे भी कहीं बड़ा और बेहद ऊंचा है।

जिनको सदियों से जान-मानकर आगे नहीं बढ़ने दिया गया था, जिनका छूना भी पाप समझा जाता था और पशुओं के मानिन्द जो जंगलों और पहाड़ों पर मन-पहचाना जीवन बिताते थे, उनको खास तौर पर उसने प्यार किया, और उनका हौसला बढ़ाया।

चारों ओर से चिल्लाते थे कि वह चला गया, सबको छोड़कर चला गया, किन्तु वस्तुतः वह गया नहीं। छोटे-से मिट्टी के घट में से छूटकर विराट् विश्व में समा गया वह, और सदा के लिए अमर हो गया।

अनित्यता और अमरता दोनों की परिभाषा साफ-साफ सामने आ गई। उस अमर-ज्योति को बार-बार हमारा प्रणाम! ●

उनकी निर्भीकता

१९३० में जेल में मैंने लार्ड ब्राइस की जनतन्त्र पर एक पुस्तक पढ़ी थी। उसका नाम था शायद 'माडर्न डिमोक्रेसीज'। उसमें आदर्श जनतंत्री व्यक्ति का उत्तम नमूना पेश किया गया था। उसके लक्षण स्थितप्रज्ञ, गुणातीत या साधु या आदर्श मनुष्य के जैसे थे। उसे पढ़कर पहले तो मेरे सामने गांधीजी की मूर्ति खड़ी हुई। परंतु वह तो मुझे अहिंसा के अवतार अधिक दिखाई दिये। आधुनिक जनतंत्र के सिद्धांत में उन्होंने यह संशोधन भी पेश किया था कि सच्चे जनतंत्र का आधार अहिंसा ही हो सकती है। इस संशोधन के साथ ही वह जनतंत्री की पंक्ति में बैठेंगे। अत: उनके बाद जब मैं दूसरे जनतंत्री की खोज में निकला तो हमारे हँसमुख जवाहर सामने आये। गांधीजी की अहिंसा तो इन्हें मान्य थी, परन्तु वह मौजूदा हिंसा-अपेक्षित जनतंत्र के साथ भी अच्छी तरह चला सकते थे, बल्कि पूरी तरह फिट होते थे। बापू केवल सिद्धांत में ही नहीं, तफसील में बहुत आग्रह रखते थे। किन्तु जनतंत्र की मांग है––सिद्धान्त में आग्रह, तफसील में निराग्रह, बल्कि अपने मत के खिलाफ भी पूर्ण सहयोग। यह गुण आज के हिन्दुस्तान में जितना जवाहर पर घटता था, उतना और किसीपर नहीं। वह मन्त्रणा के समय कमेटी में अपने विचारों, सुझावों के लिए खूब लड़ते थे, लेकिन एक बार फैसला हो जाने के बाद, भले ही वह उनके खिलाफ हो, उसे पूरा करने के लिए वह जितना तन-मन-धन झोंक देते थे, उतना और कोई नहीं। इस गुण में वह सबसे आगे और सबसे ऊपर साफ तौर पर उठे हुए दिखाई देते थे। धारा-सभाओं में जाने और फिर मंत्रिमण्डल बनाने के वह घोर विरोधी थे, किन्तु कार्य-समिति के या कांग्रेस के प्रस्ताव पास करते ही वे उनकी पूर्ति में ऐसे जुट पड़े कि लोग दंग रह गये, बल्कि धारा-सभाओं की सफलता तो एकमात्र जवाहरलाल की ही ऋणी हो सकती है। सारा भारत इस सत्य को जानता है। अपने विचारों को इतना भूलकर दूसरे के विचारों और योजनाओं की पूर्ति में इतना लीन हो जाना मामूली साधना नहीं है, बल्कि एक प्रकार समर्पण की पराकाष्ठा है, जो ऊंचे दर्जे के योगियों और ब्रह्मज्ञानियों में ही पाई जाती है। इसी तरह एक ही क्षण में बड़े जोर से झल्लाकर दूसरे ही क्षण में हँस पड़ना भी ऐसी ही विकट साधना है। जब मैंने 'मेरी कहानी' का हिन्दी अनुवाद किया था, तो सारी किताब खतम कर चुकने पर मैंने बापू को लिखा था कि जवाहरलालजी तो मुझे आपके सच्चे कद्रदां मालूम होते हैं। आपके उन कई अनुयायियों से सत्य और अहिंसा के ज्यादा भक्त दिखाई देते हैं, जो सत्य और अहिंसा की बहुत दुहाई दिया करते हैं, पर इनकी तारीफ यह है कि ये कभी भूले-भटके ही सत्य और अहिंसा का नाम लेते हैं, किन्तु आचरण में

उनके पालन का बड़ा ध्यान रखते मालूम होते हैं। बापू ने मेरे इस विचार का समर्थन किया था। बापू ने उन्हें भले ही अपना राजनैतिक उत्तराधिकारी ही घोषित किया हो, परन्तु उनके इस चुनाव में पूर्वोक्त सत्य ने भी अवश्य अपना काम किया है।

जवाहरलालजी राजनीतिज्ञ भी ऊंचे दर्जे के थे। चुपचाप अद्‌भुत संगठन करने में जो कमाल हमारे सरदार को हासिल था, उससे जवाहरलाल वंचित थे, किन्तु राजनैतिक सूझबूझ, विश्व-हृदयता, बौद्धिक और चारित्रिक ऊचाई, पारदर्शक सचाई, शुद्ध-हृदयता, व्यापक और जनताई दृष्टिविन्दु, छल-कपट और षड़यन्त्रों से परे रहने की उनकी वृत्ति, जनता के हृदय पर अधिकार कर लेने की शक्ति, सुरुचि, सुसंस्कृति आदि अनेक हृदय, बुद्धि और आत्मा के गुणों के कारण वह अकेले भारत के ही नहीं, सारे संसार के छत्र और मुकुटमणि होने के योग्य थे। इन सब गुणों में उनसे बढ़कर संसार में आज कोई व्यक्ति नहीं है। दुनिया के राजनीतिज्ञ भी आज इस बात को मानने लगे हैं।

मेरा पहला परिचय भारत के जवाहर से कब हुआ, यह याद नहीं पड़ता। पुरानी-से-पुरानी याद है कि वह सन् १९२३ में शायद साबरमती-आश्रम के विद्यार्थियों के साथ कुछ खेल-कूद कर रहे थे। मैं भी इत्तिफ़ाक से पहुंच गया था। मेरी किसी बात पर खुश होकर वह मुझसे लिपट पड़े थे। यह उनके मुक्त हृदय और खुले व्यवहार का प्रत्यक्ष और पहला अनुभव मुझे था। बच्चों और साथियों में घुल-मिल कर वह एक-जीव हो जाते थे। आत्म-विकास की यह पहली मंजिल है।

दूसरा स्मरण मुझे होता है एक रेल-यात्रा का, जिसमें अहमदाबाद से अजमेर तक उनका मेरा साथ हो गया था। उस समय मैं अजमेर प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का प्रधान मंत्री था और कांग्रेस-संबंधी प्रश्नों की ही चर्चा करनी थी। किन्तु और भी बहुत-सी बातें चल पड़ीं। वह कांग्रेस के अध्यक्ष थे। मगर मुझे यह बिलकुल नहीं प्रतीत होता था कि कोई बड़ा आदमी बहुत मामूली आदमी से बातचीत कर रहा है। समान और खुला व्यवहार उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गया था। आबू स्टेशन पर तो उनकी सादगी एवं सरलता की हद हो गई। मैं तो बातों और विचारों में ही डूबा हुआ था कि स्टेशन आ गया। वह तुरन्त दरवाजा खोलकर प्लेटफार्म पर उतर गये और हम दोनों के लिए मिठाई-पूरी ले आये। मैं बड़ा शर्मिन्दा हुआ। मैंने कहा, "यह आपने क्या किया?" उन्होंने मुस्कराते हुए जवाब दिया, "क्या मैं खरीदना नहीं जानता?"

उनकी झुंझलाहट और नाराज़गी के भी कुछ नमूने लीजिये। धारा-सभा के चुनाव के पहले कांग्रेस सदर की हैसियत से वह अजमेर आये। स्थानीय म्युनिसिपैलिटी ने उन्हें मानपत्र देने का आयोजन किया था। भीड़ का क्या पूछना! पंडितजी हॉल में घुस गये और मैं पीछे रह गया। वह झट धक्का-मुक्की करके पीछे लौटे, एक वालंटियर या दर्शक को चांटा रसीद किया और मुझे हाथ पकड़कर अन्दर ले गये। थोड़ी देर बाद भीड़ कांच तोड़कर हॉल में दाखिल होने लगी। बस, जवाहर ने हनुमान का रूप धारण कर लिया, जैसा कि वह ऐसे मौकों पर अक्सर कर लिया करते थे। हॉल में चारों तरफ कूद-फांदकर भीड़ को रोकने में जुट पड़े।

इसी यात्रा में मुझपर खीज पड़े। ब्यावर के नागरिकों ने बड़े उत्साह से पंडितजी के स्वागत के

लिए शहर को सजाया। वे उत्सुक थे कि शहर की सड़कों पर पंडितजी का जुलूस निकाला जाय। रात के कोई ११ बजे होंगे। मेरे द्वारा उन्होंने वह प्रस्ताव उनके सामने रखवाया। पंडितजी वैसे जुलूस और भीड़-भाड़ के बड़े शौकीन थे, किन्तु उस दिन एकाएक उबल पड़े—"जुलूस नहीं निकलेगा, वरना मैं ब्यावर का प्रोग्राम रद्द कर दूंगा।" और न जाने क्या-क्या कह गये। ऐसी डांट सुनने का मेरा वह पहला ही मौका था। मुझे इतना बुरा लगा कि यदि वह पंडितजी न होते या मैं उनके स्वभाव से वाकिफ न होता तो मैं कभी फिर उनसे बात न करता। जुलूस स्थगित कर दिया गया। लेकिन जब रात को उन्होंने ब्यावर की सजावट और शोभा देखी तो शायद मन में पछताये। फिर तो भरी सभा में उसकी प्रशंसा की और जुलूस के अपने विरोध की अपने ढंग से माजरत भी की।

जवाहर के 'बन्दरपन' का एक किस्सा उनके पिता के ही मुंह से सुनिये। पूना अस्पताल में महात्माजी का आपरेशन हुआ था। स्व० पंडित मोतीलालजी उनसे मिलने गये। उस समय मैं बापू पर पंखा झल रहा था। और बातों के साथ अपने लाड़ले बेटे की करतूतों का बयान वह महात्माजी से करने लगे, "मैं जानता हूं, राजनैतिक विषयों पर तो आप राय नहीं देंगे। परन्तु जवाहर से एक-दो बातें तो आपको कहनी ही होंगी।" बापू ने कहा, "हां, इसमें आपको पूरा संतोष दूंगा।" पंडितजी कहने लगे, "एक तो यह कि वह हमारा कहना मानता नहीं। चना-चबैना खा लेता है, भरी गर्मी में भी थर्ड क्लास में सफर करता है। यह हमसे कैसे देखा और सहा जा सकता है? आपका कहना मानता है तो आप उससे जरूर कहें। त्याग और कष्ट को मैं भी पसन्द करता हूं, पर यह जहालत है। इससे मुझे काफी दुःख होता है। दूसरे, उसके बन्दरपन की एक हरकत सुनिये। आपने सुनी भी होगी। माघ मेले पर संगम के किनारे इन्तजाम के लिए पुलिस ने बल्लियों से रोक लगा रखी थी। मालवीयजी ने इसका विरोध करने को सत्याग्रह की आवाज उठाई। बस, जवाहर भी वहां जा पहुंचा और बन्दर की तरह उछल कर बल्लियों के पार संगम में कूद पड़ा। तबसे मैं इन्दू से कहने लगा, "तेरा बाप तो बन्दर है।" इस तरह वह आव देखता है न ताव, बन्दरपन कर बैठता है। इन दो बातों के लिए आप उससे जरूर कहिये।" बापू ने बहुत विश्वास के साथ उस वत्सल पिता को आश्वासन देकर विदा किया।

शायद गोरखपुर की एक सभा का भी जिक्र पंडितजी ने बापू से किया था, जिसमें जवाहर ने अपना अद्भुत जौहर दिखाया था। जन-हृदय पर वह कितना अधिकार कर लेते हैं, यह पंडितजी उन्हें बता रहे थे। बेटे के प्रभाव का वर्णन करते-करते पंडितजी कभी गद्गद् भी हो जाते थे। उस सभा में पहले तो जवाहरलाल ने लोगों को ब्रिटिश सरकार के खिलाफ उभारा और यदि हथियार हों तो उनसे लड़कर भी इस सरकार को उखाड़ फेंकने के पक्ष में हाथ उठवा लिया, फिर तलवार और हथियार के अभाव तथा गांधीजी की अहिंसात्मक नीति का महत्व समझाकर पहले मत के विरुद्ध इस राय पर सबके हाथ उठवा लिये कि यदि तलवार हो तब भी हम उसे फेंककर निहत्थे सत्याग्रह करके स्वराज्य पाना पसन्द करेंगे। बापू भी जवाहर की इस शक्ति पर मुग्ध हुए। ●

प्रेरणा के स्रोत

हिंदुस्तान में करीव ९ करोड़ जनता ७८४ राजाओं की दुहरी गुलामी में उलझी हुई थी । राजाओं के अत्याचार तथा उनकी स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध आवाज उठानेवाले कई साहसी वीरों की लाशें किसी-न-किसी जंगल में नदियों के दर्रों में सड़ गईं। कई वीरों की कहानियां मैंने सुनी हैं। मुझे अच्छी तरह याद है कि एक सामन्त के खिलाफ आवाज उठानेवाले दो व्यक्तियों के मुंह पर टट्टियों का तोवरा बांधा गया। हजारों परिवारों ने रातों-रात सदियों से वसे हुए निवास-स्थानों को छोड़कर हिजरत की। सैकड़ों की चल-अचल सम्पत्तियां जब्त हुईं। लोग जेलों में सड़ाये गये, वहुतों को जहर दिया गया। राजस्थान में तो हम कुछ आदमियों को नंगा करके पीटा गया। इन सवके लिए अंग्रेजी भारत की गुलामी में जन्मा हुआ कोई बोलनेवाला महापुरुष था तो वह जवाहरलाल नेहरू था।

सवसे पहले वैरिस्टर चुड़गर, मणिलाल कोठारी, सेठ अमृतलाल, वैरिस्टर अभ्यंकर, विजयसिंह पथिक, अर्जुनलाल सेठी, केसरीसिंह वारहट, देवसुमन, सागरमल गोपा, जयनारायण व्यास, रूपाजी कृपाजी धाकड़, लक्माजी भील, जिनकी कुरवानी के वारे में मेरे जीवन की स्मृतियों में ताजगी है। और आज भी श्री वलवन्तराय मेहता, शोभालाल गुप्त, रामनारायण चौधरी, अचलेश्वर प्रसाद शर्मा, लादूराम जोशी, आदि गांधीजी के सन् '२१ के सत्याग्रह के पूर्व के सामंतों से जूझनेवाले वहादुर मौजूद हैं। तत्कालीन देशी राज्यों की जनता को नेतृत्व देनेवाले युग-पुरुष श्री नेहरू 'देशी राज्य लोक परिपद' का नेतृत्व स्वीकार कर उसके अध्यक्ष वने। 'देशी राज्य लोक परिषद्' का सालाना जलसा ब्रिटिश भारत में होता था। देशी रियायतों में सन् १९४२ तक कभी एक भी जगह नहीं हुआ।

सन् १९४५ के मध्य में जब नेहरूजी अजमेर आये, मैंने उनसे अपील की कि ब्रिटिश सीमा में 'देशी राज्य लोक परिषद' के सालाना जलसे होना, देशी राज्यों की जनता के लिए शर्म की बात है। आपको यह जलसा देशी राज्यों की किसी रियासत में करना चाहिए, और मैंने पहला निमन्त्रण उदयपुर, तत्कालीन उदयपुर रियासत के मेवाड़ प्रजा मंडल की ओर से दिया।

पंडितजी १९४५ की ३०–३१ दिसम्वर और १९४६ की पहली जनवरी, ३ दिन उदयपुर में रहे। यह पहला मौका था जवकि उन्होंने रियासती जनता में साहस पैदा किया।

सन् १९४८ के अप्रैल के प्रथम सप्ताह में तत्कालीन वायसराय लार्ड माउण्टवेटन उदयपुर रियासत के महाराणा के मेहमान हुए और महाराणा के सामने माउण्टवेटन ने अपनी सम्मति जाहिर की कि १५००

वर्ष के इस राज्य को खतम करके, राजस्थान में विलय करके कांग्रेस सरकार भयंकर गलती कर रही है। स्वर्गीय महाराणा भूपालसिंहजी के सामन्तों को मेवाड़ को अलग रखने का बल मिल गया। तीन दिन की दौड़-धूप में सरदार पटेल से मैं यह आश्वासन लेकर आया कि अगर मेवाड़ की सरकार पर वहां की जनता कब्जा कर ले तो भारत सरकार की फौज महाराणा की मदद के लिए नहीं भेजी जायगी।

तत्कालीन मेवाड़ के प्रधान मन्त्री राममूर्ति और मन्त्री राव मनोहरसिंह ने स्पेशल हवाई जहाज द्वारा दिल्ली और उदयपुर के बीच काफी दौड़-धूप की। सरदार पटेल तो अस्वस्थ थे। १८ अप्रैल को जवाहरलालजी के ग्यारह रियासतों के राजस्थान का उद्घाटन करने के पहले महाराणा आग्रह कर रहे थे कि मेरा एक सामन्त मन्त्री लिया जाय। और मैं अड़ा हुआ था कि मेरे मन्त्रिमण्डल में सामन्त को मिलाकर शुद्ध जनतांत्रिक मन्त्रिमण्डल को खिचड़ी मंत्रिमण्डल न बनाया जाय। अन्त में दिल्ली पहुंचने के बाद नेहरूजी ने मुझे अपनी इच्छानुसार मंत्रिमण्डल बनाने की आजादी दी। यहां यह भी स्मरण रहे कि ११ अप्रैल को जवाहरलालजी ने एक पत्र सरदार के नाम लिखा था कि आबू को गुजरात में मिलाने की जल्दी न की जाय।

इसके बाद जब भी मैंने नेहरूजी को राजस्थान का निमंत्रण दिया वह, गाड़िया लोहार सम्मेलन चित्तौड़गढ़, भारत सेवक समाज सम्मेलन भीलवाड़ा, भील सम्मेलन आबू, आये। भीड़ में पड़ने की उनकी आदत थी, और यह एक प्रकार का उनका नखरा भी था।

मुझे अच्छी तरह याद है कि देशी राज्य लोक परिषद के अधिवेशन में जब वह तीन दिन उदयपुर रहे, मेरी सुपुत्री सुशीला की शादी में वह सम्मिलित हुए। मुझे देशी राज्य परिषद तथा उनके कार्यक्रम से फुर्सत नहीं थी। जयनारायण व्यास और उनकी पत्नी तो लड़की के मां-बाप के रूप में शादी करने बैठे व ब्राह्मण रस्म के अनुसार नेहरूजी चुपचाप तिलक लगवाने, लच्छा बांधने व देवताओं की पूजा करने में बैठे रहे।

सरदार पटेल के स्वर्गवास होने के बाद राज्य पुनर्गठन आयोग की शर्तों के अनुसार आबू को जोड़ने के लिए जब मैं पंडितजी के पास आग्रह करने गया तो जहाजरानी मंत्री श्री राजबहादुरजी भी साथ थे। पंडितजी ने अचानक मुझसे पूछ लिया कि तुम यह बताओ कि टंडनजी और कृपालानीजी के अखिल भारतीय कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव में राजस्थानियों ने किसका साथ दिया? कृपालानीजी के पक्ष में नेहरूजी थे, टंडनजी के पक्ष में सरदार। मैंने तत्काल उत्तर दिया कि हमने सरदार पटेल का साथ दिया।

मैंने कहा, "सरदार पटेल जैसे लौह-पुरुष की नाराजगी के सामने जब हमपर मार पड़ रही थी, आपसे हमको कोई राहत नहीं मिली तो हमने आत्म-समर्पण कर दिया।" मेरे पास बैठे राजबहादुरजी के चेहरे पर झेंप थी, मगर उस उदार महामना नेहरू के चेहरे पर नाराज़गी का कोई चिह्न नहीं था। उन्होंने कमीशन की शर्तों में आबू को शामिल कर ही दिया। उन्हींकी उदारता से आज आबू का गुरु-शिखर राजस्थान का मस्तक ऊंचा किये हुए है।

पिछले तीन सालों में हमारी पार्टी के बीच, उप-नेता के चुनाव का प्रश्न उलझा हुआ था। नेहरूजी ने इस चुनाव में अपनी तटस्थता जाहिर कर दी थी, पार्टी के कुछ मित्रों ने मुझे हुक्म दिया कि नेहरूजी से मिलो।

मैं श्री विभूति मिश्रा के साथ नेहरूजी से मिला। मैंने उनसे कहा कि क्या आपने पार्टी में यह घोषणा की है कि उप-नेता के चुनाव में मैं तटस्थ रहूंगा? उत्तर मिला, "जी हां।"

मैंने कहा, "यह कोरिया या वियतनाम नहीं है कि जहां की लड़ाई में आप तटस्थ रहें। यदि उप-नेता का आप फैसला न कर सके तो हिंदुस्तान में पार्टी का प्रभाव कम होने का खतरा है। आपको तटस्थता का त्याग कर दिलचस्पी लेनी चाहिए।"

नेहरूजी बोले, "तो फिर किसी मिनिस्टर में से उप-नेता मत चुनो।" परिणाम-स्वरूप डा० महताव उप-नेता चुने गये।

सिद्धान्त पर उनकी दृढ़ता का असर मुझपर तब पड़ा, जब उन्होंने मुझे व श्री जयनारायण व्यास को सन् १९५२ के चुनाव के बाद बुलाकर कहा, "तुम्हारे इस चुनाव में कांग्रेस के पक्ष में अमुक अफसर ने प्रचार किया है। इसलिए उस अफसर की जांच करके तुरंत हटा दो। हम अगर सत्ता पर बैठी हुई पार्टी के लोग विरोधी पार्टी को अपने विरोध में नहीं आने देते और चुनाव में हटाने के षड़यंत्र में पड़ेंगे तो यहां जनतंत्र नहीं पनपेगा।"

ऊपर के वाक्य मुझे इसलिए उपयुक्त लगे कि वह हिंदुस्तान में सच्चा जनतंत्र देखने के स्वप्न-द्रष्टा थे।

उन्होंने हमें घर में भी यह सलाह कभी न दी कि सिद्धांत से सौदा कर कांग्रेस की इज्जत के लिए गुनहगार को बचा लो। मुझे पुराने कांग्रेसी के नाते उनका प्रेम याद आता है कि कांग्रेस पार्लमेंटरी पार्टी में राजस्थान के किसी उम्मीदवार के चयन का सवाल था। ढेवरभाई उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष थे। ढेवरभाई ने मुझसे कहा कि तुम पार्लमेंटरी बोर्ड में जाओ। मैंने इन्कार कर दिया। उन्होंने फिर कहा, "जवाहरलालजी बुलावें तब?" मैंने कहा, "नहीं।"

शाम को चाय-पार्टी के समय अचानक नेहरूजी मिले, गर्दन पर हाथ रखकर बोले, "ऐंठ रहे हो?" इस देश में रूठे हुए पुराने सेवकों को मनानेवाला नेता और एक शब्द में 'अकड़न को सीधा करनेवाला नेता' नेहरू पुनः शायद ही आवे।

बिजोलिया किसान सत्याग्रह में अजमेर की सभा में (सन् १९४५ में) उन्होंने अंग्रेज व मेवाड़ के राणा को ललकारा कि यदि नीलाम की हुई ३५ हजार बीघा जमीन तुमने बुद्धिमानी से किसानों को वापस न लौटाई तो वह दिन दूर नहीं है जब तुम्हें नीचा देखना होगा। किसानों को जमीन तो वापस आवेगी ही।

श्री जयनारायण व्यास को कांग्रेस से छः वर्ष के लिए निकालने का फैसला भारतीय कांग्रेस कमेटी कर चुकी थी। मैंने विरोधस्वरूप दूसरे दिन लोक-सभा की सदस्यता से त्याग-पत्र भेज दिया। वहां हमारा पुराना साथी नेहरू था। उसने वर्किंग कमेटी के निर्णय पर अमल न होने दिया और व्यासजी को एक दिन के लिए भी बाहर न निकाला। यही वजह है कि आजादी के हमारे योद्धा व्यास ने कांग्रेस की गोद में ही अन्तिम सांस ली।

सन् १९२८ में बिजोलिया के किसानों ने सत्याग्रह का बिगुल बजाया तबसे लगाकर जीवन की अंतिम घड़ियों तक हम नेहरू की छाया में पले और उनके आशीर्वाद ने हमारा हौसला बढ़ाया।

६ मई, १९५६ के पत्र में उन्होंने लिखा था :

"बहुत दिन हुए आपने अपनेको देश के काम में लगा दिया और एक माने में देशपर छोड़ दिया। अब आपको किसीको देना क्या रहा ?

"राजस्थान में आपको बड़े काम करने हैं। उस काम को तो आप छोड़ नहीं सकते हैं। कोई कठिनाई आपको हो, काम के बारे में व अपने बारे में, तो जरूर मुझसे आकर कहिये, हम सलाह-मशविरा करेंगे।"

उनके द्वारा लिखे अपने नाम के इस पत्र की पंक्तियां हमेशा ताजगी देती रहेंगी और राजस्थान में राजशाही व सामंती अत्याचारों से पीड़ित गरीब जनता के उत्थान में प्रेरणा देती रहेंगी।

नवम्बर, १९६२ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के हुक्म से उसके सिपाही के नाते, भारत-पाकिस्तान-सीमा जहां राजस्थान को छूती है, वहांपर बराबर जनता की सेवा कर रहा हूं। नेहरूजी को वहां की सारी रिपोर्ट देता रहता था। उनके स्वर्गवास के पांच दिन पूर्व उनके निजी सचिव ने मुझे एक पत्र में लिखा कि प्रधान मंत्री की इच्छा है कि तुम्हारी रिपोर्ट प्रत्येक मास उनको मिलती रहे। मुझे क्या पता था कि मुझसे रिपोर्ट मांगनेवाला महापुरुष पांच दिन बाद ही चला जायगा।

२७ मई, १९६४ को मेरे आंसुओं की झड़ी लगी रही। अपने पिता-माता व इकलौते पुत्र की मृत्यु पर मैं नहीं रोया था। पर देश के इस बड़े बाप ने मेरे हृदय को हिला दिया। ●

हमारे नामने बड़े-बड़े सवाल हैं। हमारा काम तबतक खत्म नहीं हो सकता जबतक कि हम उनका जवाब न दे लें। हमारा उद्देश्य भारत के करोड़ों मनुष्यों को सुखी और उद्देश्यमय जीवन की ओर अग्रसर करना है।

—जवाहरलाल नेहरू

देवकल्प पंडितजी

प्राचीन परिभाषा में देवता उसे कहते हैं, जो अमर हो, अर्थात् प्राणात्मक स्फूर्ति का केन्द्र हो, जो सत्यात्मक प्रेरणा से युक्त हो और प्रकाश को अपना लक्ष्य वनाकर कार्य में प्रवृत्त हो। अमृत, सत्य, ज्योति, इन तीन तत्त्वों से देवता का स्वरूप वनता है। जवाहरलालजी सदा अपने को मानव कहते रहे। वस्तुतः थे भी वह मानव ही, किन्तु वह ऐसे महामानव थे, जिनका व्यक्तित्व ऊपर के तीन दिव्य तत्त्वों से वना था। उनके प्राणवंत कर्मो का लेखा-जोखा लिया जाय तो एक शत-सहस्री संहिता ही वन जायगी। वह कितने कर्म-परायण थे, उन्होंने कितना सोचा और कितना किया, इसकी कथा अद्भुत है। किसी दिन कोई कुशल-जीवन-चरित-लेखक इसका व्यौरा प्रस्तुत करेगा। उनके जीवन में बुद्धि का सत्व सवसे प्रवल था। वह जिसे न्याय समझते थे, उसपर आरूढ़ रहते थे। सत्य और न्याय के कारण ही देश-विदेश के मंचों पर उनका पद ऊंचा उठा और उसके साथ ही उन्होंने भारत राष्ट्र के पद को भी ऊंचा उठाया। वह सदा बुद्धि के आलोक से कार्य करते थे। वह बुद्धिवादी मानव थे और उनकी यही इच्छा थी कि उनके देशवासी बुद्धिजीवी वनें और पुराने अन्ध-विश्वासों से छुटकारा पावें। वह अर्वाचीन विज्ञान के उपासक थे। विज्ञान के आदर्शो को अपने लिए और दूसरों के लिए भी अनुकरणीय मानते थे। विज्ञान सचमुच ही बुद्धिवादी मानव की सवसे वड़ी शक्ति है। जो राष्ट्र विज्ञान को मानता है, वह बुद्धि के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग करता है।

बुद्धि का ही पर्याय प्रज्ञा है। प्रज्ञा को प्राचीन प्राकृत भाषा में पञ्ञा, पण्णा एवं पण्डा भी कहते थे, जिसमें पण्डा हो, वही पण्डित कहा जाता था। सीधे शब्दों में प्रज्ञावादी या बुद्धिवादी मानव के लिए प्राचीन भारत में पण्डित शब्द का प्रचलन हुआ। दैवयोग से नेहरूजी के लिए यह विशेषण सर्वत्र प्रचलित हो गया। वह सचमुच प्रज्ञावादी मानव थे। देश के लिए अनेक उत्थान-कार्यो का सूत्रपात करके उन्होंने अपने बुद्धिवल का परिचय दिया। विलक्षण बुद्धिवल से उन्होंने ज्ञान-विज्ञान् की सैकड़ों योजनाओं को सोचा और उनके संवंध में कार्यारम्भ कराया। वैज्ञानिक प्रयोगात्मक कार्य करनेवाली वे संस्थाएं और शोधमन्दिर आज उनकी अमर कीर्त्ति के अमर स्तम्भ हैं। उनका पूरा फल भविष्य में प्रकट होगा। उनमें कार्य करनेवाले वैज्ञानिकों का कर्तव्य है कि मन के उत्साह और बुद्धि के वल से उन प्रयोगशालाओं को तेजस्वी वनावें। कोई एक व्यक्ति कितना ही वड़ा हो, राष्ट्र का समस्त भार अपने कन्धों पर नहीं उठा सकता, किन्तु वह दृढ़ता से मार्ग-दर्शन कर सकता है। वह कर्म-शक्ति की धारा उन्मुक्त कर सकता है। वह प्रजातंत्र के मार्ग से जनता में प्रेरणा भर सकता है, और यही पंडितजी जन्मभर करते रहे। अनेक लोग ऐसे भी थे, जो उनके कार्य

के वेग से संतुष्ट नहीं थे, किन्तु यह स्मरणीय है कि वह जिस प्रकार के वैधानिक धरातल पर स्थित थे, उसमें अपने सहयोगियों को, जनता को साथ लेकर चलना आवश्यक था, यहां तक कि विरोधियों के लिए भी उनके मन में स्थान था।

वह जन्म से संभ्रान्त कुल में प्रतिपालित हुए थे और अंत तक उनका यही स्वभाव रहा। उनका यह गुण अत्यन्त प्रबल था। जो हो, वह अपनी शालीनता से विचलित नहीं किये जा सकते थे। वह क्षमाशील थे। दोषों के प्रति उग्र दृष्टिकोण उनके लिए कठिन था। राजनैतिक शासक में कुछ लोग इसे गुण नहीं मानते। इसे मृत्यु-दण्ड समझकर लोग उसका पराभव करते हैं और अनुचित लाभ उठाते हैं, अतएव राष्ट्रनायक को युक्तदण्ड होना चाहिए, ऐसी प्राचीन नीति है। इस विषय पर पंडितजी संभवतः जन्मभर प्रयोगशील ही बने रहे और अंत तक वह अपने क्षमाशील गुण को छोड़ नहीं सके। जो एक बार उनसे परिचित हो गया, उसके लिए उनके उदार प्रांगण में स्थान बना रहा और उनकी सदाशयता पर भरोसा करता रहा।

पंडितजी को प्राचीन परिभाषा में भौम ब्रह्म की संज्ञा दी जा सकती है। यह विशेषण राजा पृथु के लिए किसी समय प्रयुक्त किया गया था, जब उन्होंने अपने राज्याभिषेक के समय की शपथ को पूरा करते हुए भारतभूमि के साथ अपने-आपको एक कर दिया था। राष्ट्र ही सच्चा ब्रह्म है और भूमि के तथा जनता के रूप में वह प्रत्यक्ष होता है। इस प्रत्यक्ष ब्रह्म की जो उपासना करता है, वही उच्च अर्थों में भौम ब्रह्म है। पंडितजी ने अपने प्राणों की अपरिमित शक्ति से भारत-राष्ट्र के भौम ब्रह्म की आराधना की। कोई कुछ भी कहे, वह इस बिन्दु से विचलित नहीं हुए।

पंडितजी का गुणगान करना सरल है, किन्तु ऐसा विशिष्ट मानव पुनः प्राप्त करना दुर्लभ है। उन्होंने अपनी विलक्षण वाक्शक्ति से अनेक देशों का कल्याण किया। विदेशों में जहां-जहां अत्याचार और उत्पीड़न था, उसके विरोध में उन्होंने अपनी शक्ति का प्रयोग किया। वह शक्ति, हिंसा, बल के रूप में नहीं, किन्तु अहिंसात्मक वाणी के रूप में थी। इस नवीन युग में अहिंसा का ऐसा सटीक प्रयोग गांधीजी के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति में नहीं देखा गया। उनकी वाक्शक्ति अद्भुत थी और यह कहना असत्य न होगा कि एशिया और अफ्रीका के अनेक नेताओं को उन्होंने अपनी वाणी का योग देकर मुखरित किया और बल-संपन्न बनाया। हिन्देशिया की स्वतन्त्रता का बहुत-कुछ श्रेय उनकी तेजस्वी वाणी को ही था, जिसके द्वारा ऐसा स्वर ऊंचा किया गया कि अन्याय की सभा त्रस्त हो गई और उस देश को स्वतंत्रता प्राप्त हो गई। अफ्रीका में, मिस्र के ऊपर जब संकट आया तब भी पंडितजी ने अन्याय के विरुद्ध अपना स्वर ऊंचा किया। अमेरीका के हब्शी जब कष्ट में पड़े, पंडितजी ने उनके पक्ष में अपनी वाक्शक्ति का भरपूर प्रयोग किया। उनके लिए यह पर्याप्त था कि वह अपने सत्य और न्याय के पक्ष का समर्थन करें। उनके कथन का क्या परिणाम होगा, यह जानते हुए भी वह खरी बात कहने में झिझकते न थे इस प्रकार वह वर्तमान विश्व के बहुत बड़े मार्गदर्शक थे। स्वार्थों के संघर्ष में राजनीति की उलझनें बढ़ जाती हैं और राष्ट्रनेता सत्य को नहीं स्वीकार कर पाते। यही कारण हुआ कि अनेक बड़े और छोटे देश पंडितजी के नेतृत्व को सर्जनात्मक स्वीकार न करते थे, किन्तु जैसा उनकी मृत्यु के उपरान्त सब देशों की राजधानियों में प्रकट किये

शोकों से सूचित होता है, वह सर्वप्रिय थे। यदि कुछ विरोधी राष्ट्रों के नेता भी उनके पथ-प्रदर्शन से लाभ उठाते तो विश्व की राजनीति की बहुत-सी ग्रंथियां सुलझ जातीं। किन्तु संसार गुण और दोषों से मिलकर बना है। यहां तम और प्रकाश का तानाबाना बुना हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में और प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक यही नियम कार्य करता है। पंडितजी भारतीय राजनीति मंच पर आये और लगभग पचास वर्षों तक अपना कार्य करके चले गये। मानव के लिए उनका यही संदेश है कि बुद्धिवाद सत्य, न्याय, पारस्परिक सहानुभूति और संप्रीति से कार्य करना चाहिए। ऐसा ज्ञात होता है, मानो वह प्रियदर्शी अशोक के नवावतार हों, जिसने यह संदेश दिया था, "समवाय एव साधु', अर्थात् मेलजोल का मार्ग ही ठीक है।

मृत्यु का अनुशासन सबके ऊपर है। जन्म-मरण के चक्र में आवागमन अनिवार्य है। पंडितजी का जीवन भी इसी नियम के अधीन था, किन्तु वह अपने पीछे विचार और कर्म की ऐसी पगडंडी छोड़ गये है, जो मानव का सदा आह्वान करती रहेगी। उनका जीवन महान् प्रश्न-चिह्न के रूप में हमारे सामने है। वह अर्वाचीन वैज्ञानिक मानव के लिए एक चुनौती है। क्यों नहीं हम सब मिलकर रह सकते? क्यों नहीं हम सब एक-दूसरे के कष्ट-निवारण में भाग ले सकते? क्यों नहीं हम हृदय की सात्त्विक और सीधी-सादी वृत्ति से एक-दूसरे के साथ व्यवहार कर सकते? क्यों नहीं सब राष्ट्र सह-अस्तित्त्व के सिद्धांत को अपना सकते? क्यों नहीं हम विश्व में सत्य, धर्म और न्याय का राज्य स्थापित कर सकते? विज्ञान के युग में मानव की अनेक उपलब्धियों का सच्चा सुख हम क्यों नहीं उठा पाते? ये प्रश्न मानो पंडितजी के कण्ठ से आज भी प्रकट हो रहे हैं। पंडितजी नहीं रहे, यह कोई शोक की बात नहीं, शोक तो मानव की विफलता का है। बहुत-से राजनीतिज्ञ विश्व-मंच पर आ रहे हैं और भविष्य में आयंगे, किन्तु महताकण्ठेन इन प्रश्नों को दोहराने वाला कौन है? पंडितजी के निधन से यही क्षति विश्व-मानव की हुई है। मानव के मेरुदण्ड को ऊंचा करना सरल नहीं है। विश्व के नाना देशों का मानव उत्पीड़ित और संत्रस्त है। वह पृथ्वी के साथ मिलकर रेंग रहा है। उसके लिए आशा के दो नये शब्द कहनेवाले कितने नेता हैं? एशिया, अफ्रीका और अमरीका के मनुष्य को दिलासा के दो शब्द चाहिए और उसे अमृत के दो घूंट पिलानेवाले नेताओं की आवश्यकता है। ऐसे नेता चाहिए, जो अपने राष्ट्र की सीमा से ऊपर उठकर सब सुख और कल्याण की बात सोचें। यदि इस प्रकार के विचार विश्वमानव को प्राप्त नहीं हुए तो हिंसा का दैत्य उसे चट कर डालेगा। पंडितजी ईश्वर की सत्ता को मानते थे या नहीं, यह सन्दिग्ध प्रश्न है, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि वह सत्य और न्याय के अखण्ड पुजारी थे। वैज्ञानिक बुद्धिवाद उनके जीवन का मूलमंत्र था और इसीके द्वारा वह विश्व-मानव की समस्याओं का समाधान करना चाहते थे। ●

बहुमुखी मेधा के स्वामी

जवाहरलाल नेहरू के निधन का समाचार मैंने गहन शोक के साथ सुना, जो समस्त सोवियत-जन की भी भावना है। उनकी मृत्यु में भारत ने एक ईमानदार और साहसी व्यक्ति को खो दिया है, जिसने लम्बे अर्से तक उसकी स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया था और बरसों जेल में बिताये थे—एक ऐसा व्यक्ति, जिसकी हर भारतीय इज्जत करता था, वे लोग भी, जो उनके विचारों तथा रायों से सहमत नहीं थे। उनमें सोवियत-जन ने एक ऐसे व्यक्ति को खो दिया है, जो उनके देश को प्यार करता था। दुनिया ने एक ऐसा राजनेता खो दिया है, जिसने अपने देश की कठिनतम घड़ियों में राष्ट्रों के बीच शान्ति एवं सहयोग की मशाल को उठाये रखा, गुट-निरपेक्षता की नीति को ऊंचा रखा।

एशिया तथा सभी महाद्वीप अब शान्तिपूर्ण सहयोग तथा आम निरस्त्रीकरण के लिए एक दृढ़ योद्धा से वंचित हो गये हैं।

मुझे श्री नेहरू से व्यक्तिगत रूप से परिचित होने और एक संध्या उनके साथ वार्तालाप में बिताने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। नेहरू ने एक बार कहा था कि मुझे दर्शन-चर्चा-विवेचन करते डर लगता है, क्योंकि यह पेशेवर दार्शनिकों का काम है। मैं पेशेवर राजनीतिज्ञ नहीं हूं और मैं समझता हूं कि यह औरों का काम है कि वह एक राजनेता के रूप में उनका मूल्यांकन करें, इस बारे में उनका मूल्यांकन करें कि उपनिवेशवादियों द्वारा लुटे और उत्पीड़ित किये गए एक प्राचीन रंगारंग और विशाल देश में उन्होंने क्या किया अथवा क्या करने में असफल रहे। मैं यहां एक ऐसे व्यक्ति के बारे में बात करना चाहता हूं, जिससे बात करना मेरे लिए सहज-सरल था, जो बहुमुखी एवं महती मेधा का स्वामी था।

नेहरू राजनैतिक समस्याओं पर विचार करने-भर से बहुत-कुछ अधिक कर सकते थे। एक राजनेता के दिनोंदिन कार्यक्रम से असंबंधित प्रश्नों के समाधान की उनकी अद्भुत योग्यता, शायद सदियों पुरानी अपनी परम्पराओंवाले उनके देश की आत्मिक प्रकृति की अभिव्यक्ति रही हो। वह रोम-रोम में भारतीय थे। किन्तु, उन्होंने राष्ट्रीय प्रतिभा के आत्मिक विशिष्ट तत्त्वों को औरों से अलग-थलग कभी नहीं माना। उन्होंने मुझसे लेव तोल्सतोय, रोमां रोलां और बर्नार्ड शॉ के बारे में बड़े प्रेम-भाव से चर्चा की, जिनके व्याख्यान सुनने का उन्हें अवसर मिला था और उन्होंने मुझे बताया कि रूस में अक्तूबर-क्रांति की खबर उन तक कैसे पहुंची थी। उन्होंने लेनिन के बारे में बड़े आदर के साथ चर्चा की और उन्हें एक ऐसा व्यक्ति बताया, जिसने पूरी मानवजाति की चेतना को बदलने के लिए बहुत-कुछ किया।

एक बार, जब विश्व शांति परिषद की बैठक दिल्ली में हुई थी तो जवाहरलाल नेहरू ने हमारा स्वागत किया था। उन्होंने शान्ति के लिए संघर्ष को प्रेरणापूर्ण शब्दों में हमारे जमाने में जनगण का एक महान् संघर्ष कहा था। मेरे साथ बातचीत में उन्होंने सम्राट अशोक का जिक्र किया था, जिन्होंने कभी भी शस्त्र न उठाने की दृढ़ प्रतिज्ञा की थी। नेहरू आणविक आयुधों के खतरे को अच्छी तरह समझते थे और जो भाषा वह इस्तेमाल करते थे वह 'पंचशील' की थी, शीतयुद्ध की नहीं।

ये शब्द उनकी मृत्यु का शोकपूर्ण समाचार सुनने के बाद ही कह रहा हूं। मैं इस बात का स्मरण कराना चाहता हूं कि वह रूसी साहित्य और सोवियत जनता से प्यार करते थे। जब वह मास्को आये तो उन्होंने पाया कि यह भावना पारस्परिक है। मास्कोवासियों ने उनपर उत्तरी ग्रीष्म के फूल बरसाये। पर उन फूलों में भारत के हरे-भरे बागों की तरह हृदय का प्रेम भरा हुआ था।

मैं भारतवासियों के प्रति, जो मेरे इतने निकट और प्रिय हैं, गहन समवेदना के भाव प्रकट करना चाहूंगा, और यह कामना प्रकट करना चाहूंगा कि वे जवाहरलाल नेहरू की शान्ति की नीति को जारी रख सकने का बल प्राप्त करें, जो युद्ध, जातिवाद और अन्धराष्ट्रवाद के विरुद्ध नीति थी। मैं कामना करता हूं कि वे एशिया में, जिसकी हम सब सभ्यता के पालने के रूप में इज्जत करते है, मानवीय गरिमा, राष्ट्रों के बीच सहयोग तथा स्थायी शान्ति को कायम रखने की अपनी इच्छा को बनाये रखें। यही उस गहन मानवतावादी व्यक्ति के प्रति श्रेष्ठतम सम्भव स्मारक होगा, जो अब हमारे बीच नहीं है। ●

तूने मरकर मौत को भी ज़िन्दगानी बख़्शा दी

१

ए जवाहर, पैकरे[१] इन्सानियत, शाने-वतन
तूने हर नाकाम दिल को कामरानी बख्श दी !
तेरे दम से थी शगुफ़्ता[२] इस चमन की हर कली
तूने मरकर मौत को भी जिन्दगानी बख्श दी।

२

मिस्ले-शम्मा[३] जल के परवानों के गम में दम-बदम[४]
जजबए-उल्फत[५] को तूने जाविदानी[६] बख्श दी !
हैं जुदाई पर तेरी दीवारो-दर भी अश्कबार[७]
तेरे ग़म ने पत्थरों को नोहा ख्वानी[८] बख्श दी।

३

जिन्दगानी थी तेरी इक मशअ़ले राहे वफ़ा
अपना सबकुछ खोके तूने कौम[९] को सबकुछ दिया।
तेरी कुरबानी सदाकत[१०] का चलन बेमिस्ल[११] है
मरहबा[१२] ए मर्दे मैदां ! ए जवाहर, मरहबा !

४

साए में यादों के तेरे काश, ए जाने चमन !
बढ़ सकें हम साथ में लेकर मोहब्बत का चिराग़
डूबकर तेरी अकीदत[१३] में ये अपना कस्द[१४] हो
जान जाए पर न आ पाए कभी दामन पे दाग़।

—प्रेमचन्द्र 'सोज'

---

१. मूर्ति, २. खिली हुई, ३. दीपक की तरह, ४. प्रतिक्षण, ५. उत्साह, ६. अमरत्व, ७. अश्रुमय, ८. समवेदना, ९. राष्ट्र, १०. सचाई, ११. बेजोड़, १२. वाह-वाह, १३. श्रद्धा, १४. इरादा।

प्रकाशवीर शास्त्री

कर्तव्य-परायण और सहृदय

राजनैतिक क्षेत्र के अपने पुराने साथियों के सम्मान और उनके अनुरोध का श्री नेहरू को बहुत ध्यान रहता था। उनके अपने एक पुराने साथी आचार्य श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने, जिनका मैं शिष्य रहा हूं, एक पत्र मुझे लिखा कि मेरा स्वास्थ्य अब ठीक नहीं रहता, ८४ वर्ष से अधिक की अवस्था भी हो चुकी है, परंतु मैं श्री नेहरू से मिलना चाहता हूं। इसके लिए अच्छा यह हो कि गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, जिसकी स्वर्ण-जयंती होने जा रही है, उसमें यदि श्री नेहरू दीक्षान्त-भाषण देना स्वीकार कर लें तो दोनों बात हो जायंगी। मैं उनसे मिल भी लूंगा और जयन्ती अधिवेशन भी अच्छा हो जायगा। यह सन् १९५८ के अंत की बात है। जब मैंने वह पत्र उन्हें दिखाया तो एकदम उन्होंने कहा, "तुम उन्हें लिख दो, मैं आऊंगा।"

जब पंडितजी वहां गये और आचार्य नरदेव शास्त्री से मिले तो दोनों की आंखें सहसा भारी-सी हो गईं। पुराने दिनों की बातें याद कर काफी देर तक दोनों भावविभोर हो उठे। उस समय मुझे पहली बार पता चला कि देहरादून-जेल में शास्त्रीजी से नेहरूजी ने शिष्य बनकर गीता का अध्ययन बाकायदा किया था।

दोपहर को भोजन के बाद नेहरूजी को जहां लेटने की आदत थी, वहां साथ-ही-साथ एक-आध सिगरेट भी वह पी लेते थे। भोजन करके गुरुकुल के अतिथिगृह में तकिये के सहारे नीचे ही वह लेट गये। अपने नित्य के स्वभाव के अनुसार बोले, "कैप्स्टन सिगरेट मंगाओ।"

मैंने कहा, "यहां तो नहीं मिलेगी। किसीको गाड़ी से भेजकर अभी ज्वालापुर से मंगाता हूं।"

वह बोले, "इतना बड़ा बाजार लगा हुआ है। इसमें क्या कोई सिगरेट बेचनेवाला नहीं आया है?"

मैंने कहा, "यहां सिगरेट पीना और बेचना दोनों ही मना है। गुरुकुल में धूम्रपान सर्वथा निषिद्ध है।"

इसी बीच उनके अंगरक्षक ने अपने पैंट की जेब से कैप्स्टन सिगरेट का डिब्बा निकाला और पंडितजी की ओर बढ़ाते हुए बोला, "यह लीजिये।"

नेहरूजी ने उससे कहा, "जब यहां दूसरों के सिगरेट पीने पर पाबंदी है तो मैं ही कैसे पी सकता हूं!"

इतना कहकर वह बिना सिगरेट पिये ही तकिये के सहारे ऊंघने लगे। ३ बजे हरिद्वार सप्तर्षि-आश्रम में उन्हें पहुंचना था। मैं देखकर हैरान रह गया कि बिना किसी अलार्म के अथवा किसीके जगाये

ठीक पौने तीन बजे सेनानी की तरह वह महान् योद्धा खड़ा हो गया और फिर अपने कर्तव्य-पथ पर बढ़ चला।

इसी तरह का एक दूसरा प्रसंग भी देखने का मुझे अवसर मिला, जिससे नेहरूजी की कर्तव्यपरायणता के अतिरिक्त सहृदयता का भी परिचय मिलता है। अमरीका से एक एडवोकेट भारत-यात्रा पर आये हुए थे। उनका नाम था जान हैनरी क्राउज़। भारत आकर उन्हें भी उस समय यहां चल रहे पीलिया के संक्रामक रोग ने घेर लिया। यात्रा के लिए जो धन उनके पास था, वह उपचार आदि में व्यय हो गया। अब लौटने के टिकट के अतिरिक्त कुछ विशेष पैसा उनके पास नहीं रहा। लखनऊ-विश्वविद्यालय के एक प्रसंग में उनसे मेरी मुलाकात हुई और उन्हें मैं अपने साथ दिल्ली ले आया। मेरे साथ ही वह रहते रहे और उनका उपचार चलता रहा।

इसी बीच अमरीका से क्राउज़ के पिता का, जो न्यूयार्क के एक अच्छे डाक्टर हैं, उनके पास पत्र आया कि आर्थिक सहयोग की यदि कुछ अपेक्षा हो तो लिखो। पर वहां शायद ऐसी परम्पराएं हैं कि जब बेटा कमाने लायक हो जाय तो मां-बाप से सहयोग प्राप्त करना अपनी शान के खिलाफ समझता है। क्राउज़ ने उत्तर दिया कि मुझे किसी तरह के आपके सहयोग की अपेक्षा नहीं है। मैंने जब पूछा कि पैसा तुम्हारे पास है नहीं और लौटते समय तुम रूस, जर्मनी आदि दो-तीन और देशों में भी रुककर जाना चाहते हो तो फिर कैसे काम चलेगा? वह कहने लगे, "आप मुझे अपने प्रधान मंत्री से यदि एक मुलाकात दिलवा दें तो मैं अपनी समस्या का समाधान कर लूंगा।" मैंने उनसे पूछा कि क्या उनसे तुम्हारा कुछ परिचय है अथवा कुछ ऋण आदि लेने की बात करोगे? वह कहने लगे, "इन दोनों में से कोई बात नहीं होगी।" मैंने उनकी उत्सुकता देखकर नेहरूजीको लिखा और उन्होंने भी सहज स्वभाव से तीसरे दिन मुलाकात का समय दे दिया।

नेहरूजी से जाते ही क्राउज़ ने कहा, "प्रधानमंत्रीजी, मैं आपसे तीन विषयों पर कुछ पूछना चाहूंगा, परंतु आप यह सोचकर उत्तर दें कि मैं उन्हें अमरीकन पत्रों में छपवा भी सकूं। वे तीनों विषय हैं—काश्मीर, तिब्बत और केरल। यह बात उन दिनों की है जब केरल में नम्बूदरीपाद के मंत्रिमण्डल को हटाये जाने की चर्चा चल रही थी। नेहरूजी ने अपने स्टैनोग्राफर को बुला लिया और क्राउज़ से कहा, "तुम प्रश्न पूछो, मैं उत्तर देता हूं।" इसी बीच अचानक नेहरूजी ने पूछ लिया कि क्या तुम किसी पत्र के प्रतिनिधि हो? क्राउज़ ने कहा कि नहीं, मैं तो एक एडवोकेट हूं। फिर नेहरूजी ने पूछा, "मेरी मुलाकात को समाचार-पत्रों में तुम क्यों छपवाना चाहते हो?" उसने कारण बताया कि ऐसे-ऐसे अचानक बीमार हो जाने से मेरे पास जो पैसा था, वह समाप्त हो गया। मैं इस मुलाकात को किसी अमरीकी पत्र को भेजकर उसका पारिश्रमिक मंगा लूंगा और इस तरह अपनी यात्रा सकुशल समाप्त कर सकूंगा। पहले तो नेहरूजी कहने लगे कि क्यों नहीं, कुछ पैसे ले लेते, वहां जाकर भेज देना; पर बाद में जब उसने मुलाकात के लिए ही आग्रह किया तो बजाय १५ मिनट के ५५ मिनट तक वह मुलाकात चली और शाम को ही पंडितजी के हस्ताक्षरों सहित टाइप होकर वे प्रश्नोत्तर मेरे घर आ गये। क्राउज़ ने उसी दिन शाम को तार से उन्हें न्यूयार्क के किसी पत्र को भेजा, जिसके पारिश्रमिक के रूप में २,००० रुपये से अधिक वहां से उन्हें आ गये। दूसरों का दुःख देखकर नेहरूजी बहुत ही द्रवित हो उठते थे।

गाज़ियाबाद के आस-पास कुछ गांव के किसानों की धरती औद्योगिक क्षेत्र बनाने के लिए उत्तरप्रदेश सरकार कौड़ियों के मोल में लेना चाहती थी। वे सब किसान नेहरूजी का दरवाज़ा खटखटाने पहुंच गये। पंडितजी ने पहली वार ही उनकी बात सुनकर उत्तरप्रदेश सरकार को उचित मुआवजा देने का परामर्श दिया, परंतु जब कोई संतोषजनक प्रतिक्रिया उसकी न हुई तो विवश होकर वे किसान फिर नेहरूजी की कोठी पर अपनी बैलगाड़ियों में परिवार के साथ प्रदर्शन करने पहुंचे और लोक-सभा के सामने भी कई दिनों तक अपने बाल-बच्चों सहित पड़े रहे। पंडितजीको उत्तरप्रदेश सरकार के इस निर्णय पर कुछ झुंझलाहट भी हुई और उन्होंने फिर कुछ सख्त चिट्ठी उन्हें लिखी, जिसके आधार पर उन्हें कुछ मुनासिब पैसा मिलने की बात बनी। यद्यपि उन्हें वह मुआवज़ा अभी तक पूरा नहीं मिल पाया है, तथापि उन गांवों के किसान आज भी आसमान की ओर मुंह उठाकर बार-बार यही कहते हैं, "हे भगवान, तूने इतनी जल्दी पंडित नेहरू को क्यों उठा लिया ?"

एक ऐसा दरबार, जिसमें गरीब-अमीर, राजा-प्रजा सबकी समान रूप से पहुंच थी, सबकी समान सुनी भी जाती थी, वह श्री जवाहरलाल नेहरू का था। ●

सूर्य अस्त होगया

१

सूर्य अस्त हो गया।
मानवता धन्य हुई, चूम-चूम ज्योति-चरण,
युग का इतिहास बदल, नाच उठी किरण-किरण,
कण-कण को ज्योतित कर ज्योति-पुंज खो गया।
सूर्य अस्त हो गया।

२

जिसके लघु इंगित पर, कंठ-कंठ बोल उठे,
पत्थर भी पिघल गये, धरा-गगन डोल उठे,
जन-जन को वाणी दे स्वयं मौन हो गया।
सूर्य अस्त हो गया

३

अतुल अगम सागर में जीवन की नाव चला,
आंधी-तूफान बीच समता का दीप जला,
युग-युग का अन्धकार आभा से धो गया।
सूर्य अस्त हो गया।

४

स्नेह-प्यार-ममता के सुन्दरतम फूल खिला,
जन-जन को हृदय लगा, अमृत के घूंट पिला,
नई-नई मिट्टी में नये बीज बो गया।
सूर्य अस्त हो गया।

५

शान्ति के सुपथ पर वह दुनिया को मोड़ गया,
धरती की छाती पर अमिट छाप छोड़ गया,
अभी-अभी जगता था, अभी-अभी सो गया।
सूर्य अस्त हो गया।

—नर्मदाप्रसाद खरे

बड़े विशाल, बड़े गहन

योग और दर्शन की परिभाषा में मन के दो रूप हैं, एक व्यक्तिगत और दूसरा वैश्व। व्यक्तिगत मन का ज्ञान अत्यंत सीमित और खंडित होता है। उसके लिए वस्तुओं की समग्र दृष्टि संभव नहीं होती। वह सदा 'यह मेरा विचार' और 'यह दूसरे का विचार' इसमें विभक्त रहता है और इन दोनों से ऊपर उठकर वह यह वहुत कम अनुभव कर पाता है कि 'यह है वस्तुतः सत्य और यह सवको प्रभावित कर रहा है और करेगा।' व्यक्तिगत मन स्वभाव से ही बड़ा ससीम होता है, संघर्ष उसके लिए आवश्यक हो जाता है, चिन्ता भी उसके लिए अनिवार्य हो जाती है। इसके विपरीत वह मन जो व्यक्तिगत दृष्टियों से उठकर सार्वभौम सत्य को देख पाता है, उसमें अद्‌भुत विशालता होती है, एकनिश्चयता होती है, स्वतंत्रता होती है और निश्चिन्तता होती है।

पंडितजी के व्यक्तिगत, विशेषकर चिंतन के वैश्व भाव के रस और आनंद से मेरा गम्भीरतम तथा दीर्घतम नाता है। सहज रूप में ही मैं उनके चिन्तन के उस विशाल भाव का वड़ा आदर करता और इसमें वहुत ही आनंद-लाभ करता रहा हूं। जागतिक शक्तियों का मंत्र उन्होंने देश को अपनी युवा अवस्था से दिया है। देश के प्रश्नों को देश की ही दृष्टि से देखना तथा प्रादेशिक भावों की उलझन में देखना उन्हें साक्षात असत्य दिखाई दिया करता था। वह देश के छोटे-मोटे प्रश्नों को भी अपनी स्वभाव-सिद्ध दृष्टि से जगत् और जागतिक शक्तियों के प्रसंग और प्रकरण में देखा करते थे।

और इसका प्रभाव अद्‌भुत होता था। किसी विवाद का सारा प्रकरण ही वह वदल देते थे और फलस्वरूप एकत्व भाव की अनुभूति प्रतिष्ठित होनी आसान हो जाती थी।

देश का एकत्व वह थे और उनमें यह उनकी दृष्टि एकत्व की प्राण थी। एकत्व संभव ही विशालता में है। ससीमता तथा खण्डता में एकत्व कहां हो सकता है!

संस्मरण के रूप में मेरे अन्दर तो उनके व्यक्तित्व का प्रथम रूप में यही भाव जागृत होता है और इसीका मैं विशेष रूप से पंडितजी के संबंध में अन्यों से उल्लेख भी किया करता था, वैसे उनसे मिलने के अवसर भी दो-चार हुए और उनके संस्कार भी मन पर काफी प्रवल हैं।

इन सब अवसरों का सामान्य तथा प्रवल संस्कार है उनकी प्रसन्नता। उनका जो आनंद-भाव था वह उनके जीवन का सवसे वड़ा आकर्षण था। वास्तव में आनंद से अधिक आकर्षण हो भी क्या सकता है!

पांडिचेरी के देश में मिल जाने के वाद जब पंडितजी वहां पधारे तो मैं और मेरे दो सहयोगी

साधक आश्रम की ओर से उनसे मिले। पांडिचेरी के जीवन के विभिन्न अंगों का उनको एक परिचय देने का अवसर था। राजनैतिक, सामाजिक, व्यापारिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों के लोगों में मिलने-मिलाने का एक आयोजन स्थानीय शासन ने कर रखा था। लोग बहुत थे और समय थोड़ा था। थोड़े समय में एक पर्याप्त परिचय की कोशिश हरेक की थी।

मेरे और मेरे साथियों के सामने प्रश्न विशेष कठिन था। पंडितजी को आश्रम के यौगिक कर्म और पुरुषार्थ का परिचय दिया जाय तो कैसे? आश्रम सामान्य तरीके की समाज-सेवा नहीं करता और फिर भी गंभीर रूप में देश और लोक-हित में संलग्न है, यह पंडितजी को बतलाया जाय तो कैसे?

मैंने निवेदन किया, "आश्रम व्यक्ति के नव-निर्माण पर प्रथम बल देता है। फिर एक सामाजिक जीवन का नमूना प्रस्तुत करता है, जिसमें व्यक्ति अपना उत्सर्ग करने का अभ्यास करता है, महत्तर हित को चरितार्थ करने के लिए, और वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के दृष्टांत के बल से देश तथा जगत् के जीवन को प्रभावित करने की कोशिश करता है।"

पंडितजी ने कहा, "यह सब तो ठीक है, परन्तु आप लोग अपने-आप ही आनंद में रहना चाहते हो, यह तो आपको मानना ही पड़ेगा।"

पर तब इतना समय कहां था और पंडितजी को यौगिक कर्म की सूक्ष्म परिभाषा तथा कर्म और अकर्म के गहन भेद के लिए रुचि कहां थी! पंडितजी हंसे, लोग हंसे और वह मुलाकात समाप्त हुई।

फिर एक बार मिलना हुआ दिल्ली में। लगभग तीन-चौथाई घण्टे तक बातचीत हुई और अनेक विषयों पर। तीसरे पहर का समय था। वह सवेरे से व्यस्त रहे थे, परन्तु लग ऐसा रहा था कि आज दिन की पहली मुलाकात यही है। इतने वह ताजा और प्रसन्न थे। उन दिनों दिल्ली में जागतिक निरामिष सम्मेलन (वर्ल्ड वेजीटेरियन कान्फ्रेंस) हो रहा था। निरामिषता का ही प्रसंग चल गया। उन्होंने कहा, "निरामिषता तो अच्छी है, परन्तु निरामिष लोग अच्छे नहीं।" मुझे उसी क्षण श्रीअरविन्द की इसी प्रसंग की एक बात याद आ गई और मैंने कहा, "श्रीअरविन्द कहते हैं कि निरामिषता ही पर्याप्त नहीं।" उस सहमति के भाव में उन्होंने एक कुतूहलता प्रदर्शित की।

पंडितजी के जीवन की नमनीयता, उनका लचकीलापन तथा वैश्व भाव मुझे सदा आध्यात्मिक गुण लगा करते थे। आत्मा और परमात्मा को न मानते हुए भी उनकी दृष्टि में मुझे आध्यात्मिकता दिखाई देती थी और मेरे मन की जिज्ञासा थी कि वह साक्षात् रूप में भी जीवन के आध्यात्मिक सत्यों को पहचानें। इसलिए मुझे जब-जब मिलने का अवसर हुआ, मैंने यथासंभव इन सत्यों का किसी-न-किसी रूप में जरूर जिक्र किया।

इस अवसर पर भी निरामिषता के बाद चर्चा चली व्यक्ति और समष्टि की और इनके विकास की। मैंने श्रीअरविन्द के एक वाक्य को दोहराते हुए कहा कि व्यक्ति ही सामाजिक प्रगति की कुंजी है। उन्होंने कहा, "यह बात तो ठीक है।" परन्तु व्यक्ति के विकास के लिए यौगिक पुरुषार्थ की आवश्यकता! मैं उनतक पहुंचाने में सफल न हो सका।

परन्तु मेरी यह कोशिश भी गलत थी। पंडितजी तो प्रकृति से कर्मरत व्यक्ति थे। उन्होंने सारे

जीवन अनवरत रूप में कर्म किया। देश को अद्भुत दृष्टांत के बल से कर्म-प्रवृत्त वनाने का यत्न किया और इसमें से खूब सफल हुए और हमें आज संतोप है कि देश जागृत, सचेष्ट तथा जागतिक भावना से युक्त है।

उनके जीवन का गहन भाव स्पष्ट रूप से, विशेषकर कुछ पिछले वर्षो में निखरा। गहन संवेदनशीलता, सुसंस्कृत भाव की, तो उनमें पहले से ही थी। उदारता, कोमलता, हार्दिकता, अनुकम्पा, प्रेम, सहानुभूति, त्याग, विचारों और भावनाओं की सूक्ष्मता आदि उनमें पहले ही से थे। यही उनके जीवन की विलक्षणता तथा विशेपता थी। परंतु जीवन के पिछले भाग में तो वह स्पष्ट रूप से वार-वार अपने विशिष्ट संदेश के रूप में कहने लगे कि आध्यात्मिकता तथा विज्ञान ही मानव के भविष्य की आधारभूत वस्तुएं हैं। भविष्य इन्हीं से निर्मित होगा। यह वह गहरे विश्वास के बल से कहने लगे थे। यह उनका संदेश देश तक पहुंचा नहीं, परंतु सांस्कृतिक तथा चिरस्थायी देन के रूप में देश तथा जगत् के लिए संभवतः यही सवसे वड़ी वस्तु सिद्ध होगी।

उनका स्वरूप अत्यंत प्रगतिमय तथा क्रांतिमय था। वह आनेवाले वड़े-से-वड़े परिवर्तनों को लालसा से देखते तथा उनके लिए यत्नशील होते। विज्ञान के लाने के लिए उन्होंने काफी कोशिश की। राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं खोलीं तथा वैज्ञानिक भावना और दृष्टि को प्रोत्साहित किया। आध्यात्मिकता के क्रियात्मक प्रोत्साहन के लिए उन्हें न अवकाश मिला और न शायद इसके लिए कोई समूर्त भाव ही उनके मन में वन पाया था। यह विपय चाहता भी वहुत अवकाश था।

विज्ञान और आध्यात्मिकता, प्रत्यक्षतः दूर होते हुए भी, वास्तव में हैं वड़े समीप। विज्ञान सत्य की भावना में प्रवृत्ति का अनुशीलन करता है, आध्यात्मिक सत्य की भावना ही प्रकृति के आधार की गवेपणा करती है। एक का विपय है अभिव्यक्त सत्ता का अध्ययन और दूसरे का विषय गहन आत्म-तत्त्व। विज्ञान अपने आपमें विनाशकारी संकट पैदा कर देता है। आध्यात्मिकता की एकात्मता समन्वय और प्रेम का मार्ग दिखाती है। पूर्ण ज्ञान और पूर्ण पथ-प्रदर्शन के लिए क्या दोनों अनिवार्य नहीं हैं? यह है भविष्य की संभावना और इसे पंडितजी ने खूव ही अनुभव किया प्रतीत होता है।

उनके प्रगतिमय और क्रांतिमय जीवन के लिए रूढ़ि वने हुए सभी धर्म अरुचिकर हो गये थे। ऐसा था उनका प्रगति का भाव। एक समय था जवकि धर्म प्रगति के वाहक थे, वे सृजनशील थे, नये उत्साह को प्रस्तुत करते थे। परंतु अव सब-के-सब अधिकांश में जड़ हो गये हैं। उनके अन्दर नवीन प्रेरणा का वल नहीं रहा। प्राचीनता के सहारे तथा रूढ़ि-अभ्यासों के वल पर ही वे चले जा रहे हैं। सामान्य व्यक्ति को कुछ संतोप वह जरूर देते हैं, परंतु वर्तमान जीवन का, इसके वहुविध प्रश्नों पर एक सजग व्यक्ति का पथ-प्रदर्शन करने में ये समर्थ नहीं। ऐसी धर्म-परम्पराएं भला पंडितजी के व्यक्तित्व को कैसे आकर्षित और प्रभावित कर सकती थीं! वह इनसे एक स्वाभाविक-सी अरुचि अनुभव करते थे।

और इस अरुचि में जागतिक विकास का एक गंभीर सत्य निहित था। धर्मो में सार-वस्तु है आध्यात्मिकता। सभीका उद्देश्य 'गंभीर आत्म-शांति, आत्म-समन्वय, आत्म-सहानुभूति, आत्म-प्रेम आदि दैवी संपदा की वस्तुओं की उपलब्धि का रास्ता प्रशस्त करना है। परंतु इस सार के साथ वहुत-कुछ वाह्य रीति-रिवाज हैं तथा अहंभाव की संकीर्णता है, जो विलकुल गौण है। भेद और द्वेष सव वाह्य रीति-रिवाज

तथा अहंभाव का है। सार और सत्य-वस्तु में अद्भुत साम्य है। निश्चय ही यदि मानव एकता की ओर अग्रसर हो रहा है तो धर्मों के भेद भी आध्यात्मिक एकता में परिणत होंगे। तथ्य रूप में बात भी यही है। सत्य एकता है, अनेकता अभिव्यक्ति तथा प्रतीति है। कितनी सत्य थी पंडितजी की यह दृष्टि।

उन्होंने यह भी कभी कहा था कि भारत की जगत को सबसे बड़ी देन उसकी आध्यात्मिकता है। भारत की इतिहासगत जिज्ञासा और गवेषणा वास्तव में रही भी आध्यात्मिकता है। आध्यात्मिकता के कितने प्रयास, कितने प्रयोग, कितनी योग-शैलियां तथा साधना-अभ्यास के मार्ग यह प्रस्तुत करता है और कैसे-कैसे आध्यात्मिक उपलब्धियों के ओजस्वी दृष्टांत भी इसने प्रस्तुत किये हैं।

आध्यात्मिकता धर्मों की सार-वस्तु है, यह अभी कम ही अनुभव किया जाता है। परंतु धर्मों का समाधान तथा इनका समन्वय है ही इसीमें। धर्मों का त्याग, धर्मों के प्रश्न का समाधान नहीं। उनके सार-तत्त्वों को आध्यात्मिक विज्ञान में विकसित करना उनका सच्चा समाधान है। संदेश रूप में अपनी गंभीरतम देन को पंडितजी अपनी इस दृष्टि में दे गये। देश इसको कितना अंगीकार करता है, यह देखने की बात है। प्रत्यक्ष ही, भारत इसके लिए बड़ी सुन्दर भूमि है। यदि मानव-इतिहास का यह भावी सत्य यहां चरितार्थ होता है तो वह जगत-मात्र के लिए कैसा अद्भुत पथ-प्रदर्शन होगा।

आध्यात्मिकता विषयक यह दृष्टि पंडितजी के जीवन की गहनतम झांकी है। यह उनकी गहन सजगता की अभिव्यक्ति है और यह केवल शब्द-मात्र की ही वस्तु न थी। यह उनके अनुभव में प्रतिष्ठित प्रतीत होती है। लेखक को इस विषय में प्रमाणित तरीके से कुछ जानने का अवसर भी मिला।

पंडितजी श्रीअरविन्द आश्रम तीन बार आये। जब-जब वह पांडिचेरी आये तब-तब चाहे पहले कार्यक्रम में यह नियत था या न था, वह आश्रम आये। एक बार नहीं, शायद दो बार। एक बार आकर फिर अप्रत्याशित रूप में और कार्यक्रम में हेर-फेर करके दोबारा आये। श्रीअरविन्द आश्रम के वातावरण के प्रति अनेक बार ऐसे लोग भी आकर्षण अनुभव करते देखे जाते हैं, जो प्रत्यक्षतः योग और साधना और आध्यात्मिकता में रुचि नहीं रखते। और नहीं तो वह यह कहते हैं कि यहां शांति का अनुभव होता है और वस्तुतः शांति का वातावरण आध्यात्मिक जीवन की अनिवार्य नींव है। पता नहीं, पंडितजी की आश्रम के वातावरण के प्रति आकर्षण की मूल प्रेरणा क्या थी, परन्तु यह आकर्षण एक आश्चर्यजनक रूप से देखने में जरूर आया।

यह वस्तु भी उनकी गहन आध्यात्मिक संवेदनशीलता का संकेत होगी। परंतु फिर भी यह है सामान्य-सी प्रतिक्रिया। उनके जीवन की विशेष तथा आश्चर्यजनक बात तब घटित हुई जब वह श्रीमाताजी से मिले। माताजी से मिलना उनका होता रहा एकान्त में। परंतु लेखक को इस विषय में कुछ माताजी के अपने मुख से ही जानने का अवसर मिला। उन्होंने कहा कि नेहरू कुछ समय के लिए यहां बड़े सुन्दर, स्वस्थ और आंतरिक शांति तथा आनंद के भाव में प्रतिष्ठित हो गये थे। दिन भर के अनवरत बाह्य कार्यक्रम के बीच में पांच-दस मिनट के लिए ऐसे आंतरिक भाव से विमुक्त से होकर प्रतिष्ठित हो जाना बड़े मर्म की बात है। यह निश्चय ही गहन आत्म-सजगता का प्रमाण है।

अंतिम बार १३ जून, १९६३ को जब वह माताजी से मिले तब उनकी स्थिति और भी विलक्षण

हो गई थी। उस समय श्री सुरेन्द्र मोहन घोष, एम. पी. भी उपस्थित थे। उनका कहना है कि पंडितजी उस समय ऐसे आत्म-विभोर हो गये कि उन्हें समय का भी भान न रहा। अद्भुत थी उनकी वह तल्लीनता। सामान्य कर्मरत बहिर्मुख जीवन के लिए ऐसी अवस्था अत्यंत कठिन है और अगर किसी में किसी समय भी यह आ जाती है तो यह निश्चित ही आंतरिक सजगता तथा संवेदनशीलता का प्रमाण है । जो किसी भी समय उस गहराई तक पहुंच जाता है वह कितना गहन मानना होगा।

पंडितजी के जीवन की विशालता तथा विस्तीर्णता अनुभव करना अपेक्षाकृत सहज है। वह बड़े विशाल तथा विस्तीर्ण भाववाले थे। परंतु उनके जीवन की गहनता का मर्म उनके सब गुणों का मूल स्रोत था। इसकी झांकी बहुत थोड़ी मिली, परंतु यह उनके व्यक्तित्व के मर्म का मर्म है, जैसे आत्म-तत्त्व सदा हुआ ही करता है।

क्या हमारी कृतज्ञता, हमारा आदर, हमारा प्रेम पंडितजी की प्रौढ़तम तथा अंतिम प्रेरणा की ओर हमें आकर्षित नहीं करेंगे? तथा इस दिशा में हमारी शक्ति को प्रभावित नहीं करेंगे? और इससे कसी क्रांति जीवन और जगत में सिद्ध हो सकती है! ●

उनकी सरलता और सेवा-भावना

सन् १९३९ की बात है। उस समय मैं श्रीगांधी आश्रम, अकबरपुर (उत्तर प्रदेश) में व्यवस्थापक था। नेहरूजी कांग्रेस के चुनाव के संबंध में फैजाबाद से टांडा मोटर से जा रहे थे। आश्रम टांडा के रास्ते पर ही है। जब मुझे मालूम हुआ कि पंडितजी टांडा जा रहे हैं तो मैंने किसी प्रकार आश्रम के सामने उनकी मोटर रोकी और उन्हें अपने हाथ से कते सूत की माला पहनाकर उनसे प्रार्थना की "आप श्रीगांधी आश्रम के ट्रस्टी हैं। दो मिनट के लिए रुककर आश्रम का निरीक्षण करने की कृपा करें।"

मेरी प्रार्थना स्वीकार कर वह मोटर से नीचे उतरे और आश्रम के भीतर आये। आश्रम के और बाहर के तीन-चार सौ भाई-बहन उपस्थित थे। मैंने पंडितजी से अनुरोध किया कि आप हम सब उपस्थित भाई-बहनों को दो मिनट उपदेश देने की कृपा करें। मीटिंग की व्यवस्था हमने पहले से ही रख रखी थी। पंडितजी के पास समय की कमी थी, सो वह मंच पर नहीं बैठे। खड़े-खड़े ही उन्होंने कहा कि आश्रम के लोग रचनात्मक काम कर ही रहे हैं। आप लोगों को कुछ कहने की जरूरत नहीं है। काम करते रहें।

फिर मैंने उनसे निवेदन किया कि थोड़ा नाश्ता करने की कृपा करें। पास में ही उसकी व्यवस्था है। उन्होंने कहा, "मेरे पास समय बिलकुल नहीं है। जल्दी से नाश्ता यहीं मंगवाओ।" नाश्ता मंगाया गया और उन्होंने एक रसगुल्ला अपने हाथ से उठाकर खाया और पानी पिया। उनकी सरलता और आत्मीयता को देखकर सब चकित रह गये।

दूसरी घटना उस समय की है जबकि महात्मा गांधी काशी में 'भारतमाता मंदिर' का उद्घाटन कर रहे थे। उस समय एक बहुत बड़ी भीड़ मंच की तरफ आगे बढ़ रही थी। उस समय नेहरूजी भी मंच पर थे और जब उन्होंने देखा कि भीड़ स्वयंसेवकों से रुक नहीं रही है, तो वह एकदम मंच पर से नीचे कूद पड़े और भीड़ को स्वयं पीछे हटाने लगे। उनकी सिपाहियाना आदत से मेरे जीवन में बहुत सुधार हुआ है।

—रनछोड़ शंकर ढगट

वीरेन्द्रकुमार जैन

बेचैनियों के साथी

जवाहरलाल, ओ जवाहरलाल,
तुम्हें गुजरे इस बीच कई दिन गुज़र गये,
दुनिया के सारे कारोबार
हस्बमामूल हो गये हैं फिर बरक़रार;
दिगन्तों तक बाकी नहीं है कहीं कोई निशान
तुम्हारी खूबसूरत हस्ती के जल्वे का;
राजघाट पर कब से ठण्डी हो चुकी है तुम्हारी चिता;
तुम्हारी राख धातु के कलशों में बन्द
महज़ आदर-प्रणाम की वस्तु होकर रह गयी है,
बज चुके हैं दुनिया में फिर से शादियाने
और तुम्हारे ग़म को भूल, नर-नारी युगल
फिर वस्ल की रातों के
इत्र-गन्धाकुल आलिंगनों में डूब गये हैं;
इतिहास ने बदल दी है तुम पर
अपनी निर्मम करवट;
और कहा जा रहा है कि
'नेहरू-युग समाप्त हो गया !...
तुम गुजर चुके, तुम भूतकाल हो गये !...

मगर मैं हैरान हूं यह देखकर
कि क्यों इन आधी रातों के ख़ामोश पहरों में
तुम मेरी चेतना की स्वप्न-गुहा को
बेइख्तियार 'हॉण्ट' कर रहे हो।
मैं तुम्हें इतिहास के चट्टानी वर्क़ों के सुपुर्द कर
गहरे चैन की नींद सो जाना चाहता हूं।
मैं तुम्हारी हदों से आगे की राहों का अन्वेषी,
मैं कवि हूं देश-कालातीत सत्ता का;
हर पल नये देश-कालों का निर्माता,
फिर मैं तुम पर क्यों रुकूँ.. .क्यों अटकूँ ?...
तुम इतिहास के चक्रवर्ती थे--
जमानाकार थे बेशक अपने वक्तों के :
मगर मैं...मैं हूं कवि,
शून्य से लगाकर
सत्ताओं के आख़िरी छोरों तक,
असंभव की आसमानी ऊंचाइयों तक,
अनिर्वार व्याप्त है मेरा चक्रवर्तित्व,
मैं हूं तुम्हारी हदों को
अतिक्रान्त करने का दावेदार;
मैं इतिहास में तुम्हारे अध्याय का
चट्टानी वर्क़ा लौटा कर
मनुष्य की चेतना में
नये सूर्यों की नदियाँ लहराना चाहता हूं।

...मगर हाय रे हाय,
कैसी अजब है यह मेरी बेबसी,
नींद नामुमकिन होगई है;
मैं शून्य के पलंगों पर करवट बदलता हूं,
और तुम मेरी चेतना की हर सम्भव करवट को

बेरोक और बेइख्तियार 'हॉण्ट' किये जा रहे हो:
शेरवानी और चूड़ीदार में खड़ी
तुम्हारी भुवन-मोहन और आलीशान हस्ती,
मेरी मुड़ती निगाह के हर पहलू की
मेहराब में आ खड़ी होती है,
मेरी राह के हर मोड़ पर
तुम मुस्करा रहे हो!...
मैं भू से द्यु तक फैले विराट में

पलायन करता हूं
तुम्हारी हदों से भाग निकलने को;
मगर तुम हो कि मेरे भीतर
बेसाख्ता चले आ रहे हो,
मेरी खून की नसों में
अनिर्वार बहे जा रहे हो,
मेरे हर रक्ताणु में एक नया शोला,
एक नया सूरज बनकर मुस्कुरा रहे हो,
मेरे दिल की रक्त-धमनियों में
अनन्त बेचैनी के समन्दर बनकर लहरा रहे हो,
ओ मेरी शूल-शैयाओं के हमआग़ोश,
ओ मेरी अन्तिम बेचैनियों के साथी!...

...और मुझे साफ़-साफ़ एहसास हो रहा है,
इन आधी रातों के बेताब और बेनींद पहरों में,
इन विराट और सरशार ख़ामोशियों में,
कि तुम मेरे आर-पार आ-जा रहे हो,
कि मैं तुम्हारे आरपार लहरा रहा हूं—
मैं, जो स्वयम्भू कवि-द्रष्टा हूं,
अनन्तों में नव-नवीन चेतना-प्रदेशों का सन्धाता,
तुम, जो स्रष्टा हो, शिल्पी हो,
नव-नवीन लोकों के विश्वकर्मा, इतिहास-विधाता;
हम दोनों निरन्तर गतिमान हैं
अनन्त संभावनाओं के
अगमगामी पन्थों पर।... ●

वादे हैं जो करने पूरे

[रॉबर्ट फ्रौस्ट की एक कविता की निम्नलिखित पंक्तियां नेहरूजी ने अपने हाथ से अपने पैड पर लिखकर सामने रख छोड़ी थीं। इन पंक्तियों में उनकी अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति जो होती थी। सम्पादक]

The woods are lovely, dark and deep
But I have promises to keep
And miles to go before I sleep
And miles to go before I sleep.

हिन्दी रूपान्तर

वन-पथ हैं प्रियतर, घोर अंधेरे और घनेरे
लेकिन वादे हैं जो करने पूरे
और दूर जाना है मीलों सोने से पहले
मीलों सोने से पहले।

भाई से हमने क्या पाया

उन लोगों के बारे में लिखना, जिन्हें हम प्यार करते हैं, दुनिया का सबसे जटिल कार्य है। मैं इस बारे में खास तौर पर सतर्क हूं, क्योंकि वर्षों से अपने भाई से मेरे संबंध दोहरे रहे। एक ओर वहन के रूप में और दूसरी ओर विदेशों में उनके प्रतिनिधि के रूप में। मैंने अपने-आपको इस स्थिति के अनुकूल ढाल लिया। मैं अपनी भावनाओं को, जो हृदय को आन्दोलित करती हैं, दबा नहीं सकती।

हम दोनों के बीच वय का अन्तर इतना अधिक था कि हम बाल्यकाल एक साथ नहीं गुजार सके, इसलिए मैं और वह अलग-अलग अकेले बड़े हुए। इसके फलस्वरूप मेरे वयस्क जीवन में एक वड़ा अभाव रह सकता था, पर स्वाधीनता-आंदोलन की लड़ाई ने हम दोनों को परस्पर निकट लाया। मैं प्रारम्भिक द्विदशकी के स्वाधीनता-आंदोलन-काल के अंतर्गत ही उनके व्यक्तित्व से परिचित हो सकी। इससे पूर्व वह मेरे लिए 'भाई', प्रिय अग्रज मात्र थे। लेकिन उस ज़माने के हिसाब से वह मेरे लिए परिवार के एक अंग के रूप में किसी भी अन्य परिवार-जन से अधिक महत्वपूर्ण थे। १९२० ई० के आस-पास का समय भारत में रोमांचक चुनौती से परिपूर्ण गत्यात्मक युग था और इस युग का एक सबसे महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट नाटक हमारे ही घर में खेला गया।

मेरे भाई की जीवन-गाथा सामान्यत: सभीकी जानकारी में है, पर जिसका कभी किसीने उल्लेख नहीं किया, वह था उनका तौर-तरीका, जिसके द्वारा वह अपनी निकटतम पारिवारिक परिधि को प्रभावित किया करते थे। वह तर्क या बहस से नहीं, धमकी या चुनौती से नहीं, निवेदन या भावात्मकता से नहीं वल्कि अपने रास्तों को सही मानने तथा अपने कर्तव्य के प्रति लगनपूर्वक जुट जाने की गहन निष्ठा-शक्ति से प्रभावित करते थे। इन्हीं गुणों पर उनका प्रभाव आधारित था, जो दूसरों के सर पर चढ़कर वोलता था। फिर भी उनमें दूसरों के प्रति अपने-आपको ही सही मानने का दृष्टिकोण कभी नहीं रहा और अपने ऊपर किये गए हर मजाक पर हँस लेने की योग्यता से ही उन्होंने पारिवारिक संबंध को स्वस्थ और उल्लासपूर्ण रखा। सामयिक राजनैतिक स्थिति के स्थायी दबाव ने हमारे बीच घनिष्ठता को अधिकाधिक वढ़ाने में ही योग दिया।

हमारा घर ऐसा था, जिसमें हँसी-मज़ाक का वातावरण ज्यादातर रहता था। परिवार के अन्दर हम एक-दूसरे को निर्भयतापूर्वक परेशान करते थे और कई वार तो त्याग-मूर्ति, भारतभूषण आदि कहकर 'भाई' की ही खिल्ली उड़ाते रहते थे और पत्रों व जनता द्वारा उन्हें दी गई उपाधियों पर हास्य कविताएं

था तुकबन्दी बनाकर उन्हें चिढ़ाते थे, यहांतक कि जेल जाते समय उनकी दुखद विदाई को भी हल्के तौर पर खेल की भावना से लिया जाता था। इसका कारण यह था कि वह स्वयं भावुकता को नापसंद करते थे, लेकिन मुख्य बात तो यह थी कि हम किसी भी एक रास्ते को अपना लेने पर आगे आनेवाली सभी बाधाओं तथा परेशानियों को सहन करने में विश्वास रखते थे।

भाई ने मुझे कई तरह से प्रेरणा दी और मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा। मैं सबसे अधिक महत्व इस सीख को देती कि जीवन को कई भागों में बांटकर नहीं रखा जा सकता। निजी जीवन और सार्वजिनिक जीवन समान सिद्धांतों से निर्देशित है तथा एक-दूसरे के प्रतिरूप है। वह इसी अवस्था से कार्य करते और अपने आपको मस्तिष्क की दहलीज तक ले जाने की उनकी क्षमता इसी विश्वास पर आधारित थी।

एक घटना मैं कभी नही भूल पाती। यह गांधी-इरविन-समझौता भंग होने के बाद की बात है। भाई को गिरफ्तार करके गोरखपुर ले जाया गया। वहां उनपर मुकदमा चला और चार वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड मिला। मैं अपने पति के साथ ही मुकदमे के समय अदालत में मौजूद थी। इस मुकदमे में कुछ ऐसी बातें थीं, जिनसे गिल्बर्ट और सुलीवान जैसे व्यक्ति ही लाभ उठा सकते थे। मुकदमे के बाद भाई को अदालत से सड़क पर होकर जेल ले जाया गया। हमको अन्दर जाकर विदाई-भेंट करने की अनुमति मिली। वहां भाई अपने उसी रूप में थे। उन्हें जेल-जीवन से लाभान्वित होने का विश्वास था। समय तेजी से गुजर गया। उनसे परिवार के कनिष्ठ सदस्यों के लिए रोचक संदेश लेकर हम बाहर चल दिये। जब हम दूर हुए तो मैं उनके अंतिम दर्शन के लिए मुड़ी। वह सूर्य के आगे खड़े थे, उनके पीछे अस्त होता हुआ सूर्य नारंगी की तरह लग रहा था। उनका चेहरा, जो इतना विनोदपूर्ण था, अब गम्भीर और उदास हो गया था तथा आंखों में ऐसी अनन्य एकाग्रता थी कि हम उनको दिखाई नही दे सके। वह विचारों की गहराई में डूबे हुए थे। ●

स्वतंत्रता के बाद जनता की जिम्मेदारी बढ़ गई है। उन्हें अपनी आजादी की रक्षा करनी है। बाहर के शत्रुओं से डर नहीं है, बल्कि वह डर भीतर की फूट से है। इस दिशा में भारत का प्राचीन इतिहास एक शिक्षाप्रद मिसाल है। संगठित रहकर वे अपनी आजादी की रक्षा कर सकते हैं और प्रगति की तरफ़ बढ़ सकते हैं।

—जवाहरलाल नेहरू

हमारे मामा

नवम्बर १९४० के आखिरी हफ्ते का एक सर्द दिन। रोजाना की तरह उस दिन भी, सूर्यास्त के समय, हमारे स्कूल के खेल के मैदान से, आकाश के रजतपट पर छायी गुलाबी आभा स्पष्ट दिखाई दे रही थी। यह मसूरी में शीत ऋतु के आगमन का संकेत था। दो-तीन हफ्तों के बाद, बड़े दिन की छुट्टियां शुरू हो जायंगी और हम मसूरी छोड़ देंगे। पर उन छुट्टियों से पहले हमें कई दिलचस्प समारोहों में भाग लेना बाकी था। आज केवल एक समारोह समाप्त हुआ था।

दौड़ में जीत के कारण मुझे एक नीला और दो लाल रिबन इनाम में मिले थे। उन्हें सबको दिखाती हुई मैं खेल के मैदान के दरवाजे की ओर आई। काफी थकी हुई थी, पर जीत की खुशी के कारण थकावट मालूम नहीं हो रही थी। दरवाजे पर मुझे मेरी बहन तथा हमारा नौकर मिल गये। जब हम मेन रोड की ओर जा रहे थे तो नौकर ने कहा—अभी-अभी मुझे बाजार में खबर मिली है कि पंडितजी गिरफ्तार हो गये हैं। सुनते ही हम लोगों का सारा उत्साह गायब हो गया। एक अज्ञात आशंका के कारण कांप उठी।

बिना कोई आवाज किये हम धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। अपने रिबन मैंने नौकर को दे दिये। खेल के मैदान की सारी बात हम भूल चुके थे। कहां हम छुट्टियों की योजना बना रहे थे और कहां अब यह अनुमान लगाना भी भयप्रद था कि आगे क्या होगा। मामा जवाहरलाल नेहरू गिरफ्तार हो चुके थे, और शीघ्र ही हमारे माता-पिता भी जेल में होंगे।

स्कूल के सुनियमित जीवन से परे कई घटनाएं घट रही थीं—घटनाएं, जो हमारी समझ के बाहर की थीं, घटनाएं जो सभ्रमकारी थीं और हमें हतोत्साह कर देती थीं। यूरोप में महायुद्ध हो रहा था, और अखबारों के जरिए उसका विकटाकार और भयंकर रूप रोज हमारे सामने आता था। मामा की गिरफ्तारी ने उसका प्रकम्प हमारे बहुत निकट ला दिया था। इस गिरफ्तारी का कारण बाद में मामा ने खुद ही हमें बताया था। उन्होंने कहा था कि जबतक भारत पराधीन देश है, तबतक वह किसी स्वतंत्र संग्राम में कोई सहायता नहीं दे सकता। उनके जेल में पहुंच जाने से हमारे पारिवारिक जीवन के क्षितिज पर अनिश्चयता के बादल मंडराने लगे थे।

मामा की गिरफ्तारी के लिए हम पूरी तरह तैयार न थी, ऐसी बात नहीं। हमारे घर और बाहरी दुनिया में सदा से एक घनिष्ट संबंध रहा था। सुदूर स्थानों की अशांति, कभी-कभी हमारे घर को भी अशांत बना देती थी, क्योंकि यह अशांति मामा को व्यग्र कर देती थी। अबीसीनिया का युद्ध, स्पेन

का गृहयुद्ध, पोलैंड तथा चेकोस्लोवाकिया पर हिटलर का आक्रमण आदि दुर्घटनाओं से जो आघात मामा के मन पर पहुंचता था, उसका आभास हमें भी हुए बिना नहीं रहता था। सब मानव समान हैं, अपने इस विश्वास का मूल्य मामा को भी अपनी जैसी अन्य उच्च आत्माओं के समान चुकाना पड़ता था। पर वह दूसरों को अपने अधिकारों के लिए लड़ते देखकर बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकते थे।

हम बच्चों के भावुक जीवन को आलोड़ित कर देनेवाली घटनाओं के असर से वह बेखबर नहीं थे और इसीलिए उन्होंने हमें एक बुद्धिमत्तापूर्ण गुप्त मंत्र बता दिया था। इस जादूभरे गुप्त मंत्र के कारण जीवन में होनेवाले शोकपूर्ण प्रसंग हमें डगमगा न पाते थे। उन्होंने हमें सिखाया था कि अभिजात वर्ग के लोग कभी रोते नहीं। हम उनके इस गुप्त मंत्र को नहीं भूलते थे और अपनी उदासीन प्रवृत्ति को लेकर बड़े गर्व का अनुभव करते थे। इस मंत्र ने हमें काफी लाभ भी पहुंचाया। उससे हमें यह पाठ मिला कि हम एक बृहत्तर पूर्ण के भाग हैं। बच्चों के रूप में हमें प्यार किया जाता है, पर हमें भी अपने चारों ओर होनेवाली घटनाओं का सामना जोश और अकलमन्दी से करने की जरूरत है। ऐसे वातावरण में भीरुता और आत्मनिरति की गुंजाइश न थी और हम सब मामा के क़दमों पर चलने का ही प्रयत्न करते थे। उनके प्रति हमारे मन में जो प्रशंसा के भाव थे, उन्हें असाधारण या भावुक ठहराना ठीक न होगा। उनके जसे करिश्मोंवाला आदमी हमारी जिंदगी में दूसरा न था, और बच्चों में एक सहज और अचूक प्रवृत्ति होती है करिश्मोंवाले आदमी को आदर देने की।

उस नवम्बर की शाम को हम जैसे-जैसे आगे बढ़ते गये, वैसे-वैसे खिन्नता हमसे परे होती गई। गरमा-गरम चने की पुड़ियां खरीदकर हम फिर तरोताजा और खुश हो गये। अब ठंडी हवा के झोकों को झेलते हुए, ऊपर चढ़ते समय, हमारी जबान पर आनेवाली छुट्टियों तथा इलाहाबाद की बातें थीं। कुछ कभी हो और हमारे बड़े हमारे साथ रहें या नहीं, हमारा 'आनन्द भवन' ज़ाना तय था। उस शीतऋतु के आगमन के साथ-साथ भारत में राजनैतिक संकट भी प्रारंभ हो गया, और जेल जाने का आंदोलन एक बार फिर जोरों पर आ गया। हमारे घर के वयस्क लोगों ने भी घर का परित्याग कर दिया। इस नई परिस्थिति के साथ समझौता करके मैं और मेरी बहन धीरे-धीरे सुनसान घर में रहने की आदी हो गईं। लेकिन चूंकि यह घर था, इसलिए हमें वह पूरी तरह सुनसान कभी नहीं लगा। इस घर के बड़े लोग सुन्दर रहन-सहन की जो परम्परा कायम कर गये थे, वह एक मनोहर आवरण की भांति हमारे जीवन को ढके थी। हम सदा अपने बड़ों के लौटने की प्रतीक्षा में रहते थे और हमें कभी भी ऐसा नहीं लगता था कि वह हमसे दूर हैं—खास तौर पर मामा, जिनका तो वह अपना घर ही था। हम इस घर में बड़े हुए, इसीको हमने अपना घर माना। चूंकि हमारे माता-पिता ने भी मामा की भांति गांधीजी का अनुकरण किया था, इसलिए उनका जीवन भी मामा के जीवन की भांति अप्रत्याशित बन गया था और वह काफी लम्बी अवधि तक हमसे दूर अपने काम में व्यस्त या जेल में रहते थे। मामा के आदर्शों को अपने जीवन में ढालने का प्रयत्न करके हम भी उनका अनुकरण करने की कोशिश करते रहते थे। यह सच है कि उनके घर पर न रहने के कारण हम अक्सर उन्हें नहीं देख पाते थे, पर अनुपस्थित रहकर भी उनका विशद व्यक्तित्व, उन लोगों की अपेक्षा, जिन्हें हम रोज देखते रहते थे, हमारे ज्यादा करीब रहता था।

जब वह 'आनन्द भवन' में होते थे तो लोग अक्सर उनसे मिलने आते रहते थे और वहां एक ऐसी मधुर व्यस्तता की गूंज रहती थी, जो प्रत्येक घर में उसके प्रिय निवासी के रहने पर अनुभव की जा सकती है। लोग, काफी तादाद में, मामा के दर्शन करने आते रहते थे और ऐसे प्रत्येक अवसर पर जो स्नेहपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होते थे, उनकी याद आज भी मीठी यादों के रूप में मेरे मन में कायम है। उनसे मिलने के लिए आनेवालों में भय या आदर की भावना अधिक नहीं होती थी। वे हमेशा शोरगुल करते रहते थे, और एक अजब जोश उन सबमें दिखाई देता था। उनमें से बहुत-से तो काफी दूर से, और कभी-कभी पैदल प्रयागराज के दर्शन करने आते थे, और संगम में स्नान करने के बाद मामा के दर्शन करना भी वे न भूलते थे। और जब मामा शुभ्र खादी के कपड़े पहने उनकी ओर देखकर मुस्कराते थे, उनसे उनकी यात्रा के बारे में पूछते थे, तो वह मात्र पड़ोसी न रहकर सुपरिचित और स्नेही व्यक्ति बन जाते थे। फिर वे जानते थे कि उनका ज्यादातर समय सारे भारत का भ्रमण करने, उसके रहनेवालों को देखने और समझने में गुजरता है। उनके घर के इतना करीब होने पर, उनके दर्शन के लिए उनका जाना स्वाभाविक ही था।

मामा की जिन्दादिली हमें हमेशा खुश रखती थी। एक साल, नये वर्ष के दिन, हमारे घर में एक पार्टी थी। ड्राइंगरूम में तीस-चालीस के करीब मेहमान जमा थे। एक गर्ल्स कालेज की प्रिंसिपल भी इन मेहमानों में थीं। ये हमारे परिवार से बहुत दिनों से परिचित थीं। इन्हें बड़े और खुशनुमा फूलों से बड़ा प्रेम था और ऐसे कई फूल हमेशा उनके जूड़े में लगे रहते थे। उस शाम मामा इन फूलों से बहुत आकर्षित हुए। भोजन के बाद, सारे मेहमान लाइब्रेरी में जमा हुए—'मरडर' खेल खेलने के लिए। इस खेल के नायक हत्यारे का चुनाव लाटरी द्वारा होता था और हत्यारा कौन है, इसका पता उसके सिवा किसीको नहीं होता था। अंधेरा होने पर उससे आशा की जाती थी कि वह किसीकी 'हत्या' करे। रोशनी होनेपर एक 'जासूस' उससे तथा औरों से सवाल-जवाब करता था। खेल के नियमों के अनुसार 'हत्यारा' इन प्रश्नों के उत्तर में चाहे जितना झूठ बोल सकता था, पर दूसरे खिलाड़ियों के लिए यह आजादी न थी। हत्यारा इसलिए झूठ बोलता था कि जासूस उसके बारे में जान न पाये।

उस दिन सब बत्तियां गुल हुईं तो कुछ क्षण बाद सबको किसीके चीखने का स्वर सुनाई दिया। जब मेरे माता-पिता ने उजाला किया तो हम सबने जूड़े में फूल सजानेवाली महिला को सोफे पर 'मृत' पाया। उसके फूल इधर-उधर बिखरे पड़े थे। मामा ने, जो इस हत्या के प्रयत्न से काफी खुश दिखायी देते थे, अपने को जासूस की जिरह के लिए भी प्रस्तुत नहीं किया। उन्होंने खिसियानेपन से 'हत्या' का अपराध स्वीकार कर लिया और कहने लगे कि इन फूलों को अस्त-व्यस्त किये बिना उनसे नहीं रहा गया। फिर जो हँसी के फव्वारे छूटे, उनमें 'मृत' महिला ने भी योग दिया और हम सबने नये वर्ष का स्वागत हँसी-खुशी तथा अन्य खेलों के साथ किया।

बच्चे का काम है विकास करना, और यह विकास शारीरिक, आत्मिक और भावनात्मक तीनों प्रकार का होता है। बिना प्रेम के यह विकास नहीं हो सकता, और उस विकास के लिए यह भी जरूरी है कि अपनी छोटी-सी दुनिया की व्यवस्था और उसके सहीपन में उसका अडिग विश्वास कायम रहे, भले ही बाहरी दुनिया में कितनी भी अव्यवस्था रहे। हम बच्चों की निजी दुनिया, दूसरे बच्चों की दुनिया की

भांति शांत न थी। हमलोगों का लालन-पालन नई शिक्षिकाओं की देख-रेख में बड़े अव्यवस्थित ढंग से हुआ था। हमारे माता-पिता हमारे साथ बहुत कम रहते थे। पर यह अडिग विश्वास सदा हमारे मन में रहता था कि मामा की भांति हमारे माता-पिता भी एक महान् हेतु के प्रति समर्पित थे। इसी हेतु को हम अपना भी हेतु मानते थे। मामा ने राष्ट्र के लिए जो व्यापक रूप में करके दिखाया, वही वह छोटे रूप में हमारे जीवन में कर सकने में सफल हुए। उन्होंने हमारे सामने जो आदर्श उपस्थित किया, हमने उसीको स्वीकारा तथा जीवन को उसीके अनुसार ढालने का प्रयत्न किया। चूंकि हम देखते थे कि वह साहसी और चरित्रवान हैं, इसलिए जब कभी हम ऐसा न हो पाते थे, तो हमें स्वयं अपने ऊपर बड़ी शर्म आती थी, क्योंकि हमें ऐसा लगता था कि हमने अपने प्रति उनके विश्वास को खो दिया है। अब बचपन के दिन नहीं रहे, पर अब भी इस आदर्श की ज्योति हमारे मन में प्रज्ज्वलित है।

अल्कीवियावीस ने जो सुकरात के संबंध में कहा था, वही मैं उनके बारे में कह सकती हूं—"उन्होंने मुझे इस सीमा तक प्रभावित किया था कि अपना वर्तमान जीवन मुझे एकदम असह्य हो गया और मुझे लगता है कि यदि मैं उनसे विमुख न होऊं तो मेरा भाग्य भी वैसा ही हो जायगा, जो उनके सम्पर्क में आनेवाले अन्य व्यक्तियों का हुआ था। वह मुझे जड़वत् कर देंगे और मैं सारा जीवन उनके चरणों में व्यतीत करते-करते ही बिता दूंगा, क्योंकि उनके सामने मुझे खुद अपने से यह स्वीकार करना पड़ता है कि मुझे अपनी आत्मा का उल्लंघन करके नहीं जीना चाहिए। और अकेले वही व्यक्ति हैं, जिनके कारण मुझे शर्म अनुभव हुई है—और शर्म करना मेरे स्वभाव में नहीं है। किसी अन्य व्यक्ति के सामने कभी शर्म अनुभव नहीं करूंगा।" ●

आजादी का मतलब खाली राजनैतिक आजादी नहीं है। स्वराज्य और आजादी के माने कुछ और भी हैं, यानी सामाजिक आजादी, आर्थिक आजादी। अगर देश में गरीबी है तो आजादी वहां तक नहीं पहुंची। उसी तरह अगर हम बंटे हुए हैं तब भी हम पूरी तौर पर आजाद नहीं हुए...अगर हिन्दुस्तान को पूरी तरह आजाद होना है तो उसे अपने करोड़ों आदमियों की बेरोजगारी दूर करनी है, गरीबी दूर करनी है।

—जवाहरलाल नेहरू

एस० एम० मेहदी

ग्रासामान्य लोक-प्रियता

"ओस्तान्किनो...वस नम्वर ?"

"ओस्तान्किनो ?"

"दा", मैंने जेब से एक पेंसिल और कागज़ निकाला। मुझे समझाते हुए वह बोला, "ओमनीवस... ट्राली वस ?"

"स्पासिवा !" मैंने उसे धन्यवाद दिया और आगे कुछ न कह सका, क्योंकि मुझे रूसी के सिर्फ दो-चार शब्द ही आते हैं। 'हां' के लिए 'दा', 'ना' के लिए 'नियत', धन्यवाद के लिए 'स्पासिवा', वस।

मैं मास्को के एक सिरे पर स्थित ओस्तान्किनो होटल में ठहरा था। उस दिन मैं एक प्रदर्शनी देखने अकेले ही निकल पड़ा था और लौटते हुए रास्ता भूल गया था। तभी मुझे वह आदमी मिला, जिससे मैंने रास्ता पूछा।

वह मुस्कराने लगा। वह भी रूसी के अलावा और कोई भापा नहीं जानता था। हम दोनों मजबूर थे। वह रूसी में कुछ कह रहा था, जिसका सिर-पैर मेरी समझ में नहीं आ रहा था। फिर उसने पूछा——

"अरव ?"

"नियत।"

"इतालियन ?"

"नियत।"

उसने बेबसी से अपने कन्धे उचकाये। मैं भूल गया था कि रूसी में भारतीय को क्या कहते हैं। मैंने अंग्रेजी में कहा :

"इंडियन।"

उसकी समझ में नहीं आया। मैंने 'ड' को कोमल करते हुए एक बार फिर दुहराया।

उसकी समझ में फिर भी कुछ नहीं आया। तभी मुझे एक बात सूझी। मैंने कहा——

"नेहरू।"

"नेहरू !" उसके चेहरे पर एक हँसी निखर आई।

"ओह, इन्दिस्की !" वह बोला।

"दा, इन्दिस्की।" मैंने दुहराया। अब मुझे याद आया कि रूसी में भारतीय को क्या कहते हैं।

"अज़रबैजानी।" उसने अपने बारे में बतलाया।

तभी एक बस आ गई, लेकिन उसने मुझे रोक लिया और मुस्कराने लगा। मैं समझ गया कि वह मुझसे कुछ कहना चाहता है। हम दोनों को अपनी कठिनाई का आभास हुआ और हम दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। वह मेरे पास आ गया और मेरे हाथ को कसकर पकड़ते हुए उसने मेरे गालों को चूमा और बोला—

"नेहरू।"

तभी एक दूसरी बस आ गई और मैं उससे अपने होटल पहुंच गया। मैं रास्तेभर यही सोचता रहा कि उस अजनबी ने मेरे गाल पर जो चुम्बन अंकित किया था, वह मेरे लिए था या जवाहरलाल नेहरू के लिए ?

एक घटना और याद आती है। यह घटना लेनिनग्राद की है। लेनिनग्राद में हमारा अन्तिम दिन था। जब हम लोग होटल से निकल रहे थे, मैंने अपने एक साथी को होटल की महिला कर्मचारियों से घिरा हुआ पाया। ये लोग मुझसे कुछ दूरी पर थे। लेकिन मैंने यह आभास कर लिया था कि ये लोग बहुत उत्तेजित हैं। हमारे साथी को घेरकर खड़ी महिलाएं एक साथ बोल रही थीं। मेरे साथी रूसी का एक शब्द भी नहीं जानते थे। पहले मैं समझा कि मेरे साथी से कुछ भूल हो गई है। घबराहट में मैं भागा हुआ गया और अपने दुभाषिये को बुला लिया। वह बेचारा दौड़ता हुआ आया और उसने किसी तरह मेरे साथी को उन उत्तेजित महिलाओं के बीच से निकाला। वह हमारे साथी को उन महिलाओं से मुक्त करा चुका तो इस झगड़े के कारण का पता लगाया। जब मुझे सारे किस्से का पता लगा तो मैंने राहत की एक गहरी सांस ली।

बात दरअसल यह थी कि मेरे वह मित्र भारत से कुछ बैज लेकर आये थे, जिनमें से कुछ में नेहरू का चित्र अंकित था और कुछ में हमारा राष्ट्रध्वज अंकित था। होटल से चलते हुए उन सज्जन ने होटल की महिला कर्मचारियों को कुछ बैज बांट दिये थे। जो महिलाएं मेरे मित्र को घेर कर खड़ी थीं, उन्हें ये बैज नहीं मिले थे और वे इस जिद पर अड़ी थीं कि उन्हें भी ये बैज दिये जायं।

मेरे मित्र ने अपने पास से कुछ और नेहरू के बैज निकाल कर उन्हें दिये तो वे शांत हो गईं। ये बैज मेरे मित्र ने मास्को में बांटने के लिए रखे थे। उनमें से एक ने बैज लिया और उसे उमगकर चूम लिया। इस बार निश्चय ही यह चुम्बन नेहरू के लिए था। ●

पुरानी परंपराओं को कुछ हदतक कबल करना पड़ता है और उन्हें नई हालतों और नये विचारों के मुताबिक लाने के लिए उनमें हेर-फेर करना पड़ता है।

—जवाहरलाल नेहरू

हिसाब से उनका रक्त-दबाव ठीक ही समझना चाहिए। इलाज था केवल एक—आराम। मगर पंडित नेहरू ने तो 'आराम हराम है', यह नारा देश को दिया था। वह स्वयं आराम कैसे करते? आखिरी दम तक काम करते रहे। पिछले सितम्बर या अक्तूबर में एक दिन रात को मृदुलाबहन मेरे पास आईं। कहने लगीं, "पंडितजी बहुत थके नज़र आते हैं। मुझे उनका चेहरा ठीक नहीं लगता। तुम जाकर देखो।" रात के साढ़े नौ, पौने दस बजे थे। उस समय कोई मिलनेवाला उनके पास था। करीब आधा घण्टा इंतजार करने के बाद उन्होंने मुझे बुलाया। पूछने लगे, "कहो, क्या बात है?" सोचते होंगे मैं कोई आवश्यक प्रश्न लेकर आई हूंगी। मैंने कहा, "जी, मुझे कुछ कहना नहीं है। सिर्फ आपको देखने आई हूं।" "क्यों?" उन्होंने पूछा। मुझे जो रिपोर्ट मिली थी सो मैंने बताई और कहा, "आपकी इजाजत हो तो ज़रा ब्लडप्रेशर देख लूं।" उन्होंने चुपचाप हाथ आगे कर दिया। ब्लडप्रेशर ज्यादा ऊंचा था २३०।१२५। मैंने कहा, "आपको कुछ तो आराम लेना ही चाहिए।" इसपर झुंझलाकर वह बोले, "मुझे यह सब बिल्कुल पसंद नहीं है। मैं नहीं जिन्दा रहना चाहता इस तरह से कि डाक्टर नब्ज पकड़े बैठे हों। खटिया पर पड़े-पड़े जाने का मुझे शौक नहीं है।" मैंने उनकी डांट पी ली और नम्रता से कहा, "जी, हम भी यही चाहते हैं कि ऐसी परिस्थिति न आये, इसीलिए आपको आराम लेने को कहते हैं। किसी रोज कोई नस फट गई तो गुस्सा करने से तो कुछ न होगा, अपंगता आयेगी। ऐसा न हो, वह उपाय करना है।" वह शांत हो गये। गंभीर स्वर में बोले, "तो क्या चाहती हो तुम?" "कुछ नहीं। आप जाकर सो जाइये। आज रात दफ्तर में बैठकर काम न कीजिये।" वह मान गये। जब प्रयास करते थे, रक्त-दबाव नीचे आ जाता था। दूसरे दिन डाक्टरों ने देखा तब सब-कुछ ठीक था।

दिसम्बर १९६३ में वह रामकृष्ण मिशन अस्पताल का उद्घाटन करने वृन्दावन गये। मैं हैलिकॉप्टर में उनके साथ थी। मन में था रास्ते में कुछ बात हो जायगी, मगर एक तो हैलिकॉप्टर में आवाज बहुत होती है, दूसरे पंडितजी सारे समय सोते रहे। इस घटना के कुछ दिन बाद वह जापानी मिशन की ओर से बनाये जानेवाले कुष्ठ-रोगियों के नये अस्पताल का शिलान्यास करने आगरा गये। श्रीमती सुचेता कृपालानी और मैं उनके साथ मोटर में थे। शिलान्यास करते हुए लौटते समय कहने लगे, "मैं ताज जाऊंगा।" हमने गाड़ी उधर मोड़ दी। सिक्योरिटीवाले बाद में बिगड़े। मगर आज मुझे सन्तोष है कि उनकी ताज देखने की इच्छा उस दिन पूरी हो सकी। उन्हें ताज से बहुत प्यार था। मुझे याद है, जब मैं पहले-पहल दस-बारह साल की उम्र में बापूजी के साथ आगरा गई थी, तब पंडितजी करीब-करीब हर रोज एक-दो बार ताज जाते थे, बापूजी को भी लेकर गये थे। आगरे में उस दिन दोपहर का भोजन जापान के राजदूत ने दिया था। भोजन से पहले पंडितजी की आंखें नींद से बन्द हो रही थीं। भोजन के बाद फिर उन्हें जोर से नींद आ रही थी। जब हम सर्किट हाउस पहुंचे तो पंडितजी घड़ी देखने लगे। दूसरे कार्यक्रम में करीब आधा घंटा बाकी था। मैंने कहा, "आप थोड़ा सो जाइये।" वह मान गये। हमने सोचा, उन्हें जगायंगे नहीं। मगर वह आधे घंटे में स्वयं ही बाहर आ गये और बाकी कार्यक्रम पूरा करने के बाद शाम को दिल्ली लौट गये।

मुझे उस दिन बहुत चिन्ता हुई। उनका शरीर नींद का भूखा था, आराम मांगता था। वह उसे आराम नहीं दे रहे थे। दिल्ली आकर उनकी रक्त-परीक्षा की गई, आंखें देखी गई, पेशाब की परीक्षा

हुई। सबकुछ ठीक था। हां, छाती में जो सबसे बड़ी रक्त की नाली होती है, वह कुछ ज्यादा चौड़ी दिखाई देती थी। यह कबसे शुरू हुआ, कहना कठिन है। कई सलाह-मशविरे हुए। मगर देश-विदेश के विशेषज्ञों ने कहा, "इस बारे में कुछ करना नहीं है। कुछ करने का खतरा कुछ न करने से ज्यादा है।" हम सब चाहते थे, वह कुछ ज्यादा आराम लें, मगर वह निमंत्रण-पर-निमंत्रण स्वीकार करते जाते थे, मानो जितने ज्यादा लोगों से मिलकर विदा ले सकते हों, लेने का उनका यह प्रयास था। भारत की जनता को वह कितना प्यार करते थे, यह सब जानते ही हैं।

७ जनवरी, १९६४ को प्रातःकाल मुझे पंडितजी की सेवा में जो डाक्टर था, उससे फोन पर खबर मिली——भुवनेश्वर में पंडितजी सुबह बिस्तर से उठे और गिर पड़े। फिर उठे, गुसलखाने में गये और दुबारा गिरे। उनका निजी सेवक उन्हें वापस बिस्तर पर लाया। दोपहर तक तीन विशेषज्ञ डाक्टरों को लेकर मैं भुवनेश्वर पहुंच गई। उनके बायें बाजू और टांग में थोड़ी-सी कमजोरी थी। कुछ लोगों की मान्यता थी कि यह खबर बाहर जाने से बुरा असर होगा, जनता घबरा जायगी, दुश्मन उभर जायंगे। मगर अंत में फैसला हुआ कि सच्ची बात कहने से जनता को ज्यादा संतोष होगा, छिपाने से लोग स्थिति को और ज्यादा गंभीर समझेंगे।

पंडितजी को इस बीमारी का जबरदस्त धक्का लगा। उनके बाजू और टांग की कमजोरी तो तेजी से कम हुई, मगर पंडितजी की उदासी बढ़ गई। हम लोग तरसने लगे कि कभी डांट तो लगा दें फिर से।

२६ जनवरी को वह हमेशा की तरह रिपब्लिक परेड पर गये। बर्फ-सी हवा चल रही थी। हम लोग शाल से कान लपेटे थे, मगर पंडितजी ने शाल इत्यादि लेने से इंकार किया। थोड़ा-थोड़ा काम तो भुवनेश्वर से लौटकर दो-चार दिन में ही वह करने लगे थे। अब तो रोज आठ घंटे काम करते थे। मगर जिसने १८ घंटे काम किया हो, उसे ८ घंटे पूरे दिन का काम थोड़े ही लगेगा! जो सवाल उनके पास लेकर कोई जाता था उसका स्पष्ट उत्तर उनसे मिलता था। किसी किस्म की कमजोरी उनके दिमाग की शक्ति में नहीं आई थी, मगर बायां पांव थोड़ा-सा खींचकर चलते थे।

फरवरी में राजकुमारी अमृतकौर एकाएक चल बसीं। उन्होंने पंडितजी से ऑल इंडिया इंस्टिट्यूट ऑव मेडिकल साइंसेज़ के पदवीदान-समारोह पर आने को कहा था। उन्होंने १५ अप्रैल की तारीख दी। पुराने साथियों के प्रति उनकी वफादारी प्रसिद्ध थी। राजकुमारीजी की याद में वह ऑल इंडिया इंस्टिट्यूट में गये और पंतजी की याद में मई में गोविन्दवल्लभ पंत अस्पताल का उद्घाटन करने आये। ये उनके आखिरी सार्वजनिक कार्यक्रम थे। ऑल इंडिया इंस्टिट्यूट के पदवीदान-समारोह पर उन्होंने जो भाषण दिया, वह उनके अच्छे-से-अच्छे भाषणों में एक था। डाक्टरों को देहातों की सेवा करने की उन्होंने हिदायत दी थी, उनसे सच्चे वैज्ञानिक बनने का आग्रह किया था। समारोह में बंगाल की राज्यपाल भी उनके साथ आई थीं। समारोह के बाद वह कुछ समय स्टाफ के साथ बैठे, बहुत खुश नज़र आते थे। पार्लमेंट का बजट-सेशन चल रहा था। वह पार्लमेंट भी जाते थे, दफ्तर भी। दोपहर को दो घंटे आराम करने के सिवा दिन-भर उनका कार्यक्रम चलता था।

गर्मी बढ़ी। किसीने उन्हें तैरने की सलाह दी। बड़े शौक से वह राष्ट्रपति भवन के तालाब में तैरने जाने लगे। लोक सभा का अधिवेशन समाप्त होने के समय किसे पता था कि यह उनका आखिरी

अधिवेशन होगा। उन्होंने लोक सभा तथा राज्य सभा दोनों का विशेष अधिवेशन २७ मई के लिए बुलाया। तब किसे पता था कि वह उसमें आनेवाले नहीं थे। वह प्रजातंत्र के पुजारी थे। लोकमत को हमेशा वह चलाते आये थे, मगर लोकमत के सामने झुकना भी वह जानते थे। इसीलिए उन्होंने यह विशेष अधिवेशन भी बुलाया था।

बंबई ए. आई. सी. सी. की बैठक में करीब सारे समय वह उपस्थित रहे। वहां से लौटने के दूसरे दिन बगीचे में सुबह घूमते समय उनकी टांगों में एकाएक कमजोरी महसूस हुई, मगर संकल्प-बल से चलकर वह कुरसी तक आये। इंदिराजी का सहारा लेना भी मुश्किल से स्वीकार किया। दोपहर तक वह ठीक हो गये। हम लोग समझे, शायद रक्त का दबाव नीचा करने की दवा का यह असर होगा। कुछ दिन के लिए सब दवा बन्द कर देने का फैसला हुआ। पंडितजी को यह बहुत अच्छा लगा। दूसरे दिन प्रेस-कान्फरेंस में किसीने उनके उत्तराधिकारी के बारे में पूछा तो उन्होंने मुस्कराकर कहा, "अभी तो मैं हूं।" ईश्वर हँस रहा होगा!

देहरादून में वह बहुत अच्छे रहे। वहां से २६ मई को दिल्ली लौटे और रात को ११ बजे तक दफ्तर में काम किया। "मैंने सब कागज देख लिये हैं, मेरी मेज़ साफ है", यह अपूर्व संतोष का भाव लेकर वह सोने को गये।

२१ मई को मैं कलकत्ता, दार्जिलिंग के लिए रवाना हो गई। दार्जिलिंग से मैं कालिंपोंग देखने गई। पंडितजी वहां शुरू जून में कुछ दिनों के लिए जानेवाले थे। कितनी सीढ़ियां उन्हें चढ़नी होंगी, इत्यादि सब मैंने गिना। किसे पता था कि ये सीढ़ियां वह कभी चढ़नेवाले हैं ही नहीं। कालिंपोंग के लोग उत्सुकता से उनकी राह देख रहे थे।

२६ मई को सुबह हम लोग दार्जिलिंग से दिल्ली की ओर चले। २६ की शाम को मुझे हवाई जहाज से दिल्ली लौटना था, मगर मैंने ट्रेन से लौटना तय किया। आराम मिलेगा, रास्ते में काम हो जायगा, सस्ता भी रहेगा—ये सब कारण थे। नसीब में नहीं था अंत में उनके पास रहना। जो बापूजी की मृत्यु के समय मेरे साथ हुआ, वही अब फिर हुआ। उस समय बहावलपुर की सरकार ने समय पर मुझे लौटने न दिया था। इस समय भावी ने मेरे अपने हाथ से मेरा कार्यक्रम बदलवा दिया।

२७ की सुबह दस बजे इलाहाबाद स्टेशन पर मैं ट्रेन में अखबार पढ़ रही थी। पंडितजी की देहरादून-यात्रा की खबरें थी। उनके दिल्ली लौटने का समाचार था। इतने में किसीने बाहर से पूछा, "केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्री इस ट्रेन में हैं क्या?" मैंने दरवाजा खोला। मेरे निजी सचिवालय का दिल्ली से संदेश था, "डाक्टर कहते हैं, पंडितजी की तबीयत अच्छी नहीं है। आप तुरंत पहुंचें।" ११ बजे इलाहाबाद से हवाई जहाज दिल्ली जाता था। मैं ट्रेन से उतर पड़ी। हवाई अड्डे पहुंची तो हवाई जहाज कुछ लेट था। जब हम दिल्ली हवाई अड्डे पर पहुंचे तो दो बज चुके थे। पहली खबर मिली कि पंडितजी नहीं है। २६-२७ मई की रात को ३ बजे वह गुसलखाने गये, फिर आकर सो गये। दुबारा सुबह ६ बजे गुसलखाने से लौटे तो अपने निजी सेवक से उन्होंने पीठ दबाने को कहा। उसने पूछा, "साहब, तबीयत कैसी है?" बोले, "अच्छी नहीं है।" उन्हें सुलाकर साढ़े छः बजे उसने इंदिराजी को खबर दी। डाक्टर को फोन किया।

डाक्टर लोग पौने सात बजे आ गये। उस समय उनका रक्त-दवाब १४७–८० था। उन्हें प्रसीना-सा आ रहा था। कुछ नीले-से पड़ गये थे, कमर पर और जांघों पर। डाक्टरों को देखकर बोले, "आप लोगों को क्यों तकलीफ दी?" डाक्टरों से उनकी स्थिति की गंभीरता छिपी न थी। पैथेडीन का इंजेक्शन लगाने लगे तो उन्होंने पूछा, "क्या दे रहे हो?" पैथेडीन क्या होता है, यह भी पूछा। एक बार फिर वह उठे और उसके बाद रक्त-दवाव तेजी से और नीचे गिरा। डाक्टरों ने सब उपाय किये, इंदिराजी ने अपना रक्त दिया, और भी दो बोतलें दी गईं, दवाइयां भी दीं, मगर पंडितजी की हालत गिरती ही गई और आखिर डेढ़, पौने दो बजे उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। आठ बजे से वह नींद में थे—दवा के कारण या बेहोशी से—यह कहना कठिन है, मगर इतनी बात पक्की है कि उन्हें कुछ भी तकलीफ नहीं हुई, दर्द नहीं हुआ, वह शान्ति से गये। रक्त की बड़ी नाली चिर गई और रक्त नस के अन्दर चलने की जगह नस की तहों में बहने लगा, या तो उन्हें कारोनरी रोग का दौरा आया—यह कहना कठिन था। बहुत करके बड़ी नसें चिर गईं, ऐसी मान्यता डाक्टरों की थी। कहां चिरीं, यह कोई नहीं कह सकता था। मगर उनकी स्थिति इतनी कमजोर थी कि पता चलता भी तो ऑपरेशन करने के काबिल उनकी हालत न थी।

क्या शान्ति थी उनके शव के चेहरे पर! क्या शान थी! ऐसा लगता था कि अभी बोलेंगे। जब शव को नीचे लाकर रखा गया तो जिस तरफ हम खड़े थे उधर से उनके चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान भी थी। इंदिराजी बोल उठीं, "ऐसा लगता है मानो अभी कहेंगे, बन्द करो यह सब मूर्खता।" मैं तो पागलों-जैसी कभी ऊपर, कभी नीचे रात-भर चक्कर लगाती रही। हम सब इस वज्रपात से सन्न हो गये थे। रातभर जनता कतारबद्ध चली आ रही थी। जोर से वर्षा भी आई, मगर कतार चलती रही। नारे सुनाई दे रहे थे—'पंडित नेहरू जिन्दाबाद', 'पंडितजी अमर हैं!' दोपहर को शव को लेकर जलूस चला, घर के सामने हजारों की भीड़ थी। सब शांति से खड़े थे कि जलूस गोल चक्कर को घूमकर जायगा और वे सब दर्शन कर सकेंगे, मगर जलूस को पहले ही मोड़ दिया गया। तब जनता उमड़ पड़ी। वे चिल्लाने लगे—"नेहरूजी जिन्दा होते तो हमलोगों को देखकर हमारी तरफ अपने-आप मुड़ जाते। आज वह नहीं आ सकते तो आप उन्हें उधर से ले जा रहे हैं!"

जमुनाजी के तट पर ३० जनवरी, १९४८ का दृश्य फिर आंखों के सामने आ गया। आकाश की ओर उठती हुई चिता की लपटें! हृदय में ईशोपनिषद् के अमर वाक्य गूंजने लगे:

यह प्राण उस चेतन अमृतमय तत्व में
हो जाय लीन शरीर भस्मीभूत हो।
हे मार्गदर्शक, दीप्तिमन्त प्रभो तुम्हें
हैं ज्ञात सारे तत्व जो जग में ग्रथित,
ले जा परम आनन्दमय की ओर तू।

एक और युग समाप्त हुआ। वह दीपक जो चालीस-पचास वर्ष से भारतवासियों का पथ प्रकाशित कर रहा था, बुझ गया। मगर पंडितजी के अपने शब्दों में "नहीं, वह दीपक बुझा नहीं। वह हमेशा हमारा पथ प्रकाशित करता रहेगा।" नेहरूजी और गांधीजी की आत्मा युगों तक भारतवासियों को प्रेरणा देती रहेंगी। ●

इतिहास-पुरुष के निधन पर

एक चमकीला बिन्दु माथे से मिट गया।
एक बहुत बड़ा बिम्ब घेरे से हट गया

काला हो गया क्षितिज
धूमकेतु बुझ गया,
छाती का लाल फूल
सहसा मुरझा गया;
गन्धकोष कट गया, निरग शून्य छुट गया,
एक बहुत बड़ा बिम्ब घेरे से हट गया।

फिर
रथ का घूमता हुआ
चाक टूट गया,
कल्पों के बाद मिला
सारथि फिर छूट गया,
बनता हुआ इतिहास बनते हुए रुक गया,
एक चमकीला बिन्दु माथे से मिट गया।

सांझ
हवा सूनी
भटकाती है राहों को
लौटे हम मणि देकर
विगत के प्रवाहों को
अग्नि का विमान उड़ा, मनवन्तर उठ गया,
एक बहुत बड़ा बिम्ब घेरे से हट गया।

●

नेहरू : श्रीअरविंद-आश्रम में

एक साधक के एक पत्र का उत्तर देते हुए श्रीअरविन्द ने पं० जवाहरलाल नेहरू के विषय में लिखा था, "उनके व्यक्तित्व के ऊपर एक अत्यंत उत्कृष्ट चरित्र की छाप है––उच्चतम सात्विकी प्रकृति, दाक्षिण्य एवं सम्मान की उदात्त भावना से भरा हुआ, उत्कृष्टतम ब्राह्मणोचित गुणोंवाला मनुष्य और साथ ही यूरोपीय शिक्षा में जो कुछ सर्वोत्तम है उससे भी युक्त––उनके विषय में मेरी यही धारणा बनती है।"...

पांडिचेरी राज्य का निरीक्षण करने पंडित नेहरू सर्वप्रथम सोलहवीं जनवरी, सन १९५५ को आये, जबकि यह भारतीय-फ्रांसीसी उपनिवेश भारत राज्य-संघ में तथ्यतः मिल चुका था। सारे नगर में ख़ूब चहल-पहल थी और हज़ारों की संख्या में लोग भीड़ बनाकर राष्ट्र के लाड़ले के दर्शनार्थ रास्ते-चौराहों पर खड़े थे।

लगभग ११ बजे दिन को नेहरूजी आश्रम पधारे। आश्रम के शारीरिक शिक्षण-विभाग के पांचसौ सदस्यों ने उतरते ही उन्हें संलामी दी। सदस्यों की दो समानान्तर कतारें उनकी गाड़ी से लेकर उस सीढ़ी तक खड़ी थीं, जिससे होकर श्री मां के कमरे में जाया जाता है। बड़ा ही शानदार स्वागत हुआ। पच्चीस वर्ष से लेकर सत्तर वर्ष तक की आयुवाले पुरुषों और स्त्रियों, तरुण बालक-बालिकाओं और पांच से तेरह-चौदह वर्ष तक के आयुवाले बच्चों ने हरी, लाल, सफेद, ख़ाकी, नीली आदि रंग-बिरंगी वर्दियां पहने, उत्साह से भरे उत्फुल्ल वदन, अपने असाधारण अतिथि की बड़े प्रेम से अगवानी की। आश्रम के फाटक पर पार्लमेंट के सदस्य श्री सुरेन्द्रमोहन घोष ने पंडितजी का परिचय श्री नलिनीकांत गुप्त से कराया। फिर उन्हें पांडिचेरी राज्य का पलस्तर का बना एक मॉडल दिखलाया गया, जो २६ जनवरी को गणतंत्र दिवस के अवसर पर दिल्ली में प्रदर्शनार्थ तैयार किया गया था। मॉडल में प्रतिष्ठित आदर्श की युक्ति श्रीमां ने दी थी, पर बनाया था इसे आश्रम के कलाकारों और शिल्पियों ने। मॉडल एक नौका में रखा था, जो पांडिचेरी, कारीकल, माही और यनाम के सागरांचल का प्रतिनिधि-रूप थी। चार सिंह, जो भारत की चार शक्तियों के प्रतीक हैं, नौका के पूर्वभाग से लेकर पृष्ठ भाग तक की रक्षा कर रहे थे। केन्द्र में एक चबूतरा था, जिसे चार प्रतिमाएं सहारा दिये हुए थीं। ये चारों प्रतिमाएं चारों बड़े महादेशों का प्रतिनिधित्व करती थीं। आसनस्थ बुद्ध एशिया के प्रतिनिधि-स्वरूप थे और मिस्र की आइसिस अफ्रीका का, पलास एथिनी यूरोप का प्रतिनिधित्व कर रही थीं और 'स्टेच्यू ऑव लिबर्टी' अमरीका का। उसमें लाल और सफ़ेद गुलाबों के आठ स्तंभ निर्मित थे, जो मानव के महान् भविष्य को प्रतिफलित करनेवाली आध्यात्मिक

शक्ति का प्रतीक है। चबूतरे के ऊपर भूमंडल के मानचित्र का एक गोलक था, जिसके एक ओर एक भारतीय नारी हाथ में ताल-पत्र लेकर खड़ी थी—जो विजय का सूचक है, और दूसरी ओर एक फ्रांसीसी महिला शांति-स्वरूप ज़ैतून की शाख़ लेकर। गोलक के ऊपर शांति का दूत कपोत उतर आया था। मॉडल गणतंत्र दिवस के लिए प्रदर्शनार्थ समय पर नहीं पहुंच सका। पीछे से इसे पंडित नेहरू के पास भेज दिया गया और उन्होंने इसे अपने व्यक्तिगत संग्रह में सम्मिलित कर लिया। पहले से ही यह उन्हें बहुत भा गया था।

श्रीअरविन्द की समाधि के पास पहुंचकर पंडितजी ने उसपर फूलों का हार चढ़ाया और सलामी देनेवाले सदस्यों की लम्बी वीथि से होते हुए सीढ़ियों पर चढ़ श्रीमां के कमरे में दाखिल हुए। वहां श्रीमां के साथ अकेले में उनकी बातचीत हुई। लौटने पर शारीरिक शिक्षण-विभाग के निर्देशक श्री प्रणव ने उन्हें व्यायाम-प्रदर्शन की एक कार्य-सूची दिखाकर तीसरे पहर आश्रम के खेल के मैदान का निरीक्षण करने का अनुरोध किया। यद्यपि उनके कार्यक्रम की सूची पांडिचेरी के सरकारी अफसरों द्वारा तैयार की गई थी और उसमें से किसी अन्य कार्य के लिए अवसर निकालना कठिन था, फिर भी पंडितजी ने एतदर्थ चेष्टा करने का वचन दिया। मुख्य आश्रम के अहाते से अब वह आश्रम के पुस्तकालय में आये और फिर उन्हें आश्रम का अतिथि-गृह 'गोलकुंड' दिखलाया गया। 'गोलकुंड' एक विशाल आधुनिक इमारत है। कहते हैं, भारत में बनाई जानेवाली इस ढंग की यह पहली इमारत है।

दिन का कार्यक्रम समाप्त कर नेहरूजी ने अपनी कार आश्रम के खेल के मैदान की ओर मोड़ी। खिलाड़ी लोग, जो उनकी प्रतीक्षा में खड़े थे, खुशी से उछल पड़े। आते ही राष्ट्रीय गान द्वारा उनका अभिवादन हुआ और श्रीअरविंद की पुस्तक 'दि मदर' के एक उद्धरण का पाठ अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, हिन्दी और फ्रांसीसी भाषा में उन्हें सुनाया गया। खेल के मैदान में श्रीमां ने उनका स्वागत किया और अपने सम्मानार्थ आयोजित प्रदर्शन देखने के लिए वह उनके पास बैठ गये। श्रीमां ने उनके कोट के बटन-होल में एक लाल गुलाब लगा दिया। पीने को एक गिलास नारियल का जल उन्हें दिया गया। फिर कई तरह के कसरती खेल दिखलाये गए और मार्च-पास्ट एवं जिमनास्टिक मार्चिंग हुआ। कार्यक्रम के अंत में सदा की भांति चंद मिनटों का ध्यान हुआ, जिसमें श्रीमां के पार्श्व में खड़े हो उन्होंने भी भाग लिया। तब आश्रम के बैंड ऑर्केस्ट्रा ने जन-गण-मन बजाया और हम सबों ने आदित्यवत् प्रधान मंत्री को हृदय से विदाई दी।

पांडिचेरी में दुबारा उनका आगमन उसी साल २९ सितंबर को हुआ। इस बार इंदिराजी भी उनके साथ थीं। पर अबकी नगर में केवल चंद घंटे ठहरने की बात थी, अतः सरकारी कार्यक्रम में आश्रम सम्मिलित नहीं हो पाया था। इंदिराजी सबेरे आश्रम आईं। श्रीअरविन्द की समाधि पर फूल चढ़ाने के बाद श्रीमां से कुछ देर तक उनकी बातचीत हुई। पता नहीं, इंदिराजी ने पिता से अनुरोध किया था या स्वयं ही अपने अत्यंत व्यस्त कार्यक्रम में से किसी प्रकार समय निकालकर अथवा उसे कुछ अंशों में काट-छांटकर जब वह एकाएक हमारे बीच आ पहुंचे तो हमारे आश्चर्य और हर्ष का ठिकाना न रहा। श्री लाल-बहादुर के साथ इंदिराजी पहले ही आ गई थीं और श्रीमां से बातें कर रही थीं। नेहरूजी श्री कामराज को भी साथ लिये आये थे। वह श्रीमां के पास बैठे और बाकी लोगों ने बाद के आसन ग्रहण किये।

श्रीमां ने सोने का एक प्रतीकी पदक उनके कोट में लगाने की इच्छा प्रकट की और वह इसके लिए तत्काल सामने झुक आये। श्रीमां से कुछ बातें कर और जन-गण-मन का समवेत गान सुनकर, जिसे सहाना देवी ने विशेष रूप से प्रस्तुत किया था, उन्होंने हमसे विदा ली।

तीसरी और अंतिम बार उनका आगमन हमारे बीच १३ जून, १९६३ को हुआ। इस दिन उनका सबसे पहला सार्वजनिक कार्यक्रम रहा आश्रम में आना। आते ही सीधे वह श्रीमां के तिमंजिले नये कमरे में चले गये और श्री मां के पास कुछ देर बैठे रहे। इस अवसर पर श्री सुरेन्द्रमोहन घोष भी उनके साथ थे। कोई बात-चीत नहीं हुई। वह थके-से लगते थे और श्रीमां ने उन्हें विश्राम करने को कहा। इस बार माताजी ने उन्हें लाल गुलाब न देकर सफेद गुलाब दिया था, जो शान्ति का सूचक है। चंद मिनटों तक ध्यान हुआ और तब वह श्रीमां से विदा ले नीचे उतरने लगे। सीढ़ियों पर शारीरिक शिक्षण-विभाग की एक कप्तान तारा मिली और उसने उन्हें बड़े खेल के मैदान में आने को आमंत्रित किया।

तत्पश्चात् श्री कामराज और श्री सुब्रह्मण्यम को साथ ले वह श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र में गये। वहां उन्हें फूलों की माला पहनाई गई और प्राचीन भारतीय परम्परा की शैली से ललाट पर तिलक लगाया गया। उन्होंने नई विधि द्वारा अध्यापन के भौतिक विज्ञान के एक क्लास का निरीक्षण किया और उच्चतर शिक्षा के एक अंग्रेज़ी क्लास का भी। अपने कुशल प्रश्नों का उत्तर पाकर वह बड़े प्रसन्न दिखलाई पड़ रहे थे। उनसे कुछ अध्यापकों का परिचय कराया गया और श्रीअरविन्द की लिखी कुछ पुस्तकें भेंट की गईं। वहां से उन्हें प्रयोगशाला ले जाया गया और ऑडियो विज़ुअल प्रसाधन दिखलाये गए। जीव-विज्ञान और भू-विज्ञान के क्लासों का भी उन्होंने निरीक्षण किया। हर चीज में बड़ा रस लिया।

तीसरे पहर हमारे खिलाड़ियों के हर्ष की वृद्धि करने वह बड़े खेल के मैदान में आ पहुंचे और दुमंजिली गेलरी के ऊपर से सारे मैदान में एक ही साथ होते सभी टोलियों के रंग-बिरंगे खेल देखे। कुछ देरतक वह योंही शांत, मौन, एकाग्र चारों ओर एक-टक देखते रहे, मानों उनका स्वप्न-द्रष्टा और आदर्शवादी, पुनरुज्जीवित भारत के सृजनात्मक जीवन का प्रथम दृश्य देख रहा हो। और तब वह नीचे उतरे।

खेल के मैदान में पहुंचते तारा ने "आप आये, इसके लिए हम आपका शुक्रिया अदा करते हैं", कहकर उनका स्वागत किया था और अब जब वह जाने लगे तो कप्तान मोना ने, "आप आये, इसके लिए हम बड़े आभारी हैं", कहकर उन्हें विदाई दी। पर उन्होंने लगे हाथों इसका जवाब दिया, "इसके विपरीत, यहां आने से तो मुझे खुशी हुई है।" फिर तैरने का तालाब देखकर, एक कुशल तैराक से विनोद करते हुए उन्होंने विदा ली।

उस दिन संध्या समय एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते उन्होंने कहा था, "श्रीअरविन्द-आश्रम ने जो शिक्षा-प्रणाली अपनाई है, जिसमें शारीरिक शिक्षण पर बल दिया गया है, वह बड़ी उत्कृष्ट है। पर उसे हमारे स्कूलों में प्रचलित करना ज़रा कठिन होगा।" मद्रास में भी भाषण देते उन्होंने प्रायः ये ही शब्द दुहराये थे।

श्रीअरविंद अंतरराष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र ने उनके नाम जब एक पत्र दिल्ली भेजा तो उन्होंने उसपर एक टिप्पणी लगा दी थी—"क्या भारत में ऐसी कुछ संस्थाएं नहीं हो सकतीं, जो स्वायत्त हों और विकास

का उनका अपना ही स्वतंत्र मार्ग हो, फिर भी सरकारी अनुदान उन्हें प्राप्त हो?" उनकी इस टिप्पणी का विजली के समान असर पड़ा और उसके थोड़े ही दिन वाद शिक्षा-मंत्रालय एवं विश्वविद्यालय अनुदान समिति की ओर से हमारे शिक्षा-केन्द्र को पत्र मिले, जिनमें उन्होंने हमारी शिक्षा-पद्धति का पूरा व्यौरा मांगा था। वाद में विश्वविद्यालय अनुदान समिति ने यहां आकर केन्द्र का निरीक्षण किया, हमारी शिक्षा-प्रणाली देखी और उसकी सभी क्रियाओं की आवश्यक सूचनाएं वटोरीं।

हमारी मातृभूमि के दिवंगत कर्णधार पंडित जवाहरलाल नेहरू महान् एवं शालीन थे—महान् और उच्च, उस हिमालय-जैसे जिसके प्रति उनका प्रगाढ़ प्रेम था, और शालीनता में प्राचीन भारत के शासकों, चन्द्रगुप्त एवं अशोक के समान, जिनका जीवन उनकी युवावस्था की उज्ज्वल प्रेरणा था।

उनके निधन पर श्रीमां ने उसी दिन अपने हाथ से लिखकर एक संदेश दिया था, "नेहरू अपना शरीर त्याग रहे है, पर उनकी आत्मा भारत की आत्मा के साथ एक है, और वह शाश्वत काल में रहती है।" ●

चाचा नेहरू

मुझे वचपन में डाक की टिकटें इकट्ठी करने का बड़ा शौक था। जहां कहीं से भी टिकटें मिलने की संभावना होती, मैं प्रयत्न करता। उसके लिए कभी जेब से खर्च भी करना पड़ता तो करता। एक दिन सोचने लगा कि विदेशों से सबसे अधिक पत्र किसके पास आया करते हैं। अचानक ध्यान नेहरू चाचा की ओर गया। उनके पास तो दुनिया-भर की चिट्ठियां आती हैं। उनसे जितनी टिकटें मिल सकती हैं, उतनी और किससे मिल सकती हैं!

पर क्या एक बालक की प्रार्थना पर वह ध्यान देंगे? उनके पास इतने बड़े-बड़े काम हैं। लेकिन मन न माना और आखिर नेहरू चाचा को मैंने चिट्ठी लिख दी।

यह सन् १६५६ की बात है। चिट्ठी भेजने के कुछ ही दिनों बाद देखता क्या हूं कि चाचा नेहरू के निजी सचिव का पत्र आया, जिसमें लिखा था कि "आपके द्वारा प्रेषित पत्र प्रधानमन्त्रीजी के नाम प्राप्त हुआ। प्रधान मन्त्रीजी की आज्ञानुसार कुछ प्रयुक्त विदेशी डाक-टिकटें आपको भेजी जा रही हैं।"

टिकटें मुझे मिल गईं। मैं सोचता हूं, दुनिया में शायद ही नेहरू चाचा जैसा प्रधान मंत्री हुआ होगा, जो मामूली बालकों से भी इतना प्रेम रखता हो!

—रमेशचन्द्र चाण्डक

जैसा दमन और उत्पीड़न उन दिनों होता था, वह पंडितजी को जरा भी पसंद नहीं था। अपने वश-भर वह उसका कड़ा विरोध और मुकाबला करते थे।

दिसम्बर, १९२९ में लाहौर-कांग्रेस के अवसर पर मैं फिर पंडितजी को निकट से देख सका था। गांधीजी की मण्डली के साथ मैं भी लाहौर पहुंचा था। लाहौर-कांग्रेस देश के स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास में अमर हो चुकी है। इसी कांग्रेस में पंडितजी पहली बार अखिल भारत राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापति बने। उस समय उनकी उम्र ४० की थी। देवदूत का-सा उनका रूप, वैभव और शील-संस्कार था। राष्ट्रीय सेवा के क्षेत्र में पंडितजी का ही एक ऐसा उदाहरण है, जहां पिता के बाद पुत्र ने राष्ट्र-सेवा के लिए पिता की गद्दी संभाली। सन् १९२८ की कलकत्ता-कांग्रेस का सभापतित्व स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू ने किया था। इसी कांग्रेस में यह निर्णय हुआ था कि यदि अंग्रेज सरकार एक साल के अन्दर देश को औपनिवेशिक स्वराज्य न दे, तो फिर देश सम्पूर्ण स्वतंत्रता के लिए जूझेगा। वर्षभर भारी प्रयत्न हुए। गांधीजी ने सरकार को समझाने की पूरी कोशिश की, पर सरकार टस-से-मस न हुई। १९२९ का दिसम्बर आ गया। सरकार के रुख में कोई नरमी नहीं आई। सारे देश में इसके कारण बड़ा असन्तोष था। जब गांधीजी भी सरकार को औपनिवेशिक स्वराज्य की घोषणा के लिए राजी नहीं कर पाये, तो कांग्रेस के सामने सम्पूर्ण स्वतंत्रता के लिए जूझने के संकल्प के सिवा और कोई उपाय नहीं रह गया। देश के नौजवान नेताओं और कार्यकर्ताओं को औपनिवेशिक स्वराज्य की बात जंच ही नहीं रही थी। बड़ों और बुजुर्गों का लिहाज रखने के ख़याल से ही उन्होंने कलकत्ता-कांग्रेस में औपनिवेशिक स्वराज्य का प्रस्ताव पास होने दिया था। जब सरकार उसके लिए सहमत नहीं हुई, तो सारे देश में हवा बदली और लोकभावना सम्पूर्ण स्वातंत्र्य के पक्ष में हो गई। राष्ट्रीय जीवन के एक ऐसे ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण मोड़ के अवसर पर राष्ट्र ने स्वातंत्र्य-संग्राम की बागडोर पंडितजी के हाथ में सौंपी और उन्हें अपना 'बेताज का बादशाह' बनाया। जिन्होंने लाहौर-कांग्रेस के मनोनीत सभापति के रूप में पंडितजी को देखा है, पश्मीने की काली टोपी और काली अचकन पहने, सफेद घोड़ पर सवार पंडितजी को लाहौर की सड़कों से फूलों की वर्षा और बलैया लेती तथा नेह बरसाती हजारों-हजार की भीड़ के बीच से गुजरते देखा है, वे उस देव-दुर्लभ दृश्य को जीते-जी तो शायद ही कभी भूल सकें!

बड़े नोक-झोंकभरे वातावरण में कांग्रेस-अधिवेशन का काम लाहौर में शुरू हुआ। रावी नदी के किनारे कांग्रेसनगर खड़ा किया गया था। जोरों का जाड़ा पड़ रहा था। ठिठुरन और सिहरन-भरी हवा में सुबह से रात तक चर्चाएं चलती रहती थीं। क्या लोगों में, क्या नेताओं में और क्या कार्यकर्ताओं तथा स्वयंसेवकों में, उत्साह तो बस उमड़ा ही पड़ता था। इस उत्साह की गर्मी के आगे मौसमी जाड़े की सारी सिहरन खतम हो गई थी। किसीको उसकी वजह से कोई परेशानी नहीं मालूम होती थी। जाड़े से डर-कर अपने-अपने डेरे पर पड़े रहने और अंगीठी तापते रहने की बात तो किसीको जंचती ही नहीं थी। हर किसीके चेहरे पर एक मस्ती थी, एक कुतूहल था और था उमड़ता उत्साह, वह जोश और खरोश, जिसकी मिसाल देना मुश्किल है।

उन दिनों कांग्रेस में कांग्रेस की ही रीति-नीति से भारी मतभेद रखनेवाला असंतुष्ट जवानों का एक

त्यागी दल था। स्वर्गीय श्री सुभाषचन्द्र बोस इस दल के अगुवा थे। लाहौर-कांग्रेस की बैठकों में हुई चर्चाओं के चलते इस असंतोष ने उग्र रूप धारण किया और सुभाषबाबू गुस्से से बेताब हो उठे। मंच पर बैठे हुए पं० मोतीलालजी, जवाहरलालजी और गांधीजी को ही कांग्रेस की सारी बुराइयों का जनक मानते हुए सुभाषबाबू ने उनपर अनेक आरोप लगाये और अपना विरोध प्रदर्शित करने के लिए वे अपने कुछ साथियों को लेकर सभा-स्थल से जब निकले, तो हवा में हाथ फेंकते हुए और यह कहते हुए निकले कि ये 'फादर, सन एण्ड होली घोस्ट' अर्थात्, 'पिता, पुत्र और पुरोहित' ही इन सारी खुराफातों की जड़ में हैं! जिस गर्जन-तर्जन के साथ यह सारा दृश्य लाहौर-कांग्रेस के चलते उस दिन वहां अभिनीत हुआ, उसकी एक अमिट छाप मेरे दिल पर बनी हुई है। वातावरण में एक सिहरन-सी फैल गई।

३१ दिसम्बर, १९२९ की आधी रात। लाहौर में रावी के तट पर भारत की कोटि-कोटि जनता के अपने माने हुए प्रतिनिधि और सेवक गांधीजी और जवाहरलालजी के सान्निध्य में इकट्ठे हुए। तिरंगा लहराया गया। जोशीले गान गाये गये और गंभीर भाव से प्रतिज्ञा की गई कि हम अपने देश को विदेशियों की दासता से पूरी तरह छुड़वाकर ही दम लेंगे! लाखों कंठों ने उस रात देश की स्वतंत्रता के संकल्प का बड़े उत्साह के साथ उद्घोष और जय-जयकार किया। पंडितजी के सिर पर सरदारी का सेहरा बंधा। गांधीजी ने उसे 'कांटों का ताज' कहा। पंडितजी उसे पहनकर मैदान में कूद पड़े। फिर लगातार १७ वर्षों तक सम्पूर्ण स्वतंत्रता के लिए जी-जान से जूझे। हर साल २६ जनवरी के दिन अपने संकल्प को दोहराने और दृढ़ करने लगे। सन् १९४७ की १५ अगस्त ने देश को स्वतंत्र देखा और पंडितजी को अपने प्रधान-मंत्री के रूप में पाकर वह दिन धन्य हुआ।

इस बीच देश में कई उतार-चढ़ाव आये। सन् १९३० में देश ने गांधीजी के नेतृत्व में नमक-सत्याग्रह का एक अभूतपूर्व आंदोलन चलाया। इस आंदोलन के चलते न सिर्फ देश का हर कोना हिल उठा, बल्कि अंग्रेजी हुकूमत की जड़ भी हिल उठी और काफी ढीली हो गई। स्वराज्य एक ही इंच दूर रह गया। देश की गुलामी के इतिहास में पहली ही बार देश की माताओं, बहनों और बेटियों ने केसरिया बाना पहनकर स्वतंत्रता-संग्राम में भाइयों के साथ बराबरी से जूझना शुरू किया। गांधीजी का आवाहन उनके लिए अनिवार्य हो उठा। वे घर-बार और परदा छोड़कर मैदान में आ गईं। उन्होंने लाठियां खाईं, गोलियां खाईं, वे जेलों में गईं, उन्होंने तन के और मन के अकथनीय कष्ट सहे, पर मुड़ना और झुकना पसंद न किया। पंडितजी की वीर पत्नी कमलाजी ने और वीर माता स्वरूपरानीजी ने इस अवसर पर देश की बहनों का नेतृत्व बड़ी तेजस्विता और दृढ़ता के साथ किया। सारे देश में तप, त्याग और बलिदान की एक प्रचंड हवा बनी। देशवासी ही नहीं, दुनिया के भी सब लोग थर्रा उठे। पंडितजी का पूरा परिवार इसमें अपनी आहुति देने के लिए आगे बढ़ा। माता, पिता, पत्नी, बहन, बहनोई और अन्य सगे-संबंधियों में से अनेक ने जेल-यात्राएं कीं और भारी मानसिक और शारीरिक यातनाएं सहीं। देश में नवजागरण का एक ज्वार उठ खड़ा हुआ। दुनिया दंग रह गई। सरकार सहमी। उसने समझौते का हाथ बढ़ाया।

फिर तो देश आगे ही बढ़ता चला गया। सन् १९३६ में लखनऊ-कांग्रेस हुई। पंडितजी दूसरी बार सभापति चुने गये। पर इस बार वह अकेले थे। कमलाजी उनके साथ न थीं। उनके शरीर की मुट्ठी-भर

राख लेकर पंडितजी हाल ही विदेश से लौटे थे। उस समय मैं भी अखिल भारत चरखा-संघ द्वारा आयोजित खादी-ग्रामोद्योग प्रदर्शनी के काम से लगभग चार महीने लखनऊ रहा था और उस अधिवेशन में मुझे फिर पंडितजी को बहुत निकट से देखने का अवसर मिला था। कमलाजी के वियोग की व्यथा से उनका दिल भरा हुआ था। चेहरे पर एक प्रकार की सौम्य गंभीरता छा गई थी। शरीर की सुकुमारता बढ़ गई थी। सुन्दरता तो उनकी अपनी थी ही। शील-संस्कार की तो वह मूर्ति ही थे। उस समय का उनका वह रूप लक्ष्मण का नहीं, राम का-सा लगा। 'कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं' कहनेवाले लक्ष्मण के-से स्वभाव के धनी पंडितजी उन दिनों काफी सौम्य प्रतीत हुए।

फिर फ़ैज़पुर-कांग्रेस के अवसर पर पंडितजी तीसरी बार कांग्रेस के सभापति बने। मैं सन् १९३६ से सन् १९४० तक वर्धा के महिला-आश्रम में रहा। वहां बापू की उपस्थिति के कारण देश-विदेश के नेताओं का जमघट लगा ही रहता था। साल में कई बार कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठकें वर्धा में होतीं। इस निमित्त और अन्य निमित्तों से भी पंडितजी अक्सर वर्धा आया करते थे। वह स्वर्गीय श्री जमनालालजी के अतिथि-गृह में ठहरते थे। कभी-कभी हम खास अवसरों पर उन्हें महिला-आश्रम में आग्रहपूर्वक आमंत्रित करते थे। उस समय वर्धा का महिला-आश्रम सारे भारत की बहनों का एक तीर्थ-सा बना हुआ था। राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं के परिवार की बहनें, बेटियां और बहुएं वहां प्रान्त-प्रान्त से विद्याध्ययन के लिए इकट्ठी होती थीं। भारत-माता का वह एक छोटा प्रतीक ही बन गया था। पंडितजी बड़ी सहजता से आश्रम में बहनों के बीच आ जाते थे। उस समय की उनकी सरलता देखते ही बनती थी। उनकी मुस्कान मनोहारिणी होती थी। बहनों के बीच वह ज्यादा बोलते नहीं थे, नपे-तुले शब्दों में अपनी बात कहकर चुप हो जाते थे। बहनों के कामों और कार्यक्रमों में विशेष रुचि लेते थे। बहनों की हस्तलिखित पत्रिका के लिए कभी अपने 'दो शब्द' भी लिख देते थे। कभी-कभी स्वर्गीय सेठ जमनालालजी भी उन्हें हमारे बीच खींच लाते थे, कभी गम गलत करने के बहाने, कभी नया कुछ दिखाने-समझाने के बहाने। वह जब भी आते, आश्रम-परिवार के लिए तो वह एक पर्व-दिन ही होता। सब पलक-पांवड़े बिछाये उनकी प्रतीक्षा किया करते और उन्हें अपने बीच पाकर धन्य होते। बहनों के बीच पंडितजी की बाल-सुलभ सरलता एक देखने की चीज़ थी। उन दिनों उनके चेहरे पर एक प्रकार की अगम्य-सी उदासी की छाया बनी रहती थी। उनका वह रूप भी आजतक आंखों में बसा हुआ है।

फिर तो सन् १९४७ के बाद की ही कुछ स्मृतियां रह जाती हैं। बीच में उनको देखने-सुनने के अवसर नहीं मिले। १९४८ के जून में मध्य भारत का नया राज्य बना और पंडितजी उस निमित्त कभी ग्वालियर और कभी इंदौर आये, तो उन्हें दूर-पास से देखने का लाभ मिला। उन दिनों मध्य भारत में मुझे कुछ महीनों के लिए मंत्रिमण्डल के एक सदस्य का स्थान मिला था। इस बहाने शासन और राज-काज-संबंधी कुछ चर्चाओं में उनके निकट बैठ पाया था। उस समय की एक विनोदपूर्ण घटना ध्यान में आ रही है। पंडितजी महाराजा ग्वालियर के राजमहल में ठहरे थे। वहीं कांग्रेस के कार्यकर्ताओं की एक बैठक रखी गई थी। गुना के उस जमाने के एक प्रसिद्ध कांग्रेसी स्वर्गीय श्री नाथूलालजी वकील को भगवान् ने बहुत ही भारी-भरकम काया दी थी। उनका स्थूल शरीर दर्शनीय था। तांगेवाले, मोटरवाले सब कोई उनसे

घबराते और उन्हें दूर से ही नमस्कार करते थे। कोई उनको सवारी के रूप में बैठाने की हिम्मत नहीं करता था। इसलिए गुना के काम की दृष्टि से तो उन्होंने अपने लिए अपने नाप की बैठकवाला एक अलग तांगा ही बनवा लिया था। जब यह नाथूलालजी कांग्रेस-कार्यकर्ताओं की उस बैठक में पहुंचे और अपनी भारी काया के साथ पंडितजी के सामने बैठे, तो पंडितजी बड़ी देर तक इन्हें एकटक देखते और मुस्कराते रहे। इस निमित्त उन्होंने सबके बीच थोड़ा मीठा विनोद भी किया।

पंडितजी का सबसे बड़ा गुण और उनकी सबसे बड़ी सिद्धि थी उनका अत्यंत स्वस्थ और सुदृढ़ शरीर। सारे देश में एक वह ही ऐसे रहे, जिन्होंने अपने अटूट संयम और नियम-पालन के कारण लोक-सेवा के कठिन पचास वर्षों में कभी अपने शरीर को रोग से ग्रस्त नहीं होने दिया। वह चौदह साल अंग्रेजों के जेलखानों में रहे। देश-विदेश घूमे। कठिन-से-कठिन शारीरिक और मानसिक यातनाएं उन्होंने सहन कीं। फिर भी जवानी से लेकर बुढ़ापे तक उनका स्वास्थ्य अद्भुत रूप से सुन्दर और सुदृढ़ बना रहा। इस अर्थ में वह अपने समय के एक महान योगी थे। मैं तो अपनी चर्चाओं में उनकी इस अनुपम सिद्धि की कथा पिछले कई वर्षों से अपने साथियों और श्रोताओं को सुनाता रहा हूं। इसमें संदेह नहीं कि वह इस युग के एक बड़े प्रतापी पुरुष और लोकनेता थे। वह एक बड़ी हद तक 'वक्रतुण्ड' थे, 'महाकाय' थे और 'सूर्यकोटि समप्रभ' भी थे। गणपतित्व के लिए ही जन्मे थे। देश में गणतंत्र को स्थिर करके ही बिदा हुए। यही कारण था कि लगातार सत्रह वर्षों तक भारत-जैसे महान् देश का प्रधान-मंत्रित्व करने में वह अग्रणी रहे। शरीर और मन के अतिश्रम से थके पंडितजी पर पहली बार भुवनेश्वर-कांग्रेस के दिनों में बीमारी ने जोर का और आकस्मिक आक्रमण किया। वही पहला और अंतिम सिद्ध हुआ। उसके बाद वह पूरे महीने भी हमारे बीच नहीं रह सके। सच है कि उनका शरीर नहीं रहा, पर वह तो हैं और आनेवाली अनेकानेक सदियों तक वह लोकहृदय पर विराजे रहेंगे! उनकी पुण्य और प्रेरक स्मृति को मेरे शत-सहस्र प्रणाम! ●

बुनियादी तौर पर सरकार नहीं बल्कि जनता ही एक मजबूत राष्ट्र को बनाती है। सरकार तो जनता की इच्छाओं को अमली जामा पहनाने का महज एक तरीका है।

—जवाहरलाल नेहरू

स्फटिक के समान स्वच्छ

वह प्रकाशपुंज, जिसे हम इतने नजदीक से देखते थे और अतिशय प्यार करते थे, उसका सार्वजनिक जीवन और उसका पार्थिव शरीर मृत्यु के उस झंझावात में पड़कर हमारी आंखों से ओझल हो गया, जिसकी लपट से संसार का कोई भी प्राणी कदापि वच नहीं सकता। किन्तु उसकी निर्भीक आत्मा की अमर ज्योति आज पहले की अपेक्षा कहीं अधिक प्रज्वलिल होकर उस कोटि-कोटि जनता का पथ आलोकित कर रही है, जो उनके आदर्शो, आशाओं और आकांक्षाओं के प्रति आस्थावान है।

१९२९ में जब वह भारत के राजनैतिक गगन के उदीयमान नक्षत्रों में एक थे, गांधीजी ने उनके बारे में कहा था, "वह स्फटिक की भांति स्वच्छ हैं, संदेह की सीमा से परे और सच्चे हैं। वह एक अद्वितीय एवं निर्विकार सेनानी हैं। देश उनके हाथों में सुरक्षित है।" गांधीजी का अपने उत्तराधिकारी का मूल्यांकन और उनकी भविष्यवाणी पूर्णतया सत्य सिद्ध हुई। एक सच्चे सैनिक की भांति कर्तव्य के मोर्चे पर लड़ते हुए ही उनकी मृत्यु हुई।

वास्तव में उनके जीवन का निर्माण ही एक ऐसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठा पाने के लिए हुआ था, जिसकी कल्पना स्वयं भी वह प्रारम्भ में नहीं कर पाये थे। इस गौरवमय स्थान तक पहुंचने के लिए उन्हें अनवरत कठोर संघर्ष करना पड़ा और अत्यन्त वीहड़ पथ से गुजरना पड़ा। सम्पूर्ण मानवता के इतिहास में गिने-चुने ही ऐसे व्यक्ति मिलेंगे, जिन्होंने नाना प्रकार की कठिनाइयों और यातनाओं का सामना करते हुए इतने उच्च पद तक पहुंचने में सफलता प्राप्त की। जवाहरलाल नेहरू ने अपने दीर्घकालीन सार्वजनिक जीवन में उपस्थित होनेवाली समस्त कठिनाइयों और अवरोधों को वीरतापूर्वक पार किया और सफलता के शिखर पर पहुंचकर न केवल भारत के लिए, अपितु समग्र मानवता के लिए शांति, स्वतंत्रता और सद्भावना का संगीत सुनाया। वह यह जानते थे कि उन्हें अपनेको जगन्नियंता के प्रति, भारत और समस्त मानवता के प्रति, महात्मा गांधी के प्रति और अन्ततः हमलोग, जो उनके बाद भी बच रहे हैं, उनके प्रति अपने को सच्चा सिद्ध करना है।

गांधीजी की भांति जवाहरलाल ने जनसाधारण के उत्थान तथा उसकी सेवा के लिए आत्मार्पण कर दिया था, और गांधीजी की ही भांति वह भी असाधारण सिद्ध हुए।

महात्मा गांधी के निर्देशन में काम करते हुए उन्हें निकट से देखने और उनका परिचय प्राप्त करने का दुर्लभ सौभाग्य मुझे मिला। मेरा विवाह पंडितजी के घर 'आनन्दभवन' में सम्पन्न हुआ। विवाह की

तिथि इस प्रकार निश्चित की गई थी कि पंडित जवाहरलाल नेहरू उस अवसर पर उपस्थित हो सकें और हमको अपनी बधाई-आशीर्वाद दे सकें। आखिर वह थे कहां? जेल में थे। स्वातंत्र्य-संग्राम के दिनों में वही उनका दूसरा घर था। किसी व्यक्ति की महत्ता की झलक तब मिलती है जब वह स्वयं अपने त्याग और बलिदान का मूल्यांकन करता है। सामान्य व्यक्ति की दृष्टि में निश्चय ही उनका त्याग अत्यन्त महान था। लेकिन एक बार उन्होंने एक विदेशी व्यक्ति से कहा था, "मैंने कभी अपनी किसी ऐसी चीज का बलिदान नहीं किया, जो वास्तव में मेरे लिए मूल्यवान रही हो।" उनका इशारा सम्पत्ति और भौतिक सुखों की ओर था, जो उन्हें कभी आकृष्ट नहीं कर सके।

नेहरूजी का सम्पूर्ण जीवन देश के लिए था और एक प्रकार से वह इस महान राष्ट्र की प्रतिमूर्ति थे। अपनी सहृदयता, गरीबों के प्रति सहानुभूति और निःस्वार्थ भाव के ही कारण वह जनता के प्रिय पात्र बन सके। त्रस्त मानवता के लिए उनका हृदय विकल रहता था। हर आंख से निकले हर आंसू को पोंछ सकें, यही उनकी आकांक्षा थी। १५ अगस्त, १९४७ की अर्धरात्रि में भाषण करते हुए उन्होंने कहा था, "हो सकता है कि यह हमारी सामर्थ्य के बाहर हो, लेकिन जबतक आंसू और यातना का चिह्न भी रहेगा तबतक हमारे कार्यों की इतिश्री नहीं होगी।"

नेहरूजी का जीवन बहुमुखी रहा है। वह एक कुशल राजनेता, अनुभवी राजनयिक (कूटनीतिज्ञ) अथक योद्धा और प्रतिभाशाली लेखक थे। सबसे अधिक, वह मानवता के पुजारी थे। उनमें पूर्व और पश्चिम का सम्मिश्रण था। उन्होंने दुनिया को दिखा दिया कि किस प्रकार एक युग के बाद दूसरे युग में सम्मानपूर्वक पदार्पण किया जा सकता है। उन्होंने सभी प्रकार के साम्राज्यवादों का विरोध किया, परंतु प्रतिशोध की भावना उनमें कभी न थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद उन्होंने संसार को यह दिखा दिया कि शासक और शासित के बीच की कटुता को किस प्रकार दूर किया जा सकता है।

नेहरू भारतीय क्रांति की देन थे। लेकिन वह उससे भी अधिक थे। उन्होंने पश्चिमी बुद्धिवाद, फेबियन समाजवाद और नवमानवतावाद से प्रेरणा प्राप्त की, जिनका उद्देश्य विश्व को मानवमात्र के रहने के लिए अधिक उपयुक्त बनाना है।

राष्ट्र के लिए नेहरू ने जिन नीतियों को निर्धारित किया था, उन्हींका अनुसरण करके ही भारत अपने व्यक्तित्व और शक्ति की वृद्धि कर सकता है। उस दुर्भाग्यपूर्ण दिवस को, जैसाकि राष्ट्र को संबोधित करते हुए राष्ट्रपति राधाकृष्णन ने कहा था, "हम सब, जो उनके पीछे रोने के लिए बच रहे हैं, उनके आदर्शों को साकार करने में प्रयत्नशील रहें। यही उस बिछुड़े नेता के प्रति सर्वोत्तम श्रद्धांजलि होगी।"

धर्म-निरपेक्षता, लोकतंत्र और समाजवाद उनकी राजनैतिक परिधि के आधार थे। यदि राष्ट्र को जीवित रहना है तो इन आदर्शों के प्रति हमारी आस्था अधिकाधिक बलवती होनी चाहिए और चाहे जैसी मरीचिका हमें लुभाने के लिए क्यों न दिखाई दे, हमें उन नीतियों से विमुख होने की बात भी नहीं सोचनी चाहिए। अपने नेता के लिए दुःख-शोक मनाने के साथ ही हमें उनसे प्रेरणा और सहारा लेना चाहिए। ●

त्रिभुवन नारायण सिंह

पंडितजी के संदेश

गत २७ मई को देश की उस विपत्ति के समय मैं पंडितजी के मकान पर था। हमारे कई मित्र चिंतित, अन्यमनस्क और दुखित नीचे के बड़े कमरे में चुपचाप खड़े थे। ऊपर डाक्टर लोग पंडितजी की चिकित्सा में व्यस्त थे। वे चन्द घड़ियां मुझे अपनी जिन्दगी में कभी नहीं भूलेंगी। फिर चन्द घंटों के बाद डाक्टरों द्वारा पता चला कि हमारे पूज्य नेता इस संसार में नहीं रहे। प्रधान मंत्री का वह बड़ा मकान, जहां उस समय हजारों व्यक्ति उनकी बीमारी का समाचार सुनकर एकत्र हो गये थे, एकाएक सूना-सा और अज्ञात-सा प्रतीत होने लगा। यही नहीं, ऐसा मालूम होने लगा, मानो सारे देश में अंधकार छा गया। एक-एक करके आंखों के सामने पंडितजी के जीवन की बहुत-सी बातें आ गईं। अब भी उनका मुस्कराता हुआ चेहरा आंखों के सामने नाच उठता है। जितने भी आदमी वहां इकट्ठे हुए, उनकी आंखों से आंसू की धारा उमड़ पड़ी।

हम सब लोग लड़के, बड़े-बूढ़े अपने आंसुओं को रोक नहीं पाये। उसी दुःखित हृदय से हम सबने ऊपर जाकर उस महान् पुरुष के चिर-निद्रा में दर्शन किये। वहीं उनकी चारपाई के बगल में शोकविह्वल इन्दुजी बैठी थीं। पंडितजी का तेजस्वी मुख इस अंतिम शैय्याकाल में भी उसी तरह उद्दीप्त था, जैसाकि उनके जीवन-काल में रहता था। क्या दैविक शान्ति थी उनके चेहरे पर और कितनी देवता जैसी आभा! चुपके से दो बूंद आंसू बहाकर वहां से हम लोग नीचे आये। फिर घंटों प्रधान मंत्री के उस बड़े प्रासाद में भूमि पर इधर-से-उधर टहलते रहे कि किसी तरह हृदय को शांति मिले। आगे हमको कौन रास्ता दिखायेगा, हमारे देश की अनेक समस्याओं को कौन हल करेगा और हम किसको देखकर अपने दिल में शक्ति प्राप्त करेंगे—ये सब विचार बार-बार मन में उठते थे। जिसके नेतृत्व में हमलोगों ने एक स्वयंसेवक की तरह काम किया, उसके न रहने से चारों तरफ बड़ा अंधकार-सा प्रतीत होने लगा। मैंने ही नहीं, हमारे कितने ही साथियों ने उस दिन और फिर दूसरे दिन, जबकि एक अपार जनसमूह उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़ा था, न जाने कितनी बार उनके दर्शन किये। जी ही नहीं मानता था।

दूसरे दिन ठीक १ बजे पंडितजी की अंतिम यात्रा आरंभ हुई। लाखों की भीड़ ने सड़कों के दोनों ओर खड़े होकर उनके दर्शन किये। छोटे-छोटे बच्चे चाचा नेहरू का नाम लेकर रो पड़े थे। उसी दिन अपराह्न में अपने धर्म के अनुसार उनकी दाह-क्रिया की गई। अग्नि की ज्वालाओं ने उनके भौतिक शरीर को चारों तरफ से लपेट लिया। चुपचाप रोती हुई विशाल जनता यह सब दृश्य देखती रही। धीरे-धीरे

उनका भौतिक शरीर राख हो गया। हमलोग भी बड़ी देरतक इस अंतिम दृश्य को देखते रहे। आखिर घर लौटते। हल्के-हल्के एक दिन के बाद दूसरा दिन गुजरा, लेकिन उनकी याद नहीं भूलती थी। फिर ध्यान आया, यदि पंडितजी जिन्दा होते तो हमको यही आदेश देते कि सबकुछ भूलकर अपना कर्तव्य-पालन करो। कई दिन तक तो इधर रात में नींद भी खुल जाती थी और ऐसा मालूम होता था कि जैसे पंडितजी हम लोगों को आदेश दे रहे हैं कि हम सब लोग निश्चल मन से और सत्यनिष्ठ होकर अपने कर्तव्य का पालन करें। देश के प्रति अपनी जान न्योछावर करने के लिए सदा तैयार रहें।

१७ वर्ष तक आजाद भारत का उन्होंने नेतृत्व किया। इसके पहले सन् १९३० से लेकर सन् १९४६ तक आजादी की लड़ाई के सेनानी रहे। उन्होंने अपने संघर्षमय जीवन से हमको बहुत कुछ दिया। आज जी चाहता है कि उनकी कुछ बातें, जो वह हम लोगों को सिखा गये हैं, फिर उनकी स्मृति में दोहरायें।

... ...

सन् १९२८ की बात है। दिल्ली में इंडिपेंडेंस लीग की बैठक हो रही थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू इस नई संस्था के प्रेरक थे। यह नौजवानों की बैठक थी। मैं भी उसमें मौजूद था। पंडितजी औपनिवेशिकता के बिलकुल खिलाफ थे, साम्राज्यवाद का विरोध करते थे। उन्होंने जोर दिया कि भारत-वर्ष पूर्ण स्वतंत्र होकर रहेगा और औपनिवेशिक आजादी को कोई अपना ध्येय नहीं मान सकता। उस समय उन्होंने जो नारा लगाया, वह मुझे अच्छी तरह से इस समय भी याद है—"लिव डेंजरसली"—अर्थात् खतरनाक जिंदगी का स्वागत करो। इस नारे ने हम युवकों में एक नई जान-सी फूंक दी। उसीका नतीजा था कि १९२९ की लाहौर-कांग्रेस के बाद १९३० में जो सत्याग्रह शुरू किया गया, उसमें हजारों और लाखों की तादाद में नौजवानों ने अपनी जान की बाजी लगा दी। सन् १९३६ में उन्होंने हम लोगों के सामने समाजवाद का आदर्श पेश किया। यह एक विशेष बात है कि उन्होंने समाजवाद की कभी व्याख्या नहीं की। लखनऊ-कांग्रेस में, जहां महात्मा गांधी ने हमारे सामने स्वराज्य का आदर्श पेश किया, वहां श्री जवाहरलाल नेहरू ने सभापति पद से समाजवाद का आदर्श पेश किया। गांधीजी ने स्वराज्य की कभी व्याख्या नहीं की, उसी तरह जवाहरलालजी ने भी समाजवाद की कभी परिभाषा नहीं की, क्योंकि ये दोनों महापुरुष, किसी किताबी व्याख्या में विश्वास नहीं करते थे। वह शब्दों से अधिक लोगों की भाव-नाओं को महत्व देते थे। उनका दृढ़ मत था कि जनता के संघर्ष तथा ऐतिहासिक कारणों से हरेक नये विचार की क्रमशः व्याख्या होनी चाहिए। किसी वैज्ञानिक व्याख्या से काम नहीं चलता। अक्सर व्याख्या करने में आदर्शों की सजीवता कुछ मलिन-सी पड़ जाती है। ज्यादा दिन नहीं हुए, इंदौर की अखिल भार-तीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में बोलते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था:

"मुझे समझ में नहीं आता कि लोग मुझसे समाजवाद की व्याख्या निश्चित और सीमित शब्दों में करने को क्यों कहते हैं? मैं चाहता हूं कि भारत में सब लोगों को जन्म से ही अपनी उन्नति करने और अपनी योग्यता के अनुसार काम पाने के समान अवसर मिलें।"

सन् १९४१ में गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का आंदोलन शुरू किया। मैं उस समय पंडितजी के अखबार 'नेशनल हेरल्ड' का व्यवस्थापक था। हमलोगों ने जेल जाने से पहले उनसे प्रार्थना की कि वह

हमें कोई संदेश दे जायं। उन्होंने तुरंत ही निम्नलिखित संदेश अपने हाथों से लिखकर दे दिया :

"स्वतंत्रता खतरे में है, अपनी पूरी शक्ति से इसकी रक्षा करो।"

यह बड़ा महत्वपूर्ण संदेश था। इसके महत्व को हम सब लोगों ने उस समय विशेप रूप से अनुभव किया, जब सन् १९६२ में चीनियों ने उत्तर की ओर से हमारे ऊपर हमला किया।

सन् १९४२ का सत्याग्रह-आंदोलन जोरों से फैला और बाद को अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये। हमें सन् १९४७ में पूर्ण स्वाधीनता मिल गई। जब हमें स्वाधीनता मिली तो पंडितजी ने हमें संदेश दिया : 'आराम हराम है', और उन्होंने सारी जिंदगी काम करते ही बिताई, एक क्षण भी आराम नहीं किया।

स्वराज्य के बाद उनकी नीति के दो मुख्य अंग थे। देश के भीतर सम-समाज की स्थापना करना और उसकी प्राप्ति हमारा ध्येय था और पंचवर्षीय योजनाएं इसके साधन। इस तरह हमारे देश की आर्थिक और सामाजिक उन्नति के लिए योजना और समाजवाद का प्रोग्राम उन्होंने हमारे सामने रखा। उन्होंने योजना के बारे में इंदौर-कांग्रेस में कहा था :

"योजना के लिए आवश्यक है संतुलन। संतुलन उद्योग और कृषि के बीच, संतुलन भारी उद्योग और लघु उद्योग के बीच, संतुलन कुटीर उद्योग और दूसरे उद्योगों के बीच।

"विकासोन्मुख देश की अर्थ-व्यवस्था में प्रत्येक पग सावधानी से उठाना है, ताकि कहीं ऐसा न हो कि एक पग दूसरे को असंतुलित कर कठिनाइयां उत्पन्न कर दे। हम इस देश में खाद्य उत्पादन, भारी उद्योग, कुटीर तथा ग्राम-उद्योग पर संतुलित ढंग से जोर देने का प्रयत्न कर रहे हैं।"

पंडितजी धर्म के नाम पर होनेवाले वैपम्य के परम विरोधी थे। इसी वास्ते उन्होंने धर्म-निरपेक्ष समाज पर बहुत जोर दिया। उनकी अंतर्देशीय नीति तटस्थता की रही। इस नीति से उनको बड़ी सफलता मिली और देश की ख्याति दिनोंदिन बढ़ती गई। पूर्व और पश्चिम के संघर्ष में कई बार ऐसे मौके आये जब कदाचित महायुद्ध छिड़ सकता था, लेकिन उनकी इस नीति ने बड़ा काम किया और ऐसे समय पर सभी देश पंडितजी की मध्यस्थता चाहते थे। उन्हींकी मध्यस्थता के परिणाम-स्वरूप दुनिया में शांति रही।

वह शांति के पुजारी थे। गांधीजी ने अहिंसा और शांति का हमें उपदेश दिया। पंडितजी का इन अहिंसा और शांति के सिद्धातों में बड़ा दृढ़ विश्वास था। कुंछ राष्ट्रों ने हमारे इस सिद्धांत का गलत फायदा उठाया। चीन ने हमपर हमला ही कर दिया। लेकिन हमारा विश्वास है कि सत्य और धर्म की हमेशा विजय होगी, भले ही कुछ दिनों के लिए पशुबल की विजय होती दिखाई पड़े। यही दृढ़ विश्वास पंडितजी को भी था। १९६२ के नवम्बर की बात है, जबकि चीन बराबर नेफा-क्षेत्र में बढ़ता जा रहा था, मुझको उनसे मिलने का अवसर मिला। हम बहुत ही चिंतित थे कि कदाचित् इसका असर हमारी योजनाओं पर भी पड़ेगा। पंडितजी को उस विकट परिस्थिति में भी मैंने बहुत दृढ़ और शांत पाया। वह आज भी मुझे भूलता नहीं है। उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा :

"हमारी योजनाएं चलती रहेंगी। चीन आयगा तो हम उसका भी सामना करेंगे और अपनी योजनाएं भी चलायंगे।"

वह बल, वह साहस, वह दृढ़ता, शायद ही किसी महापुरुष में मिले। ●

महानतम देन

भारत को जिस दारुण व्यथा ने झकझोर दिया, वह अभी मुश्किल से घट पाई है। हम अभी तक लोगों की आहें और सिसकियां सुनते हैं। कुशल अंतर्राष्ट्रीय प्रेक्षकों ने इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि अभिलिखित इतिहास में कोई और ऐसा शोक-प्रसंग नहीं आया, जहां इतने करोड़ों लोग आंसू बहाने के लिए जमा हुए हों, जैसा जवाहरलाल नेहरू के निधन के अवसर पर हुआ है। दिल्ली में तथा प्रयाग में संगम-तट पर, जैसा दृश्य देखने को मिला, वह अवर्णनीय है। नेहरू के लिए करोड़ों का प्रेम इतनी अधिक ऊंचाई तक पहुंचकर प्रवाहित हुआ कि उतनी ऊंचाई तक स्वयं गंगा की बाढ़ अगणित शताब्दियों से नहीं पहुंची होगी।

हमें छोड़कर जो व्यक्ति चला गया, वह भारत में ही नहीं, विश्व-इतिहास में महान् था। हमारे युग की गहरी और महत्वपूर्ण धाराओं तथा अन्तर्प्रेरणाओं में से कितनी ही उनमें ऐसी केन्द्रीभूत हो गई थीं कि उनके व्यक्तित्व या उनकी सफलताओं का वर्गीकरण लगभग असम्भव-सा है। वह गहरे अर्थ में एक भारतीय थे, फिर भी वह आधुनिक संसार के सचमुच एक महान् और गतिशील प्रतीक बन गये थे। भारत के भूतकाल तथा वर्तमान युग से उन्होंने भावात्मक और आध्यात्मिक पोषण ग्रहण किया और उन्होंने विज्ञान और मानव-बुद्धि की चुनौती को पूर्णत: आत्मसात करने के लिए अपने हृदय और मन को निर्भीक भाव से खोल दिया। उन्होंने भारत की धूलि और भूमि के हर कण से प्यार किया और वास्तव में अपने भस्मीभूत शरीर की राख को उसी धूलि और भूमि के कणों में फिर मिला देने की वसीयत कर दी। उन्होंने भारत की एक दुरतिक्रमणीय लालसा और भक्ति के साथ सेवा की, फिर भी उनका ध्येय यह था कि सारा मानव-समाज शांति, स्वतंत्रता, समृद्धि और सुखपूर्वक रहे। वह गांधीजी के निकट रहते थे और गांधीजी के एक अत्यन्त अनुशासित सैनिकों में तब भी थे जब कभी-कभी उनसे उनका मतभेद हो जाया करता था। इस प्रकार नेहरूजी ने अपने अनुशासन और विशिष्टता को समतुल्य रूप में बनाये रखा। कोई और होता तो गांधीजी की विशाल प्रतिमा की छाया में छिप जाता। महात्मा गांधी ने एक बार कहा था कि कोई भी शिक्षक यदि कम-से-कम एक भी विद्यार्थी अपने से बड़ा न बना सके तो उसका शिक्षक नाम सार्थक नहीं होगा। इससे हमें बुद्ध, अशोक, ईसा, संत पाल, रामकृष्ण और विवेकानन्द की याद आ जाती है। गांधी और नेहरू का नाम भी इस सूची के साथ जोड़ा जा सकता है। सामान्यत: धर्म-संस्थापकों और पैग़म्बरों के ही नाम अमर रहे हैं और वे देश-देश के असंख्य भक्तों के मनों में वास करते आये हैं।

हम भी आज अपने वर्तमान इतिहास पर दृष्टिपात कर सकते हैं, जिसमें नेहरू का चित्र गांधीजी के निकट ही प्रकाशमान दीखता है और हम इस बात पर आश्चर्य करते हैं कि क्या हमारे जीवन-काल में भी ऐसी घटनाएं फिर वैसे घटित हो सकती हैं।

किन्तु हमारा दुःख हमारे मस्तिष्क पर छाया नहीं रहना चाहिए। स्वयं नेहरूजी ने सोलह साल पहले हमारे सामने उदाहरण रखा था। उस समय एक हत्यारे की गोली ने गांधीजी को हमसे छीन लिया था। उस समय नेहरूजी से अधिक असहाय और कोई नहीं हुआ था। जब शोक से उनका गला रुंध रहा था, तो भी उन्होंने अपने साहस को ज़रा भी डिगने नहीं दिया। उन्होंने लोगों को स्पष्ट और गुंजरित स्वर में रोने और लड़खड़ाने से रोका था। हरेक को सीधा खड़े रहने और काम पर जाने को कहा। भारत और संसार को महानतम बनाने के लिए गांधीजी की देन को आगे ले जाने में शक्ति लगाने को कहा। नेहरूजी ने लोगों से कहा कि वे नया साहस और शक्ति उस दुख और क्षति की गहराई से प्राप्त करें। अब हमें नेहरूजी के चले जाने से नई निर्भीकता और दृढ़ निश्चय के साथ उस मशाल को आगे ले चलना है, जो वह पीछे छोड़ गये हैं। आगे का मार्ग बहुत कठिन और दुरूह है, किन्तु हमें इस विचार से प्रेरणा प्राप्त होती है कि गांधी-नेहरू के वीरतापूर्ण कृत्यों ने हमें पहले ही उसी मार्ग पर आगे धकेल दिया है। भारत अब भी अनिर्मित है और संसार अब भी भयंकर संकट की कगार पर खड़ा है।

अबतक प्रश्न यह रहा था कि "नेहरू के बाद कौन?" पर इस प्रश्न का उत्तर भारत-राष्ट्र ने गौरव और अनुशासन के साथ दे दिया है। अब हमें यह देखना है कि भारत का गणतंत्र नेहरू की देन की व्यवस्था किस प्रकार करता है। इस बारे में कोई ग़लती नहीं होनी चाहिए, क्योंकि यह एक गंभीर देन है। यह बिल्कुल गांधीजी की देन की तरह ही नहीं है। इसके विषय में दो विचार हैं। सचमुच बुनियादी अर्थ में नेहरू आचार्य विनोबा के साथ सबसे बड़े गांधीवादी थे, जबकि अधिकांश गांधीवादी अपने हृदय में गांधीजी से मतभेद रखते थे, पर वे संसार से इस बात को सफलतापूर्वक छिपा रखते थे। नेहरू ऐसे थे, जो कभी गांधीजी के मतभेदों से विलग नहीं हुए। बहुतेरे लोग गांधीजी का नाम इसलिए लेते हैं कि वह उनके अनुकूल पड़ता है। इस तरह के चमत्कार के हृदय-विदारक नमूने हमने इधर वर्षों से देखे हैं। तो भी हमें यह याद रखना चाहिए कि गांधीजी कभी गतिहीन नहीं हुए और उन्होंने नई चुनौतियों और परि-स्थितियों के जवाब आश्चर्यजनक नये ढंग से दिये। वह संसार के पैग़म्बरों में बड़े ही लचीले थे। वह ज़बानी परिभाषाओं के भक्त नहीं थे। उदाहरण के लिए उनका समाजवाद अद्यतन व्याख्या-विहीन तथा अपरिभाष्य बना हुआ है और फिर भी इसमें संदेह नहीं कि वह समाजवाद था। हमें याद है गांधीजी स्वराज की परिभाषा करते हुए किस प्रकार यह कहकर टाल देते थे कि समय की गति के साथ स्वराज की भावना विकसित और परिवर्द्धित होगी।

नेहरू-देन के केन्द्र में धर्म-निरपेक्षता की एक नई और गतिशील भावना संसार के इस धर्माभिभूत देश में है। भारत में धर्म हमें कभी हिमालय की ऊंचाई पर ले गया तो कभी अन्धविश्वास और पतन के गहरे-से-गहरे गर्त में ढकेल दिया। इसके उदाहरण हमारे भूत और वर्तमान काल के इतिहास में बिखरे पड़े हैं। हमारे देश में धर्म को तो स्वयं धर्म से ही बचाने की ज़रूरत है। नेहरू का धर्मनिरपेक्षवाद आगे

के मार्ग के लिए संशोधक और मार्गदर्शक का काम देगा। यह एक नई मानवता की स्थापना करता है, जिसमें वह आध्यात्मिकता है, जो किसी भी धर्म में मिलती है। यह धर्मनिरपेक्षता ऐसी है, जो प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता, समृद्धि और सुख से रहने का समान अवसर देती है। समुदाय, जाति, पंथ और वर्ग के सभी मतभेद इस धर्मनिरपेक्षता की प्रगति के सामने चूर-चूर हो जाते हैं। धर्मनिरपेक्षता भौतिकवाद नहीं है। भौतिकवाद हृदयहीन हो सकता है। यह धर्मनिरपेक्षता तो मानववाद का सर्वोत्तम रूप है और इसलिए कभी हृदयहीन या नृशंस नहीं हो सकती। जबतक भारत नेहरू-भावना के प्रति वफ़ादार रहता है और धर्मनिरपेक्षता पर अमल करता है तबतक इस देश में हर सम्प्रदाय भारत-गणतंत्र के अंतर्गत अपने को सुरक्षित और स्वतंत्र समझेगा। इस प्रकार यह हमारे राष्ट्रपन की एकता की बुनियाद है। इसके बिना गण-तंत्र छिन्न-भिन्न हो जायगा। यह एकता करोड़ों लोगों को उनकी आयोजित और वैज्ञानिक प्रयत्नों को एक सूत्र में बांधती है, जिससे वह अपने जीवन को स्वतंत्र, न्याययुक्त, समान और सुखी बना सकें। पुनरुज्जीवित विभेदजनक धार्मिक और साम्प्रदायिक शक्तियों के विरुद्ध धर्म-निरपेक्ष एकता की इस भावना का पोषण हमें अपनी सारी शक्ति लगाकर करना चाहिए। इसके सिवा नेहरू की धर्मनिरपेक्षता हर धार्मिक सम्प्रदाय के लिए, जबतक कि वह गणतंत्र की एकता एवं अखंडता के लिए सच्चे लोक-कल्याण का काम करता है, सद्भावना का आश्वासन भी है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात है गणतंत्र और समाजवाद की संधि। बिना समाजवाद के गणतंत्र, तानाशाही या मनमानी शासन की ओर प्रवृत्त होता है। दूसरी ओर गणतंत्र के बिना समाजवाद, कम्युनिस्ट या साम्यवादी एकाधिकारी सत्ता की ओर झुकता है। ऐसी अवस्था में गणतंत्रीय समाजवाद ही एकमात्र ऐसा आश्वासन है, जिसके द्वारा गणतंत्र और समाज न केवल जी सकेंगे, बल्कि समृद्ध होंगे। नेहरूजी गहरे विश्वास और स्पष्ट समझ के साथ आधुनिक युग के लिए गणतंत्रीय समाजवाद के मूल्य और औचित्य के कायल थे। इसीलिए हमें अपनी पूरी शक्ति लगाकर नेहरूहीन भावी भारत में गणतंत्रीय समाजवाद की रक्षा करनी चाहिए।

नेहरू विश्वशांति का अविचलित भाव से समर्थन करने के पक्ष में रहे। वह अपने इस विचार पर दृढ़ रहे कि युद्ध से कोई समस्या नहीं हल हुआ करती। वह बिना युद्ध का संसार बनाना चाहते थे। प्रेसिडेंट जानसन ने बिल्कुल ठीक ही कहा कि नेहरू का सर्वोत्तम स्मारक होगा बिना युद्ध का संसार। नेहरूजी ने संसार को तीसरे विश्वयुद्ध के कगार से कम-से-कम दो बार पीछे खींचा और तीसरा युद्ध अनिवार्य रूप से मानवता का सम्यक् विनाश सिद्ध होगा। उन्होंने किसी भी राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र पर हमला करने का विरोध पूरी दृढ़ता के साथ किया।

प्रश्न यह नहीं है कि नेहरू ने भारत को पूरे आधुनिक अर्थ में उद्योग-पथ पर चलाया। निश्चय ही इस बात में उन्होंने गांधीजी से मतभेद प्रकट किया। इसका यह अर्थ नहीं कि गांधीजी उद्योगीकरण को रोकते या रोक सकते। गांधीजी तो ऐसे भारत में रहे और उन्होंने कार्य किया, जो उतना अधिक उद्योगी-कृत था, जितना उस समय भी इस देश के लिए संभव था। गांधीजी के बाद भारत का कोई भी प्रधान मंत्री भारत का उद्योगीकरण करता। कहा जा सकता है कि कोई चुस्त गांधीवादी प्रधान मंत्री, जो बिल्कुल

गांधीजी के ढंग पर ही काम करता, शायद ऐसे संतुलन का भी निर्माण कर सकता, जिसमें नये उद्योगीकृत समाज से बुराइयां दूर होने के लिए नेहरूजी की अपेक्षा अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से काम होता। किन्तु यह विशुद्धत: अटकलबाजी ही है और इस प्रसंग में उसका अधिक मूल्य नहीं है।

हमें यह बात भी कभी नहीं भूलनी चाहिए कि नेहरू की प्रेरणा और मार्गदर्शन ने आर्थिक विकास की इतनी दिशाओं में नया क्षेत्र तैयार कर लिया है, जिनमें खादी और ग्रामोद्योग कमीशन का काम भी शामिल है, कि भविष्य में जो कोई नये पथ पर अग्रसर होना चाहे तो उसे वह खुला मिलेगा और वह देखेगा कि उस पर कितने ही कदम पहले ही गुजर चुके हैं। राष्ट्र-निर्माण का यह शानदार और बहुमुखी प्रयत्न शायद नेहरूजी की देन की मुकुट-मणि है।

इस प्रकार हमें नेहरूजी से दाय के रूप में अनेक चीजें मिली हैं, जिनमें से कई तो स्वयं गांधीजी की देन हैं। किन्तु गांधीजी के मामले में तो भगवान को खोजनेवाले मनुष्य की अन्तर्प्रेरणा और निमित्त-कारण निहित थे। उनके प्रति नेहरू की वह वफ़ादारी पैदा हुई, जो सांसारिक जीवन में मनुष्य के लिए उच्चतम साथीपन और विशद सखात्व की खोज थी। ये दोनों रुख आवश्यक रूप से एक-दूसरे के पूरक थे।

अब यह हमारे ऊपर है कि हम नेहरू से उस महानतम देन को लें और उसमें अपने विश्वास और आवश्यकता के अनुसार संशोधन, परिवर्तन करके स्वच्छ मनों और निर्भीक हृदयों के साथ मानव-भाग्य के अंतर्गत अपने महान् भाग्य की ओर बढ़ें और जब हम ऐसा करेंगे तो हम देखेंगे कि नेहरू मरे नहीं हैं, बल्कि इस कूच में हमारे कदम-से-कदम मिलाकर कतार में आगे-आगे चल रहे है। ●

हमारे प्रधान मंत्री निस्संदेह संसार के राजनीतिज्ञों में प्रमुख स्थान के अधिकारी हैं, क्योंकि वह अतलान्त और प्रशान्त महासागरों के मिलानेवाले की आधार-शिला, भारतवर्ष, को संभाले हुए हैं और वहां से विश्व-शांति की रक्षा का महान् और गौरवपूर्ण दायित्व-भार अपने समर्थ कन्धों पर वहन कर रहे हैं।

—पट्टाभि सीतारामैय्या

उनकी प्रेरणा

जो वज्रपात हुआ, उसकी आशंका हमारे मनों में पहले से ही विद्यमान थी। मगर, वज्रपात चाहे जैसे भी आये, आखिर वह वज्रपात ही होता है। हम जिस विपत्ति में पड़े हैं, वह अत्यंत निदारुण है, अत्यंत विकराल है। हम जिस घड़ी में जी रहे हैं वह हमारे इतिहास की गंभीर पीड़ा की घड़ी है। लगता है, कोई महासूर्य था, जो अचानक अस्त हो गया हो, कोई हरियाली थी जो जलकर खाक हो गई हो, कोई महासमुद्र था, जो अचानक सूख गया हो और हम सबके सब रेगिस्तान में खड़े हों।

चिन्ता की बात यह है कि हमारा शोक केवल शोक नहीं है। उसके साथ कुछ आशंकाएं भी लिपटी हुई हैं, कुछ भय का भाव भी मिला हुआ है। यह भारतीय नेताओं की अग्नि-परीक्षा की घड़ी है। यह वह समय है, जब देश की सबसे अधिक प्रतिष्ठित और अनुभवी संस्था कांग्रेस की बुद्धिमत्ता परखी जायगी।

और केवल नेता तथा राजनीतिज्ञ ही नहीं, हम सारे-के-सारे लोग कसौटी पर आ गये हैं। हमारे हाथ से बहुत बड़ी ताकत निकल गई है। हमारे मस्तक पर से वह छत्र उठ गया है, जिसके भरोसे हम निश्चित थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू के कंधों पर बड़ा बोझ था, उसे अकेला ढोनेवाला कोई और व्यक्ति अभी दिखाई नहीं देता। यह बोझ अब प्रत्येक भारतवासी का बोझ है और हर आदमी के लिए लाजिम है कि इस बोझ के नीचे वह अपना कन्धा लगा दे।

अपना देश लगभग नाबालिगों का देश है। बालिग उसमें बहुत ही कम लोग हैं। पंडितजी की महिमा यह थी कि वह बालिगों के मुकुटमणि और परिपक्व मानवता के सिरमौर थे। मगर पिता के गुजरते ही खानदान के बच्चों की उम्र तेजी से बढ़ने लगती है। सुखी मनुष्य देर से बालिग होता है। निश्चित व्यक्ति परिपक्वता जरा विलम्ब से प्राप्त करता है। मगर, जो मुसीबत में पलता है, उसे अक्ल समय से पहले आ जाती है। हिम्मत की तलवार तभी तेज होती है, जब विपत्ति की वायु उसका स्पर्श करे। हमारे लिए यह केवल उचित ही नहीं, बिलकुल अनिवार्य है कि हम तुरंत होश में आवें और पूरी जिम्मेदारी के साथ उस उत्तराधिकार को संभालने की कोशिश करें, जो उत्तराधिकार पंडितजी हमारे वास्ते छोड़ गये हैं।

पंडितजी की सबसे बड़ी दाय भारतीय राष्ट्र की एकता की दाय है। सारे भारत को आज शोक को लेकर उसी प्रकार एक हो जाना चाहिए, जैसे वह चीनी आक्रमण के समय क्रोध को लेकर एक हुआ था।

पंडितजी की दूसरी बड़ी दाय अल्पसंख्यकों के प्रति उदारतापूर्ण व्यवहार की दाय है। आज से

हममें से प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह ऐसा कोई भी काम न करे, जिससे अल्पसंख्यकों को आह खींचकर यह कहना पड़े कि हाय, अगर जवाहरलाल आज जीवित होते तो यह बात नहीं हुई होती !

पंडितजी की तीसरी दाय देश में फैली हुई विषमता से युद्ध करने की दाय है। पंडितजी ने कोशिश तो की, मगर विषमता आज भी कायम है। पंडितजी के प्रति जो भी अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाना चाहता है, उसका कर्तव्य है कि वह देश से दरिद्रता को भगाने के लिए डटकर काम करे और समाजवाद का जो स्वप्न वह भारत के लिए छोड़ गये हैं उसे साकार बनाये, उसे वास्तविकता का जामा पहनाने का प्रयास करे।

पंडित जवाहरलाल नेहरू भारतीय इतिहास के पुत्र थे। अगर हम अपने इतिहास से भाग नहीं सकते तो फिर जवाहरलाल से भागना अथवा उन्हें भूलना भी हमारे लिए असंभव होगा। जवाहरलाल का नाम बुद्ध, अशोक, अकबर और महात्मा गांधीजी की पंक्ति में पांचवां उजागर नाम है। वह हमारे इतिहास से प्रकट हुए थे और अब उसी इतिहास में समा गये हैं। हमें पूरी आशा है कि अभी युगों तक उनकी प्रेरणा भारतवर्ष को अनुप्राणित करती रहेगी। ●

जबसे मुझे पंडितजी को अपने मित्रों में गिनने का गौरव प्राप्त हुआ है, उनके गुणों में मेरी श्रद्धा निरंतर बढ़ती गई है। किन्तु जवाहरलालजी इस बात को नापसंद करते हैं कि जब देश की सेवा में इतने लोगों ने अपना जीवन अर्पित किया है तब अकेले उन्हींको प्रशंसा के लिए चुना जाय। इसलिए व्यक्तिगत रूप से उनके प्रति मैं केवल इतना ही कहूंगा—और यह बात निर्विवाद है—कि उनके जैसे चरित्रवान, अनुभवी और उदारचेता व्यक्ति को पहले प्रधान मंत्री के रूप में पाना भारत का सौभाग्य है।

—(लार्ड) पैथिक लारेंस

मानवीय गुणों के आगार

जवाहरलालजी के नेतृत्व और असामान्य गुणों का वर्णन हरएक नेता और लेखक करता है और करेगा, परन्तु वास्तव में उनकी विशेषता यह है कि वह मनुष्य थे और मानते थे कि मनुष्य में दोष और खामियां रहेंगी। वह न तो महात्मा थे, न सन्त थे, लेकिन उनका माहात्म्य इसीमें है कि वे सामान्य मनुष्य की हैसियत से सब मनुष्यों की सेवा करने में सुख मानते थे।

उनकी उदारता एक विशेष गुण था। अपने प्रतिस्पर्धी के प्रति भी वे कभी बुरी भावना नहीं रखते थे। कांग्रेस में जिन्होंने उनका विरोध किया था, गिराने की कोशिश की थी, उनसे बदला लेने की भावना शायद ही उनके मन में आई हो। मुझे याद है, १९४६ में जब वह कांग्रेस के सभापति हुए, गांधीजी से अनुमति लेकर उन्होंने एक नये ढंग से कांग्रेस की कार्यसमिति बनायी, जिसमें कई नये प्रगतिशील और युवक कार्यकर्ताओं को सम्मिलित किया। बहुत से निकाल दिये गए। समिति के कुछ पुराने व्यक्तियों ने उनका इस प्रकार मज़ाक उड़ाया और अपमानजनक ढंग से बरताव शुरू किया कि दूसरा कोई होता तो काम करना छोड़ देता, लेकिन उन्होंने कभी बुरा नहीं माना।

वैसे वह दान देने की धार्मिक परम्परा का अनुसरण नहीं करते थे, लेकिन उनके पास किसी कार्यकर्ता या उसके कुटुम्ब के कष्ट की कोई बात पहुंच जाती तो उसकी कुछ-न-कुछ सहायता फौरन कर देते थे। उनकी इस सहृदयता की कोई शोहरत नहीं हुई, न उन्होंने इसे कभी प्रकाश में आने दिया।

उनकी सचाई और कोमलता विशेष गुण थे। सामने एक और पीछे और कोई बात करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। जवाहरलालजी के प्रति महात्माजी का दृढ़ विश्वास होने का एक प्रमुख कारण पंडितजी के प्रति गहरा प्रेम था। साथ ही कई सैद्धांतिक मामलों में मतभेद भी रहा। अपने विरोध को उन्होंने कभी छिपाया नहीं। वे निडरता से बापू से लड़ते थे और इस कारण गांधीजी का प्रेम द्विगुणित हुआ। उनको पूरा विश्वास था कि जवाहरलाल उन्हें कभी धोखा नहीं देगा। अपने इस विश्वास को उन्होंने कई बार प्रकट किया और वास्तव में पंडितजी ने कभी ऐसा मौका नहीं आने दिया कि गांधीजी को अपना मत बदलना पड़े।

उनकी सचाई और प्रेम का एक प्रमुख कारण है कि गांधीजी ने उन्हींको अपना उत्तराधिकारी चुना और कौन कहेगा कि उनका चुनाव सही नहीं था!

१९५५–५७ के काल में कांग्रेस में उनके विरोध में एक आंदोलन हुआ। वह नितांत विफल रहा, क्योंकि जिन्होंने उसको खड़ा किया, उनकी कल्पना नहीं थी कि पंडितजी का कांग्रेस और जनता के हृदय में कितना मजबूत स्थान है। उसके नेताओं में कई गणमान्य कांग्रेसी थे। दूसरे किसी पार्टी के नेता के विरुद्ध ऐसी घटना होती तो

विरोधी कुचल दिये जाते। लेकिन जवाहरलालजी ने अपनी उदारता से कुछ ध्यान नहीं दिया और यद्यपि उन नेताओं में से कुछ को थोड़े समय के लिए ग्रहण लग गया, आज वे सभी कांग्रेस में उच्च स्थान को सुशोभित कर रहे हैं। जवाहरलालजी ने पुराने विरोध को याद नहीं रखा।

उनका बिगड़ना प्रसिद्ध था। भावुक होने के नाते आवेश में बहुत जल्द आते थे, लेकिन उतनी ही शीघ्रता से शान्त भी हो जाते थे और माफी मांग लेते थे। १९४६ में कांग्रेस के सभापतित्वकाल में कार्यसमिति की बैठक में एक बार किसी छोटी बात पर बहुत बिगड़े कि दफ्तर का इन्तजाम ठीक नहीं रहा। मैंने बाद में उनका ध्यान दिलाया कि उनका बिगड़ना अनुचित था, क्योंकि उस मामले में दफ्तर का कोई दोष नहीं था। उन्होंने फौरन क्षमा मांग ली और मुझसे कहा कि मेरी आदत खराब है, इसे भूल जाओ।

वह ऊंचे दर्जे के साहित्य-प्रेमी भी थे। उनको कविता से विशेष प्रेम था और कवियों की नई-नई कृतियां मंगाकर पढ़ते थे। संस्कृति और कला के अनन्य प्रेमी होते हुए भी उनको अफसोस रहा कि वे भारतीय संगीत और कला से अनभिज्ञ रहे। उनका बचपन और युवावस्था इंगलैंड में बीती, इसलिए भारतीय संगीत-कलाओं से वंचित रहे। एक बार जब एक प्रसिद्ध संगीत-कलाकार की उनसे भेंट कराई गई तब उन्होंने मुझसे कहा, "मुझे खेद है कि इनकी कला का मैं आनन्द नहीं उठा सकता, क्योंकि मुझे उसका ज्ञान नहीं है।"

वह उत्तम लेखक ही नहीं थे, उन इने-गिने मन्त्रियों में थे, जो पुस्तकों का अध्ययन करते रहते थे और नई-से-नई पुस्तकें हमेशा पढ़ते रहते थे।

कोमल हृदय के कारण किसीको सजा देना या निकालना उनको बड़ा दुखद मालूम होता था और ऐसी बातें वह हमेशा टालते थे। उनके सामने आंसू बहाकर कितनों ने अपना स्थान या ओहदा जारी रखा।

अपने इन मानवीय गुणों से उन्होंने सबके हृदय में स्थान कर लिया, जो हमेशा बना रहेगा। विरोधी भी उनके प्रेम और भावना के कायल थे और भारतीय जनता उनको अपना ही मानती थी। ●

यहां, आयरलैण्ड में, हम लोगों के लिए गांधी के बाद नेहरू का नाम ही हिन्दुस्तान की आजादी का पर्याय रहा है—स्वयं उस आदर्श का और उसकी प्राप्ति के आंदोलन का भी।

—डी वेलेरा

मानवता के मुक्तिदाता

व्यक्ति के विचारों का केन्द्र राष्ट्र होता है, राष्ट्र के विचारों का केन्द्र व्यक्ति नहीं। किन्तु जहां एक है, वहां अनेक हैं, जहां एक नहीं, वहां शून्य। इस दृष्टि से राष्ट्र और उसके विचारों का सूत्र अन्तोतगत्वा व्यक्ति ही होता है। जिस प्रकार किसी एक व्यक्ति को समाज और देश नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार किसी एक सूत्र, विचार अथवा आचार को राष्ट्र का धर्म नहीं माना जा सकता, किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है, एक व्यक्ति, एक सूत्र और एक विचार के विकास और विस्तार से ही राष्ट्र और राष्ट्र-धर्म की सृष्टि होता है और इस दृष्टि से हम भले ही एक व्यक्ति को राष्ट्र रूप न दे सकें, पर उसके अनिवार्य अंग, योग, उपयोग और महत्व को तो स्वीकार करेंगे ही। व्यक्ति के इसी योग, उपयोग और महत्व के कारण कुछ मान्यताएं और मर्यादाएं स्थापित हुईं, जिन्हें हम पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीयता के नाम से पुकारते हैं। इस विकासोन्मुख युग में व्यक्ति के बौद्धिक विकास के साथ इन मर्यादाओं का भी विकास-विस्तार हुआ और अब ये राष्ट्रीयता से आगे बढ़कर अन्तर्राष्ट्रीयता और उससे भी आगे बढ़कर एक बंधन और सीमा मुक्त मानवता की परिकल्पना में मर्यादित हो रही हैं।

भारत ने ७४ वर्ष पूर्व एक व्यक्ति को जन्म दिया, जो संसार के कोटि-कोटि सामान्यजनों की भांति भारत का एक नागरिक था। इस व्यक्ति का अपने जन्म, लालन-पालन और शिक्षणोपरांत व्यक्ति के अर्थ, उपयोग और महत्व की ओर ध्यान गया। वह समय था जब भारत में महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वातंत्र्य अभियान आरम्भ हुआ था। वह जमाना था जब भारत का नागरिक पराधीनता की रोटी के बदले आज़ादी की घास के मर्म और महत्व को समझने लगा था। जीवन के इस मर्म, महत्व और उपयोग को जवाहरलाल ने भी समझा और राष्ट्रपिता बापू के स्वातंत्र्य अभियान में अपनी समग्र शक्ति को अर्पित कर दिया।

युवक जवाहरलाल के इस सक्रिय योगदान और सर्व समर्पण ने भारतीय राष्ट्र के युवकहृदय में आज़ादी की अंकुरित आकांक्षा को उठती हुई अग्नि-ज्वाल की भांति भड़का दिया और एकबारगी सारा युवक-राष्ट्र आज़ादी की अप्रतिम आकांक्षा, उसके प्रति अटूट आस्था और अखंड विश्वास के साथ राष्ट्र-मुक्ति के इस महा अभियान में अपने को अर्पित करने के अपूर्व उत्साह और अकल्पित अरमानों में भर 'स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' अपने इस लक्ष्य की ओर तेजी से अग्रसर हो गया। राष्ट्र के इस महा अभियान के नायक और नेता थे महात्मा गांधी, वही इसके सेनापति थे। किन्तु गांधीजी और इस अभियान

के विचार तथा आचार की दृष्टि से जब अगणित अनुयायियों, अनुवर्त्तियों और अनुकर्ताओं ने मन, वचन और कर्म से इस अभियान में अपने को अर्पित किया था, उस काल के युवक-हृदय के एकमात्र प्रवक्ता, प्रेरक और प्राण जवाहरलालजी ही थे। इस प्रकार एक कुशल कलाकार की कुशाग्र बुद्धि एवं क्रियाशीलता से जवाहरलालजी राष्ट्रीय स्वातंत्र्य अभियान के इन दिनों में ही गांधीजी के सत्य-अहिंसा महामंत्र के विचार और आचार के प्रामाणिक प्रवक्ता बन देश के युवक वर्ग और उसकी प्रवृत्तियों के प्रेरक बन गए।

स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात सहज और स्वाभाविक रूप में ही गांधी और गांधीवाद के, गांधीजी और उनके दर्शन के, विचार और आचार की दृष्टि से अनुवर्ती और अनुकर्त्ता के नाते उत्तराधिकार का यह दायित्व जवाहरलाल के पक्ष में था। उत्तराधिकार के इस पक्ष की गांधीजी ने भी अनुभूति की। यही नहीं, उन्होंने भी इसकी उद्घोषणा कर दी और इस प्रकार भारत का हृदय-सम्राट, जो स्वातंत्र्य आन्दोलन के दिनों में जन-जन का नेता और बेताज का सम्राट बन चुका था, अपने आचार-विचार, क्रिया-कलाप और दायित्व-भार की अपनी अजस्र शक्ति के कारण स्वाधीनता के उस किरीट का, जिसे गांधीजी ने असंख्य भारतीयों के साथ प्राप्त किया था, दावेदार बन गया। स्वाधीनता का यह किरीट सामन्तशाही, राज्यशाही और साम्राज्यवादी सत्ता के संघर्ष का किरीट नहीं था। यह था विचार-क्रांति के संघर्ष का किरीट, जिसकी रक्षा भी सैन्य शक्ति अथवा अन्य किसी शक्ति-बल से न होकर अपने आचार और विचारों की सचाई पर की जानी थी। जवाहरलाल ने इस विचार-किरीट को धारण किया और पूरी शक्ति से अपने विचार, विवेक और काय के द्वारा इसकी सुरक्षा और शृंगार में अपने को अर्पित कर दिया। १५ अगस्त सन् १९४७ को जब भारत स्वतन्त्र हुआ, भारतीय संविधान सभा में अपने इस नये दायित्व से विभूपित नायक के रूप में जवाहरलाल ने प्रतिज्ञा ली और अपनी इस प्रतिज्ञा के साथ अपने देशवासियों से, देश के नव-निर्माण की इस दूर मंजिल तक, पूरा-पूरा सहयोग देने की जो अपील की, उसका यहां स्मरण करना उचित होगा। उन्होंने कहा, "अभी जब आधी रात का घंटा बजेगा और दुनिया सोती होगी तब भारत स्वतन्त्र होकर नई जिन्दगी हासिल करेगा। इतिहास में ऐसा क्षण कभी-कभी ही आता है, जब हम प्राचीनता से नवीनता की तरफ कदम बढ़ाते हैं, जब एक ज़माना ख़त्म होकर लम्बे अर्से से दबाई गई राष्ट्र की आत्मा मुखरित होती है। ऐसे गंभीर मौके पर हम भारत, भारत की जनता और उससे भी बढ़कर मानवता की सेवा के लिए सबकुछ निछावर करने की प्रतिज्ञा करते हैं। यह भविष्य आराम और विश्राम का नहीं है, वरन् अनेक बार ली गई प्रतिज्ञाओं और आज ली जाने वाली प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए लगातार कोशिश करने का है। भारत की सेवा का मतलब करोड़ों पीड़ितों की सेवा है, इसका मतलब है गरीबी, अशिक्षा, रोग और अवसर की असमानता का खात्मा। हमारी पीढ़ी के सबसे बड़े आदमी की आकांक्षा थी कि हर आंख का आंसू पोंछ दिया जाय। शायद यह हमारी ताकत के बाहर हो, लेकिन जबतक आंसू और वेदना रहेगी तबतक हमारा काम पूरा नहीं होगा। जिस भारतीय जनता के हम नुमाइन्दे हैं, उससे हम अपील करते हैं कि वह हमें विश्वास और भरोसे के साथ इस महान् काम में सहयोग दे। यह वक्त ओछी और नुक्सानदेह आलोचना का नहीं है, और न दूसरों

की बुराई और नुक्ताचीनी का। हमें स्वतन्त्र भारत की ऐसी आलीशान इमारत बनाना है, जिसमें भारत के हर बच्चे के रहने की जगह हो।"

इस प्रकार यद्यपि स्वातंत्र्य-अभियान से लेकर मृत्यु-पर्यंत लगभग ५० वर्ष के देश-सेवारत अपने सार्वजनिक जीवन में, किन्तु सर्वाधिक रूप से स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् के इन १७ वर्षों में जवाहरलालजी ने भारत और विश्व-मानवता की जो सेवा की, उससे उनका भारतीय संविधान सभा का वह उद्बोधन, जो उन्होंने राष्ट्र के नाम दिया तथा उनकी वह प्रतिज्ञा, जो उस दिन उन्होंने की और जिसे जीवन के अंतिम क्षण तक कार्यरत रहकर निभाया, आज बरबस याद आ रही हैं।

स्वाधीनता-प्राप्ति के अभियान में जी-जान से जुटे महात्मा गांधी जिस प्रकार राष्ट्र की एक प्रेरणा, उसके प्रेरक और प्राण बन चुके थे उसी प्रकार जवाहरलालजी राष्ट्रनिर्माण के इन दिनों में राष्ट्र की सर्वांगीण प्रगति और उसके स्वत्वों के संरक्षक तथा संवर्धक के रूप में एक ऐसी स्थायी प्रेरणा, एक ऐसी पूरक शक्ति और एक ऐसे प्राण बन गये थे, जिससे राष्ट्र का हर वर्ग, हर वय एवं हर अवस्था का नागरिक प्रेरणा, स्फूर्ति और जीवन पाता था। उनके नेतृत्व में भारत के दीन-हीन दुर्बल, मज़दूर और किसान अपने सुन्दर और सुखमय भविष्य की आशा और अनुभूति से भरे हुए थे। क्या कारीगर, क्या कलाकार, क्या साहित्यकार और क्या व्यापारी अथवा उद्योगपति, सभी अपने हितों, स्वत्वों और अधिकारों के संरक्षण का जैसा आश्वासन और सामाजिक प्रतिष्ठा, न्याय एवं समता का जैसा विश्वास और दृष्टिकोण जवाहरलाल के नेतृत्व में पाते थे, आज वह सब अतीत की एक अनूठी वात हो गई हैं।

आज़ादी के वाद अपने प्रधानमंत्रित्व काल के इन १७ वर्षों में जवाहरलालजी भारत के प्रतीक बन गए थे। न केवल भारतीय नागरिक वरन् विश्व के अन्य देशों के लोग भी जव भारत पर वात अथवा विचार करते, नेहरूजी का नाम उनकी जबान पर आ जाता। स्वातंत्र्य-अभियान के दिनों में और उसके वाद भी जिस प्रकार विश्व में भारत 'गांधी का देश' नाम से विख्यात हो गया था, उसी प्रकार आजादी के वाद भारतीय नवनिर्माण के इस अभियान में भारत विश्व के रंगमंच पर 'नेहरू के देश' नाम से संबोधित किया जाने लगा। इस प्रकार भारत नेहरू बन गया और नेहरू भारत।

एक व्यक्ति के क्रमिक विकास ने उसे राष्ट्ररूप दे दिया—यह, व्यक्ति, उसके विचार, व्यक्तित्व, कार्य एवं विवेक का वह विकसित और विशाल रूप है, जिसे हम आज 'जवाहरलाल' कहते हैं।

प्रश्न उठता है, व्यक्ति और राष्ट्र के इस संवंध में सर्वोपरि कौन है? व्यक्ति या राष्ट्र? विचार से देखा जाय तो किसी विस्तृत क्षेत्र में फैले राष्ट्र की लम्बी-चौड़ी और विस्तृत सीमाओं से कहीं एक विचारशील व्यक्ति वड़ा होता है। राष्ट्र का वड़ा होना उसके आकार-प्रकार का प्रतीक है, किसी विचार-विस्तार का नहीं। फिर एक राष्ट्र में रहनेवाले व्यक्तियों की संख्या सीमित होती है, उसके बढ़ते ही संघर्ष वढ़ जाता है, किन्तु व्यक्ति के विचार में रहनेवाले राष्ट्र की कोई सीमा नहीं। उसमें तो निर्वाध राष्ट्रधर्म का सागर लहराता रहता है और जव इसका और विकास-विस्तार होता है तो वह विश्व-मानवता के महासागर से जा मिलता है। इस प्रकार आकार-प्रकार से नहीं, विचार-विस्तार की दृष्टि से व्यक्ति राष्ट्र से कहीं वड़ा होता है और अपने इसी मर्म और महत्व के कारण ही वह व्यक्ति के स्तर से उठकर अपने विचार

और आचार के कारण राष्ट्र का प्रतीक बन जाता है।

जवाहरलालजी एक ऐसे ही व्यक्ति थे, जिन्होंने व्यक्ति-स्तर से उठ सदा राष्ट्रीय और विश्व-स्तर पर मनन, चिंतन और कार्य किया। वह जब अपने बारे में सोचते तो राष्ट्र उनके चिंतन का केन्द्र होता और जब दूसरे के बारे में सोचते तो विश्व उनके चिंतन का केंद्र बन जाता था। इस प्रकार अपने और पराये की, स्वयं की और दूसरे की, इस परिकल्पना और परिभाषा में उनके विचार और कार्य होते और विचार-धारा के इसी प्रवाह में अपने सम्पूर्ण जीवन को समय के साथ-साथ तेजी से चलाने के एक सिद्धहस्त कला-कार के नाते उनके विचार, नेतृत्व एवं आचार के इस अनुसरण के कारण ही भारत अपने निर्माण की इस दीर्घ दूरी तक पहुंच गया।

जवाहरलालजी आज व्यक्ति के रूप में हमारे बीच नहीं हैं, किन्तु विचार-रूप से आज भी हमारे विचार-केन्द्र बने हुए हैं। यही उनके उस व्यक्ति-रूप की, जो पिछले ७४ वर्षतक हमारे बीच रहा, विशेषता रही। उन्होंने व्यक्ति की महत्ता उसके विचारों, कार्यो एवं दायित्व-भार-वहन में मानी। यही उनके व्यक्ति-रूप की प्रतिष्ठा का और इस विशाल राष्ट्रीय रूप की प्राप्ति का हेतु भी बना और यही एक कारण था कि विचार, आदर्श और उपलब्धि से महान् इस महत् व्यक्ति ने अपने जीवन में व्यक्ति की इस निष्ठा, प्रतियोगिता, उपादेयता और महत्व से एक क्षण को भी विमुख हुए बिना अपने राष्ट्रीय और विश्वधर्म-निर्वाह में व्यक्ति के गुण और गौरव से सदा अपना संबंध बनाये रक्खा। जिन्होंने जवाहरलालजी को देखा है, उनकी निकटता प्राप्त की है अथवा उनके व्यक्तिगत संपर्क-सान्निध्य में आये हैं, उन्हें ज्ञात है कि जवा-हरलालजी अपने इस भव्य, विशाल और विश्वव्यापी व्यक्तित्व एवं बड़प्पन के बावजूद छोटे-से-छोटे व्यक्ति के सदा सन्निकट रहे और उसके कार्य, व्यवहार एवं विचारों को अपनत्व और ममत्व-भरी दृष्टि से आदर देते रहे। उन्होंने अपने व्यक्तित्व को यश-प्रतिष्ठा के एवरेस्ट तक पहुंचाया, किन्तु वे एक सामान्य व्यक्ति के उस धरातल से, जहां हम आप और उनके कोटि-कोटि देशवासी खड़े हैं, एक क्षण को भी पृथक नहीं हुए। उनका विचार था कि राष्ट्र की प्रथम सीढ़ी व्यक्ति की हितचिंतना बिना राष्ट्रहित-चिंतना नहीं हो सकती। वह जानते थे कि बिना राष्ट्रधर्म के निर्वाह के व्यक्ति-धर्म का निर्वाह नहीं हो सकता। उनका मत रहा कि व्यक्ति-सेवा के बिना राष्ट्र-सेवा का उनका संकल्प अपने सात्विक रूप से सफल नहीं हो सकता। यही वजह थी कि जवाहरलालजी ने अपने इस विचार-आग्रह के कारण अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारंभिक दिनों से ही सदा व्यक्तिगत हितों, व्यक्तिगत सहायताओं और व्यक्तिगत सेवाओं की अपने आचार द्वारा पुष्टि दी। पिछले दिनों जवाहरलालजी की इस व्यक्ति-निष्ठा के ऐसे अनेक उदाहरण प्रकाश में आये हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने साथियों, सहयोगियों और सहकर्मियों की ही नहीं, ज्ञात और अज्ञात, परिचित और अपरिचित की ही नहीं, ऐसे अनेक अभावग्रस्त और दुख-दर्द से पीड़ित व्यक्तियों की सेवा-सुश्रूषा और परिचर्या से लेकर अर्थ आदि से अनेक प्रकार सहायता की। अपने व्यक्तित्व एवं विचारों के इसी विशिष्ट गुण के कारण वह जवाहरलाल रूपी एक सामान्यजन से राष्ट्र-हृदय, राष्ट्रप्राण और विश्व-मानवता के मुक्तिदाता तक बन गये, किन्तु अपने, अपने राष्ट्र और विश्व के इस मुक्ति-अभियान के एक नेता, नायक और निर्देशक होते हुए भी जीवन-भर एक सामान्य सिपाही, एक सामान्य

हीरेन मुकर्जी

भारत की अंतरात्मा

कांग्रेस के भुवनेश्वर-अधिवेशन के अवसर पर गत जनवरी मास में श्री जवाहरलाल नेहरू के अकस्मात रोगाक्रान्त होने के समय से ही हमारे देश की जनता अत्यधिक चिंतित हो उठी थी। जिस दुर्दिन के न आने की हम जी-जान से कामना कर रहे थे, वही २७ मई को हमपर टूट पड़ा और जवाहरलालजी हमारे बीच से सदा के लिए चले गये। वह एक ऐसी रिक्तता कर गये हैं, जो कभी भर नहीं सकेगी।

यदि हमारे शब्द-भंडार में कोई ऐसा शब्द है, जिसके द्वारा इस मृत्यु की व्याख्या की जा सकती है तो यह है—'इन्द्रपात'। देवताओं का राजा अव नहीं रहा और तारागण अपने पथ पर एकाकी हो गये हैं। भारत-भूमि में कभी भी कोई एक ऐसा आदमी नहीं था, जो श्री जवाहरलाल नेहरू से अधिक अपनी जनता के हृदय के निकट रहा हो। उनका अवसान हो गया है, लेकिन फिर भी जवतक हमारी भारत भूमि पर सूर्य और चन्द्र प्रकाशित होते रहेंगे तवतक वह जीवित रहेंगे—'यावच्चन्द्रदिवाकरौ'।

वैभव की गोद में जन्मे और विदेश में शिक्षित हुए जवाहरलालजी वखूवी उस ढंग के हो सकते थे, जिस ढंग से हमारा देश सुपरिचित है—अर्थात् एक सफल एवं समृद्ध, इतना ही नहीं, अपने तौर-तरीकों में पूरे अंग्रेज और अपने काम से काम रखनेवाले व्यक्ति। प्रसन्नता का विषय है कि नियति को कुछ और ही मंजूर था। गांधी का जादू जवाहरलाल और उनके महान पिता—अविस्मरणीय मोतीलाल नेहरू—पर असर कर गया। नेहरू-परिवार ही राजनैतिक संन्यासी हो गया, निश्चय ही जीवन से विरक्त होकर नहीं, वल्कि हमारी पीड़ित जनता की खुशहाली और आजादी के लिए आत्मोसर्ग करके। आज जवाहरलाल नहीं रहे और हमारे इतिहास का एक युग समाप्त हो गया—वह युग, जिसपर हमें सदा गर्व रहेगा।

जवाहरलालजी का जीवन वस्तुतः एक महाकाव्य है। साथ ही यह महाकाव्य इतना विशाल और सर्वांगीण है कि कोई इसका सारांश-मात्र ही वताने में समर्थ हो सकता है। हमें अभी प्रतीक्षा करनी है उस दिन की, जब हम समवेत होकर इस जाज्वल्यमान जीवन के सम्यक अध्ययन के इस कार्य की ओर प्रवृत्त हो सकेंगे।

हमारे स्वाधीनता-संग्राम में गौरवशाली योगदान के लिए जन-जन की और तारुण्य की वह प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने विस्तृत क्षितिज पर दृष्टि-निक्षेप कर हमारे स्वातंत्र्य-युद्ध और संसार के अधिकार-च्युत लोगों के लिए श्रेष्ठतम जीवन के संघर्ष के बीच के सम्पर्क-सूत्र का पता लगाया। वस्तुतः इसी कारण से उनकी न केवल भारत के नेता, अपितु एशिया और अफ्रीका के नेता के रूप में प्रतिष्ठा है। जहां कहीं भी लोग

पीड़ित और संकटग्रस्त होते थे, वह अपना मित्र और पथ-प्रदर्शक जवाहरलाल को ही समझते थे।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और जवाहरलालजी ने ही भारत के सामने 'पूर्ण स्वराज्य' का लक्ष्य प्रस्तुत किया था। मौलिक अधिकारों तथा राष्ट्रीय आर्थिक कार्यक्रम के लिए प्रसिद्ध कराची-घोषणा-पत्र (सन १९३१) का प्रणयन करनेवाले जवाहरलाल ही थे। देश के आजाद होने से भी पहले विदेशों में भारत का यदि कोई गैर-सरकारी राजदूत था तो वह जवाहरलाल थे, क्योंकि वह भारत की अन्तरात्मा थे और इस शताब्दी के चौथे दशक की अधिनायकवादी दानवता के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करते थे। साम्राज्य-वाद और फासिस्टवाद के बीच सम्पर्क को समझानेवाले व्यक्ति जवाहरलाल ही थे और उस तंत्र की कुरूपता की उन्होंने तीव्र निंदा की, चाहे वह चीन में रहा हो या स्पेन में या अबीसीनिया में या चेकोस्लोवाकिया में। वह जवाहरलाल ही थे, जिनका हृदय गरीबों से लिए उमड़ पड़ता था और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधारित किसी भी प्रणाली में निहित अन्याय और अभद्रता से जिन्हें घृणा थी। वह जवाहरलाल ही थे, जिनकी 'भारत किधर?' शीर्षक लेखमाला (१९३२) ने हमारी जनता का ध्यान समाजवाद की ओर आकृष्ट किया--उस समाजवाद की ओर, जो अर्थ-लिप्त समाज के सभी लोगों की रामवाण दवा है। जवाहरलाल ने ही २६ जनवरी १९३० को रावी के तट पर भारतीय स्वतंत्रता का झंडा फहराया और फिर १५ अगस्त १९४७ को दिल्ली के लालकिले पर प्रभुसत्ता-सम्पन्न भारत का ध्वज भी जवाहरलाल ने ही लहराया था, जो सर्वथा उचित था। स्वाधीन भारत के पिछले सत्रह वर्षों की अवधि में भारत के नेता और शिक्षक जवाहरलाल ही थे। वह केवल प्रधान मंत्री नहीं थे। वह भारत थे। यही कारण है कि हमारे बीच से उनके चले जाने से जीवन नीरस हो गया है और निरर्थक-सा प्रतीत हो रहा है।

यद्यपि जवाहरलाल का प्राणांत हो गया है तथापि जीवन-धारा प्रवाहित है और हमारा नेता हमें याद कराता है कि उसके तिरोभाव पर हमारा केवल शोक मना कर फिर ढीला पड़ जाना उसे पसंद नहीं है। हमें उसकी देन स्मरण रखनी है और उसे कार्यान्वित करने का प्रयास करना है।

जनता की श्रेष्ठता और सुखपूर्ण जीवन से अधिक जवाहरलालजी को और कुछ प्रिय नहीं था। इसी कारण उन्होंने योजनाओं पर तथा हमारी स्थितियों के अनुकूल समाजवाद पर इतना अधिक ध्यान दिया। उनके स्वभाव में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं थी। वह पूर्ण जनतंत्र के आकांक्षी थे--चाहे कोई हिंदू हो, मुसलमान हो या अन्य धर्मावलम्बी। वह उच्चे धर्मनिरपेक्ष जनतंत्र के हामी थे, ताकि जीवन की भली चीजों में सबको हिस्सा मिल सके। उन्हें न केवल भारत का, अपितु संसार का, ध्यान रहता था और विश्व-शांति तथा निरस्त्रीकरण के निमित्त उन्होंने अपनी प्रतिभा का पूर्ण उपयोग किया। इसी विचारवश उन्होंने भारत को तटस्थता तथा शांतिपूर्ण सहजीवन के मार्ग पर अग्रसर किया और सांसारिक मामलों में उसे वह प्रतिष्ठा दिलाई, जो आज उसे प्राप्त है। उनकी दीप्तिमान विरासत के ये थोड़े-से पहलू हैं। हमें उनके पक्ष का सच्चा अनुयायी बनकर उनके कार्य को यथाशक्ति पूर्ण करने का प्रयत्न करना चाहिए। हमें अपने इस संकल्प का दृढ़ता से परिपालन करना चाहिए, क्योंकि वह कठिन कार्य और ऐसी समस्याएं छोड़ गये हैं, जो अभी हल नहीं हुई हैं।

उनके अधूरे कार्यों का सम्पादन उनके उत्तराधिकारियों के लिए सरल नहीं है। जब गांधीजी मरे

थे, वह अपना 'हर-धनु' जवाहरलाल को दे गये थे, किन्तु यह ऐसा धन्वा है, जिसे दुर्बल हाथ खींच नहीं सकते। जवाहरलालजी के उत्तराधिकारियों को इस ढंग से कार्य करना चाहिए कि जनता यह समझे कि उसके दिवंगत नेता के अपूर्ण कार्य पूरे किये जा रहे हैं और वह उनमें सहायक बने।

व्यथा की अपनी घड़ियों में हमें इस विचार से कुछ सान्त्वना प्राप्त करनी चाहिए कि इस देश के हम सभी लोगों ने एक ऐसे महान् व्यक्ति को जाना और उसे प्रेम किया है, जिसके समान फिर कोई ऐसा पुरुष नहीं हो सकता, जिसकी तुलना हम भारत के पर्वतों और सागर से कर सकेंगे। ●

मेरा यह सौभाग्य है कि जवाहरलाल से मेरा घनिष्ठतम संबंध रहा है। कई बार हमें एकसाथ जेल-जीवन बिताना पड़ा। जितना अधिक मैंने उन्हें देखा, उनके प्रति स्नेह और आदर बढ़ता गया। जितना ही अधिक इस महापुरुष के निकट हम पहुंचते हैं, उतना ही अधिक उनकी महत्ता हमें प्रज्वलित प्रतीत होती है। उनकी प्रगाढ़ विद्वत्ता, अदम्य साहस, उत्तम कर्तव्यनिष्ठा, अद्वितीय और अद्भुत त्याग, निस्सीम कर्मठता, ठोस राजनीतिज्ञता आदि गुण सर्व-विदित और सर्वत्र सम्मानित हैं। मेरी दृष्टि में उनकी विद्वत्ता और पांडित्य की अपेक्षा उनके हृदय की विशालता अधिक मोहक है। उनकी जैसी कोमल मानसिक भावना कम लोगों में देखी जाती है। और इस कोमल भावना में उदारता और दया समाविष्ट हैं।

—गोविन्दवल्लभ पन्त

न. वि. गाडगिल

एक उद्बोधक प्रसंग

विभाजन के दिन से ही मेरा यह अनुभव था कि पाकिस्तान सरकार छोटे-से-छोटे मामले में भी हमारे लिए परेशानी पैदा करने का कोई भी अवसर नहीं चूकेगी। विभाजन के समय माधवपुर हैडवर्क्स अस्थायी तौर पर भारत को सौंप दिया गया था और भारत व पाक इंजीनियरों में एक समझौता भी हुआ था। उस समझौते के अंतर्गत पाकिस्तान को दीपालपुर नहर से प्राप्त जल के प्रयोग के लिए कुछ धन-राशि जमा करानी थी। पाकिस्तान को कुछ अन्य खर्चे भी चुकाने थे। पाक-सरकार ने उस समझौते को मान्यता नहीं दी, हालांकि हस्ताक्षरकर्त्ताओं में एक अंग्रेज व एक मुसलमान इंजीनियर भी शामिल थे और जब भारतीय अधिकारी ने कुछ चीजें मांगीं तो पाकिस्तान ने उत्तर दिया कि विभाजन के आर्थिक परिणाम भारत को भुगतने चाहिए।

विभाजन के समय सीमाएं तय करने के लिए रैडक्लिफ़-आयोग नियुक्त किया गया और रैडक्लिफ़-अवार्ड के फलस्वरूप माधवपुर हैडवर्क्स भारत के हिस्से में आ गया और यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया गया कि जिस देश में हैडवर्क्स हो, नदी के पानी का वही देश स्वामी माना जायगा।

चूंकि पाकिस्तान सरकार राशि जमा करने में असफल रही, इसलिए यह आदेश प्रसारित कर दिया गया कि अपेक्षित अवधि का नोटिस देकर दीपालपुर नहर को पानी देना बन्द कर दिया जाय। फल यह हुआ कि पाकिस्तान सरकार ने सम्मेलन बुलाने की मांग की, जो भारत ने स्वीकार कर ली।

सम्मेलन दिल्ली में ३ मई, १९४८ को हुआ। पाक-प्रतिनिधि-मंडल के नेता गुलाम मोहम्मद थे, जिन्हें मैं जानता था क्योंकि वह केन्द्रीय धारा सभा के सदस्य रहे थे, जिसका मैं १९३४ से ही सदस्य था। ३ मई को सुबह उन्होंने मुझे फोन किया और समझौता कराने की प्रार्थना की। मैंने उत्तर दिया कि मैं किसी भी उचित समझौते को, जो पेश किया जायगा, मंजूर कर लूंगा। मैं सम्मेलन की अध्यक्षता कर रहा था। डा० अम्बेडकर हमारे कानूनी सलाहकार थे। श्री गोपालस्वामी भी भारतीय दल को सलाह देने के लिए उपस्थित थे और उड़ीसा के वर्तमान राज्यपाल डा० खोसला हमारे प्राविधिक सलाहकार थे।

सम्मेलन में १० बजे सुबह से लेकर डेढ़ बजे दोपहर तक वाद-विवाद चलता रहा, लेकिन कोई सर्वसम्मत समाधान नहीं निकल सका। विदा होने से पहले मैंने एक सुझाव दिया, "देखिए, मैं आपको पांच वर्ष की मोहलत देता हूं।" जैसे ही मैंने बात खत्म की, डा. अम्बेडकर ने मुझे बतलाया कि मुझे यह प्रस्ताव नहीं रखना चाहिए था। डा. खोसला भी अम्बेडकर से सहमत थे। लेकिन गोपालस्वामी ने कहा कि यह प्रस्ताव अत्यंत चतुरतापूर्ण था।

मेरी कठिनाई कम नहीं हुई, बल्कि और भी ज्यादा बढ़ गई, क्योंकि प्राविधिक सलाहकार उसके विरुद्ध थे। मैंने दो मिनट तक उत्तर की प्रतीक्षा की और उसके बाद कहा, "ठीक है, श्री गुलाम मोहम्मद, तो मैं अपना प्रस्ताव वापस लेता हूं, क्योंकि आप इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं।" हम दोनों ने एक संयुक्त विज्ञप्ति प्रसारित करके विदा होने का निर्णय किया। विज्ञप्ति में यह कहा गया कि दोनों पक्षों ने वार्ता की, एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझा और फिर सम्मेलन स्थगित हो गया।

हमको गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबेटन के साथ खाना खाना था। जैसे ही मैं भोजन के लिए पहुंचा, गवर्नर जनरल ने मुझसे सम्मेलन के बारे में पूछताछ की। मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि सबकुछ ठीक हुआ, लेकिन सद्भावनाओं के बावजूद समझौता न हो सका। भोजन से वापस आया तो शाम को करीब ४ बजे मुझे पंडितजी का फोन मिला। वह कुछ उत्तेजित लग रहे थे। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि मैंने एक व्यावहारिक सुझाव रखा था, पर पाकिस्तान को स्वीकार नहीं हुआ। उन्होंने कहा, "वे लोग अब उक्त प्रस्ताव को मानने के लिए राजी हो रहे हैं, अतः तुरंत मेरे कमरे में चले आइए।" मैं वहां पहुंचा। उन्होंने वहां जो मसविदा तैयार किया, उसमें बाकी सबकुछ तो ठीक था, किन्तु ये शब्द आपत्तिजनक थे— "दोनों पक्षों के कानूनी अधिकारों के पूर्वाग्रहों से रहित।" मैंने इस पर आपत्ति की। मैंने कहा कि इस बारे में समझौता पहले ही हो चुका है, जिस पर अमल भी किया गया है। हमारे जल-संबंधी अधिकार प्राकृतिक नियम के सिद्धांतों पर आधारित तथा हमारे अनुकूल हैं और उनमें कानूनी उलझाव या विवाद की कोई गुंजाइश नहीं है। मैंने कहा कि वर्तमान स्थिति में मैं इस समझौते पर हस्ताक्षर नहीं करना चाहता। वह कुछ परेशान हो उठे और बोले—"तुमको हस्ताक्षर करना ही होगा, अन्यथा मैं भी हस्ताक्षर नहीं करूंगा।"

इसपर मैंने सुझाव दिया कि समझौते में कम-से-कम पांच वर्ष की अवधि का उल्लेख होना चाहिए। गुलाम मोहम्मद ने साफ-साफ कह दिया कि अवधि का लिखित उल्लेख करने की कोई जरूरत नहीं, लेकिन हम इसको अपने ध्यान में जरूर रखेंगे। मैं इच्छुक तो नहीं था, पर प्रधान मंत्री का लिहाज करके मैंने तीन मई १९४८ को उस समझौते पर हस्ताक्षर जरूर कर दिए। इससे जल-विवाद समाप्त नहीं हुआ और यह १९६१ तक लगातार हमारा सर-दर्द बना रहा। बाद में अंतर्राष्ट्रीय बैंक की मध्यस्थता से अंतिम समझौता हुआ।

लेकिन ३ मई, १९४८ और १९६० के बीच एक ऐसी घटना घटी, जिसका उल्लेख मैं सार्वजनिक हित में मानता हूं। पाकिस्तान ने पानी की कीमत चुकाई जरूर, लेकिन अनियमित ढंग से। वह हर बार कोई-न-कोई परेशानी खड़ा करता रहा। सितम्बर १९५० में पाकिस्तान ने भारत सरकार को एक पत्र लिख कर शिकायत की कि भारत दीपालपुर नहर को पर्याप्त जल प्रदान नहीं कर रहा है, जिससे विश्व-शांति को खतरा पैदा हो सकता है और पाकिस्तान सरकार इस मामले को सुरक्षा-परिषद में रखने जा रही है। इस पत्र की एक प्रति मुझे भेजी गई, क्योंकि मैं सिंचाई मंत्री था। इसे पढ़कर मुझे आश्चर्य हुआ। असल बात यह थी कि ३ मई १९४८ का समझौता पाकिस्तान को पसंद नहीं आया। हमने संयुक्त राष्ट्रसंघ को सूचित कर दिया कि पाकिस्तान को इस समझौते पर ऐतराज है। पाकिस्तान की यह नीति रही है कि

वह भारत के विरुद्ध हर शिकायत को अंतर्राष्ट्रीय महत्व और भारत की अप्रतिष्ठा का विषय बना देता है। इसी नीति के अनुसार उसने यह नोट भारत को भेजा। सितम्बर के प्रथम सप्ताह में पाक-नोट का उत्तर तैयार करने के लिए प्रधान मंत्री के कार्यालय में एक सम्मेलन आयोजित किया गया।

मेरे विभाग ने एक मसविदा तैयार किया था, जो वितरित कर दिया गया। सम्मेलन में पंडितजी के अलावा तत्कालीन गृहमंत्री राजाजी, काश्मीर-मंत्री श्री गोपालस्वामी, पंजाब के तत्कालीन राज्यपाल त्रिवेदी, पंजाब के सिंचाई-मंत्री, केंद्रीय सरकार के आधा दर्जन इंजीनियर और उतने ही आई. सी. एस. अधिकारी शामिल हुए।

मसविदे पर विचार हुआ। उसमें निर्धारित मात्रा कुछ कम की गई मान भी ली जाय, तो भी यह ऐसा विषय नहीं हो सकता, जिससे विश्व-शांति भंग हो, या इसे सुरक्षा-परिषद् में उपस्थित करने योग्य समझा जाय। इसमें जल-सप्लाई के बारे में तथ्य भी दिये गए थे और बतलाया गया था कि सप्लाई में थोड़ी-बहुत कमी का कारण जल की अल्पोपलब्धि है, जिसके कारण कुछ भारतीय क्षेत्रों को इस अनुपात से भी जल कम प्राप्त हुआ है, अतः पक्षपात का कोई प्रश्न नहीं उठता। भारत ने ३ मई, १९४८ के समझौते का पालन ही किया है।

वाद-विवाद के दौरान पंडितजी ने कहा, "मान लीजिये कि पाक-सरकार ने गलती की, पर बेचारे पाक-नागरिकों का क्या कसूर था?" मैंने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "मैं समझौते का अक्षरशः पालन करता आ रहा हूं और इस विषय में पाक-सरकार को कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह बात पाक-जनता पर निर्भर करती है।"

मैंने आगे कहा, "मैं दूसरों के साथ उदारता बरतने से पूर्व अपनी जनता से न्याय करना चाहता हूं और बेशकीमती मोतियों को इस तरह फेंकने से लाभ ही क्या है?" मेरा वाक्य समाप्त होने से पूर्व ही पंडितजी बिफरते हुए बोल पड़े, "क्या प्रधान मंत्री होने के नाते मुझे कोई निर्णय लेने का अधिकार नहीं है?" मैंने धैर्यपूर्वक उत्तर दिया, "जो अधिकार आपको संविधान के अंतर्गत प्राप्त हैं, उन्हें मैं आपसे छीन कैसे सकता हूं? लेकिन चूंकि मैं भी संविधान के अनुसार सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर काम करनेवाले मंत्रिमंडल का सदस्य हूं, इसलिए मुझे मंत्रिमंडल को अपनी ओर से पूरी जानकारी देने तथा अपने विचार प्रकट करने का हक है। अगर अन्ततः निर्णय मेरी पसंद या अन्तरात्मा के खिलाफ हुआ तो मैं जानता हूं कि मुझे क्या करना चाहिए।" वह पुनः उबल पड़े, "क्या मुझे तुमसे त्याग-पत्र मांगने का अधिकार नहीं है?" मैंने उत्तर दिया, "अवश्य है। मैं त्याग-पत्र देने को तैयार हूं। आप कल इस समय तक मुझे बता दीजिये, मैं लिखित रूप में अपना त्यागपत्र भेज दूंगा। मैं किसीका कठपुतला नहीं हूं।"

इसका भारी प्रभाव हुआ। वह शांत हो गये। हमने बहस पुनः चालू की और मेरे मंत्रालय द्वारा प्रस्तुत मसविदा श्री गोपालस्वामी के कतिपय संशोधनों के साथ ज्यादा कठोर भाषा में स्वीकार कर लिया गया। सम्मेलन समाप्त हो गया।

सम्मेलन के सदस्य विदा हो ही रहे थे कि राजाजी ने मुझे थोड़ा रुकने के लिए कहा। राजाजी ने मुझसे पूछा कि मैं गरम क्यों हो गया। मैंने उत्तर दिया, "आप ही बतलाइये मेरी क्या गलती है?" इसपर पंडितजी ने, जो वहां उपस्थित थे, कहा "हम दोनों का स्वभाव एक-दूसरे के विपरीत है।"

मैंने कहा, "सामूहिक उत्तरदायित्व में मिजाज और दृष्टिकोण के भेद रहते ही हैं, पर वाद-विवाद की पूरी छूट होती है और निर्णय को, चाहे वह सर्वसम्मत हो अथवा बहुमत-समर्थित, समूचे मंत्रिमंडल का निर्णय माना जाता है। अगर किसी सदस्य को ऐतराज हो तो वह त्यागपत्र देकर जा सकता है और इसी स्थिति में मैं भी आपको परेशानी में न रखकर त्यागपत्र देने को तैयार हूं। मुझे कलतक अपना निर्णय बता दीजिये। मैं विश्वास दिलाता हूं कि पद-त्याग के बाद भी आपके प्रति मेरी निष्ठा ज्यों-की-त्यों रहेगी।"

फिर मैं वहां से सचिवालय में अपने कक्ष की ओर रवाना हो गया। वल्लभभाई ने मुझे शुरू से ही यह कह रखा था कि यदि प्रधान मंत्री से मेरा कोई झगड़ा हो तो मैं एकदम कोई कदम न उठाऊं। इसलिए मैंने तुरंत वल्लभभाई को, जो उन दिनों बम्बई में थे, पत्र लिखकर प्रार्थना कि वह अगले दिन अपराह्न तक टेलीफोन या तार द्वारा अपनी राय से अवगत करायें। फिर मैंने अपने कागजात संभाले और भोज पर चल दिया। मैं साढ़े तीन बजे शाम को लौटा तो मेरे निजी सचिव ने सूचना दी कि प्रधान मंत्री के सचिवालय से मेरे लिए एक जरूरी पैगाम आया है और मुझे चार बजे वहां बुलाया गया है।

मैंने यह सोचा कि शायद उन्होंने मुझे पद-मुक्त करने का निर्णय ले लिया है। अतः मैंने त्यागपत्र में जोड़ने के लिए कुछ मुद्दे तैयार कर लिये और चल दिया। ठीक चार बजे मैं उनके कमरे में प्रविष्ट हुआ। जैसे ही उन्हें मेरे आगमन की सूचना मिली, वह उठकर मेरे पास आये और मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए बोले, "प्रिय गाडगिल, आज सुबह जो कुछ हुआ, उसके लिए मैं क्षमा मांगता हूं।" यह अप्रत्याशित बात थी। मैंने कहा, "मैं यह मानकर ही आपके कमरे में घुसा हूं कि आपने जो शब्द अभी-अभी कहे हैं, उन्हें आप वापस ले लेंगे।"

पिछले पच्चीस वर्षों से हमारे संबंध भ्रातृत्व के रहे थे। हम दोनों कमरे में साथ-साथ पहुंचे, साथ-साथ चायपान किया। उन्होंने मेरा मसविदा स्वीकार कर लिया था और उसकी स्वीकृति से वल्लभभाई को सूचित कर दिया था। उसके बाद भी दस-पन्द्रह मिनट तक और कई विषयों पर बातचीत हुई। उनकी बौद्धिक विशालता और साथियों के प्रति सद्व्यवहार से मैं बहुत प्रभावित हुआ।

फिर मैं उनके कमरे से उठकर राजाजी के पास आया। वह कॉफ़ी पी रहे थे। उनसे मैंने कहा, "आपने यह क्या किया? अगर मेरा त्यागपत्र मंजूर हो जाता तो काफी राहत मिलती।" राजाजी ने कहा, "आपके जाते ही मैंने पंडितजी को बतलाया कि उन्होंने गाडगिल से जो कुछ कहा, ठीक नहीं था। जवाब में पंडितजी ने कहा कि गाडगिल मुझे गलत नहीं समझेंगे। लेकिन मैंने कहा कि गाडगिल कुछ भी क्यों न समझें, पर पंजाब के राज्यपाल व अन्य अधिकारियों पर अवश्य आपकी बात का बुरा असर पड़ा है। मैंने पंडितजी को सलाह दी कि वह अपनी भूल सुधारें। इसीका यह फल हुआ।"

मैं यहां यह बतलाना उचित समझता हूं कि सन् १९६० में उक्त समस्या के अंतिम समाधान तक, हालांकि मैं तब विद्युत व सिंचाई-मंत्री नहीं रहा था, और कुछ काल बाद तो मंत्रिमंडल में भी नहीं रहा था, फिर भी मुझे संबंधित कागजात भेजकर पंडितजी मेरी राय मांगते रहते थे।

स्व० प्रधान मंत्री की निष्पक्षता और सदाशयता प्रदर्शित करने की दृष्टि से ही मैंने उक्त घटना का उल्लेख किया है। ●

एच० वी० आर० आयंगर

गांधीजी के साथ अनोखा संबंध

30 जनवरी, १९४८ की संध्या को जब नाथूराम गोडसे ने गांधीजी को गोली मारी, उस समय में प्रधान मंत्री सचिवालय में अपने दफ्तर में काम कर रहे थे। मुझे बिड़ला-हाउस से टेलीफोन पर संदेश मिला और मैं तुरंत उन्हें सूचित करने गया। एक क्षण वह मुझे घूरते रहे, मानों उन्हें यकीन ही नहीं आ रहा हो और फिर उन्होंने अपनी टोपी पहनी और कहा, "चलो।" उठते-उठते उन्होंने पूछा, "कितनी गहरी चोट आई है?" मैंने उत्तर दिया, "मुझे भारी दुःख है, वह मर रहे हैं या मर चुके हैं।"

हम यथासंभव तेजी से बिड़ला-हाउस पहुंचे। इस बीच प्रधान मंत्री एक शब्द भी नहीं बोले और उनके चेहरे से यह पता लगना असंभव था कि उन्हें कितना आघात पहुंचा है।

बिड़ला-हाउस पहुंचने और गांधीजी के शव को देखने तक उन्हें एक क्षण भी सोचने को नहीं मिला। लोगों की भीड़ अहाते में और बाहर सड़क पर उमड़ रही थी, फाटक बन्द कर दिये गए थे और यह आवश्यक था कि कोई लोगों से धीरज रखने और शांत रहने की अपील करता।

प्रधान मंत्री सींखचों के नजदीक ऊंचे चबूतरे पर चढ़ गये। पुलिस के अफसरों ने उनसे ऐसा न करने का अनुरोध किया, कारण उन्हें डर था कि कहीं कोई हत्यारा भीड़ में उन्हें मारने की घात में न बैठा हो। प्रधान मंत्री ने उतावली के साथ पुलिस अफसरों की सलाह को ठुकरा दिया और कुछ मिनट तक अगर कोई चाहता तो उन्हें आसानी से गोली का निशाना बना सकता था। मंत्री, नागरिक और सैनिक अफसर अंतिम संस्कार की व्यवस्था के बारे में चर्चा करने के लिए आये। इस बीच यह तय किया गया कि प्रधान मंत्री रेडियो पर राष्ट्र के नाम अपना संदेश प्रसारित करें।

प्रधान मंत्री को एक क्षण का समय भी नहीं मिला कि वह रेडियो-संदेश के लिए अपने विचारों को व्यवस्थित कर पाते। वह अपनी गाड़ी से रेडियो-भवन के लिए रवाना हुए, किन्तु उसमें भी वह अकेले नहीं थे और उन्हें शांति नहीं मिली। जब वह ध्वनि-विस्तारक यंत्र के सामने बैठे और उन्होंने राष्ट्र को संबोधित किया तो वह अपने हृदय से बोले। क्या वाक्य बोलना चाहिए या भावना प्रकट करनी चाहिए, इसकी उन्होंने तनिक भी पूर्व-तैयारी नहीं की थी। उनके मुंह से ऐसे शब्द निकले, जो न केवल हमेशा अंग्रेजी गद्य के श्रेष्ठतम नमूने समझे जायंगे, बल्कि कोई आदमी किसी दूसरे को शायद ही ऐसी हृदय-स्पर्शी श्रद्धांजलि दे सकेगा।

हत्या के दो दिन बाद, अंतिम संस्कार के दूसरे दिन, मंत्रिमंडल की बैठक हुई और उसमें यह फैसला किया कि सरकार गजट का असाधारण अंक निकाले और गांधीजी को अंतिम श्रद्धांजलि भेंट करे। प्रधान

मंत्री ने पूछा, "उसका मसविदा कौन तैयार करेगा ?" सभीने कहा, "बेशक, आपको ही यह करना होगा। आपसे अधिक अच्छा और कौन लिख सकता है।" उनका यह कहना सही था, क्योंकि प्रधान मंत्री अंग्रेजी गद्य के स्वामी थे और उनकी शैली ऐसी थी कि पाठक उनकी व्यापक दृष्टि और भावुक हृदय के साथ तुरंत एक रस हो जाता था।

प्रधान मंत्रीं ने कहा, "नहीं-नहीं, मैं नहीं लिख सकता।" उनके सहयोगियों ने सोचा कि वह गंभीरता से इन्कार नहीं कर रहे हैं और आग्रह किया कि उन्हें ही मृत्योपरांत-श्रद्धांजलि लिखनी चाहिए। प्रधान मंत्री ने उनसे और कुछ नहीं कहा, किन्तु जब हम मंत्रिमंडल की बैठक से बाहर निकले और हम दोनों अकेले उनके कमरे की ओर पैदल चले तो वह मेरी ओर मुड़े और बोले, "भई, मैं नहीं लिख सकता। सचमुच मैं नहीं लिख सकता।" मैंने देखा, उनकी आंखों में आंसू थे। उन्होंने मुझसे कहा, "मैं गांधीजी के बारे में जो सोचता हूं, उसे ठंडे अक्षरों में कैसे लिख सकता हूं ? मैंने यदा-कदा तुमसे कहा है कि मेरे लिए वह क्या थे। आज मैं पस्त और गूंगा हो गया हूं। अच्छा हो, तुम्हीं मुझे एक मसविदा तैयार कर दो।"

और मैंने एक मसविदा तैयार किया—अच्छे-से-अच्छा, जो मैं लिख सकता था, फिर भी वह बिल्कुल बढ़िया नहीं था, क्योंकि जब प्रधान मंत्री ने उसे संवारा तो उसका रूप ही बदल गया। किन्तु किसी मसविदे के बारे में इतना विनम्र मैंने उन्हें कभी नहीं देखा था। वह थे प्रतिभाशाली लेखक और मैं उनके सामने एक साधारण लेखक से अधिक कुछ नहीं था, फिर भी वह मुझसे पूछते, "क्या तुम नहीं सोचते कि इसे यों लिखना ज्यादा अच्छा होगा ?" लगा, कुछ समय के लिए उनकी अन्तरतम की अनुभूति, जीवित श्रद्धा और अटूट रिश्ते की जगह सम्पूर्ण शून्यता ने ले ली है। वह मसविदे में संशोधन कर रहे थे तो मैं उन मौकों की याद करने लगा, जब उन्होंने गांधीजी के बारे में मुझसे चर्चा की थी।

मुझे याद आया कि नवम्बर १९४७ के पहले सप्ताह में, काश्मीर में, भारतीय सेना जाने के कुछ दिन बाद, प्रधान मंत्री श्रीनगर और बारामूला तक गये। बारामूला में उन्होंने वह गिरजा देखा, जिसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया था। वह जगह भी देखी, जहां हमलावरों ने कुछ औरतों की इज्जत लूटी थी और नेशनल कांफ्रेंस के स्थानीय नेता का मकान देखा, जिसे शारीरिक यंत्रणाएं दी गई थीं। एक के बाद एक किस्से उन्हें सुनाये गए, जो अकथनीय बेरहमी और पशुता से भरे हुए थे। उन्होंने सुना और रवाना होने के पहले वह झुके और कुछ फूल चुन लिये। उन्होंने कहा, "इन फूलों को अपने हाथों में रखे रहो ।" मैंने उनसे पूछा, "आप इन फूलों को दिल्ली क्यों ले चलना चाहते हैं ?" उन्होंने उत्तर दिया, "बारामूला में शिष्टता और सुन्दरता की यही चीजें बच रही हैं और मैं आज रात इन्हें गांधीजी के पास ले जाना चाहता हूं।"

प्रधान मंत्री ने फूल मुझे दिये। उसके पहले उन्होंने उन्हें सूंघ लिया था। मैंने कहा, "पंडितजी, हम जहां के रहनेवाले हैं, वहां देवता पर चढ़ाये जानेवाले फूलों को चढ़ाने से पहले नहीं सूंघते।" एक क्षण के लिए उन्होंने मेरी ओर घूरा, कुछ बोले नहीं, और फिर नीचे झुके और कुछ और फूल चुन लिये। कहा, "लो।" और उन्होंने नया गुच्छा मुझे दे दिया।

जब हम दिल्ली पहुंचे तो उन्होंने मुझसे वे फूल मांगे और उन्हें लेकर सीधे गांधीजी से मिलने के लिए बिड़ला-हाउस चले गए।

मुझे याद आया कि हत्या के कुछ सप्ताह पहले हम दफ्तर से साथ-साथ शाम के ७ बजे चले। उन दिनों दिल्ली का जीवन काफी अस्त-व्यस्त था। दफ्तर की गाड़ी उस समय तुरंत प्रधान मंत्री के लिए उपलब्ध न थी और मैंने अपनी कुछ खटाला-सी गाड़ी में बैठने का अनुरोध किया। वह काफी थके-से दिखाई दे रहे थे। वह दिन काफी लम्बा था, खूब गरमी पड़ी थी, बहुत लोग मिलने आये थे और पूर्वी तथा पश्चिमी पंजाब की घटनाओं की अफसोसनाक खबरें सुनने को मिली थीं। उस रात भोजन के बाद वह एक महत्वपूर्ण व्यक्ति से मिलनेवाले थे—या तो पाकिस्तान के गुलाम मोहम्मद होंगे या हैदराबाद के लायक अली। मुझे उस समय उपस्थित रहना था और चर्चाओं का विवरण तैयार करता था।

मैंने सुझाया कि प्रधान मंत्री सीधे घर चले जायं और स्नान तथा भोजन करने के पहले एक घंटा आराम करें। उन्होंने मेरी ओर कुछ संशयात्मक दृष्टि से देखा और कहा, "मैं चाहूंगा कि तुम मुझे बिड़ला-हाउस छोड़ दो।" मैंने फिर कहा, "आप रोज ही गांधीजी से मिलते हैं। क्या आज आपको थोड़ा आराम नहीं करना चाहिए?" उन्होंने आगे कोई तर्क नहीं किया और बिड़ला-हाउस छोड़ देने की बात कही।

उसके बाद मैं रात के करीब दस बजे यार्क रोड पर उनके निवास-स्थान पर उनसे फिर मिला। उनके परिवर्तन को देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया। वह ताजा और उत्साह से भरे हुए थे। उनका चेहरा, उनकी आवाज, उनके कदम ऐसे लगे, मानो वह ताजगी देनेवाली नींद से जगे हों और जो चर्चाएं हुईं, उनमें उनका सारा मन इतना एकाग्र था, जितना मैंने पहले कभी नहीं देखा था।

अतिथि लौटे तब आधी रात से अधिक समय बीत चुका था। करीब एक बजा होगा और प्रधान मंत्री ने गवर्नर-जनरल माउण्टबेटन से वादा किया हुआ था कि उस महत्वपूर्ण व्यक्ति से बातचीत के बाद वह उनको टेलीफोन करेंगे। उन्होंने टेलीफोन किया और मैं अपनी गाड़ी में बैठने ही वाला था कि वह बाहर निकल आये। रात निस्तब्ध थी और आधा चांद निकला हुआ था।

मैंने उनसे पूछा, "मैंने आपको बिड़ला-हाउस छोड़ा, उसके बाद क्या हुआ? उस समय आप बहुत थके हुए थे और अब आप ऐसे लगते हैं कि कई घंटे काम कर सकते हैं।" उन्होंने उत्तर दिया, "यही हुआ कि करीब आधा घंटा गांधीजी के साथ बिताया। तुमको पता नहीं कि इसका क्या मतलब होता है। उनके साथ रहने के बाद तुम आराम की बात कैसे सोच सकते हो? तुम नींद की बात कैसे सोच सकते हो? लाखों काम करने को हैं और हर बार जब मैं उनसे मिलता हूं, वह मुझे नया जीवन देते हैं।"

मैं थका-सा, गाड़ी पर झुका हुआ, घर जाने को उत्सुक खड़ा था, किन्तु मन और कुछ सुनना चाहता था। उस शांत रात्रि में आधे चंद्रमा के नीचे सारी दिल्ली सोई हुई थी। "कोई कैसे सो सकता है जब अनेक काम करने को पड़े हों?" "उनका कैसा जादू है?" मैंने पूछा। एक क्षण उन्होंने सोचा और मुस्करा-कर रह गये। वह बोले, "तुमने दिन-भर काम किया है। अब घर जाओ। कल बहुत-से काम करने हैं। अच्छा।" वह भीतर चले गये।

हत्या के कुछ दिन बाद संसद-भवन में एक कमेटी की बैठक थी। हम कमेटी के कमरे में पैदल

जा रहे थे। वह रुके और मेरी ओर देखकर बोले, "क्या तुम्हें पता है कि कुछ ज्योतिपियों ने मुझे चेतावनी दी है कि अगले सप्ताह मेरी मृत्यु हो सकती है?" मैंने उत्तर दिया, "यह वेहूदा बात है। वेशक, आप इस उल-जलूल में विश्वास नहीं करते।" उन्होंने मुझसे कहा, "मैं नहीं करता, किन्तु सच्चे प्रेम से प्रेरित होकर मुझे यह चेतावनी भेजी गई है। मैं इस सबमें यकीन नहीं करता, पर आदमी क्या कह सकता है कि वह कव मरेगा। किन्तु अभी मरना कुछ अच्छा नहीं होगा। नहीं होगा न? देखो, कितना वड़ा काम करना वाकी है। तुम मुझसे कुछ समय पहले गांधीजी के वारे में पूछते थे। उन्होंने एक वात मुझे सिखाई है और वह यह कि इन ज्योतिषियों के कथनानुसार कुछ दिन जीवित रहूं या कुछ साल जीऊं, मैं अपनी जागृत अवस्था का हरेक क्षण भारत के लिए काम करते हुए विताना चाहता हूं। देखो तो लोग मुझमें कितना विश्वास रखते हैं।" इतना कहकर वह कमेटी के कमरे में दाखिल हो गये।

मेरे ख्याल से जव उन दिनों का इतिहास लिखा जायगा तो उसका एक महत्वपूर्ण अध्याय होगा कि आजादी के आंदोलन और आजादी के वाद से नेहरूजी की मृत्यु तक विकास के सारे ही नमूने पर उनके और गांधीजी के अनोखे आपसी संवंधों का क्या असर पड़ा। मैं आशा करता हूं कि यह इतिहास शांत और निरपेक्ष होगा और वर्तमान चर्चाओं में भावना का जो प्राधान्य रहता है, उससे शून्य होगा। मैं यह भी आशा करता हूं कि उसमें प्रचुर शक्ति और महान गुणों की ही चर्चा नहीं होगी, वल्कि अल्प मर्यादाओं का भी उल्लेख होगा। किन्तु निस्संदेह यह इतिहास एक विचित्र कहानी कहेगा कि किस प्रकार एक प्रधान मंत्री, जो वहुत अधिक वौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न थे, शव्दों के शिल्पी थे, जिनके हाथों में लोगों ने राजी-खुशी असीम राजनैतिक सत्ता सौंप दी थी, वार-वार प्रेरणा पाने के लिए गांधीजी की याद करते थे, ताकि वह अपनेको देशवासियों की सेवा में तिल-तिलकर गला सकें--उन गांधीजी की, जो उनसे कई वातों में इतने भिन्न थे! ●

पंडित नेहरू की गिनती इस तूफानी युग के ऐतिहासिक महापुरुषों में होगी। मेरे परम श्रद्धेय बन्धु महात्मा गांधी के उत्तराधिकारी के रूप में पंडित नेहरू ने अदम्य साहस, उच्च नैतिकता और बौद्धिक ईमानदारी तथा पूर्व और पश्चिम दोनों की संस्कृतियों पर आश्चर्य-जनक समान अधिकार के साथ अपने जीवन के महान् लक्ष्य और अपने देश के आदर्श के लिए सफल प्रयास किया है।

—गिल्बर्ट मरे

अमृत के स्रोत

जवाहरलालजी के देहांत की सूचना जिस दिन मुझे हार्वर्ड (अमरीका) में मिली, उसके एक सप्ताह बाद न्यूयार्क में एक अमरीकी मित्र के साथ खाने पर मैं और मेरी पत्नी बैठे हुए थे। यह अमरीकी मित्र सन् १९३३ में इलाहाबाद में अध्यापक थे और उन दिनों मैं वहां छात्र था। सन् १९३४ में उन्हें हठात् अमरीका चले आना पड़ा। उसके बाद पहली बार उनसे मेरी मुलाकात उस रोज न्यूयार्क में हुई। तीस वर्ष बाद अध्यापक और छात्र का मिलन। न जाने कितनी स्मृतियों के खंडहर फिर से बसाये हम दोनों ने। एक निष्कर्ष पर पहुंचते हमें तनिक भी देर न लगी। वह यह कि हम दोनों के लिए 'पंडितजी' और 'प्रधान मंत्री'—ये दोनों ही संबोधन अपरिचित थे। ये दोनों आभूषण दिल्ली नगरी और उसके निवासियों ने उन्हें पहनाये। बाद में चालू किया गया संबोधन 'नेहरूजी' भी एक तरह का अलंकार ही था, चाहे उतना भारी-भरकम न रहा हो। मेरे अमरीकी मित्र और मैं तो उन दिनों के इलाहाबाद की बात कर रहे थे, जब अलंकार उन्हें नहीं पहनाये जाते थे, बल्कि वह ही थे असंख्य जनता के कंठहार—'जवाहरलाल'।

उन दिनों इलाहाबाद में इसी नाम की बिजली कौंधती थी युवक हृदयों में। किन्तु जो रोशनी उन दिनों से आजतक मेरे स्मृति-पटल से हट नहीं सकी है, वह बिजली न थी, वरन् थी एक निष्कम्प लौ की ज्योति। १९३६ के मार्च की एक सांझ। प्रयाग में त्रिवेणी पर अस्ताचलगामी सूर्य का मलिनाभ प्रतिबिंब। भीड़ अधिक न थी। जवाहरलाल की नौका संगम पर थमी और हमने देखा, एक मर्माहत विधुर, कलश को नाव के सिरे पर झुकाकर धीरे-धीरे अपनी प्रिया की अस्थियों को विसर्जित कर रहा था। उस चेहरे में हमने क्या देखा? अपार और अत्यंत व्यथा की रेखाएं। लेकिन कुछ और भी।...सूरज डूब गया। जवाहरलाल नाव से उतरे। हवा में ठिरन होने लगी और हम लोग एक घेरा बनाकर खड़े हो गये। जवाहरलाल एक चौक पर खड़े थे और पास ही उनके कंधे पर हाथ रखे राजेंद्रबाबू। त्रिवेणी के संगम पर उस मुट्ठी-भर समुदाय के सामने राजेंद्रबाबू के उस भाषण में सांत्वना से अधिक संजीवनी थी। वह बराबर जवाहरलाल के कंधे पर हाथ रखे रहे। कह रहे थे कि जवाहरलाल ने देश के लिए सबकुछ दिया, सबकुछ तजा, पर उस सांझ को तो उन्होंने वे फूल चढ़ाये हैं भारत मां के चरणों में, जिनकी तुलना ही नहीं। हम लोगों ने देखा, जवाहरलाल के चेहरे को, मानो चरम बलिदान की निष्कम्प लौ से अनुप्राणित कोई आलोक-मण्डल घेरे था।

नई दिल्ली में 'पंडितजी' और 'प्रधान मंत्री' के रूप में उन्हें देखनेवाले लोग या तो भूल गये या जानते ही नहीं कि वेदना, बलिदान और त्याग के वैसे अनेक मौन क्षणों में जवाहरलाल के चेहरे को जो

प्रभा-मंडल प्रदीप्त करता था, उसका प्रतिबिंब मात्र थी वह प्रतिष्ठा की चमक, जो सत्ता और शासन के साथ उन्हें दिल्ली में मिली।

यों मौन-धारण उनकी सामान्य प्रवृत्ति न थी। उन दिनों वाणी एक हथियार थी, जिसका वह प्रभावोत्पादक प्रयोग करते थे। कमलाजी के देहांत के कुछ महीने बाद इलाहाबाद-विश्वविद्यालय-यूनियन में उनका अंग्रेजी में भाषण हुआ, जिसमें अंग्रेजी राज्य की धज्जियां उड़ाने के अतिरिक्त उन्होंने समाजवाद के सिद्धांतों का एक मनीषी की भांति निरूपण किया। अंग्रेजों को भी मात करनेवाली उनकी कैम्ब्रिज की उच्चारण-शैली, इतिहास और समाज-शास्त्र पर आधुनिक दृष्टिकोण, विश्व-रंगमंच का दिग्दर्शन—इन सबने हम लोगों को मोह लिया। इलाहाबाद के युवकों में नवचेतना का श्रीगणेश उसी जमाने में हुआ। १९३५ से १९४० तक के उन पांच वर्षों में विचार-स्वातंत्र्य का बोलबाला था इलाहाबाद में। प्रगतिवादी, समाजवादी, साम्यवादी—सभी प्रकार की उग्र विचार-शैलियों की बाढ़ आई हुई थी। एक तरफ तो स्वराज भवन में जवाहरलाल के नेतृत्व में और लंदन स्कूल ऑव इकनामिक्स से प्रेरित नौजवान विद्वानों की टोली थी, जिसमें डा० अशरफ, डा० लोहिया, डा० अहमद, इत्यादि शामिल थे। दूसरी तरफ थे लिबरल विचारवादी सर तेजबहादुर सप्रू तथा उनके गंभीर और तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित विश्वविद्यालय के कतिपय विद्वान्। इलाहाबाद-विश्वविद्यालय में भी डा० बेणीप्रसाद, डा० ताराचंद, सर शफात अहमद, इत्यादि उद्भट पंडितों के भाषण सिद्धांतों और समसामयिक समस्याओं का समन्वय करते रहते। थोड़े ही दिनों में पहली कांग्रेस-सरकारें स्थापित हुई। उन दिनों जो सरगर्मी थी, जो उल्लास था, जो चेतना थी, वह जलूसों की नहीं, सत्याग्रह की नहीं, हड़तालों की नहीं थी। वह तो विचारों के प्रस्फुटन और संघर्षों का समय था। अब तो ऐसा जान पड़ता है कि उस समय देश ने दो संघर्ष-युगों के बीच एक लमहे के लिए सांस ली और विचारों की प्राण-वायु को भीतर खींचा। जवाहरलाल की आत्मकथा तभी प्रकाशित हुई थी। प्रगतिवादी साहित्य-संघ और अखिल भारतीय छात्र संघ की पहली बैठकें भी तभी हुई थीं।

विश्वविद्यालय में कई छोटे-छोटे क्लब थे, जिन्हें अध्ययन-मंडल की संज्ञा भी दी जा सकती है। इन गोष्ठियों में औपचारिकता कम होती, बातचीत और विचार-विनिमय अधिक। छात्र और अध्यापक दोनों ही सदस्य होते। स्वतः ही इन अनौपचारिक संस्थाओं का उदय हुआ और बाद में शायद स्वतः ही उनका लोप। वैसी एक एक संस्था का नाम था 'लेवलर्स सोसाइटी'—समतावादी मंडल। नाम उत्तेजक था, परन्तु काम केवल विचार-विनिमय। स्वराज भवन और १८ एलबर्ट रोड (सप्रू साहब का मकान) के प्रतिष्ठित मेहमान अक्सर हम लोगों की उस गोष्ठी में सम्मिलित होते। एक बार जवाहरलाल भी आये। सरोजिनी नायडू भी मौजूद थीं। हममें से हरेक विचार-गोष्ठी में बोलता था—चाहे अण्डर-ग्रेजुएट हो, चाहे उद्भट विद्वान्। यह नहीं कि केवल आगत सज्जनों के ही भाषण हों। सबके समानाधिकार थे। माला पहनाना, अतिथि की तारीफ के पुल बांधना, लम्बे धन्यवाद-सूचक भाषण, ये सब प्रक्रियाएं 'लेवलर्स सोसाइटी' में शायद ही होतीं। उस दिन भी चर्चा काफी ऊंचे स्तर की रही और जवाहरलाल बोले भी और उन्होंने सुना भी, यद्यपि मैंने देखा कि जब और लोग बोल रहे थे, उन्होंने सामने की तश्तरी में से एक सेब उठाया और बराबर उससे खेलते रहे। हमारी गोष्ठी में तो हर तरह के विचारों के सदस्य थे, लिबरल भी, साम्यवादी

भी। जवाहरलाल उन दिनों लिबरलों पर अक्सर चोट करते और उस तरह के विचारों की चर्चा सुनने का उन्हें संतोष भी न था।

बाहर आने पर मुझे उनसे दो शब्द निवेदन करने थे। मैं सोसाइटी का संपादक था। एक निबंध-संग्रह हम लोग निकाल रहे थे, जिसमें हर विषय पर दो पक्षों के लेखकों को लिखने के लिए कहा गया—प्रगतिवादी और लिबरल। कई विद्वानों के लेख हम लोगों को मिल चुके थे। एक लम्बा लेख डा० पट्टाभि सीतारमय्या का भी। जवाहरलालजी को मैंने अपनी योजना समझाई और लेख के लिए कहा। सन तो लिया उन्होंने, फिर अपनी सर्वविदित झुंझलाहट और फटकार के लहजे में उन्होंने कहा, "क्या तुम भी गड़े मुर्दे उखाड़ने चले हो।...इन लिबरलों के विचारों का कोई महत्व है?...मोहमिल ख्यालात हैं इन लोगों के।...कब्र की आवाज को दूर-दूर फैलाने से फायदा?...बेकार की बात।"

खासी करारी चोट थी, जैसे कोई मेज पर सजे-सजाये कांच के उपहारों को एक ही हाथ की चपेट में नीचे गिरा दे। हमारे सब मंसूबे मिट्टी हो गये, क्योंकि वचन चाहे कड़े थे, लेकिन उनकी दलील हमारे मन में बैठ गई। हमलोगों ने उस तरह के द्विपक्षीय प्रकाशन का इरादा छोड़ दिया।

लगभग दस बरस बाद यानी सन् १९४६ में एक दूसरी तरह के प्रकाशन के संबंध में जवाहरलाल-जी से सामना हुआ। मैं बिहार में पटना सेक्रेटेरियट में पदाधिकारी था, किन्तु व्यक्तिगत रूप में वैशाली संघ से संबद्ध था। वैशाली के लिच्छवि गणतंत्र और वहां की पुरातन सभ्यता के संबंध में अनेक विद्वानों के लेखों का संग्रह 'वैशाली-अभिनंदन-ग्रंथ' के नाम से हमलोग प्रकाशित कर रहे थे। सोचा, क्यों न जवाहरलालजी से ही भूमिका दिलवाई जाय। १९४६ में चुनाव-दौरे के सिलसिले में वह पटना आये। दौरा क्या था, १९४२ के आंदोलन के बाद पहली बार विजय का डंका था और था स्वाधीनता के प्रभात का आह्वान। 'वैशाली संघ' के एक अन्य पदाधिकारी के साथ मैं जवाहरलालजी से श्री चन्द्रशेखर प्रसाद नारायणसिंह की कोठी पर जाकर मिला। ध्यान से सबकुछ सुनने के बाद बोले, "देखिये, मैं इन लेखों को ध्यान से पढ़ने के बाद ही कुछ लिखने का वायदा कर सकता हूं। दूसरी बात यह है कि एक जगह बहुत पुरानी है या कि वहां एक जमाने में प्रजातंत्र रहा—महज इसीलिए मैं उस जगह की तारीफ-ही-तारीफ लिखूं, यह उम्मीद आप मुझसे न करें। मैं तो भई, दोनों तरह की बातें लिखूंगा। तारीफ के काबिल बातों का जिक्र करूंगा, मगर जरूरत पड़ने पर आलोचना से भी नहीं चूकूंगा।"

यद्यपि इसके कुछ दिनों बाद राष्ट्रीय समस्याओं में अत्यंत व्यस्त हो जाने के कारण जवाहरलालजी हमारी इच्छा पूरी न कर सके, तथापि उनके कथन का मुझपर बहुत असर पड़ा। हमारे देश में बड़े लोगों से भूमिकाएं लिखवाकर अपनी खामियों पर से पाठकों का ध्यान हटाने की चेष्टा अक्सर देखी जाती है। प्रधान मंत्री होने के बाद जवाहरलालजी को इस तरह के मिथ्याचार के खिलाफ अधिक माथापच्ची करने का समय नहीं मिलता था और शायद इसीलिए कभी-कभी उन्हें अपनी मर्जी के विरुद्ध सारहीन प्रशंसा के शब्द लिखने पड़ते थे, पर सिद्धांततः किसी तरह की कोरी रस्म अदा करने को वह आडम्बर मानते थे।

१९५५ में आकाशवाणी का प्रधान अधिकारी होने के बाद मुझे जवाहरलालजी को 'प्रधान मंत्री' के ही रूप में बराबर देखना पड़ा। चूंकि बुजुर्गों के इस उसूल का मैं कायल रहा हूं कि घोड़े की पिछाड़ी

और अफसर की अगाड़ी कभी नहीं जाना चाहिए, इसलिए उनसे व्यक्तिगत संबंध स्थापित करने की चेष्टा मैंने नहीं की। वह मेरे सुपर बॉस यानी सर्वोच्च अधिकारी थे। इसलिए सरकारी जरूरतें पड़ने पर मैं उनके निकट जाता। ऐसा पहला अवसर अगस्त १९५५ में ही आया, जब वह ब्राडकास्टिंग हाउस में बाढ़ और खाद्यान्न-संबंधी कठिनाइयों पर राष्ट्र के नाम संदेश प्रसारित करने आये। मुझे उनकी हाजिरी में स्टूडियो-कक्ष के अंदर ही मौजूद रहना पड़ा। अंग्रेजी में वार्ता पढ़ने के बाद वह स्वयं हिन्दी में उसका अनुवाद करते-करते माइक पर बोलने को थे, किन्तु उस दिन उन्हें सख्त जुकाम था। अंग्रेजी में बोलने के बाद कुछ रुके, रूमाल निकाला और सस्वर नासिका-शोधन किया। मैं नया-नया ब्राडकास्टिंग हाउस में गया था और मुझे तुरंत यह नहीं सूझा कि माइक्रोफोन को बंद करा दूं। क्या देशभर के श्रोताओं ने रेडियो पर वह आवाज सुनी? कम-से-कम प्रधान मंत्री ने तो इसी विश्वास में नाक पर रूमाल रखा होगा कि अंग्रेजी के ब्राडकास्ट के बाद कुछ विराम होगा। यदि उन्हें 'बदइंतजामी' का अनुमान भी हो जाता तो हमलोगों की शामत आ जाती। जो हो, कुछ सैकिंड बाद उन्होंने अपनी निराली बोलचाल की हिंदी में अनुवाद करना और बोलना शुरू किया। चूंकि बाद में किसी अखबार में इस बारे में कोई चर्चा नहीं हुई, इसलिए मेरा अनुमान है कि आकाशवाणी के अनुभवी इंजिनियरों ने मुस्तैदी के साथ उस स्वर का कुछ काट कर लिया होगा।

वार्ता के बाद जवाहरलालजी ने अत्यंत स्नेहपूर्ण स्वर में मुझसे पूछा कि मैं कौन हूं, पहले कहां था, कहां का रहनेवाल हूं, इत्यादि-इत्यादि। मैंने 'सिविल सर्विस के सपूत' के नाते नपे-तुले जवाब दिये। इलाहाबादवाली मुलाकातों का कतई हवाला नहीं दिया। यह भी जताने का प्रयत्न नहीं किया कि मैं नाटककार हूं, हिन्दी का लेखक हूं, सांस्कृतिक क्षेत्र में सक्रिय रहा हूं। सात बरस तक अनेक बार सामना हुआ और बराबर मैं उसी रूप में उनकी हाजिरी में गया—बीसियों आई.सी.एस. अधिकारियों में से एक। आई.सी.एस. के लिए जवाहरलालजी के दिल में कभी कोई खास जगह नहीं रही, लेकिन साथ ही वह इस वर्ग के कर्मचारियों की दक्षता और समझदारी के कायल रहे और सत्रह साल के प्रधान मंत्रित्व को उन लोगों से काम लेकर ठोक-पीटकर उनकी सेवाओं को देश के लिए उन्होंने कल्याणकर ही माना।

यों मुझे उनसे झाड़-फटकार बहुत कम मिली, बल्कि शिष्टतापूर्ण व्यवहार ही अधिक। एक बार ब्राडकास्ट करके जा रहे थे कि विचार हुआ कि 'जनगणमन' के जो रेकार्डिंग उनकी मंजूरी के लिए हम-लोगों ने तैयार कराये थे, उन्हें वह सुन लें। मैं उन्हें विशेष-अतिथि कक्ष में ले चला। पर पहले से कार्यक्रम था नहीं, उस कक्ष का ताला लगाकर कर्मचारी कहीं चला गया था। चाभी की तलाश होने लगी और मैं समझा कि अब बरसने ही वाले हैं, किन्तु प्रधान मंत्री थे कि दीवार के सहारे पीठ टेककर मंद-मंद मुस्कराते हुए इधर-उधर की बातें करते रहे, और मैं था कि पसीने-पसीने हो रहा था। आखिर चाभी मिली भी नहीं। स्टुडियो के आगे बरामदे में बैठकर उन्होंने रेकार्डिंग सुनी।

झुंझलाहट के मौके न आये हों, यह बात नहीं। एक बार साहित्य-समारोह का उद्घाटन विज्ञान-भवन में हो रहा था। बंगाली या उड़िया भाषा के विद्वान् अपना निबंध पढ़ रहे थे। मंच पर बैठे जवाहर-लालजी को लगा कि माइक्रोफोन काम नहीं कर रहा है। बड़े झुंझलाये, "क्या आपलोगों का इंतजाम है!

उस शख्स की आवाज तो दर्शकों तक पहुंच नहीं रही है। लाउड-स्पीकर ठीक कराइये, लाउडस्पीकर।" मैंने विंग में खड़े इंजिनियरों की ओर देखा। वे लोग आत्म-विश्वास की साकार मूर्ति जान पड़े। दर्शकों की ओर देखा। वे भी मजे में सुन रहे थे। माजरा समझ में आ गया। लाउडस्पीकर खराब होता तो उसे ठीक कराया जाता। प्रधान मंत्री की बेताबी के बावजूद मैं कुर्सी पर उनके पास बैठ गया। निबंध-पाठ जारी रहा और इधर मैंने उन्हें धीरे-धीरे बताने की चेष्टा की कि स्टेज पर लाउडस्पीकर नहीं लगे हैं, इसलिए आपको जान पड़ता है कि वे काम नहीं कर रहे हैं। वस्तुत: 'आडिटोरियम' में सब साफ सुन पड़ रहा है। बात यह थी कि लाउडस्पीकर उन्हें इतनी बार पब्लिक मीटिंगों में दगा दे चुका था कि उन्हें उस दगाबाज की हरकत का अंदाज अनायास ही हो जाता था।

प्रधान मंत्री का दर्पशील रूप मैंने एक बार राष्ट्रपति-भवन में देखा। सन् १९५७ की बात है। सूचना-प्रसार-मंत्रालय के प्रकाशन-विभाग द्वारा प्रकाशित 'गदर के इतिहास' की प्रथम प्रति की औपचारिक रूप से भेंट राष्ट्रपति को की जानेवाली थी। यह अवसर इतना महत्वपूर्ण था कि स्वयं प्रधान मंत्री नेहरू, शिक्षा-मंत्री मौलाना आजाद और सूचना-प्रसार-मंत्री डा० केसकर की उपस्थिति में यह रस्म अदा होने को थी। रस्म ही कहना ठीक होगा, क्योंकि राष्ट्रपति के दफ्तरवालों ने एक निर्देश-पत्र सबके पास भेज दिया, जिसमें लिखा था कि अमुक समय पर राष्ट्रपति पधारेंगे, फलाने अफसर उनका प्रधान मंत्री एवं अन्य मंत्रियों से परिचय करायंगे, प्रधान मंत्री और अन्य मंत्री किन सोफाओं पर आसन ग्रहण करेंगे, किस तरह पुस्तक भेंट की जायगी, वगैरा-वगैरा। मतलब यह कि एक दरबार का खाका खिंचा हुआ था उस निर्देश-पत्र में। प्रधान मंत्री सरकारी उत्सवों, परेडों और ऐसे अन्य अवसरों पर औपचारिकता पसंद करते थे। लेकिन यह तो वैसा अवसर था नहीं। उन्हें आडम्बर की गंध आई। आते ही बोले, "क्यों जी, यह किसकी हरकत है? किस अहमक की यह मजाल कि भारत के प्रधान मंत्री को यह बताये कि वे कितने कदम आगे बढ़ेंगे, कितने कदम पीछे, किस कुरसी पर बैठेंगे और किस जगह खड़े होंगे।" इतना कहकर प्रधान मंत्री पास ही रखे सोफे के हत्थे पर ऐसे बैठ गये, जैसे कोई चंचल किशोर हो। टांगे उन्होंने पसार लीं और हाथ सोफे की पीठ पर टेक लिया। उपस्थित सरकारी कर्मचारियों के बीच सन्नाटा छा गया। बड़े अफसर जो थे, बगलें झांकने लगे। मैं उस दिन मध्यम श्रेणी के अफसरों में ही था। इसलिए उन लोगों की सिटपिटाहट देखकर मुझे, सच कहूं, आनंद ही आया।

प्रधान मंत्री नेहरू से मुझे सबसे अधिक सरकारी सरोकार पड़ा उन मौकों पर, जब विदेशों से नरेश, राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री इत्यादि दिल्ली में राज-अतिथि होकर पधारते थे। उनके सम्मान में राज-भोज के बाद जो संगीत-नृत्य का आयोजन होता, उसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर था, यद्यपि मुझसे ज्यादा मेहनत उसके लिए कर्नल गुप्ते (गीत-नाट्य-विभाग के अध्यक्ष) को करनी पड़ती। १९५५ में ख्रुश्चेव और बुल्गानिन के स्वागत की तैयारी के लिए सरकारी अफसरों की जो समिति बनी, उसकी पहली बैठक में शामिल होकर प्रधान मंत्री ने स्वयं व्यवस्था की रूपरेखा तैयार की। उसके बाद तो अनेक अतिथि आये और हम लोग अभ्यस्त हो गये स्वागत और विशेष अतिथि-सत्कार की व्यवस्था करने के। किन्तु हर बार मेरे मन में धुकधुकी लगी रहती थी, इसलिए नहीं कि कार्यक्रम विशेष अतिथि को अच्छा लगेगा या नहीं। बाहरवालों

का तो मनोरंजन अवश्यंभावी था। अपने लोगों की उचाट तबीयत से ही, उनकी कटूक्तियों से ही, हम प्रायः हतोत्साह होते। अंततः प्रधान मंत्री की प्रतिक्रिया को ही अपना लक्ष्य मानकर हम लोग कार्यक्रम तैयार करने लगे। भाग्यवश श्रीमती इंदिरा गांधी ने अत्यन्त सहानुभूति-पूर्वक हम लोगों को यदाकदा निर्देशन देना स्वीकार किया। इस तरह हमें प्रधान मंत्री की रुचि का थोड़ा-बहुत परिचय मिला। मालूम हुआ कि साड़ी पहनकर कत्थक नृत्य का प्रदर्शन उन्हें असंगत लगता है, कि ताल-वाद्यों द्वारा अधिक उलझे हुए तालों के करिश्मे विदेशी अतिथियों के लिए जंजाल है, कि भरत-नाट्यम के उत्कृष्ट कलाकारों को भी अपनी पोशाक में रंगों और आभूषणों के मिलान का ध्यान रखना चाहिए, कि प्रोग्राम की उद्घोषिका यदि सुन्दर और मधुर मुस्कान-संपन्न हो तो अतिथि ही नहीं, हमारे प्रधान मंत्री पर भी अच्छा असर पड़ता है।...इन कार्यक्रमों का आयोजन करने में मुझे अनेक रोचक अनुभव हुए। दलाई लामा और चाऊ के सम्मान में प्रधान मंत्री के बगीचे में लंच के समय संगीत का प्रदर्शन, सरोद महज चारसौ वर्ष पुराना वाद्य है—इस बात पर प्रधान मंत्री द्वारा अमरीकी अतिथियों की चुटकी लेना, सागर भट्ट की कठपुतलियों का प्रधान मंत्री के सदन में प्रवेश, हर प्रोग्राम के बाद प्रधान मंत्री का कलाकारों से मिलना, उनसे छेड़छाड़ करना, उनके साथ अपनी सहज मुस्कान की झलक दिखाते हुए फोटो खिंचवाना।

अनेक छोटी-छोटी बातें हैं, जो अब याद आती हैं। लेकिन मेरे जैसे बीसियों सरकारी कर्मचारियों को ऐसे दिलचस्प अनुभव हो चुके हैं। श्री एन. आर. पिल्ले, श्री विष्णु सहाय, श्री केशवराम, श्री धर्मवीर आदि अनेक अफसरों को फाइलों पर टिप्पणियों के पीछे जो प्रसंग मालूम हैं, उनके आधार पर पूरा कथा-संग्रह तैयार हो सकता है। लेकिन शायद ऐसे छोटे प्रसंगों में किसीका उतना महत्व नहीं, जितना उस आत्म-विवेचन का, जो मेरे सामने जवाहरलालजी ने सन् १९६० में एक दिन आकाशवाणी-भवन में टेलिविजन स्टूडियो में किया।

आकाशवाणी के टेलिविजन पर वह उनका सर्वप्रथम प्रोग्राम था। मुश्किल से राजी हुए थे। हम लोगों ने दिल्ली शहर में टेलि-क्लबों (प्रौढ़ शिक्षा योजना के अंतर्गत बनी दर्शकमंडलियों) से कुछ साधारण स्त्री-पुरुषों को स्टूडियो में बुला रखा था। वे लोग जवाहरलालजी से तरह-तरह के विषयों पर प्रश्न करते और जवाहरलालजी उनका उत्तर देते तथा यह समूचा कार्यक्रम टेलिविजन पर दिखाया जा रहा था। यद्यपि प्रोड्यूसर श्री देशपांडे ने खासी तैयारी की हुई थी और प्रधान मंत्री अत्यंत तत्परता से देशपांडे के निर्देशनों का पालन कर रहे थे, तो भी लगा कि बैठक कुछ जम नहीं रही थी। और तब घने बादल को चीरती हुई मानो गुमराह सूरज की किरणें फूटीं। एक वृद्ध सज्जन ने पूछा, "पंडितजी, आप भी सत्तर से ऊपर के हैं और मैं भी। लेकिन क्या वजह है कि आप तो गुलाब के फूल की तरह ताजे दीख पड़ते हैं, और मैं हूं कि बुड्ढा हो चला?"

जवाहरलालजी कुछ सोच में पड़े, लेकिन कुछ क्षणों के लिए ही। ऐसे स्वर में, जो स्टूडियो की चहारदीवारी को लांघकर, समय की परिधि के भी बाहर, समाज और युग-युगान्त से बोल रहा था, उन्होंने उत्तर दिया, "तीन बातें हैं। पहली तो यह कि मैं बच्चों में हिलमिल जाता हूं, उन्हें प्यार करता हूं, उनकी मासूमियत में जिंदगी पाता हूं। दूसरी यह कि हिमालय में मेरा मन बसता है—उन बर्फीली

चोटियों, उन घने जंगलों, उस निर्मल हवा में मुझे नये प्राण मिलते हैं। तीसरी वजह यह है कि मैं छोटी-छोटी और ओछी किस्म की बातों से ऊपर उठ सकता हूं, मेरी जहनियत पर उनका असर नहीं पड़ता। मैं तो जिंदगी और दुनिया और मसलों को ऊंची नजर से देखने की कोशिश करता हूं, और इसलिए मेरी सेहत और मेरे विचार ढीलेढाले नहीं हो पाते!"

ये अमर वाक्य हैं। शायद आकाशवाणी में इनका रेकार्डिंग हो। न भी हो तो भी जिन्होंने उस दिन ये शब्द सुने, उनकी स्मृति से ये मिट नहीं सकते।

. . . .

उनकी मृत्यु से पन्द्रह दिन पहले हार्वर्ड में एक टेलिविजन-प्रोग्राम में रुग्ण देह, शिथिल मन जवाहरलाल की तस्वीर देखी, उनकी अटकती-सी वाणी सुनी।

मैंने अपनी पत्नी से कहा, "अमृत के स्रोत सूख गये।" ●

जवाहरलाल को कोई कोरा आदर्शवादी, कल्पना-लोकवासी या रहस्यवादी नहीं कह सकता। वह हमारे आधुनिक युवा समाज के साथ एकप्राण हैं। वह यथार्थता का सामना करते हैं और अपने निरपेक्ष दृष्टिकोण को बनाये रखते हैं। अपनी शांत विवेकशीलता के सहारे वही पश्चिम को ठीक-ठीक समझा सकते हैं कि गांधीजी का मार्ग कितना सही था।

—[illegible]

स्नेह और शक्ति की मूर्ति

नेहरूजी से मेरा परिचय पहले-पहल सन् १९१६ में हुआ, जव मैंने हाईकोर्ट में वकालत आरंभ की थी। कोई घनिष्ठता नहीं थी। हाईकोर्ट के वरामदे में एक इजलास से दूसरे इजलास में जाते समय प्राय: उनसे भेंट हो जाती थी। मैं उन्हें प्रणाम करता था, वह मुस्कराकर थोड़ा सिर झुका देते थे। यही मेरे प्रणाम का उत्तर था। परन्तु उस स्वाभाविक मुस्कराहट में वह जादू था, जो गद्य में तो कहा नहीं जा सकता। हां, पद्य भले ही उसकी तस्वीर खींच दे। पर उसकी मुझमें योग्यता नहीं। उनका अंग्रेजी ढंग का ठाट-वाट और उनके शरीर का सौंदर्य देखते ही वनता था।

थोड़े ही दिनों में एक ऐसा अवसर आया, जिससे मेरा-उनका परिचय, प्रणाम और मुस्कराहट की परिधि से वाहर आया। उस समय हाईकोर्ट की नई इमारत वन चुकी थी और पुरानी इमारत से सव सामान आ चुका था। इजलास नई इमारत में होने लगी थी। हाईकोर्ट के विशाल पुस्तकालय में वहुत-सी पुस्तकों की कई-कई प्रतियां थीं। स्थानाभाव के कारण उनकी छंटाई की गई। लगभग चार सहस्र पुस्तकें इस छंटनी में निकलीं। उनकी सूची वनी और वेचने के लिए मुहरवन्द टेंडर एक निर्धारित तिथि तक मांगे गये।

मेरी नई-नई वकालत थी। लालच हुआ कि अगर कहीं मुझे इतनी किताबें सहसा थोड़े दामों में मिल जायं तो मवक्किल समझेंगे कि यह भी कोई बड़ा वकील है। टेंडर की आखिरी तारीख के एक दिन पहले तक कोई टेंडर नहीं आया। मेरी खुशी का ठिकाना न था। आखिरी दिन तीन-चार टेंडर आये। नाम मालूम करने पर मैंने समझ लिया कि उनमें कोई भारी रकम के टेंडर देने का दम नहीं है। करीव ४ वजे पं. जवाहरलालजी उसी अदा से पुस्तकालय में आये और एक मुहरवन्द टेंडर पुस्तकालयाध्यक्ष को दे गये। मेरी आशा पर पानी फिरता दिखाई पड़ा। फिर भी हताश न होकर मैंने भी अपना टेंडर दे दिया। उस-में मैंने केवल यह लिखा था कि मेरा टेंडर किसी भी टेंडर से एक रुपया अधिक होगा।

दूसरे दिन मिस्टर वोडिलन (आई. सी. एस., रजिस्ट्रार) के सामने सब टेंडर खोले गये। उनपर रजिस्ट्रार महोदय ने यह हुक्म लिखा, "मि. व्यास और मि. नेहरू बोली वोलकर इसका निवटारा कर लें।" मैं रजिस्ट्रार के पास पहुंचा और उन्हें समझाया कि जूनियर होकर भी जव मैंने इतना वड़ा खतरा लिया तो मेरा नेहरू से भिड़ना सर्वथा अनुचित है। रजिस्ट्रार मुस्कराये और अपना पहला निर्णय काटकर लिख दिया, "मि. व्यास किताबें ले जायं।" मेरी बांछें खिल गई।

जब नेहरूजी को पता चला तो वह मेरे पास आये और कहने लगे, "व्यास, तुम्हारा टेंडर मंजूर हो गया। मैंने तो केवल नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेस की पुरानी रिपोर्टों के ख्याल से टेंडर दिया था।" मैंने वे कुल रिपोर्टें उन्हें दे दीं।

अब मुस्कराहट से गाड़ी क्रमशः आगे बढ़ती गई और आगे चलकर स्नेह के रूप में परिणत हो गई।

सन् १९२१ में मैंने वकालत छोड़ दी और स्थानीय म्युनिसिपैलिटी का एक्जीक्यूटिव आफिसर नियुक्त हो गया। एक प्रकार से नेहरूजी का साथ छूट गया। इसी बीच नेहरूजी की जिन्दगी में एक बहुत बड़ा इंकलाब आया और अपनी सामन्तशाही वेषभूषा को अग्निदेव को समर्पण कर वह देश के स्वतंत्रता-संग्राम में कूद पड़े। जनता की सेवा और देश को स्वतंत्र कराना उनका एकमात्र उद्देश्य बन गया। शुद्ध खादी के वस्त्र में उनका सौंदर्य ऐसा निखर आया, जैसे खराद से उतरा हुआ जवाहर अथवा बादल से निकला हुआ सूर्य या गन्दे म्यान से निकली हुई चमचमाती तलवार अथवा केंचुली से निकला हुआ सर्पराज।

३ अप्रैल, १९२३ को उन्होंने स्थानीय नगरपालिका का सभापतित्व स्वीकार कर लिया और २८ फरवरी सन् १९२५ तक वह इस पद पर रहे। उस समय मुझे एक्जीक्यूटिव अफसरी करते लगभग दो वर्ष बीत चुके थे। नेहरूजी के सभापति होते ही मेरा उनका चोली-दामन का साथ हो गया। मैं जी-जान से नगरपालिका के काम में उनका हाथ बंटाता रहा। यद्यपि उनको मुझपर पूर्ण विश्वास था और उन्होंने सब काम मुझपर ही छोड़ रक्खा था, तथापि उन्होंने सब विभागों पर शासन की बागडोर अपने हाथों में दृढ़ता से रक्खी थी। सभी-के-सभी सदस्य उनकी बात मानते थे। हालांकि वह उनपर कभी-कभी नाराज हो उठते थे, पर वे लोग इसका बुरा नहीं मानते थे। फिर भी म्यूनिसिपैलिटी म्यूनिसिपैलिटी है। एक बार उन्हें इसमें धोखा हो गया।

म्यूनिसिपैलिटी के स्वास्थ्य-विभाग में एक बुड्ढा पठान जमादार था। लम्बा तगड़ा, सफेद सन की-सी दाढ़ी। वह सनकी भी था। साठ साल में बोर्ड ने उसे रिटायर कर दिया। मामूली-सी बात थी। नौकरी में ऐसा हुआ ही करता है। पर उस उद्दंड जमादार ने एक साल की अवधि के लिए जमीन आसमान का कुलावा मिला डाला। एक भीरु मेम्बर को तो उसने धमकाया भी। इस सबकी जवाहरलालजी को कोई खबर न थी। घबराकर लगभग बाईस मेम्बरों ने बोर्ड में लिखित प्रस्ताव पेश किया कि उस जमादार का कार्य-काल एक साल और बढ़ा दिया जाय।

यह बात भी साधारण ही थी। कितनों के साथ ऐसा हो चुका था। नेहरूजी इन छोटी-छोटी बातों में कोई दखल नहीं देते थे। प्रस्ताव बात-की-बात में पास हो जाता, पर एक प्रमुख मेम्बर ने, जो जवाहरलालजी के स्वभाव से पूर्णतया परिचित नहीं थे, प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा, "इस जमादार ने अपनी नौकरी का समय बढ़वाने के लिए सब मेम्बरों की जान मुसीबत में डाल रक्खी है। अब सवाल यह हो गया है कि या तो हम लोग बोर्ड में रहें या यह रहे। आपसे हम सबकी प्रार्थना है कि इसकी नौकरी एक साल और बढ़ा दी जाय।"

इतना सुनते ही नेहरूजी की भौंहें तन गईं। ओठ फड़कने लगे। बोले, "आम तौर पर मैं ऐसी छोटी-छोटी बातों में अपनी राय नहीं देता। जो बोर्ड का निश्चय होता है, उसकी तामील करता हूं। पर

मेरी समझ में यह एक अहम वात है। मेरी तो यह राय है कि यदि आपमें इतनी हिम्मत नहीं है कि एक अदना कर्मचारी की उद्दंडता का उचित प्रतिकार कर सकें तो बोर्ड के हक में यही बेहतर होगा कि आप सव लोग इस्तीफा दे दें। मेरी तो निश्चित सलाह है कि आप एक दिन का भी इसका समय न वढ़ावें।" यह वात उन्होंने ज़रा तैश में कही थी, परन्तु वड़ा आश्चर्य कि "पंचों की वातें सर माथे, पर नर्दवा एही ओर वही।" जव वोटिंग की नौवत आई तो एक मेंवर ने भी समय वढ़ाने का विरोध नहीं किया। जवाहर-लालजी का चेहरा तमतमा उठा। मैं उनकी वगल में वैठा था। मुझसे कहा, "व्यास, मैं तो समझता हूं कि मुझे इस्तीफा दे देना चाहिए।"

उस समय कुछ कहने का अवसर न था। मैं चुप रहा। दूसरे दिन जव फिर उन्होंने इसकी वात चलाई और कहा, "चेयरमैन की कुर्सी में गोंद नहीं पुती रहती कि एक दफा वैठ गया तो उठ ही न सके।"

मैंने कहा, "म्यूनिसिपैलिटी को सुधारने में कितने ही ऐसे खून के घूंट पीने पड़ेंगे। मेरी राय है कि खून की इस घूंट को आप पी जायं।"

जवाहरलालजी कुछ वोले नहीं, परंतु उन्होंने इस्तीफा नहीं दिया। इस वार वला टल गई। वोर्ड के शासन के साथ-साथ देश का काम भी जोरों से चल रहा था। 'मूंड़ मुड़ाते ओले पड़े'। म्यूनिसिपैलिटी के शासन की वागडोर लिये पांच महीने भी नहीं वीते थे कि वह किसी राजनैतिक मामले की जांच के लिए नाभा रियासत गये थे। वहां वह गिरफ्तार कर लिये गए। वहां से उन्होंने मुझे २६-११-१९२३ को एक पत्र लिखा। पत्र वड़े मार्के का है। उसमें उनके राजनैतिक क्षेत्र में हृदयार्पण की प्रारंभिक अवस्था में जो वातें उनके हृदय को मथ रही थीं, म्यूनिसिपैलिटी के प्रति कर्तव्य, देश को स्वतंत्र करने का दृढ़ संकल्प, इत्यादि वातों की झांकी मिलेगी। वह पत्र प्रयाग-संग्रहालय में सादर सुरक्षित है। उसके कुछ अंश उद्धृत करता हूं। उसमें उन्होंने मेरे काम की प्रशंसा की। यह उनके वड़प्पन का द्योतक था, मेरी योग्यता का नहीं।

पत्र के अंश इस प्रकार हैं:

"इन पिछले पांच-छः महीनों पर निगाह डालने पर मैं पाता हूं कि म्यूनिसिपल कामों की ओर मेरा दृष्टिकोण वहुत-कुछ वदल गया है। जिससे मैं डरता था, जो मुझे नापसंद था, उसे मैं करने लग गया और म्यूनिसिपैलिटी के काम के प्रति मुझे कुछ आकर्पण हो गया। मेरी धारणा है कि वोर्ड के यह वूते की वात है कि यह प्रयाग के रहनेवालों का जीवन थोड़ा कम दुखमय और थोड़ा अधिक वर्दाश्त करने के काविल वना सके। यह अच्छा काम है। अच्छा होते हुए भी मेरे लिए यह गौण है। मेरी लगन दूसरी ओर है, और मैंने वोर्ड को उसकी सूचना वार-वार दे दी है कि उस ओर ईश्वर ने चाहा तो तवतक उधर वढ़ता जाऊंगा, जवतक कि अपने लक्ष्य की मुझे प्राप्ति न हो जाय।"

उसी पत्र में एक दूसरे स्थान पर वह लिखते हैं:

"इस एकांतवास में मेरा ध्यान अक्सर इलाहावाद म्यूनिसिपल वोर्ड, उसके मेम्वरों और अफसरों की ओर जायगा और मेरी हार्दिक इच्छा और प्रेरणा होगी कि उनके परिश्रम से इलाहावाद के गरीवों के अंधकारमय हृदयों में थोड़ा-सा प्रकाश पहुंचे।"

नाभा-जेल से लौटने पर नेहरूजी ने पूर्ववत् म्यूनिसिपैलिटी का काम आरंभ कर दिया।

ब्रिटिश शासन के समय सभी म्यूनिसिपैलिटियों को गवर्नरों तथा ऊंचे पदाधिकारियों को, जब वे नगर में आते थे, अभिनंदन-पत्र देने का मर्ज-सा हो गया था। जिस प्रकार होली के दिनों में मुहल्ले-मुहल्ले में रंग लिये हुए लड़के इस ताक में रहते हैं कि कोई भी विना रंग से सराबोर हुए जाने न पावे, कुछ इसी प्रकार कोई उच्च पदाधिकारी बिना अभिनंदन-पत्र लिये नहीं जाने पाता था।

जवाहरलालजी की चेयरमैनी थी शामते-आमाल। उन्हीं दिनों एक गवर्नर महोदय—मुझे नाम ठीक से याद नहीं है, शायद सर मैलकम हैली थे—नगर में पधारे। जवाहरलालजी ने बोर्ड के मेम्वरों से स्पष्ट रूप से कह दिया कि उन्हें कोई अभिनंदन-पत्र नहीं दिया जायगा और यही तय हुआ। किसीको साहस न हुआ कि इसका विरोध करे। मुझसे उन्होंने कहा, "म्यूनिसिपैलिटी के जो कुछ कर्तव्य हैं, सफाई, पानी, इत्यादि, वे सब किये जायं। हमारी लड़ाई का स्तर ही दूसरा है। लड़ाई शासन से है, व्यक्ति से नहीं।"

एक छोटी-सी घटना याद आ गई। घटना छोटी है, परंतु सारगर्भित है। नेहरूजी ने वाटरवर्क्स इंजिनियर से एक मामले में एक निर्धारित तिथि तक रिपोर्ट मांगी। जब उस दिन रिपोर्ट न आई तो उन्होंने मुझे बुलाकर कारण पूछा। मैं जवाहरलालजी के मिजाज को सम्हालना खूब जानता था, पर उस दिन चूक गया। मैंने कहा कि सान्याल साहब (वाटरवर्क्स इंजिनियर) पांच दिन से तेज बुखार में पड़े हैं और डिलीरियम में हैं, इस कारण रिपोर्ट न भेज सके होंगे। जवाहरलालजी का पारा एकदम चढ़ गया। बोले, "सान्याल साहब चाहे डिलीरियम में हों या मर जायं, उसका रिपोर्ट से कोई ताल्लुक नहीं है। मैंने सान्याल साहब से रिपोर्ट नहीं मांगी। मैंने वाटरवर्क्स इंजिनियर से मांगी है।" मैंने अपनी गलती महसूस की और उसी दिन उनके पास रिपोर्ट भिजवा दी। जाहिर वात थी। अगर किसी अफसर के बीमार होने से रिपोर्ट न आया करे तो शासन ही ठप हो जाय। ऐसी अनेक घटनाएं हैं, पर सबके सामूहिक प्रभाव से शासन का स्तर ऊंचा हो गया।

परंतु क्रमशः देश-सेवा का बोझ उनपर इतना पड़ गया कि उन्होंने चैयरमैनी से इस्तीफा दे दिया। सूर्य अग्निकोण में चला गया।

सन् १९३१ के वाद की बात है। लगभग इसी समय मैंने दफ्तर के दो-एक कमरों में एक संग्रहालय स्थापित किया था। बढ़ते-बढ़ते वह तरुणावस्था पर पहुंच गया और अब वही कम्पनी वाग में 'प्रयाग-संग्रहालय' के नाम से अपने विशाल भवन में स्थित है। सन् १९३१ में बड़ी लगन से उसके लिए चीजें एकत्र करना आरंभ कर दिया।

पहला वार मेरा जवाहरलालजी पर हुआ। पहली स्वदेशी प्रदर्शनी कटरे में राजा वंशीधर के बंगले में हुई थी। उस समय तक जवाहरलालजी को जितने अभिनंदन-पत्र दिये गए थे, कास्केट सहित वहां प्रदर्शित थे। तरह-तरह के कास्केट, सोने की तकलियां, हाथी दांत की बनी हुई बहुत सुन्दर मूर्तियां, इत्यादि। एक भीड़-सी लगी थी। जब मैंने उन्हें देखा तो मेरा मन मचल उठा। निश्चय किया कि ये सब प्रयाग-संग्रहालय में जायंगी। तरकीब सोचने लगा। सोचा कि मित्र से स्वच्छता से वर्ताव करना चाहिए। मन को समझा लिया कि "याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।" (गुणी के आगे हाथ फैलाकर खाली हाथ लौट आना अच्छा है, पर नीच से मनचाहा फल पा जाना भी अच्छा नहीं।)

इस प्रकार संकल्प-विकल्प कर मैं नेहरूजी से मिलने गया। मैंने उनसे संग्रहालय देखने का आग्रह किया। मैंने सोचा था कि उन्हें संग्रहालय दिखलाकर फुसलाऊंगा और जब वह संग्रहालय के प्रति मेरी लगन देखकर प्रसन्न हो जायंगे, तब मैं स्वदेशी प्रदर्शनी में प्रदर्शित, उनकी चीज़ों को मांगूंगा। यह मेरा हथकंडा था। परंतु नेहरूजी ने कहा कि हालांकि मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं संग्रहालय देखूं, पर इस समय मैं तुरंत बाहर जा रहा हूं। एक महीने के बाद लौटूंगा तो जरूर देखूंगा।

मैंने देखा कि यह वार तो खाली गया। परंतु यदि एक तीर निशाना चूक जाय तो इसके माने यह तो नहीं कि धनुष टूट गया। मैंने धनुष पर दूसरा तीर चढ़ाया। मैंने उनसे कहा कि इस वक्त उन्हें संग्रहालय दिखाने में मेरी नीयत खराब है। मैंने स्पष्ट उनसे कारण और अपना उद्देश्य बदला दिया। सुनकर मुस्कराये। बोले, "वे चीजें इतनी भद्दी हैं (मुझे खूब याद है कि उन्होंने 'मुतनफिर' शब्द का प्रयोग उन चीजों के लिए किया था) कि संग्रहालय में रखकर क्या करोगे? मैं सोच रहा था कि चांदी-सोने की चीजों को गलाकर उनसे जो रुपया मिले, उसे स्वराज्य फण्ड में दे दूं।"

मैंने उनसे कहा, "ये चीजें राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। उनकी जगह तो संग्रहालय ही है।"

बोले, "अगर तुम चाहते हो तो ले लो। मैं प्रदर्शनी के कर्मचारियों को हिदायत करके जाऊंगा। फलां तारीख को नुमाइश खत्म होगी। दूसरे दिन ११ बजे तुम्हें सब चीजें मिल जायंगी।"

और यही हुआ। जनमेजय का नाग-यज्ञ-सा आरंभ हो गया और नेहरूजी को अभिनंदन में दी गई चीजों की प्रयाग-संग्रहालय में अनभ्र वृष्टि होने लगी। दर्शकों का तांता बंध गया। यद्यपि म्यूनिसिपल आफिस का एक बहुत बड़ा कक्ष संग्रहालय के लिए मैंने अलग दिया था, तथापि संग्रह इस तेजी से बढ़ रहा था और वह स्थान उसके लिए इतना अनुपयुक्त था कि संग्रहालय को स्थानांतरित करने और उसके लिए एक विशाल भवन बनवाने का प्रश्न सामने आया। संग्रहालय के लिए मेरी लगन और उसके लिए जवाहर-लालजी की ममता साथ-साथ बढ़ने लगी।

जब संग्रहालय म्यूनिसिपैलिटी में था तभी से वह वहां बराबर आते रहे थे। एक बार उन्होंने मुझे टेलीफोन किया कि श्रीकृष्ण मेनन आये हुए हैं, वह तुम्हारा संग्रहालय देखेंगे। मैं उन्हें कब लाऊं?"

"मैंने कहा, "जब भी आपको सुविधा हो।"

जवाहरलालजी तो 'काल करे सो आज कर, आज करे तो अब' वाले व्यक्ति थे। बोले, "अभी लाता हूं।" थोड़ी ही देर में दोनों आ पहुंचे और संग्रह देखकर बड़े प्रसन्न हुए। पर बोले, "यह भवन संग्रहालय के लिए बहुत छोटा है।"

मैं संग्रह की प्रशंसा से उतना प्रसन्न नहीं हुआ, जितना स्थान की आलोचना से। मैं यही तो चाहता था कि चारों ओर संग्रहालय के स्थानान्तरित करने की बात फैल जाय।

श्री पन्नालालजी उस समय कमिश्नर थे और मुझे बहुत मानते थे। स्वयं कलाविद थे। उनकी कृपा से कम्पनी बाग में संग्रहालय भवन के लिए उपयुक्त स्थान मिल गया। मैंने निश्चित कर लिया था कि संग्रहालय के भवन का शिलान्यास जवाहरलालजी से ही कराऊंगा। उनकी स्वीकृति प्राप्त करने के मौके की ताक में रहने लगा।

आखिर मौका आ गया। ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी का एक भोज था। मैं उसमें निमंत्रित था। मैं जानबूझकर जवाहरलालजी के सामने बठा। उनके अगल-बगल सरोजिनी नायडू, कृपालानीजी और कांग्रेस के अन्य बड़-बड़े कर्णधार बैठे थे।

मुझे सामने देखकर जवाहरलालजी बोले, "क्यों व्यास, तुम्हारे म्यूजियम की बिल्डिंग (भवन) न बनेगी ?"

मैंने कहा, "मेरा अहद है कि जबतक आप उसका शिलान्यास न करेंगे, मैं अपने जीवन में उसे न बनने दूंगा। पर मैं आपसे कैसे कहूं ? आप इतने जरूरी कामों में व्यस्त रहते हैं।"

बोले, "मुझसे पूरी इमारत तो नहीं बनवाओगे ? अब देर मत करो। अगर तुम्हारी यही ख्वाहिश है तो मैं अगले महीने में इसका शिलान्यास कर दूंगा ।"

बात खत्म हुई। मेरी प्रतिज्ञा रह गई। भारत की स्वतंत्रता के प्रथम वर्ष (१९४७) में जवाहरलालजी ने अपने कर-कमलों से भवन का शिलान्यास किया। यह समारोह प्रयाग के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा।

१२५ फुट व्यास के गोलाकार सुसज्जित सभामंडप के नीचे इस समारोह का संपादन हुआ। सभा-मंडप बड़े-बड़े प्राचीन चित्रों और मूर्तियों से अलंकृत था। उसके बीचोंबीच शिलान्यास का छोटा मंडप था। दोनों ओर पीताम्बर पहने सोलह वेदपाठी ऊंचे स्वर से निरंतर वेद-पाठ कर रहे थे। बीच में हवन-कुंड था। वेदी के चारों ओर शिलान्यास के समय का ग्रह-मंडल तंजौर प्रणाली के चित्रों से चित्रित था। छोटे मंडप के देखने से ऐसा लगता था, जैसे किसी देवालय का गर्भ-गृह हो।

जवाहरलालजी ने जूते उतारकर उस पवित्र मंडप में प्रवेश किया। आते वक्त मैंने जवाहरलालजी से कहा, "मैं अपना व्याख्यान संस्कृत में दूंगा। आप मंच पर मुझे डांटने तो न लगेंगे ?"

बोले, "जिस भाषा में चाहो, व्याख्यान दो। मैं कुछ नहीं कहूंगा ।"

वैसा ही मैंने किया। जब वह मंच पर बैठे तो मैंने उनका ध्यान दो चित्रों की ओर आकृष्ट किया, जो उनके पीछे की भित्ति पर टंगे हुए थे और जिनके ऊपर बहुत बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा हुआ था—'तब' और 'अब'। 'तब' की ओर वह तख्ती थी, जो जेल में उनके गले में पड़ी रहती थी। उसे मैंने बहुत बड़े आकार में बनवाकर टांगा था। तख्ती में कैदी का नंबर, सजा की अवधि और तिथि खचित थी। जवाहरलालजी ने मुझे वह संग्रहालय के लिए यह कहकर दी थी, "व्यास, जब मैं रिहा किया गया तो इस तख्ती को जेब में लेता आया। अब तुम ले जाओ।"

दूसरा एक बड़ा चित्र था, जिसमें प्रधान मंत्री की हैसियत से मंत्रिमंडल का जवाहरलालजी सभा-पतित्व कर रहे थे। इस चित्र का शीर्षक था—'अब'।

जवाहरलालजी इसे देखकर खूब हँसे और मंच पर बैठे कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं को उन चीजों का आशय समझाने लगे। सभी हँस पड़े।

कार्य संपन्न हो जाने के बाद जैसे ही वह मंच से उतरे, उन्होंने मुझसे कहा, "व्यास, मैं अपने व्याख्यान में यह कहना भूल गया कि मैं इस समारोह के आयोजन से बहुत खुश हुआ हूं और पुरस्कार में मैं अपने हाथों से लिखी आत्मकथा देता हूं। जाकर तुम कह दो।" मैंने फौरन इसकी घोषणा कर दी।

इस प्रकार संकल्प-विकल्प कर मैं नेहरूजी से मिलने गया। मैंने उनसे संग्रहालय देखने का आग्रह किया। मैंने सोचा था कि उन्हें संग्रहालय दिखलाकर फुसलाऊंगा और जव वह संग्रहालय के प्रति मेरी लगन देखकर प्रसन्न हो जायंगे, तव मैं स्वदेशी प्रदर्शनी में प्रदर्शित, उनकी चीजों को मांगूंगा। यह मेरा हथकंडा था। परंतु नेहरूजी ने कहा कि हालांकि मेरी वड़ी इच्छा है कि मैं संग्रहालय देखूं, पर इस समय मैं तुरंत वाहर जा रहा हूं। एक महीने के वाद लौटूंगा तो जरूर देखूंगा।

मैंने देखा कि यह वार तो खाली गया। परंतु यदि एक तीर निशाना चूक जाय तो इसके माने यह तो नहीं कि धनुष टूट गया। मैंने धनुप पर दूसरा तीर चढ़ाया। मैंने उनसे कहा कि इस वक्त उन्हें संग्रहालय दिखाने में मेरी नीयत खराव है। मैंने स्पष्ट उनसे कारण और अपना उद्देश्य वदला दिया। सुनकर मुस्कराये। वोले, "वे चीजें इतनी भद्दी हैं (मुझे खूव याद है कि उन्होंने 'मुतनफिर' शव्द का प्रयोग उन चीजों के लिए किया था) कि संग्रहालय में रखकर क्या करोगे? मैं सोच रहा था कि चांदी-सोने की चीजों को गलाकर उनसे जो रुपया मिले, उसे स्वराज्य फण्ड में दे दूं।"

मैंने उनसे कहा, "ये चीजें राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। उनकी जगह तो संग्रहालय ही है।"

बोले, "अगर तुम चाहते हो तो ले लो। मैं प्रदर्शनी के कर्मचारियों को हिदायत करके जाऊंगा। फलां तारीख को नुमाइश खत्म होगी। दूसरे दिन ११ वजे तुम्हें सव चीजें मिल जायंगी।"

और यही हुआ। जनमेजय का नाग-यज्ञ-सा आरंभ हो गया और नेहरूजी को अभिनंदन में दी गई चीजों की प्रयाग-संग्रहालय में अनभ्र वृष्टि होने लगी। दर्शकों का तांता बंध गया। यद्यपि म्यूनिसिपल आफिस का एक वहुत वड़ा कक्ष संग्रहालय के लिए मैंने अलग दिया था, तथापि संग्रह इस तेजी से वढ़ रहा था और वह स्थान उसके लिए इतना अनुपयुक्त था कि संग्रहालय को स्थानांतरित करने और उसके लिए एक विशाल भवन वनवाने का प्रश्न सामने आया। संग्रहालय के लिए मेरी लगन और उसके लिए जवाहर-लालजी की ममता साथ-साथ बढ़ने लगी।

जव संग्रहालय म्यूनिसिपैलिटी में था तभी से वह वहां बरावर आते रहे थे। एक वार उन्होंने मुझे टेलीफोन किया कि श्रीकृष्ण मेनन आये हुए हैं, वह तुम्हारा संग्रहालय देखेंगे। मैं उन्हें कव लाऊं?"

"मैंने कहा, "जव भी आपको सुविधा हो।"

जवाहरलालजी तो 'काल करे सो आज कर, आज करे तो अव' वाले व्यक्ति थे। वोले, "अभी लाता हूं।" थोड़ी ही देर में दोनों आ पहुंचे और संग्रह देखकर बड़े प्रसन्न हुए। पर वोले, "यह भवन संग्रहालय के लिए वहुत छोटा है।"

मैं संग्रह की प्रशंसा से उतना प्रसन्न नहीं हुआ, जितना स्थान की आलोचना से। मैं यही तो चाहता था कि चारों ओर संग्रहालय के स्थानान्तरित करने की वात फैल जाय।

श्री पन्नालालजी उस समय कमिश्नर थे और मुझे वहुत मानते थे। स्वयं कलाविद थे। उनकी कृपा से कम्पनी वाग में संग्रहालय भवन के लिए उपयुक्त स्थान मिल गया। मैंने निश्चित कर लिया था कि संग्रहालय के भवन का शिलान्यास जवाहरलालजी से ही कराऊंगा। उनकी स्वीकृति प्राप्त करने के मौके की ताक में रहने लगा।

आखिर मौका आ गया। ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी का एक भोज था। मैं उसमें निमंत्रित था। मैं जानबूझकर जवाहरलालजी के सामने बैठा। उनके अगल-बगल सरोजिनी नायडू, कृपालानीजी और कांग्रेस के अन्य बड़े-बड़े कर्णधार बैठे थे।

मुझे सामने देखकर जवाहरलालजी बोले, "क्यों व्यास, तुम्हारे म्यूजियम की बिल्डिंग (भवन) न बनेगी ?"

मैंने कहा, "मेरा अहद है कि जबतक आप उसका शिलान्यास न करेंगे, मैं अपने जीवन में उसे न बनने दूंगा। पर मैं आपसे कैसे कहूं ? आप इतने जरूरी कामों में व्यस्त रहते हैं।"

बोले, "मुझसे पूरी इमारत तो नहीं बनवाओगे ? अब देर मत करो। अगर तुम्हारी यही ख्वाहिश है तो मैं अगले महीने में इसका शिलान्यास कर दूंगा ।"

बात खत्म हुई। मेरी प्रतिज्ञा रह गई। भारत की स्वतंत्रता के प्रथम वर्ष (१९४७) में जवाहरलालजी ने अपने कर-कमलों से भवन का शिलान्यास किया। यह समारोह प्रयाग के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा।

१२५ फुट व्यास के गोलाकार सुसज्जित सभामंडप के नीचे इस समारोह का संपादन हुआ। सभा-मंडप बड़े-बड़े प्राचीन चित्रों और मूर्तियों से अलंकृत था। उसके बीचोंबीच शिलान्यास का छोटा मंडप था। दोनों ओर पीताम्बर पहने सोलह वेदपाठी ऊंचे स्वर से निरंतर वेद-पाठ कर रहे थे। बीच में हवन-कुंड था। वेदी के चारों ओर शिलान्यास के समय का ग्रह-मंडल तंजौर प्रणाली के चित्रों से चित्रित था। छोटे मंडप के देखने से ऐसा लगता था, जैसे किसी देवालय का गर्भ-गृह हो।

जवाहरलालजी ने जूते उतारकर उस पवित्र मंडप में प्रवेश किया। आते वक्त मैंने जवाहरलालजी से कहा, "मैं अपना व्याख्यान संस्कृत में दूंगा। आप मंच पर मुझे डांटने तो न लगेंगे ?"

बोले, "जिस भाषा में चाहो, व्याख्यान दो। मैं कुछ नहीं कहूंगा ।"

वैसा ही मैंने किया। जब वह मंच पर बैठे तो मैंने उनका ध्यान दो चित्रों की ओर आकृष्ट किया, जो उनके पीछे की भित्ति पर टंगे हुए थे और जिनके ऊपर बहुत बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा हुआ था—'तब' और 'अब'। 'तब' की ओर वह तख्ती थी, जो जेल में उनके गले में पड़ी रहती थी। उसे मैंने बहुत बड़े आकार में बनवाकर टांगा था। तख्ती में कैदी का नंबर, सजा की अवधि और तिथि खचित थी। जवाहरलालजी ने मुझे वह संग्रहालय के लिए यह कहकर दी थी, "व्यास, जब मैं रिहा किया गया तो इस तख्ती को जेब में लेता आया। अब तुम ले जाओ।"

दूसरा एक बड़ा चित्र था, जिसमें प्रधान मंत्री की हैसियत से मंत्रिमंडल का जवाहरलालजी सभा-पतित्व कर रहे थे। इस चित्र का शीर्षक था—'अब'।

जवाहरलालजी इसे देखकर खूब हँसे और मंच पर बैठे कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं को उन चीजों का आशय समझाने लगे। सभी हँस पड़े।

कार्य संपन्न हो जाने के बाद जैसे ही वह मंच से उतरे, उन्होंने मुझसे कहा, "व्यास, मैं अपने व्याख्यान में यह कहना भूल गया कि मैं इस समारोह के आयोजन से बहुत खुश हुआ हूं और पुरस्कार में मैं अपने हाथों से लिखी आत्मकथा देता हूं। जाकर तुम कह दो।" मैंने फौरन इसकी घोषणा कर दी।

जवाहरलालजी मुझे अपने साथ ले गये और अपनी हस्तलिखित आत्मकथा मुझे दे दी।

किसी दूसरे अवसर की बात है। नेहरूजी प्रयाग आये हुए थे। मुझसे पूछा, "राष्ट्रपति-भवन में जो प्रदर्शनी हो रही है, उसे तुमने देखा?"

मेरे इन्कार करने पर उन्होंने कहा, "लानत है तुम्हारे कलाप्रेमी होने पर। मैं हवाई जहाज से कलकत्ता जा रहा हूं। दो दिन में लौटूंगा। मेरे साथ चलना।"

जब नेहरूजी कलकत्ता से वापस लौटे तो मेरे यहां एक दुर्घटना होगई, जिससे मैं उनके साथ नहीं जा सका। थोड़े दिनों बाद मैं स्वयं दिल्ली प्रदर्शनी देखने गया और उसे भली-भांति देखा।

देखकर जब बाहर आया और सीढ़ियों पर से उतर रहा था तो मैंने देखा, दस-बारह सुसज्जित घुड़सवार, उसके बाद एक बड़ी मोटरकार और बाद में फिर घुड़सवार चले आ रहे हैं।

अभी मैं सीढ़ी ही पर था कि ठीक मेरे सामने मोटर और सब घुड़सवार एकाएक रुक गये। मैं यह ठाट-बाट देख ही रहा था कि किसीने मोटर से हाथ निकालकर मुझे अपनी ओर संकेत से बुलाया।

वह जवाहरलालजी थे। मैं फुर्ती से मोटर के पास पहुंचा। जवाहरलालजी बोले, "मैं गवर्नर-जनरल के यहां एक मीटिंग में जा रहा था। देखा कि तुम सीढ़ी पर से लुढ़कते-पुढ़कते चले आ रहे हो। यहां कब आये? प्रदर्शनी कैसी लगी?"

मेरे जवाब देने पर उन्होंने कहा, "मीटिंग का वक्त हो गया है। मैं जा रहा हूं। फिर मिलना।" मोटर और घुड़सवार तेजी से निकल गये। ●

जवाहरलाल नेहरू के एक अंग्रेज मित्र के नाते उन्हें श्रद्धांजलि देना मेरे लिए बहुत आनंद का विषय है। जेल के भीतर-बाहर होते रहनेवाले एक राजनीतिक बंदी से भारत के प्रधान मंत्री के पद तक उनके उत्कर्ष से अधिक प्रभावशाली घटनाएं मेरे जीवन-काल में कम ही घटी होंगी।

—हेरल्ड लास्की

सतीशचन्द्र काला

प्रयाग संग्रहालय को नेहरूजी की देन

प्रयाग-संग्रहालय देश की एकमात्र भाग्यशाली संस्था है, जिसमें स्वाधीनता-संग्राम-संबंधी अनेक दुर्लभ वस्तुएं प्रदर्शित हैं। सन् १९३१ में इस संग्रहालय की स्थापना हुई थी। इसके पश्चात् ही आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में पं. जवाहरलाल नेहरू का विशाल संग्रह, जो उस समय स्वराज-भवन के एक कमरे में वन्द पड़ा था, संग्रहालय को भेंट कर दिया गया। राष्ट्रीय संग्राम के इस सर्वश्रेष्ठ सेनानी को देश-विदेश में जो मान-पत्र तथा अन्य वस्तुएं भेंट में मिलीं, उन्हें पं. जवाहरलाल ने सुरक्षित रखा। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् दिल्ली में राष्ट्रीय संग्रहालय की स्थापना होने पर पंडितजी को बहुत-सी वस्तुएं इस संग्रहालय को भी देनी पड़ीं, किन्तु पंडितजी का स्नेह किसी भी तरह से प्रयाग-संग्रहालय के लिए कम नहीं हुआ। प्रति वर्ष चुनीदा वस्तुएं प्रधान मंत्री के निवास-स्थान से यहांपर आती रही हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि पं. जवाहरलाल के स्नेह तथा आशीर्वाद के फलस्वरूप इस संग्रहालय ने पिछले पच्चीस वर्षों में आश्चर्यजनक उन्नति की है।

पंडितजी के संग्रह से यह स्पष्ट हो जाता है कि देश के आवाहन के लिए उन्होंने कितना भ्रमण किया। उन्होंने विभिन्न भागों में भ्रमण कर जनता की कठिनाइयों का अनुभव ही प्राप्त नहीं किया, बल्कि उन्होंने परतंत्रता से जकड़े भारतीय जन-समाज की आत्मा को झकझोरा और उन्हें अपने स्वत्वों तथा जन्माधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया। भारत, बर्मा, लंका, जापान, चीन, इंडोनेशिया, नेपाल आदि-आदि देशों से प्राप्त वस्तुओं में इन देशों की कलात्मक प्रवृत्तियों का आभास मिलता है। भारतीय वस्तुओं में मैसूर में वनी चंदन की मंजूषाएं उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ उदाहरणों में हाथी-दांत या सीपी का खचित काम भी दीख पड़ता है। हुवली म्युनिसिपल बोर्ड द्वारा प्रदत्त 'अर्जुन का रथ' आधुनिक भारतीय कला-परम्परा का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें रथ के भीतर अर्जुन विचार-मग्न बैठे हैं। आगे भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन की ओर मुड़कर उन्हें समझा रहे हैं। यह साढ़े तीन फुट लम्बा रथ चंदन तथा हाथी दांत का बना है। इस कठोर माध्यम में आज भी भारतीय कलाकार कितनी सुन्दर अभिव्यंजना कर सकता है, इसका उदाहरण यह रथ है। दूसरी वस्तु चांदी के तारों से बना रथ है। यह रथ उड़ीसा की रजत-कला का अनुपम उदाहरण है और कटक-निवासियों ने इसे प्रधान मंत्री को भेंट किया था।

लंका से भी पंडितजी को कई कलात्मक किन्तु सादे मानपत्र मिले। वे मानपत्र अधिकतर ताड़-पत्तों पर वने हैं। इनपर अंकित चित्रों की सूक्ष्मता देखते ही वनती है। जापान में मिली चीनी मिट्टी की तश्तरी

भी, जिसमें महात्मा गांधी तथा पं. जवाहरलाल नेहरू के चित्र हैं, एक अलौकिक वस्तु है। पंडितजी को ६५वीं जन्म-गांठ पर काशी-नरेश द्वारा भेंट किया चर्खा वाराणसी की प्राचीन दंत-कला का दिव्य उदाहरण है।

पंडितजी जब नैनी कारागार में बंदी थे तो उन्हें लकड़ी की एक पट्टी, जिसमें कैद की अवधि तथा तिथि अंकित रहती थी, दी गई थी। कैद की समाप्ति पर इन पट्टियों को जेल के कार्यालय में जमा करना होता था। किन्तु किसी प्रकार दो पट्टियां पंडितजी के सामान के साथ बाहर आ गई। ये पट्टियां अब प्रयाग संग्रहालय में सुरक्षित हैं। भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम की याद दिलानेवाली ये अमूल्य पट्टियां भारत में अन्यत्र कहीं नहीं हैं। पंडितजी का एक जेल-टिकट भी संग्रहालय में है। इसमें जवाहरलालजी का नाम किसी बाबू की अज्ञानता से 'जवाहिरलाल' लिख दिया गया है। इस टिकट पर कैद की अवधि, जुर्म, उनके शरीर का तौल, चिट्ठियों को भेजने की तिथियां आदि-आदि लिखी हैं, यह भी एक अद्वितीय वस्तु है। पंडितजी ने अपनी आत्मकथा की पांडुलिपि भी संग्रहालय को दे दी है। इस पांडुलिपि का मूल नाम 'इन एण्ड आऊट आव प्रिज़न' था। प्रकाशित होने पर इसका नाम बदल दिया गया था। दस अध्यायों की पांडुलिपि में पंडितजी की लेखनी की करामात देखने को मिलती है। एक-एक पंक्ति में केवल सुन्दर अक्षर ही नहीं, उनकी सिधाई विलक्षण है। कहीं काट-छांट नहीं। जो एक बार लिखा गया, उसपर फिर पंडितजी ने कलम नहीं चलाई।

पंडितजी ने अपने पूज्य पिता-संबंधी भी अनेक वस्तुएं संग्रहालय को दी हैं। इनमें पं. मोतीलालजी का सिगरेट केस, शेरवानी के बटन, उनकी डायरियां, पत्र आदि-आदि हैं। पंडितजी की माता स्वरूपरानी का एक बटुआ भी संग्रहालय में है। जिस समय यह बटुआ पंडितजी ने संग्रहालय को दिया, उनकी आंखों से आंसू टपक पड़े थे। पूज्य माता की स्मृति-सूचक यह अमूल्य वस्तु भी उन्होंने प्रयाग-संग्रहालय को भेंट कर दी।

पंडितजी का जब भी प्रयाग आगमन होता था, वह संग्रहालय में एक बार अवश्य ही आते थे। यदि समय के अभाव के कारण यह कभी संभव नहीं हुआ तो उन्होंने संग्रहालयाध्यक्ष को आनंद भवन में बुलाकर संग्रहालय की प्रगति के विषय में अवश्य ही पूछा। प्रयाग-संग्रहालय को गौरव है कि राष्ट्र के एक महान नेता की जीवन-संबंधी महत्वपूर्ण वस्तुएं उसके संग्रह में हैं। इस संग्रह की तुलना केवल मास्को के लेनिन म्यूजियम से की जा सकती है। आनेवाले युगों में, जब देश का मानचित्र भिन्न हो जायगा और पुराने राष्ट्र-सेनानियों की स्मृति धूमिल पड़ जायगी, प्रयाग-संग्रहालय का संग्रह देश-विदेश के लोगों को एक अति क्रिया-शील व्यक्ति के कार्य तथा जीवन की श्रद्धामयी याद दिलाने में समर्थ होगा। प्रयाग नगर का मस्तक तो निश्चय ही यह संग्रह उन्नत करता रहेगा। इस नगर में अशोक, हर्षवर्धन, महर्षि भरद्वाज, अकबर आदि-आदि अनेक प्रतिभाशाली नेता रहे। आनेवाली पीढ़ी में पं. मोतीलाल नेहरू तथा पं. जवाहरलाल नेहरू का नाम भी इस सूची में सम्मिलित हो जायगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। ●

दुनिया ने उन्हें कैसा पाया ?

हमारे महान् नेता, भारतीय लोकतंत्र के जनक और स्वतंत्र भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू के पहले-पहल नजदीक से दर्शन मैंने सन् १९१९ में कांग्रेस के अमृतसर-अधिवेशन के अवसर पर किये। मैं अपने नगर रावलपिंडी से कांग्रेस स्वयंसेवक दल का कप्तान बनकर अधिवेशन में गया हुआ था।

अपनी २९ वर्ष की अवस्था में वह अपने ही अधिकार से नेता बन गये थे, हालांकि उन्हें और उनके परिवार के दूसरे सदस्यों को विशेष महत्व इसलिए भी मिल रहा था कि उनके पिता पं. मोतीलाल नेहरू कांग्रेस-अधिवेशन के अध्यक्ष बने थे।

पंजाब में फौजी कानून तब खत्म ही हुआ था। ज्यादातर नेता तब भी जेलों में थे। जलियांवाला बाग में जनरल डायर और उसके आदमियों ने जो हत्याकांड मचाया था, उसके निशान ताजे थे। बाग की दीवारों और कुएं के आस-पास खून के धब्बे और गोलियों के निशान जहां-तहां देखे जा सकते थे। बाग की मिट्टी भी इंसानों के खून से कुछ-कुछ लाल हो गई थी। जवाहरलाल ने कांग्रेस की जांच-कमेटी के लिए फौजी कानून के अंतर्गत हुए अत्याचारों के बारे में गवाहियां इकट्ठी करने के सिलसिले में कुछ महीने पंजाब में बिताये थे और पंजाबी नौजवानों की आंखों में वह वीर पुरुष बस चुके थे।

पंजाबी साहसी और जवांमर्द आदमियों को पसंद करते हैं। जवाहरलाल व्यक्तिगत जोखम उठाकर भी पंजाब के दूरवर्ती स्थानों में गये और गवाहियां इकट्ठी कीं। उन्होंने और जांच-कमेटी के कुछ अन्य वरिष्ठ सदस्यों ने अत्याचारों, जुल्मों और अपमानों का पर्दाफाश करके पंजाबियों के दबे और डरे हुए दिलों में फिर से साहस का संचार किया। विद्यार्थियों के वह श्रद्धाभाजन बन गये और उन्हें तरुण भारत की वाणी और आत्मा माना जाने लगा।

पंजाबी अच्छे डील-डौल और सूरत-शक्ल के भी प्रशंसक होते हैं। जवाहरलाल विशेष रूप से सुन्दर और आकर्षक थे। स्वयं पं. मोतीलाल नेहरू परिवार के दूसरे सदस्य जैसे कमला नेहरू, विजयालक्ष्मी पंडित, कृष्णा हठीसिंग आदि अपने आकर्षक व्यक्तित्व से लोगों का ध्यान खींचते थे। नेहरू-परिवार की अमीरी, ठाट-बाट और बड़प्पन के अनेक किस्से उस समय प्रचलित थे, जिनमें असलियत कम और कल्पना अधिक थी। लोग इन किस्सों से भी प्रभावित थे। इसलिए उस समय नेहरू-खान्दान के लोगों से परिचय होना और बात-चीत कर पाना गर्व का विषय था।

सारे दिन वर्षा हुई थी और रात को तेज हवा चली थी। स्टेशन पर कुलियों ने हड़ताल कर दी,

इसलिए कांग्रेस के प्रतिनिधियों का सामान ढोने का काम स्वयंसेवकों को करना पड़ा। कांग्रेस-पंडाल में पानी भर गया था। कुलियों की हड़ताल खत्म हुई तो स्वयंसेवकों को पंडाल का पानी निकालने का काम करना पड़ा। हजारों कार्यकर्ताओं और दूसरों ने रात को कड़ाके की सर्दी में यह काम किया। हमें हाथ से चलनेवाला एक आग बुझाने का यंत्र भी मिल गया था और हममें से एक टोली ने पानी को निकालने में उसका उपयोग किया।

अगले दिन सवेरे हम नहाकर चुके ही थे कि बाप-बेटे—मोतीलालजी और जवाहरलालजी—पूड़ियों और मिठाई के बड़े-बड़े टोकरे लिये आ पहुंचे। उनके साथ उनके भतीजे श्यामलाल नेहरू और उनके लड़के भी थे। वह कांग्रेस-अध्यक्ष के जुलूस में हमारे बिगुलची बने। अठारह खाकी घोड़ों की गाड़ी में यह जुलूस निकला था। मोतीलालजी ने हमारे काम की तारीफ की और बोले, "तुममें से कुछ लोगों ने मेरे बेटे जवाहरलाल के साथ मिलकर कल आग बुझाने के यंत्र की चोरी की और इसका अनधिकृत उपयोग किया। वह सरकारी यंत्र था। अतः तुम्हें उसका फल भोगने को तैयार रहना चाहिए। मैं तुम्हें चेतावनी देने आया हूं। मैं बचाव करूंगा, किन्तु शायद मुख्य अपराधी को नहीं बचा सकूंगा।" तभी हमें मालूम हुआ कि कल रात अंधेरे में जिस नौजवान ने आग बुझाने का यंत्र लाने की सूझबूझ दिखाई थी, वह जवाहरलाल ही थे—हममें सबसे अधिक उत्साही और कर्मठ।

जवाहरलाल ज्यादातर नेताओं और प्रतिनिधियों के साथ रहते, फिर भी हमारे अंग बन गये। वह हमें रास्ता दिखाते और सलाह देते और कुछ नाजुक मौकों पर हमारी मदद को भी दौड़ पड़ते। एक बार पंडाल के एक कोने में गड़बड़ हुई। पंजाब में इतनी भीड़ पहले कभी इकट्ठी नहीं हुई थी। बिजली की तेजी से जवाहरलाल मंच से भीड़ में कूद पड़े और एक कसरती पहलवान की तरह लोगों में कूदते-फांदते गड़बड़ी की जगह जा पहुंचे और कुछ ही क्षणों में व्यवस्था स्थापित कर दी। उन्होंने इस दौरान में अपने दायें मुक्के का पंजाबी किसानों को स्वाद चखाया, जिसके फलस्वरूप उनकी कलाई कुछ समय तक दुखती रही। किन्तु इस अनुभव के बाद पंजाब के तगड़ेपन के वह कायल हो गये।

अमृतसर-अधिवेशन में देश के बड़े-बड़े नेता आये। लोकमान्य तिलक आखिरी बार कांग्रेस में यहीं शामिल हुए। महात्मा गांधी, मोहम्मद अली जिन्ना, एनी बीसेंट, देशबंधु दास, सरोजिनी नायडू, अली-बंधु और बहुत-से वर्तमान और भावी नेता, आये थे। पंजाबी नेता डा० किचलू, सत्यपाल, दुनीचंद भी आ पहुंचे, जिन्हें अचानक जेल से रिहा कर दिया गया था। अली-बंधु छः साल के बाद रिहा होकर एक स्पेशल गाड़ी से अमृतसर पहुंचे थे। इन सब नेताओं का स्वागत भी हमारे लिए समस्या बन गया। सवेरे कांग्रेस अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू का शाही जुलूस निकल चुका था और फूल और फूल-मलाएं सब खर्च हो चुकी थीं। आखिरी समय तय हुआ कि लोकमान्य तिलक का जुलूस निकाला जाय। हम स्वर्ण मंदिर और दूसरे मंदिरों से फूल इकट्ठे करके लाये। जवाहरलाल बिना कहे ही एक गाड़ी में सवेरे कांग्रेस-अध्यक्ष के जुलूस में प्राप्त फूल और फूलमालाएं लिये हमारे शिविर में पहुंचे, ताकि उनका नेताओं के स्वागत में उपयोग किया जा सके। इस तरह उन्होंने हमारी मुश्किल को आसान किया।

... ...

वह दूसरे ही जवाहरलाल थे, जिनकी बग़ल में बैठने का सौभाग्य ४२ वर्ष बाद अपने देश से १२,००० मील दूर मुझे प्राप्त हुआ। हमारे इर्द-गिर्द और उसी असेम्बली हाल में दुनिया के चुने हुए नेता और राजनीतिज्ञ उपस्थित थे। यह संयुक्त राष्ट्र असेम्बली का १५वां अधिवेशन था। आइज़नहोवर बोल चुके थे, ख्रु श्चेव, मैकमिलन, नासर, टीटो, सुकर्ण, कास्ट्रो, मेंजिज, स्पाक, एन्क्रूमा, डीफनवेकर, जोरडन के युवराज, गोमुलका, कादर आदि अनेक देशों के प्रधान मंत्री और विदेश मंत्री आये हुए थे। इन सबमें नेहरू का ऊंचा स्थान था और निश्चय ही वह सबसे अधिक आदर के पात्र थे। जहां कहीं वह जाते, भीड़ उनका पीछा करती। सभाओं में लोग उनके हर शब्द की प्रतीक्षा में रहते। पूर्व और पश्चिम के नेता बार-बार उनसे परामर्श करने आते। ख्रु श्चेव उनसे गहरे आदर और हार्दिक स्नेह से बात करते। कास्ट्रो ने उन्हें 'चाचा' कहकर पुकारा। टीटो उनके साथ नाश्ता करने एकसे अधिक बार कार्लायल होटल में आये। नासर ने जनरल असेम्बली के मंच से उन्हें 'हमारे नेता' कहा।

असेम्बली कुछ दिन चलती रही। कुछ अफ्रीकी-एशियाई नेता निराशा-सी अनुभव करने लगे। उन्होंने एक प्रस्ताव पेश करने का निश्चय किया, जिसमें पेरिस-शिखर-सम्मेलन के भंग होने पर खेद प्रकट किया गया और विशेषकर अमरीका और रूस से अपील की गई कि संधि-चर्चा जहां से भंग हुई थी, वहां से फिर शुरू करें। आरंभ में टीटो और नासर ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया। उसमें काफी संशोधन हुए और अंत में नेहरू और कृष्ण मेनन ने उसे संवारा।

अफ्रीकी-एशियाई समूह की एक बैठक मसविदे पर विचार करने के लिए बुलाई गई। बैठक संयुक्त राष्ट्र-संघ के सबसे बड़े कमेटी-रूम में हुई और अफ्रीकी-एशियाई देशों के राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, विदेश मंत्री उसमें उपस्थित हुए। वर्मा के प्रतिनिधि ऊ थाण्ट ने प्रस्ताव किया कि नेहरू इस बैठक के अध्यक्ष का आसन ग्रहण करें। उपस्थित नेताओं ने जोरों से इसका स्वागत किया। नेहरू ने प्रस्ताव पर प्रकाश डाला और जब बैठक ने यह तय किया कि वही उसे असेम्बली में पेश करें तो और भी जोरों की तालियां बजीं। उन्हें किसीने अफ्रीकी-एशियाई देशों का नेता नहीं चुना था। अपनी परिपक्व बुद्धि, विश्वव्यापी दृष्टि और शांति के प्रबल समर्थक होने के नाते उन्होंने यह पद अपने-आप प्राप्त कर लिया था।

... ...

जवाहरलाल के आखिरी दर्शन मैंने गुरुवार २८ मई को किये, जबकि उनका मृत शरीर सैनिक गाड़ी पर ले जाया जा रहा था। उनका चेहरा खुला था। यह उस आदमी का चेहरा था, जिसने कभी डरना नहीं जाना था, जो किसी सम्राट् से अधिक शाही तबीयत का स्वामी था और जो किसान से भी ज्यादा विनम्र हो सकता था, जो पर्वतों को भी हिला सकता था और जो इतना भावुक था कि कुम्हलाते हुए गुलाब को देखकर आंसू गिरा सकता था——सबसे अधिक यह वह आदमी था, जो जीवन को एक साह-सिक यात्रा समझता था और सेवा को जीवन का परम लक्ष्य।

उनके अंतिम जुलूस को छः मील लम्बा सफर करना था और सारे रास्ते लाखों आदमी किनारों पर खड़े थे। मैं भी उनमें से एक था और उस निर्जीव पीले चेहरे को देख रहा था, जो मृत्यु में भी जीवन को व्यक्त कर रहा था, उस समय मन में इस भाग्यशाली आदमी की नजदीकी स्मृतियां उमड़ रही थीं और

४२ वर्ष पहले की प्रथम मुलाकात और इस अंतिम दर्शन के बीच की खाई को भर रही थीं। यह वह आदमी था, जिसने सेवा और त्याग के बल पर न केवल विश्वव्यापी महानता स्वयं प्राप्त की, अपितु भारत को महान बनाया और उसके निवासियों को प्रकाश और चमक प्रदान की।

... ...

न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र संघ असेम्बली के अधिवेशन के मौके पर नेहरूजी ने राजनेताओं को एक भोज देने का निश्चय किया। जब बड़े राजनेता एक जगह इकट्ठे होते हैं तो कूटनीतिक शिष्टाचार-संबंधी समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। कुछ लोगों ने भोज न देने की सलाह दी, किन्तु नेहरू अपने निश्चय पर डटे रहे। उन्होंने कहा, "यह असाधारण भोज होगा।"

मुझे इस समय सन १९२९ की घटना याद हो आई। नेहरूजी कांग्रेस के लाहौर-अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये। अधिवेशन के पहले नेहरूजी दिल्ली आये तो मैंने उनसे पूछा कि क्या जैसा हमेशा होता आया है, वैसा ही लाहौर-अधिवेशन भी होगा। नेहरूजी ने कहा, "देखना, यह अधिवेशन दूसरी ही तरह का होगा।" मैं जिज्ञासावश लाहौर गया, यह देखने के लिए कि युवक और प्राणवान जवाहर जैसा नेता अधिवेशन का कैसे संचालन करता है।

अमृतसर-कांग्रेस से दस वर्ष बाद की बात है। कांग्रेस का शिविर रावी नदी के किनारे लगा था। दिसम्बर का महीना और कड़ाके की सर्दी। अध्यक्ष के जुलूस के मार्ग पर तीन से चार लाख आदमी पंक्तियों में खड़े थे। पहले अध्यक्ष के लिए जुलूस में घोड़ा-गाड़ी या मोटर गाड़ी होती थी या लोग खुद ही गाड़ी खींचते थे। जुलूस निकला तो घुड़सवार स्वयंसेवक दल के आगे नेहरू एक खाकी घोड़े पर सवार थे। राजपूती शान थी उनकी। भीड़ जोश में 'नेहरू-जिन्दाबाद' के नारे लगाती चल रही थी। यह अनोखा जुलूस था। इसके बाद नेहरू चार मर्तबा कांग्रेस-अध्यक्ष बने, किन्तु ऐसा जुलूस फिर नहीं निकला। मोतीलालजी ने उसे देखकर कहा, "अकेला सवार!" अफसोस, उम्रभर वह अकेले ही सवार रहे।

कांग्रेस के सामने उस समय सवाल था कि वह पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा करे या न करे। इस अकेले घुड़सवार ने पूर्ण-स्वतंत्रता के विरोधियों को परास्त किया और लाहौर में कांग्रेस ने सर्वसम्मति से पूर्ण स्वतंत्रता को भारत के स्वाधीनता-संग्राम का लक्ष्य घोषित किया। सूर्य अस्त हो गया था और ठंडी हवा चल रही थी। कांग्रेस-शिविर तरह-तरह की रोशनियों से जगमगा उठा। नेहरू ने काफी रातगये पूर्ण-स्वतंत्रता का झंडा फहराया और पचास हजार आदमियों की भीड़ झंडे के आस-पास चक्कर काटती रही और क्रांतिकारी गीत गाती और नारे लगाती रही। ऐसा लगने लगा कि वास्तव में न सही, किन्तु भावना में देश स्वतंत्र होगया। ऊंचे मंच पर नेहरू और सुभाष देश की मुक्त युवक-आत्मा के प्रतिनिधि खड़े थे। उनके पीछे छः फुट लम्बे सीमान्त गांधी खान अब्दुल गफ्फार खां थे, जो कई साल कैद रहने के बाद अटक जेल से छूटे थे। उनके लालकुर्ती दल का एक बैंड भी मौजूद था, जो इस अवसर की शोभा बढ़ा रहा था। कांग्रेस का यह स्मरणीय अधिवेशन हुआ—बिल्कुल अनोखा।

पंडित मोतीलाल अच्छे मेजबान थे। उनका अतिथि-सत्कार मशहूर था। किन्तु जवाहरलाल ने अमृतसर-कांग्रेस से लेकर स्वतंत्रता मिलने तक २७ वर्षों में से लगभग ९ वर्ष जेलों में विताये थे, अतः

उन्हें अतिथि-सत्कार का मौका ही नहीं मिला। जेल से बाहर हैं तो भी गांवों और शहरों में घूमते रहे। जो कुछ मिलता, खा लेते। किन्तु जब कभी मौका मिलता, वह भोजन की परम्परा निभाते। प्रधान मंत्री के बाद उन्होंने भोजन-संबंधी नेहरू-परम्परा तो निभाई ही, किन्तु नाश्ते के समय वह बहुत-कुछ देहाती अंग्रेज या शायद कैम्ब्रिज पंडित की परम्परा निभाने लगे थे। तीन मूर्ति मार्ग पर नाश्ते के समय निमंत्रित होना एक गौरव का विषय था, कारण वर्ष के ३६५ दिन ही भोजन ने सामाजिक-राजनैतिक रूप ले लिया था। नाश्ते के पहले बाग का चक्कर लगता, कुत्तों और पाण्डों (भालुओं) के साथ खिलवाड़ होती और फिर नाश्ते की मेज पर पहुंचते। उस समय एक-दो विशिष्ट अतिथि भी मौजूद होते। नाश्ते के साथ कभी राष्ट्रीय और कभी अंतर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर चर्चा होती तो कभी सरकारी इमारतों की बदसूरती की। नाश्ते की मेज का हर क्षण शिक्षाप्रद और स्फूर्तिदायक होता था।

स्वभावतः मैं न्यूयार्क के भोज के लिए उत्सुक था, कारण मुझे सौजन्यपूर्ण आतिथ्य की नेहरू-परम्परा का पता था। राजनेता अपने देशों को कभी भी लौट सकते थे, अतः थोड़े समय के नोटिस पर यह भोज होना था। फिर निमंत्रण जारी करने में भी सतर्कता जरूरी थी, क्योंकि कोई नाम छूट जाता तो बुरा लगता। प्रमुखों, प्रधान मंत्रियों, विदेश-मंत्रियों या उनका प्रतिनिधित्व करनेवालों को निमंत्रण भेजे गये। कुछको छोड़कर जो न्यूयार्क से बाहर थे या अन्यथा व्यस्त थे, पूर्व और पश्चिम के सभी राजनेता भोज में शरीक हुए। संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव श्री हैमरशोल्ड ने उस समय कहा, "केवल नेहरू ही ऐसे भोज का आयोजन कर सकते हैं।"

पूर्व और पश्चिम के स्वादिष्ट व्यंजन और पेय मेज पर सजाये गये, जिन्हें कुशल पाकशास्त्रियों ने तैयार किया था। मेजों की योजना इस तरह की थी कि कूटनीतिक शिष्टाचार का सवाल उठ ही नहीं सकता था। जरूरत पड़ने पर अतिथि बैठ सकते थे। हमने ऐसी कुशल योजना की थी कि क्यूबा के कास्ट्रो, अमरीका के विलकोक्स के साथ, ख्रुश्चेव ब्रिटेन के सिलविन लायड के साथ, प्रेसिडेंट नासर और विदेश मंत्री फवाजी फ्रांस के कवि डि मुरविले के साथ, सुकर्ण नीदरलैण्ड के विदेश मंत्री लुण्ड्स के साथ, टीटो हंगरी के कादार और पोलैण्ड के गोमुल्का के साथ, ईराक के अली जवाद इजरायल की गोल्डा मेयर के साथ और घाना के प्रेसिडेंट एन्क्रूमा बेल्जियम के स्पाक के साथ बैठे। इस तरह अंतर्राष्ट्रीय जगत के राजनैतिक विरोधियों ने एक साथ बैठकर खाया-पिया और हँसी-मजाक किया और यह भूल गये कि दुनिया युद्ध के किनारे खड़ी हैं। नेहरू खुद ख्रुश्चेव के लिए बिरयानी और कबाब की तश्तरी लेकर गये तो वह बोले, "पिछली मर्तबा आपने मुझे भारतीय खाना खिलाया, तो मुझे स्वदेश लौटने पर ग्यारह दिन गोबी की सब्जी पर रखा गया। मुझे फिर वैसा ही करना पड़ेगा तो भी मैं यह स्वादिष्ट भारतीय भोजन नहीं छोड़ सकता।"

कास्ट्रो ने अमरीकी पत्रों में नेहरू का एक वक्तव्य पढ़ा था। उनकी आंखें कृतज्ञता से नम हो आईं। संवाददाताओं ने नेहरू से पूछा था कि वह कास्ट्रो से मिलने उनके निवास-स्थान पर क्यों गये, बजाय इसके कि उन्हें अपने यहां बुलाते? नेहरू ने उत्तर दिया, "यह कूटनीतिक शिष्टाचार का प्रश्न नहीं है। मैं कभी भी एक बहादुर आदमी से हाथ मिलाने मीलों का सफर कर सकूंगा।" कास्ट्रो को गरमागरम भारतीय तश्तरियां बहुत पसंद आईं।

व्यंजनों के कारण नहीं, बल्कि मेजबान की कुशलता के कारण यह भोज स्मरणीय बन गया। कारण, वह विभिन्न देशों के चोटी के राजपुरुषों को राजनैतिक विरोधों के बावजूद गैर-रस्मी सद्भावना और सौहार्द के वातावरण में एक जगह जमा कर सके।

जनरल असेम्बली के इस ऐतिहासिक किन्तु निराशाजनक अधिवेशन की सबसे अधिक स्मरणीय रात वह थी, जब अफ्रीकी-एशियाई प्रस्ताव पर विचार हुआ। इस प्रस्ताव का उद्देश्य था कि शांति-प्रयास पुनः प्रारंभ हो, किन्तु विचार के समय काफी कटुता का प्रदर्शन हुआ। राजनेताओं ने एक-दूसरे पर आरोपों की बौछारें कीं। नेहरू ने कई बार कहा, "जो युद्ध के लिए तैयार हैं, उनके लिए शांति के मार्ग पर आना कितना कठिन है।" प्रस्ताव पर मत लिया गया तो कार्य-विधि की ओट लेकर अध्यक्ष ने उसे अस्वीकृत घोषित कर दिया गया। अध्यक्ष का निर्णय आपत्तिजनक था, किन्तु बदला नहीं जा सकता था। कुछ अफ्रीकी-एशियाई देशों ने आपत्तिजनक होते हुए भी निर्णय को मानने की सलाह दी। नेहरू ने अध्यक्ष के निर्णय को चुनौती देने का निश्चय किया। पश्चिमी देशों ने इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। सहायता पानेवाले देशों को निर्देश दिया गया कि वह अध्यक्ष का समर्थन करें। नेहरू का विरोध निष्फल रहा।

मैंने प्रधान मंत्री से प्रश्न किया कि अध्यक्ष के निर्णय को मान लेने की परम्परा होते हुए भी उन्होंने उसका विरोध क्यों किया। उन्होंने कहा, "सामान्यतः परम्परा का पालन होना चाहिए, किन्तु जब सत्य और न्याय कसौटी पर हों तो हम चुप नहीं रह सकते। अगर अधिकार का दुरुपयोग हो रहा हो और एक अच्छे प्रस्ताव को विफल करने के लिए अच्छी परम्परा का गलत उपयोग होता हो तो हमें उसे चुनौती देने का साहस होना चाहिए। मैं जानता हूं कि हम हार जायंगे, किन्तु हमारा यह आग्रह भावी अध्यक्षों के लिए आपत्तिजनक निर्णय देना कठिन बना देगा।"

नेहरू जीवन-भर परम्पराओं और रिवाजों का पालन करते रहे, किन्तु जब उनके नाम पर अन्याय अथवा पक्षपात हुआ तो उसके खिलाफ उन्होंने विद्रोह किया और कोई ताकत उन्हें दबा न सकी। वह कट्टर-से-कट्टर शत्रु से समझौता करने के लिए हाथ मिला सकते थे, किन्तु वह अहंकार, बड़प्पन और दबाव के आगे कभी नहीं झुक सकते थे।

... ...

नेहरू सन् १९४८ और सन् १९६१ के बीच कई बार अमरीका गये। तीन बार राष्ट्रपतियों के निमंत्रण पर और एक बार जनरल असेम्बली में भाग लेने के लिए। किन्तु उनकी पहली विस्तृत अमरीकी यात्रा सन् १९४८ में प्रेसिडेंट ट्रूमैन के निमंत्रण पर हुई। इसे उन्होंने अपनी खोज-यात्रा कहा। इस यात्रा में वह अमरीकी लोगों के निकट सम्पर्क में आये और वह अमरीकी जीवन-विधि को ज्यादा अच्छी तरह समझ सके। किन्तु दुर्भाग्यवश प्रेसिडेंट ट्रूमैन अमरीकी जीवन-विधि के सबसे योग्य व्याख्याता नहीं थे। नेहरू और ट्रूमैन के व्यक्तित्व में अंतर था। व्यक्तिशः वे एक-दूसरे के बहुत निकट आ सके, किन्तु राजनैतिक दृष्टि से वे दूर चले गये। नेहरू और भारत को अच्छी तरह समझने के लिए अमरीका को बारह वर्ष का समय लगा और प्रेसिडेंट आइजनहोवर और केनेडी के साथ नजदीकी मुलाकातों के बाद ही यह संभव हुआ।

जब नेहरू अमरीका पहुंचे तो प्रेसिडेंट ट्रूमैन कूटनीतिक शिष्टाचार को तोड़कर उनका स्वागत करने हवाई अड्डे पहुंचे। नेहरू इस सौजन्य से बहुत प्रभावित हुए। मोटर-गाड़ियों से रवाना होने के पहले दोनों को कैमरा-मैनों का सामना करना पड़ा। कैमरा-मैनों ने अनुरोध किया कि वे चेहरे पर थोड़ी हँसी और मुस्कराहट लावें। ट्रूमन ने भी इस अनुरोध का समर्थन किया। किन्तु नेहरू ने केवल दांत भींच लिये। उन्होंने बाद में कहा, "आदेश पर मुस्कराना बचपना है। मैं फोटोग्राफरों को खुश करने के लिए खिल-खिलाया नहीं करता।" नेहरू कैमरावालों की प्रार्थना शायद ही अस्वीकार करते थे, किन्तु कैमरे के वह इतने अनुकूल थे कि वह उस क्षण के मनोभावों को प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त कर सकते थे। सन् १९४२ में जब सर क्रिप्स अपने पहले प्रस्ताव लेकर भारत आये और भारतीय नेताओं ने उन प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया तो उन्होंने नेहरूजी से कहा, "कम-से-कम विदा होते समय, हाथ मिलाते समय, कैमरे के सामने थोड़ा मुस्करा दीजिये" तो नेहरू ने उनसे कहा था, "हाथ तो जरूर मिलाऊंगा, किन्तु ये प्रस्ताव और मुस्कराहट एक-दूसरे से संगत नहीं हैं।"

वाशिंगटन, न्यूयार्क, सानफ्रांसिस्को, शिकागो, मेडिसन, नाक्सविले, सल्फर स्प्रिंग्स आदि अमरीका में नेहरूजी जहां कहीं गये, उनका शाही स्वागत किया गया। अमरीकी हज़ारों-लाखों की संख्या में सड़कों पर निकल आये और तरह-तरह उनके प्रति अपना आदर और प्रसन्नता प्रकट की। उनके भाषणों को गहरी दिलचस्पी से सुना। न्यूयार्क ने अमरीका के दो महान योद्धा—आइजनहोवर और मेक आर्थर से भी बड़ा स्वागत नेहरू का किया। सानफ्रांसिस्को में बेस बाल के खिलाड़ी डोन मेगियो और अंतर्राष्ट्रीय राजपुरुष नेहरू के बीच होड़ हो गई। डोन मेगियो न्यूयार्क में खेल का भव्य प्रदर्शन करके अपने नगर को लौट रहे थे। सानफ्रांसिस्को ने उनका जोरदार स्वागत किया। नेहरू इस स्वागत के पांच घंटे बाद उसी दिन सान-फ्रांसिस्को पहुंचे, किन्तु यह नगर उनका स्वागत करने में एक कदम आगे ही रहा। हम कुछ पत्रकार उनके मोटर-गाड़ियों के जुलूस में शामिल थे, जिसने लोगों की जोशीली भीड़ के बीच दस मील की यात्रा की। हमें याद नहीं पड़ता कि इससे अधिक उल्लेखनीय स्वागत और कहीं हुआ होगा। शिकागो के लोग किसी तरह उनका स्वागत करने में पीछे नहीं रहे, हालांकि तबतक नेहरू के प्रति अमरीकी प्रशासन का जोश ठण्डा पड़ चुका था।

समारोहों के अवसर पर रस्मी और गैर-रस्मी पोशाक पहनने के बारे में कुछ अटपटी घटनाएं हुईं। कहीं-कहीं नेहरूजी कूटनीतिक शिष्टाचार का पालन करने में चूक गये। अमरीका के परराष्ट्र मंत्री डीन अचेसन की पोशाक को लोगों ने एंथोनी ईडन के बाद सर्वोत्तम ठहराया था, किन्तु इन्हीं अचेसन की राय थी कि नेहरू अत्यंत सुरुचिपूर्ण पोशाक पहनते हैं। यही नहीं, उन्होंने नेहरूजी के बारे में कहा, "नेहरू में लिंकन की दृढ़ता, जेफरसन की राजनीतिज्ञता और वुडरो विलसन की बौद्धिक आदर्शवादिता है। वह कूट-नीति के नये मापदण्ड स्थापित करेंगे।"

प्रेसिडेंट ट्रूमैन कूटनीतिक शिष्टाचार के नियमों का भंग कर उस भोज में शामिल हुए, जो भारतीय राजदूत ने अपने निवास-स्थान पर नेहरूजी के सम्मान में दिया था। प्रेसिडेंट ने अपना एक चित्र चांदी के फ्रेम में मढ़ा हुआ बड़े आदर के साथ नेहरूजी को भेंट किया। नेहरूजी भी उपहार में देने के लिए कीमती

अनेक चीजें लाये थे, किन्तु वह बदले में ऐसा कोई चित्र नहीं दे पाये। प्रेसिडेंट के सम्मान में आयोजित भोज में नेहरू प्लेटो के गणराज्य और आधुनिक लोकतंत्र की चर्चा में इतने खो गये कि प्रेसिडेंट के स्वास्थ्य-पान की रस्म अदा करना ही भूल गये। अंत में उकताकर विजयालक्ष्मी पंडित ने यह फर्ज पूरा किया।

अगले दिन नेशनल प्रेस क्लब के भोज में नेहरूजी ने हँसी के बीच यह स्वीकार किया कि यद्यपि उन्होंने दुनिया के एक श्रेष्ठ विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई तथापि उनका सामाजिक जीवन किसानों और कैदियों के बीच बीता है। उन्हें कूटनीतिक शिष्टाचार के नियम जेल-नियमों से ज्यादा अरुचिकर प्रतीत होते हैं। उन्हें एक अच्छा कैदी ठहराया गया, किन्तु उन्हें शक था कि वह अच्छे कूटनीतिज्ञ सिद्ध हो सकेंगे।

हम अपनी यात्रा की आखिरी मंजिल पर थे। लम्बी उड़ान के बाद वेंकोवर से मेडिसिन पहुंचनेवाले थे और वहां के कुछ कार्यक्रम निपटाकर हम न्यूयार्क होते हुए भारत के लिए रवाना होनेवाले थे। नेहरूजी प्रेसिडेंट के विमान 'इंडिपेंडेंस' में आगे सफर कर रहे थे और हम पत्रकार पीछे एक सैनिक वायुयान में थे। हम जिस होटल में ठहरे थे, वहां हमने अपने अमरीकी मेजबान साथियों के सम्मान में एक भोज आयोजित किया और उसमें नेहरूजी को भी आमंत्रित किया।

जब हम होटल में पहुंचे और नहा-धोकर और कपड़े बदलकर भोज के कमरे में गये तो नेहरूजी पहले ही वहां पहुंचे हुए थे। मैंने नेहरूजी को आग्रह करके अपनी दाईं ओर बिठाया और मेरी बाईं ओर अमरीकी सरकार के मुख्य कूटनीतिक शिष्टाचार अधिकारी बैठे थे। मेरे पीछे मेजपर कुछ रिबन बंधी पार्सलें रखी थीं, जिन्हें हमने जल्दी में खरीदा था और उनको भेंट करना चाहते थे, जिन्होंने इस यात्रा में हमारे लिए इतना कष्ट उठाया था। कुछ भाषणों के बाद नेहरू ने मुझसे हिन्दी में कहा, "मैं एक ही शर्त पर अब यहां और बैठूंगा कि एक पार्सल मुझे दोगे और दूसरे मैं भाषण भी दूंगा।" सबसे अच्छी पार्सल मुख्य अधिकारी के लिए थी और हमने माना कि इससे अच्छा और क्या होगा कि नेहरू ही उसे भेंट करें। नेहरूजी ने उस दिन यात्रा का सबसे सजीव मौखिक भाषण किया, जो संस्मरणों से भरा था। उन्होंने अंत में कहा कि मैं बहुत साल जेल में रहा हूं, लेकिन चोरी करने की इच्छा इतनी तेज कभी नहीं हुई, जितनी इन उपहारों के पार्सलों को देखकर हुई है। मुझे अफसोस है कि मैं खुद उन लोगों के लिए कोई पार्सल नहीं खरीद पाया, जिन्होंने हमारी यात्रा को सुखद और स्मरणीय बनाने के लिए इतनी मेहनत की। किन्तु मैं एक भूतपूर्व पत्रकार के नाते यह उपहार देने में गर्व अनुभव करता हूं।"

शिकागो के लोगों ने तो कमाल ही कर दिया। अमरीकी प्रशासन ने स्वागत-सत्कार के इंतजाम करीब-करीब खत्म कर दिये थे। लाल कालीन समेट लिये गए और उसने समझ लिया कि नेहरू की मित्रता तो हासिल हुई, किन्तु उन्हें सहयोगी नहीं बनाया जा सका। नेहरूजी अमरीका से हाथ मिला सकते हैं, किन्तु उसका राग नहीं अलाप सकते। पर शिकागो की एक मित्रमंडली ने स्वागत का आयोजन किया और नेहरूजी जिस रास्ते से गुजरे, प्रशंसकों की भारी भीड़ जमा होगई। अंत में शिकागो के मेयर और गवर्नर ने नेहरूजी की असाधारण लोकप्रियता देखी तो वह खुली गाड़ी में बैठकर उन्हें वापस होटल में पहुंचाने गये और उनकी लोकप्रियता में खुद भी हिस्सा बंटाया।

अमरीकी लोग नेहरूजी को प्यार करते रहे, किन्तु सरकारी मानस बदल गया। अमरीका कोरिया युद्ध में लिप्त हुआ और शीतयुद्ध में गरमी आई। नेहरूजी की तटस्थता की नीति को चुनौती समझा गया, दबाव डाला जाने लगा। बाद में जब नेहरूजी का रूस में शानदार स्वागत हुआ तो डलेस-निक्सन-टीम अदूरदर्शितापूर्वक यह कहने लगी कि दुनिया में कोई तटस्थ नहीं हो सकता और अगर भारत अमरीका के साथ नहीं है तो वह हमारे शत्रु–रूस के साथ है। चौदह वर्षतक नेहरूजी हवाओं से टकराते रहे, पर हिम्मत के साथ अपने रुख पर डटे रहे। बेधड़क होकर धीरज से हर चुनौती का सामना किया। अंत में उन्हें तटस्थता और सहअस्तित्व का हिमायती, शांति का महान प्रेमी, आजादी का निडर योद्धा और लोकतंत्र का निष्ठावान पुजारी स्वीकार किया गया। ●

आज, जब राजनैतिक और आर्थिक क्रांतियों का संक्रमण पूरा हो चुका है, और मानसिक क्रांति करवटें ले रही है, तब क्रांति के तीसरे चरण में, मानव-जाति का नेतृत्व करने के लिए जवाहरलाल नेहरू-सा योग्य व्यक्ति दूसरा कौन है? यह हो सकता है कि इस क्रांति की अवधि हमारी कल्पना से अधिक लम्बी हो, लेकिन इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं है कि अगली पीढ़ियां जब प्रोत्साहन के लिए अतीत के महापुरुषों की ओर देखेंगी तब महात्मा गांधी के पार्श्व में वीर नेहरू को खड़ा पायंगी।

—जेरल्ड हर्ड

एस० एल० नरसू

लघु और महान

एक बार स्वर्गीय प्रधान मंत्री नेहरू के एक छोटे-से काम की जिम्मेदारी मैंने ली और उसका मुझे बड़ा भारी पुरस्कार मिला। मैंने दर्शन किये उनकी सतत शोध करनेवाली आत्मा के, जो सदा विश्लेषण करती रहती थी, जिसकी निरंतर वैज्ञानिक दृष्टि थी, सूक्ष्म विचार करती थी और जो हमेशा छोटी-से-छोटी घटनाओं, साधारण-से-साधारण अनुभवों और छोटे-से-छोटे आदमी से भी चीजों की पुष्टि करने, पता लगाने और अपनेको व्यापक बनाने के लिए पूरी तरह प्रयत्नशील रहती थी।

मैं साधारण सरकारी कर्मचारी था। सौभाग्य से इसलिए प्रकाश में आगया कि एक समाचार एजेंसी ने एक अफसर के घर में चलनेवाले छोटे-से मछलीघर की कहानी प्रकाशित कर दी थी, जो दिल्ली के बच्चों का आकर्षण-केन्द्र बन गया था। उसके फलस्वरूप मुझे उन दो मछलीघरों की ठीक प्रकार से देखभाल करने का काम सौंपा गया, जो प्रधान मंत्री के तीन मूर्ति पर स्थित निवास-स्थान की ऊपर की मंजिल के हॉल में स्थापित किये गए थे। यह काम मेरे सरकारी काम से बिल्कुल जुदा था।

जबतक मैंने यह काम किया, वह मेरे लिए स्फूर्तिदायक विशेषाधिकार रहा और उसका प्रतिफल भी मुझे मिला। दिल्ली के मौसम की विपरीत परिस्थितियों के कारण यद्यपि मुझे मछलियों की देखभाल करने के कठिन काम में पूरी सफलता नहीं मिली, तथापि अपने ही विनम्र तरीके से एक महापुरुष की सेवा करने की अपनी मनोकामना मैं पूरी कर पाया।

मछलीघर के पानी को बदलने, रेत और गन्दगी को साफ करने, समय-समय पर वनस्पति लगाने और मछलीघर की पारदर्शी बाजुओं को चमकीला बनाने का काम काफी उलझन-भरा और कष्टदायक होता है। प्रधान मंत्री के मकान में मछलीघर हॉल के भीतर उस खाली जगह में रखे थे, जो अंगीठियों के लिए थी। इस हॉल से सामने के कक्ष में नेहरूजी के सोने के कमरे और भोजन के कमरे में रास्ता जाता था। हालांकि मैं अपना काम ऐसे समय करता था, जबकि प्रधान मंत्री को जरा भी असुविधा न हो, फिर भी काम को हमेशा ही आंख बचाकर करना संभव नहीं हो पाता था।

जहां मैं काम करता था, उसके पास से पंडितजी अक्सर गुजरते थे। आम तौर पर उनके साथ उनकी पुत्री आतीं अथवा उनके प्राइवेट सेक्रेटरी होते थे। मुझे उन्हें नमस्कार करने का मौका मिलता था और वह बिना चूके मेरे अभिवादन का कृपापूर्ण सौजन्य के साथ उत्तर देते थे। मैं मछलीघर पर झुका होता था तो भी मुझे पता रहता था कि नेहरूजी की आंखें दूर से मुझे देख रही हैं, सीढ़ियों के आगे वह

किसीसे गंभीर चर्चा कर रहे होते तब भी। यही उनकी प्रिय जगह थी, जहां वह किसी जरूरी कागज के बारे में, खास तौर पर अपने प्राइवेट सेक्रेटरी से चर्चा करते थे।

मैंने अपना काम शुरू किया, उसके कुछ दिन बाद शीतकाल के एक सवेरे अचानक और अप्रत्याशित यह घटना हुई। मैंने काम आरंभ किया। नाश्ता करने के बाद दूसरों से कुछ तेज चलकर नेहरूजी मछली-घर के पास ठहरे और कुछ उद्वेगकारी स्वर में पूछा, "ये मछलियां मर क्यों गईं ? इतनी मछलियां अक्सर क्यों मरती हैं ?" उन्होंने तीन मृत मछलियों की ओर इशारा किया, जो तालाब के पैंदे में कचरे पर पीठ के बल पड़ी हुई थीं। वह प्रकटत: द्रवित थे, हालांकि मेरे जैसे अनुभवी मछली-पालक के लिए जिस तालाब में कोई पचहत्तर मछलियां रहती हों, तीन मछलियों का मरना एक सामान्य अनुभव था।

फिर भी मेरे लिए यह परेशानी का क्षण था। एक बड़े आदमी ने प्रकट आतुरता के साथ मुझसे प्रश्न किया था। मैं कोई असंगत उत्तर दे जाऊंगा, यह सोचने का भी मुझे समय नहीं मिला । मैंने कुछ इस आशय का उत्तर दिया, "मछली एक ऐसी किस्म का जीव है, जो इतनी अधिक संख्या में बच्चे देती है और इस तेजी से उसकी तादाद बढ़ती है कि प्रकृति उसकी मौत के औसत को बढ़ाकर संतुलन कायम रखती है।"

पंडितजी के चेहरे पर अपरिचित परिवर्तन दिखाई दिया। उसपर आंतरिक वेदना झलकती थी, किन्तु वेदना पर विनोद की परत पड़ी हुई थी। वह अपने जन्मजात सौजन्य से मुझे सान्त्वना देना चाहते थे, किन्तु वेदना उनके अंतरतम में प्रविष्ट हो गई थी । इससे तो अच्छा होता कि मैं उन्हें कोई प्रसंगोचित कहानी ही सुना देता।

"अच्छा, क्या आप ऐसा सोचते हैं ?" यह था उनका नरम और संक्षिप्त कथन, और वह तेजी से दिन के दूसरे काम निपटाने के लिए आगे बढ़ गये, किन्तु मैं उनके अर्थ-गंभीर कथन पर सोचता रह गया और मैंने अनुभव किया कि एक सीधा, वैज्ञानिक और युक्तियुक्त स्पष्टीकरण सुलभ करने की मेरी कोशिश से उनका समाधान नहीं हुआ।

बेशक, मैं चाहता था कि असली कारण प्रकट न करूं, जिससे किसीपर दोष आये, अन्यथा मृत मछलियों के मुंह तब भी अध-निगले मांस के टुकड़ों से खुले हुए थे। प्रकटत: प्रधान मंत्री के यहां काम करनेवाले किसी आदमी ने मछलियों के लिए उदारता से मांस के टुकड़े डाल दिये थे। ऐसी निर्दयता लोगों की दयालुता से उत्पन्न होती है।

किन्तु मेरे तर्क की ज्यादती ने पंडितजी को आघात पहुंचाया। यह उनके वैज्ञानिक दर्शन के विरुद्ध और गलत था कि अत्यधिक उत्पत्ति का निराकरण अत्यधिक मृत्यु से हो। तीन मृत मछलियों के सीधे-से उदाहरण से मैंने जीवों के आंशिक, किन्तु बहुसंख्यक विनाश का औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया था और मुझे काफी विलम्ब से अनुभव हुआ कि मैंने क्या ग़लती की । मैंने अर्द्ध-मालथसी सिद्धांत के आधार पर मौत का औचित्य सिद्ध किया था और इस प्रकार एक कोमलतम हृदय को आघात पहुंचाया था। जाहिर है कि यह सिद्धांत नेहरूजी के तत्वज्ञान और दृष्टिकोण से असंगत था।

मुझे दो मौके और याद आते हैं, जब मैं अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा कर सका, किन्तु उसके पहले मुझे कड़ी वैज्ञानिक कसौटी का सामना करना पड़ा । उससे पता चला कि पंडितजी तथ्यों अथवा वक्तव्यों

के वैज्ञानिक समर्थन के लिए कितने उत्सुक रहते थे। एक सर्द दुपहरी की बात है। दिल्ली आंधी और वर्षा के मारे कांप रही थी। मुझे सूचना मिली कि प्रधान मंत्री के मकान के तालाबों में बड़ी तादाद में मछलियां मर गई हैं। मैं जांच करने पहुंचा, किन्तु किस्मत की बात कि नीचे के हॉल में एक प्रतिष्ठित मुलाकाती को विदा करके नेहरूजी सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आये। अपने कमरे की ओर जाने के बजाय वह सीधे तालाबों की ओर आये और अपने साधारण नरम लहजे में पूछा, "क्या आपको यकीन है कि तापमान ठीक-ठीक रखा गया था?" निश्चय ही वह ठीक नहीं था, और तालाब पर जो थर्मामीटर हमने लटका रखा था, वह ४६ डिगरी दिखा रहा था, हालांकि तापमान ७५ डिग्री बनाये रखने के लिए स्वचालित उष्णता-नियंत्रक अंगीठी तालाब में रखी हुई थी।

मुझे लगा, दोपहर के पहले या पिछली रात को बिजली बंद हो जाने से उष्णता पैदा करने की पद्धति अस्त-व्यस्त हो गई और तापमान गिर गया। कुछ सप्ताह से मुझे यह पता था कि जो पहले अंगीठी की जगह थी और जहां धुआं निकलने का रास्ता है, वह भी सर्दियों में तालाब के तापमान को कम करने का एक अतिरिक्त कारण है। किन्तु मुझे जो बात सबसे अधिक महत्वपूर्ण लगी, वह यह थी कि राज्य की चिन्ताओं और जिम्मेदारियों का बोझ सिर पर लदा होने पर भी नेहरूजी को ज्योंही पता चला कि मछलियों की हालत गड़बड़ है, उन्होंने अपने मछली-घर के थर्मामीटर को जाकर देखा। इसकी सूचना उनके यहां का और कोई आदमी उन्हें नहीं दे सकता था।

अंगीठी की जगह ऊपर से हवा आने के रास्ते के बारे में अपनी शंका प्रकट करना मैंने अपना कर्तव्य समझा। उसकी नेहरूजी के मन पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने पहले तो इसे माना नहीं। फिर नीचे झुककर छेद में झांकने की कोशिश की। किन्तु मछली-घर के सिरे और अंगीठी की जगह के ऊपर बनी ताक के बीच मुश्किल से तीन इंच की जगह थी। उन्होंने इस तथ्य को तुरंत समझ लिया। उन्होंने देखा कि ताक पर एक कागज पड़ा है। उन्होंने उसे हाथ में लिया और आधा इंच चौड़ी और उस कागज जितनी लम्बी पट्टी फाड़ी। मैं यह समझ भी नहीं पाया कि वह क्या कर रहे हैं कि उन्होंने कागज की पट्टी को खाली जगह में घुसेड़ दिया। कागज हवा के ज़ोर से फड़फड़ाने लगा। वह मुस्कराते हुए मुड़े और मेरी ओर तेजी से सिर हिलाया। फिर कागज की पट्टी अपने हाथ में थामे अपने कमरे की ओर चले गये। ऐसे थे सूक्ष्म वैज्ञानिक नेहरूजी!

एक दिन बाद मैंने देखा कि लकड़ी के तख्तों से हवा आने के रास्ते को बंद करने के लिए खाती को बुलाया गया है। यह थी नेहरूजी की कर्मठता, जो निर्णय और अमल में देर सहन नहीं करती थी।

एक और स्मरणीय घटना गर्मियों में एक दिन हुई। खुले हुए पर्दों के कारण मछली-घर पर बहुत धूप आ रही थी और कोई ट्यूब की रोशनी बुझाना भूल गया था। इसके अलावा कुछ सड़े हुए खाने के के कारण मछली-घर का पानी खराब हो गया था। ये सब अनुकूल परिस्थितियां थीं कि जिनके कारण हरी-समुद्री घास पानी और पौधों में जाल की तरह फैल गई और किनारों पर इकट्ठी हो गई और इस प्रकार उसके प्रकाश में अवरोध पैदा कर दिया। नेहरूजी पूछने के लिए आये। मैंने एक और शंका प्रकट की, जो मेरे मन को परेशान कर रही थी। मेरी राय में मछली-घर के पारदर्शी बाजुओं की चमक कम

होने का एक अतिरिक्त कारण यह था कि वे प्लास्टिक की चादर से बने थे और विशेषज्ञ उनको कांच का बताते थे, जो सही नहीं था। "क्या ये प्लास्टिक की चादर से बने हैं? आप ऐसा कैसे सोचते हैं? मुझे तो बताया गया है कि वे कांच के हैं।" यह था उनका तात्कालिक कथन।

मैंने स्पष्टीकरण किया, "आगे के मछली-घर के सामने के बाजू पर एक हल्की उभार दिखानेवाला मोड़ है और यही मेरी धारणा को पुष्ट करता है।" जाहिर था कि उन्हें मेरी राय में संदेह था। उनको दरअसल शक था कि मोड़ है भी या नहीं, कारण वह इतना हल्का था कि कोई अभ्यस्त आंख ही उसको देख सकती थी। किन्तु उन्होंने मेरे सुझाव को रद्द नहीं किया।

वह तेजी से बाहर के बरामदे में गये और क्या होनेवाला है इसका मैं अनुमान भी नहीं लगा पाया था कि वह एक सीधा लम्बा लकड़ी का डण्डा लिये लौटे, जिसका एक किनारा सीधा था। यह आश्चर्य की बात थी कि इतने बड़े मकान में उन्हें पता था कि ऐसी चीज मौजूद है और वह कहां रखी है, जो उसी क्षण दो कदम पर मिल सकती है। वह मछली-घर के सामने की बाजू की सतह की, उकड़ू बैठकर, परीक्षा करने लगे, मानों प्रयोगशाला की मेज की बगल में एक युवक और उत्साही शोध-विद्यार्थी अपना काम कर रहा हो। विभिन्न स्थलों के बीच और विभिन्न कोणों से लकड़ी का सीधा किनारा रखने के बाद उन्हें समाधान होगया कि सामने की चादर में केन्द्र और सिरों के बीच करीब आधा इंच का मोड़ था।

विदा होते-होते उन्होंने प्रश्न किया, "तो आपकी राय है कि इसके बजाय कांच का तख्ता लगाया जाय?" और मेरी स्वीकृति सुनकर वह चले गये, किन्तु जाने से पहले एक नौकर को कह गये कि वह लकड़ी के डंडे को उसकी जगह पर वापस रख आये।

डाक-शताब्दी प्रदर्शनी के समय समाचार-पत्रों और दिल्ली की जनता को भूमध्यरेखा क्षेत्र की मछलियों के घरेलू तालाबों में नेहरूजी की दिलचस्पी का पता चला। उस प्रदर्शनी में एक तालाब में रंग-बिरंगी मछलियां दिखाई गई थीं। प्रधान मंत्री अपने नातियों को वह तालाब दिखाने खास तौर पर दुबारा लाये थे और घरों में मछली-घर रखने के विज्ञान में अपनी जिज्ञासा प्रकट की थी। विदेशों में घरों में उन्होंने ऐसे मछली-घर देखे थे। वह इन सदा सक्रिय रहनेवाले जीवों को एक जगह से दूसरी जगह तीर की तरह जाते, एक-दूसरे का पीछा करते, लुभाते और प्रेम करते और लड़ते-भिड़ते देखकर बहुत खुश होते थे।

जब कभी वह अपने मछली-घरों को देखने को रुकते तो उनके चेहरे पर पूर्णिमा की स्निग्ध चांदनी खिल उठती, कारण राज्य की तमाम जिम्मेदारियों और चिंताओं के बीच ये मछली-घर उन्हें ताजगी, स्फूर्ति अथवा शांति देते थे। किन्तु मेरे ख्याल से उनकी इस विशेष दिलचस्पी का एक और अधिक महत्वपूर्ण कारण था। मछलियों के लिए यह प्रसिद्ध है कि वे काफी समय तक आंखें बंद नहीं करतीं, अथवा एक जगह या निष्क्रिय नहीं रहतीं। वे हमेशा गतिशील, क्रियाशील और आगे तैरती रहती हैं। वे नेहरूजी की भावना की प्रतीक थीं। नेहरूजी की आत्मा कर्म की प्यासी थी और अकर्मण्यता से नफरत करती थी, कारण, कर्म ही उनके लिए जीवन का चिह्न था। नेहरूजी जीवन को प्यार करते थे और इससे कोई इंकार नहीं कर सकता। उनके लिए मृत्यु का अर्थ हुआ प्रवृत्ति का अंत और इस रहस्य के खिलाफ उनका मन हमेशा विद्रोही रहा और उसके आगे वह कभी नत-मस्तक नहीं हुए।●

कारागार की स्मृतियां

८८"ऊंची दीवारें और लोहे के दरवाजे जेल की छोटी-सी दुनिया को वाहर के विशाल संसार से विलग कर देते हैं। यहां इस जेल की दुनिया में प्रत्येक चीज भिन्न है, लम्वी मियाद के कैदी के लिए। यहां कोई रंग नहीं है, कोई परिवर्तन नहीं है, कोई उम्मीदें नहीं हैं, कोई आंदोलन नहीं है। भीषण उदासी के साथ जीवन का मुहर्रमी गति-चक्र चलता रहता है। वह एक विस्तीर्ण मरुस्थल है, जहां कोई ऊंचाई नहीं, प्यास बुझाने के लिए या भयंकर ताप से वचने के लिए कोई नखलिस्तान नहीं। जबतक जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा खत्म नहीं हो जाता, दिनों के बाद सप्ताह वीतते हैं, सप्ताहों के बाद महीने बीतते हैं, और महीनों के बाद वर्ष बीतते जाते हैं। समय का सम्पूर्ण ज्ञान मिट जाता है। कैदी वनस्पति के समान रहता है, परन्तु विलकुल दूसरे तरीके पर, क्योंकि भय उसका पीछा किये रहता है और उसको दवाये रहता है। निश्चय ही जेल की कोठरी में बंद कैदी के समान निस्सहाय कोई नहीं होता। राज्य की सम्पूर्ण शक्ति उसके विरुद्ध होती है। उसके पास उस शक्ति को रोकने के लिए साधारण साधन भी नहीं होता। कराहें भी रोक दी जाती हैं, दु:ख की आवाज जेल की ऊंची दीवारों के वाहर नहीं सुनी जा सकतीं।"

(नेहरूजी के 'जेल-जीवन की झलक' लेख से)

उपरोक्त लेख में नेहरूजी ने जेल-जीवन और एक कैदी की भावनाओं का साकार चित्रण किया है। राजनैतिक कैदियों में नेहरूजी ही शायद एक ऐसे व्यक्ति रहे होंगे, जिन्होंने स्वराज्य-प्राप्ति के हेतु इतने लम्वे समय तक बंदी-जीवन व्यतीत किया। सन् १९२१ से १९४५ के २३ वर्षों में २३ दिन कम पूरे नौ वर्ष नेहरूजी जेल में रहे। उनकी तालिका इस प्रकार है :

अवधि	गिरफ्तारी की तारीख	दिन	स्थान
१. छः महीने	६ दिसम्बर १९२१ से १ मार्च १९२२ तक।	८७	लखनऊ डिस्ट्रिक्ट जल
२. अठारह महीने	११ मई, १९२२ से ३१ जून १९२३	२६५	लखनऊ डिस्ट्रिक्ट जेल
३. दो वर्ष	२२ सितम्बर १९२३ से ४ अक्तूबर १९२५	१२ (स्थगित कर दी गई)	नाभा-जेल

४. छः महीने	१४ अप्रैल १९३० से ११ अक्तूबर १९३०	१८०	नैनी सेंट्रल प्रिज़न
५. दो वर्ष कुछ मास	१९ अक्तूबर १९३० से २६ जनवरी १९३१	९९	नैनी सेंट्रल प्रिज़न
६. दो वर्ष	२५ दिसम्बर १९३१ से ३० अगस्त १९३३	६१२	नैनी सेंट्रल प्रिजन बरेली डिस्ट्रिक्ट जेल देहरादून जेल
७. दो वर्ष	१२ फरवरी १९३४ से ४ सितम्बर १९३५	५६९	प्रेसीडेंसी जेल, कलकत्ता अलीपुर सेंट्रल जेल, कलकत्ता देहरादून जेल नैनी सेंट्रल प्रिज़न अलमोड़ा डिस्ट्रिक्ट जेल
८. कुछ वर्ष	३१ अक्तूबर १९४० से ३ दिसम्बर १९४१	३९८	गोरखपुर प्रिज़न
९. अनिश्चित नज़रबंदी	९ अगस्त १९४२ से १५ जून १९४५	१०४०	अहमदनगर क़िला जेल
		३२६२ (८ वर्ष ११ महीने १२ दिन)	

परंतु नेहरूजी का यह बंदी जीवन व्यर्थ नहीं गया। जेल के इन वर्षों में ही वह इतना अधिक साहित्य देने में समर्थ हो सके। सर्वप्रथम उन्होंने अपनी पुत्री इंदिरा को उसकी तेरहवीं वर्ष-गांठ पर एक पत्र लिखा था, जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :

"मेरे उपहार वास्तविक या वहुत ठोस किस्म के नहीं हो सकते। वे तो हवा के समान सूक्ष्म ही होंगे जिनका मन और आत्मा से संम्बन्ध हो। ऐसे उपहार शायद तुम्हें नेक परियां ही दे सकें और इन्हें जेल की ऊंची दीवारें भी नहीं रोक सकतीं। लेकिन यही उपहार हैं, जो वास्तव में अपना महत्व रखते हैं।" सन् १९२९ में नेहरूजी की प्रथम पुस्तक 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' प्रकाशित हुई।

नेहरूजी को हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू का ज्ञान तो था ही, अहमदनगर जेल में उन्होंने फारसी पढ़ी और उसमें पुस्तकें भी लिखीं। ऐसी छः अभ्यास-पुस्तकें अभी तक आनन्द-भवन के पुस्तकालय में रखी थीं, अब तीन मूर्ति भवन में उपलब्ध हैं। उनमें जो संशोधन किये गए हैं, वे या तो मौलाना अबुल कलाम आजाद के हाथ के हैं, या डा० महमूद के।

आनन्द-भवन में लगभग ६,००० से अधिक पुस्तकें हैं, जिनमें अधिकतर नेहरूजी की पढ़ी हुई हैं। पंडितजी की आदत थी कि जो भी पुस्तक वह पढ़ते थे, उसपर तारीख, महीना और सन् लिखकर हस्ताक्षर कर देते थे। पुस्तकें देखने से जान पड़ता है कि अधिकतर पुस्तकें जेलों में ही पढ़ी गई हैं। नैनी जेल,

अल्मोड़ा जेल, देहरादून और अहमदनगर जेल में अधिक अध्ययन हुआ है। विश्व-प्रसिद्ध पुस्तक 'मेरी कहानी' अल्मोड़ा जेल में और 'हिन्दुस्तान की कहानी' अहमदनगर जेल में ही लिखी गई थीं।

सन् १९२१ के असहयोग आंदोलन में नेहरूजी पहली वार जेल गये थे। पंडित मोतीलाल नेहरू भी पहली वार उसी समय जेल भेजे गये थे। पिता और पुत्र दोनों साथ-ही-साथ गिरफ्तार किये गए थे। उस समय जो वधाई के तार प्राप्त हुए थे, उनमें मौलाना अवुल कलाम आजाद, केरल प्रदेश कांग्रेस के सेक्रेटरी श्री केशव मेनन और महात्मा गांधी के थे।

१९३० में पुन: मोतीलालजी और जवाहरलालजी जेल में साथ रहे। जेल में रहकर भी जवाहरलालजी अपने पिता की कितनी सेवा करते थे, यह मोतीलालजी द्वारा अपनी पुत्री विजयालक्ष्मी पंडित को ३० जुलाई, १९३० को लिखे एक पत्र से स्पष्ट है:

"मुझे खाना जो ९ कानपुर रोड से आता है, वहुत पसन्द है। यह ज्यादा दिन नहीं आना चाहिए। मैं कुकर में खाना खुद ही वनाऊंगा। मैं सोचता हूं, मुझे यह सब अव कम करना चाहिए। मुझे यहां कुछ नही करना पड़ता, सिवा खाना, सोना और पढ़ना। हरी (पुराना नौकर) को जवाहर से सवक लेना चाहिए। सुवह की चाय से लेकर रात को जव मैं सोता हूं, मुझे सव चीज अपनी जगह पर मिलती है। छोटी-छोटी चीज भी होशियारी से अपनी जगह मिलती है, जिनके लिए मुझे आनन्द-भवन में इतना चिल्लाना पड़ता है। महमूद भी मदद करते हैं, लेकिन सारा वोझा जवाहर पर पड़ता है। मुझे जवाहर का इतना वक्त लेते दु:ख होता है। यही वक्त दूसरे काम में आ सकता है, लेकिन जवाहर सव पहले ही ठीक कर देता है और मेरे लिए कुछ छोड़ता ही नहीं।"

जेल में रहकर नेहरूजी ने स्वयं शारीरिक कष्ट सहे, देश को स्वराज्य दिलाया, साहित्य का भंडार भी भरा। नेहरूजी ने स्वयं कहा है, "यदि मैं राजनीति में न आता तो एक अच्छा पत्रकार होता।" किसीने ठीक ही कहा है, "नेहरूजी एक कवि का हृदय पाकर कुशल राजनीतिज्ञ कैसे हो गये?" यह नेहरूजी के गंभीर अध्ययन व चिंतन का परिणाम है।

लेकिन दूसरी ओर उन्होंने वहुत-कुछ खोया भी। पिता, माता और पत्नी जैसे प्रिय व्यक्तियों की कुरवानी सहनी पड़ी। राजनीति के व्यस्त जीवन में वह परिवार की ओर विलकुल ध्यान नहीं दे पाते थे। जेल में ही मोतीलालजी की तवीयत खराव हुई और मृत्यु के निकट पहुंचने पर अवधि पूर्ण होने से पहले ही रिहा कर दिये गए। पिता की वीमारी के कारण २६ जनवरी १९३१ को पंडित जवाहरलाल नेहरू भी नैनी जेल से छोड़ दिये गए, परंतु वह पिता को नहीं वचा सके। माता स्वरूपरानी और पत्नी कमला की गंभीर वीमारी के कारण कई वार नेहरूजी को जेल से मुक्त किया गया और कहा गया कि भविष्य में सत्याग्रह में भाग न लें तो उन्हें आगे नहीं पकड़ा जायगा, परंतु मृत्यु-शैय्या पर पड़ीं कमलाजी ने सरकार की यह शर्त सुनी तो नेहरूजी से उसे कभी न मानने का आग्रह किया। कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी नेहरूजी कभी विचलित नहीं हुए। मोतीलालजी के संस्मरण का एक दृश्य वरवस आंखों के सामने आ जाता है——लाला लाजपत राय मोतीलालजी की ओर मुड़कर वोले कि एक साल वाद जव स्वराज्य हो जायगा तव तो नेहरू-परिवार के सदस्य देश की शासन-व्यवस्था में वहुत वड़े-वड़े ओहदे पर होंगे। मोतीलाल-

जी मजाक में साथ न दे सके। कुछ भविष्यवाणी-सी करते हुए बोले, "जिस स्वराज्य की कल्पना करता हूं उसकी नींव में तो नेहरू-परिवार की हड्डियां गलकर घुल-मिल चुकी होंगी। वही दृढ़ और स्थायी स्वराज्य होगा।"

एक अविस्मरणीय घटना है सन् १९४४ की। ९ अगस्त १९४२ को नेहरूजी को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पेश करने के संबंध में चार साल की कैद मिली। वह अहमदनगर किले में नजरबन्द कर दिये गये। अहमदनगर से अल्मोड़ा जेल भेजे जाने का आदेश हुआ। यह सूचना गुप्त रखी गई। अहमदनगर से अलमोड़ा के रास्ते में एक रात नैनी जेल में विश्राम था। उनके आने की खबर लोगों को न लगे, इसलिए गाड़ी नैनी स्टेशन से कुछ दूर रोकी गई। इस अवधि में इंदिराजी के बड़े पुत्र राजीव का जन्म हो चुका था और पंडितजी ने उसे देखा नहीं था। इंदिराजी राजीव-सहित अपने पापा से मिलने जहां गाड़ी रुकी वहां पहुंच गईं। स्टेशन न होने के कारण वहां न तो बिजली की रोशनी थी और न कोई लैम्प आदि ही था। पंडितजी ने एक टिमटिमाते चिराग की धुंधली रोशनी में दूर से अपने प्रिय नाती को देखा और आशीर्वाद दिया। ●

मैंने नेहरू की आत्मकथा पढ़ी है, और उनकी जीवन प्रगति को सहानुभूति और प्रशंसा की निगाह से देखा है। चिन्तकों में बिरले ही अपने आदर्शों को, अपने जीवन-काल में, क्रियात्मक रूप देने का अवसर पाते हैं।

—अपटन सिंक्लेयर

गंगाशरण सिंह

जीवन के कलाकार

जवाहरलालजी को सबसे पहले देखने का मौका मुझे असहयोग–आंदोलन के प्रारंभिक दिनों में पटना की एक आम सभा में मिला। पटना में वह शायद उनकी पहली जनसभा थी। उनका नाम लोगों तक पहुंच चुका था। उनके पिता मोतीलालजी के वैभव की चर्चा लोगों की जबान पर थी। उस वातावरण में पले जवाहरलालजी के संबंध में भी लोगों को केवल उत्सुकता ही नहीं थी, बल्कि उनके प्रति एक आकर्षण भी था, विशेषकर नौजवानों में। जवाहरलाल उस समय हिन्दी भाषण ज़रा रुक-रुककर करते थे। हलकी-सी हकलाहट भी मालूम होती थी, लेकिन उस भोले चेहरे से कभी-कभी ज़रा रुक-रुककर आती हुई आवाज ने लोगों को मुग्ध कर दिया। सभा से लोग अभिभूत से लौटे। यह सिर्फ जबान का असर नहीं था, भाषण का प्रभाव नहीं था, हृदय की आवाज, आन्तरिक सच्चाई और त्याग का असर था, जिसने लोगों को मुग्ध कर दिया। उसके बाद कितनी बार देखने और मिलने का मौका मिला। उनकी कई तस्वीरें दिमाग में हैं, लेकिन भोलेपन की, सचाई की, त्याग की और बहादुरी की वह तस्वीर आज भी बिलकुल ताजा लगती है। उनके विचार और व्यक्तित्व की प्रौढ़ता के जमाने के उनके चित्र उस अपटु और भोले चित्र को धुंधला नहीं कर सके।

उनके व्यक्तित्व में विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण था। धनी परिवार में पैदा होकर और इंगलैंड के बड़े आदमियों के लड़कों के साथ पढ़-लिखकर भी वह समाजवादी बने। गांधीजी से प्रभावित होकर भी बाजाब्ता गांधीवादी नहीं बन सके। अधिनायक होने की पूरी पृष्ठभूमि होनेपर भी जनतंत्र और नागरिक अधिकारों के हिमायती बने। अपनी मान्यताओं और धारणाओं के विरोध के प्रति तीव्र झल्लाहट रहते हुए भी वह उन विरोध करनेवालों से तर्क कर सकते थे।

उनसे असहमत होनेवाला अगर उनकी प्रारंभिक झल्लाहट को बर्दाश्त कर सौम्य तरीके से, शांति-पूर्वक अपनी बात कह सकता तो यह निश्चय था कि जवाहरलालजी से असहमत होनेवाले की बात में अगर कोई तथ्य होता था तो वह उसकी स्वीकृति से इन्कार नहीं करते थे।

बड़े लोगों की तरह उनके लालन-पालन और उनकी शिक्षा-दीक्षा का असर उनपर दंभ के रूप में नहीं, बल्कि एक सुसंस्कृत रुचि के रूप में हुआ था। इसलिए रहन-सहन और सार्वजनिक संस्थाओं के कार्यों में भी वह एक प्रकार की सुरुचि के क़ायल थे। जहां एक ओर उनके व्यक्तित्व में दबदबा था, वहां एक अद्भुत आकर्षण भी था। आतंक और आकर्षण का ऐसा सम्मिश्रण साधारणतः नहीं देखा जाता। शिष्टा-चार और सरसता का वैसा समन्वय हो सकना आसान नहीं है।

जवाहरलालजी जीवन को प्यार करते थे। जीवन के इस प्यार के साथ उनके त्याग और उनकी दृष्टि की विशालता ने मिलकर उनके भीतर एक विचित्र मिश्रण का निर्माण किया था, जो बड़ा ही हृदयग्राही, आकर्षक और अपनेपन की भावना से ओतप्रोत था। जीना सबसे बड़ी कला है। हममें से बहुत कम जीना जानते हैं। जवाहरलालजी जीने की कला के माहिर थे। कैसे जीना चाहिए, यह हम उनसे सीख सकते हैं।

जवाहरलालजी में राजनीति और कला का ऐसा मिश्रण, ऐसा समन्वय था, जैसा हो सकना प्रायः दुर्लभ है। यही कारण है वह सिर्फ राजनीति नहीं, बल्कि साहित्य और कला के क्षेत्र पर भी छाये हुए लगते थे। आज उनके न रहने से सिर्फ राजनैतिक क्षेत्र में ही अभाव नहीं मालूम पड़ रहा है, बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी शून्यता का अनुभव होता है। ऐसा सर्वव्यापी व्यक्तित्व था उनका।

आज उनके न रहने पर उनकी अनेक तस्वीरें सामने आती हैं। उस पहली तस्वीर के अलावा सबसे आखिरी तस्वीर भी बार-बार दिमाग में आ रही है। पिछली अप्रैल की बात है। उनके स्वास्थ्य का ख्याल करते हुए देश के एक महान् व्यक्ति ने उन्हें सलाह दी थी कि उन्हें कभी-कभी बांसुरी बजानी चाहिए। पता नहीं, पंडितजी को यह सलाह कैसी लगी। मुझसे उन्होंने हँसते हुए इसका जिक्र किया। मैंने गंभीरता से इस सलाह का समर्थन किया। मैंने कहा कि बांसुरी तो प्रतीक या माध्यममात्र है। असल में उनका तात्पर्य यह है कि आप किसी ऐसे काम में लगें, जिससे आपका मनोरंजन भी हो और जिससे आपपर किसी प्रकार का जोर भी न पड़े। आपकी तबीयत भी लगे और दिमाग तथा शरीर को आराम भी मिले। बांसुरी के स्थान पर कोई दूसरा बाजा हो सकता है। आप स्वयं बजाने के बजाय सुनिये या गाना या कविता सुनिये, और कोई इस प्रकार का कार्य हो। पंडितजी मुस्कराते और बीच-बीच में टिप्पणी भी करते रहे। उस समय बात का सिलसिला दूसरी ओर मुड़ गया। आगे इस संबंध में बात नहीं चली। लेकिन मेरा ख्याल है कि पंडितजी पर उन महान व्यक्ति की सलाह का असर हुआ और उसपर अपने ढंग से उन्होंने अमल भी किया।

सन् १९६२ की जुलाई से रेडियो की हिन्दी में जो परिवर्तन हुआ, उसे लेकर देश में काफी असंतोष फैला। काफी विवाद चला। मुझे ऐसा लगा कि इस मामले में कुछ करना चाहिए। मैं पंडितजी से मिला। मैंने इस संबंध में जो विचार रखे, शुरू में पंडितजी को लगा कि मेरे विचार उनके विचारों से भिन्न हैं। काफी देर तक बहस चलती रही। बात-चीत का अंत होते-होते उन्होंने अनुभव किया कि मैंने जो कुछ निवेदन किया, उसमें भी तथ्य है और वह उनके विचारों से उतना भिन्न नहीं है, जितना उन्होंने समझा था। उस बातचीत के बाद ही पार्लमेंट के मेम्बरों की कमेटी बनी, जिसने सर्वसम्मति से उस समस्या को सुलझाया। आमतौर से प्रचलित और दैनिक काम में आनेवाले पांच-छः हजार शब्दों के एक कोश की बात भी हुई थी और उन्होंने फिर बतलाया था कि उन्होंने तत्कालीन शिक्षामंत्री से वैसा कोश तैयार करने को कहा था।

उनके विछोह के बाद आज अन्य बड़ी बातों के अलावा बार-बार यह प्रश्न सामने आता है कि इतने बड़े व्यक्तित्ववाला, इतना महान् होते हुए भी अपने से अत्यंत छोटे व्यक्तियों को भी समानता से बातें और तर्क करने का अवसर देनेवाला और कभी-कभी उन तर्कों से सहमत होकर अपनी राय बदलनेवाला वैसा व्यक्ति क्या फिर मिलेगा? ●

शिवधनी सिंह

उनका ज्योतिष में विश्वास

यह बात प्राय: सर्वसाधारण को विदित है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ज्योतिष, कर्मकांड एवं पूजा-पाठ में विश्वास नहीं करते थे और जबतब इसकी कटु आलोचना भी करते थे, जो केवल उनके बाह्य स्वरूप का दिग्दर्शन कराती थी, किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं पाया गया । उन्होंने स्वयं अपने दौहित्र श्री राजीव की कुंडली पंडित गोविंद मालवीय के द्वारा पंडित रामव्यास ज्योतिषी से तकाजा करके बनवाई थी–इस विश्वास के साथ कि ज्योतिषी ने उनके पिताजी के लिए जो फलादेश किया था, वह सही निकला था। पंडित गोविंद मालवीय ने बतलाया था कि पंडित नेहरू ने जब फलादेश को पढ़ा तो वह एक बात से अवाक् रह गये और कहा कि मैं तो इसका कायल हो गया, क्योंकि एक बात, जिसे हम केवल तीन ही आदमी जानते हैं, उसका भी उल्लेख इस कुंडली में किया गया है।

दूसरी घटना १९४१ की है। कमला नेहरू चिकित्सालय के शिलान्यास के लिए गांधीजी प्रयाग आये हुए थे। उन दिनों मालवीयजी भी प्रयाग में ही थे। गांधीजी का यह नियम-सा था कि मालवीयजी के साथ होनेपर प्राय: प्रतिदिन उनसे श्रीमद्भागवत की कथा सुना करते थे। एक दिन गांधीजी ने मालवीयजी से कहा, "भाई साहब, आप तो अगाध और भागवत स्वरूप हो, आपके साथ मैं भी कुछ समयतक गंगा में अवगाहन का पुण्य प्राप्त कर लेता हूं, उतना ही मेरे लिए पर्याप्त है। लोगों की रुचि इस ओर कम है। वे इस मर्म को नहीं समझते। शिलान्यास के लिए मैंने जवाहरलाल को कह दिया है कि धार्मिक कृत्य सम्पन्न हुए बिना चिकित्सालय का शिलान्यास कैसा? जबतक वह विधिपूर्ण न होगा, मैं शिलान्यास नहीं कर सकूंगा।"

कथा समाप्त होने के बाद महात्मा गांधी आनन्द-भवन चले गये । थोड़ी देर बाद पंडित नेहरू मालवीयजी के बंगले पर पहुंचे और पंडित रमाकान्त मालवीय को बुलाकर कहा, "रमाभाई, आप तो जानते हो कि अस्पताल का शिलान्यास कराना है, लेकिन बापू का कहना है कि वह बिना वैदिक कृत्य के शिलान्यास नहीं करेंगे। वाकई मुझसे गलती हो गई, मैंने तो इसपर गौर ही नहीं किया था । जो हो, काम तो करना ही है और मुझसे कुछ हो भी नहीं सकता है–तुम्हीं कर सकते हो–जैसे चाहो, पूरा करा दो।"

पंडित रमाकान्तजी ने उन्हें आश्वासन दिया कि घबड़ाओ नहीं, सब ठीक हो जायगा। उसी रात मुझे काशी भेजा गया और स्वर्गीय राष्ट्ररत्न बाबू शिवप्रसाद गुप्त को यह समाचार दिया गया। उन्होंने यज्ञ की सारी सामग्री-सहित अपने पुरोहित श्री बदरीनाथजी के साथ कुछ अन्य पंडितों को प्रयाग भेजा। पंडित बदरीनाथजी के आचार्यत्व में विधिवत् याज्ञिक कर्म सम्पन्न हुआ, जिससे नेहरूजी को प्रसन्नता हुई । •

उर्मिलकुमार

दून घाटी के वे चार दिन

एक असीम अंधकार। अजीब-सा भटकाव—जैसे किसीने आंखों पर पट्टी बांधकर हमें अनजानी अंधेरी राहों पर छोड़ दिया हो। एक कचोटती-सी रिक्तता रह गई है वातावरण में और महाशून्य-सी रिक्तता का यह अनंत फैलाव। कहीं कुछ भी तो शेष नहीं।

नेहरूजी नहीं रहे। छटपटाता हुआ मन इस कठोर सत्य को जैसे अनसुना कर देना चाहता है। किन्तु अनसुनी कर देने से ही तो कोई बात अनकही नहीं हो जाती। गवाह है हर हिन्दुस्तानी की (और विदेशी की भी) भीगी हुई आंख कि कुछ ऐसा हुआ है, जो नहीं होना चाहिए था। सारा देश अनाथ हो गया है।...और यह दून घाटी, जिसके कण-कण ने स्व. नेहरू का स्वागत उनकी मृत्यु से केवल चार दिन पूर्व किया था। आखिर कौन पोंछे इसके आंसू ?

२३ मई की सुबह। यहां के नर-नारी, जिन्होंने न जाने कितनी बार पहले भी इस 'महामानव' के दर्शनों से अपनी आंखें तृप्त की थीं, उस दिन भी कितने उत्साह के साथ उनके स्वागत को दौड़ आये थे। हाथों में ताजे गुलाब की कलियां लिये प्रत्येक का मन अपने देवता के चरणों में न्योछावर हो जाना चाह रहा था। और उन चार दिनों तक दून घाटी ने अपने आंचल में जैसे दुनिया-भर की खुशियां समेट ली थीं, अपने कीमखाबी दामन में जैसे चांद-सितारे बीन लिये थे। यहां का रोआं-रोआं मुस्करा रहा था, खुश था, क्योंकि उसके आंगन ने आज फिर से एक 'महान् आत्मा' के चरन पखारे थे।

चार दिन देहरादून के सुरम्य वातावरण में विश्राम करने के बाद सुना गया कि शायद वह यहां एक दिन और रुकें। किन्तु ऐसा संभव न हो सका। वह अपनी पूर्व-निश्चित अवधि के बाद शाम के लगभग पौने पांच बजे यहां से दिल्ली के लिए चल दिये।

२६ मई, १९६४ का दिन। युग-पुरुष नेहरू के जीवन का अंतिम सूर्यास्त ?...

आज जैसे इस नगर का कोना-कोना विलाप कर रहा है—काश! तुम एक दिन के लिए यहां और रुक जाते!...सिर्फ एक दिन के लिए!

२३ मई, १९६४ को नेहरूजी वायुसेना के हेलीकोप्टर से स्थानीय पोलो ग्राउंड में उतरे। सिर पर महानता और शांति की प्रतीक श्रद्धामय सफेद टोपी। अनुभवों की धूप में पके और सुनहरापन लिये हुए श्वेत केश। सफेद अचकन, उसके बटन-होल पर मुस्कराती गुलाब की कमसिन कली और चूड़ीदार-पायजामा।

गौरवण चेहरा, जिसपर एक हल्की-सी थकान थी। कुछ आंखों ने देखा कि आज नेहरू का देदीप्य-मान चेहरा 'सूर्य' तो है, किन्तु उसपर थकान की यह ललछोंही लहरी कैसे! लगता है, वंशीवटों के पीछे सुरमई शाम उतर आई हो।

अनेक हाथ हिले और थकान की उस छाया को परे फेंककर नेहरूजी मुस्कराये। जनता को देख जैसे जनार्दन ने ठौर पा लिया हो। जयघोप हुआ। फूल-मालाओं से स्वागत हुआ और वह 'विशाल आत्मा' सिमट-सिमटकर वच्चों में वच्चा वन गई, युवकों में युवक और वृद्धों में वृद्ध।

गुलाव की कलियां मुस्कराने लगीं। सारा देहरादून हर्पोन्मत्त हो उठा।

ठहरने के स्थान 'सरकिट हाउस' को पूर्ण रूप से वातानुकूलित कर लिया गया था। दो विशेप कमरे, जिनमें पंडितजी को रहना था, खूब सजे-सजाये थे। पोलो ग्राउंड से 'सरकिट हाउस' तक लोगों ने जहां-तहां खड़े होकर श्री नेहरू के चरणों में अपने श्रद्धा-सुमन फेंके। 'सरकिट हाउस' पहुंचकर वच्चों ने उन्हें फूल समर्पित किये। श्री नेहरू ने वच्चों को प्यार किया और करीव-करीव सभीसे थोड़ी-थोड़ी देर वातचीत की।

'चाचा' को 'ता...ता' कहते हुए तुतलाते-से वच्चे और उन्हींमें रमता हुआ वह 'विराट व्यक्तित्व'!

... ...

२४ मई की सुवह श्री नेहरू को जिसने भी देखा, उसकी वांछें खिल गई। प्रधान मंत्री जैसे एकदम जवान हो उठे। वह एकदम चुस्त थे, प्रसन्नचित्त। उनके खिले हुए मुख को देखकर लगा कि उन्हें बूढ़ा कहनेवाली जवान झूठी है। किसीको यौवन देखना हो तो देखे हाथ में गुलाव का फूल लिये 'सरकिट हाउस' के 'लॉन' पर खड़े इस नवयुवक को।

दिन में श्री नेहरू अपने कुछ संवंधियों से मिले, जिनमें श्री राजेंद्रनारायण तनखा प्रमुख थे। फिर वह सोये और कुछ समय दफ्तरी कामकाज को दिया।

शाम को पंडितजी के अंतरंग मित्र तथा वम्वई के भूतपूर्व राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशजी सरकिट हाउस आये। चाय पी।

दोनों मित्र विदा हुए तो पंडितजी ने श्रीप्रकाशजी को कसकर छाती से लगा लिया। ४७ वर्पो के साथी जीवन में प्रेम का इतना कसाव श्री श्रीप्रकाशजी ने पहले कभी अनुभव नहीं किया था।

... ...

२५ मई की सुवह। नेहरूजी वहुत खुश। काफी देरतक वह सरकिट हाउस के सुन्दर सुवासित लॉन पर टहलते रहे। बच्चों ने, कर्मचारियों ने, उन्हें फूल भेंट में दिये। वह मुस्कराकर कहते रहे, "धन्यवाद।"

नाश्ता लेने के बाद उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण फाइलों को अपना समय दिया।

शाम को श्री नेहरू देहरादून के प्रसिद्ध 'पिकनिक-स्पाट' सहस्र-धारा देखने गये। धारा में नहाते अनेक व्यक्तियों ने उनका अभिवादन किया। पंडितजी 'इन्सपेक्शनहाउस' की रेलिंगों के सहारे धारा के घन-गर्जन और उस मनोहारी दृश्य को काफी देरतक चुपचाप देखते रहे। उन्होंने आधे घंटे से अधिक समय वहां विताया।

... ...

२६ मई। कार्यक्रम था कि पंडितजी सुबह आठ बजे जायंगे, किन्तु उन्होंने सुबह से दोपहर तक आराम किया। शाम के करीब पौने पांच बजे वह वापस दिल्ली रवाना हुए।

'सरकिट हाउस' की मूक दीवारों ने, वहां के कमरों ने, 'लॉन' के फूलों ने उन्हें विदा दी। अगली बार आने का निमंत्रण दिया और प्रत्युत्तर में उन्होंने वहां की अतिथि-पंजिका में लिखा :

"मैं यहां अपनी बेटी के साथ शांति, एकांत और आराम के लिए आया था। सरकिट-हाउस का बाग पहले की तरह ही लुभावना है, और इसकी देखभाल अच्छी है। यहां रहना आनन्ददायक है। मैं उन सभीका कृतज्ञ हूं, जिन्होंने मेरी और इस सरकिट हाउस की देखभाल की।"

शाम के करीब पौने पांच का वक्त। मिलिटरी पोलो ग्राउंड में नर-नारियों के अगाध समुद्र द्वारा जय-जयकार के बीच अगली बार आने के निमंत्रण को बार-बार स्वीकारते-से पंडितजी अपने विमान में सवार होगये। क्षणभर को उन्होंने जनता के उस समुद्र की ओर निहारा और मुस्कराये।

'पंडित नेहरू जिन्दाबाद', गगनभेदी उद्घोष हुआ। विमान घरघराया, सरका, और धीरे-धीरे आकाश की ओर उड़ चला। अनेक हाथ, रूमाल तबतक हिलते रहे, जबतक विमान आंखों से ओझल न हो गया।...

पंडित नेहरू चले गये, फिर कभी न लौटने के लिए। ●

पंडित जवाहरलाल नेहरू की स्तुति में क्या मैं कुछ शब्द कह सकता हूं? हम उनकी विद्वत्ता, उनकी उच्च नीतिमत्ता और एक महान् उद्देश्य की आजीवन सेवा में उनकी सन्तों की-सी अचल निष्ठा के आगे नतशिर हैं।

—विल ड्यूरंट

लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'

कलाकार नेहरू

"हमारा युग कुछ और शांत होता तो जवाहरलाल नेहरू एक श्रेष्ठ सर्जक साहित्यकार के रूप में हमारे सामने आते, क्योंकि उनकी शैली विशिष्ट है और कल्पना सदा जीवित तथा वेगपूर्ण। राजनैतिक जीवन के माध्यम से उनकी प्रतिभा समर्पित न होती, तो जिन मूल्यवान ग्रंथों का निर्माण वह कर पाते, उनके वरदान से वंचित रह जाने का विषाद हमें न होता।" ये शब्द हैं प्रसिद्ध लेखिका पर्ल बक के, जो अंतर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त साहित्यकार हैं।

परिस्थिति ने जवाहरलाल को राजनैतिक पुरुष बनाया और वह तन-मन से राजनीतिज्ञ बने। जवाहरलाल की मूल प्रकृति आध्यात्मिक थी, जो साहित्य, संस्कृति, कला, विज्ञान को जन्म देती है, जो व्यक्ति को कवि और स्वप्नद्रष्टा बनाती है। जवाहरलाल अपनी इसी प्रकृति के कारण सौंदर्य के उन्मत्त प्रेमी थे। इस सौंदर्य को कितने ही खंडों में बांटा जा सकता है—प्रकृति-सौंदर्य, ललना-सौंदर्य, बाल-सौंदर्य, भाव-सौंदर्य आदि-आदि।

जवाहरलाल को पत्नी-वियोग हुआ। मार्मिक वेदना हुई। काल समय पाकर बड़े विषाद पर भी विजय प्राप्त करता है। यदि विषाद शाश्वत रहे, तो मनुष्य का जीवन कठिन हो जाय। आनंद ही शाश्वत होता है, जो अपनी प्रतिष्ठा के लिए आशा का निर्माण कर लेता है। कमला स्वर्गवासिनी बनीं, किन्तु स्त्री-जाति के प्रति जो ममत्व, जो आकर्षण, जो स्नेह-सम्मान की भावनाएं छोड़ गईं, वे जवाहरलाल के हृदय में मृत्यु-पर्यंत बनी रहीं। भारत के राजनैतिक क्षेत्र में स्त्रियों का यह उन्नयन जवाहरलाल के इसी संस्कार का द्योतक है। जवाहरलाल की एकमात्र संतान इंदिरा प्रियदर्शिनी केवल उनके लिए ही प्रियदर्शिनी नहीं रहीं, वह सारे राष्ट्र की प्रियदर्शिनी बनीं। उन्होंने पिता के तेज को अपने सौम्य रूप में प्रदर्शित किया। सूर्य की प्रचंडता चंद्र की शीतलता में परिणत हुई। जवाहरलाल पुत्रहीन थे। एक पुत्र उत्पन्न हुआ, किन्तु वह अकाल ही काल-कवलित होगया। जवाहरलाल के हृदय का वह पुत्र-प्रेम राष्ट्र के लाखों बच्चों के प्रति प्रेम के रूप में प्रस्फुटित हुआ और फिर 'चाचा नेहरू' तो बनना ही था, वह बने और खूब बने। अपने प्यार से, दुलार से, लाखों बच्चों को उन्होंने सराबोर कर दिया। जिनकी भृकुटि को देखकर बड़े-बड़े थर्रा जाते थे, उनके नाक-कान को छोटे बच्चे बड़ी निर्भीकता से पकड़ सकते थे। स्वभाव का यह नैसर्गिक माधुर्य कलात्मक व्यक्तित्व में ही उत्पन्न हो सकता है।

कला के प्रति उनके हार्दिक प्रेम के एक संस्मरण की चर्चा करना शायद अनुचित न होगा। नया

भारतीय संविधान प्रवर्त्तित हो गया था। राष्ट्र के सामने सार्वजनिक निर्वाचन का प्रश्न था। १९५२ के आरंभ में चुनाव होनेवाला था। अतः सन् १९५१ के उत्तरार्द्ध में कांग्रेस को सार्वजनिक चुनाव के लिए अपना घोषणा-पत्र तैयार करना था। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन अखिल भारतीय कांग्रेस के सभापति थे। मैं भी उनकी कार्य-समिति का एक सदस्य था। बंगलौर में कार्य-समिति की बैठक बुलाई गई थी। टंडनजी ने चुनाव-घोषणा-पत्र का प्रारूप तैयार कर समिति के सामने विचार-विमर्श के लिए प्रस्तुत किया। विचार यह हुआ कि कार्य-समिति के जिन सदस्यों को अपना सुझाव देना हो, वे आज ही अपना विचार लिखकर जवाहरलाल को दे दें और फिर अगले दिन आवश्यक संशोधन-परिवर्द्धन के साथ प्रारूप पर विचार किया जाय। मेरे मन में एक कल्पना जागी। हमारा साहित्य, संस्कृति, संगीत, कला, विज्ञान आज उपेक्षित-सा है, क्यों न चुनाव-घोषणा-पत्र में उनकी चर्चा कर बननेवाली सरकार पर कुछ दायित्व डाला जाय। मैंने इस विचार से प्रेरित होकर अपना सुझाव लिखकर जवाहरलाल को दिया।

दूसरे दिन जब प्रारूप परिवर्द्धित रूप में विचारार्थ उपस्थित किया गया, तब देखता हूं कि साहित्य, कला, संगीत, नाट्य, विज्ञान सब-कुछ थे और एक नया विषय था नृत्य, जिसका उल्लेख करना मैं भूल गया था। भूल गया था, यह कहना ही सत्य है, क्योंकि संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य—इन तीनों को समाहित करते हुए भी ऐसा मालूम पड़ता है कि नृत्य के पृथक् तथा स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करना ही चाहिए। जवाहरलाल कला-प्रेमी थे, सहृदय थे। वह इस प्रसंग में नृत्य को नहीं भूले।

चुनाव-घोषणा-पत्र का प्रारूप विचार-विमर्श के बाद स्वीकृत हुआ। फिर उसे प्रकाशित कर उसी आधार पर कांग्रेस चुनाव लड़ी और जीती। केंद्र तथा राज्यों में कांग्रेस की सरकारें बनीं। लगभग दो वर्ष के बाद किसी प्रसंग में जवाहरलाल से मिलने का फिर मुझे अवसर मिला। मैंने चुनाव-घोषणा-पत्र की उन्हें याद दिलाई और कहा कि अब सरकार को साहित्य, संगीत, कला आदि के प्रोत्साहन के लिए कुछ करना चाहिए। उन्होंने बड़ी प्रसन्न मुद्रा से कहा, "जीहां, मुझे ख्याल है। मैं जरूर कुछ करूंगा।" उसके कुछ दिनों के बाद ही साहित्य-अकादमी, ललित कला अकादमी, नृत्य-नाट्य-संगीत अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट आदि कई अखिल भारतीय संस्थान खोले गये। भारतीय विश्वविद्यालयों के युवकों तथा युवतियों को प्रोत्साहित करने के लिए स्वतंत्रता-दिवस के अवसर पर नई दिल्ली में नृत्य, नाटक, गान के मेले लगने लगे। देश के विभिन्न अंचलों के लोकनृत्य, जो नई सभ्यता में असभ्यता की संज्ञा पाकर उपेक्षित थे, नये जीवन से अनुप्राणित हो उठे। यह काम, इतना बड़ा काम, कौन कर सकता था? वही कर सकता है, जिसके हृदय में कला के प्रति आस्था हो। जवाहरलाल नेता और अभिनेता दोनों थे, दोनों में महान्। किसीकी टोपी, किसीकी पोशाक पहनकर फोटोग्राफर के सामने पोज देने में अपनी पद-प्रतिष्ठा के कारण कभी संकुचित नहीं हुए। अभिनेत्रियों, नर्तकियों के साथ मिलकर फोटो खिंचवाने में उन्हें तनिक भी झिझक नहीं हुई।

जवाहरलाल का धर्म मानव-धर्म है, जो वस्तुतः कलाकारों का धर्म है। उन्होंने अपनी भस्मी को सुरक्षित रखने का विरोध किया, किन्तु साध्वी कमला की भस्मी को इन २८ वर्षोंतक चुपचाप छिपाये रखा। इसमें कौन-सा संस्कार है? साध्वी कमला की भस्मी एक विरही प्रेमी की निधि है। जवाहरलाल को परिस्थिति ने लोकनायक बनाया, किन्तु प्रकृति ने उन्हें एक कलाकार ही बनाया था। ●

मानवता के पुजारी

नेहरूजी के जीवन और व्यक्तित्व में कौन-सी ऐसी विशिष्टताएं थीं, जिन्होंने उन्हें अपने जीवन में और मृत्युपरांत जनता का इतना असीम आदर और प्रेम प्राप्त कराया?

हमारे देश के इतिहास में, वल्कि शायद सारे संसार के इतिहास में, जवाहरलाल नेहरू का सबसे महत्वपूर्ण स्थान राजनैतिक विचारक के रूप में रहा है। नेहरूजी के स्वभाव, चरित्र और वौद्धिक योग्यता में भारत और यूरोप के प्रभाव की कई रंगीन धारियां थीं, जो उनके व्यक्तित्व को घरेलू कते-बुने वस्त्र की अपेक्षा कहीं अधिक संपन्न एवं सज्जित कामदार पर्दे का रूप देती रहीं, हालांकि उनके अनेक सीधे-सादे अनुयायी उनके व्यक्तित्व को घरेलू कते-बुने वस्त्र के ही समान मानते रहे। चूंकि इस पर्दे को कातने-बुनने-वाले जुलाहे स्वयं नेहरूजी थे, अतः दर्शक उनकी कला की सराहना-भर कर सकता था और उनके व्यक्तित्व में एशियां व यूरोप-रूपी भिन्न रंगीन धागों के समन्वय तथा रचना के आन्तरिक सूत्रों के बारे में केवल अटकलें लगा पाता था। इसलिए उन सभी घटनाओं तथा विचारों के बारे में, जिन्होंने नेहरूजी के व्यक्तित्व का निर्माण किया, वस्तुगत जानकारी होना वहुत ही कठिन है।

यह अवश्य है कि उन्होंने 'मेरी कहानी', 'हिंदुस्तान की कहानी', 'विश्व-इतिहास की झलक' आदि पुस्तकें तथा अनेक लेख लिखे हैं, जिनसे उनके जीवन तथा व्यक्तित्व की निर्माणकारी घटनाओं की जानकारी प्राप्त की जा सकती है, पर भारी वस्तुपरकता के बावजूद उनका निजत्व घटनाओं से इतना घुलमिल गया है कि कई तरह से इन ग्रंथों के लेखक का व्यक्तित्व उनके द्वारा वर्णित वर्षों के इतिहास से अलग नहीं किया जा सकता।

कई समकालीन यूरोपीय बुद्धिजीवी अपने विचार पुस्तकों में अभिव्यक्त करने के वाद इन विचारों के प्रति उदासीन मालूम होते हैं। उदाहरण के तौर पर बर्ट्रेण्ड रसैल को लीजिये। रसैल ने पचास से भी अधिक पुस्तकें लिखी हैं, जो सूक्ष्म एवं पूर्णतम विश्लेषण से परिपूर्ण हैं और विश्वविद्यालयों में पढ़ानेवाले कुछ ही विद्वान् दर्शनशास्त्री इन विचारों से अप्रभावित रह सके होंगे। लेकिन जहांतक ब्रिटेन और अमरीका की निरक्षर आम जनता का संबंध है, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्हें रसैल के नाम तक की जानकारी नहीं, कारण कि रसैल अपने जीवन में केवल एक-दो बार ही अपनी पुस्तकों में अभिव्यक्त विचारों पर चले हैं।

दूसरी ओर जवाहरलाल नेहरू भारतीय विचारकों की परम्परा का पालन करते हुए जीवन-भर अपने विचारों एवं सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देते रहे। यह परम्परा उनसे पहले महात्मा गांधी ने पुष्ट की थी।

उनका विश्वास था कि ब्रिटेन की साम्राज्यवादी शोषण-व्यवस्था मूलतः गलत है और भारत की

स्वाधीनता की मांग प्राकृतिक एवं न्यायपूर्ण है। उन्होंने अपनी इस धारणा को केवल लेखन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि विदेशी सत्ता को चुनौती दी और जेल गये। इस प्रकार प्राकृतिक न्याय और मानवीय अधिकारों के प्रति आस्था उनके लिए केवल पुस्तकीय सिद्धांत नहीं था, बल्कि गुरु व निर्देशक बापू की तरह यह सिद्धांत संघर्षात्मक कार्य से समन्वित किये जाने के लिए था। इसीसे वह अपने करोड़ों देशवासियों के लिए गांधीजी की तरह आदर्श एवं अहिंसात्मक संघर्ष के प्रतीक बन सके।

नेहरू का यह योगदान हमको बौद्धिक जगत का परीक्षण करने के लिए बाध्य करता है। इसके अलावा, उनके व्यक्तित्व में एक अद्वितीय विशिष्टता और भी थी और वह थी मानवतावाद। उनकी यही विशिष्टता कालांतर में संपत्ति-त्याग तथा कर्म-वचन-समन्वय से भी अधिक महत्वपूर्ण मानी जाने लगी।

मैं नहीं समझता कि उन्होंने अपने उक्त सिद्धांत को जानबूझकर स्पष्ट किया, अथवा अपने मानवतावाद को ईसाइयत या विदेशियों द्वारा प्रतिपादित अन्य किस्मों के मानवतावाद से पृथक् दिखलाने का प्रयत्न किया। इसका प्रमाण यह है कि औसत यूरोपीय विचारक तो यूरोपीय समाज के विघटन के विरुद्ध रक्षात्मक स्थिति में हैं, पर जवाहरलाल नेहरू को अधिक रचनात्मक प्रवृत्तियों को आगे लाना पड़ा।

एक बार उन्होंने लिखा था, "कई महीनों से मैं भारत के बारे में आश्चर्य कर रहा हूं और करोड़ों चेहरे मेरी आंखों के सामने से गुजर चुके हैं। मैंने अपने इस देश के हजारों पहलू समृद्ध विविधता में देखे हैं, किन्तु इस विविधता में मुझे एकता के ही दर्शन हुए हैं। मैंने यह जानने की कोशिश की कि उन लाखों-करोड़ों आंखों के अंदर, जो मुझे घूर रही हैं, क्या छिपा है, क्या-क्या इच्छा-आकांक्षाएं, क्या-क्या अवर्णित दुख और अप्रकट कष्ट विद्यमान हैं। किरणें मुझपर पड़ीं और मेरे नेत्रों को ज्योति प्रदान कर गईं, जिससे मुझे अपने देश के करोड़ों नागरिकों की समस्याओं की विशालता महसूस हुई।"

उक्त कथन को कुछ विदेशी लोग भावुकता मान सकते हैं, पर सभ्यता का प्रभाव, जो संसार-भर में साम्राज्यवाद की पराजय से संबद्ध है, उन लोगों की आस्था की कसौटी नहीं हो सकता, जिनपर एशिया के करोड़ों लोगों को एक नये युग में ले जाने का दायित्व है।

और हालांकि नेहरूजी में कभी भी चातुर्य या विवेक का अभाव नहीं रहा, पर उनमें आलोचकों की तरह नाटक करने या बनने की आदत नहीं रही। वह नेतृत्व एवं शौर्य के ढांचे में कहीं ज्यादा ढले हुए थे और मानवों के प्रति उनकी कोमल भावना यूरोपीय दार्शनिकों की अपेक्षा रूसियों की प्रभावकारी संवेदनशीलता का स्मरण कराती थी। एप्सटिन द्वारा निर्मित नेहरूजी के सिर की पाषाणकृति पर नजर डालने पर पता चलेगा कि उनकी आंखों में आशा की ऐसी तेज चमक थी कि उनके पिचके हुए गालों से प्रदर्शित निराशा हल्की पड़ जाती थी।

विचार और कर्म के धनी नेहरूजी को अंतिम दिनों में जिस संकट का सामना करना पड़ा, वह संभवतः उनके जीवन में सबसे भीषण था। वह अपनी आत्मा को निष्ठापूर्ण शांति-प्रेम, सदाचार के मूल्यों की रक्षार्थ अनवरत संघर्ष और अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव के प्रयत्नों से राहत देते रहे। आज सभी मनुष्यों के सामने यही संकट है, लेकिन उनमें निर्णय की क्षमता नहीं है। निर्णय-क्षमता कुछ ही महापुरुषों में होती है और वह जवाहरलाल में थी। ●

शम्भुनाथ सिंह

चक्रान्त शिला और एक गुलाब

अचानक समय की चक्रान्त शिला
तेजी से घूम गई
और उसके ऊपर खिला वह रक्ताभ गुलाब
टूटकर नीचे गिर पड़ा।
ऊपर तूफान गरज उठा
और नीचे
शिला की धुरी से तेज नीली लपटें निकल पड़ीं।
चौहत्तर पंखड़ियोंवाला वह चिर युवा गुलाब
जलकर राख हो गया।
और तब,
तूफान थम गया,
लपटें फिर शिला की धुरी में समा गईं,
आकाश फिर पहले जैसा साफ दिखने लगा।
मगर अब सूरज की किरणों ने
अपना ताप खो दिया था,
दिङ्नाग का मणि लुट गया था,
और वह अंधा बनकर
अंधेरे में रास्ता खोज रहा था,
तूफान गुफाओं में दुबककर सिसकने लगा—
"मुझसे अकेला लड़नेवाला वह गुलाब
कहां है?"
चक्रान्त शिला बोली—"हिश्श,
यह गुलाब अब जल चुका है;
शताब्दियों प्रतीक्षा करो,
पर शायद ही वैसा योद्धा गुलाब
फिर कभी खिलेगा।"
चक्रान्त शिला स्थिर थी,
गम्भीर मौन में स्थिर।
नीचे धरती की मिट्टी चीखी,
"मैंने उस गुलाब की वसीयत पढ़ी है;
मैं उसकी मां हूं
उसकी राख मुझे दो,
वह मेरी है,
मैं उससे गेहूं उगाऊंगी।"
नदियां बोलीं, "नहीं,
वसीयतदार हम हैं,
वह राख हमारी है, उसको हमें दो,
उसे छूकर हमारी बाढ़ें उतर जायंगी,
जल निथरेगा और हमारी धारा
अनन्त कालतक मिट्टी को उर्वरा बनाती रहेगी।"
महासागरों की ऊंची लहरें टकराती हुई
चिल्लाईं, "नहीं-नहीं,
वह राख हमारी है;
असली वसीयतदार हम हैं;
उसे मिट्टी को दो या नदियों को,
वह बहकर हमारे पास ही आयगी।"
अन्त में हवा बोली, "वह राख
न तुम्हारी है, न हमारी,
न इसकी है, न उसकी.
दरअसल वह हम सबकी है।
मैंने उस राख का टीका
सबके माथों पर लगा दिया है।"
पर चक्रान्त शिला,
इस तमाम शोर-गुल और चीख-पुकार के बीच
मौन थी
और अब भी मौन ही बनी हुई है।

●

गजाधर सोमानी

चहुमुखी प्रतिभा के स्वामी

अंग्रेजी राज में कहने को भारत कानून एवं व्यवस्था की एक श्रृंखला में पिरो दिया गया था, पर सचाई यह है कि उसको कुछ ऐसा विश्रृंखल बना दिया गया था कि भौगोलिक एवं राजनैतिक दृष्टि से वह लाल-पीले अलग-अलग दो रंगों में रंग गया था। पीला रंग देशी राज्यों के लगभग ६०० टुकड़ों में बंटा था और लाल रंग में भी पीले रंग के कारण एकरूपता नहीं रही थी। आर्थिक व वैधानिक दृष्टि से भी देश को काफी पिछड़ा रखा गया था। साम्प्रदायिक विद्वेष की आग तो इस बुरी तरह सुलगा दी गई थी कि उसीके कारण देश का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन हुआ। इस दीन, हीन एवं दयनीय स्थिति को दो प्रभावशाली व्यक्तियों—लौह-पुरुष सरदार पटेल और राष्ट्रनायक श्री नेहरू—ने जिस साहस, धैर्य और सूझ-बूझ से संभाला, उसका उल्लेख इतिहास में सदा ही स्वर्णाक्षरों में किया जाता रहेगा।

... ...

राष्ट्रनायक श्री नेहरू के अप्रतिम प्रभाव को मैंने लोकसभा के दस वर्ष तक सदस्य रहते हुए जिस रूप में और जितने निकट से देखा, उसकी अनेक अविस्मरणीय स्मृतियां मेरे हृदयपट पर अंकित हैं। आज जब मैं अपने दस वर्ष के उस जीवन का सिंहावलोकन करता हूं तो वे स्मृतियां मेरे लिए खेद और विस्मय, दोनों का कारण बन जाती हैं। मैं बड़े ही अचरज से देखा करता था कि जब भी कभी वह कोई वक्तव्य देने खड़े होते थे, तब लोकसभा के सदन में एकाएक सन्नाटा छा जाता था। सभी सदस्यों, समाचार-पत्रों के संवाददाताओं, दर्शकों, विशेषतः विदेशी दूतावासों के प्रतिनिधियों के कान सहसा खड़े हो जाते थे। उनका एक-एक शब्द बड़े ध्यान से सुना जाता था। हम सब जानते थे कि उनके शब्द कितना दूरगामी और कैसा व्यापक प्रभाव रखते थे। परस्पर-विरोधी माने गये पूर्व और पश्चिम के दोनों राष्ट्र उनके शब्दों को एक-सा महत्व देते थे। उस दिन तो सदन में भीड़ का कोई अन्त न रहता था, जिस दिन उनको किसी विशेष विषय या समस्या पर कोई वक्तव्य देना होता था। उनकी विदेश-नीति पर सभी अधिवेशनों में विशेष चर्चा या विवाद होता था। मैंने प्रायः देखा कि उन दिनों के लिए प्रवेश-पत्र कई दिन पहले ही समाप्त हो जाते थे। मुझे भी कई बार अपने साथियों के लिए प्रवेश-पत्रों का प्राप्त करना असंभव हो जाता था। अनेक विषम प्रसंगों पर उनका संतुलन देखकर मैं विस्मित रह जाता था। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि विश्व के आधुनिक इतिहास में निरन्तर १७ वर्षों तक अपने प्रजातंत्री देश के प्रधान मंत्री के पद को ऐसी लोकप्रियता और ऐसे प्रभावशाली रूप में अपने सुदृढ़ हाथों में संभालनेवाले श्री नेहरू पहले

व्यक्ति थे। तीन आम चुनावों में भी उनके तेज पर कोई आंच नहीं आई।

... ...

वैसे तो वह अनेक बार संसद में भी साधारण-सी बात पर उत्तेजित होते देखे गये, लेकिन मैंने बहुत समीप से देखा कि उनका हृदय बड़ा ही कोमल, मिलनसार एवं सौजन्यपूर्ण था। एक व्यक्तिगत अनुभव मैं यहां दे रहा हूं।

'फेडरेशन ऑव इंडियन चेम्बर ऑव कामर्स एण्ड इंडस्ट्रीज़' व्यापारियों की एक केन्द्रीय प्रमुख संस्था है। उसके वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन वह प्रतिवर्ष किया करते थे। उसमें आने के बाद वह उसी समय फेडरेशन के अध्यक्ष का भाषण सरसरी नजर से पढ़ लेते थे। उसीके आधार पर वह अपने भाषण में उसका उत्तर बड़े ही विचारपूर्ण ढंग से दिया करते थे। फेडरेशन की एक सहयोगिनी संस्था 'अखिल भारतीय औद्योगिक मालिक संघ' के नाम से है, जिसका कार्यक्षेत्र केवल मालिकों एवं मज़दूरों के संबंध तक ही सीमित है। यह संस्था करीब ३० वर्षो से मालिकों व मजदूरों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है और उसका सरकारी तथा मजदूरों की संस्थाओं से श्रम-संबंधी विषयों में बराबर सम्पर्क रहता है। इस संस्था का मैं करीब चार वर्ष तक अध्यक्ष रहा हूं। इसके वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन प्रतिवर्ष अन्य केन्द्रीय मंत्री ही किया करते हैं और प्रधान मंत्री को कभी कष्ट नहीं दिया जाता। करीब सात वर्ष पहले इस संस्था के २५ वर्ष समाप्त हुए थे और उस समय उसका 'रजत-जयंती' अधिवेशन' होने को था। कुछ सदस्यों की इच्छा हुई कि इस 'रजत-जयंती अधिवेशन' का उद्घाटन माननीय प्रधान मंत्री पंडित नेहरू से कराया जाय। लेकिन यह आशंका थी कि पंडितजी प्रतिवर्ष फेडरेशन का उद्घाटन करते हैं, इसलिए उसकी सहयोगिनी संस्था का उद्घाटन करना वह शायद ही मंजूर करें। आखिर निर्णय अध्यक्ष के नाते मुझ-पर छोड़ दिया गया। मैंने पंडितजी को एक पत्र लिखा, जिसमें संस्था का संक्षिप्त इतिहास लिखकर भेजा और 'रजत-जयंती अधिवेशन' का उद्घाटन करने की प्रार्थना की। चार-पांच दिन के बाद ही मैंने उनके निजी सचिव से उनसे मिलने के लिए समय मांगा और थोड़ी ही देर बाद उन्होंने तुरंत मिलने का समय नियुक्त कर दिया। पंडितजी की समय की पाबंदी तो मशहूर है। इसलिए जब पहुंचा तो उन्होंने तुरंत मुझे बुला लिया। थोड़ी देर तक अन्य विषयों पर चर्चा चलती रही और बाद में मैंने अपने पत्र में लिखे अनुरोध को दोहराया। उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के निमंत्रण स्वीकार कर लिया और अपने निजी सचिव को उसी समय बुलाकर डायरी देखकर तारीख एवं समय निश्चित कर दिया।

इस संस्था का जो वार्षिक अधिवेशन होता है उसमें अध्यक्ष का भाषण होने के बाद मुख्य अतिथि का उद्घाटन-भाषण होता है। बाद में दस-पंद्रह मिनट तक वार्षिक अधिवेशन की कुछ वैधानिक कार्रवाही, चुनाव आदि होता है। उसके बाद अध्यक्ष की ओर से एक चाय-पार्टी दी जाती है। इस प्रकार अधिवेशन में करीब एक घंटा और बाद में चाय-पार्टी में करीब एक घंटा और लग जाता है।

वार्षिक अधिवेशन के उद्घाटन-कार्य के लिए प्रतिवर्ष जो मंत्री आते हैं, वह, जब उनके पास समय का अभाव होता तो, उद्घाटन-भाषण देकर तुरंत ही चल देते हैं। समय होता है तो वह चाय के लिए भी रुक जाते हैं। पंडितजी की कार्य-व्यस्तता को देखते हुए हमने पहले से उनसे बाद के कार्यक्रम में सम्मिलित

होने के लिए अनुरोध नहीं किया था, लेकिन जब वह अधिवेशन में पधारे, हमने उस कार्यक्रम की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया। सौभाग्यवश उनके पास उस दिन कुछ समय था। वह अपना उद्घाटन-भाषण देने के बाद भी वहां हमारे बीच दस-पंद्रह मिनट बैठे रहे और वैधानिक कार्यवाही समाप्त होने के बाद भी हमारी चाय-पार्टी में करीब १५ मिनट तक उपस्थित रहे। उसके बाद उन्होंने मुस्कराते हुए ये शब्द कहे, "सोमानीजी, अब मुझे इजाजत है क्या? मैं अब जा सकता हूं?" मेरे पास शब्द नहीं थे, जिनसे उनके उस प्रेम-भरे व्यवहार के प्रति आभार प्रकट किया जा सकता। हम लोग बड़े आदर के साथ बाहर उनको उनकी गाड़ी तक पहुंचा आये। इस प्रकार उन्होंने अपने सौजन्य एवं मधुर स्वभाव का सुन्दर परिचय दिया, जिसका आज भी स्मरण होते ही उस महान् व्यक्ति के प्रति श्रद्धा से मस्तक नत हो जाता है।

... ...

दूसरी घटना शायद १९६० की है। जिस दिन उनके युवक दामाद श्री फीरोज गांधी का हृदय-गति बंद हो जाने से अचानक देहांत हो गया था, उसके चार-पांच दिन पहले की बात है। राजस्थान की ओर से चुने हुए हम चार-पांच संसद-सदस्यों ने उनकी सेवा में उपस्थित होकर राजस्थान की विकास-संबंधी योजनाओं की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करने के लिए उनसे मिलने की प्रार्थना की थी। उन्होंने जिस दिन १२ बजे संसद-भवन में हम लोगों को मिलने के लिए समय दिया था, उसके पहले दिन प्रातःकाल श्री फीरोज गांधी के असामयिक निधन की दुर्घटना हो गई थी। वर्तमान प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री उस समय उद्योग एवं व्यापार-मंत्री थे। उस मंत्रालय की एक कमेटी की बैठक उस दिन प्रातःकाल संसद-भवन में एक कमेटी-रूम में थी। श्री लालबहादुर शास्त्री ने बैठक में आते ही उस दुर्घटना का, जो करीब डेढ़ घंटे पहले हुई थी, जिक्र किया और सभा स्थगित कर दी गई। हम सब लोग प्रधान मंत्री के निवास-स्थान पर गये, जहां उस समय तक श्री फीरोज गांधी का शव पुष्पों से सज्जित करके लोगों के दर्शनार्थ रखा हुआ था। श्रीमती इंदिरा गांधी एवं अन्य लोग पास में शोक-मुद्रा में बैठे हुए थे। शाम को उनकी शव-यात्रा का जुलूस निकला एवं श्री फीरोज गांधी के पारसी होते हुए भी उनकी इच्छानुसार निगमबोध घाट पर दाह-क्रिया की गई। रात्रि में नौ-साढ़े नौ बजे दाह-क्रिया से सब लोग लौटे। हमें स्वाभाविक यह आशंका थी कि उनकी एकमात्र कन्या के युवक पति के अचानक स्वर्गवास हो जाने से पंडितजी शायद कुछ दिन तक केवल राज्य के विशेष आवश्यक कार्यों को छोड़कर दिनभर के अन्य कार्यक्रमों में भाग नहीं लेंगे। इस दृष्टि से दूसरे दिन प्रातःकाल जब मैंने श्री नेहरूजी की कोठी पर उनके निजी सचिव को टेलीफोन किया एवं दूसरा समय नियुक्त करने की प्रार्थना की तो उन्होंने तुरंत जवाब दिया कि पंडितजी अपने नित्यक्रम के अनुसार साढ़े नौ बजे विदेश-मंत्रालय के दफ्तर को रवाना हो गये हैं और हम लोगों को संसद-भवन में नियत समय १२ बजे मिलेंगे। हम लोग यथासमय वहां पहुंचे और हमें तुरंत अंदर बुला लिया गया। श्री गांधी के स्वर्गवास पर हम लोगों ने अपनी संवेदना प्रकट की। उन्होंने तुरंत धन्यवाद देकर अपने विषय पर चर्चा शुरू करने का आदेश दिया। वह कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी किस प्रकार साहस एवं धैर्य के साथ अपने कर्तव्य में लगे रहते थे, उसका यह ज्वलन्त उदाहरण है।

... ...

तीसरी घटना तब की है, जब दूसरे चुनावों के बाद १९५८ में मूंदड़ा-कांड के कारण श्री टी. टी. कृष्णमाचारी को अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ा था। १९५८ के कुछ ही दिन पहले श्री टी. टी. कृष्णमाचारी त्याग-पत्र देकर मद्रास चले गये थे। श्री मोरारजी देसाई को वित्त-मंत्री कुछ महीनों बाद नियुक्त किया गया था और उस समय तक वित्त-मंत्री का कार्यभार प्रधान मंत्री ने स्वयं अपने ऊपर ले लिया था। उसके फलस्वरूप बजट-भाषण संसद् के सम्मुख उन्होंने स्वयं दिया था। उसके बाद बजट-संबंधी जो बहस दोनों सदनों में हुई, उसका उत्तर भी उन्होंने स्वयं ही वित्त-मंत्री के रूप में दिया था। बजट स्वीकृत होने के कुछ दिनों बाद प्रायः प्रतिवर्ष मैं वित्त-मंत्री से मिला करता था और बजट-संबंधी विषयों की चर्चा किया करता था। श्री कृष्णमाचारी ने चुनाव के बाद १९५७ के मई महीने में जो बजट पेश किया था, उसमें इतने अधिक कर लगा दिये गए थे और इतने अधिक परिवर्तन कर दिये गए थे कि १९५८ में कोई विशेष परिवर्तनों की गुंजायश नहीं रही थी। इसलिए प्रधान मंत्री ने तब जो बजट पेश किया था, उसमें कोई विशेष हेर-फेर नहीं किया गया था। श्री कृष्णमाचारी ने सूती कपड़ों की मिलों पर इतना अधिक कर लगा दिया था कि उसके कारण सूती वस्त्र-उद्योग को बड़ा धक्का लगा था। कुछ मिलें तो उस नये भार से बंद ही हो गई थीं। आम तौर पर सूती वस्त्र-उद्योग को परेशानी का सामना करना पड़ रहा था। सूती वस्त्र-उद्योग की तरफ से सरकार को भी इस संबंध में आवेदन-पत्र भेजे गये और फलस्वरूप सूती वस्त्र-उद्योग को काफी रियायत प्रधान मंत्री ने अपने बजट में दी थी। मैं उनसे बजट-संबंधी विषयों की चर्चा करने की दृष्टि से मिलने में संकोच कर रहा था, क्योंकि बजट उनका अपना विषय नहीं था, परंतु परिस्थितिवश उसका भार उनपर आ पड़ा था। फिर भी मैंने मिलना तय कर लिया और समय मांगने पर उन्होंने तुरंत मुझे बुला लिया। मेरा ऐसा अनुमान था कि बजट वित्त-मंत्रालय के अफसरों ने बनाया है। उसमें जो परिवर्तन किये गए थे, उनकी पूर्ण जानकारी और उनका पूर्ण अध्ययन शायद प्रधान मंत्री अपनी कार्य-व्यवस्तता के कारण न कर सके होंगे। लेकिन जब मैंने सूती वस्त्र-उद्योग की कठिनाइयों का जिक्र किया तथा उनको जो रियायत बजट में दी गई थी, उसके लिए उनको धन्यवाद दिया, तब उन्होंने जो बातें बताई, उनसे मुझे प्रतीत हुआ कि उन्होंने इस विषय में काफी अध्ययन किया था और इसकी बारीकी भी जान ली थी कि रियायतें देनी क्यों आवश्यक थीं। मेरा मतलब यह है कि पंडित नेहरूजी-सरीखे अति व्यस्त व्यक्ति के लिए एक ऐसे आर्थिक विषय का अध्ययन कर लेना, जिसका उनसे कोई खास संबंध कभी न रहा था, उनके गंभीर ज्ञान और व्यापक अनुभव का ही परिणाम था। वह सहज में ही किसी भी कठिन-से-कठिन विषय की अधिकारपूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेते थे। ●

मोहनलाल सक्सेना

उनके कुछ पत्र

इन पंक्तियों को लिखते समय मेरे मन में असंख्य विचार और स्मृतियां उमड़-घुमड़ रही हैं, जिन्हें छांटकर सही-सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने के लिए कुछ समय और श्रम की आवश्यकता है। कारण यह है कि ये स्मृतियां ४० वर्षों से भी ज्यादा लंबे अर्से से संबंधित हैं। इस दीर्घकाल में मैं नेहरूजी के साथ विभिन्न क्षेत्रों में बहुमुखी गतिविधियों से संबद्ध रहा हूं। यही नहीं, इस काल में मुझे नेहरूजी की द्रुतगति को भी निकट से देख पाने का सुयोग प्राप्त हुआ है। उनकी गतिविधियां ताल्लुकेदारों के विरुद्ध अवध के किसान-आंदोलनों से लेकर हर तरह के दमन और अत्याचार के विरुद्ध देशव्यापी अभियान तक फैलीं।

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारत का स्वाधीनता-आंदोलन समूचे अफ्रीका और एशिया में उपनिवेशवाद-विरोधी आंदोलन का अगुआ बन गया। नेहरूजी का दृष्टिकोण व्यापक होते-होते देश-व्यापी होगया और इसके साथ ही भारतीय जनता के प्रति उनका अद्वितीय प्रेम भी बढ़ता रहा, जो अंत में समूची मानव-जाति के प्रति प्रेम में परिणत हो गया। वह भारतीय जनता की आशाओं और आकांक्षाओं के मूर्तरूप होकर ही नहीं रह गये, बल्कि इससे भी बढ़कर विश्व की प्रगति और शान्ति के नायक बन गये। वह अपने व्यापक, सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण, मोहक आचरण और चुम्बकीय व्यक्तित्व के कारण सर्वत्र जनता के प्रेम-पात्र बने। दिल की गहराई से निकलनेवाली उनकी कोमल ध्वनि समूचे विश्व में सम्मान और ध्यान से ग्रहण की जाती थी। संक्षेप में १९२० से १९३० के बीच अल्पकाल में ही वह किसानों के कष्ट-निवारण में व्यस्त प्रान्तीय नेता के स्तर से उठकर महात्मा गांधी के बाद देश में स्वाधीनता-आंदोलन के सर्वोच्च नेता बन गये।

आजादी के बाद नेहरूजी सार्वभौम प्रभुता-संपन्न भारतीय गणराज्य के प्रधान मंत्री बने और जीवन के अंतिम क्षणों तक पूर्ण सम्मान और गौरव के साथ इस पद पर आसीन रहे। यही नहीं, लार्ड एटली के शब्दों में, "वह विश्व-राजनेताओं के बीच सर्वप्रमुख थे।" उनकी प्रगति निस्सन्देह चमत्कारी थी, जिसकी कल्पना कुछ ही लोग कर सकते हैं। हम लोग भलीभांति जानते हैं कि इस शीर्षस्थता के लिए उन्हें विशेष श्रम नहीं करना पड़ा। यह सम्मान उन्हें स्वाधीनता, लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और ईमानदारी के प्रति लगाव तथा व्यापक दृष्टिकोण, नैतिक कार्यविधि, लगन, अदम्य साहस, कठोर परिश्रम, सेवा और त्याग की भावना के कारण प्राप्त हुआ। इसमें शक नहीं कि इस अद्वितीय उपलब्धि की पृष्ठभूमि नेहरूजी के रचना-काल में पं. मोतीलाल नेहरू की विवेकपूर्ण एवं दूरदर्शी नीति और महात्मा गांधी के दीर्घकालीन घनिष्ठ संपर्क से तैयार हुई थी।

लेकिन इन अगणित घटनाओं के सुस्पष्ट स्मरण के अलावा, जिनसे उनके घटनापूर्ण जीवन तथा विविध गुणों की झांकी मिलती है, मैं उनके व्यक्तिगत पत्रों को भी नहीं भुला सकता। उनके बारे में जो कुछ भी याद है, उसमें इन पत्रों का महत्व सबसे ज्यादा है। कई प्रारंभिक पत्र पुलिस से बचाने के लिए आवासांतरण के दौरान खो चुके हैं। लेकिन जो भी बच रहे हैं, वे काफी संख्या में हैं। उनका अंतिम पत्र मुझे उनके निधन से एक दिन पूर्व ही मिला था, जो देहरादून से लिखा गया था। कई पत्र विदेशों से और कारा-जीवन के दौरान भी लिखे गये थे। उनके पत्रोत्तर त्वरित एवं संक्षिप्त होते हुए भी उनकी मनोदशा का पर्याप्त परिचय देते थे। मुझे उनसे जो उदार व्यवहार प्राप्त हुआ, उसके लिए मैं हमेशा उनका आभारी रहा था।

हमारे व्यक्तिगत संबंध १९२१ में कारा-जीवन के साहचर्य से लगातार बढ़ते रहे और प्रगाढ़ हो गये थे। उस समय हम लोग एक साथ ही गिरफ्तार होकर जेल गये थे और अवध उच्च न्यायालय के आदेश पर रिहा भी करीब-करीब एक साथ हुए थे। यह मेरे लिए गहन संतोष का विषय है कि मतभेद के बावजूद हमारे संबंध अंत तक स्नेहपूर्ण रहे। वस्तुतः वह स्पष्टोक्ति और निष्कपट मतभेदों को जीवन का अंग मानते थे।

जेल से मेरी रिहाई के बाद वैयक्तिक सत्याग्रह-आंदोलन के दौरान मुझे उनका देहरादून-जेल से लिखा हुआ छः पृष्ठों का लंबा पत्र मिला। पत्र दिनांक ८ अक्तूबर, १९४१ का था। उसका कुछ अंश इस प्रकार है:

"मैं वस्तुतः 'हैरल्ड' के बारे में चिंतित हूं। लेकिन राजनैतिक स्थिति की चिन्ता मुझे इससे भी अधिक है। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं निराश हूं। मैं निराशा से कोसों दूर हूं। मेरा ख्याल है कि छोटी-मोटी भूलों को छोड़कर हमारी सामान्य नीति पूरी तरह से ठोस और फलप्रद सिद्ध हुई है। इसलिए मुझे कोई चिंता नहीं है। जबतक गांधीजी देश का नेतृत्व करने से लिए मौजूद हैं, मुझे पूरा सन्तोष है। वह चट्टान की भांति सुदृढ़ हैं और यही मैं चाहता हूं।

"लेकिन हमारे प्रांत पर, जिसने आंदोलन में अगुवाई की है, एक विशेष दायित्व है। हमको यह कायम रखना है। हम लोग और खास तौर पर जो लोग राजनैतिक महत्व के हैं, वास्तविक संघर्ष से पलायन या विश्राम न करें। रिहा होते ही अगले दिन से मैं संघर्ष शुरू कर दूंगा और प्रांत का दौरा करके कार्यकर्ताओं को जागृत करूंगा। यह बहुत जरूरी है।... मेरे ख्याल से यह हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। मेरी कामना है कि आप इस कार्य में तुरंत जुट जायं। मेरा सुझाव है कि आप गांधीजी से मिलकर बातचीत करें और प्रांत का दौरा शुरू कर दें।"

१० सितम्बर, १९४९ के पत्र में उन्होंने लिखा:

"व्यक्तिगत रूप से मुझे इसकी कोई चिंता नहीं है कि मेरे साथ क्या होता है, लेकिन मुझ अपने ध्येय और सिद्धांतों की चिंता अवश्य है। मैं कई बार गलतियां करता रहा हूं, लेकिन मेरे ख्याल से मैंने गांधीजी द्वारा सिखाये गए मुख्य आदर्शों को नहीं भुलाया है। जब मैं भारत, संविधान-सभा, कांग्रेस और युवकों की हालत पर दृष्टिपात करता हूं तो मुझे दुःख होता है और ऐसा लगता है कि हम धीरे-धीरे इन

आदर्शों से दूर होते जा रहे हैं। मेरे सामने गांधीजी का चित्र उभरकर आता है, उनका उदार एवं प्रताड़नापूर्ण चेहरा दिखाई देता है। उनके शब्द मेरे कानों में गूंजते हैं। जब कभी गांधीजी के लेख पढ़ता हूं, जिनमें जीवित दृढ़ता के कुछ निश्चित सिद्धांतों पर चलते रहने की सीख है, तो मुझे ऐसा लगता है कि हम सिद्धांतों से फिसलते जा रहे हैं। क्या हमारे जीवन-भर के श्रम का यही अंत होगा?"

निश्चय ही यह प्रश्न नेहरूजी के मस्तिष्क में तीव्रता से उभरा रहा होगा।

जोहो, अपने महान् देश के भविष्य में मेरी आस्था यथावत् दृढ़ है और मुझे कोई संदेह नहीं कि उनके जीवन-भर का श्रम तथा करोड़ों भारतवासियों का असीम कष्ट-भोग व्यर्थ नहीं जायगा।

यह जानी-मानी बात है कि नेहरूजी को न केवल देशवासियों का प्यार और साथियों का विश्वास प्राप्त था, बल्कि विरोधियों की श्रद्धा व सराहना भी प्राप्त थी। मुझे राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम के दौरान नेहरूजी द्वारा कहे गए शब्द हमेशा याद रहते हैं, "भारत जीवित है तो किसीका बाल बांका नहीं हो सकता और यदि भारत की मृत्यु हो जाती है तो कोई भी जीवित नहीं रह सकता।" ●

पंडित जवाहरलाल नेहरू हमारे देश के एक उज्ज्वल रत्न हैं। उनके त्याग, शौर्य, देशप्रेम और सहृदयता ने उन्हें करोड़ों भारतीयों के गले का हार बना दिया है। उनकी राज-नीतिज्ञता और आदर्शवादिता ने संसार के महान् व्यक्तियों की श्रेणी में उनका एक अपूर्व स्थान बना दिया है। उनके नेतृत्व में भारत का मस्तक ऊंचा हुआ है।

—रविशंकर शुक्ल

एच० के० भाभा

नेहरू और विज्ञान

स्वाधीनता के वाद लगातार १७ वर्षों तक भारत के प्रधान मंत्री की हैसियत से जवाहरलाल नेहरू ने आधुनिक विज्ञान के चरित्र को नये सांचे में ढाला। जिस भारत के निर्माण के लिए उन्होंने इतना कठोर परिश्रम किया, विज्ञान उसका आवश्यक, बल्कि यों कहिये कि बुनियादी अंग था। उन्होंने कहा, "अब यह सुनिश्चित है कि विज्ञान और प्रविधि के बिना हम प्रगति नहीं कर सकते।" विज्ञान और जीवन के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रति उनमें इतना उत्साह था कि वह अपने विचार दूसरों को बतलाने का कोई अवसर नहीं चूके । उनके शब्दों में, "आप जानते हैं कि जब भी कभी कोई अवसर उपस्थित होता है, मैं विज्ञान और इसकी धारा—प्रविधि के महत्व के वारे में कुछ-न-कुछ अवश्य कहता हूं। मेरे विचार से हमें यह बात महसूस कर लेनी चाहिए कि आधुनिक जीवन विज्ञान तथा प्रविधि की संतान है।"

मानव-जाति को नग्न जीवन की युगों पुरानी अवस्था से उठाकर ऐसे सामाजिक स्तर पर पहुंचाना जो सुरक्षा, भौतिक समृद्धि, पूर्णता के अवसर एवं उच्चतर जीवन प्रदान कर सके, जवाहरलाल नेहरू के लिए इस युग का सर्वोच्चि कार्य था। उन्हें मालूम था कि यह उद्देश्य केवल विज्ञान और उसके उपयोग से ही प्राप्त किया जा सकता है और उनका दृढ़ विश्वास था कि भारत अपनी जीवन-पद्धति आधुनिक विज्ञान पर आधारित करके ही पुनः बड़ा राष्ट्र बन सकता है।

उनके लिए आयोजना और पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य "जनता को समृद्ध बनाने और रहन-सहन का स्तर उठाने के सुस्पष्ट लक्ष्यों के अलावा भारतीय जनता को २०वीं शताब्दी के बीच लाना और भारत को संसार के मुख्य देशों की पंक्ति में शामिल करना था।" प्रकट है कि उद्योग आज आधुनिक प्रविधि पर, जो स्वयं ही विज्ञान के प्रयोग पर आश्रित है, निर्भर करता है। शायद कम ही लोग जानते हैं कि आधुनिक कृषि भी, उदाहरण के तौर पर, जिसने अमरीका में इतनी उत्पादकता अर्जित की है कि वहां १० प्रतिशत से भी कम लोग समूची आबादी के लिए उत्पादन कर लेते हैं, आधुनिक विज्ञान और प्रविधि पर उतनी ही आश्रित है, क्योंकि वह फसल बोने और काटने की लिए मशीनरी पर, वैज्ञानिक प्रजनन द्वारा बेहतर दबावों के उत्पादन पर और उर्वरक के बहुल प्रयोग पर, जो स्वयं रासायनिक उपयोग की देन है, निर्भर करती है। उन्होंने कहा, "आखिर कई दूसरे देशों में कृषि का इतना विकास कैसे हुआ ? इसका कारण विज्ञान और प्रविधि का उपयोग है। जब आधुनिक जीवन विज्ञान और प्रविधि पर इतना अवलम्बित है तो हमको उन्हें ग्रहण करके और समझकर उनका उपयोग करना ही चाहिए।"

हालांकि हमारे स्वर्गीय प्रधान मंत्री ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति देश को यथाशीघ्र औद्योगिक बनाने में और नये-नये कारखाने स्थापित करने में लगाई, लेकिन उन्हें इस बात पर भारी खुशी नहीं थी कि यह काम विदेशी सलाहकारों के द्वारा विदेशी सहायता से और विदेशी प्रविधि से किया जाय। उन्होंने महसूस किया और यह ठीक भी था कि जिस तरह विदेशों से खरीदी हुई कारों या विमानों के प्रयोग से देश विकसित नहीं माना जाता, ठीक उसी तरह विदेशी सहायता से निर्मित रासायनिक प्लांट या इस्पात के कारखाने चलाकर देश विकसित और औद्योगिक नहीं बन सकता। भारत सही अर्थों में विकसित और औद्योगिक राष्ट्र तभी बन सकता है, जब वह विदेशी सहायता के बिना अपने कारखाने खुद तैयार करने योग्य हो जाय और इस काम के लिए देश में विज्ञान एवं प्रविधि के अधिकाधिक विकास की अपेक्षा है। उन्होंने कहा, "हमको केवल प्रयोगार्थ यंत्र ही नहीं बनाने हैं, बल्कि हमें ऐसे मनुष्यों की आवश्यकता है, जो खुद यंत्र बनाकर उनमें सुधार कर सकें। सृजनात्मकता अपेक्षित है।"

स्वाधीनता के बाद सरकार का सबसे पहला कार्यक्रम वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद के अधीन, जिसके सचिव मेरे निकटवर्ती साथी स्व. शांतिस्वरूप भटनागर थे, राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की श्रृंखला स्थापित करना था। जवाहरलाल नेहरू स्वयं इस संस्था के अध्यक्ष बने। इसकी प्रबंधकारिणी समिति में नेहरूजी की इच्छानुसार मंत्रिमंण्डल के कई महत्वपूर्ण सदस्य, प्रमुख उद्योगपति और वैज्ञानिक शामिल किये गए। उनका यह विचार था कि एक ओर तो इससे परिषद् के वैज्ञानिक कार्य के प्रति महत्वपूर्ण लोगों में अधिक व्यक्तिगत रुचि उत्पन्न होगी और दूसरी ओर देश को यह बता चलेगा कि नई सरकार वैज्ञानिक विकास को कितना महत्व देती है। बाद में जब १९५४ में अणु-शक्ति का पृथक विभाग बना तो नेहरूजी ने इसे अपने ही नियंत्रण में रखा और अपने अंतिम क्षणों तक वह अणु-शक्ति-विभाग तथा परिषद् के काम-काज में गहरी व्यक्तिगत रुचि लेते रहे।

मैं यहां अपनी कुछ व्यक्तिगत स्मृतियां प्रस्तुत करना चाहूंगा। सन् १९५४ में जब अणु-शक्ति-विभाग स्थापित हुआ और मुझे इस विभाग में सचिव बनने के लिए कहा गया तो मैंने साफ कह दिया कि मैं वैज्ञानिक कार्य से अपनी प्रत्यक्ष लिप्तता भंग नहीं करना चाहता और इस विभाग को बम्बई में रखना हितकर रहेगा, क्योंकि बम्बई हमारी वैज्ञानिक गतिविधियों के मुख्य केन्द्र के निकट है। प्रधानमंत्री ने यह विचित्र सुझाव तुरंत स्वीकार कर लिया, हालांकि पहले-पहल कुछ ऐसा लगा कि उन्हें इससे व्यक्तिगत असुविधा होगी।

आज तो यह मान लिया गया है कि अणु-शक्ति भारत के कई भागों में आर्थिक दृष्टि से लाभकारी है और इसे देश में शक्ति-उत्पादन के भविष्य का ज्यादा-से-ज्यादा भार वहन करना होगा, लेकिन १९५० के आसपास जब अणु-शक्ति अपने शैशव-काल में थी और इसकी आर्थिक उपयोगिता अज्ञात थी, तब एक पिछड़े देश में आणविक अनुसंधान और विकास का कार्यक्रम शुरू करने की बात किसी दूरदर्शी महान् पुरुष के मस्तिष्क में ही आ सकती थी।

हम सभी जानते हैं कि विवादों के शांतिपूर्ण समाधान और विश्व-शांति में नेहरूजी की पूरी आस्था थी। गांधीजी ने १९४२ में ही उनके बारे में भविष्यवाणी कर दी थी, "मुझे यह मालूम है कि जब मैं नहीं रहूंगा तो वह (नेहरूजी) मेरी भाषा बोलेगा।" इस उद्धरण की संगति यह है कि नेहरूजी विध्वंस के लिए नहीं, मानव-कल्याण के लिए विज्ञान के प्रयोग के हिमायती थे और उन्हींके निर्देशन के कारण भारतीय अणु-शक्ति का कार्यक्रम आजतक प्रतिरक्षा से सम्बद्ध नहीं हो सका, हालांकि यह नितांत सम्भव था।

वैज्ञानिक न होते हुए भी जवाहरलाल के व्यक्तित्व में एक सच्चे वैज्ञानिक के सभी बुनियादी लक्षण थे। "सत्य के प्रति उनकी अतृप्त जिज्ञासा, उनका खोजी मस्तिष्क, जो किसी भी मानव-निर्मित सीमा को स्वीकार नहीं करता, उनकी स्वाभाविक विनम्रता, सीखने-सिखाने की अनवरत कामना।" यह उद्धरण मंत्रिमण्डल की वैज्ञानिक सलाहकार समिति द्वारा नेहरूजी के निधन पर पारित प्रस्ताव का है। नेहरूजी विज्ञान को एक महान् बौद्धिक अनुशासन मानते थे, जो मनुष्य के व्यक्तित्व को विस्तार देता है, और उसकी दृष्टि को निष्पक्ष व धीर बनाता है। विज्ञान क्या है? इस प्रश्न का उत्तर नेहरूजी ने इस प्रकार दिया, "यह सत्य—भौतिक विश्व के सत्य और परीक्षण-प्रक्रिया द्वारा ज्ञात खोज का नाम है। जो परीक्षण और प्रयोग से सिद्ध न हो या अप्रामाणिक हो या प्रस्तुत तथ्यों के प्रतिकूल हो, उसे सत्य मानना विज्ञान का सिद्धांत नहीं है। वह यथार्थ संसार का ही बोध नहीं कराता, बल्कि अन्ततः एक निष्पक्ष वैज्ञानिक स्वभाव उत्पन्न करता है, जो अन्य समस्याओं को हल करने में सहायक होता है। यदि हमारी मनोवृत्ति वैज्ञानिक हो तो सभी तरह की समस्याएं ज्यादा अच्छी तरह हल हो जायंगी।" उनका स्वभाव वैज्ञानिक था और ऐसा ही स्वभाव वे सभी भारतीयों का बनाना चाहते थे।

भारी कार्य-भार के बावजूद वह नई राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं के उद्घाटन या निरीक्षण के लिए निस्संकोच तुरंत तैयार हो जाते थे, क्योंकि वह विज्ञान को बहुत महत्व देते थे और उन्हें युवा वैज्ञानिकों से मिलने तथा वैज्ञानिक कार्य को विकसित होते देखने से भारी संतोष मिलता था। इस प्रकार गत जनवरी १९६१ को ट्राम्बे-स्थित अणु-शक्ति-संस्थान में यूरेनियम व ईधन-तत्व-निर्माण-प्लांटों और सी. वाई. आर. व जरलीना अणु-भट्टियों का उद्घाटन करते हुए उन्होंने कहा, "चूंकि हम आज जीवित हैं, इसलिए जो काम हम करने जा रहे हैं, वह आज के लिए तो अवश्य है, पर वह काम अधिकतर भविष्य के लिए है, जो स्वतः अनावृत्त हो जायगा। अतः जब मैं यहां आता हूं और इस भव्य गुम्बद को (सी. वाई. आर. के गुम्बद को) देखता हूं तो मुझे रोचक अनुभव होता है, मैं रोमांचित हो उठता हूं। लेकिन इससे भी अधिक दिलचस्पी और रोमांच की अनुभूति मुझे अपने हजारों जवान वैज्ञानिकों को यहां काम करते हुए देखकर होती है। जब मैं इनके चमकते हुए चेहरों को देखता हूं तो इनकी शक्ति, इनके उत्साह और इनकी सत्यान्वेषी दृष्टि की छाप मुझपर पड़ती है, क्योंकि विज्ञान आज सत्य के सभी पक्षों और अर्थों के अन्वेषण का पर्याय बन गया है। मैं अपने देश के तरुण-तरुणियों के चेहरों को टटोलता हूं, क्योंकि वे मेरे भारत के भविष्य हैं। ये ही लोग अणुभट्टियां तथा अनेक अन्य वस्तुएं बनाकर भारत का नक्शा और चिन्तन बदलेंगे। जब मैं यहां तरुण वैज्ञानिकों को काम करते देखता हूं, जैसाकि मैं कई बार देखता आया हूं, तो मुझे संतोष होता है, क्योंकि उनकी निगाहों में भारत का भविष्य है, भावी भारत का चित्र है—उस भारत का, जो भावनात्मक निष्ठा का देश होगा, जो विज्ञान में सत्यान्वेषण का देश होगा, जो सड़े-गले अतीत से मुक्त होगा और इसीलिए भविष्य के इस दर्शन से मुझे खुशी हुई है।"

अंत में मैं जवाहरलाल के शब्दों को ही उद्धृत करना चाहूंगा, "विज्ञान इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही लगातार द्रुत गति से विकसित होता आ रहा है, जिससे पिछड़े और विकसित देशों के बीच खाई ज्यादा-से-ज्यादा बढ़ती जा रही है। वैज्ञानिक विकास के लिए अत्यधिक द्रुत प्रयत्न एवं कठोर परिश्रम करके ही हम इस खाई को पाट सकते हैं। विद्वत्ता, मौलिक चिंतन और महान् संस्कृति की परम्पराओंवाले महान् देश भारत का यह प्रधान कर्तव्य है कि वह विज्ञान की प्रगति में, जो आज मानव-जाति का महानतम उद्यम है, पूरी तरह से भाग ले।" ●

प्रशोक महाजन

भारतीय समाजवाद के जनक

नेहरूजी के निधन से योजनाबद्ध विकास और समाजवादी आंदोलन को महान् क्षति पहुंची है। समाजवाद मानव-समाज के चिंतन की एक स्वाभाविक शैली है, जो न्याय के संघर्ष से विकसित होती है। समाजवाद में सब बराबर होते हैं—न कोई ऊंचा, न कोई नीचा। अतएव, समाजवाद इन्सानी आजादी और तरक्की की उपलब्धि है।

नेहरूजी भारतीय समाजवाद के जनक थे। रूस की सन् १९१७ ई० की समाजवादी क्रांति की सफलता के बाद नेहरूजी का झुकाव समानता और समाजवाद की ओर बढ़ता गया एवं इसके साथ ही उनके दिल में पूंजीवाद और पराधीनता के प्रति नफरत की भावना घर करती गई। समाजवाद के तत्वज्ञान ने उनके दिमाग को कई रूपों में आलोकित किया। समाजवादी सिद्धांतों की रोशनी में उन्होंने भारत को देखा और घोषणा की—"मैं समाजवादी हूं, मैं राजाओं और सम्राटों में यकीन करनेवाला नहीं हूं, न ही उस व्यवस्था में, जो आज ऐसे औद्योगिक प्रभुत्वों को पैदा करती है, जिनका आदमियों के जीवन और भाग्य पर पुराने बादशाहों से भी ज्यादा दखल होता है और जिनके तरीके पुरानी सामंती धनिकशाही से भी ज्यादा लुटेरे और जानलेवा हैं। मुझे तो देश का समाजवाद में ही कल्याण दिखाई देता है।"

नेहरूजी ने समाजवादी विचारधारा को धर्म और सम्प्रदाय से असम्पृक्त रूप में स्वीकार किया। नेहरूजी मजहबी आदमी न थे, उन्हें दकियानूसी बातें अच्छी नहीं लगती थीं। सामाजिक हित और मानव-कल्याण को ही वह सर्वोपरि मानते थे।

नेहरूजी ने समाजवादी विचारधारा को भारतीय आदर्शों के अनुरूप अपने दिमाग व हाथों से रचा था। उनका समाजवादी दर्शन पूर्णतया मौलिक है। संसारव्यापी महान् संकट, समाज में पारस्परिक हितों की छीना-झपटी और आर्थिक समस्याओं के निवारण के लिए उन्होंने समान न्याय और समान सुविधायुक्त एक वर्गरहित समाज की स्थापना पर जोर दिया। श्री नेहरू ने ९ अक्तूबर, सन् १९६३ को एक पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन में समाजवादी आदर्शों की विवेचना करते हुए कहा कि समाजवाद के तीन उद्देश्य हैं—सबको समान अवसर देना, अधिकार-प्राप्त और अधिकार-विहीन लोगों के बीच के संघर्ष को निपटाना और शान्तिपूर्ण ढंग से समाज का परिवर्तन करना। नेहरूजी ने इन तीनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रजातन्त्र और समाजवाद को एक में मिला देना चाहा। उनकी दृष्टि में प्रजातन्त्र केवल चुनावों और राजनैतिक अवसरों के लिए ही नहीं है, वरन् उसका मानवता, न्याय और समानता से गहरा संबंध है।

स्वतंत्र भारत में नेहरू के नेतृत्व में प्रत्येक प्रकार के शोषण और वैषम्य के अन्त के लिए प्रयास किया गया,

महिलाओं को पुरुषों जैसे सामानाधिकार दिलाये गए, पिछड़े और अछूत लोगों को समुचित संरक्षण दिया गया, किसान के सिर से जमींदार का और मजदूर के सिर से पूंजीपति का निरंकुश दवाव हटाया गया, हिन्दू जनता की ही भांति मुसलमानों को मजहवी, तिजारती और कानूनी अधिकार दिलाये गए ।

आर्थिक क्षेत्र में नेहरूजी की जो सवसे बड़ी देन है, वह है मिश्रित अर्थ-व्यवस्था । नेहरूजी ही थे, जिन्होंने नियोजन को 'आर्थिक उन्नति के सोपान' का रूप दिया । उन्होंने पहली बार जव नियोजित विकास की राय दी और योजना आयोग की स्थापना की गई तो कई लोगों ने उनका विरोध किया, लेकिन धीरे-धीरे जव नेहरू के समाजवाद की रोशनी वढ़ती गई तो लोगों का विरोध शांत होता गया ।

योजना का अर्थ वताते हुए नेहरूजी ने एक वार कहा था—"उद्योग-धंधों और कृपि-कार्यो का संतुलित विकास ही नियोजन है। इसका मतलव है, विशाल और लघु उद्योगों में संतुलन, कुटीर उद्योगों व अन्य उद्योगों में संतुलन। यदि अपना श्रम कृपि की उपेक्षा कर हम उद्योगों पर केन्द्रित कर दें तो हमारा देश संकट में फंस जायगा। यूरोप के पूर्वी देशों में आज इस तरह के संकट के वादल छाये हुए हैं । अतएव हमें वड़े उद्योगों के साथ-साथ लघु व कुटीर उद्योगों पर भी ध्यान देना चाहिए।" इस प्रकार नेहरूजी आर्थिक क्षेत्र में समन्वयवादी थे ।

नेहरूजी की मिश्रित अर्थव्यवस्था की दाद विश्व के वड़े-वड़े अर्थशास्त्री देते हैं । कुछ समय पूर्व एक विदेशी अर्थशास्त्री ने यूरोप के लोगों में भापण देते हुए कहा था कि उन्हें नेहरू के भारत को देखना चाहिए और भारत की पंचवर्पीय योजनाओं का अनुकरण करना चाहिए।

उत्तर से दक्षिण तक, पूर्व से पश्चिम तक, सारा देश शनैः-शनैः जाग रहा है । भाखरा-नंगल, दामोदर घाटी योजना, चम्वल, कृष्णा, कावेरी और महानदी के वांध आदि स्थान-स्थान पर वन रहे हैं, जिनकी जलराशि और विद्युतशक्ति और अनुशासन की प्रजातान्त्रिक रीति-नीति से देश विशुद्ध समाजवाद की ओर वढ़ गया है, जो भारतीय संविधा के अन्तर्गत हमारा घोपित लक्ष्य है । ●

नेहरू ने किसी नई ऐतिहासिक गवेषणा का दावा नहीं किया है। उन्होंने इस सत्य को एक बार पुनः सिद्ध किया है कि गवेषणा द्वारा इतिहासकार केवल तथ्यों को प्राप्त कर सकता है, किन्तु इतिहास को प्रेरणा-स्रोत बनाने के लिए तथा दूसरों तक जाति की प्रगति का मूल संदेश पहुंचाने के लिए जो गुण आवश्यक हैं, वे उनमें प्रायः नहीं होते, जो किसी विशेष घटना या काल की ही सूक्ष्म छानबीन करते रहते हैं। केवल गवेषणा करनेवालों ने कभी भी बहुमूल्य ऐतिहासिक साहित्य की रचना नहीं की। यह काम सदैव ऐसे कर्मठ व्यक्तियों द्वारा हुआ है, जिन्होंने अपने देश के जीवन में कुछ सक्रिय भाग लिया है।

—के० एम० पणिक्कर

मन्मथनाथ गुप्त

नेहरू और भारतीय क्रान्तिकारी

गांधीजी का नाम तो उस समय पहले-पहल सुनने में आया था जब जलियांवाला हत्याकांड की बात सुनी थी। मोतीलाल और जवाहरलाल का नाम इसके बाद सुना, गांधीजी के चेलों के रूप में, पर ऐसे चेले, जो हमसे उतने ही दूर मालूम होते थे जितने गांधीजी। इसलिए जब १९२१ में असहयोग में स्कूल छोड़ा और बाद को कांग्रेस का स्वयंसेवक बना तो हमारी खुशी का ठिकाना नहीं रहा जब, हमें यह मालूम हुआ कि इलाहाबाद में कोई विराट राजनैतिक सम्मेलन होनेवाला है और उसमें काशी से स्वयंसेवकों की एक टुकड़ी जानेवाली है।

उन दिनों स्वयंसेवक बहुत कम थे और लगता हैं कि इलाहाबाद में काशी से भी कम थे, नहीं तो भला एक सम्मेलन के इंतजाम में हाथ बंटाने के लिए बाहर से स्वयंसेवक क्यों भेजे जाते ! जोहो, इस मौके पर काशी से स्वयंसेवकों की एक टोली इलाहाबाद गई और उसमें मैं भी था। बाकी कौन लोग थे, यह तो अब याद नहीं रहा, यद्यपि बाद को जब उसी साल इंगलैंड के युवराज के आगमन के बायकाट का प्रचार करत हुए मैं काशी में गिरफ्तार हुआ तो और कौन लोग गिरफ्तार हुए थे, यह मुझे याद है।

जब इस राजनैतिक सम्मेलन के उपलक्ष्य में हम लोग इलाहाबाद गये तो किसी-न-किसी रूप में काशी से भेजे हुए स्वयंसेवकों का संबंध आनंद-भवन से रहा। कम-से-कम दो बार वहां के लंगर में खाने का भी मौका उन्हें मिला। गांधीजी उन दिनों वहीं ठहरे हुए थे। और भी कई नेता थे, जिनमें मौलाना आजाद की याद आती है। जवाहरलाल दौड़-दौड़कर सब तरह के इंतजाम में हाथ बंटाते थे और उसी रूप में उन्हें पहले-पहल देखने का सौभाग्य मिला, पर उस समय मन पर सबसे अधिक छाप उनके पिता मोतीलाल की पड़ी। आते-जाते वह सर्वदा कई नेताओं के साथ बातचीत करते हुए दिखाई देते थे और उनकी भव्य मूर्ति हमारी आंखों के सामने चमकती रहती थी।

इसके बाद १९२१ के दिसम्बर में प्रिंस आव वेल्स के बायकाट का पर्चा बांटते हुए जो स्वयंसेवक गिरफ्तार हुए थे, उनमें एक मैं भी था। यह पर्चा जवाहरलाल नेहरू का लिखा हुआ था। पता नहीं, वह पर्चा अब कहीं मिल भी सकता है या नहीं। जवाहरलाल नेहरू की कितनी ही रचनाएं इस तरह कांग्रेस-संगठन के प्रस्तावों, संशोधनों, भेजे गये पत्रों में बिखरी हुई हैं। उनसे जवाहरलाल नेहरू का वह रूप सामने आ सकता है, जो असल में संगठनकर्ता का रूप है।

इसके बाद जवाहरलाल नेहरू को कितनी ही बार देखने, उनके भाषण सुनने, लेख और रचनाएं

पढ़ने का सौभाग्य हुआ। जवाहरलाल गांधीजी के आकाश की एक छोटी-सी ज्योति-किरण से किस प्रकार बढ़ते-बढ़ते उनके स्वीकृत उत्तराधिकारी हुए, यह तो इतिहास की वात है। क्रान्तिकारी आंदोलन में आ जाने के वाद हम लोगों का ध्यान विशेष रूप से जवाहरलाल और सुभाष बोस पर रहा। ये दो व्यक्ति संगठन की दृष्टि से नहीं, वल्कि विचारों की दृष्टि से क्रान्तिकारी दल के सबसे करीव थे। उन दिनों लाहौर में भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, यतीन्द्रनाथ दास आदि का मुकदमा चालू था। देश क्रांतिकारी बिजली से ओतप्रोत था, आकाश में 'इन्कलाव जिन्दाबाद' का नारा गूंज रहा था, जिसे भगतसिंह ने अपने क्रांतिकारी दल 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट एसोसिएशन' की ओर से देश को और भावी पीढ़ियों को दिया था। तभी जवाहरलाल ने लाहौर-कांग्रेस में यह घोषणा की कि मैं एक प्रजातंत्रवादी तथा समाजवादी हूं।

उस समय सारे भारत में एक प्रचंड क्रांतिकारी स्रोत बह गया था, क्योंकि यह सूचना थी कि देश उन आदर्शो को अपना रहा है और अपना चुका है, जिनके लिए भारतीय क्रांतिकारी दल अपना संग्राम चला रहा था। भगतसिंह ने जवाहरलाल की इस क्रांतिकारी घोषणा के वहुत पहले ही असेम्वली में वम डालते हुए यह घोषणा की थी कि क्रान्तिकारी दल का उद्देश्य समाजवाद का यानी परिश्रम करनेवाले वर्गो या मेहनतकश वर्ग का राज्य स्थापित करना है। पर इससे भी वहुत पहले, जव क्रान्तिकारी दल का नाम केवल 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' मात्र था, उस समय भी उसके लक्ष्य का स्पष्टीकरण करते हुए दल के संविधान के रचयिता, 'वन्दी जीवन' के लेखक अन्दमन से लौटे हुए शचीन्द्रनाथ सान्याल ने यह लिखा था कि दल का उद्देश्य ऐसे समाज तथा ऐसी अर्थ-व्यवस्था की स्थापना है, जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण असम्भव हो। स्मरण रहे कि जव क्रान्तिकारी दल के संविधान में यह वताया गया था, तव देश में समाजवादी दलों का कोई अस्तित्व नहीं था, यहांतक कि अभी तक भारत के साम्यवादी दल की स्थापना भी नहीं हुई थी। एम. एन. राय, डांगे और शौकत उस्मानी भी तबतक षड़यंत्र से दूर थे। पहला साम्यवादी षड़यंत्र १९२४ में कानपुर में चला यानी कई वर्ष बाद।

इसलिए जव जवाहरलाल ने कांग्रेस-अध्यक्ष की हैसियत से यह घोषणा की कि मैं एक प्रजातन्त्रवादी तथा समाजवादी हूं तो सबसे अधिक खुशी जेल में बैठे हुए तथा जेल के वाहर क्रांतिकारियों को हुई थी। मुझे स्मरण है कि यह भाषण चोरी से जेल में मंगाया गया था और उसपर बड़ा हर्ष मनाया गया था।

जवाहरलाल ने लाहौर-कांग्रेस में यह कहा था, "मुझे खुल्लमखुल्ला इस बात की घोषणा कर देनी चाहिए कि मैं एक प्रजातंत्रवादी और समाजवादी हूं। मुझे राजाओं और रजवाड़ों में विश्वास नहीं है और न उस समाज-व्यवस्था में विश्वास है, जिसमें उद्योग-धंधे के आधुनिक राजे उत्पन्न होते हैं, जो लोगों के जीवन तथा भाग्य पर पहले के राजाओं से कहीं अधिक शक्ति रखते हैं और जिनके तरीके उतने ही लूट-मार-मलक हैं, जितने कि प्राचीन सामंतवादी अभिजाततंत्र के थे।"

अवश्य ऐसा कहने के कारण कहीं कांग्रेस के नेता अधिक भड़क न जायं, इसलिए अपनी बातों को नरम करने के लिए उन्होंने कहा था, "यह सब कहते हुए मैं यह मानता हूं कि हमारी कांग्रेस जैसीकि इस समय वह है, इसके लिए संस्थागत रूप में शायद सम्पूर्ण समाजवादी कार्यक्रम ग्रहण करना संभव न हो।"

यह न समझा जाय कि ऐसा उन्होंने किसी आवेश में कहा था। लाहौर-कांग्रेस के वाद ही संग्राम

छिड़ गया और लक्ष्य पर वाद-विवाद या उसके स्पष्टीकरण का उतना अवसर नहीं मिला।

फिर भी जवाहरलाल के लिए समाजवाद महज एक नारा नहीं था। यह इससे प्रकट है कि लाहौर-कांग्रेस के सात साल बाद उन्होंने कहा था, "मेरे लिए समाजवाद केवल एक आर्थिक सिद्धान्त नहीं है, जिसे मैं पसंद करता हूं, बल्कि यह मेरे लिए एक जीवन से भरपूर लक्ष्य है, जिसका मैं हृदय तथा बुद्धि द्वारा पूर्णरूप से समर्थन करता हूं। मैं चाहूंगा कि कांग्रेस एक समाजवादी संस्था हो जाय और संसार की उन सारी शक्तियों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करे, जो एक नई सभ्यता को पैदा करने में लगे हुए हैं। पर इसके साथ ही मैं यह अनुभव करता हूं कि कांग्रेस संस्था के अधिकांश लोग इतने दूर तक जाने के लिए तैयार न होंगे।...हममें बहुतेरे कोई ऐसा कदम उठाते हुए इस कारण सकुचाते हैं कि कहीं ऐसा करने पर स्थिर स्वार्थवाले भय खाकर हमारा साथ न छोड़ दें। परन्तु सत्य यह है कि इन स्थिर स्वार्थवालों में से अधिकांश व्यूह बनाकर हमारे सामने खड़े हैं और हम लोग राजनैतिक संग्राम में इनसे विरोध के अलावा और किसी बात की आशा नहीं कर सकते हैं।"

जवाहरलाल का लाहौरवाला भाषण भारत तथा संसार के उन सब लोगों की विजय थी, जिन लोगों ने समाजवाद का आदर्श अपना लिया था। जवाहरलाल ने लाहौर या लखनऊ के भाषण में यह तो नहीं कहा था कि समाजवाद से उनका क्या अर्थ है, पर सारे क्रांतिकारी तत्वों ने १९२९ में यह मान लिया था कि जवाहरलाल, चूंकि ताजे-ताजे यूरोप से लौटे हैं और उन्होंने विश्व की एक अखिल विश्व साम्राज्य-विरोधी संस्था की कार्यवाही में भाग लिया है, इसलिए समाजवाद का अर्थ वही होगा, जो उस संस्था में लिया जाता था। जवाहरलाल ने बाद को भी समाजवाद की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं की, जिसे परिभाषा कहा जा सके, पर जनता के प्रति असीम श्रद्धा और प्रेम के कारण समाजवाद का उनके नजदीक क्या अर्थ था, यह समझ में आ सकता है।

इसके बाद जेल में ही हमें जवाहरलाल की आत्मकथा पढ़ने का सौभाग्य मिला और उससे हम प्रभावित हुए। मैं कई अपने क्रांतिकारी साथियों को जानता हूं, जिन्होंने इस पुस्तक को बार-बार पढ़ा, जैसे लोग गीता या रामायण पढ़ते हैं। अवश्य इसमें कुछ बातें थीं, जिनसे हमें बड़ी निराशा हुई और उस निराशा का फल यह हुआ कि मैं एक बार जाकर जवाहरलाल से मिला। पर वह बाद की बात है।

जब प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमंडल बने, उस समय उत्तर प्रदेश (तत्कालीन संयुक्त प्रांत) के सब क्रांतिकारी कैदी नैनी यानी इलाहाबाद केन्द्रीय जेल में बन्द थे। गोविन्दवल्लभ पंत की कांग्रेसी सरकार ने क्रांतिकारी कैदियों को छोड़ने का निश्चय किया, पर अंग्रेज गवर्नर इसके विरुद्ध था। अंत में उसने कांग्रेसी मंत्रिमंडल के प्रस्ताव को मानना स्वीकार किया और हम लोग २४ अगस्त १९३७ को बारह साल जेल में रहने के बाद नैनी से छूट गये। शाम को टंडन पार्क में मीटिंग हुई और छूटे हुए क्रांतिकारी कैदियों ने आनन्द-भवन में रात का खाना खाया। साथ ही, क्रांतिकारी मुक्तबंदियों को संबोधित करते हुए जवाहरलाल ने अपने घर में एक भाषण दिया था, वह सबसे, व्यक्तिगत रूप में मिले भी, पर उसका कोई ब्यौरा याद नहीं है। उन्होंने भाषण में जो कुछ कहा, उसका मतलब यह था कि अभी छूटे हुए क्रांतिकारी देखें, परिस्थितियों का अध्ययन करें, किसी प्रकार अपनी प्रतिबद्धता जाहिर न करें। परामर्श बहुत सरल हृदय से

दिया गया था, पर क्रांतिकारियों के सामने यह प्रश्न था कि हम क्रांति के प्रति अपनी प्रतिवद्धता से अलग कैसे हो सकते हैं। यदि क्रांतिकारी वारह साल जेल काटकर छूटने के वाद जनता को यह न वताते कि क्रांति के प्रति उनकी प्रतिबद्धता उसी प्रकार से कायम है, जैसीकि जेल जाने के पहले थी, क्योंकि भारत अभी स्वतंत्र नहीं हुआ था, तो क्या यह उचित होता? क्या चुप रहने का अर्थ जनता यह न लगाती कि कुछ व्यक्तियों को यानी रामप्रसाद बिस्मिल, रोशनसिंह, राजेन्द्र लाहिड़ी, अशफाकउल्ला, भगतसिंह आदि को फांसी पर चढ़वाकर, चन्द्रशेखर आजाद को गोलियों से शहीद करवाकर और वारह वर्ष जेल में रहकर ये लोग डर गये हैं और अब वे साधारण भद्र जीवन व्यतीत करना चाहते हैं? लोग यह कैसे जानते कि केवल जवाहरलाल के परामर्श के कारण महज मसलहतन क्रांतिकारी कुछ नहीं कर रहे हैं और वे डरे नहीं हैं।

कुछ क्रांतिकारियों को यह लगा कि जो क्रांतिकारी अव भी जेल में वचे हैं, उनको छुड़ाना वहुत वड़ा कर्तव्य है, पर सबसे वड़ा कर्तव्य शायद यह है कि ताल ठोंककर ब्रिटिश साम्राज्य से यह कह दिया जाय कि तुमने इन वारह वर्षों में वहुतों को फांसी दी, हमें वहुत तरह की यंत्रणाएं दीं, हमने वेड़ियां पहनीं, कोठरियों में वर्षों वन्द रहे, साफ नमक तक को तरस गये, हमारे साथ हर ज्यादती हुई, पर तुम हमें दवा नहीं सके, आज भी हम उसी तरीके से साम्राज्यवाद के कट्टर दुश्मन हैं, जसे तव थे और स्वतंत्रता-संग्राम को सफल वनाकर ही हम दम लेंगे।

छूटे हुए क्रांतिकारियों ने जवाहरलाल का परामर्श एक हद तक ही माना, दूसरे शब्दों में कहा जाय तो कुछ क्रांतिकारियों ने उनकी वात मानी, पर कुछ उग्रपन्थी मुक्त क्रांतिकारियों ने कानपुर में वालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के नेतृत्व में जो विराट् स्वागत-आयोजन किया था, उसकी सभा में लगभग दो लाख आदमियों के सामने डंके की चोट पर यह कहा कि हम अपने साथियों की फांसियों से या जेल में एक युग तक सड़ने के वावजूद डरे नहीं हैं। हम अव भी पराधीन हैं, इसलिए हम क्रांति करने का और क्रांतिकारी उपायों को ग्रहण करने का अधिकार सुरक्षित रखना चाहते हैं। ऐसा जिन उग्र क्रांतिकारियों ने कहा, उन लोगों ने यह जानते हुए भी जवाहरलाल ने वहुत सही सलाह दी है, अपने विवेक की ताड़ना पर ही ऐसा कहा। जवाहर-लाल ने अपने घर में बुलाकर वड़े प्रेम से छूटे हुए क्रांतिकारियों को जो सलाह दी थी, उसकी ईमानदारी में किसी क्रांतिकारी को शक नहीं था। पर प्रान्तीय कांग्रेसी सरकारों के नेता के रूप में जवाहरलाल के सामने केवल यह प्रश्न था कि कैसे जल्दी-से-जल्दी क्रांतिकारी कैदियों को जेल से छुड़ाया जाय और अंग्रेज गवर्नरों की ओर से कोई वाधा न खड़ी की जाय। पर छूटे हुए क्रांतिकारियों के लिए प्रश्न इस रूप में ही नहीं था। क्रांतिकारी कैदियों को छुड़ाना वहुत आवश्यक था, पर छुड़ाना भी इस रूप में कि उनका क्रांतिकारित्व अव्याहत और अक्षुण्ण रहे। जवाहरलाल क्रांतिकारी कैदी शब्द में 'कैदी' शब्द को ही देख रहे थे, पर छूटे हुए क्रांतिकारी उसके अलावा 'क्रांतिकारी' शब्द को भी देख रहे थे।

जव कानपुर की विराट् सभा में क्रांतिकारियों ने एक तरह फिर से युद्ध की घोषणा कर दी तो तुरंत ही एक वात हुई, जो वहुत ही दिलचस्प है। जवाहरलाल ने क्रांतिकारियों को घर में बुलाकर खिलापिलाकर प्रेम से सलाह दी थी। जब उन्होंने पढ़ा होगा कि कानपुर के स्वागत में क्रांतिकारियों में से कुछने यह सलाह नहीं मानी तो उन्होंने कोई सार्वजनिक वक्तव्य इसके विरोध में नहीं दिया, पर गांधीजी ने

फौरन ही यह वक्तव्य दिया कि क्रांतिकारियों का यह जो जन-पैमाने पर हर नगर में स्वागत हो रहा है, यह अशोभनीय है। गांधीजी के इस वक्तव्य का नतीजा यह हुआ कि कांग्रेस संस्थाओं की तरफ से जो स्वागत होनेवाले थे, उनको रातोंरात नागरिक समिति द्वारा स्वागत का रूप दिया गया। स्वागत करनेवाले व्यक्ति वे ही रहे, पर संस्था का नाम बदल गया। कानपुर के बाद लखनऊ में जो स्वागत हुआ, उसको यही रूप दिया गया। यद्यपि स्वागत-कार्यों में अगली कतार में चन्द्रभान गुप्त, मोहनलाल सक्सेना आदि नेता ही रहे।

जब बाद को चलकर जवाहरलाल की अध्यक्षता में कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाषचन्द्र बोस के निर्देश के साथ एक योजना-निर्माण-समिति बनी तो उस समय भी क्रांतिकारियों ने उसका हृदय से स्वागत किया। इस बीच मैं आनन्द-भवन में जवाहरलाल से चन्द्रशेखर आजाद-संबंधी आत्मकथावाले उनके वक्तव्य पर मिला। साधारण पाठक के लिए इसका कुछ ब्यौरा देना जरूरी है। यों मैं पहले ही बता चुका हूं कि जेल में बैठे हुए क्रांतिकारी जेल के बाहर के क्रांतिकारी नेहरू की आत्मकथा से बहुत प्रभावित हुए। पर इस आत्मकथा में कुछ ऐसे प्रसंग थे, जिससे सब क्रांतिकारी बहुत दुखी थे। 'आत्मकथा' में उन्होंने लिखा था:

"उन्हीं दिनों की एक कुतूहलवर्धक घटना मुझे याद है, जिसने हिन्दुस्तान के आतंकवादियों की मन-स्थिति का आन्तरिक परिचय मुझे कराया। मेरे जेल से छूटने के पहले ही, या पिताजी के मरने के पहले या बाद, यह घटना हुई। हमारे स्थान पर एक अजनबी मुझसे मिलने आया। मुझसे कहा गया कि वह चन्द्रशेखर आज़ाद है। मैंने उसे पहले कभी नहीं देखा था। हां, दस वर्ष पहले मैंने उसका नाम ज़रूर सुना था, जबकि १९२१ में असहयोग-आंदोलन के ज़माने में स्कूल से असहयोग करके वह जेल गया था। उस समय वह कोई पन्द्रह साल का रहा होगा और जेल के नियम-भंग करने के अपराध में जेल में उसे बेंत लगवाये गए थे। बाद को उत्तर भारत में वह आतंकवादियों का एक मुख्य आदमी बन गया। इसी तरह का कुछ-कुछ हाल मैंने सुन रखा था। मगर इन अफ़वाहों में मैंने कोई दिलचस्पी नहीं ली थी। इसलिए वह आया तो मुझे ताज्जुब हुआ। वह मुझसे इसलिए मिलने को तैयार हुआ था कि हमारे छूट जाने से आमतौर पर ये आशाएं बंधने लगीं कि सरकार और कांग्रेस में कुछ-न-कुछ समझौता होनेवाला है। वह मुझसे जानना चाहता था कि अगर कोई समझौता हो तो उनके दल के लोगों को भी कुछ शांति मिलेगी या नहीं? क्या उनके साथ अब भी विद्रोहियों का-सा बर्ताव किया जायगा? जगह-जगह उनका पीछा इसी तरह किया जायगा? उनके सिरों के लिए इनाम घोषित होते ही रहेंगे और फांसी का तख्ता हमेशा लट-कता रहा करेगा, या उनके लिए शांति के साथ काम-धंधे में लग जाने की भी कोई संभावना होगी? उसने कहा कि खुद मेरा तथा मेरे दूसरे साथियों का यह विश्वास हो चुका है कि आतंकवादी तरीके बिलकुल बेकार हैं और उनसे कोई लाभ नहीं है। हां, वह यह मानने के लिए तैयार नहीं था कि शांति-मय साधनों से ही हिन्दुस्तान को आजादी मिल जायगी। उसने कहा, 'आगे कभी सशस्त्र लड़ाई का मौका आ सकता है, मगर वह आतंकवाद न होगा।' हिन्दुस्तान की आजादी के लिए तो उसने आतंकवाद को खारिज ही कर दिया था। पर उसने फिर पूछा, 'अगर मुझे शांति के साथ जमकर बैठने का मौका न दिया जाय, रोज़-रोज़ मेरा पीछा किया जाय, तो मैं क्या करूं?' आगे उसने कहा, 'इधर हाल में जो

उसको देखें कि ठीक बंटती है, या नहीं—खाली कुछ जेबों म अटक तो नहीं जाती—तो यकीनन हम इस मंज़िल पर भी पहुंचेंगे। इस काम में ज़माना लगता है। यह कोई जादू नहीं है—माला जप के हासिल नहीं कर लेना है। परिश्रम से, पसीना बहाकर कभी-कभी खून बहाकर भी ये बातें हासिल होती हैं।"

(आज़ादी के सत्रह कदम—जवाहरलाल नेहरू, पृष्ठ ११०)

कहना न होगा कि क्रांतिकारियों ने इस कारण बराबर नेहरू को श्रेय दिया। अब प्रश्न उठता है कि यह समाजवाद कैसे आयगा? नेहरू का समाजवाद, चूंकि कांग्रेस की विचारधारा से विकसित होकर आया है, इसलिए उसमें शांतिपूर्वक उपाय का पुछल्ला जुड़ा हुआ है। यह माना जा सकता है कि यदि राष्ट्र पर समाजवादी संस्था और समाजवादी नेताओं का अधिकार हो जाय, तो राज्य द्वारा बड़े व्यापारों पर एकाधिकार, बैंकों का राष्ट्रीयकरण आदि उपायों से समाजवादी राष्ट्र की ओर प्रगति हो सकती है। पर क्या नेहरू के व्यक्तित्व के उठ जाने पर यह प्रक्रिया पहले की तरह ही तेजी से चलेगी? यह प्रश्न है, जिसका उत्तर इतिहास ही दे सकता है। पर इतिहास इसका एक उत्तर जर्मनी में दे चुका है, वह यह कि जब स्थिर स्वार्थ यह देखता है कि वह लोकतंत्र के मुखौटे को कायम रखकर अपनेको कायम नहीं रख सकता, तब वह दूसरे ही रूप में प्रकट होता है। यह जरूरी नहीं है कि भारत में भी ऐसा हो ही। शायद घटनाओं की ढलान ऐसी साबित हो कि ब्रेक मारकर पीछे ले जानेवाले लोगों की सारी चेष्टाएं व्यर्थ हों। आगे की बात इतिहास पर छोड़कर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कांग्रेस के अंदर समाजवाद के ध्येय को जययुक्त और सफलतामंडित करने का श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को है तो श्री नेहरू को है। यह स्वयं बहुत बड़ी उपलब्धि है।

क्रांतिकारी संस्मरण की ओर लौटते हुए क्रांतिकारियों को, जिनमें १९४२ के आंदोलन के फलस्वरूप हम उसमें जेल गये हुए कांग्रेसियों को भी गिनते हैं, उस समय बड़ी राहत मिली, जब नेहरू ने अहमदनगर किले से छूटने के बाद १९४२ की क्रांति के विषय में बयान दिया। उनका वह बयान गांधीजी से भिन्न किस्म का था, जैसाकि बहुत-से लोगों को अभी तक याद होगा। उन्होंने निश्चित रूप से इस आंदोलन के सारे कार्यों की वीरता की प्रशंसा की। इसीके बाद आजाद हिन्द फौज के बैरिस्टर और प्रवक्ता के रूप में नेहरू ने जो रुख लिया, वह भी क्रांतिकारियों के लिए बहुत ही सुखकर रहा। इसलिए जहांतक क्रांतिकारियों का संबंध है, खुले क्षेत्र के बड़े नेताओं में नेहरू का स्थान नेताजी सुभाष बोस के ही साथ होगा, बल्कि एक मामले में तो वह नेताजी से कहीं आगे निकल गये।

उन्होंने अपने वसीयतनामे में धर्म से अलग होने का जो रुख दिखलाया है और यह जो इच्छा प्रकट की है कि उनकी मृत्यु के बाद कोई धार्मिक अनुष्ठान न हो, इस प्रकार वह एक हल दे गये जो हिन्दू, मुस्लिम, भारत-पाकिस्तान के बीच की सारी समस्याओं की कुंजी है। धर्मनिरपेक्षता का जो असली बीज वह अपने वसीयतनामे में बो गये, वह कभी व्यर्थ नहीं जा सकता और सैंकड़ों पैबन्दों, बाधाओं के बाद भारत और पाकिस्तान को ही नहीं, सारे संसार को यह हल अपनाना पड़ेगा। तभी मनुष्य हिन्दू या मुसलमान या ईसाई न रहकर केवल इन्सान बन सकेगा। इस क्षेत्र में नेहरूजी ने जो संदेश दिया है, उसके कारण उन्हें अपने देश के भगतसिंह, आजाद जैसे लोगों और संसार के महान् क्रांतिकारियों के साथ गिनना पड़ेगा। ●

आनंद-भवन की विभूति

यद्यपि नेहरूजी का स्थायी निवास-स्थान बहुत दिनों से दिल्ली हो गया था, तथापि आनन्द-भवन में और उसकी कार्य-प्रणाली में वही उत्साह, वही चमक, वही सौंदर्य रहता था, जो दिल्ली में उनके साथ-साथ था। वर्ष में एक बार तो पंडितजी अवश्य ही प्रयाग का दौरा कर जाया करते थे, जिससे अपने पूर्वजों की स्मृति नई हो जाय, अपने घर का दर्शन कर लें, अपने सहयोगियों का हाल-चाल जान लें और अपने कर्मचारियों की देख-रेख की व्यवस्था कर दें। यह सब आनन्द-भवन में होता था। अपने जीवन के व्यस्त कार्यक्रम के बीच, आनन्द-भवन से बहुत दूर रहते हुए भी, अपने सहयोगियों और कर्मचारियों को वह कभी नहीं भूले। आनन्द-भवन की बरसाती में कार से उतरते-उतरते वह एक निगाह सबपर डालते, धीरे-धीरे एक-एक के पास जाते और हाल-चाल पूछते आगे बढ़ जाते। उन दिनों श्री पी. एन. सप्रू की तबीयत कुछ खराब थी। पंडितजी को शायद आशा नहीं थी कि वह आनन्द-भवन में मिलेंगे। परन्तु कार से उतरकर सीढ़ियां चढ़ते हुए उन्हें सप्रूजी दिखाई दिये। हँसते हुए बोले, "अरे राजा, तुम यहां!" सप्रूजी ने अचकचाते हुए पूछा, "क्यों?" पंडितजी ने मुस्कराते हुए कहा, "ठीक तो हो! तुमने क्यों तकलीफ की? मैं तो खुद ही तुमसे मिलता।"

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन उनके पुराने सहयोगियों में थे। जब भी पंडितजी इलाहाबाद आते थे, टंडनजी से बिना मिले नहीं जाते थे।

पंडितजी को अपने माता-पिता से प्राप्त वस्तुओं का और पुराने सेवकों का बराबर ध्यान रहता था। पूरे आनन्द-भवन का एक बार निरीक्षण अवश्य कर लेते थे। दीवार और छत की उखड़ी हुई पालिश उन्हें ज़रा भी अच्छी नहीं लगती थी। इसीसे सन् १९५४ में पूरे मकान की पालिश करवाई थी और घर की एक-एक चीज को बारीकी से देखा था। ऊपर सीढ़ियां चढ़ते हुए पंडितजी ने पूछा, "अब क्या देखना है?"

मैंने बताया, "लाइब्रेरी।"

पंडितजी बोले, "उसमें तो केवल किताबें हैं।"

मैंने कहा, "कुछ फोटो वगैरा भी हैं।"

कुछ गंभीर होकर पंडितजी बोले, "क्या नुमायश लगा रखी है?"

मैंने उत्तर दिया, "नुमायश आपके लिए तो नहीं, औरों के लिए है।"

वहां मैंने पंडितजी की चार महीने की उम्र से लेकर वर्तमान समय तक के फोटो क्रम से एक मेज

पर शीशे के नीचे लगा रक्खे थे। कमरे में पहुंचकर पंडितजी गौर से उन चित्रों को देखने लगे और देखते-देखते आत्म-विभोर हो गये। उस समय मुझे ऐसा लगा, मानों वह शायद अपने इस कथन को कि "मैं क्या हूं, मैं समझ नहीं पाता", उन चित्रों में समझने का प्रयत्न कर रहे हों।

सन् १९६१ में जब पं. मोतीलाल नेहरू की शताब्दी मनाई गई, स्वराज भवन के लम्बे हॉल में नुमायश लगी थी, जिसे देखने में पंडितजी को लगभग तीन घंटे लगे थे। एक-एक कागज और एक-एक फोटो का उन्होंने बारीकी से निरीक्षण किया था। अपने हैरो के प्रश्न-पत्रों को, उस समय के माता-पिता के लिखे पत्रों को और महात्मा गांधी तथा स्वयं की लिखी चिट्ठियों को देखकर बहुत खुश हुए थे। उनको पढ़-पढ़कर पुरानी स्मृतियों में खोते जाते थे। अपने पिताजी का सोने का पदक (पियर्सन मेडिल) देखकर तो हैरत में पड़ गये और चौंककर बोले, "मुन्शीजी, अबतक यह कहां था ?" मैंने उन्हें बताया कि यह श्री आर. के. दवे, एडवोकेट के पास था। शायद जिस समय तलाशी ली जा रही थी, चीजें हटाई जा रही थीं, उस समय इधर-उधर हो गया होगा। पत्रों और फोटो में बहुत-से प्रयाग-संग्रहालय को दिला गये।

पंडितजी अपने कर्मचारियों का, विशेषकर अपने पिता के समय के सेवकों का, बड़ा ख्याल रखते थे। वह कहीं भी रहते, देश में या विदेश में, महीने के पहले सप्ताह में ही सबकी तनख्वा व पेंशन भेज देते थे। इसके लिए उन्होंने 'कर्मचारी कल्याण कोष' (एम्प्लाईज वेलफेयर फण्ड) बना रखा था। पिछले पांच वर्षों से वह आनन्द-भवन के कर्मचारियों के सभी बच्चों को उचित शिक्षा दिला रहे थे। उसका पूरा खर्चा वह स्वयं वहन कर रहे थे। खर्चे में शिक्षा-शुल्क, वस्त्र, गर्म कपड़े तथा अन्य सामग्री आती थी। जब आनन्द-भवन आते थे, बच्चों से उनकी शिक्षा आदि के बारे में पूछते। बच्चे जो भी कहते, उसे बड़े ध्यान से सुनते। एक बार की बात है। बरामदे में सब बच्चे कतार में खड़े हुए थे। पंडितजी बैठक में संभ्रान्त व्यक्तियों से मिल रहे थे। बच्चों को देखकर वह बाहर निकल आये। उन्होंने बच्चों से पूछा, "पढ़ाई ठीक से कर रहे हो ?" बच्चों ने जवाब दिया, "जी।" उन्होंने फिर पूछा, "कुछ चाहिए तो नहीं ?" बच्चों में से एक बोला, "जी, बरसात में हमलोग भीग जाते हैं। हमारे बस्ते भीग जाते हैं।" पंडितजी थोड़ी देर खड़े रहे, फिर कुछ सोचते हुए अंदर चले गये। दिल्ली जाकर भी वह बच्चों की बात भूले नहीं, और शीघ्र ही तीन नाप की बरसाती और थैले प्रत्येक बच्चे के लिए भेजे। आनन्द-भवन में जो कोई मिलता और कुछ मांग करता, उसके लिए निर्देश दे जाते और दिल्ली पहुंचकर उचित प्रबंध कर देते। एक बार पंडितजी से किसी मुसलमान बिगुलर ने अपनी पुरानी वर्दी दिखाते हुए नई वर्दी की मांग की। पंडितजी ने उसे नई वर्दी देने का वादा किया, परन्तु दिल्ली जाकर उसका नाम भूल गये। अतः उस व्यक्ति की पहचान के लिए उन्होंने बताया कि वह आदमी जिस समय मुझसे बात कर रहा था, उस समय कोई मुसलमान मंत्री भी मौजूद थे। उन्होंने लिखवाया कि उसका पता लगाकर उसे वर्दी बनवा दी जाय। उसे वर्दी बनवा दी गई और उसकी कीमत का भुगतान पंडितजी ने किया।

पंडितजी अपने जन्म-दिवस पर और जब भी प्रयाग से दिल्ली वापस जाते थे, अपने सेवकों को इनाम भेजते थे, जो एक माह के वेतन के बराबर होता था। इस वर्ष मृत्यु से पहले दो बार इनाम भेजा और सेवकों को कपड़े बनवाये। समय-समय पर कोट, कम्बल देते थे और उनकी मरम्मत करवाने का भी

ध्यान रखते थे। जो वृद्ध थे और बीमार हो जाते थे, उनके लिए दूध और दवा का बराबर ख्याल रखते थे। वृद्ध और असमर्थ सेवकों को बराबर पेंशन दिया करते थे। दस वर्ष पहले की घटना है। पंडितजी कमला नेहरू अस्पताल जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने अपने पिता के समय की जमादारनी को, जो कि अपंग थी और खाट पर से उठने में असमर्थ थी, देखा और दौड़कर उसके गले से लिपटते हुए भरे गले से बोले, "ओ माई लछमिनिया, कैसी हो?" उसने कभी प्रधान मंत्री नेहरू को गोद खिलाया था।

पंडितजी की महानता का कहांतक वर्णन करूं! एक बार मैं बहुत बीमार हो गया। डाक्टरों ने मेरे जीवन की आशा छोड़ दी। मेरी बीमारी का हाल सुनकर पंडितजी दो-तीन बार मेरे घर मुझे देखने आये, पर मैं तेजबहादुर सप्रू अस्पताल में भरती था। पंडितजी मुझे देखना चाहते थे, परन्तु डाक्टरों ने मेरी हालत को देखते हुए उनका आना उचित नहीं समझा। पंडितजी ने सिविल सर्जन को आनन्द-भवन बुलाया और पूछताछ की। तब जाकर कहीं उनको संतोष हुआ।

पंडितजी अपना हिसाब स्वयं रखते थे, भले ही व्यक्तिगत हो या जनता द्वारा अनुदानित। कमला नेहरू-अस्पताल के अनुदान का हिसाब भी वह स्वयं लिखते व तैयार करते थे। वह परिस्थितियों को समझते थे और उचित कदम उठाते थे। उनकी गंभीरता से युक्त वाणी—"मैं तो करूंगा, पर तुम्हारी क्या मरजी है", सदैव कानों में गूंजती रहती है। यह उस समय की बात है, जब चावल के दाम बढ़ गये थे और नौकरों ने वेतन बढ़ाने के लिए एक प्रार्थना-पत्र दिया था। पंडितजी ने उसे पढ़कर मुझे बुलाया और मेरी राय जाननी चाही। मैंने कहा, "जैसी आपकी मरजी"। इसपर पंडितजी ने उपरोक्त वाक्य कहा। तब मैंने निवेदन किया कि कमला नेहरू अस्पताल में नौकरों का ५) रु. वेतन बढ़ाया गया है, अत: इन लोगों का भी बढ़ाया जाना चाहिए। उन्होंने १०) रु० महंगाई बढ़ा दी।

पंडितजी का हृदय विशाल था। उनके हृदय-मंदिर में भारत तथा रोम-रोम में भारतीय जनता निवास करती थी। वह जनता के होकर रहना चाहते थे, पर सरकार अपने प्रधान मंत्री की सुरक्षा के लिए चारों ओर घेराबन्दी रखती है, फिर ऐसे जनप्रिय नेहरू की, जिसमें लाखों-करोड़ों नर-नारियों के प्राण बसते थे, सुरक्षा के लिए सुरक्षा-अधिकारी की नियुक्ति क्यों न करती? पर उनकी सुरक्षा के लिए पुलिस का प्रबन्ध हो, इससे उन्हें बड़ी चिढ़ थी। कभी-कभी झुंझलाते भी थे। इसके अतिरिक्त जहां भी वह जाते थे, नेता और बड़े-बड़े लोग उन्हें घेरे रहते थे। लेकिन वह उन गरीब, असहाय और दुखी व्यक्तियों के पास पहुंचना चाहते थे, जिनको देखने, सुनने और पूछनेवाला कोई नहीं था। वास्तव में वह वहांतक पहुंचने में कभी समर्थ नहीं होते थे। अधिकारी और बड़े-बड़े लोग उन्हें वहांतक पहुंचने ही नहीं देते थे। कभी-कभी वह बिल्कुल एकान्त भी चाहते थे। एक बार की बात है। स्वराज भवन में सार्वजनिक सभा समाप्त करके वह अन्दर के ही फाटक से पैदल आनन्दभवन आ रहे थे। आगे-पीछे लोग उन्हें घेरे हुए थे। सुरक्षा अधिकारी करतारसिंह मेहता छाया की तरह पंडितजी के पीछे थे। इसी बीच पंडितजी अदृश्य हो गये। लोगों को पता ही नहीं चला कि वह कहां चले गये। पंडितजी ने क्या किया कि बैठक के कमरे के दूसरे दरवाजे से निकलकर स्वराज भवन के पीछे होते हुए तालाब के पास जा खड़े हुए और कुछ सोचने लगे। इधर आनन्द-भवन में खोज मच गई। चारों ओर लोग दौड़ पड़े। लोगों को अपनी ओर आते देख-

कर पंडितजी समझ गये कि मामला क्या है और मुस्कराते हुए आनन्द-भवन की ओर लौट पड़े।

इसी तरह एक बार पाइलेट-अफसरों को भी पंडितजी ने परेशान किया। आगे दो पाइलेट, पीछे पंडितजी की कार और उसके पीछे अन्य लोगों की कारें आनन्द-भवन से निकलीं। पंडितजी इलाहाबाद से दिल्ली वापस जा रहे थे। अतः कारें बम्हरौली की ओर सरपट भाग चलीं। कुछ दूर जाने पर पंडितजी ने अपनी कार दूसरे रास्ते पर मुड़वा दी। ड्राइवर को उनकी आज्ञा का पालन करना पड़ा। पाइलेट लोग आगे निकल चुके थे, परन्तु कुछ दूर जाने पर प्रधान मंत्री की कार न आते देखकर वे पीछे मुड़े और इधर-उधर ढूंढ़कर फिर कार के आगे-आगे चलने लगे। थोड़ी दूर जाने पर मौका देखकर पंडितजी ने फिर अपनी कार दूसरी ओर मुड़वा दी। पाइलेटों ने देखा तो फिर लौट पड़े और प्रधान मंत्री की कार को तलाश करके उसके आगे चलने लगे। इस बार पाइलेट लोग ज्यादा चैतन्य थे। काफी धीरे-धीरे चल रहे थे, पर पंडितजी ने थोड़ी दूर का फासला होते ही तीसरी बार फिर कार मोड़ने को कहा। प्रधान मंत्री की कार मुड़ी। पर आगे का वह रास्ता बल्लियां लगाकर बन्द कर दिया गया था। अतः इस बार पंडितजी को स्वयं ही अपनी कार पाइलेटों के पीछे मुड़वानी पड़ी। पंडितजी मुस्करा रहे थे और पाइलेट आफिसरों को आगे-पीछे मुड़ते देख रहे। जहाज छूटने का समय समीप आ गया था। इसलिए सीधे बम्हरौली पहुंचे। वह पहला अवसर था, जब पंडितजी हँसी-विनोद के कारण निश्चित समय से पांच मिनट देर में पहुंचे।

जीवन के व्यस्त कार्यक्रम के बीच भी पंडितजी अपने अतिथियों का विशेष ध्यान रखते थे, खासकर जब वह अपने घर आनन्द-भवन आते थे और उनके मेहमान उनके साथ होते थे। उस समय पंडितजी घर के गृहस्थ की तरह अतिथियों के रहने और खाने-पीने की व्यवस्था पर सतर्क दृष्टि रखते थे। उनके इलाहाबाद आने की सूचना एक माह पहले प्राप्त हो जाती थी। उनके साथ कितने लोग रहेंगे, किस समय क्या नाश्ता या भोजन आदि ग्रहण करेंगे, उसकी सूची साथ लगी रहती थी। दिसम्बर १९५८ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की ७५वीं वर्ष-गांठ मनाई जा रही थी। दीक्षान्त-समारोह प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में होना था। दिल्ली से श्री लालबहादुर शास्त्री, भारतीय वैज्ञानिक श्री होमे जे. भाभा, भारत के मुख्य न्यायाधीश श्री एस. आर. दास और उनकी धर्मपत्नी भी समारोह में सम्मिलित होने के लिए नेहरूजी के साथ ही आ रहे थे। श्री शास्त्री के अतिरिक्त अन्य सभी लोगों के रहने तथा खाने की व्यवस्था आनन्द-भवन में ही होनी थी। वैसे तो हमेशा ही पंडितजी के साथ कोई-न-कोई अतिथि आनन्द-भवन का आतिथ्य स्वीकार करता था और कैसी व्यवस्था पंडितजी पसन्द करते हैं, इसका अन्दाजा भी १७ वर्षों में मुझे काफी हो गया था, परन्तु इस बार कुछ विशेष अतिथि आ रहे थे, अतः उनके लिए निश्चित कमरों की सूचना मैंने पहले ही दिल्ली भेज दी थी। श्री एस. आर. दास और उनकी धर्मपत्नी के लिए ऊपर सीढ़ियों के बगलवाले कमरे में रहने का प्रबन्ध किया गया और श्री भाभा के लिए लाइब्रेरी के पीछे के कमरे में। २१ दिसम्बर, १९५८ को पंडितजी पूर्व-निश्चित कार्यक्रम के अनुसार इलाहाबाद पधारे। बम्हरौली से आनन्द-भवन तक जनता के आह्लाद-भरे जय-जयकार और अभिनन्दन के साथ आनन्द-भवन पहुंचे। आते ही पहला काम जो पंडितजी ने किया, वह था अतिथियों के रहने की जानकारी प्राप्त करना। मुझसे पूछा, "किस कमरे में किसके ठहरने का इन्तजाम किया है?" मैं निश्चिन्त था, क्योंकि

उसकी सूचना मैं पहले ही भेज चुका था। मैंने बताया, "श्रीमती हठीसिंग (कृष्णाजी) के कमरे में श्री एस. आर. दास के ठहरने की व्यवस्था की गई है।" इतना सुनते ही वह कुछ नाराजगी के स्वर में बोले, "छोटा कमरा इन लोगों के लिए क्यों? बच्चोंवाले बड़े कमरे में (जिसमें श्री भाभा के ठहरने की व्यवस्था थी) इनका प्रवन्ध होना चाहिए था।" मुझे कुछ भय लगने लगा, क्योंकि ऐसी परिस्थिति कभी आई नहीं थी, पर मैंने साहस कर उत्तर दिया, "चूंकि वे लोग वृद्ध हैं, उन्हें इतनी सीढ़ियां चढ़कर ज्यादा चलना न पड़े, यह सोचकर इस कमरे में इन लोगों के लिए प्रवन्ध कर दिया।"

इतना सुनते ही और कमरे की उचित व्यवस्था देखकर उनकी नाराजगी तुरंत समाप्त हो गई और खुश होते हुए बोले, "बहुत ठीक किया आपने।"

उनके आने पर देशी और विदेशी दोनों प्रकार के भोजनों की व्यवस्था होती थी। पंडितजी भारतीय भोजन अधिक पसन्द करते थे, परन्तु वह वही भोजन करते थे, जो उस समय मेज पर सब लोग करते थे। अपने सहयोगियों और कर्मचारियों का खाने के समय विशेष ध्यान रखते थे। जो उस समय उपस्थित नहीं रहता था, उसे बुलवाते थे और सबको पूछ-पूछकर खिलाते थे। मुझे इस बात का संतोष और गर्व है कि काफी अरसे तक मुझे उनकी सेवा करने का सुअवसर मिला और अंत तक उनका कृपापात्र बना रहा।

छोटी-छोटी बातों का भी पंडितजी कितना ध्यान रखते थे, उस आतिथ्य सत्कार के बीच। सन् १९४९ में कमला नेहरू अस्पताल के कैन्सर विंग का उद्घाटन तत्कालीन उप-राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के हाथों हुआ था और उपराष्ट्रपति आनन्द-भवन में ही पंडितजी के अतिथि थे। जिस कमरे में उपराष्ट्रपति के ठहरने की व्यवस्था की गई थी, पंडितजी ने स्वयं उप-राष्ट्रपति को उस कमरे तक पहुंचाया और समय-समय पर आवश्यकताओं की जांच-पड़ताल स्वयं करते थे।

पंडितजी न्याय-प्रिय थे। नियम की पावन्दी आवश्यक समझते थे। घरेलू समस्या हो या सरकारी, व्यक्ति अमीर हो या गरीव, प्रतिष्ठित हो या सामान्य, संबंधी हों या विरोधी, नियम उल्लंघन का दंड उनकी दृष्टि में अनिवार्य था। सन् १९५५ की एक छोटी-सी घटना महत्वपूर्ण न होते हुए भी महत्व रखती है। पंडितजी इलाहावाद आये हुए थे और सदैव की तरह कर्मचारियों को दस-दस रुपये इनाम देने के लिए कहा। इसी बीच आनन्द-भवन के एक बूढ़े माली ने एक प्रार्थना-पत्र पंडितजी को दिया कि दूसरे छोटे माली की औरत ने उसे मारा है। पंडितजी ने वाद में इस वारे में मुझे लिखा, "क्योंकि औरत ने वड़े माली को मारा है, इसलिए उसे दंड दिया जाना चाहिए। और बूढ़े माली ने उसकी औरत को कटु शब्द कहे हैं, जो कि उसे नहीं कहने चाहिए थे, इसलिए दंड-स्वरूप मैं छोटे माली के ५) पांच रुपये काट रहा हूं, क्योंकि उसकी औरत ने हाथ उठाया है और ये रुपये बूढ़े माली को दे रहा हूं।" आगे उन्होंने लिखा, "इस प्रकार की घटनाएं मैं विल्कुल पसन्द नहीं करता। भविष्य में नौकरों द्वारा इस प्रकार का व्यवहार करने पर कठोर दंड दिया जायगा। अवकाश सवके लिए वरावर व निश्चित होने चाहिए, कोई भी नौकर विना अवकाश के अनुपस्थित होगा, उसके लिए कार्रवाई की जायगी।"

पंडितजी नौकरों द्वारा शादी-व्याह के अवसर पर मांग किये जाने पर उनकी आवश्यकतानुसार इनाम या पेशगी तनख्वा देकर सहायता करते थे।

पंडितजी अपनी कर्त्तव्य-परायणता में कभी नहीं चूकते थे, चाहे उसका निशाना कोई भी हो। यह उन दिनों की घटना है जब पंडितजी इलाहाबाद नगरपालिका के अध्यक्ष थे, १९२३ से १९२५ के बीच। जल-कल के टैक्स सुपरिटेंडेंट डा. अबुल फज़ल ने लगभग दो दर्जन प्रतिष्ठित व्यक्तियों की एक सूची अध्यक्ष के सामने रखी, जिन्होंने नियत तिथि तक जल-कर नहीं जमा किया था। सूची सामने रखते हुए डा. अबुल फजल ने कहा, "आज की अंतिम तिथि तक इन लोगों का जल-कर नगरपालिका खजाने में जमा नहीं हुआ है। नियमानुसार सबका जल काट देना चाहिए। आपका क्या आदेश है?" पंडितजी ने उत्तर दिया, "यदि यह नियम है तो फिर प्रतिष्ठित और सामान्य नागरिकों के बीच फर्क करने का क्या सवाल? नियमों का अमल सबके लिए एक-सा होना चाहिए।" उन्होंने सूची पर एक सरसरी निगाह डाली और उसपर स्वीकृति हेतु हस्ताक्षर कर दिया। टैक्स सुपरिटेंडेंट ने सूची के अनुसार सभी व्यक्तियों के नल काटने का आदेश कर्मचारियों को दे दिया। दूसरे दिन सारे शहर में हलचल-सी मच गई, क्योंकि जिन व्यक्तियों का नल कटने से पानी बन्द हुआ, उनमें इलाहाबाद हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस, इंस्पेक्टर जनरल पुलिस, अन्य प्रतिष्ठित रईस और स्वयं अध्यक्ष नेहरू के पिता श्री मोतीलाल नेहरू भी थे। पंडित मोतीलालजी बहुत नाराज हुए कि नगरपालिका को ऐसा करने से पहले नोटिस तो देना चाहिए और कोई आकर टैक्स ले जाता, किन्तु पंडित जवाहरलाल नेहरू ने नम्रता से उत्तर दिया, "नागरिकों का अपना कर्त्तव्य है कि वे नियत तिथि के अन्दर टैक्स जमा कर दें। लाचार हूं। नियम सबके लिए समान है।"

पंडितजी साधारण व्यक्तियों की छोटी-छोटी समस्याएं उतने ही ध्यान से सुनते थे, जितनी देश की बड़ी-बड़ी समस्याएं। प्रयाग के लिए यह कम गौरव की बात नहीं कि वह पूरे दो वर्ष इस नगरपालिका के अध्यक्ष रहे।

मुझे याद आता है वह दिन, जब पंडितजी प्रधान मंत्री होने के बाद पहली बार इलाहाबाद आये थे। उन्होंने देखा, सुरक्षा के विचार से बहुत-से व्यक्तियों को अन्दर आने की आज्ञा नहीं है। केवल गिने-चुने व्यक्ति ही उनके पास हैं। पंडितजी आनन्द-भवन की बरसाती में पंद्रह मिनट तक गंभीर मुद्रा में मौन खड़े परिस्थिति पर विचार करते रहे। एक समय था जब वह स्वयं जनता थे, जनता के साथ थे और आज उनको जनता से अलग कर दिया था, इसका उन्हें दुःख था। फिर वह बैठक में गये, जहां शहर के संभ्रान्त व्यक्ति तथा संबंधी जन उपस्थित थे। उनपर विहंगम दृष्टि डालते हुए वह अन्दर के कमरे में चले गये।

इन्हीं गुणों ने पंडित नेहरू को गरीबों का पालनहार, जनता का हृदय-हार और भारत का कर्णधार बना दिया था। सादगी और सच्चाई उनका ध्येय था। वह स्वयं को प्रधान मंत्री नहीं, जनता का सेवक समझते थे। ●

पुरुषोत्तमा कपूर

तीन मूर्ति की ज्योति

स्व० पं. जवाहरलाल नेहरू न केवल महान् राजनीतिज्ञ और महान् नेता थे, बल्कि असंख्य मानवीय गुणों के आगार भी थे और इसी कारण छोटे-बड़े सभी उन्हें असीम प्रेम करते थे। उनके इन मानवीय गुणों की एक झांकी उनके निकट रहनेवाले कर्मचारियों और नौकर-चाकरों के प्रति उनके व्यवहार पर ध्यान देने से मिलती है।

अपनी कोठी के सभी नौकर-चाकरों, मालियों, दर्जियों, रसोइयों, चपरासियों और सफाई-कर्मचारियों तक को वह 'भैया' व 'भाईसाहब' कहकर सम्बोधित करते थे और ये कर्मचारी इतने महान् नेता से इज्जत पाकर फूले नहीं समाते थे। नेहरूजी की प्रेम-भरी आवाज को सुनते ही वे उनके लिए सबकुछ करने को तैयार हो जाते थे। सेवकों को अपनी सेवा में लीन देख वह कहते थे, "मेरी चिंता न करो। देश के लिए काम करो।"

"मै वरामदे में सो जाऊंगा। अंदर सोने से बिजली बेकार खर्च होगी।" देश के धन का ज़रा भी अपव्यय वह सहन कहीं कर सकते थे। जब मेहमान जाने लगते तो अपने हाथ से कमरे की बिजली और पंखे को बंद कर देते।

उनकी विलक्षण कार्य-क्षमता को देखकर सब दंग रह जाते थे। रात को अढ़ाई-अढ़ाई बजे तक बैठकर काम करते थे और प्रातः पांच बजे ही पुनः उठ जाते थे। अंतिम दिनों में डाक्टरों ने उन्हें आराम करने की सलाह दी थी, किन्तु डाक्टरों की सलाह के बावजूद वह रात को डेढ़-डेढ़ बजे तक पढ़ाई-लिखाई का काम करते रहे।

अपनी ओर से तो वह इतने लापरवा थे और दूसरों की—राष्ट्र की, विश्व की, जनता की और यहांतक कि अपने सेवकों व कर्मचारियों तक की—सुख-सुविधा की उन्हें बहुत चिंता रहती थी।

नत्थूराम उनका निजी नौकर था और घर में अक्सर उनके पास रहा करता था। रात को जब नेहरूजी कार्यरत होते तो कभी-कभी उसे झपकी आ जाती। तब जरूरत पड़ने पर भी वह उसे नहीं जगाते थे, वल्कि स्वयं ही उठकर अपना काम कर लेते थे। बाद में वह उसे यह बात बताते भी नहीं थे।

निजी सचिवों को नोट लिखाते-लिखाते जब रात को देर हो जाती, तो नेहरूजी इसके लिए क्षमा मांगना न भूलते। कहते, "माफ करना, भाई! देर हो गई। अब जाओ। सुबह आकर टाइप कर लेना।"

एक दिन अनेक सरकारी कामों से वह दिन-भर कार में इधर-उधर घूमते रहे। शाम होगई। काम अभी और बाकी था। उन्हें ड्राइवर का ध्यान आया, जो सुबह से उनकी कार चला रहा था। वह तीन मूर्ति लौट आये और सेक्रेटरी से बोले, "यह ड्राइवर थक गया है। इसे अब आराम की जरूरत है। मुझे दूसरा ड्राइवर दे दो।" जब सेक्रेटरी ने कहा कि आप भी तो थक गये हैं तो बोले, "इसकी चिन्ता न करो।"

चार-पांच सेक्रेटरी उनका काम करते थक जाते थे और वह थे कि अकेले ही इतना काम करते थे और थकने का नाम ही न लेते थे।

नेहरूजी के मेहनती स्वभाव ने उनके कर्मचारियों को भी मेहनत का पाठ पढ़ाया। जब वह प्रधान मंत्री बनकर आये तो उनकी कोठी के कर्मचारियों की अजीब स्थिति थी। वे आदी थे ब्रिटिश तौर-तरीकों के। चपरासी कहता कि मेरा काम टेलीफोन साफ करना नहीं है और सफाई करनेवाला कहता—मैं कुर्सी नहीं उठा सकता। लेकिन नेहरूजी के व्यवहार से सारे कर्मचारी उनपर रीझ गये और उनके इशारों पर नाचने लगे।

प्रधान मंत्री-निवास की एक कर्मचारी बहन अपने लम्बे अनुभव के आधार पर बताती हैं कि "नेहरूजी तो अपने-पराए का भेद भूल चुके थे। वह हमें भी इंदिराजी के समान ही समझते थे।"

जवाहरलालजी प्रातःकाल शीर्षासन किया करते थे और अंतिम दिनों तक वह खिड़की का सहारा लेकर व्यायाम भी करते थे। फिर काम में व्यस्त हो जाते थे। अपना सबेरे का सबसे अच्छा समय वह देश के काम में ही लगाते थे और फिर नौ-साढ़े नौ बजे धूप में छतरी तानकर कोठी के बगीचे की सैर को निकलते थे।

बगीचे में गिलहरियों और चिड़ियों के स्वागत-गान से आह्लादित हो वह कोठी के पिछवाड़े बाईं ओर बने अपने पालतू पांडों की जोड़ी के बाड़े तक जाते थे, जहां रखवाला महीपाल उनका खाना लिये खड़ा रहता था। इन पांडों से नेहरूजी को विशेष मोह था और वह उन्हें अपने हाथ से बांस की पत्तियां और दलिया खिलाया करते थे। इन्हें 'नेहरूजी के बेटे' भी कहा जाता है। भालू और बिल्ली के बीच की नस्ल के ये पांडा प्रधान मंत्री की प्रेम-परिपूर्ण अंतिम दुलराहट और उनके हाथ से दिया गया अंतिम दिन का भोजन भी न पा सके, क्योंकि उन दिनों वे गर्मियां बिताने नैनीताल गए हुए थे।

कोठी के पिछवाड़े छोटे-छोटे तालाबों में कमल के फूलों के बीच तैरती मछलियों को वह अपने हाथ से खाने की गोलियां डालकर बहुत प्रसन्न होते थे।

नेहरूजी और उनके तीनों पालतू कुत्तों—पप्पी, मधु और पुली में इतना प्रेम था कि स्वामी के विछोह में उन्होंने कई दिन तक खाने को मुंह नहीं लगाया।

जवाहरलालजी की दया, प्रेम और दोस्ती के अधिकारी हिंस्र जन्तु भी थे। उनका पालतू शेर भीम एक बार बीमार हो गया। नेहरूजी स्वयं उसकी सेवा-सुश्रूषा में जुट गये, बिना अपनी सुख-सुविधा की परवा किये।

अहिंसा के इस पुजारी के कमरे के बाहर एक बार मधु-मक्खियों ने छत्ता बना लिया। जब कर्मचारियों ने उसे हटाने का कार्यक्रम बनाया तो नेहरूजी ने मना कर दिया। न तो उन्होंने छत्ता तोड़ने दिया और न मक्खियों को उड़ाने दिया।

बच्चों के प्रति चाचा नेहरू का सरल-स्वाभाविक स्नेह जगत्-प्रसिद्ध है ही। उन्हें वह भावी भारत के निर्माता जो मानते थे। एक दिन कुछ मजदूर स्त्रियां तीन मूर्त्ति भवन के बगीचे में घास काटने आईं। उनमें से एक के पास एक छोटा-सा बच्चा था। उसे एक वृक्ष की छाया में लिटा कर वह भी अपनी साथिनों के साथ काम में लग गई। इधर कुछ देर बाद बच्चे पर धूप आ गई और वह रोने लगा। ऊपर से जब नेहरूजी ने उसे देखा तो झट नीचे आकर उन्होंने चीथड़ों में लिपटे उस बच्चे को गोदी में उठा लिया और लगे प्यार से उसे दुलराने।

'जंगली' उनकी अपूर्व मित्रता और उदारता का प्रतीक है। १९४७ में दंगाग्रस्त क्षेत्रों का दौरा करते हुए नेहरूजी को इस त्रस्त मुस्लिम माली पर बड़ी दया आई और वह उसे पुराना किला कैम्प से अपने साथ लेते आये। शीघ्र ही उन्होंने उसे निजामुद्दीन नर्सरी में काम दिला दिया। तभी से प्रधान मंत्री और जंगली में गहरी दोस्ती हो गई। वह प्रायः नेहरूजी के दर्शनार्थ उनकी कोठी पर आया करता था और उनके लिए उनके प्रिय फूलों का उपहार लाता था। समय-समय पर वह उनके लिए अपने जन्मस्थान अलीगंज (जिला एटा) से बेर भी लाता था। नेहरूजी की कोठी में उसके आने पर कोई रोक-टोक नहीं थी। इसी बीच जंगली का विवाह हुआ और एक-एक करके बारह बच्चे पैदा हो गये। नेहरूजी हर साल उससे पूछते, "जंगली, कितने बच्चे हो गये इस बार ?" जब उसने ११ बच्चे गिनाये तो पंडितजी ने मजाक में कहा, "अब तो तुम्हारे घर में ही क्रिकेट की टीम तैयार हो गई।" जंगली शरमा गया और बोला, "जी भगवान् की कृपा है।"

उस दिन जंगली के घर में शादी थी और वह बारात-की-बारात लेकर पंडितजी की कोठी में आ गया। पंडितजी ने अपने व्यक्तिगत स्टाफ के एक सदस्य के हाथ उसके घर विवाह के लिए सौगातें भिजवाईं।

आज जब पंडितजी इहलोक को त्याग परलोक सिधार चुके हैं, जंगली फूट-फूटकर रोते हुए कह उठता है, "मेरे बेरों का अब क्या होगा? मेरी तो दुनिया ही लुट गई।"

नेहरूजी का साठवर्षीय दर्जी मुहम्मद हसन, जो पं. मोतीलाल नेहरू के समय से नेहरू-परिवार के कपड़े सी रहा है, अत्यन्त दुःखी होकर कहता है, "पंडितजी तो मुझे अपने घर का ही मेम्बर समझते थे। वह तो मुझे देखते ही गले मिलते थे। अब ऐसा कद्रदां मालिक भला कहां मिलेगा?"

हीरालाल माली, जो नेहरूजी की अचकन पर दिन में दो बार गुलाब की कली लगाया करता था, आज आंसू बहाते हुए कहता है, "उनके बिना तो सारा बाग ही मुरझा गया है।"

बैरा जयसिंह राजपूत, जो पंडितजी को फलों का रस दिया करता था, आज दुःख-कातर होकर कहता है, "हमारी तो तकदीर ही खराब है, जो ऐसा देवता हमारे पास से चला गया। उनकी तो लीला ही न्यारी थी।"

गिरिधारी पेंटर, जो प्रधान मंत्री की कोठी को अल्पना बनाकर सजाया करता था, आज सोचता है—कितना ऊंचा इंसान चला गया!

और इन रोते-बिलखते प्राणियों को सांत्वना देती प्रतीत होती है तीन मूर्त्ति-भवन में सजी महात्मा बुद्ध की अनेकानेक मूर्त्तियां, जो नेहरूजी के आगे-पीछे, दाएं-बाएं, सब दिशाओं में विराजमान रहती थीं, जो उन्हें निरन्तर प्रेरणा प्रदान करती रहती थीं, जो प्रेम और अहिंसा में उनकी आस्था को दृढ़तर बनाया करती थीं। ऊपर की मंजिल के जिस कमरे में नेहरूजी काम किया करते थे, उसके मध्य में स्थित मेज पर सजी छोटी-सी गीता और लिंकन की दृढ़-प्रतिज्ञ मुठ्ठी उन्हें अपूर्व बल देती थी और आज हमको शोक त्यागकर अपने नेता के उच्च आदर्शों को आगे बढ़ाने का संदेश देती है। पंडितजी की पुस्तकों का विपुल भंडार अपनी मूक भाषा में ज्ञान-अर्जन करने की महिमा को बताता है।

नीचे बगीचे में पंडितजी द्वारा कोई छः वर्ष पूर्व लगाये गए बरगद और पीपल के वृक्ष भी तीन मूर्त्ति के स्वामी की याद में व्याकुल दिखाई देते हैं और पंडितजी के शयन-कक्ष के नीचे लगे पिलखन के पेड़ के समृद्ध बाल यह कहते प्रतीत होते हैं "नेहरूजी, जो अक्सर हमारी छाया के नीचे बैठा करते थे, अमर हैं और अमर रहेंगे।" ●

वह प्रकाश पुंज

आदि-भारत में
आदि-कवि वाल्मीकि ने
एक महापुरुष की कल्पना की थी
वह महापुरुष मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम थे।

महाभारत में
महर्षि व्यास ने
एक पूर्ण पुरुष की कल्पना की थी
वह पूर्ण पुरुष श्रीकृष्ण थे !

आधुनिक स्वतन्त्र एवं
आसेतुहिमाचल इस नए भारत में
शारदा के सहस्रों सुतों ने
अभी एक महामानव को
कल्पना को
अपनी अभिव्यक्ति में आत्मसात् करना ही चाहा था कि
वह विराट ज्योति उन्हें
अचानक चुनौती देकर चली गई।
वाणी की वर्तमान विशिष्ट वन्दना
अपनी सीमा में ही छली गई।

उफ् ! उस दुनिया की कल्पना कितनी भयावह है,
जिसके आकाश से सूर्य तो रूठ गया ही हो,
चांद भी चला जाय !
बेमिसाल मशाल तो बुझ ही चुकी हो,
एक चमकता हुआ चिराग भी छला जाय !

फिर भी हमें आशा है
और पूरा विश्वास है कि
राष्ट्रपिता बापू की,
राष्ट्रनिर्माता नेहरू की
मिलीजुली ज्योति से
देश के सामने का अंधियारा फटेगा।
और,
एक अकल्पित विद्युत की चमत्कारी चकाचौंध से
यह आगे दिखाई देनेवाला बादल का दल छंटेगा।
निश्चित रूप से छंटेगा।

●

बाक़ी बिल्लाह बक़ा

उन्हें कौन भूल सकेगा ?

पंडित जवाहरलाल नेहरू के संबंध में सुनी हुई घटनाएं अपरिमित हैं, परन्तु मैं उन बातों का उल्लेख कर रहा हूं, जिनका संबंध स्वदर्शिता से है। पंडितजी में जो गुण थे, वे स्वाभाविक थे। वह मनोविज्ञान में दक्ष थे। देश-भक्ति, दयालुता, स्थिरता, वीरता, सुव्यावहारिकता, संयमशीलता उनकी विशेषताएं थीं। जिस प्रकार एक धनी पंडितजी से मिलकर प्रसन्न होता था उसी प्रकार वह निर्धन से निस्संकोच बात-चीत करते थे और उसकी बात सुनते थे। निर्धन भी उनसे मिलकर प्रफुल्लित हो उठता था। जात-पांत से और किसी धर्म से उनका विशेष लगाव न था, बल्कि मनुष्य की सेवा ही उनका धर्म था।

मनुष्य तीन दौर से गुजरता है—बाल्यकाल, युवावस्था और वृद्धावस्था। प्रत्येक दौर की विशेषताएं अलग-अलग होती हैं, भावनाएं भिन्न होती हैं। पंडितजी जिस अवस्था के लोगों से मिलते थे, हर मनुष्य यही समझता था कि एक मनोरंजक साथी मिल गया। यही कारण था कि वृद्ध, युवक तथा बालक सभी उनसे प्रेम करते थे। आनन्द-भवन में मैंने देखा है कि वह बहुधा छोटे बालकों को अपनी गोद में ले लिया करते थे। इलाहाबाद के हवाई अड्डे पर छोटे बालक अधिक संख्या में पंडितजी के स्वागत के लिए जाते थे। लोग मालाएं देते थे, उन्हें वे बच्चों को पहना देते थे। फूल बच्चों की ओर फेंक देते थे। उससे बच्चे हँसते तो स्वयं भी मुस्करा देते थे। हवाई अड्डे पर जितने लोग होते, सिपाही से लेकर उच्च अधिकारी तक से हाथ मिलाते। जब देख लेते कि कोई मनुष्य बचा नहीं है तब मोटर पर सवार होते।

वह त्याग की मूर्त्ति थे। जीवन का कोई क्षण ऐसा व्यतीत नहीं हुआ, जिसमें देश की उन्नति का विचार न रहा हो। सन् १९६१ की बात है। इलाहाबाद के एक सज्जन ने पंडितजी से दिल्ली में भेंट की और बतौर तोहफा हाथ का एक विदेशी पंखा उन्हें भेंट किया। पंडितजी ने पंखा स्वीकार तो कर लिया, परन्तु कुछ मिनट बाद दो बार कहा कि वह अपने देश का बना नहीं है।

अपने साथियों के साथ उनका एक-सा व्यवहार था, यहांतक कि जब भारत स्वतंत्र हुआ और वह प्रधान मंत्री हुए तो मिलनेवालों को कभी अनुभव न हुआ कि पंडितजी भारत के उच्च पद के अधिकारी हैं। पंडितजी प्रधान मंत्री के पद को जनता की सेवा का साधन समझते थे। सच यह है कि प्रधानमंत्री के पद के कारण पंडितजी का सम्मान नहीं था, अपितु पंडितजी ने पद को सम्मान दिया था।

१९२० से चचा हकीम वली अहमद (स्वर्गीय) और पिता काली वली मोहम्मद साहेब (प्रबन्ध मदरसा सुबहानिया इलाहाबाद) से पंडितजी के संबंध थे। स्वतंत्रता से पूर्व पंडितजी स्वयं पधारते थे। अप्रैल,

१९५९ में अपने पिताजी के साथ पंडितजी से मिलने आनन्द-भवन गया। पंडितजी के लिए सिवइयां ले गया। पिताजी ने पंडितजी को सिवइयां दीं। पंडितजी ने अपने हाथ में ले लीं और कहा कि ईद के चार दिन बाकी हैं। जबतक बातचीत होती रही, सिवइयां बराबर हाथ में लिये रहे। सेक्रेटरी आदि ने लेनी चाहीं, परन्तु नहीं दीं। इसी प्रकार एक बार अमरूद ले गये। एक सुन्दर-सा अमरूद पिताजी ने अपने हाथ से पंडितजी को दिया। उस अमरूद को उन्होंने जेब में रख लिया। ये घटनाएं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं। पंडितजी मनुष्य के चेहरे-मोहरे और उसकी भाव-भंगिमा से मिलनेवालों के मानसिक स्तर का अनुमान लगा लेते थे। चन्द बातों में उसके विचार का गहन अध्ययन कर लेते थे और उसके मनोनुकूल बात करते थे।

स्वतंत्रता से पूर्व चचा हकीम वली अहमद ने उन्हें चाय पर आमंत्रित किया। पधारने में नियुक्त समय से केवल एक मिनट विलम्ब हो गया। आते ही उन्होंने कहा, "हकीम साहब, एक मिनट देर हो गई। क्षमा कीजियेगा।" इसी प्रकार ६ मार्च, १९४२ को चचासाहब ने चाय पर बुलाया। साढ़े पांच बजे संध्या का समय था। शहर इलाहाबाद के प्रतिष्ठित लोग उपस्थित थे। साढ़े पांच बजे से कुछ पहले लोग कहने लगे कि पंडितजी बहुत व्यस्त रहनेवाले आदमी हैं। अब नहीं आयंगे। परन्तु जब घड़ी की सुई साढ़े पांच पर पहुंची तो मोटर का हार्न बजा। लोग प्रसन्न होकर पंडितजी को लेने दौड़ पड़े। समय और वचन की पूर्ति में उनका कोई मुकाबला नहीं कर सकता था।

सन् १९६० की बात है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एक युवक बी. ए. के प्रथम वर्ष में शिक्षा प्राप्त कर रहा था। उसका कोई सहायक और संरक्षक न था। तीन महीने तक फीस न दे सका। नाम कट गया। बेचारा बहुत चिन्तित था। मैंने उस युवक से कहा कि अपनी दशा लिखकर पंडितजी के पास ले जाओ। वह विद्यार्थी अपनी आवश्यकता लिखकर पंडितजी के पास आनन्द-भवन गया। बातें ठीक थीं। दिल्ली जाकर पूरे वर्ष की फीस भेज दी और बराबर एम. ए. तक फीस का रुपया देते रहे। इस प्रकार की और भी कई घटनाएं हैं।

कांग्रेस कार्यकर्ताओं की एक सभा १९६२ में 'स्वराज्य भवन' इलाहाबाद में हो रही थी। कार्यकर्ता पंडितजी से प्रश्न करते। जिस स्तर का प्रश्न होता, पंडितजी उसी अंदाज में उत्तर देते। कार्यकर्ताओं के बीच पंडितजी एक अच्छे कार्यकर्ता जान पड़ते। कार्यकर्ताओं को यह अनुभव नहीं होता था कि वे एक सर्वश्रेष्ठ, सर्वमान्य, व्यक्ति से बात कर रहे हैं। एक युवक ने प्रश्न किया, "आप कहते हैं कि युवक आगे बढ़ें। देश की बागडोर नवयुवकों के हाथों में है। पर यह बताइये कि जब पुराने लोग स्थान नहीं छोड़ते तो नवयुवक कैसे आगे बढ़ें?" इस प्रश्न पर पंडितजी मुस्कराये और बोले, "पन्द्रह वर्ष से मैंने स्वयं स्थान ले रक्खा है।" लोग हँसने लगे। पंडितजी के खुशमिजाज व्यक्तित्व का प्रभाव संबंधित लोगों पर और आनन्द-भवन के नौकरों तक पर पाया जाता है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के संबंध में हड़तालें होती थीं, जलसे होते थे, जुलूस निकलते थे। कई अवसरों पर लाठियां बरसीं, पर पंडितजी कभी पीछे नहीं रहे, बल्कि प्रत्येक संकट का हँसकर उन्होंने सामना किया। अपने उद्देश्य की प्राप्ति में निराशा को अपने निकट नहीं आने देते थे, बल्कि स्थिरता से अपने कार्य में तल्लीन रहते थे। ०

त्याग और सेवा का जीवन

विश्व-शांति का अग्रदूत तथा नव-भारत का महान् निर्माता अब हमारे बीच नहीं रहा। वह महा-मानव इस संसार से सदा के लिए उठ गया, जो जन-जन का नेता था। उसके मन में भारत की मिट्टी से कितना प्यार था, यह वर्णन करना कठिन है। जीवन के सुनहरे यौवन-काल में, भोग-विलास के प्रसाधनों तथा विरासत को छोड़कर जो जेठ-बैसाख की कड़ाके की गर्मी में भारतीय स्वतंत्रता की चिनगारी जलाते हुए प्रतापगढ़ तथा इलाहाबाद के किसानों के गांवों में पैदल घूमता रहता था, आज उसका भव्य पार्थिव शरीर तथा दिव्य आत्मा हमारे सामने नहीं रहे, जिन्हें देखते किसीका मन थकता नहीं था, जो प्रायः सबका प्यारा तथा आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। इस महापुरुष को देखकर मन को आनन्द मिलता था कि वह वास्तव में भारत का गौरव था। उसके जीवन का एक-एक क्षण बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय सर्वदा संघर्षरत था। हृदय इतना विशाल और भाव इतने प्रखर थे, जिनकी तुलना इस शताब्दी में किसी भी महापुरुष से नही की जा सकती है। जो व्यक्ति अपने जीवन के ७४वें वर्ष में प्रवेश करने पर भी १८ घंटे काम करता रहे, उसकी कर्तव्यनिष्ठा का अनुमान करना भी कठिन है। यह तो उसके साथ ही हो सकता है, जो सचमुच कर्मयोगी हो। कार्यो का सम्पादन जिस द्रुत गति से वह करते थे, वह तो अब स्वप्न जैसा लगता है।

मैं ऐसा मानता हूं कि वह स्वयं भारत था और जनता जवाहर। मुझे इधर लगातार पांच-छः वर्षो में सैकड़ों बार देखने, मिलने तथा देश के कठिन-से कठिन प्रश्नों पर उनसे विचार-विमर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। हरेक विषय में उनके नितान्त स्पष्ट तथा निर्भीक विचार थे। वह सच्चा धार्मिक व्यक्ति अध्यात्म से सम्बन्ध रखनेवाला था, पर आडम्बर-शून्य तथा सम्प्रदाय-निरपेक्ष। मानवता की सच्ची सेवा यानी जनता को जनार्दन के रूप में समझने की उसकी सच्ची उदात्त भावना थी। सभी धर्मो से समान प्रेम करनेवाला था, क्योंकि आखिर भगवान तो सबका है। जवाहरलालजी हमारे बीच अमर रहेंगे, क्योंकि सत्ता का मद तथा अभिमान उन्हें छू तक नही गया था। समाज के पिछड़े तथा छोटे-से-छोटे उपेक्षित व्यक्ति के साथ वह कितना प्यार करते थे, यह किसीसे छिपी बात नहीं है। मुझे इधर तीन-चार वर्षो की ऐसी बातें स्मरण आ रही है, जिन्हें मैंने बहुत निकट से देखा और जाना। उनकी स्वाभाविक मुस्कान, कभी-कभी बच्चों का-सा व्यवहार कितना निराला और कितना मनमोहक था। वह वस्तुतः प्रकृति के रहस्य और स्वरूप को पहचानते थे और उस पर अमल करने की भरसक चेष्टा करते थे।

मैं प्रायः प्रत्येक एक-दो महीने बाद उनसे मिला करता था। मिलने पर आनन्द का एक ऐसा अतिरेक उत्पन्न होता था, जिसका वर्णन करना मुश्किल है। अन्तिम बार उनसे मेरी महत्वपूर्ण भेंट गत २९ दिसम्बर की रात्रि में प्रधान मंत्री के निवास-स्थान पर हुई थी। पहली बीमारी के बाद उनका स्वास्थ्य कुछ गिरने लगा था। जब भी मैं जाता, उनके शिष्टाचार तथा भद्रता से दब जाता था। वृद्धावस्था का यह महामानव एक मर्यादित युवक जैसा व्यवहार करता था, यह देखकर आश्चर्य होता था। इस बार मैंने पंडितजी से कहा था कि कृपया अब आप मेरे आने पर उठें नहीं। जब मैं बाहर निकलने लगा तो मैंने उनसे कहा कि आप कृपा करके बैठ जाइये। ऐसा कहकर जब मैं बड़े हॉल में बिना पीछे मुड़े बढ़ा तो देखा कि पंडितजी भी पीछे-पीछे पहुंचाने आ रहे हैं।

हृदय भर जाता है इस महापुरुष के गुणों को याद करके। इस बार की मेरी मुलाकात में पाकिस्तान, कश्मीर का प्रश्न, चीनी आक्रमण, डा० लोहिया की बातें तथा विशेष रूप से भ्रष्टाचार-निरोध और शराब-बन्दी के संबंध में आधा घंटा तक विचार-विमर्श हुआ था। साधु समाज के कार्यक्रम तथा धर्मस्थानों की सुव्यवस्था पर भी उठते समय पंडितजी ने चर्चा की थी और कानून मंत्री श्री सेन को मेरी बातों से सम्बन्धित विषय पर पत्र भेजने की इच्छा प्रकट की थी। इसके कुछ दिनों बाद ही भुवनेश्वर कांग्रेस अधिवेशन के समय वह भयंकर बीमारी से आक्रांत होगये। मेरा मन बेचैन हो उठा। काश्मीर की उलझी हुई स्थिति तथा पाकिस्तान में हुए दंगों की स्थिति के संबंध में ११ अप्रैल को मैंने एक पत्र भेजा और उनका ध्यान कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों की ओर आकृष्ट किया। पंडितजी ने उन सुझावों पर विचार किया और १७ अप्रैल को निम्नांकित पत्र मेरे पास भेजा :

प्रिय स्वामीजी,

आपका ११ अप्रैल का पत्र मिला। शेख अब्दुल्ला को छोड़ना मेरी राय में आवश्यक हो गया था। अब जो बातें उन्होंने कही हैं, वे मुनासिब नहीं हैं। वह कुछ कशमकश में पड़े हैं। कुछ दिन बाद वह यहां आयंगे तो उनसे बातचीत होगी।

जो पाकिस्तानी असम और त्रिपुरा में आ गये हैं, उनके हटाने के सवाल में एक दिक्कत उठी है कि हिन्दुस्तानी मुस्लिम भी न हटायें जायं। यह बात तस्लीमशुदह हैं कि असली पाकिस्तानी को हम हटा सकते हैं, लेकिन उनके साथ हिन्दुस्तान के मुसलमानों को भी हटाना गलत होगा। इसके लिए कायदे-कानून बन रहे हैं।

यह बात सही है कि आजकल हमारे सामने बड़े कठिन प्रश्न हैं और संकटकाल है। हमें कोशिश करनी चाहिए कि बुद्धि से और वीरता से इन प्रश्नों का सामना करें।

आपका,
जवाहरलाल नेहरू

मैंने सोचा कि हरिद्वार से लौटकर पंडितजी से मिलकर पटना वापस जाऊंगा। इस बीच दो-तीन बड़े प्रश्न, मुख्यतः काश्मीर का आ गया, इसलिए २५ अप्रैल को एक खत लिखकर चला गया। चूंकि ४ मई को पंडितजी गंडक-बराज के शिलान्यास के लिए बिहार (भैंसालोटन) आनेवाले थे, मैं भी जल्दी

बिहार वापस आना चाहता था। जब पंडितजी से मैं मिला करता तो श्रद्धास्वरूप पुष्पमाला आदि दिया करता था। उनके लिए मन में इतना आदर और सम्मान था कि मेरे लिए खाली हाथ जाना कठिन था। एक साधारण कार्यकर्ता के सम्मान तथा प्रतिष्ठा का पंडितजी कितना खयाल करते थे, इसकी एक घटना मेरे साथ पटना में ७ जनवरी १९६३ को घटी। हमने उन्हें दिल्ली में आमंत्रित किया था कि जब आप कांग्रस अधिवशन के लिए पटना आ रहे है तो 'भारत सेवक समाज' के कार्यकर्ताओं की सभा में भी भाग लें। उन्होंन स्वीकार कर लिया। परन्तु जब वह पटना आये तो स्थानीय नेताओं ने उन्हें सभा में भाग लेने से मना कर दिया। हम सभी लेडी स्टीफिन्सन हाल में एकत्र थे। एक उच्च अधिकारी संवाद लेकर आये कि पंडितजी इस कार्यक्रम में नहीं आ सकेंगे। मेरा मन चिन्तित हो गया, परन्तु हमने अपना आत्मविश्वास नहीं खोया। आखिर वह ठीक ७ बजे शाम को हमारी सभा में पहुंच गये और आते ही कहा कि कुछ लोगों ने भीड़ के कारण यहां आनें से मनाही कर दी थी, परन्तु स्वामीजी के आग्रह को मैं टाल नहीं सका।

इस बार जब मैं हरिद्वार से २८ अप्रैल को वापस होने लगा तो पंडितजी के लिए एक चन्दन की अच्छी माला ली। दिल्ली जाने का विचार था, परन्तु कार्यवश वहां से मुझे १ मई को पटना वापस आना पड़ा। ३ मई को मैं भैसालोटन पंडितजी से मिलने के लिए गंडक तथा बराज के शिलान्यास समारोह में भाग लेने गया। ४ मई के प्रातःकाल जब पंडितजी वायुयान द्वारा हवाई अड्डे पर उतरे तो उन्हें देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। हमने हरिद्वार से लाई गई माला पहनाकर पंडितजी के प्रति शुभेच्छा प्रकट की। एक शामियाने में पंडितजी आये, क्योंकि वह नेपाल के महाराज श्री महेन्द्र की प्रतीक्षा में थे। आज भी वह अवसर हमें याद है जब पंडितजी ने सारी पहनाई गई मालाओं को तुरंत गले से हटा दिया। परंतु हमारी माला को बराबर पहने रहे। अंत में चलते समय उन्होंने उस माला को गले से निकालकर अपनी प्यारी सुपुत्री श्रीमती इंदिराजी को दिया।

दिन-भर वह अनेक कार्यक्रमों में व्यस्त रहे। संध्या को जब महाराज महेन्द्र के सम्मान में स्वागत का आयोजन किया गया तो उसमें मैं एक किनारे खड़े एक व्यक्ति से बातें कर रहा था कि पंडितजी उसी तरफ आने लगे और जब निकट आये तो इन्होंने कहा, "स्वामीजी, आप यहां कब आये? अच्छे हैं न?" मैं हर्ष तथा उल्लास से गद्‌गद् हो गया। मैंने कहा, "आप तो अब स्वस्थ दीखते हैं, परन्तु आपको इतना अधिक परिश्रम नहीं करना चाहिए।"

पंडितजी ने मुस्कराकर हाथ जोड़े और अपनी गाड़ी पर बैठ गये। यह हमारी बात-चीत का अन्तिम अवसर था। कितने महान् थे वह!

दूसरे दिन ५ मई को प्रातः उन्हें हवाई जहाज से दिल्ली वापस आना था। मैं उस दिन प्रातः वाल्मीकि आश्रम चला गया, जहांपर नेपाल के महाराज महेन्द्र जानेवाले थे। वहां से मैं हवाई अड्डे पहुंचा। वह शामियाने में महाराजा महेन्द्र की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं वहां पहुंचा। उस समय वह उठकर जाने को तैयार थे। हमने मंत्र पढ़कर उनके माथे पर चन्दन का तिलक लगाया और उन्हें हवाई जहाज तक पहुंचाया। यह था मेरा उनका अंतिम दर्शन। मैं दिल्ली मई के मध्य में जानेवाला था। पर नहीं आ

सका। उसके बाद २७ मई को उनका देहान्त हो गया। दिल्ली पहुंचने पर पंडितजी का मेरे नाम एक महत्वपूर्ण पत्र मिला, जो मेरे लिए उनका अन्तिम व्यक्तिगत पत्र के रूप में, संदेश था।

प्रिय स्वामीजी,

आपका २४ अप्रैल का पत्र मिला। शेख अब्दुल्ला से हमारी बात हो रही है। वह आज विनोबाजी से मिलने जा रहे हैं। फिर वापस यहां आयंगे।

आपने जो लिखा है कि कुछ तस्वीरें पाकिस्तान के नेताओं की श्रीनगर में लगाई गईं, वह सही है। उसकी जिम्मेदारी शेखसाहब की नहीं है, बल्कि कुछ मौलवियों की है।

आपने पाकिस्तानी मुसलमानों को, जो भारत में रहते हैं, उनकी निस्बत लिखा। असम से इनको अलग करने की कोशिश की जा रही है। उसमें एक दिक्कत है, यह निश्चय करना कि कौन भारतीय है और कौन पाकिस्तानी।

भारत में हो सकता है कि कुछ मुसलमान पाकिस्तान से प्रेम करें। लेकिन मुझे मालूम नहीं है कि वायरलेस ट्रांसमीटर का प्रयोग होता है। हमारे देश में बहुत मुसलमान रहते हैं और उनमें अधिकतर अच्छे आदमी हैं। कुछ बुरे भी हो सकते हैं। उनसे हम सबको आगाह रहना चाहिए।

मेरा स्वास्थ्य अब पहले से अच्छा है और मैं उसकी देखभाल कर रहा हूं।

आपका,

जवाहरलाल नेहरू

जवाहरलालजी का जीवन मानव-कल्याण के लिए न्योछावर था। देश को उनके आदर्शों तथा शिक्षाओं से सदा प्रेरणा मिलती रहेगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

पंडित नेहरू की कल्पना, व्यावहारिक अनुभव और यथार्थदर्शी आदर्शवाद के कारण ही हमारी नई आशा का द्वार खुला है, और दक्षिणी एशिया तथा उत्तर अफ्रीका के साठ करोड़ निवासियों के लिए एक सुखदतर और उन्नत जीवन की भावी संभावना दीखने लगी है।

—आग़ा खान

उनकी महानता

इसी ८ मई को विद्यापीठ की भावी योजना के संबंध में जवाहरलालजी से नई दिल्ली में प्रधान मंत्री के कार्यालय में मिला था। उन्होंने बड़े प्रेम से विद्यापीठ की स्थापना का इतिहास तथा भावी योजनाएं सुनकर शीघ्र ही आवश्यक कार्रवाही करने का आश्वासन दिया था। बातें करते समय मैं जल्दी कर रहा था, क्योंकि थोड़े समय बाद ही काश्मीर की विषम समस्या के संबंध में विचार करने के लिए शेख अब्दुल्ला आनेवाले थे, परंतु आशा के विपरीत पंडितजी को जल्दी नहीं जान पड़ती थी। विद्यापीठ की स्थापना के समय के (१० फरवरी, १९२१ के) चित्र में महात्मा गांधी तथा स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू को देखकर भाव-विभोर होने से उनकी आंखों में आंसू आ गये थे।

सन् १९२१ के असहयोग आंदोलन के दिनों में ताल्लुकेदारों के अत्याचारों से पीड़ित अवध के रायबरेली, सुलतानपुर, प्रतापगढ़, फैजाबाद जिलों में किसानों का आंदोलन दावाग्नि की तरह फैल रहा था। उसके स्वाभाविक नेता बाबा रामचंद्र विद्यापीठ की स्थापना के दिन १० फरवरी, १९२१ को विद्यापीठ के प्रांगण में गिरफ्तार हो चुके थे। रायबरेली में गोलियां चल चुकी थीं। इसका समाचार छापने के लिए अमर शहीद स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी पर राजद्रोह का मुकदमा चल रहा था। इन जिलों में ताल्लुकेदारों और पुलिस ने मिलकर ऐसा आतंक मचा रखा था कि लोग खद्दर पहननेवालों को अपने दरवाजे पर ठहराने का साहस नहीं करते थे। पंडितजी की प्रेरणा से आचार्य कृपालानी के नेतृत्व में गांधी-आश्रम तथा काशी विद्यापीठ के कार्यकर्ताओं का एक जत्था, जिनमें आचार्य बीरबल सिंह, श्री विचित्रनारायण शर्मा तथा इन पंक्तियों का लेखक आदि ग्यारह व्यक्ति थे, सुलतानपुर जा रहा था। पंडितजी ने रायबरेली जाते हुए प्रतापगढ़ स्टेशन पर हम सबको विदा दी। ख्याल था कि वह रायबरेली पहुंचने के पहले गिरफ्तार हो जायंगे, किन्तु उनके चेहरे पर घबराहट का नामोनिशान नहीं था।

घटनाओं का चक्र ऐसा चला कि गिरफ्तारियां तो नहीं हुईं, परंतु दफा १०७ के अनुसार शांतिभंग की आशंका के आधार पर जमानत मुचलके की कार्रवाही शुरू हुई। इसका समाचार मिलते ही पंडितजी हम लोगों पर चलनेवाले मुकदमों की पैरवी के बारे में सलाह देने सुलतानपुर पहुंच गये। खपरैल के कच्चे दालान में कम्बल पर बैठकर हम लोगों का बनाया दाल-भात उन्होंने बड़ी तृप्ति से खाया। यद्यपि उसके तीसरे दिन स्वरूप कुमारी (श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित) का शुभ विवाह होनेवाला था, जिसमें महात्मा गांधी, लाला लाजपत राय, मौलाना शौकत अली, मौलाना मुहम्मद अली आदि ख्यातिनामा नेता और हजारों

कार्यकर्त्ता पधार रहे थे। इस अवसर का लाभ उठाकर इलाहाबाद जिला राजनैतिक सम्मेलन हो रहा था। इतनी व्यस्तता होते हुए भी उन्होंने उस परेशानी का कोई जिक्र नहीं किया, बल्कि हम लोगों में से, जो उस दिन तक गिरफ्तारी से बच जायं, उन्हें इलाहाबाद आने के लिए आमंत्रित किया। पहुंचने पर देखा कि इतनी बड़ी भीड़ में भी हममें से प्रत्येक कार्यकर्ता से उसकी सुख-सुविधा के बारे में उन्होंने पूछा।

श्री जवाहरलाल नेहरू राष्ट्ररत्न श्री शिवप्रसाद गुप्त द्वारा स्थापित काशी विद्यापीठ के संस्थापक सदस्यों में से थे तथा उसकी पोषक संस्था श्री हरप्रसाद शिक्षा-निधि के संस्थापक संचालक थे। सन् १९३४ में श्री हरप्रसाद शिक्षा-निधि के संकल्प-पत्र की रजिस्ट्री कराने की आवश्यकता पड़ी। पंडितजी उन दिनों देहरादून-जेल में सजा भुगत रहे थे, किन्तु श्रीमती कमला नेहरू की असाध्य बीमारी के कारण पैरोल पर छोड़े गये थे और इलाहाबाद आ गये थे। मैं बड़े संकोच के साथ आवश्यक कागजों पर हस्ताक्षर कराने गया, किन्तु बावजूद इसके कि 'पैरोल' की अवधि समाप्त हो रही थी और वह कुछ ही घंटों में जेल वापस जानेवाले थे, उन्होंने स्वर्गीय श्री शिवप्रसाद गुप्तजी का, जो जेल से लकवे में पीड़ित होकर छूटे थे, विस्तार से हाल पूछा और इस बात पर खेद प्रकट किया कि वह उनसे मिल न सकेंगे।

ऐसी ही घटना उस समय घटी जब सन् १९३१ के दिसम्बर में उत्तरप्रदेशीय सरकार ने प्रांतीय कांग्रेस से यह आश्वासन मांगा कि वह इटावा में होनेवाले कांग्रेस के प्रांतीय राजनैतिक सम्मेलन में लगान-बन्दी पर विचार न करे। आनंद-भवन में बैठक हुई। सूचना मिली कि कांग्रेस को नेस्तनाबूद करने की सरकारी योजनाएं बन चुकी हैं। यद्यपि सम्मेलन के मनोनीत सभापति श्री श्रीप्रकाश की ज्येष्ठ पुत्री का विवाह अगले पखवारे में होनेवाला था, श्रीमती कमला नेहरू जीवन तथा मृत्यु के बीच झूल रही थीं, किन्तु प्रांतीय कांग्रेस कमेटी कौंसिल ने सर्वसम्मति से आश्वासन देने से इन्कार कर दिया। रात को ११ बजे तक बैठक होती रही। ख्याल था कि सवेरा होने के पहले पूरी कौंसिल गिरफ्तार कर ली जायगी, क्योंकि सन् १९३१ में पूरी प्रांतीय कांग्रेस कमेटी गिरफ्तार हो चुकी थी। सब लोग रात को आनंदभवन में ही ठहरे। पंडित गोविन्दवल्लभ पंत, श्री श्रीप्रकाश और आचार्य नरेन्द्रदेव, डाक्टर सम्पूर्णानन्द, श्री तसदुक अहमद शेरवानी के साथ-साथ प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का कोषाध्यक्ष होने के कारण मैं भी रात को आनंद-भवन में ठहरा। रात को प्रायः ११॥ बजे पंडितजी हम लोगों के कमरे में आये और हमारी सुख-सुविधा आदि के बारे में पूछा। सवेरे हम तैयार भी न होने पाये थे कि पंडितजी ने स्वयं आकर चाय के कमरे में आने का निमंत्रण दिया। रात के १२ और सवेरे ६ बजे के बीच वह कितना और कब सोये, मालूम नहीं, क्योंकि सवेरे उन्हींके हाथ का लिखा प्रस्ताव का मसविदा विचारार्थ प्रस्तुत था। यह थी उनकी कर्मठता, जो आजीवन रही। मुझे अपने पत्रों का उत्तर सदा एक सप्ताह के भीतर मिल जाता रहा।

स्वाधीनता-आंदोलन के सेनानियों तथा उनके आश्रितों का उन्हें सदा ख्याल रहता था। इन पंक्तियों के लेखक को उन व्यक्तियों को पंडितजी की भेजी आर्थिक सहायता सुरक्षित पहुंचाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिनके राजनैतिक विचारों से पंडितजी सहमत नहीं थे। चाहे वह काकोरी षड़यंत्र या आजाद हिन्द फौज का मुकदमा हो या धानापुर अग्निकांड का, पण्डितजी पैरवी कराने और आश्रितों को सहायता करने में सदा आगे रहते थे। ●

विभिन्न झांकियां

१९३१

बापू गोलमेज-कांफ्रेंस जा रहे थे। रतलाम स्टेशन का प्लेटफार्म खचाखच भरा था। रात के बारह बजे। नारे ऊंचे उठ रहे थे। मैं एक चौदह वर्ष का विद्यार्थी भीड़ में। लोग उस डिब्बे पर टूट पड़े, जिसमें गांधीजी और उनके साथी थे। एक तमतमाता हुआ ताम्रवर्णी चेहरा, खिड़की से पूरे हाथ और कंधे बाहर निकालकर, दोनों हाथों से भीड़ को शांत करता हुआ, गुस्सैल स्वर में डांटता हुआ—"कैसे हैं आप लोग? बापू बीमार है। सोये हैं। आप उन्हें जगाना चाहते हैं! आपमें ज़रा भी डिसिप्लिन नहीं। आप कैसे स्वराज्य लेंगे? शांत हो जाइये। बापू को मत जगाइये।"

वह जवाहरलाल नेहरू है। उन्हें जनता के प्यार पर गुस्सा आता है और जनता है कि इसे उनके "गुस्से पै प्यार आता है!"

ट्रेन चली गई। एक कांपती हुई अग्निशिखा जैसे स्मृति को भेदकर रह गई, एक नवीन ज्ञान की शलाका बनकर। जनता को नियंत्रित करने के लिए उसे एक निर्मम अध्यापक की तरह डांटना भी पड़ता है। पर जनता हरेक की डांट नहीं सुना करती। उसके पीछे उतने ही बड़े त्याग की पीठिका भी ज़रूरी होती है।

१९३६-३७

कांग्रेस के पहले देशव्यापी चुनावों के सिलसिले में देशव्यापी दौरा पंडितजी ने किया था। मार्क्स-वादी साहित्य से नव-परिचित हम कुछ तरुण 'इंकिलाव जिन्दाबाद' चिल्लाते सामने बैठे थे। आगरा कालेज के हाल में खचाखच भीड़। निर्धारित समय से अधिक दो घंटा देर हो गई। विद्यार्थी चीख रहे थे। कोई आकर उन्हें अनुशासित कर रहा था। यह वही दिन थे, जब कसरिएट बाजार में पंडितजी मोटर से कूदकर बाजार में गायब हो गये थे। भीड़ इतनी अनियंत्रित थी! वह वैज्ञानिक, संतुलित, विदेशों में जनतंत्र सीखा हुआ व्यक्तित्व भीड़ से इतना आकर्षित और फिर भी उससे सदा दूर, एकाकी, आत्मकेन्द्रित! वह आये, दो मिनट भी नहीं ठहरे, कुछ हजार रुपये विद्यार्थियों ने इकट्ठा किये थे, लेकर चले गये। जैसे कौंधती हुई बिजली ने क्षणभर को दर्शन दिये।

बाघपत में स्वामी सहजानंद ने अखिल भारतीय किसान-सभा का अधिवेशन किया। दिल्ली में कन्वेन्शन में बोलते हुए जवाहरलाल। समाजवाद को भारतीय संदर्भ में समझाते हुए। दूर से वह अग्नि-शिखा, वह बिजली, अब एक स्थिर, शोध-प्रकाश के झिलमिलाते प्रपात की तरह दिखाई दी।

१९४०-४१

८ नवम्बर, १९४० को सेवाग्राम में मेरा विवाह हुआ, बापू के निर्देशन में, और तब से १९४२ तक कई बार आश्रम में जाना पड़ा। उन दिनों ए. आई. सी. सी. की सभाओं के लिए नेताजन आते। जवाहरलालजी को बापू, जमनालाल बजाज की गाड़ी में, वर्धा से सेवाग्राम अवश्य ले आते। मुझे बराबर याद आती हैं दो तस्वीरें। एक बार जब वर्धा-सेवाग्राम के रास्ते में खूब बारिश हुई थी और कीचड़ था तब यह गाड़ी वहां फंस गई थी, और कैसे हमने यह गाड़ी बाहर ठेली थी। बापू की कुटी से, धोती पहने जवाहरलाल, छाते के नीचे, कैसे बाहर आये, झुंझलाते हुए, और उस गाड़ी तक उन्हें चलना पड़ा!

उससे भी अधिक झुंझलाहट शाम की प्रार्थना-सभा में होती है। बापू आग्रह करते कि बाहर के आंगन की रेती में जवाहरलाल भी सबके साथ बैठें। निर्भर भाव से सेवागांव की देहात मंडली से लगाकर बा और मीराबेन और सुशीला नैयर, सब लालटेन की रोशनी में तुलसी रामायण पढ़ रहे हैं। स-स्वर। जवाहरलालजी झुंझलाते हैं। कोई उनके पास एक बड़ी रामायण लाकर रखता है। वह चश्मा लगाकर कुछ टटोलते हैं, फिर रख देते हैं। उन्हें यह सब भक्ति का सार्वजनिक प्रदर्शन नापसंद है। पर क्या करें, बापू खुद उन्हें पकड़कर लाये हैं। अपने पास के आसन पर बैठाया है। वह अपने-आपको इस वातावरण में अजनबी अनुभव करते हैं।

१९५०

इलाहाबाद। 'नेहरू अभिनन्दन ग्रंथ' की तैयारी। आनन्द-भवन से छाया-चित्र लाये गए। शंकर ने कई व्यंग-चित्र भेजे, उनके शीर्षकादि हिन्दी में लिखकर सफेद चिन्नियां चिपकाना। हरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय आदि की कविताओं के अनुवाद। मराठी, गुजराती, अंग्रेजी की कई रचनाओं के भाषांतर। तब जाना कि नेहरूजी कितना नापसंद करते थे कि कोई उनकी स्तुति करे, मुंह पर। इसी कारण एक बार एक कवि-सम्मेलन-मुशायरे से वह उठकर चले गये।

१९५४

फरवरी १९५४ में अन्नामलाई नगर में पी. ई. एन. में नेहरूजी संस्कृत नृत्य-नाटक 'कुमारसंभवम्' का अभिनय, जो रुक्मिणी अरुण्डेल ने प्रस्तुत किया था, रात के १ बजे तक देख रहे हैं।

१२ मार्च, १९५४ को साहित्य अकादमी की स्थापना हुई। मई के अन्त में भोपाल में नेहरूजी किसी राजनैतिक सम्मेलन में आये थे। नागपुर की आकाशवाणी की ओर से उनके भाषणों के रेकार्डिंग किये। उसके आधार पर नागपुर से कार्यक्रम प्रसारित किये गए। वहीं खबर पहुंची कि मुझे उनके दर्शन करने हैं।

वह सौभाग्यशाली दिवस ३ जून, १९५४ को आया, जब मैं कृष्णा कृपलानीजी के पत्र के अनुसार नागपुर से दिल्ली पहुंचा। ग्यारह बजे वह मुझे जवाहरलालजी के पास ले गये। कोई बीस मिनट तक वह बहुत प्यार से मेरे बारे में पूछते रहे। "नागपुर में मिलनेवाला था। पर वक्त नहीं मिला। वहां तुम क्या करने गये थे?" मैंने बताया कि रेडियो के लिए भाषणों की रेकार्डिंग आदि। "फिर उसे क्या करते हो? पूरी-की-पूरी स्पीच तो ब्राडकास्ट हो नहीं सकती!" मैंने कहा कि उसे सम्पादित करते हैं। इसपर वह बहुत हंसे, "भाषण कैसे सम्पादित हो सकता है! फिर पब्लिक स्पीच के सुननेवाले दूसरे हैं। रेडियो के दूसरे।"

फिर वह कहने लगे—"साहित्य अकादमी का काम मेरे दिल का काम है। इसमें हम तुम्हें ले रहे हैं तो मेरे घर के दरवाजे तुम्हारे लिए हमेशा खुले हैं। मैं नहीं चाहता कि ढोल पीटा जाय। संस्थाएं वन जाती हैं, शोर मचता है, काम कुछ नहीं होता। मैं चाहता हूं कि कुछ ठोस काम हो। अव वात यह है कि वाहर से लोग आते हैं और पूछते हैं कि 'भारतीय साहित्य' क्या है? कौन-सा है? कहां है? तो हमारे यहां लोग हैं कि अपनी-ही-अपनी वात करते हैं। वंगाली वंगला की ही वात करता है और उसे ही सारा भारतीय साहित्य कहता है। तमिलवाला तमिल की ही वात करता है। हिंदीवाला हिंदी-हिंदी का शोर करता है। पूरे भारतीय साहित्य की कोई वात नहीं करता। हम चाहते हैं कि एक जगह कम-से-कम ज़रूरी जानकारी मिले कि किस भाषा में कितने अच्छे लेखक हैं। हर भाषा का हमें विकास करना है। हर साहित्य को वढ़ाना है।" ऐसी ही कई वातें कहीं। गये दस साल में जो कुछ अकादमी ने किया, उसका श्रेय जवाहरलालजी जैसे जागरूक जननेता और सच्चे साहित्यप्रेमी की प्रेरणा को है।

१९५६

साहित्य अकादमी में दस वर्षो की अनंत स्मृतियां हैं। १९६३ तक वह हर कार्यकारिणी सभा में अवश्य आते। ऐसा कभी नहीं हुआ कि पुरस्कार-वितरण उनके हाथों से न हुआ हो। इस वर्ष की दो स्मृतियां नहीं भूलूंगा। १९५६ में वुद्ध के २५००वें परिनिर्वाण-वर्ष के उपलक्ष्य में दिल्ली के प्रदर्शनी मैदान में साहित्य अकादमी की भी पुस्तक-प्रदर्शनी हुई। नेहरूजी भंडारनायके के साथ देखने आये।

उनके घर के लान पर करीव २०० लेखक आकाशवाणी के किसी वार्षिक समारोह के लिए उपस्थित हुए। एक-एक का नाम लिया गया और उसकी साहित्यिक विशेषताएं वताई गई। फिर एक छोटा-सा कवि-सम्मेलन-सा वहां हो गया। मैथिलीशरणजी गुप्त, प्रेमेन्द्र 'मित्र' ने अपनी कविताएं सुनाईं। पाकिस्तान की जेल से छूटे फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' वहां आ गये। उन्होंने भी कविताएं सुनाईं।

१९५९

दो संस्मरण वहुत स्पष्ट याद हैं। राहुलजी को साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था। पुरस्कार देते समय दोनों ख़ूव खिलखिलाकर हँसे, जव पंडितजीने कहा, "कौन कहता है कि आप वीमार हैं? अभी तो आप खासे जवान हैं!" उस रात राहुलजी वता रहे थे कि तिव्वत-यात्राओं के वाद कैसे जवाहरलालजी ने खुद उन्हें इलाहावाद में बुलाकर सारे यात्रा-विवरण सुने। वह राहुलजी को वड़ा इतिहासकार मानते थे।

दूसरी छोटी-सी व्यक्तिगत वात। जव मैं अमरीका जा रहा था, उनके आशीर्वाद लेने पहुंचा—ऐसे ही हड़वड़ी में कुर्ता-पाजामा पहने। मज़ाक में कहा, "विदेश में क्या कपड़े पहनोगे? ऐसे ही मत चले जाना।" मैंने कहा, "नहीं, ढंग के कपड़े पहनूंगा, पर पहनूंगा खद्दर के ही।"

३ अक्तूवर, १९६०
न्यूयार्क

कार्लाइल होटल में एक छोटा कमरा। जवाहरलालजी वहुत कार्य-व्यस्त हैं। संयुक्त राष्ट्र के अधिवेशन में वह आये हैं। फिर भी उनका एक वहुत मधुर पत्र मिला है, "हां, व्यस्त तो रहूंगा, पर मैं एक झलक तुमसे मिलना चाहूंगा।" पत्र देर से मिला। मैं चाहता था, गांधी-जयंती पर उनसे न्यूयार्क

में मिलना। मैडिसन से न्यूयार्क वस से पहुंचने में एक रात और दिन लगता था। मैं उन दिनों विदेश में पढ़ाता था। और विषयों के साथ-साथ गांधी-दर्शन भी एक विषय था। विदेश से मैं पंडितजी से वरावर पत्र-व्यवहार रखता था। एक वार गांधीजी पर एक फिल्म दिखाकर एक गिर्जाघर में डालर इकट्ठे किये गए, भारत के वच्चों के लिए। वह राशि मैंने जवाहरलालजी को भेज दी थी। इस वार मैंने 'सैन फ्रांसिस्को रिव्यू' नामक पत्रिका की एक प्रति उन्हें भेजी थी, जिसमें नेहरूजी का एक लेख छपा था। यह पत्रिका मुझे मेरे एक नीग्रो कवि-मित्र ने भेजी थी, उन्हें भेजने के लिए। नेहरूजी के प्राइवेट सेक्रेटरी ने सवेरे के नाश्ते का समय मुझे दिया। मैं वहुत जल्दी पहुंचा। होटल के नीचे की सीढ़ियों पर मैंने श्री कृष्ण मेनन को देखा। वह अफ्रीका के कुछ नेताओं की प्रतीक्षा में थे। समय पंडितजी के पास वहुत थोड़ा था। १०-१५ मिनट। अखवार पढ़ रहे थे। शायद सुविमल दत्त और श्री चागला उनसे मिलने आये थे। उनके वीच से उठे। मैंने प्रणाम किया तो मेरे सिर की ओर देखकर वोले, "ये क्या कर लिया? अमरीका में बहुत बारीक वाल रखकर हजामत होती है।" हँसे। फिर वोले, "हिन्दुस्तान कव लौटकर आना है?" मुझे अमरीका में दो साल हो गये थे। मैंने कहा, "जव आप कहें। पर कांट्रैक्ट अगले साल जून तक है।" वोले, "तो फिर रहो। तुम अच्छा काम कर रहे हो, मैंने सुना है।" फिर कुछ भारत में रवीन्द्र-जयंती, साहित्य-अकादमी वगैरा की वातें मैंने कीं। पूछा, "आपको अपना लेख मिल गया था? वह वहुत अच्छा लगा, यहां के तरुण लेखकों को। उसमें आपने मशीनीकरण की अति के विरोध में लिखा है। वेदान्त की चर्चा की है।" पंडितजी शर्मीली मुस्कान से वोले, "मैंने क्या लिखा है? चागला की किताव की भूमिका लिखनी थी।" फिर कुछ सोच में पड़ गये। मुझसे पूछा, "अमरीका में और जगह भी कहीं घूमे हो?" मैंने सव व्यौरा वताया। वह खिड़की के पास तक चले आये थे। वाहर न्यूयार्क का कुहरा छाया था। अनजाने खिड़की की कुंडी खोलते हुए, कुछ ताजी हवा के लिए जैसे उत्सुक, वह फिर अन्तर्मुख हो गये। मुझसे पूछने लगे, "सचमुच यहां के लोग भारत के लिए जिज्ञासु हैं? क्या भारत की ओर उनका खिचाव है?" मैंने कहा, "हां, युवक-युवतियों में वहुत अधिक जिज्ञासा है। विद्यार्थी भारत की और जापान की ओर प्रकाश-पुंज की तरह देखते हैं। पर कुछ पुराने ढंग और ढर्रे के लोग भी हैं, जिनके दिमाग में 'मेंटल ब्लाक्स' हैं—जकड़वन्दी है।..." नेहरूजी 'जकड़वन्दी' शब्द पर जैसे उछल पड़े। दुहराकर कहा, "जकड़वन्दी, जकड़वन्दी! यही तो मैं कहता हूं। दोनों ओर, सव ओर यही जकड़वन्दी है। हमें इसे धीरे-धीरे कम करना है।" मैंने देखा, उन्होंने खिड़की खोल दी थी।

अगस्त १९६१

विदेश से लौटने पर मेरा मन कई चीजों से भरा था। स्वीडन और नार्वे में नोवेल पुरस्कार समितियों के दफ्तरों में गया था। व्यक्तिगत रूप से कुछ मेंवरों से भी मिला था। शांति के नोवल पुरस्कार के लिए गांधी का नाम तक नहीं सुझाया गया था। डा० राधाकृष्णन् का नाम एक वार गया था, पर किसी भी राज्य के प्रधान शासकों को नोवल पुरस्कार देने का नियम नहीं है, यह भी सुना था। यूरोप की कई अकादमियां और उनके कामकाज देखकर आया था। वह सव व्यौरा मैंने डा० राधाकृष्णन् को और पंडितजी को सुनाया। जव मैं पश्चिम जर्मनी की प्रशंसा कर रहा था कि कितनी जल्दी वहां पुनर्निर्माण हुआ

इत्यादि तो अपनी चिर-परिचित प्यार-भरी गुस्सेवाली शैली में पंडितजी ने मुझे डांटा, "नही-नही, यह विकास वहुत गलत ढंग से हो रहा है। शस्त्रास्त्र विदेशों से आ रहे है! वह सव तुम नही जानते!"

अप्रैल १९६३

अंतिम वार साहित्य अकादमी के वार्षिकोत्सव के समय मुझे पंडितजी को विज्ञान-भवन में अकादमी की पुस्तिकाओं का शेल्फ दिखाने का और पुरस्कार-प्राप्त लेखकों से मिलाने का सौभाग्य मिला। पुरस्कार-विजेताओं से पंडितजी व्यक्तिगत रूप से मिलते। उनमें लेखकों और कलाकारों के प्रति वड़ा प्रेम और गहरी आत्मीयता थी। मैने वड़ौदा की पी. ई. एन. कांफ्रेंस में, और भी कई लेखक-सम्मेलनों में उन्हें वहुत निकटता से देखा—यहांतक कि अंतिम वार मैथिली पुस्तक-प्रदर्शनी के उद्घाटन के अवसर पर भी—वह ऐसी सभाओं में वहुत खिलते। खुलकर, सहज भाव से वोलते। २० अक्तूवर १९६३ को ग्रुप ४९० की 'आधुनिकतावादी' चित्रकला-प्रदर्शनी में आक्टोवियो पाज के भाषण के वाद पंडितजी ने जो हिंदी में भाषण दिया था, वह वहुत ही मार्मिक था। ऐसे ही आइफेक्स हॉल में महाराष्ट्र के कलाकारों की चित्र-प्रदर्शनी के समय सातवलेकर ने जव पूछा, "क्या आप समझते है कि कलाकार जरूर कोई संदेश दे" तो पंडितजी ने मजाक में झट-से जवाव दिया था, "पर कुछ दिलोदिमाग के किवाड़ जो वंद रहते है, उनका क्या किया जाय? कला चाहे कितना थपथपाती रहे!"

२८ मई, १९६४

आज सवेरे पांच वजे श्रीमती के कल रात काते हुए सूत की माला चुपचाप उन चरणों में चढ़ा आया। अव केवल फूल वचे है। लाल गुलाव और वेला के फूल। शांत, स्तव्ध सोया हुआ चेहरा। वह जो ज्योतिशिखा थी, चैतन्य की विद्युल्लता थी, वह अव 'विभूति' वन गई। करोड़ों आंखों में आंसू है और वह उस चिदंश को लौटा नही सकते। वह आज अस्थिशेष हो जायगा और कल भारत के कण-कण में मिल जायगा—"मै एक पूरव और पच्छिम का अनमिल मिश्रण हूं। शायद मैं पूरवी से अधिक पच्छिमी हूं। मैं सव जगह पराया-पराया-सा अनुभव करता हूं। कही भी सहज, घर-जैसा नही पाता। फिर भी हिन्दुस्तान की जमीन मुझसे चिपटती चली आती है।"

हिन्दुस्तान की वह सरजमीन आज शान्तिघाट पर मौन, श्रद्धानत अपने उस जवाहर को खोज रही है, जो भारत की खोज करता रहा, आ-जीवन, आ-मृत्यु! ●

पुरानी स्मृतियां

एकलव्य की तरह शिष्यत्व स्वीकार करनेवाले की अनुभूति, चरणों में बैठकर शिक्षा ग्रहण करनेवाले शिष्य की स्मृतियों की अपेक्षा, कुछ कम महत्वहीन नहीं होनी चाहिए। गांधी-युग में मुझ-सरीखे अनेक सामान्य कार्य-कर्ताओं ने अपने बड़े नेताओं का शिष्यत्व एकलव्य की तरह ही स्वीकार किया था। शिष्यत्व की वह भावना मुझमें गुरुकुल कांगड़ी में विद्यार्थी-जीवन में ही प्रबल हो चुकी थी। जब भी कभी वहां कोई नेता पधारता, उनके दर्शनों से तृप्त होने की लालसा से मैं उनके चारों ओर चक्कर काटता रहता। अवसर मिलता तो उनके पीछे-पीछे या उनके साथ-साथ गुरुकुल भूमि की सीमा तक चला जाता। लेकिन राष्ट्र-नायक श्री जवाहरलाल नेहरू का सार्वजनिक जीवन तो शुरू हुआ १९२०–२१ में, जब मैं गुरुकुल छोड़ चुका था। उनके प्रथम दर्शन का सौभाग्य मुझे गुरुकुल से बाहर आने के बाद ही, यदि मैं भूलता नहीं तो, वर्धा में १९२३ में प्राप्त हुआ होगा। स्वर्गीय देशभक्त सेठ जमनालाल बजाज के व्यक्तित्व एवं आतिथ्य से आकर्षित हो अनेक बड़े-बड़े नेताओं ने १९२० से ही वर्धा पधारना शुरू कर दिया था। नागपुर-कांग्रेस (दिसम्बर, १९२०) के बाद तो वर्धा को क्रमशः किन्तु बहुत वेग से 'राष्ट्रीय तीर्थ' का-सा महत्व प्राप्त हो गया था।

... ...

१९२७ से १९३६ तक के दस वर्ष नेहरूजी के और राष्ट्र के जीवन में भी संघर्ष की दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं। १९२९ में लाहौर में कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का जो ध्येय स्वीकार किया था, उसकी भूमिका १९२७ में इंगलैंड की पार्लमेंट में लार्ड बर्कनहैड की भारतीय नेताओं को दी गई वह चुनौती थी, जिसमें उन्होंने कहा था कि वे शोर तो बहुत मचाते हैं, किन्तु ऐसी कोई सर्वसम्मत योजना प्रस्तुत नहीं करते, जिसको स्वीकार कर औपनिवेशिक स्वराज्य की दिशा में ठोस कदम उठाये जा सकें। इस चुनौती को सर्वदल-सम्मेलन का मोर्चा कायम करके स्वीकार किया गया। पं. मोतीलालजी नेहरू उसके अध्यक्ष थे। इसीलिए उस सम्मेलन के द्वारा प्रस्तुत औपनिवेशिक स्वराज्य की योजना को 'नेहरू-रिपोर्ट' नाम दिया गया। उसके बाद जो घटनाएं घटीं और जिनके फलस्वरूप कांग्रेस के ध्येय में पूर्ण स्वाधीनता का समावेश किया गया, उस ध्येय की पूर्ति के लिए नमक-सत्याग्रह का श्रीगणेश किया गया था। गांधी-इरविन समझौते के कारण वह स्थगित हुआ और सरकार द्वारा उसका पालन न किये जाने पर १९३२ में सत्याग्रह और अधिक वेग से प्रारंभ हुआ। ये घटनाएं उन दस वर्षों में चित्रपट की तरह तेजी से घट गईं। उन सब घटनाओं के मुख्य सूत्रधार महात्मा गांधी और सरदार पटेल के साथ-साथ श्री जवाहरलालजी भी थे। उन वर्षों में

मुझे नेहरूजी को कुछ समीप से देखने का और उनका अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ, उसकी अनुभूतिपूर्ण स्मृतियां मेरे लिए विशेष महत्वपूर्ण हैं।

... ...

नेहरूजी के कुछ अधिक निकट आया मैं अपने कलकत्ता के जीवन में। १९२८ के शुरू में ही मैं कलकत्ता चला गया था। नेहरूजी ने सोवियत क्रांति के दशाब्दी-समारोह में सम्मिलित होने के लिए १९२७ में जो मास्को-यात्रा की थी, उसके कारण मुझ-सरीखे युवकों के लिए वह 'आशादीप' बन गये थे। जब कभी किसी भी निमित्त वह कलकत्ता आते तो बड़ा बाजार की हमारी टोली उनको घेर लेती। उनके दो-एक कार्यक्रम तो बड़ा बाजार क्षेत्र में अवश्य हो जाते। उन दिनों की उनकी सरलता, मिलनसारिता, सहृदयता और आत्मीयता से हम सब विभोर हो उठते थे। हमारे अनुरोध को उन्होंने कभी टाला हो, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता।

... ...

संभवत: १९२८ की घटना है। कलकत्ता में सार्वजनिक जुलूसों और सभाओं पर प्रतिबंध लगा था। हमलोगों ने भावावेश में आकर हावड़ा स्टेशन पर उनके स्वागत और कार्नवालिस स्ट्रीट आर्यसमाज भवन में उनके भाषणों का आयोजन किया। सार्वजनिक अपील प्रकाशित की गई। उस पर हस्ताक्षर करनेवाले बारह-तेरह साथियों और सभा की अध्यक्षा सुभद्राजी पर प्रतिबन्ध भंग करने का मुकदमा चलाया गया। अपने ढंग का वह पहला ही मुकदमा था। वह काफी लम्बा चला। उसी बीच नेहरूजी जब दुबारा कलकत्ता आये, तब उस मुकदमे की जानकारी पाकर खूब हँसे। मुकदमा तो बाद में पुलिस ने वापस ले लिया। हम दोनों को उसका इतना लाभ मिला कि नेहरूजी के कुछ अधिक स्नेहभाजन बन गये।

... ...

उनकी 'तुनकमिज़ाजी' की भी एक घटना मैं कभी नहीं भूलता। मुहम्मदअली पार्क (चित्तरंजन एवेन्यू) में उनके व्याख्यान के लिए सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। मंगलाचरण हारमोनियम पर कुछ महिलाएं करनेवाली थीं। सभापति-पद का प्रस्ताव बड़ा बाजार कांग्रेस के महामंत्री पंडित पुरुषोत्तम राय पेश करने को खड़े हुए। उन्होंने नेहरूजी की प्रशंसा में भाषण देना शुरू किया। अपनी प्रशंसा सुनते ही नेहरूजी बिगड़ उठे। खड़े होकर रायसाहब को बिठा दिया और एकाएक भाषण शुरू कर दिया। अपनी प्रशंसा और हारमोनियम की उन्होंने जो भर्त्सना की, उसपर हम सब स्तब्ध रह गये। उन्होंने रायसाहब की ओर इशारा करते हुए कहा कि आपने मुझे किसी नाटक में सूत्रधार बनाकर तो निमंत्रित नहीं किया। आम सभाओं में प्रशंसा और हारमोनियम आदि का आडम्बर शोभा नहीं देता। तबसे हम लोगों ने नियम बना लिया कि उनके भाषणों की सभा में न किसीको सभापति बनाया जाय, न कुछ परिचय दिया जाय और न अंत में धन्यवाद की रस्म ही अदा की जाय। वह आते। दो शब्दों में उनसे व्याख्यान शुरू करने की प्रार्थना की जाती। अंत में सभा-समाप्ति की घोषणा हो जाती। मैंने अनुभव किया कि शिष्टाचार का दिखावा या आडम्बर उनको कतई पसन्द न था।

... ...

१९२८ की कलकत्ता-कांग्रेस का वह दृश्य मैं कभी भूल नहीं सकता। उसमें नेहरूजी और सुभाषबाबू के स्वभाव का अंतर मैंने पहली बार देखा। मेरी यह धारणा है कि उसी घटना के कारण सुभाषबाबू गांधीजी के मन से कुछ उतर गये और नेहरूजी उनके स्नेहपात्र बन गये। घटना यह थी कि विषय-नियामक समिति में जब नेहरू-रिपोर्ट पर विचार शुरू हुआ, तब मतभेद चरम सीमा पर पहुंच गया। उस रिपोर्ट का आधार था औपनिवेशिक स्वराज्य। नेहरूजी और सुभाषबाबू के नेतृत्व में युवक-समुदाय औपनिवेशिक स्वराज्य की बात सुनने तक को तैयार न था। वह पूर्ण स्वाधीनता के लिए तड़प रहा था। दो दिन की गर्मागर्म बहस के बाद गांधीजी ने बीच का रास्ता यह निकाला कि अंग्रेज सरकार को उसे स्वीकार करने के लिए एक वर्ष की मोहलत दी जाय। ३१ दिसम्बर, १९२९ की मध्य रात्रि को उसको पूरा हुआ समझा जाय। यदि इस बीच नेहरू-रिपोर्ट स्वीकार न की जाय तो कांग्रेस के ध्येय में पूर्ण स्वाधीनता का समावेश कर दिया जाय। गांधीजी तथा मोतीलालजी के अनुरोध पर नेहरूजी और सुभाषबाबू भी उससे सहमत होगये। उनके नेतृत्व में युवक-समुदाय भी शान्त होगया। विषय-नियामक समिति में गांधीजी का सुझाव सर्व-सम्मति से स्वीकार कर लिया गया। पूरा विश्वास था कि खुले अधिवेशन में भी उसको एकमत से स्वीकार कर लिया जायगा। अध्यक्ष मोतीलालजी ने मंच पर आकर जब यह पूछा कि कोई उस प्रस्ताव के विरोध में तो नहीं है, तब एकाएक सुभाषबाबू बड़ी ही गंभीर मुद्रा में उठ खड़े हुए। उन्होंने अपनी गंभीर तेजस्वी वाणी में इतना ही कहा कि बिना विरोध औपनिवेशिक स्वराज्य की बात स्वीकार किया जाना मुझे राष्ट्रीय अपमान अनुभव होता है और अपनी अंतरात्मा की आवाज को मैं दबा नहीं सकता। मतदान के समय भी नेहरूजी ने सुभाषबाबू का साथ नहीं दिया। मैं प्रतिनिधियों में बैठा बड़े कौतूहल से उस सारी घटना को देख रहा था। दोनों नेताओं को हृदय-सम्राट् मानकर युवक पूजते थे। लेकिन उस समय नेहरूजी की मुद्रा यमुना की तरह गंभीर और शांत थी और सुभाषबाबू में गंगा-सरीखा अदम्य वेग तथा उत्तुंग लहरें जोश मार रही थीं।

... .

१९२९ का सारा वर्ष ३१ दिसम्बर की अर्ध-रात्रि की प्रतीक्षा में राजनैतिक मंथन में बीता। नेहरूजी और सुभाषबाबू पूर्ण स्वाधीनता की आकांक्षा देशवासियों के हृदय में जगाने के लिए कटिबद्ध होगये। इसी उद्देश्य से 'इंडिपेंडेंस ऑव इंडिया लीग' अर्थात् 'भारतीय स्वतंत्रता संघ' का गठन दोनों ने मिलकर किया। कलकत्ता में उसके उद्घाटन-समारोह में मैं और सुभद्राजी दोनों उसके संस्थापक सदस्य के रूप में सम्मिलित हुए थे। उस संघ के गठन में पहली बार नेहरूजी की समाजवादी विचारधारा का कुछ आभास मिला था। 'पूर्ण स्वाधीनता' के ध्येय को मूर्त-रूप देने के लिए समस्त भारतीय नागरिकों के लिए बिना किसी भेदभाव के राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक समता व समानता का आदर्श स्वीकार किया गया था। आर्थिक शोषण-रहित समाज-गठन का विशेष रूप में उल्लेख किया गया था। वह पहला संगठित प्रयत्न था, जिसके माध्यम से नेहरूजी ने सुभाषबाबू के सहयोग से आर्थिक क्रांति की समाजवादी विचारधारा प्रस्तुत की थी।

... ...

लाहौर में रावी-तट पर १९२९ के दिसम्बर मास के अंतिम दिनों में कांग्रेस-अधिवेशन के लिए जिस उत्सुकता से उमंगभरे हृदय लेकर प्रतिनिधि देश के कोने-कोने से पधारे थे, उसकी अनुभूति आज भी हृदय में गुदगुदी पैदा कर देती है। मैं कलकत्ता से लाहौर आया था। इसलिए उस लम्बे रास्ते में जो कुछ देखा, उससे स्पष्ट था कि देश एक जबरदस्त करवट ले रहा है। कांग्रेस नगर में प्रतिनिधियों ने तीन-चार दिन उसी उत्सुकता और उमंगों में बिताये। लाहौर की उन दिनों की सर्दी में शरीर कांप जाता था और हाथ-पैर ठिठुरते रहते थे। लेकिन पूर्ण स्वतंत्रता की चर्चा से पैदा हुई गर्मी के कारण उस सर्दी को प्रतिनिधि प्रायः भूल ही गये थे। लाहौर के नागरिकों ने अपने 'राष्ट्रपति' का जो शानदार स्वागत किया था और उस स्वागत में श्री नेहरू का सफेद घोड़े पर जो राजकीय जुलूस निकाला गया था, उसका स्वर्णिम दृश्य देखते ही बनता था। लाहौर के सुप्रसिद्ध बाजार अनारकली में जब माता स्वरूपरानी ने गर्वीले हृदय से अपने पुत्र का मानो राजतिलक ही किया था, उसका दृश्य जैसा दिव्य और भव्य था, उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। उपनिषदकारों ने मानव के शाश्वत सुख का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसकी अनुभूति केवल अन्तःकरण द्वारा ही की जा सकती है, उसका वर्णन वाणी द्वारा नहीं किया जा सकता। ठीक यही स्थिति उस समय के दृश्य से हृदय में पैदा हुई अनुभूति की थी। पंडित मोतीलालजी ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में युवराज नेहरू को राष्ट्रपति का आसन सौंपते हुए जो छोटा-सा मर्मस्पर्शी भाषण दिया था, उसका एक-एक शब्द कांग्रेस पंडाल में श्रोता तथा प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित नर-नारियों के हृदय को बींध गया था। मैं कलकत्ता के प्रतिनिधियों के बीच बैठा देख रहा था कि लाखों की उस उपस्थिति में ऐसी निस्तब्धता छाई हुई थी कि एक-दूसरे के सांस की भी आवाज सुनी जा सकती थी और सबके हृदय भावुकता से कुछ ऐसे विभोर हो रहे थे कि वे अपनेको ही भूल-से गये थे। कांग्रेस के अध्यक्ष को उन दिनों 'राष्ट्रपति' कहा जाता था। मैं उससे पहले भी आधा दर्जन बार राष्ट्रपति के चुनाव का वह भव्य दृश्य देख चुका था, परंतु लाहौर के उस दृश्य की भव्यता मेरे-सरीखे हजारों प्रतिनिधियों के लिए 'न भूतो न भावी' थी।

३१ दिसम्बर की अर्द्ध-रात्रि की प्रतीक्षा में अधिवेशन की कार्यवाही कुछ ऐसी लग रही थी जैसे कि उसमें किसीको कुछ रस ही न था। ३१ दिसम्बर की रात्रि में आयोजित बैठक में जिस उत्साह से प्रतिनिधि सम्मिलित हुए, उसका वर्णन क्या किया जाय! नेहरूजी का उत्साह तो बच्चों की तरह संभालते न संभलता था। बार-बार सबकी आंखें घड़ी की सुइयों पर जाती थीं, यह देखने के लिए कि वह कब एक वर्ष की अवधि पूरी होने की घोषणा करती है, क्योंकि उसी घड़ी में अंग्रेजी दासता में जकड़ा हुआ भारतीय राष्ट्र पराधीनता के सभी बंधनों से मुक्त होकर पूर्ण स्वतंत्रता की ऐतिहासिक घोषणा करने को था। अंत में वह घड़ी आ पहुंची। नेहरूजी के उत्साह का बांध टूट गया और अपार प्रसन्नता के उन्माद में उनका मन-मयूर राष्ट्रपति के आसन पर बैठे-बैठे ही नाच उठा। 'पूर्ण स्वतंत्रता' के ध्येय की घोषणा हुई और राष्ट्र-पति नेहरू एक दल के साथ नाचते-कूदते सारे कांग्रेस नगर में ऐसे घूम गये, जैसेकि वे नवयुग के आगमन का संदेश देनेवाले देवदूत ही थे। लाहौर की नगरी अपने भाग्य पर इतरा उठी और पंजाब का कोना-कोना अपने सौभाग्य से आलोकित हो उठा। ठीक दस वर्ष बाद, १९१९ के फौजी शासन के क्रूर कांड के

विषाद की परणति हुई परम आनंद की उस अलौकिक अनुभूति में। सूत्रधार थे उस समय के हृदयसम्राट् और आज के राष्ट्रनायक श्री जवाहरलाल नेहरू। वह अनुभूति आजतक भी मेरे हृदय में वैसी ही विद्यमान है।

... ...

१९२९ में नेहरूजी के राष्ट्रपति-पद के लिए चुने जाने की पृष्ठभूमि का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा। तब राष्ट्रपति-पद के लिए तीन नाम प्रस्तुत किये गए थे—पहला महात्मा गांधी, दूसरा सरदार पटेल और तीसरा श्री नेहरू। तीनों को प्रदेश कांग्रेस कमेटियों के क्रमशः तेरह, पांच और तीन मत प्राप्त हुए थे। लेकिन महात्मा गांधी के हृदय को कलकत्ता-कांग्रेस में नेहरूजी ने जिस रूप में जीत लिया था, उसका उनपर इतना प्रभाव था कि उन्होंने चुने जाने पर भी अपना नाम वापस लेते हुए उनके नाम का समर्थन किया और समर्थन में 'यंग इंडिया' में कुछ जोरदार लेख भी लिखे। सरदार पटेल भी अपना नाम वापस ले चुके थे। इसलिए राष्ट्रपति के चुनाव का प्रश्न कांग्रेस के विधान के अनुसार लखनऊ में कांग्रेस महासमिति की बैठक में उपस्थित किया गया। उसमें भी गांधीजी ने अत्यन्त मार्मिक अपील की। उस अपील के मर्मस्पर्शी शब्दों की ध्वनि आज भी मेरे कानों में गूंजती रहती है। मोतीलालजी ने तो कांग्रेस द्वारा चुने जाने के बाद घटना-क्रम की दृष्टि से युवराज नेहरू के नाम की राष्ट्रपति-पद के लिए उत्तराधिकारी के रूप में घोषणामात्र की थी, किन्तु गांधीजी ने तो राष्ट्रनायक-पद के लिए अपने उत्तराधिकारी के रूप में ही तब उनका वरण कर लिया था। तब कितने थे, जो गांधीजी की उस दूरदृष्टि से नेहरूजी को देख और समझ सके थे? निश्चय ही लाहौर में नेहरू के भाग्य का वह सितारा पहली बार चमका था, जिसका तेज निरंतर निखरता ही गया।

... ...

१९३४ में मुझे एक बार फिर नेहरूजी के अति निकट सान्निध्य में आने का दुर्लभ लाभ मिला। मैं बंगाल आर्डिनेंस में गिरफ्तार होने की संभावना को टालने और छाया की तरह पुलिस के पीछे लगे रहने से तंग आकर १९३३ के अंत में कलकत्ता छोड़ दिल्ली चला आया था। १९३४ के जनवरी के मध्य मास में उत्तरी बिहार में भूकम्प से प्रलय का-सा महाविनाश होगया था। कलकत्ता रिलीफ सोसायटी का तार मिला कि मुझे तुरंत राहत-कार्य के लिए मुजफ्फरपुर पहुंच जाना चाहिए। मैं इलाहाबाद ठहरते हुए जिस गाड़ी से पटना के लिए रवाना हुआ उसीसे नेहरूजी भी पटना के लिए रवाना हुए। श्री विश्वम्भर-नाथ पांडे के साथ मैं स्टेशन पर उनसे मिला। फिर पटना में मिलने की बात हुई और मैं अपने डिब्बे में आकर सो गया। मुझे दो-तीन दिन पटना में रुकना पड़ा और नेहरूजी उत्तरी बिहार के दौरे पर निकल गये। मुजफ्फरपुर पहुंचने पर उसी दिन शाम को कार्यकर्ताओं की एक बैठक में नेहरूजी ने अपने दौरे के अनुभव सुनाये। बेदौल (कटरा थाना) के आस-पास के क्षेत्र की अत्यंत संकटापन्न स्थिति का उन्होंने हृदयस्पर्शी वर्णन सुनाया और वहां कुछ अच्छे कार्यकर्ताओं के जाने की बात भी कही। बैठक समाप्त होने के बाद मैंने उनसे निवेदन किया कि मैं वहां जाऊंगा। उन्होंने मेरी पीठ पर हाथ फेरा। खड़े-खड़े मुझे वहां की भयानक स्थिति का कुछ और परिचय देते हुए कहा कि वहां डटकर काम करना होगा। घबराकर भाग आने से हालत बद से बदतर हो जायगी।

भाई आबिद अली मुजफ्फरपुर जिला राहत कमेटी के कार्यालय में इंचार्ज थे। उनसे पता चला कि भाई रामवृक्ष बेनीपुरी का गांव भी उसी पीड़ित क्षेत्र में है। मैं उनके साथ वहां पहुंचा तो वहां की स्थिति को देखकर मेरा हृदय कांप उठा। समुद्र की-सी लम्बी-चौड़ी झील का परला किनारा कहीं दीख न पड़ता था। चालीस गांव उसकी चपेट में आ चुके थे, जिनमें से अधिकतर बारह महीने उसके विषैले पानी से घिरे रहते थे। न कहीं खेती के लिए जमीन थी और न सड़कें। फिर भी लगान व सड़क-कर जबरन वसूल किया जा रहा था। उस महाविनाश और सरकार की नृशंसता की दर्दभरी कहानी यहां क्या दी जाय? नेहरूजी का एक वक्तव्य वहां के संबंध में प्रकाशित हुआ। उसमें उन्होंने लगान व सड़क-कर की जबरन वसूली के लिए पीड़ित लोगों के घरों में बर्तन तक कुड़क किये जाने का सरकार पर आरोप लगाया। सरकार ने उससे इन्कार किया। मैंने कुड़की के वारंट और अन्य कागजात एकत्र करके प्रमाण के रूप में जिले के प्रमुख नेता और बिहार विधान सभा के अध्यक्ष श्री रामदयाल सिंह के पास पहुंचाये। नेहरूजी को भी इसकी सूचना दी गई। उस झील को 'भरथुआ चौर' कहा जाता था। वहां नहर बनाकर उसका पानी पास की नदी में मिला देने के लिए प्रचंड आंदोलन शुरू होगया। गांधीजी ने उसमें गहरी दिलचस्पी ली और स्वयं वहां पहुंचकर वहां की स्थिति का अध्ययन किया। नहर बनाये जाने की घोषणा की। केवल ४० हजार रुपये के खर्च के लिए असमर्थता बताकर जिस दुःसह स्थिति की निरंतर उपेक्षा की जा रही थी, वह नेहरूजी के हृदय के लिए कांटा बन गई और और कुछ ही महीनों में ऐसे हल हो गई, जैसेकि वहां कुछ था ही नहीं। वह उजड़ा प्रदेश फिर आबाद हो गया, धान के खेत लहलहा उठे और सूखी हड्डियों में नये जीवन का संचार होगया। नौ-दस महीने सुभद्राजी के साथ वहां रहकर मैंने अनुभव किया कि जनता के दुख-दर्द एवं पीड़ा की मर्मान्तिक वेदना ने नेहरूजी के हृदय को किस प्रकार व्यथित कर दिया था, और कैसे उन्होंने उस पीड़ित, शोषित एवं उपेक्षित प्रदेश को भारत-व्यापी ऐसे प्रचंड आंदोलन का विषय बना दिया था, जिससे पटना और नई दिल्ली दोनों सरकारों के आसन डोल गये थे। पाठकों को याद होना चाहिए कि बिहार से कलकत्ता पहुंचकर नेहरूजी ने वह ऐतिहासिक भाषण दिया था, जिसको 'राजनैतिक भूकम्प' नाम दिया गया था और जिसके लिए उन्हें राजद्रोह में कठोर कारावास की सजा दी गई थी। नेहरूजी ने अपनी समाजवादी विचारधारा का उसमें प्रतिपादन करते हुए आर्थिक शोषण को राजनैतिक क्रांति का मूल कारण बताया था और कहा था कि बिहार-भूकम्प की ही तरह भारत में शीघ्र ही राजनैतिक भूकम्प आना निश्चित है। तब मैंने दुखी जनता के प्रति नेहरूजी की जिस प्रतीति, अनुभूति और अन्तर्वेदना के दर्शन किये थे, उसके कारण उनके प्रति मेरी अनुरक्ति 'अगाध भक्ति' में परिणत होगई थी। मैंने अनुभव किया कि वह वास्तव में 'जनता के नेता' और गांधीजी के सच्चे अर्थों में 'सुयोग्य उत्तराधिकारी' थे।

... ...

संस्कृतनिष्ठ क्लिष्ट हिन्दी के आलोचक होने के कारण जो लोग नेहरूजी को हिन्दी का विरोधी मानते थे, उनसे मेरा अनुभव सर्वथा विपरीत है। दैनिक 'हिन्दुस्तान' के प्रकाशन का प्रारंभ १९३६ के अप्रैल मास में जब हुआ था, तब नेहरूजी लखनऊ-कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये थे। १९३६ में ही दिसम्बर

भाग में फैजपुर में वह पुनः कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। तब दैनिक 'हिन्दुस्तान' का वह 'कांग्रेस-विशेषांक' प्रकाशित किया गया था, जो चौगुनी कीमत पर भी सुलभ न था। उसके लिए नेहरूजी से विशेष संदेश मांगा गया और प्रार्थना की गई कि वह अपने हाथ से हिन्दी में वह संदेश लिखने की कृपा करें। वह संदेश ऐसी साफ-सुथरी एवं शुद्ध लिपि और सरल हिंदी में भेजा गया था कि एक भी शब्द की कहीं कांट-छांट न की गई थी। उसका ब्लाक बनाकर मुखपृष्ठ पर नेहरूजी के चित्र के साथ उसे तीन रंगों में छापा गया था। नेहरूजी को ऐसी मुद्रा में दिखाया गया था कि वह एक हाथ में तिरंगा झंडा लिये हुए थे और दूसरे हाथ को फैलाकर जनता को संबोधन कर रहे थे। फैले हुए हाथ के ठीक सामने वह संदेश दिया गया था। फैजपुर-कांग्रेस का अध्यक्ष-पद उनके समाजवादी विचारों के कारण अत्यंत विवादास्पद होगया था और कांटों का ताज बन गया था। तब भी उन्होंने वह संदेश भेजने का समय निकाल लिया। इसी तरह वह 'हिन्दुस्तान' के लिए जब-तब संदेश भेजते रहते थे। १९३७ में उन्होंने उत्तर प्रदेश के झांसी, मथुरा, आगरा, मेरठ, सहारनपुर, देहरादून आदि जिलों का विशेष दौरा किया था। यह सारा क्षेत्र 'हिन्दुस्तान' का अपना ही था। उस दौरे के समाचार प्रकाशित करने में 'हिन्दुस्तान' ने अंग्रेजी पत्रों और संवाद-समितियों को भी मात दे दी थी। नेहरूजी ने दिल्ली आने पर मुझे खास तौर से डा० अन्सारी की कोठी पर बुलाकर मेरी पीठ थपथपाई और कहा कि मैं नहीं जानता था कि हिन्दी पत्र भी वैसी जागरूकता से काम कर सकते हैं। वे अंग्रेजी पत्रों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली और शक्तिशाली हैं। नेहरू-परिवार में 'हिन्दुस्तान' जिस चाव से पढ़ा जाता था, उसकी साक्षी आज भी उन दिनों की उसकी फाइलें दे सकती हैं। नेहरूजी का हिन्दी-प्रेम मेरे लिए संदेह और विवाद से रहित था।

... ...

आज जब मैं १९२७ से १९३६ तक के दस वर्षों की अपबीती घटनाओं का सिंहावलोकन करता हूं तो अपने दिवंगत राष्ट्रनायक के खिलते हुए राष्ट्रीय जीवन का सुनहरा दृश्य सप्तरंगी इन्द्रधनुष की तरह मेरी आंखों के सामने उभर आता है। उसे देखकर मैं आनंदविभोर हो जाता हूं। सचमुच ही पुरानी प्रतीतियों तथा अनुभूतियों की स्मृति भी कैसी मनोमुग्धकारी होती है! ●

दुनिया के लिए जवाहरलाल की व्याख्या करना किसीके लिए धृष्टता का काम होगा—विशेषकर एक विदेशी के लिए, क्योंकि नेहरू के बारे में स्वयं नेहरू ने जितना स्पष्ट लिखा है, उतना और कोई नहीं लिख सकता।

—एडगर स्नो

जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

पत्रकार-जगत को नेहरू की देन

श्री नेहरू की मृत्यु में देश के प्रत्येक नागरिक ने एक अपना आत्मीय खोया है, परन्तु जहांतक पत्रकारों का संबंध है, उन्होंने अपना एक ऐसा मित्र खोया है, जिसकी क्षति-पूर्ति हो ही नहीं सकती।

श्री नेहरू स्वयं पत्रकार और लेखक थे। वकालत का धंधा उन्होंने छोड़ दिया था। वैयक्तिक जीवन में यदि उन्होंने कोई भी धंधा किया तो वह लेखन व पत्रकारिता थी। पत्रकारों के प्रति और पत्रों की समस्याओं के प्रति उनको जानकारी ही नहीं थी, गहरी अभिरुचि भी थी। पत्रकारों के बीच वह सर्वदा अपने सर्वोत्तम रूप में प्रकट होते थे। श्री नेहरू की प्रेस-कांफ्रेंस संसार की ऐसी चीज थी, जिसकी तुलना की कोई संस्था अभी तक नहीं बन सकी। भारतवर्ष में प्रेस-कांफ्रेंस की परिपाटी क्रिप्स-मिशन के पश्चात् ही पड़ी। हमारे देश के लिए यह सर स्टेफोर्ड क्रिप्स की देन थी। अमरीका प्रेस-कांफ्रेंस को राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने पल्लवित किया। परंतु नेहरू की प्रेस-कांफ्रेंस ब्रिटिश और अमरीका दोनों प्रेस-कांफ्रेंस से भिन्न थी। उस घंटे-डेढ़-घंटे के भीतर दो सौ से अधिक पत्रकारों में से कोई भी व्यक्ति राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के किसी प्रश्न पर श्री नेहरू से उलटा-सीधा, गर्म-नर्म, जैसा चाहे सवाल कर सकता था और उसको अपने सवाल का चौकस उत्तर मिलता था। अमरीका में विदेशी संवाददाताओं को प्रेस-कांफ्रेंस में खड़े होने की इजाजत है, वे कोई प्रश्न नहीं पूछ सकते। हमारे देश में अमरीका, ब्रिटेन, पाकिस्तान, फ्रांस और जर्मनी के संवाददाता श्री नेहरू से ऐसे-ऐसे सवाल कर देते थे, जिनको करने की विदेशों के राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री भी हिम्मत नहीं करते थे और मजे की बात यह थी कि श्री नेहरू ने हमेशा बिना किसी भेदभाव के उन सवालों का जी-भरकर उत्तर दिया। श्री नेहरू ने अपनी प्रेस-कांफ्रेंस में देश के ऐसे-ऐसे प्रश्नों पर प्रकाश डाला, जो उस कांफ्रेंस से पहले अछूते थे और सरकार के पचासों नये निर्णयों को दिशा प्रदान की।

मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि श्री नेहरू की एक प्रेस-कांफ्रेंस में मद्रास प्रांत के विभाजन का प्रश्न उठा और यह पूछा गया कि मद्रास नगर के भविष्य के संबंध में किस-किसके हितों का ध्यान रखा जायगा। उन्होंने कहा कि तेलुगु और तमिल भाषा दोनों की इच्छाओं का ध्यान रखना पड़ेगा। उन्हीं दिनों विंध्य प्रदेश के मध्य प्रदेश में विलय के समाचार चल रहे थे। सरदार पटेल ने विंध्य प्रदेश के चारों संसद्-सदस्यों को बम्बई इसलिए बुलाया था कि वे इस समझौते पर हस्ताक्षर कर दें कि विंध्य प्रदेश मध्य प्रदेश में सम्मिलित कर दिया जाय। संसद-सदस्य बम्बई पहुंच भी चुके थे। मुझे इस बात का पता था और मैं नहीं चाहता था कि विंध्य प्रदेश का मध्य प्रदेश में विलय हो। मैंने पूछा, "विंध्य प्रदेश के विलय के बारे

में भी मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के दावे हैं। क्या विंध्य प्रदेश की जनता की भी राय ली जायगी?" श्री नेहरू ने तुरंत उत्तर दिया, "हां, विंध्य प्रदेश के संबंध में भी उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की राय के साथ-साथ विंध्य प्रदेश की जनता की राय का भी ध्यान रखा जायगा।" इस उत्तर का छपना था कि सरदार पटेल ने मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री तथा विंध्य प्रदेश के संसद-सदस्यों से कह दिया कि पंडितजी कह चुके हैं, अब इस समय विलय नहीं होगा और विंध्य प्रदेश तबतक एक स्वतंत्र राज्य के रूप में बना रहा, जबतक कि १९५६ में भारत के प्रांतों का पुनर्गठन नहीं हुआ।

श्री नेहरू की प्रेस-कांफ्रेंस वह खुली अदालत थी, जिसमें जनता की किसी भी मांग को चोरी-छिपे नहीं, डंके की चोट खरी-से-खरी भाषा में रखा जा सकता था और जिसकी सुनवाई होती थी। श्री नेहरू अपनी गलती को स्वीकार करने में कभी चूकते नहीं थे। मैंने एक बार उनसे पूछा था कि हमारे सीमावर्ती क्षेत्रों में सड़क क्यों नहीं बनाई जातीं? उस समय चीनी आक्रमण नहीं हुआ था, पर चीन के साथ हमारे संबंध खराब हो चुके थे। श्री नेहरू ने कहा, "हां, यह समस्या महत्वपूर्ण है और हम इसके लिए एक नया संगठन बना रहे हैं। लद्दाख से श्रीनगर को संबद्ध करनेवाली एक सड़क का बनना पांच साल पहले शुरू हुआ था। पर बाद में पता लगा कि इंजीनियर सारा रुपया खा गया और सड़क बनी ही नहीं।"

पर यह बात कि नेहरू पत्रकारों के हरेक प्रश्न का उत्तर दें, केवल प्रेस-कांफ्रेंस तक ही सीमित नहीं थी। कांग्रेस पार्टी की कार्रवाही पत्रकारों को बताने की पहले व्यवस्था नहीं थी। उस समय महत्वपूर्ण अवसरों पर पत्रकारों को यदि कोई सूचना लेनी होती तो जब श्री नेहरू बैठक से निकलते तो उनको घेर लेते। उस वक्त कुछ पूछते तो उसके जवाब में कुछ-न-कुछ मिलता ही था। चाहे योजना-आयोग तीसरी पंचवर्षीय योजना की रिपोर्ट प्रकाशित कर रहा हो, चाहे डीन रस्क श्री नेहरू से मिलने आये हों, चाहे गोविन्दवल्लभ पंत के निवास-स्थान पर केरल में राष्ट्रपति शासन लागू करने की समस्या पर विचार हो रहा हो, जब पत्रकार श्री नेहरू का रास्ता रोककर उनके और उनकी मोटर के बीच खड़े हो जाते तो उनको झिड़कियां नहीं मिलती थीं, बल्कि उनको प्यारभरे उत्तर मिलते थे। वे बड़े भाग्यशाली थे, जिनको श्री नेहरू की फटकार भी सुनने को मिली।

श्रमजीवी पत्रकारों का आंदोलन यदि आगे बढ़ा तो उसका बहुत बड़ा श्रेय नेहरूजी को था। श्रेय हम इसलिए कहेंगे कि हमारे लिए वह दरबार खुला था और उसी दरबार पर हम जब दस्तक देते थे, तब हमारी बात सुनी जाती थी। बारह-तेरह अप्रैल को कलकत्ते के प्रथम अधिवेशन में हम लोगों ने यह मांग की कि एक प्रेस आयोग की स्थापना की जाय और एक महीने के अंदर-ही-अंदर श्री नेहरू ने राष्ट्रपति के मुंह से यह घोषणा करा दी कि प्रेस आयोग का गठन किया जाय। पर इस घोषणा के बाद मामला खटाई में पड़ गया। प्रश्न यह था कि कौन-सा मंत्रालय इस आयोग का गठन करे। इस आयोग को कुछ काम ऐसे करने थे, जिनका संबंध गृह-मंत्रालय से था, कुछका सूचना तथा प्रसारण से तथा कुछका श्रम से। इसलिए इधर-उधर चर्चा ही होती रही और कोई मंत्रालय जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार नहीं था। इसमें भी एक परेशानी यह हो गई कि डा० काटजू ने, जो उस समय गृहमंत्री थे, कलकत्ता न्यायालय के श्री शम्भूप्रसाद बनर्जी को प्रेस आयोग का अध्यक्ष बनने की चिट्ठी लिख दी। कलकत्ता के मित्रों ने हमें इस बात की सूचना

दी और यह शंका भी प्रकट की कि श्री बनर्जी की विचारधारा शायद हम लोगों के माफिक न हो। अब हमारे सामने बड़ी मुश्किल थी। हमारे अध्यक्ष श्री चेलापतिराव ने श्री नेहरू के सामने इस कठिनाई को रखा और श्री नेहरू तथा मौलाना आजाद ने मिलकर इस समस्या का एक बड़ा सुन्दर हल निकाल लिया। मौलाना आजाद उन दिनों शिक्षा-मंत्री थे और श्री शम्भू बनर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी थे। मौ. आजाद ने लिखा कि हमें पता लगा है कि आपको प्रेस आयोग का अध्यक्ष बनाया जा रहा है, लेकिन हम यह चाहेंगे कि इस काम के सिलसिले में कलकत्ता विश्वविद्यालय के काम को क्षति न पहुंचे। यदि आप प्रेस आयोग की अध्यक्षता ही स्वीकार करते हैं तो हमें फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय के लिए नये उपकुलपति की व्यवस्था करनी पड़ेगी। जिस प्रकार आशा थी, श्री बनर्जी ने प्रेस आयोग की अध्यक्षता अस्वीकार कर दी। तभी हम न्यायमूर्त्ति श्री राजाध्यक्ष को प्रेस आयोग का अध्यक्ष बना सके, जिनकी अध्यक्षता ने आयोग की रिपोर्ट को इतना महत्वपूर्ण और श्रमजीवी पत्रकारों के लिए इतना उपयोगी बना दिया।

जिस समय संविधान संशोधन विधेयक पर विचार हो रहा था, प्रधान मंत्री ने संसद में एक वक्तव्य दिया था, जिसमें कहा था कि लेखन-स्वतंत्रता किसको हो, इसका भी हमें विचार करना है। जो पत्र में काम करता है, उसकी, या जो पूंजी लगाता है, उसकी। उनके इस भाषण से ही यह प्रोत्साहन मिला था कि प्रेस आयोग की मांग की जाय। जब राजाजी ने प्रेस (आपत्तिजनक सामग्री) विधेयक उपस्थित किया, तो हम लोगों ने प्रधान मंत्री को एक प्रतिवेदन दिया और उनसे मांग की कि इस संबंध में श्रमजीवी पत्रकारों के दृष्टिकोण को भी ध्यान में रखा जाय। उसी पत्र पर प्रधान मंत्री ने यह नोट लिखकर राजाजी को भेज दिया कि यह पत्रकारों की प्रतिनिधि संस्था है, जिसमें धंधे के सभी लोग सम्मिलित हैं और पत्र-संबंधी किसी प्रश्न पर विचार करने से पहले इनकी सम्मति अवश्य ली जाय। उसके बाद हम लोग बुलाये गए और हमने जो संशोधन सुझाये थे, वे स्वीकार भी किये गए। श्री नेहरू के उस निर्णय के फलस्वरूप श्रमजीवी पत्रकार संगठन को बराबर प्रतिनिधित्व मिलता रहा।

सन् १९५५ में जब श्रमजीवी पत्रकार विधेयक लोकसभा में विचाराधीन था, उस समय देश के बड़े-बड़े पत्र-संचालक, जिनकी प्रधान मंत्री इज्जत करते थे, उनसे मिले और अनुरोध किया कि यह विधेयक स्वीकार न हो। लेकिन श्री नेहरू ने श्री के. श्रीनिवासन और श्री शिवराव जैसे अपने पुराने मित्रों की भी मांग स्वीकार नहीं की। जिस दिन विधेयक पर विचार हो रहा था, शाम का समय था, उसी दिन श्री बुलगानिन और ख्रुश्चेव के स्वागत में राष्ट्रपति-भवन में एक समारोह हो रहा था। उसमें बहुत-से संसद-सदस्य बुलाये गए थे। जब बहुत-से सदस्य उस उत्सव में पहुंचे तो श्री नेहरू को चिन्ता होगई कि लोकसभा में कोरम भी रहा होगा या नहीं। उन्होंने संसद-सदस्यों से कहा कि तुम सब यहां क्यों चले आये। श्रमजीवी पत्रकार विधेयक पास होने से रुक जायगा। वास्तव में उस दिन कठिनाई हो गई थी और लोकसभा में कोरम रखने के लिए हमें संसद-सदस्यों को टेलीफोन कर-करके घरों से बुलाना पड़ा था। दूसरे ही दिन राज्य पुनर्गठन विधेयक पर विचार होनेवाला था। यदि वह विधेयक उस दिन पास न हो पाता तो न जाने कब पास होता और किस रूप में पास होता।

श्री नेहरू पर हम लोगों को इतना विश्वास था कि जब कोई भी संकट आया, प्रयाग में 'अमृत पत्रिका' की हड़ताल हुई, दिल्ली में 'मिलाप' की हड़ताल हुई या मद्रास में 'हिन्दू' और 'इंडियन एक्सप्रेस' की, तो हम उनके पास पहुंचते थे या उनको चिट्ठी लिखते थे। श्री नेहरू पत्र का जवाब तुरंत देते थे। लेकिन यदि कभी जवाब न भी आये तो इसका यह अर्थ नहीं था कि हमारी मांग पूरी नहीं हुई या हमारी बात पर विचार नहीं हो सका। जिस समय लिंक हाउस का उद्घाटन हो रहा था, मैंने श्री नेहरू को पत्र-जगत् के एकाधिकार पर एक नोट भेजा। उसमें मैंने यह लिखा था या यों कहिये कि मैंने यह लिखने की गुस्ताखी की थी कि कहीं गलत सूचना के आधार पर आप कोई भ्रामक वक्तव्य न दे दें, इसलिए आप समझ लें कि पत्रों पर एकाधिकार कितना है और किन-किन कारणों से बढ़ रहा है। श्री नेहरू ने उस दिन उस विषय को छेड़ा ही नहीं। लेकिन बाद में मुझे प्रेस रजिस्ट्रार ने बताया कि उन्होंने मेरी वह चिट्ठी प्रेस रजिस्ट्रार को भेज दी और यह निर्णय ले लिया कि आगे से वर्तमान शृंखलाओंवाले पत्रों में से किसीको नया संस्करण निकालने के लिए कागज नहीं दिया जायगा।

हिन्दी पत्रों के संबंध में श्री नेहरू को यह भ्रम हो गया था कि कठिन भाषा के कारण हिन्दी के पत्र नहीं बिकते। राज-भाषा विधेयक के संबंध में दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के एक प्रतिनिधि-मंडल में मुझे भी सम्मिलित कर लिया गया था। उस समय श्री नेहरू ने फिर इसी तरह की बात उठाई। इसके उत्तर में जब मैंने उन्हें बताया कि सरल और कड़ी भाषा का प्रश्न तो तमिल में भी है और तिरु के विवाद के कारण मद्रास में हमें एक सहकारी पत्र बंद करना पड़ा था तो उनको आश्चर्य हुआ। उस समय मुझे थोड़ी उत्तेजना भी आ गई और मैं श्री नेहरू से कह बैठा कि आप समझते हैं कि दिल नाम की चीज दक्षिण भारत में ही होती है और उत्तर भारत के लोगों की भावनाओं की आप कभी परवा नहीं करते। श्री नेहरू ने तुरंत ही सान्त्वना देने और समझाने की चेष्टा की। श्री नेहरू इतने बड़े प्रजातंत्रवादी थे कि अपने से विभिन्न विचारों को सुनने के लिए सदा तैयार रहते थे और इसका कभी बुरा नहीं मानते थे। यही नहीं, वह उनके विचारों को सुनकर उनसे प्रभावित भी होते थे। दूसरे दिन सवेरे ही उन्होंने श्री लालबहादुर शास्त्री से मेरी इस वार्ता का जिक्र भी किया और यह चिंता प्रकट की कि उत्तर भारत-वालों में यह भावना क्यों फैली। श्री नेहरू के दर्शन करने का अवसर मुझे १९३५ में मिला और १९३९ से तो मैं उनके व्यक्तिगत सम्पर्क में आया। दिल्ली में मैं भी उनके साथ-साथ सितम्बर, १९४६ में आया था और एक पत्रकार के रूप में श्री नेहरू के आगे-पीछे बहुत घूमा हूं।

विदेशों में मैंने देखा है कि लोग भारतीयों को नेहरू के देश के नागरिक के रूप में ही जानते हैं। जापान में, जहां एक पैसा भी कम नहीं होता, मुझे रियायती दामों पर सामान दिया गया, क्योंकि मैं नेहरू के देश का था। यूगोस्लाविया में लोग नेहरू-टीटो का इस प्रकार उल्लेख करते हैं, जैसे दोनों भाई-भाई हों। मेक्सिको में मुझे एक सज्जन ने बुलाया तो दूर से आवाज दी "नेहरू।" यानी 'नेहरू' शब्द भारत का प्रतीक बन गया। यही नहीं, गोआ-अभियान के बाद जब मैं अमरीका गया तो उस समय शिकागो विश्वविद्यालय के अध्यापकों ने श्री नेहरू के बारे में जो अपनी मान्यताएं प्रकट कीं, उनसे पता लगा कि उस अमरीका में भी, जहां के लोग नेहरू सहमत नहीं थे, नेहरू को एक संत या शांति के पैगंबर के रूप में देखा जाता था। ●

रामेश्वरदयाल दुबे

पावन प्रसंग

सन् १९४६ की घटना है। नेहरूजी अहमदनगर की जेल से छूटकर आये ही थे। कुछ समय बाद वह मलाया जानेवाले थे। एक सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए उन्होंने इसका जिक्र किया। श्रोताओं में एक ऐसे सज्जन बैठे हुए थे, जो बहुत वर्षों तक मलाया रह चुके थे और युद्धकाल में भारत आ गये थे। पंडितजी के मलाया जाने की बात सुनकर वह बड़े प्रसन्न हुए। तुरंत उन्होंने जेब से एक कागज निकाला, उसपर कुछ लिखा और प्रयत्न करके भाषण समाप्त हो जाने के बाद पंडित नेहरू तक उसे पहुंचा दिया।

चिट में उन्होंने लिखा था, "मेरा पुत्र महीनों से बहुत बीमार है, अमुक दवा है, जो मलाया में ही मिलती है। प्रयत्न करने पर भी भारत में नहीं मिल सकी। आप मलाया जा रहे हैं। यदि वहां से दवा लेते आयंगे, तो बड़ी कृपा होगी।"

चिट के नीचे अपना नाम और पता लिख दिया।

मलाया में पंडितजी का बड़ा व्यस्त कार्यक्रम था। फिर भी जेब में रखी उस चिट के आधार पर औषधि प्राप्त करना वह नहीं भूले। भारत लौटकर उन्होंने दिये हुए पते पर दवा भिजवा दी।

... ...

प्रधान मंत्री के एक बार उदयपुर आने पर उनके सम्मान में एक दावत दी गई। शहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति बुलाये गए। उद्यान में पार्टी का आयोजन हुआ। जब पार्टी समाप्त हुई तो नेहरूजी इधर-उधर घूमकर सबसे मिले। एक स्थूलकाय बहन प्लेट में से मिठाइयां उठा-उठाकर खाये चली जा रही थीं। बहन की स्थूलता ने और मिठाई खाते चले जाने की क्रिया ने पं० नेहरू को आकर्षित किया। उसकी मेज के पास पहुंचकर और उसकी प्लेट से मिठाई का एक टुकड़ा मुंह में डालते हुए उससे कहा, "अरे, ज्यादा मत खाओ और मोटी हो जाओगी।"

वर्धा की एक घटना है। नवभारत विद्यालय को पंडित नेहरू भेंट दे रहे थे। उनके सम्मान में सलामी देने की व्यवस्था की गई थी। मार्ग के दोनों ओर स्कूल के छात्र पंक्ति-बद्ध खड़े थे। नेहरूजी उनके बीच से जा रहे थे। मगर यह क्या? वह सहसा रुक गये। एक लड़के के पास पहुंचे, जो मुंह लटकाये, कंधा झुकाये खड़ा था। कंधों को एक झटके के साथ सीधा करते हुए पंडितजी ने कहा, "यों खड़े होओ। यों। क्या मुर्दनी शकल बनाये खड़े हो! जवान हो तो जवानों की तरह जीना सीखो।"

... ...

वर्धा के महिलाश्रम की कुछ वहनों को पंडित नेहरू की झिड़की सुननी पड़ी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक वैठक वर्धा में हुई। वजाजवाड़ी में नेता लोग ठहरे थे। वहींपर झंडाभिवादन का कार्य-क्रम आयोजित हुआ। नेहरूजी के हाथों झंडा फहराया जानेवाला था। सारी तैयारी कर ली गई। महिलाश्रम की वहनें झंडे के आस-पास कतार में खड़ी थीं। नेहरूजी आये और झंडावंदन की क्रिया सम्पन्न हुई। वहनों ने 'झंडा ऊंचा रहे हमारा' तथा 'वन्दे मातरम्' गीत राग के साथ गाया। आखिरी सलामी के वाद जब सब लोग वहां से हटने लगे तो पं० नेहरू गीत गानेवाली लड़कियों के पास पहुंचे और कुछ झल्लाकर वोले, "क्या में-में-में-में करती हो। तुम्हें गीत गाना नहीं आता। यह हमारा झंडागीत है। गीत ऐसे गाना चाहिए कि रोंगटे खड़े हो जायं। तुम जैसे गाती हो, उससे तो न गाना अच्छा। यह जोश का गाना है, जोश के साथ गाना चाहिए।"

... ...

एक वार की वात है। दोपहर का समय था। सड़क पर भीड़-भाड़ कम थी। सड़क के किनारे कुछ वच्चे खेल रहे थे। कभी-कभी वे खेलते-खेलते सड़क पर भी आ जाते थे। इतने में एक वस निकली। ड्राइवर ने वचाया, फिर भी एक वच्चे के चोट लग गई। लोग वस में बैठे-बैठे ही नीचे का दृश्य देखते रहे। इसी वीच अचानक नेहरूजी की कार उधर से निकली। कोई दुर्घटना हुई है, यह समझकर नेहरूजी ने कार को रुकवाया। नेहरूजी को देखते ही वस में वैठे लोग 'जवाहरलाल नेहरूजी की जय' के नारे लगाने लगे।

पंडितजी कार से उतरे और जव उन्होंने घायल वच्चे को देखा तो वस में वैठे लोगों के व्यवहार पर उन्हें वड़ा क्रोध आया। लोगों की तरफ मुखातिव होकर उन्होंने कहा, "जय-जय क्या करते हो, एक वच्चा जख्मी पड़ा है। उसकी मदद तो कुछ करते नहीं, फिजूल अपना गला फाड़ते हो।" इतना कहकर उन्होंने उस वच्चे को अपनी कार में लिटाया और अस्पताल पहुंचा दिया।

... ...

पंडितजी के प्रारंभिक जीवन का एक चित्र है। प्रसंग नडियाद (गुजरात) का है। पंडितजी जहां ठहरे हुए थे, वहां दो स्वयंसेवक नियुक्त किये गए थे। पंडितजी को रात को साढ़े तीन की गाड़ी से अहमदावाद जाना था। सोते समय एक कार्यकर्ता ने उनसे कहा, "आप चिंता न कीजिये, पंडितजी! गाड़ी पर पहुंचा देने की जिम्मेवारी मेरी है।" कार्यकर्ता ने स्वयंसेवक को आदेश दिया कि पंडितजी को पौने तीन वजे जगा दिया जाय और मोटर मंगा ली जाय।" अचानक पंडितजी की नींद टूटी। घड़ी तीन वजा रही थी। वह उठे और नित्य क्रिया से फारिग हुए। स्वयंसेवक सो रहे थे। मोटर का पता न था। इतने में वह कार्यकर्ता आ गये। पंडितजी ने कहा, "मोटर तो आई नहीं। चलिये स्टेशन, मैं तैयार हूं।"

कार्यकर्ता कटकर रह गये। उन्होंने स्वयंसेवक को जगाना चाहा, पर नेहरूजी ने उन्हें रोका, "नहीं, सोने दो उनको। दिन-भर के थके हुए हैं। मेरी आंख खुल गई। मैं निपट भी चुका हूं। अव तो वस स्टेशन पहुंचना है। मोटर न सही। स्टेशन आध मील भी नहीं होगा। चलिये।" ●

महामानव नेहरू

भारत के स्वतंत्र होने के बाद पहली बार मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू से मिलने काठमांडू से दिल्ली आया। संयोग से एकसाथ ही पंडितजी, राजाजी और सरदार पटेल को समय देने के लिए फोन कराया। पंडितजी ने उसी दिन रात को ९ बजे का समय दिया और राजाजी ने दूसरे दिन सवेरे ९ बजे का। जिन्होंने फोन किया, उन्हें भूल से इसका उल्टा स्मरण रहा। नतीजा यह हुआ कि मैं रात को ९ बजे राजाजी के यहां पहुंचा। भूल मालूम होने पर मैं सीधा पंडितजी की कोठी पर गया। तबतक कुछ देर हो चुकी थी। पंडितजी ने कुछ देर राह देखी और फिर किसी ज़रूरी काम में लग गये। मुझे थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी। मैं वहां इस तरह बैठा था कि दरवाज़े की ओर मेरी पीठ थी। इसलिए पंडितजी जब कमरे में आये तो मैं उन्हें नहीं देख सका। आते ही उन्होंने कहा, "तुलसी मेहरजी, आप मुझे माफ़ करें। आपको कुछ देर इंतजार करना पड़ा। आपको आने में देर होगई, इसलिए मैं एक ज़रूरी काम में लग गया।"

मैं शर्म के मारे गड़ गया। गलती मेरी थी। माफ़ी मुझे मांगनी चाहिए थी, पर पंडितजी ने उसका मौका नहीं दिया। फिर भी मैंने उठकर उनके पैर छुए और कहा, "पंडितजी, भूल मैं करूं और माफ़ी..."

वाक्य पूरा करने से पहले ही पंडितजी ने मेरा हाथ पकड़ लिया और बोले, "आइये।"

इतना कहकर वह मुझे एक छोटे-से निजी कमरे में ले गये। पास बैठाकर कुशल-क्षेम पूछी। फिर बोले, "नेपाल की क्या खबर है?"

मैंने उन्हें बताया कि १५ अगस्त को हमलोगों ने भारत की स्वतंत्रता के लिए शुभकामनार्थ ईश्वर से प्रार्थना की और रामधुन के साथ हजारों की भीड़ के सामने बड़े शांतिपूर्ण ढंग से जलूस निकाला। इस अभियोग में सरकार ने हमें गिरफ्तार कर लिया और छः महीने की सज़ा दी। वह सज़ा भुगतकर यहां आया हूं।

पंडितजी ने सारी बात बड़े ध्यान से सुनी और बड़े गंभीर होकर बोले, "आप कोई चिन्ता न करें। मेरे लायक जो भी काम हो, निस्संकोच बता दिया करें। दिल्ली आने पर मुझसे जरूर मिलकर जायं। वहां से खत-किताबत करते रहें।"

पंडितजी के उस चित्र को मैं कभी नहीं भूल सकता। उन्होंने जो कुछ कहा, उसके पीछे कितनी गहरी आत्मीयता थी।

... ...

अगली बार पंडितजी से उनके परराष्ट्र मंत्रालय में भेंट हुई। बातें करके जब मैं कमरे से निकलने लगा तो उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर कहा, "एक मिनट और रुक जाइये।"

मैं फिर बैठ गया।

कुछ रुककर वह बोले, "तुलसी मेहरजी, आपने बापू के साथ सालों काम किया है। मैं आपको कोई सलाह देने का अधिकारी तो अपनेको नहीं मानता। पर अपने दिल की एक बात कहे बिना नहीं रह सकता। हालांकि मैं खुद राजनीति का एक कीड़ा हूं, फिर भी आपसे आग्रहपूर्वक कहता हूं कि आपको नेपाल की राजनीति की दलदल में भूलकर भी नहीं पड़ना चाहिए। आप जैसे आदमी के लिए यह ठीक नहीं है।"

उनके इस स्नेहपूर्ण परामर्श में कितनी बड़ी सचाई थी, यह मैं बराबर अनुभव करता रहा हूं। आज भी करता हूं।

... ...

पंडितजी पहली बार जब काठमांडू आये तो उन्होंने 'नेपाल गांधी स्मारक निधि' का उद्‌घाटन किया। उस अवसर पर नेपाल के महाराजाधिराज श्रीमान त्रिभुवन वीर विक्रम शाह उपस्थित थे और जनता भी बहुत बड़ी संख्या में आई थी। अपने उद्‌घाटन-भाषण में पंडितजी ने कहा, "मैं आशा करता हूं कि नेपाल सरकार और नेपाली जनता से इस काम में पूरी मदद मिलेगी। नेपाल की गरीब जनता को रचनात्मक काम में लगाकर देश की उन्नति की जायगी, ऐसा मेरा विश्वास है।"

दूसरी बार जब पंडितजी वहां आये तो उन्होंने गांधी आदर्श महिला विद्यालय (मनोहरा ग्राम) के उद्योग मंदिर का शिलान्यास किया। सुरखी और चूना-पानी में मिले बज्र की बाल्टी भरी हुई रक्खी थी और पंडितजी उसमें से करनी द्वारा लेकर बज्र को शिलान्यास के स्थान पर रखते जाते थे। किसीने कहा, "पंडितजी, बस काफ़ी होगया। अब रहने दीजिये।" पर पंडितजी नहीं माने। बोले, "ऐसे शुभ काम में एक बाल्टी वज्र को भी न लगाऊं, यह क्या बात हुई!"

इतना कहकर वह उसे बराबर लगाते रहे और बाल्टी खाली करके माने।

इसके बाद अपने भाषण में उन्होंने जी-भरकर विद्यालय को अपनी शुभकामनाएं दीं।

... ...

जिस समय भारत सरकार के निमंत्रण पर नेपाल के वर्तमान महाराजाधिराज महेन्द्र वीर विक्रम-शाह पहली बार दिल्ली आये, उस समय नेपाल के दूतावास में महाराजा की ओर से एक भोज का आयोजन किया गया। इस भोज में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी, केन्द्रीय मंत्री तथा उच्च पदाधिकारी सम्मिलित हुए। पंडितजी कुछ देर से आये। सबसे पहले वह नेपाल के महाराज से मिले, फिर राजेन्द्रबाबू से। उसके बाद नेपाल की महारानी से मिलकर आगे बढ़े तो उनकी निगाह मुझपर पड़ी। बड़े स्नेह से बोले, "कहिये, नेपाल के क्या समाचार हैं?"

मैंने कहा, "पंडितजी, कोई विशेष समाचार तो आपको सुनाने योग्य है नहीं। लेकिन एक बात है और वह यह कि हमारे गांधी सेवा आश्रम, बसहिया जनकपुर के औषधालय के लिए पटना से औषधियों का

एक पार्सल आया था। उसे लेने हमारा एक आदमी जयनगर गया। रात को वह स्टेशन के पास निवृत्त होने गया। उस समय रेलवे पुलिस जयनगर स्टेशन से गांजा चोरी से ले जानेवालों का पीछा कर रही थी। उसने हमारे आदमी को पकड़ लिया, उसकी बड़ी मरम्मत की और उसपर अदालत में मुकदमा चला दिया। इस मुकदमे में हमारा पैसा और समय बेकार बरबाद हो रहा है।"

यह सुनकर पंडितजी खिलखिलाकर हँस पड़े। बोले, "वाह, आपका आदमी गांजे की चोरी में पकड़ा गया, यह कितने अचरज की बात है। क्या आपने यह बात बिहार के मुख्य मंत्री श्रीकृष्ण सिन्हा से नहीं कहीं ?"

मेरे इन्कार करने पर उन्होंने कहा, "वह आजकल यहीं हैं। उनसे मिल लीजिये और सारी बात उन्हें बता दीजिये। मैं भी कह दूंगा।"

इतना कहकर वह और लोगों से मिलने चले गये।

बाद में जब मैं श्रीकृष्ण सिन्हा से पटना जाकर मिला तो वह बोले, "मुझे सारी बात दिल्ली में पंडितजी ने बता दी है। आप निश्चित रहें। मैं आपके आदमी के छुटकारे के लिए जल्दी ही कार्रवाही करा दूंगा।"

मैं चकित रह गया। इतने व्यस्त होते हुए भी मुझ सामान्य व्यक्ति की छोटी-सी बात को पंडितजी नहीं भूले। यही तो उनकी महानता थी। ●

यह एक अनोखी बात है कि नये भारत के दो महान नेता, गांधीजी और पंडित नेहरू, दोनों ने महान स्वप्न देखे, विराट भविष्य की कल्पना की और उसके साथ ही अपनी जनता के लिए दिन-रात, बिना किसी विराम-विश्राम के अथक परिश्रम किया। आज के यूरोपीय, अमरीकी या एशियाई राजनीतिज्ञों में कोई भी दो--परिश्रम की दृष्टि से--इन दोनों के मुकाबले में नहीं ठहर सकते। गांधीजी की ही तरह नेहरूजी भी बिना थके हुए मशीन की तरह काम करते हैं। अगर गांधीजी अपने इस परिश्रम के बावजूद इतने दीर्घ-जीवी रहे, या पंडित नेहरू यदि आज भी इतने स्वस्थ हैं, तो इसका मुख्य कारण दोनों का आदर्श रहन-सहन है। दोनों की जीवन परिपाटी इतनी सरल और पवित्र रही कि उसे तपस्या कहा जा सकता है।

--सार्दूलसिहं कवीश्वर

कोमल और कठोर

सन् १९१९ की बात है। महात्मा गांधी का असहयोग आंदोलन तेजी से आगे बढ़ रहा था। ऐसे समय में मैंने महात्मा गांधी के असहयोग-संबंधी लेखों और व्याख्यानों का 'असहयोग दर्शन' नाम से संकलन किया और पुस्तक की भूमिका पं० मोतीलालजी नेहरू से लिखाने के लिए इलाहाबाद गया।

आनंद भवन में पहुंचने पर सबसे पहले पं० जवाहरलाल नेहरू से भेंट हुई। मैंने अपनी सब बातें उन्हें बताईं। उन्होंने कहा, "पिताजी को इन दिनों जरा भी फुरसत नहीं है। दूसरे कामों में घिरे हैं। आपका भूमिका लिखाने का काम इस वक्त नहीं हो सकेगा।"

मैंने दो मिनट को मिल लेने का आग्रह किया तो वह कुछ बिगड़कर बोले, "मैंने आपसे एक मरतबा कह दिया कि वह घिरे हुए हैं। उनसे अभी मिलना नहीं हो सकेगा।"

उनके इस कठोर रूप को देखकर मुझे बड़ा अजीब-सा लगा, लेकिन मैंने सोचा कि उनसे बहस करना व्यर्थ है। मैं बरामदे से बाहर चला आया। इतने में वह भी बाहर आ गये और मोटर में बैठकर चले गये।

उनके जाने पर विचार आया कि अब एक बार मोतीलालजी से मिलने की और कोशिश कर देखनी चाहिए। यह सोचकर मैंने अपने नाम की चिट वहां के दरबान को दी और कहा कि उसे पंडित मोतीलालजी को दे आओ। उसने मेरी चिट लेकर अंदर दे दी। मोतीलालजी ने मुझे झट बुला लिया। मैंने वह संकलन उनको दिखाया और भूमिका लिखने के लिए अनुरोध किया। उन्होंने पुस्तक को इधर-उधर पलटा और कहा, "यह तो अच्छा संग्रह मालूम होता है। महात्माजी के आंदोलन का खूब प्रचार होना चाहिए। आप इसे मेरे पास छोड़ जाइये। तीन-चार दिन बाद मिलिये। कुछ सतरे लिख दूंगा।" मैं खुश-खुश चला आया।

चार दिन बाद फिर गया। उन्होंने पुस्तक की भूमिका लिखा दी थी। उसे लेकर मैं बाहर चला आया। जवाहरलालजी कहीं गये हुए थे। लेकिन मैं जैसे ही बाहर आया कि संयोग से वह आगये। मुझे देखकर उनकी त्यौरी चढ़ गई। बोले, "मैंने आपसे कहा था कि पिताजी को आजकल फुरसत नहीं है।"

मैंने जवाब दिया, "पंडितजी ने तो कृपा करके मुझे उसी रोज मिलने का समय दे दिया था। उन्होंने पुस्तक देख ली और भूमिका भी आज लिखकर दे दी।"

उनके चेहरे का तनाव दूर हो गया। वह हँस पड़े। बोले, "आप बड़े लगनवाले आदमी हैं। आखिर आपने अपना काम करा ही लिया! अच्छा, अब इस किताब का खूब प्रचार कीजिये।"

उस समय और बाद में भी मैंने अनुभव किया कि वह जितने कठोर थे, उतने ही सरल भी थे। ●

ठाकुर घनश्यामनारायण सिंह

दो चित्र

महाभारत के संत योद्धा भीष्म पितामह का जो कल्पना-चित्र हमारे सम्मुख है, उसीसे मिलता-जुलता है दस्युराज जवाहरसिंह का व्यक्तित्व, जो एक समय मध्य भारत का आतंक माना जाता था। छः फुट ऊंचा कद, गज-भर की छाती तथा चेहरे और सिर पर फहराती हुई लम्बी केशराशि।

आज से लगभग ९० वर्ष पूर्व जवाहरसिंह का जन्म विदिशा के नारोड़ पालकी गांव के एक किसान परिवार में हुआ था। वचपन में भाइयों ने पिता के कन्धे-से-कन्धा मिड़ाकर खेती तथा मनिहारी के कार्य में मदद की, लेकिन १९२१ में दो भाइयों—बुन्देला तथा जवाहरसिंह—को गिरफ्तार कर लिया गया। हवालात में ही बुन्देला की आंखें जाती रहीं और इसके ठीक एक वर्ष बाद वह मर गया। भातृ-वियोग में दूसरे भाई सौदानसिंह की भी मृत्यु हो गई। बाद में जवाहरसिंह पर सागर तथा ग्वालियर जिलों में डाके डालने का आरोप लगाया गया, जिससे उसे दस वर्ष की जेल होगई।

१९३० में जवाहरसिंह जेल से रिहा हुआ, लेकिन पुलिस फिर भी उसके पीछे हाथ धोकर पड़ी रही और इसके कुछ दिनों बाद ही पुलिस ने उसे ग्यारसपुर पुलिस-थाने की चोरी के संदेह में गिरफ्तार कर लिया। लेकिन यह चोरी सिद्ध न की जा सकी और छः महीने हवालात में रखने के बाद वह रिहा कर दिया गया। १९३२ में उसे फिर गिरफ्तार करके सागर भेज दिया गया, जहां एक डकैती के आरोप में उसे सात वर्ष का कठोर कारावास दिया गया। वह १९३९ के लगभग नागपुर सेंट्रल जेल से छूटा। जवाहरसिंह ने अब कुरवई रियासत में प्रवेश किया और नवाब कुरवई के प्रयत्नों से शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया।

विदिशा स्टेशन के समीप ही ९० साल के जवाहरसिंह की चना-कुरमरा की दुकान है, जिससे वह चार-पांच रुपये रोज कमा लेता है। वह अपने पसीने की कमाई में ही अपनी उदरपूर्त्ति करता है। उसके मुंह में अब केवल एक ही दांत बाकी रह गया है।

मैं लगभग ५ वर्ष पूर्व जवाहरसिंह से मिला था। मैंने देखा कि उसमें अब भी लगातार बोलने की शक्ति है और उसकी भाषा भी जमाने के साथ परिष्कृत होती जा रही है। दस्यु जीवन का परित्याग कर देने पर भी उसके व्यक्तित्व में धमकी देने की आदत अब भी है। बातचीत के दौरान कई बार यह कहते सुना, "मैं उसको गोली मार दूंगा।" हालांकि उस जगह न कोई आदमी था और न पास बन्दूक ही थी। था तो केवल रौब!

काफी बातचीत के बाद मैंने पूछा, "आपके जीवन की चिरस्मरणीय घटना कौन-सी है?" इस प्रश्न को सुनकर जवाहरसिंह की बांछें खिल गईं। उसके चेहरे पर खुशी झलक उठी। उसने कुछ मिष्टान्न सानुरोध मेरे सामने रखते हुए कहा, "आज से कोई चार साल पहले मुझे भारत के हृदय-सम्राट् श्री जवाहरलाल नेहरू से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनसे मैंने हाथ भी मिलाया था। तब वह मध्य भारत पधारे थे। उनकी मोटर पहाड़ पर से उतर रही थी। उनके साथ ही बाबू तख्तमल जैन थे। मैं भी उनके दर्शनों के लिए गया था। भारत के जवाहर को देखकर मुझसे न रहा गया और मैं उनकी मोटर की ओर दौड़ पड़ा। पुलिस ने मुझे रोक लिया, लेकिन पंडितजी ने डपटकर कहा, "ठहर जाओ, उसे मेरे पास आने दो।" पुलिस भौंचक्की रह गई। शायद पंडितजी मुझे कोई दुःखी किसान समझ रहे थे। उन्होंने मुझसे पूछा, "तू क्या चाहता है?" मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ होगया और उनकी ओर अपना हाथ बढ़ा दिया। नेहरूजी ने मेरा हाथ थाम लिया और हँसने लगे। सारा वातावरण आनंदमय हो उठा। मैंने भावावेश में आये हुए अपने आंसुओं को रोकते हुए कहा, "तुम्हें देखकर मैं निहाल होगया, जवाहर! मेरे सब पाप धुल गये!"

. . .   .

सन् १९५० की बात है। नेहरूजी अम्बाला की एक विशाल सार्वजनिक सभा में भाषण देने के लिए आनेवाले थे। यह देश का वह दौर था जब वह देश की जनता के हृदय-सम्राट् माने जाते थे। उनके आगमन का समाचार सुनकर दूर-दूर के गांवों से भी जनता चली आ रही थी। भाषण के लिए अम्बाला के विशाल मैदान में सभा का आयोजन किया गया था। पंजाब की समस्त शक्ति इस समय वहीं जमा थी, क्योंकि पंजाब में कांग्रेस का उन दिनों महत्त्वपूर्ण स्थान था। इस कार्यक्रम को अधिक मधुर बनाने के लिए वहां के कांग्रेसी नेता श्री भगतराम शुक्ल ने हिन्दी की कवयित्री श्रीमती सुदर्शन बाहरी (तब सुदर्शन पुरी) को तार द्वारा अम्बाला बुला भेजा। तब वह विद्यार्थी-कांग्रेस, अम्बाला के महिला विभाग की अध्यक्षा थीं और फिरोजपुर के एक कवि-सम्मेलन में हिस्सा लेने के लिए गई हुई थीं। तार पाकर वह फौरन अम्बाला चली आईं।

श्री नेहरू के लिए अम्बाला में एक विशिष्ट मंच बनाया गया था, जिसपर खड़े होकर उन्हें भाषण देना था। ठीक ५ बजे वह सभास्थल पर आ पहुंचे और मंचपर पहुंच गये। उन्हें मालाओं से लाद दिया गया। मंच पर उपस्थित लोगों से उनका परिचय कराया गया। सुदर्शन भी मंच के एक कोने में खड़ी थीं और उनका परिचय हिन्दी की एक कवयित्री के रूप में कराया गया। श्री नेहरू मुस्करा दिये और उन्होंने अपने गले में पहना हुआ हार उतारकर सुदर्शन की ओर फेंका, किन्तु इतने में एक फोटोग्राफर बीच में आगया और उसने वह हार ले लिया। श्री नेहरू चिढ़ गये। उन्होंने डपटकर कहा, "मैंने यह हार तुम्हें नहीं, अपनी इस बेटी को दिया था।" बात यहीं समाप्त होगई और थोड़ी देर बाद सभा की कार्रवाई प्रारंभ होगई। सुदर्शन से नेहरूजी से संबंधित कविता का पाठ करने को कहा गया। उन्होंने नेहरूजी को संबोधित करते हुए कविता पढ़ी:

> कमला के भाग्य-सिन्दूर हो तुम,
> मां की आंखों के नूर हो तुम।

कमला को देश की भेंट चढ़ा
तुम मन्द-मन्द मुस्काए
मोती से जवाहर बन-बनकर
हीरे चमकाने आए
जब डूब रही थी यह नैया
तुम पार लगाने आए।

यह कविता सुनकर श्री नेहरू की आंखें गीली हो आईं। वह अपनेको सम्हाल न सके और उन्होंने अपने गले से उतारकर कागज़ों की बनी मालाएं सुदर्शन को पहना दीं। रुंधे हुए कंठ से असंख्य जनता के समक्ष बोले, "बेटी, पहली माला जो मैंने तुझे दी थी, वह तो सूख जायगी, लेकिन ये कागज़ के फूल कभी नहीं मुरझायंगे। तू इन्हें यादगार के तौर पर हमेशा अपने पास रखना।" ●

राष्ट्रनिर्माता नेहरूजी को खोकर हमने क्या नहीं खो दिया? हमने सर्वस्व खो दिया है। हमने अपना ही नहीं, अपितु विश्व ने भी अपना बहुत बड़ा नेता खो दिया है। जिस व्यक्ति की सांस-सांस में विश्व-शांति की धुन गूंजती रहती थी, जो व्यक्ति भारतवर्ष को ऊंचे-से-ऊंचा उठाने के लिए प्रतिक्षण जूझता रहता था, वह हमसे विदा होगया है। देश को एकता प्रदान करना स्व० नेहरूजी का ही काम था। वह उच्च देशभक्त होने के साथ-साथ महानतम मानवतावादी थे। गांधीजी को छोड़कर उनके जोड़ का व्यक्तित्व अन्य कोई नहीं है। तन से जिन्दगी-भर संघर्ष करनेवाला, अपने परिवार-भर को बाजी पर लगा देनेवाला, धन को सदा तुच्छ समझनेवाला, किन्तु मन में सदा स्वस्थ, शालीन और निर्मल रहनेवाला इतना प्रभावशाली नेता कोई मैंने नहीं देखा।

—माखनलाल चतुर्वेदी

विश्वमानव

मुझे कई बार श्री नेहरू से भेंट करने और उनके साथ स्वतंत्र भारत के प्रोजेक्टों की यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह १९६१ में जब हमारे देश में पहुंचे थे, उस समय भी मुझे उनके साथ रहने का मौका मिला था। सोवियत संघ के, उस देश के जिसके लिए श्री नेहरू के हृदय में मैत्री की गहमतम भावनाएं थीं, राजदूत के रूप में मेरा उनसे घनिष्ठ सम्पर्क रहा और यह सम्पर्क उनके देश तथा हमारे देश के मध्य गहरी एवं स्थायी मैत्री पर आधारित था।

हम सोवियतजन तथा भारत गणराज्य की राजधानी के लाखोंलाख लोग जब उन्हें शांतिघाट पर अंतिम विदाई दे रहे थे, उस समय हमारे मानसपटल पर नाना प्रकार की अनगिनत छवियां सामने आ रही थीं—उस लाल गुलाब की तरह ताजा चेहरा, जिसे वह अपनी शेरवानी पर लगाने में कभी चूक नहीं करते थे, उतनी ही स्वाभाविक एवं मंत्रमुग्ध करनेवाली मुस्कान, जितनी उनकी प्रकृति थी—इनसे हम सदा-सर्वदा के लिए वंचित हो गये हैं। और हम लोग, दूसरे देशों के दूत तथा इस देश के करोड़ों लोग बच्चों के सलौने चेहरों तथा अपार भीड़ के बीच वह स्फूर्तिवान आकृति नहीं देख पायंगे, राजपथ पर गणराज्य दिवस की परेड का अवलोकन करनेवाला और स्वतंत्रता-दिवस के दिन लाल किले के प्राचीर पर खड़े होकर सलामी लेनेवाला वह व्यक्तित्व अब नहीं देख सकेंगे।

जवाहरलाल नेहरू का देहावसान भारत तथा पूरी दुनिया के लिए एक घोर दुखद घटना है। उनके महाप्रयाण के कारण भारत अपना यशस्वी सपूत तथा नेता, हमारा देश अपना सच्चा मित्र तथा विश्व के राष्ट्र शांति के हितार्थ दिन-रात काम करनेवाला एक साहसी राजनेता खो बैठे हैं। मित्र भारतीय जनता के इस राष्ट्रीय शोक के अवसर पर सोवियत जनता उसके साथ हैं। सोवियत जनता इस शोकपूर्ण घड़ी में भारतीय जनता के लिए हार्दिकतम सहानुभति प्रकट करती है और उसकी ओर मैत्री का हाथ बढ़ाती है।

श्री जवाहरलाल नेहरू को हमारे देश में सर्वत्र बहुत प्यार किया जाता था तथा उनका बहुत आदर किया जाता था। १९५५ में उनकी सोवियत संघ की यात्रा हमारे दो पड़ोसी देशों की मैत्री की जबर्दस्त अभिव्यक्ति सिद्ध हुई। वह उस समय तथा आगे चलकर १९६१ में जहां कहीं गये, हमारे नर-नारियों ने उनका भव्य स्वागत किया।

भारतीय नेता ने आजादी की लड़ाई में अपने देश का साहसपूर्ण तथा असाधारण ढंग से नेतृत्व किया। इस कारण सोवियत जनता के हृदय में उनके लिए गहरी इज्जत थी। साम्राज्यवाद से नफरत

करनेवाले तथा आजीवन उसके विरुद्ध संघर्ष करनेवाले लेनिन की शिक्षा में दीक्षित सोवियत जनता भारतीय जनता के स्वातंत्र्य-संग्राम के दौरान अपने-आप उसकी ओर आकृष्ट हो गई। सोवियत जनता ने भारतीय जनता को अपने पुनीत लक्ष्य की सिद्धि में पूरा-पूरा नैतिक समर्थन दिया।

हमारे देश में नेहरू का नाम भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम के ही दौरान मशहूर होगया था तथा उसी जमाने से हमारे यहां उनकी इज्जत की जाती थी। श्री नेहरू को इस संग्राम का निर्भीक ढंग से तथा त्याग-बलिदान की भावना के साथ नेतृत्व करने का अनुपम सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने अपने मुल्क की आजादी की लड़ाई में जो कुर्वानियां दीं तथा पराधीन भारत की जेलों में जो यातनाएं झेलीं, उनके फलस्वरूप विश्व-भर के स्वातंत्र्य-सेनानियों की पांतों में उन्हें अति सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ। उनके निधन के कारण अफ्रीका, एशिया तथा लैटिन अमरीका के उत्पीड़ित राष्ट्रों की जनता स्वातंत्र्य आन्दोलन का एक बहादुर कप्तान खो बैठी है।

श्री नेहरू उपनिवेशवाद के अभिशाप के कट्टर शत्रु थे। उनकी पूरी जीवनी इस अभिशाप के विरुद्ध, जो अब भी दुनिया के कुछ भागों में विद्यमान है, संग्राम की गाथा है। उन्होंने अनुभव किया था कि एशियाई और अफ्रीकी कौमें तभी उठ सकती है और राष्ट्रों के समुदाय में अपना अधिकारपूर्ण स्थान ग्रहण कर सकती हैं जब वे उपनिवेशवाद के नागपाश से मुक्त हो जायंगी। इस विश्वास ने उनके दृष्टिकोण को व्यापक बनाया। उन्होंने देखा कि भारत का स्वातंत्र्य-संग्राम उपनिवेशवाद की विश्व-व्यवस्था के खिलाफ अफ्रीकी-एशियाई जनगण के संघर्ष का अभिन्न तथा अनिवार्य अंग है।

भारतीय नेता ने उपनिवेशवादी शक्तियों की जंजीरों में कसी हुई कई अफ्रीकी-एशियाई कौमों के ध्येय का प्रतिपादन किया। स्वतंत्र भारत के प्रधान मंत्री तथा विदेश मंत्री के उच्च पद पर प्रतिष्ठित होने के बाद उन्होंने अफ्रीकी और एशियाई महादेशों की उत्पीड़ित कौमों की आजादी के न्यायोचित ध्येय की सिद्धि में अपनी पूरी ताकत लगा दी थी। श्री नेहरू अफ्रीकी तथा एशियाई महादेशों में नव पुनर्जागरण के एक असाधारण नेता थे। इसका प्रमाण बांडुंग में अफ्रीकी-एशियाई देशों की ऐतिहासिक बैठक तथा बेलग्रेड में तटस्थ राष्ट्रों की कांफ्रेंस में उन द्वारा अदा की गई प्रमुख भूमिका है। आज यह सोचकर ही मन को भारी वेदना होती है कि इन राष्ट्रों के आगामी सम्मेलन में वह भाग लेने के लिए जिंदा नहीं रहे।

हम जब उनकी जिंदगी की पुस्तक के पन्ने उलटते हैं तो देखते हैं कि वह ऐसे इंसान थे, जिन्हें मानवता की मुक्ति का ध्येय अत्यंत प्रिय था। यही कारण है कि वह हिटलर और मुसोलिनी की फासिस्टी प्रणालियों से नफरत करते थे। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद यूरोप से भारत लौटते हुए उन्होंने इटली के फासिस्ट डिक्टेटर द्वारा भेंट के लिए दिये गए न्यौते को ठुकराया था; यह चीज अर्थपूर्ण है।

सही मानों में फासिस्ट-विरोधी होने के नाते नेहरू ने युद्ध-जर्जर रिपब्लिकन स्पेन का दौरा किया था और बर्बरता तथा पाशविकता के खिलाफ संघर्षरत स्पेन के वीरों का हौसला बढ़ाया था। सोवियत संघ पर हिटलर ने धोखे से आक्रमण किया, उससे भारतीय नेता को भारी सदमा पहुंचा। वह फासिस्टी हमलावरों के खिलाफ हमारे देश द्वारा प्रतिरोध के बारे में जानकारी पाने के लिए अति व्यग्र रहते थे। वह कभी-कभी आधी रात के वक्त भी अखबारों के दफ्तरों को टेलीफोन कर 'मोर्चे की नवीनतम खबरों' के

बारे में पूछते थे। उनकी पूरी सहानुभूति सोवियत संघ के साथ और फासिस्ट फौजों के खिलाफ घोर संग्राम में जूझे दुनिया के अन्य जनगण के साथ थी। पर कितनी विडम्बना की बात है कि फासिज्म के कट्टर शत्रु नेहरू को फासिस्ट-विरोधी युद्ध के दौरान जेल के सींखचों के अन्दर रखा गया।

श्री जवाहरलाल नेहरू भारत के उन नेताओं में से थे, जिन्होंने अनुभव किया था कि महान् अक्तूबर-समाजवादी क्रान्ति का विश्व ऐतिहासिक महत्व है। उन्होंने 'हिन्दुस्तान की कहानी' नामक अपनी पुस्तक में लिखा, "मुझे जरा भी संदेह नहीं है कि सोवियत क्रान्ति ने मानव-समाज को एक ही झटके में बहुत आगे बढ़ा दिया है और एक ऐसी तेज मशाल प्रज्ज्वलित की है, जिसे बुझाया नहीं जा सकता, उसने उस नई सभ्यता की बुनियाद रखी है, जिस ओर दुनिया अग्रसर हो सकती है।" श्री नेहरू हमारे देश में समाजवाद के निर्माण की राह का बहुत ध्यानपूर्वक तथा सहानुभूति के साथ अवलोकन करते रहे। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध आत्मकथा 'मेरी कहानी' में लिखा, "जिस समय बाकी दुनिया मन्दी के फन्दे में फंसी हुई थी और कुछ बातों में पीछे जा रही थी, उस समय सोवियत देश में हमारी आंखों के ही सामने एक महान, नये संसार का निर्माण किया जा रहा था। महान लेनिन का अनुकरण करते हुए रूस ने भविष्य के अंदर झांका।

अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में श्री नेहरू की राष्ट्रीय सरकार के प्रथम कार्यों में से एक था हमारे देश के साथ दौत्य संबंधों का विनिमय। विदेशी शासन के अंतर्गत भारत को सोवियत संघ से अलग रखा गया था तथा हमारी मातृभमि के बारे में गलत और झूठी तस्वीर पेश करने की कोशिश की गई थी। दौत्य संबंधों की स्थापना के फलस्वरूप दो पड़ोसियों के बीच वह कृत्रिम दीवार ढह गई, जिसे भारत के औपनिवेशिक शासकों ने खड़ा किया था। इस तरह दो जनगण के मध्य मुक्त अन्तःसंबंधों का आधार कायम हुआ। १९५५ में श्री नेहरू की सोवियत-यात्रा तथा निकिता ख्रुश्चोव की भारत-यात्रा के बाद दो देशों के मध्य संबंध विस्तारित हुए तथा जीवन एवं क्रियाकलाप के विभिन्न क्षेत्र उनके अंतर्गत आगये। श्री नेहरू ने अर्थतंत्र, संस्कृति, विज्ञान तथा व्यापार के क्षेत्र में दो मित्र देशों के मध्य सहयोग के दृढ़ आधार की स्थापना की। भिलाई लौह एवं इस्पात कारखाने का निर्माण, जो भारत के राजकीय क्षेत्र का प्रथम इस्पात कारखाना है, इस बढ़ते सहयोग का प्रतीक बन गया। यह बहुत ही शोक की बात है कि श्री नेहरू भारत-सोवियत सहयोग से बोकारो में तैयार होनेवाले एक और विराट प्रतिष्ठान को देखने के लिए जीवित नहीं हैं।

आजादी के बाद श्री नेहरू को उद्यमों का दौरा करना बहुत पसंद था। इनमें जिन्हें वह 'आधुनिक भारत के मंदिर' कहा करते थे, वह अपने सपनों के सशक्त एवं औद्योगीकृत शक्ति के ढांचे को जन्म देनेवाली इमारत के दर्शन करते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि केवल औद्योगीकरण के ही जरिए भारत औपनिवेशिक अतीत की विरासत से छुटकारा पा सकता है। उन्होंने भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजनाएं तैयार करने, प्रयोगशाला एवं अनुसंधान-केन्द्र कायम करने, भारत के विकासमान अर्थतंत्र के लिए विज्ञान एवं टेक्नालाजी की उपलब्धि सुगम बनाने के लिए कार्य किया।

भारत का औद्योगीकरण उन्हें अति प्रिय था। उनके इस सपने को मूर्त रूप देने में हम लोगों को, सोवियत जनों को, उनसे अधिकतम महानुभति थी। हमने उनकी ओर तथा भारत की जनता की ओर आधुनिक भारत के नव अर्थतंत्र की आधार-शिला रखने में मदद देने के लिए सहयोग का हाथ बढ़ाया।

भिलाई, सूरतगढ़, दुर्गापुर, रांची, नेइवेली—ये तथा अनेक अन्य आर्थिक पुनर्जन्म एवं औद्योगीकरण की राह में भारत की प्रगति के चिह्न हैं। श्री नेहरू अपने पीछे एक सशक्त ढांचा छोड़ गये हैं, जिसे भारत के लोग और विकसित कर शक्तिशाली और ठोस बनायंगे।

सोवियत संघ की जनता तथा दुनिया के अन्य राष्ट्रों की जनता विश्व-शान्ति के प्रति श्री नेहरू की अडिग निष्ठा के कारण विशेष रूप में उनका सम्मान करती थी। उन्होंने हथियारों की होड़ तथा युद्ध के खिलाफ अपनी जोरदार आवाज उठाई थी। भातर के प्रधान मंत्री तथा विदेश मंत्री के रूप में उन्होंने कतिपय गंभीर अंतर्राष्ट्रीय प्रश्नों के समाधान में तथा विश्व में तनाव घटाने में अनेक पग उठाने के लिए पहल की थी।

हमारी सोवियत जनता के लिए यह एक आनंददायी वस्तु थी कि श्री नेहरू ने शांति के लिए हमारे प्रधान मंत्री निकिता ख्रुश्चोव की पहल का हार्दिक समर्थन किया था। अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच के व्यापक क्षेत्र में दो महान् विश्व राजनेताओं के दृष्टिकोणों में साम्य कायम होगया था। श्री नेहरू ने प्रधान मंत्री ख्रुश्चोव की तरह शस्त्रास्त्र-रहित विश्व के विचार को लोकप्रिय बनाया था।

उन्होंने भारत के प्रधान मंत्री के रूप में ऐलान किया था कि वह भारत में एटमी शक्ति को कभी फौजी उद्देश्य के लिए इस्तेमाल नहीं होने देंगे। वह अपने देशवासियों तथा दुनिया के राष्ट्रों को तापनाभिकीय युद्ध की विभीषिकाओं के बारे में सदैव सावधान करते रहे। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपने व्यापक प्रभाव को एटम तथा हाइड्रोजन बमों को निषिद्ध ठहराने के लिए इस्तेमाल किया। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि श्री नेहरू के नेतृत्व में भारत दुनिया के उन प्रथम देशों में था, जिन्होंने जमीन, पानी के अंदर तथा वायुमंडल में नाभिकीय परीक्षणों पर प्रतिबंध लगानेवाली मास्को-संधि पर हस्ताक्षर किये थे।

शांतिपूर्ण सहजीवन की नीति में श्री नेहरू का दृढ़ विश्वास था। वह प्रख्यात पंचशील के जन्मदाताओं में से एक है। उन्होंने भारत को आक्रामक फौजी गुटबंदियों से अलग रखने तथा अपने देश के मुक्त विकास और प्रगति के लिए उचित वातावरण सुनिश्चित करने में जिस बुद्धिमत्ता का परिचय दिया, उसके लिए सोवियत जनता उनकी सदैव इज्जत करेगी। ठोस तटस्थता तथा गुटों से बाहर रहने की उनकी नीति ने उनके देश को राष्ट्रों के समुदाय में गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया। इस नीति ने दुनिया में शांति बनाये रखने में बहुत बड़ा योग दिया। गुटों में शामिल न होने की नीति की, जिसका दुनिया के रंगमंच पर प्रकट हो रहे अनेक नये राष्ट्र अनुसरण कर रहे हैं, सफलता श्री नेहरू की राजनयज्ञता को अति सुन्दर श्रद्धांजलि है। वह इस नीति की बहुत जोश तथा सच्चे हृदय से हिमायत किया करते थे।

श्री जवाहरलाल नेहरू में मानवीयता कूट-कूटकर भरी हुई थी। उनके हृदय में कष्टों में फंसी जनता तथा कौमों के लिए सहानुभूति रहती थी। वह असामान्य मेधा तथा नेतृत्व के दुर्लभ गुणों के स्वामी थे। और सबसे बड़ी चीज यह है कि वह अपने देश को समृद्ध तथा उन्नत देखने के लिए व्यग्र रहते थे। वह इसीके लिए जिये और इसीके लिए उन्होंने अपना जीवन अर्पित किया। महामानव के रूप में उनकी स्मृति सदैव सजीव बनी रहेगी। ●

परस्पर पूरक

गांधी और नेहरू का तीस वर्ष से अधिक का साथ मानव-सहयोग का एक युग है। भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई के अभिलेख में उनके नाम अविभाज्य हैं। गांधीजी पहले आये, क्योंकि वह तो न केवल अपने समय के संसार की, बल्कि सभी युगों की, महानतम हस्तियों में थे। उनके नाम के साथ इनका नाम जुड़े, यह तो नेहरूजी की ऊंचाई की प्रशंसा है। जबतक इतिहास लिखा और पढ़ा जायगा, इन दोनों के नाम साथ याद किये जायंगे। फिर अनेक बातों में गांधी और नेहरू एक-दूसरे के विपरीत दिखाई देते थे।

गांधीजी का प्रभाव अन्य सभीकी अपेक्षा इतिहास की घटनाओं में इस एक अत्यंत प्रगतिशील घटना पर अधिक पड़ा कि ब्रिटेन ने भारत की स्वतंत्रता का अधिकार स्वीकार किया, यद्यपि वह (गांधीजी) थे रूढ़िवादी। गत शताब्दी में विज्ञान ने मनुष्य पर जो प्रभाव डाला, गांधीजी उससे घृणा करते थे। औद्योगिक क्रांति, यंत्र-युग और नया अणुयुग, ये सभी इन वैज्ञानिक प्रगतियों में थे। उसका विचार गांव के सादे जीवन और घरेलू उद्योगों के अनुकूल था।

इसके विपरीत नेहरूजी मुख्य रूप से सदा प्रगतिवादी रहे। उनका इतिहास से कोई झगड़ा नहीं था। वह विज्ञान के वर्तमान उपयोग के प्रति घृणा नहीं करते थे, पर वह मनुष्य की शक्ति बढ़ाने का आनंद लेते थे। उनका विश्वास था कि ये शक्तियां मानवजाति का उद्धार करने के काम आयंगी और वह इस प्रक्रिया में सहायक होना अपना काम समझते हैं। तो फिर ये दोनों व्यक्ति राजनैतिक क्षेत्र में ऐसे घनिष्ठ हिस्सेदार कैसे बने?

उनका सम्पर्क तो उनके भारत को आजाद करने के प्रति आम लगन से हुआ। बढ़ती उम्र में नेहरूजी ने उत्तेजना और प्रशंसा के साथ यह पढ़ा कि दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी जातिभेद-संबंधी कानून का प्रतिरोध कर रहे हैं। गांधीजी के नेतृत्व में नेटाल और ट्रान्सवाल के भारतीय अपनी समानता का दावा न केवल प्रस्तावों और भाषणों द्वारा कर रहे थे, बल्कि गतिमान अमल के द्वारा भी। उन्होंने बड़ी संख्या में सरहद पार किया, एक प्रदेश से दूसरे में बिना उन पासों के घुसे, जिनकी मांग हर रंगीन जाति के व्यक्ति से की जाती थी, खान में काम करनेवाले हजारों भारतीयों ने काम बन्द कर दिया और गिरफ्तार भारतीयों से जेलें भर गईं। इन दिनों नेहरूजी सामाजिक तत्वज्ञान पर विचार करने के लिए नहीं रुके। सचमुच गांधीजी के बुनियादी विश्वास एक निर्माण की मंजिल पर थे। नेहरूजी इस विचार से चिंतित नहीं हुए कि प्रतिरोध हिंसात्मक होना चाहिए या अहिंसात्मक। उन्होंने तो यही देखा कि अफ्रीका में चुनौती के और महत्वपूर्ण कार्य हो रहे हैं और उनका असर हो रहा है। उनके लिए गांधीजी एक नायक बनगए थे।

जब नेहरूजी अपने नायक से मिले तो वह उसके श्रेष्ठ व्यक्तित्व से आकर्षित हुए, जो साधु और राजनीतिज्ञ दोनों ही था। अन्य बातों की अपेक्षा गांधीजी के इस अद्वितीय चरित्र में व्यक्तिगत अनुराग ही नेहरूजी को गांधीजी से आबद्ध करने का कारण बना, यद्यपि उन दोनों के सामाजिक दृष्टिकोण अलग-अलग थे। गांधीजी की पूर्ण निस्स्वार्थता और उनकी नितांत निर्भयता, उनका ग़रीब-से-ग़रीब लोगों और अछूतों की तरह उनमें रहना और उनके जीवन की सादगी, दयालुता और सौंदर्य ने नेहरूजी में उनके प्रति श्रद्धा जगा दी, इसलिए व्यक्तित्व के मुकाबले में उनके बीच दर्शन और तत्वज्ञान की बातें कम महत्व की होगईं। जब गांधीजी, भारत के उद्धार के लिए आमरण-उपवास के लिए तैयार थे तो उनके सामाजिक प्रगति-संबंधी विचारों की कौन परवा करता।

नेहरूजी ने यह भी देखा कि गांधीजी का मानव-जीवन-संबंधी मूल्य उनके ही विचारों जैसा है, भले ही गांधीजी उसकी भिन्न बौद्धिक अभिव्यक्ति करते हों। गांधीजी का किसानों के प्रति प्रेम नेहरूजी ने भी तब अपना लिया, जब उन्होंने देखा कि कैसी क्रूर ग़रीबी में वे किसान रहते हैं। गांधीजी का हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयत्न नेहरूजी के लिए भी ध्येय बन गया। उन्होंने देखा कि बेचारे ये किसान विदेशी शासक और उसकी आर्थिक सुविधाओं के शिकार बन गये हैं। गांधीजी का सभी जाति के मानवों की स्वाभाविक समानता का दावा नेहरूजी का भी सर्वोच्च ध्येय बन गया। भले ही अन्य सामाजिक बातों में इन मुख्य सिद्धांतों के प्रति उनमें मतभेद रहा हो, पर आध्यात्मिक दृष्टि से गांधी और नेहरू एक थे।

किन्तु इस वैयक्तिक सामीप्य के होते हुए गांधीजी और नेहरूजी के साथ होने का एक ऐतिहासिक कारण भी था। वह गांधीजी के तत्वज्ञान के अधिक अनुकूल था और नेहरूजी इसको समझते थे। चाहे नेहरू गांधीजी के अहिंसा-संबंधी विश्वास को पूर्णत: न स्वीकार कर सके हों, पर वह जानते थे कि भारत में और कोई नीति सम्भव नहीं है। राजनैतिक समस्याओं के प्रति गांधीजी के व्यक्तिवादी रुख से, नेहरूजी चाहे जैसा मतभेद रखते रहे हों, पर वह जानते थे कि ऐसा करके गांधीजी भारत के करोड़ों किसानों की मनोभावना प्रकट कर रहे हैं। गांधीजी का साधु-स्वभाव, उनका विचारने का ढंग और जीवन, उनके साहस और त्याग के उदाहरण, उनके स्वेच्छा से सभी सांसारिक जड़ पदार्थों का त्याग, उसके धर्म की सचाई—ये सब भारत-भूमि के अनुकूल थे, और यह केवल गांधीजी के बस की बात थी कि वह भारत की राजनीति में पहले आध्यात्मिक क्रांति ला सके। नेहरूजी ने इस बात की कद्र की और उस व्यक्ति की सेवा में अपने-आपको वफ़ादारी के साथ पीछे लगा दिया, जिसने भारत को घुटने के बल से उठाकर खड़ा किया और वह शक्ति दी, जिससे उसमें सबके समान खड़े होने की इच्छा पैदा हुई।

और अब भारत दूसरी मंज़िल से गुज़र चुका। वह न केवल आत्म-निर्भर होकर गौरवपूर्वक खड़ा हो गया, बल्कि आगे कूच किया तो उसे नेहरूजी के गुणों की आवश्यकता हुई।

नेहरूजी का आधुनिक रचनात्मक मस्तिष्क, उनकी हर देश के सामाजिक परिवर्तनों की पकड़, उनकी अंतर्राष्ट्रीय मामलों की समझ भारत की आजादी की लड़ाई के दिनों में सुरक्षित रखे गये थे और उस दिन की राह देख रहे थे जब भारत को उनकी आवश्यकता पड़ेगी। उन दिनों भी उन गुणों का उपयोग यदा-कदा ही होता था और उनका पूर्ण उपयोग ऐसे समय के लिए स्थगित रखा गया था, जब अवसर की मांग हो। ●

गांधी, नेहरू और हम

नेहरूजी अब नहीं रहे। सन् १९४७ से अब (सन् १९६४) तक के इस काल को नेहरू-युग कहिये। भारत तबसे वह रह गया, जिसमें से पाकिस्तान कटकर अलग हो चुका था। भारत के स्वराज्य का आरंभ इस दुर्योग से हुआ। गांधीजी राजनैतिक क्षेत्र से मानो विचारपूर्वक हट गये थे और बंटवारे के कारण हिन्दू और मुस्लिम संज्ञाओं के बीच जो गहरा घाव पड़ गया था, उसके उपचार में लग गये थे। असल में यह काम उस बुनियाद का था, जहां से स्वयं राजनीति को आधार मिलता है। खासकर अगर राजनीति को मानव-नीति से स्वतंत्र न रहना हो, युद्ध की विवशता से उसे उत्तीर्ण होना हो, तो वह काम सबसे पहला हो जाता है। कहना चाहिए कि भारत के इस विभक्त स्वराज्य के दुर्योग के क्षण से ही गांधीजी उस स्वराज्य को सच्चा, संयुक्त और सम्पूर्ण बनाने के काम में जुट गये। यह शक्ति की राजनीति से दूर हटा हुआ काम मालूम हुआ और स्वराज्य का प्रश्न अगर धूमधाम से दिल्ली में मनाया जा रहा था तो गांधीजी पांव-पैदल उस वक्त नोआखाली के वीरान में घूम रहे थे। हुकूमतें दो भले हो गई हों, हिन्दू और मुस्लिम के नाम पर हृदय दो नहीं हुए हैं और नहीं हो पायंगे, इस अपने दावे को सच्चा करने में वह लग गये थे।

गांधीजी के बाद वह काम छूट गया और सन् १९४७ से १९६४ तक का नेहरू-युग गांधीजी के छूटे हुए अधूरे काम को आगे नहीं ले जा सका, बल्कि वह मुख्यता से उस समस्या में घिरा और अटका रहा। नेहरू के मन में हिन्दू-मुस्लिम का कोई भेद न था। उनके लिए यह आन की बात थी कि भारत देश और भारतीय शासन धर्म-निरपेक्ष रहेगा और मुस्लिम का किसी भी विचार से यहां हिन्दू से दोयम स्थान न होगा। लेकिन कांग्रेस विभाजन मान चुकी थी और नेहरू विभक्त राष्ट्र के प्रधान मंत्री बने हुए थे। इस तरह वह पाकिस्तान के लोकमत पर, या उसकी शासन-नीति पर, किसी प्रकार का प्रभाव डालने में मानो असमर्थ हो गये थे। भारतीय स्वराज्य के सत्रह वर्षों का यह नेहरू-युग उस प्रश्न से परिणामतः निरंतर इस प्रकार आक्रांत बना रहा कि थाती के रूप में वह आनेवाले उत्तराधिकारियों के समक्ष भी यह प्रश्न चुनौती की तरह खड़ा दिखाई देगा। पूर्वी बंगाल के लगातार आने-जानेवाले विस्थापितों का सवाल है, इधर काश्मीर का सवाल भी, खासकर शेख अब्दुल्ला साहब के बाहर आनेपर, दहकते अंगारे के मानिन्द बन गया है। दो अलग कौमों के रूप में हिन्दू और मुस्लिम को न तो गांधीजी ने माना था, न नेहरूजी के मन ने एक पल के लिए इसे स्वीकार किया। लेकिन नेहरूजी विभाजन के अंग थे, जबकि गांधीजी ने अपनेको

जब नेहरूजी अपने नायक से मिले तो वह उसके श्रेष्ठ व्यक्तित्व से आकर्षित हुए, जो साधु और राजनीतिज्ञ दोनों ही था। अन्य बातों की अपेक्षा गांधीजी के इस अद्वितीय चरित्र में व्यक्तिगत अनुराग ही नेहरूजी को गांधीजी से आबद्ध करने का कारण बना, यद्यपि उन दोनों के सामाजिक दृष्टिकोण अलग-अलग थे। गांधीजी की पूर्ण निस्स्वार्थता और उनकी नितांत निर्भयता, उनका ग़रीब-से-गरीब लोगों और अछूतों की तरह उनमें रहना और उनके जीवन की सादगी, दयालुता और सौंदर्य ने नेहरूजी में उनके प्रति श्रद्धा जगा दी, इसलिए व्यक्तित्व के मुकाबले में उनके बीच दर्शन और तत्वज्ञान की बातें कम महत्व की होगईं। जब गांधीजी भारत के उद्धार के लिए आमरण-उपवास के लिए तैयार थे तो उनके सामाजिक प्रगति-संबंधी विचारों की कौन परवा करता।

नेहरूजी ने यह भी देखा कि गाधीजी का मानव-जीवन-संबंधी मूल्य उनके ही विचारों जैसा है; भले ही गाधीजी उसकी भिन्न बौद्धिक अभिव्यक्ति करते हों। गांधीजी का किसानों के प्रति प्रेम नेहरूजी ने भी तब अपना लिया, जब उन्होंने देखा कि कैसी क्रूर ग़रीबी में वे किसान रहते है। गांधीजी का हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयत्न नेहरूजी के लिए भी ध्येय बन गया। उन्होंने देखा कि बेचारे ये किसान विदेशी शासक और उसकी आर्थिक सुविधाओं के शिकार बन गये है। गाधीजी का सभी जाति के मानवों की स्वाभाविक समानता का दावा नेहरूजी का भी सर्वोच्च ध्येय बन गया। भले ही अन्य सामाजिक बातों में इन मुख्य सिद्धांतों के प्रति उनमें मतभेद रहा हो, पर आध्यात्मिक दृष्टि से गाधी और नेहरू एक थे।

किन्तु इस वैयक्तिक सामीप्य के होते हुए गांधीजी और नेहरूजी के साथ होने का एक ऐतिहासिक कारण भी था। वह गांधीजी के तत्वज्ञान के अधिक अनुकूल था और नेहरूजी इसको समझते थे। चाहे नेहरू गांधीजी के अहिंसा-संबंधी विश्वास को पूर्णतः न स्वीकार कर सके हों, पर वह जानते थे कि भारत में और कोई नीति सम्भव नही है। राजनैतिक समस्याओं के प्रति गाधीजी के व्यक्तिवादी रुख से, नेहरूजी चाहे जैसा मतभेद रखते रहे हों, पर वह जानते थे कि ऐसा करके गांधीजी भारत के करोड़ों किसानों की मनोभावना प्रकट कर रहे हैं। गांधीजी का साधु-स्वभाव, उनका विचारने का ढंग और जीवन, उनके साहस और त्याग के उदाहरण, उनके स्वेच्छा से सभी सांसारिक जड़ पदार्थो का त्याग, उसके धर्म की सचाई—ये सब भारत-भूमि के अनुकूल थे, और यह केवल गांधीजी के बस की बात थी कि वह भारत की राजनीति में पहले आध्यात्मिक क्रांति ला सके। नेहरूजी ने इस बात की कद्र की और उस व्यक्ति की सेवा में अपने-आपको वफ़ादारी के साथ पीछे लगा दिया, जिसने भारत को घुटने के बल से उठाकर खड़ा किया और वह शक्ति दी, जिससे उसमें सबके समान खड़े होने की इच्छा पैदा हुई।

और अब भारत दूसरी मंजिल से गुज़र चुका। वह न केवल आत्म-निर्भर होकर गौरवपूर्वक खड़ा हो गया, बल्कि आगे कूच किया तो उसे नेहरूजी के गुणों की आवश्यकता हुई।

नेहरूजी का आधुनिक रचनात्मक मस्तिष्क, उनकी हर देश के सामाजिक परिवर्तनों की पकड़, उनकी अंतर्राष्ट्रीय मामलों की समझ भारत की आजादी की लड़ाई के दिनों में सुरक्षित रखे गये थे और उस दिन की राह देख रहे थे जब भारत को उनकी आवश्यकता पड़ेगी। उन दिनों भी उन गुणों का उपयोग यदा-कदा ही होता था और उनका पूर्ण उपयोग ऐसे समय के लिए स्थगित रखा गया था, जब अवसर की माग हो। ●

गांधी, नेहरू और हम

नेहरूजी अब नहीं रहे। सन् १९४७ से अब (सन् १९६४) तक के इस काल को नेहरू-युग कहिये। भारत तबसे वह रह गया, जिसमें से पाकिस्तान कटकर अलग हो चुका था। भारत के स्वराज्य का आरंभ इस दुर्योग से हुआ। गांधीजी राजनैतिक क्षेत्र से मानो विचारपूर्वक हट गये थे और बंटवारे के कारण हिन्दू और मुस्लिम संज्ञाओं के बीच जो गहरा घाव पड़ गया था, उसके उपचार में लग गये थे। असल में यह काम उस बुनियाद का था, जहां से स्वयं राजनीति को आधार मिलता है। ख़ासकर अगर राजनीति को मानव-नीति से स्वतंत्र न रहना हो, युद्ध की विवशता से उसे उत्तीर्ण होना हो, तो वह काम सबसे पहला हो जाता है। कहना चाहिए कि भारत के इस विभक्त स्वराज्य के दुर्योग के क्षण से ही गांधीजी उस स्वराज्य को सच्चा, संयुक्त और सम्पूर्ण बनाने के काम में जुट गये। यह शक्ति की राजनीति से दूर हटा हुआ काम मालूम हुआ और स्वराज्य का प्रश्न अगर धूमधाम से दिल्ली में मनाया जा रहा था तो गांधीजी पांव-पैदल उस वक्त नोआखाली के वीरान में घूम रहे थे। हुकूमतें दो भले हो गई हों, हिन्दू और मुस्लिम के नाम पर हृदय दो नहीं हुए हैं और नहीं हो पायंगे, इस अपने दावे को सच्चा करने में वह लग गये थे।

गांधीजी के बाद वह काम छूट गया और सन् १९४७ से १९६४ तक का नेहरू-युग गांधीजी के छूटे हुए अधूरे काम को आगे नहीं ले जा सका, बल्कि वह मुख्यता से उस समस्या में घिरा और अटका रहा। नेहरू के मन में हिन्दू-मुस्लिम का कोई भेद न था। उनके लिए यह आन की बात थी कि भारत देश और भारतीय शासन धर्म-निरपेक्ष रहेगा और मुस्लिम का किसी भी विचार से यहां हिन्दू से दोयम स्थान न होगा। लेकिन कांग्रेस विभाजन मान चुकी थी और नेहरू विभक्त राष्ट्र के प्रधान मंत्री बने हुए थे। इस तरह वह पाकिस्तान के लोकमत पर, या उसकी शासन-नीति पर, किसी प्रकार का प्रभाव डालने में मानो असमर्थ होगये थे। भारतीय स्वराज्य के सत्रह वर्षों का यह नेहरू-युग उस प्रश्न से परिणामतः निरंतर इस प्रकार आक्रांत बना रहा कि थाती के रूप में वह आनेवाले उत्तराधिकारियों के समक्ष भी यह प्रश्न चुनौती की तरह खड़ा दिखाई देगा। पूर्वी बंगाल के लगातार आने-जानेवाले विस्थापितों का सवाल है, इधर काश्मीर का सवाल भी, खासकर शेख़ अब्दुल्ला साहब के बाहर आनेपर, दहकते अंगारे के मानिन्द बन गया है। दो अलग कौमों के रूप में हिन्दू और मुस्लिम को न तो गांधीजी ने माना था, न नेहरूजी के मन ने एक पल के लिए इसे स्वीकार किया। लेकिन नेहरूजी विभाजन के अंग थे, जबकि गांधीजी ने अपनेको

विभक्त नहीं होने दिया, न किसी विभक्तता के साथ अपनेको जुड़ने दिया। दूसरे शब्दों में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की समस्या गांधीजी के प्रयत्न के अधीन बनी रही। नेहरू के साथ उससे उलटा हुआ। समस्या बनकर यह हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न उनको घेरे रहा ही नहीं, उनपर छाया रहा और उनके सारे चिंतन और कर्म को संदिग्ध बनाये रहा।

इस मूलभूत अन्तर को पहचानने की ज़रूरत है। गांधीजी नीति और नैतिकता की भूमिका से इस प्रश्न की ओर बढ़ते थे। इसलिए उस संबंध में उनका अधिकार अक्षुण्ण और अखंड रहता था। नेहरू की भूमिका राजनैतिक हो जाती थी और उसमें शक्ति का, चाहे अनचाहे ही हो, मेल हो जाता था। उससे प्रश्न उलझता था और उसमें पेंच पड़ जाते थे। हृदय की भूमिका रह नहीं जाती थी और अस्मिताओं की सतह पर सवाल उतर आता था। हृदय-परिवर्तन की जगह कुछ हार-जीत का वातावरण बनता था और परिणाम तनाव होता था।

नेहरू अपने जीवन के आरंभ से ही मानो गांधी के प्रभाव में आ गये थे। उन्हींसे उन्होंने सार्वजनिक प्रवृत्ति की शिक्षा और दीक्षा पाई। उनके मनपर गहरा प्रभाव पड़ा गांधीजी के अनोखे व्यक्तित्व और चरित्र का। लेकिन गांधी के ईश्वर का, प्रार्थना का और उनकी धार्मिकता का स्थान वहां नहीं बन सका। मस्तिष्क को जो संस्कार उनकी विलायती शिक्षा-दीक्षा ने दिया था, वह किसी तरह धुल नहीं सका। फिर भी उससे विशिष्ट आदर्शवाद गांधी के सम्पर्क के कारण उनमें घर कर बैठा। नैतिक मूल्यों की आस्था और उनकी आवश्यकता के बारे में नेहरूजी उस तरह उदासीन फिर नहीं रह सकते थे और न ही रहे कि जितने पश्चिम के राजनेता रह जाते थे। किन्तु यह हृदय का प्रश्न था—मस्तिष्क को जो संस्कार पश्चिम से मिला वह तो रहता ही चला गया।

नेहरू-युग इन अमुक विपरीत वृत्तियों के सामंजस्य और असामंजस्य के परिणामस्वरूप अपना निर्माण पाता चला गया। देश ने तरक्की की और कई बांध और कारखाने ऐसे खड़े हुए कि एशिया में उनका सानी नहीं है। वैज्ञानिक और यांत्रिक प्रगति में वह एशिया में सबसे आगे माना जा सकता है। जापान का यदि अपवाद हो तो हो, किन्तु जापान की औद्योगिक प्रगति का आरंभ आधी सदी से भी अधिक पहले हो चुका था। इस सब प्रगति की दिशा में गांधी-विचार नहीं जा सकता था। यह विशेषता थी तो नेहरू-नीति की विशेषता थी कि इस संक्षिप्त नेहरू-युग में देश आर्थिक और औद्योगिक दृष्टि से एकदम पिछड़ी हुई अवस्था से मानो औद्योगिक प्रतिस्पर्द्धा के क्षेत्र में आगया। इसकी अन्तर्देशीय साख बढ़ी। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों और प्रवृत्तियों में इसने अधिकारपूर्ण योग दिया और भाग लिया।

लेकिन दूसरी ओर नये प्रश्न भी पैदा होते चले गये। भारत हिमालय और तिब्बत से सुरक्षित था, लेकिन तिब्बत बीच में से एकाएक खत्म होगया और हिमालय सुरक्षा के बजाय संकट का चिह्न बन गया। पाकिस्तान की ओर से उठनेवाले सवाल बढ़ते ही चले गये। चीज़ों की कीमतें बढ़ीं और १० से २० गुनी तक पहुंच गई। अमीर-ग़रीब के बीच का फ़ासला बेहद चौड़ा होगया। शहरों में आलीशान मकान बने और गांव उजड़ते चले गये। रोज़गार बढ़े, उससे ज्यादा बेरोज़गारी बढ़ गई। सरकारी मुलाज़िमों की तादाद कई गुनी होगई और इन्तज़ाम कई गुना ढीला होता चला गया। रुपये का चलन तेज़ हुआ और

उसी परिमाण में भ्रष्टाचार बढ़ा। राजनैतिक दल उतने ही सिद्धांतहीन और चरित्रहीन बनते गये कि जितना उनका ध्यान चुनाव पर केन्द्रित हुआ।

नेहरू-युग इन दोनों प्रकार की गतियों में सबसे विशिष्ट माना जायगा। मानना यह भी होगा कि नेहरू के व्यक्तित्व की और नेतृत्व की ही यह प्रतिच्छवि थी। निस्सन्देह अत्यंत कर्मठ और प्रखर वह व्यक्ति था। दिल से उदार, उतना ही दिमाग़ से सम्पन्न; लेकिन जैसे दिल और दिमाग़ के बीच कहीं कोई कड़ी अन-जुड़ी रह गई हो। उनकी उदारता और सहृदयता का लाभ बाहर के मित्रों ने ही नहीं उठाया, बल्कि देश के भीतर के मित्रों ने भी पूरा-पूरा उठाया! अपने काम में वह चौकस थे और अपनेको ज़रा भी आराम नहीं देते थे, लेकिन अपनी उदारता में ढिलाई को माफ़ अवश्य कर जाते थे। ज़ोर डालकर या आजिजी जताकर लाखों-करोड़ों का काम उनसे मंजूर करा लिया जा सकता था। वह सदा स्वयं सुभीते की स्थिति में रहे थे, इसलिए लगभग सबको वह सम्पन्न और सुविधाजनक स्थिति में देखना पसन्द कर सकते थे। चुनांचे सामाजिक शालीनता का मूल्य उनसे बढ़ा और सीधी-सादी सादगी की कीमत किसी कदर घटी। मूल्य चीज़ से हटकर चतुराई पर आगये और अंतरंग से बहिरंग की अधिक पूछ होने लगी।

ऐसा लगता है कि संकल्प और स्वप्न की एकता गांधी नेहरू को नहीं दे पाये। परिणाम यह हुआ कि नेहरू-युग में काम-धाम खूब हुआ। जीवन में वेग आया और एक-पर-एक आनेवाली पंचवर्षीय-योजनाओं में उत्पादन बढ़ा और निर्यात् बढ़ा, लेकिन इस सब सफलता के साथ-साथ ऐसा भी लगा जैसेकि अपने स्वप्न से देश दूर होता जा रहा है—डेमोक्रेसी है, सोशलिज्म भी हो रहा है, डेमोक्रेटिक सोशलिज्म की तरफ़ निश्चय ही बढ़ा जा रहा है, पर रामराज्य कहां है? क्या वह कहीं आस-पास दीखता है? निश्चय ही तरक्की है और सबको यह मानना पड़ता है, पर जैसे सवाल मन में बना रहता है कि यह सब तरक्की है तो उसकी दिशा क्या है? लक्ष्य क्या है? तरक्की जो की जा रही है वह आखिर क्या पाने के लिए?

और ठीक यही चीज़ थी, जो लगता है, अंत की ओर खुद नेहरू में चुभन देकर उठने लग गई थी। रह-रहकर उन्हें नैतिक मूल्यों की और उनपर बल देने की आवश्यकता की याद आती रही। लेकिन नैतिक के समक्ष आर्थिक का जो वेग उन्होंने खोल दिया था मानों उसमें फुरसत नहीं मिल पाती थी—और प्रवाह खुल गया था—अपनी गति में सबकुछ को डुबोता हुआ बढ़ता चला जा रहा था। आशा होती थी कि प्रधान मंत्री नेहरू में क्या नेता नेहरू कभी जगेगा और प्रवाह को मूल से पकड़कर उसे नया मोड़, नई दिशा दे सकेगा? संशय नहीं कि उस मोड़ की आवश्यकता थी, जिससे लक्ष्य स्पष्ट हो और प्रवृत्तियों की विविधता में दिशा की एकता आये। दिल और दिमाग़ दो तरफ़ न चलें, बल्कि दोनों आत्मा की एक आवाज़ को सुनें और दोनों तदाधीन होकर चलना स्वीकार करें।

किन्तु नेहरू अपना योग पूरा कर गये। निश्चय ही ऐतिहासिक उनका काम था और जिन संकटों और परिस्थितियों से उन्हें सामना लेना पड़ा, उनमें कोई भी दूसरा व्यक्ति टूट जा सकता था। नेहरू की पारदर्शी निर्मलता और निस्स्वार्थता थी कि वह देश की नाव को उन सब भंवरों में से पार खेते ले आये। इतिहास के कम ही ऐसे नायक पुरुष होंगे, जिनको इतनी कठिन परीक्षा में से गुज़रना पड़ा हो।

घर की समस्याएं कम न थी और दूसरा कोई होता तो उनमें घिर जाता। नेहरू की दृष्टि पार देखती रही और प्रशासन मे घिरकर भी कविता उनमें मन्द नहीं हुई। उनकी वसीयत कविता ही नही तो और क्या है? उसमें कहीं भी लोकाकांक्षा की झलक नही है। अपनेको भविष्य में अमर कर जाने की लालसा नही है। उसमें सख्त ताकीद है कि उनका अवशेष कुछ शेष न छोड़ा जाय—उनकी आखिरी राख को भारत के खेतों में बिखेर दिया जाय कि उसकी मिट्टी में रचकर और सिचकर वह यहां की हरियाली में खिले और महके। यह बहुत-कुछ असंभवनीय संयोग है। राजनेता उद्दाम होता है। प्रेम से अधिक उसमें प्रतिस्पर्द्धा का बल होता है। वह धरती पर प्रभुता का भोग करता है और समयांतर के लिए मानो खो जाता है। कारण, काल को चुनौती देता हुआ जो जीता रहता है वह तो प्रेम है—प्रेम की वाणी, प्रेम की कृति। शेष तो नश्वर है और क्षण के साथ बीत जाता है। नेहरू राजनेताओं में मानो अपवाद है। प्रेम का स्वर उनमें कभी मंद या मूर्च्छित नही हुआ और उनकी रचनाओं में से उसकी मीठी महक मिले बिना न रहेगी। रोज़ के झगड़े-झमेलों के पार नेहरू की निगाह को कोई उधर से नहीं फेर सका कि जहां मानव-जाति एक होगी और मनुष्य सब एक-दूसरे के लिए होंगे, कोई किसीके लिए खतरा नही रहेगा, बल्कि आश्वासन बनेगा।

भारत के तमाम इतिहास में इतने विशाल प्रदेश पर व्यवस्थित शासन करनेवाले नेहरू के अलावा दो महापुरुषों के ही नाम आते हैं—एक अशोक, दूसरे अकबर। किन्तु ये दोनों ही सम्राट् थे। नेहरू वह है जिन्होंने सम्राट् बनने से इन्कार किया और जो आग्रहपूर्वक अंततक एक इन्सान, सामान्य इन्सान, की हैसियत में अपनेको बनाये रहे।

उनकी सानी दूसरा नहीं मिलेगा। क्या देश में, क्या देश से बाहर, जैसेकि उन परिस्थितियों की समता और तुलना भी कहीं और नहीं मिल सकती। लेकिन जो आता है वह जाता है और पीछे की पीढ़ियों पर अपना भार और आभार छोड़ जाता है। भारत ने गांधी को पाया, जिनके नेतृत्व में उसने ऐसी अनोखी पद्धति से स्वराज्य जीता कि सारा मानव-इतिहास उससे जगमगाता रहेगा। स्वतंत्र भारत ब्रिटेन के मित्र के रूप में उठा, जो अबतक के इतिहास के क्रम को देखते सर्वथा अनहोनी घटना है। नेहरू स्वतंत्र भारत की ओर से विश्व को गांधीजी की ही देन थे। आशय यह नही कि वह गांधीजी की अनुकृति थे, उस रूप में वह सर्वथा मौलिक और स्वतंत्र व्यक्तित्व थे, किन्तु गांधीजी की भांति उनका लक्ष्य और उनका अन्तःस्वभाव विश्वजनीन था और दोनों का प्रभाव विश्वशांति की दिशा में था। इस विशिष्ट परम्परा की थाती अब आई है उस कांग्रेस-संस्था पर, जिसके द्वारा इन दोनों विभूति-पुरुषों ने काम किया। यह सबके लिए विस्मय और संतोष की बात हुई है कि कांग्रेस ने एक-मत से अपने नेता का निर्वाचन किया है। यदि इसी कुशलता और उदारता का परिचय कांग्रेस ने अन्तर्दलीय क्षेत्र में भी दिया तो देश में उस भावात्मक एकता का बीज पड़ सकेगा, जिसकी बहुत आवश्यकता है। दलीय लोकतंत्र ही लोकतंत्र का निश्चित स्वरूप नही है—ऐसा कुछ यदि भारतवर्ष संभव करके दिखा सका तो गांधीजी से आरम्भ हुई परम्परा सफल हुई मानी जा सकती है। आशा रखनी चाहिए कि कांग्रेस के मतिमान बन्धु उस ऊंचाई को कल्पना में लाने में समर्थ हो सकेंगे। तभी अपने इन उल्लेखनीय पूर्वजों के प्रति उन्हें उऋणता मिली मानी जा सकेगी। •

विश्व-स्वातंत्र्य की वाणी

जवाहरलाल नेहरू की पुण्य-स्मृति में विश्व के बलशाली राजपुरुषों ने जो श्रद्धांलियां अर्पित की हैं। वे सब क्यों अपर्याप्त मालूम होती हैं? उनके देहावसान पर जो श्रेष्ठ श्रद्धांजलियां उन्हें पी गई हैं, उन सबका उनसे अधिक और कोई पात्र नहीं है। परंतु उन्होंने अपने जीवन-पर्यन्त बलवानों, शक्तिशालियों का प्रतिनिधित्व नहीं किया और इसलिए वे लोग उस तीव्र क्षति की भावना को व्यक्त नहीं कर सकते, जो प्रत्येक महाद्वीप के उन साधारण जनों ने अनुभव की और जिनके लिए यह सहन करना कठिनतम बात थी कि नेहरूजी की वाणी आज नीरव होगई।

सबसे बड़ी बात नेहरू में यह थी कि वह ऐसे इन्सान थे, जो अपने दूसरे भाइयों को समझते थे, हमारी चिंताओं, कमजोरियों और महत्वाकांक्षाओं को जानते थे और इसीलिए जब वह बोलते थे, हम सबके लिए बोलते थे। जब नेहरूजी और गांधीजी भारत की स्वतंत्रता की राष्ट्रीय मांग को वाणी दे रहे थे, तब भी वे ब्रिटेन के बहुत-से लोगों का प्रतिनिधित्व करते और उन्हींके दिलों की बात कहते थे। वह सचाई के साथ हमारे सर्वोत्तम गुणों में विश्वास करते थे, उन्हें पहचानकर अपने देश के सर्वोत्तम हित की प्राप्ति में उन्होंने उनका पूरा उपयोग किया। विजय और मैत्री का सुन्दर समन्वय जो वह साध सके उस चमत्कार का यही रहस्य है। उस चतुर नुस्खे से इसका कोई संबंध नहीं था, जिसके अनुसार, अंग्रेज़ बादशाह—'भारत की सम्राज्ञी' को उसके स्थान पर राष्ट्र-मंडल का अध्यक्ष कहा जाने लगा।

कई बार कहा जाता है कि ब्रिटेन ने भारत को स्वतंत्रता दी। असल में सत्य इसके सर्वथा विपरीत है। गांधीजी और नेहरूजी ने भारत को स्वतंत्र किया। अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करके उन्होंने हमें उस अज्ञान और पूर्वाग्रह से मुक्त किया, जो ब्रिटिश साम्राज्य की नियति की कल्पना के पीछे काम कर रहे थे। जब हम नेहरू के अपने नेतृत्व के स्वरूप पर विचार करते हैं तो यह स्मरण करके मन में बड़ी परेशानी और घबराहट उत्पन्न होती है कि केवल बीस वर्ष पहले ब्रिटेन के सत्ताधारी लोग अपनेको इस भुलावे में डाले हुए थे कि भारत को अंग्रेजी राज की आवश्यकता है।

नवीन भारत को एक आधुनिक विकासशील लोकतंत्र का रूप देने में नेहरू ने जो लम्बा अभियान चलाया, उसमें प्रतिनिधि का कर्त्तव्य उन्होंने एक नये ढंग से पूरा किया। वह जानते थे कि धर्म, समुदाय, जाति और वर्ग-संबंधी भावनाएं प्रत्येक मनुष्य के मन में ऊपरी सतह से थोड़ी-सी नीचे पड़ी हुई रहती हैं। वह यह भी जानते थे कि इनके ख़िलाफ़ युद्ध मनुष्य मनुष्य के बीच लड़कर नहीं जीता जा सकता, क्योंकि

हरिश्चन्द्र हेड़ा

नेहरू का लोकतंत्री ढंग

पंडितजी से मेरा पहला सम्पर्क दिसम्बर १९३८ में हुआ। मैं हैदराबाद राज्य कांग्रेस के सत्याग्रह-आन्दोलन का संचालक था। उन दिनों मैं गांधीजी की सीधी देखरेख में काम कर रहा था। पंडितजी जब यूरोप में थे तभी वह अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के अध्यक्ष चुन लिये गए थे। गांधीजी ने निर्देशन दिया कि स्पेन से पंडितजी के वापस आते ही मैं उन्हें हैदराबाद सत्याग्रह की रिपोर्ट दूं। मैंने एक किताब तैयार की, जिसमें अखबारों की कतरनें थीं। खासा अच्छा संग्रह था। पंडितजी ने उसे पसंद किया। सराहना के उनके एक वाक्य ने ही मुझे चिरस्थायी आनन्द और उत्साह से भर दिया। मैं उन शब्दों को कभी नहीं भूलूंगा। उन्होंने कहा था, "मैं चीजों को बहुत अच्छी तरह करने का दृष्टिकोण रखने-वाले नौजवानों को पसंद करता हूं।"

सन् १९४८ से १९६४ के बीच गत पन्द्रह वर्षो में मैंने उन्हें बहुत नजदीक से देखा। अपने उन संस्मरणों को एक छोटे-से लेख में देना कठिन होगा। किन्तु उनके जीवन के कुछ पहलुओं पर मैं प्रकाश डालूंगा, जिनके कारण वह हम सबके प्रिय बन गये थे।

वह पत्रों का उत्तर बड़ो शीघ्रता से देते थे। यह तबकी बात है, जब उनके मंत्रिमण्डल के सदस्य चिट्ठियों की पहुंच देने की भी परवा नहीं करते थे। एक बार मैंने संसद के केन्द्रीय हॉल में अपने साथियों के साथ एक पत्र के बारे में उनसे चर्चा की। चर्चा के बाद उन्होंने कहा कि यह पत्र उन्हें भेज दिया जाय।

उस समय मेरे मित्र चाहते थे कि केन्द्रीय हॉल में हम चाय पीवें, किन्तु मैंने उन्हें सुझाया कि मेरे निवास-स्थान १, फीरोजशाह रोड चला जाय और वहीं चाय पी जाय। सभीने मेरा सुझाव मान लिया। मैंने लोकसभा के संदेशवाहक को वह पत्र दिया कि पंडितजी के पास पहुंचा दो। १, फीरोजशाह रोड पर पैदल पहुंचने में हमें मुश्किल से पन्द्रह मिनट लगे होंगे। हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक मोटर-साइकल-सवार मुख्य फाटक में दाखिल हो रहा है। उसे देखकर भी हम यह नहीं सोच पाये कि वह पंडितजी का उत्तर लेकर आया है। किन्तु बात यही थी। मुहर लगाने और पत्र रवाना करने में जो समय लगा होगा, उसे कम कर दें तो इसका यह अर्थ हुआ कि पंडितजी ने हमारे पत्र का तुरन्त उत्तर लिखाया और उनका इन्तजाम ऐसा था कि पत्र जल्दी-से-जल्दी हमारे पास भेजा गया।

पत्र का विषय साधारण था। अगर पंडितजी का उत्तर कुछ दिनों में भी मिला होता तो मुझे नहीं

खटकता। मेरा अनुभव है कि पंडितजी के देख लेने के बाद कोई भी पत्र ऐसा नहीं होता था, जिसका कि वह चौदह घण्टे के भीतर-भीतर उत्तर न दे देते। यह थी उनकी सुव्यवस्था। उन्होंने एक आदर्श उपस्थित किया, किन्तु अफसोस कि उनके सहयोगियों और प्रशासन ने उनका अनुकरण नहीं किया।

वह हर किसीसे बड़ी शिष्टता से मिलते और यह उनकी अपनी विशेषता थी। वह हमारे नेता ही नहीं थे, बल्कि उनकी उम्र करीब-करीब हमारे पिता के बराबर थी। उन्होंने यह कभी नहीं दर्शाया कि वह दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्री देश के प्रधान मंत्री हैं और वह हमेशा हमारे साथ बराबरी का बर्ताव करते। बहुत बार हमें विदा करते समय वह खड़े हो जाते। मैं कहता, "आप कष्ट न करें, हम तो आपके बच्चे हैं।" वह केवल मुस्करा देते। वृद्धावस्था और बीमारी के बावजूद वह अपने उस शिष्टाचार को निभाते रहे।

हमारे साथ व्यवहार करने का उनका अपना तरीका था। मैं विभिन्न कामों के लिए अनेक बार उनके पास गया। हर बार मुझे नया अनुभव हुआ। उनके शब्दों की अपेक्षा उनके रुख से असली उत्तर मिल जाता। जब वह खुश होते तो पास आते, अपना हाथ हमारे कंधों पर रखते और कमरे में कुछ दूर हमारे साथ चलते। यह प्रोत्साहन देने की खासी निशानी थी। जब वह कहते—"जैसाकि सोचते हो, उसके मुताबिक आगे बढ़ो और देखो क्या नतीजा आता है," तो यह उनका कुछ सीमित समर्थन होता। "कदम उठाने के पहले एक बार और सोच लो", यह कहते तो इसका मतलब होता, उनकी नरम असहमति। जब वह किसी बात को नापसंद करते तो बरस पड़ते, लेकिन उस समय भी उनकी झुंझलाहट थोड़ी देर ही रहती। अन्त में वह मुस्कराहट के साथ विदा कर देते। कई मर्तबा मैंने एक बात देखी। जब बातचीत जारी रखना उन्हें रुचिकर नहीं होता था तो वह खिड़की के बाहर झांकने लगते थे और आपपर यह असर पड़ता था कि आप सैकण्डों में अपनी बात पूरी कर देते। वह कुशल अभिनेता थे। उनके मनोभावों में इतनी सरलता से परिवर्तन होता कि सामनेवाले पर तुरन्त प्रभाव पड़ता। लोगों के साथ व्यवहार करने की कला ही उनकी लोकप्रियता की कुंजी थी। अपने पुराने साथियों के साथ भी कोई मजाक करके सारे मामले को टाल देते थे। यह उनकी एक शैली थी।

वह सही अर्थों में लोकतंत्री थे। ५१ प्रतिशत का बहुमत उन्हें बहुत अच्छा नहीं लगता था, यहां तक कि ८० प्रतिशत बहुमत से भी उन्हें सन्तोष नहीं होता था। वह और कोशिश करते थे और करीब ९९ प्रतिशत बहुमत प्राप्त करते थे। मुझे एक घटना याद आती है। सन् १९५१ में हमारी खाद्य स्थिति बहुत खराब थी और हमें अमरीकी गेहूं की जरूरत थी। अमरीकी सीनेट विधेयक स्वीकार करने में देर लगा रही थी। ४३ कांग्रेसी संसद सदस्यों ने अमरीकी सीनेट के चेयरमैन को तार भेजा कि विधेयक को जल्दी स्वीकार किया जाय। हमने यह सोचा नहीं कि पंडितजी इसे पसन्द नहीं करेंगे। खाद्य मंत्री ने हमें स्पष्ट स्वीकृति दे दी। हमें बताया गया कि तार का मसविदा खाद्य मंत्री ने तैयार किया है और सूचना मंत्री ने उसे संशोधित किया है। पंडितजी को जब यह मालूम हुआ तो वह बहुत नाराज हुए। पार्टी की बैठक बुलाई गई। उसमें उन्होंने इसका जिक्र किया। अधिकतर हस्ताक्षर करनेवाले असर में आ गये थे और उन्होंने अपनेको निर्दोष सिद्ध बताया। पंडितजी ने उनकी माफी को स्वीकार कर लिया। फिर कुछ

सदस्य ऐसे थे, जो अपनेको दोषी नहीं समझ रहे दे। अतः उन्होंने तर्क पेश किये। हर कोई यह ताज्जुव कर रहा था कि पंडितजी अपना वक्त क्यों बर्बाद कर रहे हैं, जबकि पार्टी आम राय के रूप में अपना निर्णय दे चुकी है। हम दलील नहीं कर सकते थे। इससे सदस्य नाराज हो जाते, इसलिए हम चुप रहे। पंडितजी ने हमारे पक्ष को इतना घटा दिया कि मत लिया गया तो केवल तीन ने विरुद्ध मत दिया।

श्री मसानी उस समय कांग्रस में थे। नागपुर के श्री पी० वाई० देशपाण्ड भी कांग्रेस सदस्य थे। मैंने और इन दोनों ने विरुद्ध राय दी।

इस घटना से पंडितजी मेरी निगाह में ऊंचे उठ गये। वह हमेशा अधिक से-अधिक लोगों का समर्थन पाने की कोशिश करते और अन्तिम व्यक्ति के दिल में भी अपनी बात पूरी तरह बिठाने का प्रयत्न करते थे। 'सबका उदय हो' शायद यह उनका मंत्र था। कोई आश्चर्य नहीं यदि सारा देश उनकी आवाज से प्रभावित होता था। ●

जवाहरलाल नेहरू केवल एक महान् देशभक्त ही नहीं थे, जोकि जनता के प्यारे थे, बल्कि वह विश्व के एक राजनीतिज्ञ भी थे, जिनमें दूरदर्शिता थी और जिन्होंने शांति और अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना के लिए बड़ी सेवा की है। बर्मा में हम उनके निधन से बहुत दुखी हैं, खासकर मुझ-जैसे लोग, जो उनको व्यक्तिगत रूप से जानते थे।

—ने विन

शांति और प्रेम

[लैटविया (रूस) की कवियित्री ने इस कवित्वमय श्रद्धांजलि में कहा है कि नेहरू की भस्मी सर्वत्र शांति और प्रेम का आवाहन करेगी।]

कभी मैं ज्वाला थी, अब भस्मी हूं।
सुनो! यह भस्मी गाती है—
मुझे उठा लो उच्च गगन तक
पंख हैं मेरे, उड़ने को मैं आतुर,
वहां, ऊंचे, नील गगन से
बिखरा दो मुझको।
भारत मां की छाती पर
ढककर उसको, परदा बनकर

मैं कानों में पूछूंगी—
"मां! पहचानती हो मुझे?
अपने जीवन और मृत्यु दोनों में
ज्वाला और भस्मी के रूपों में
मैंने अपना सर्वस्व
तुझपर किया निछावर।"

अपनी छाती से मुझे चिपकाए,
भारत-मां कहती है निःशब्द
"जवाहर, मेरे बेटे!
मैं तुझे विश्राम नहीं करने दूंगी,
मौत का कगार नहीं छूने दूंगी,
तेरी भस्मी लाल गुलाब की
पंखुड़ियां पाने को उत्सुक हैं,
तेरे जीवन का कमल
मुझमें सदा प्रफुल्ल रहेगा।"
महासागर की उत्ताल तरंगों
की तरह मैं अजेय था,
अब मैं नील-श्वेत मूक भस्मी हूं
सुनो भस्मी क्या गाती है?

"मुझमें से लो सिर्फ
एक मुट्ठी, एक मुट्ठी भर,
और प्रयाग की धरती से
फेंको मुझको सरिता में।
मैं सनातन गंगा तक पहुंचूंगी,
जो मुझे ले जायगी,
धीरे-धीरे लहराती-लहराती
महासागर में, विश्व के समुद्रों में।
मैं मनुष्यों के विचारों पर
छा जाऊंगी, और
वे मुझसे पूछेंगे—
"ओ! शान्ति-सखी!
क्यों तू विश्राम नहीं करती?"
"आओ परस्पर गले मिलो"
होगा प्रत्युत्तर में यह आह्वान
मेरी भस्मी-मण्डित लहर का।
अन्य लहर से गले मिलती,
शीश झुकाती,
जायगी यह अशान्त संसार की ओर—
करेगी सब जगह आवाहन—
"शान्ति और प्रेम, शान्ति और प्रेम।"

कृष्णा मेहता

उनके असामान्य गुण

पाकिस्तान ने जब काश्मीर पर हमला किया तो लाखों लोगों की वरवादी के साथ-साथ मेरे जीवन पर भी उसका गहरा प्रभाव पड़ा। मैं नहीं जानती कि इतना कुछ देखने और भोगने के वाद भी मेरे मन में हिसा की आग क्यों नहीं भड़की और मेरा यह विश्वास कैसे अटल बना रहा कि गांधी-विचार-धारा के द्वारा ही हमारा कल्याण हो सकता है। मैं उसी रास्ते पर चली।

फिर भी मेरे मन में एक विचार बार-बार उठता था कि लोग शान्ति के लिए, अहिसा के लिए, मानव-जाति की रक्षा के लिए काम क्यों नहीं करते। चार दिन की जिन्दगी के लिए आखिर इन्सान क्यों इतने कठोर हो जाते हैं कि अपनी खुशी के लिए दूसरों को सताते है ?

छः महीने तक यातनाएं भोगने के वाद मैं अमृतसर पहुंची। वहां से कुरुक्षेत्र । अमृतसर में कुछ लोगों ने मुझे सलाह दी थी कि मै पं० जवाहरलाल नेहरू से मिलूं और उन्हें सब बातें वताऊं।

उस समय मै पंडितजी से परिचित नहीं थी। एक वार श्रीनगर में दूर से उनके दर्शन किये थे। उनतक पहुंचूं कैसे, यह सवाल था। सुना था, उन्हें बड़ी जल्दी गुस्सा आ जाता है। मुझमें उनकी उस मुद्रा को देखने का साहस कहां था!

जोहो, कुरुक्षेत्र के एक जिम्मेदार अधिकारी ने दिल्ली पत्र लिखा और मेरे मिलने के लिए समय मांगा। उत्तर आया कि प्रधान मंत्री कुरुक्षेत्र आ रहे है और दोपहर को भोजन के वाद मैं उनसे मिलू।

वह आये। मै उनसे मिलने गई। उनके दर्शन करते ही मेरा सिर उनके चरणों में झुक गया और मेरे मुंह से निकला, "आपके यहां दया है, सच्चाई है, इंसाफ है।"

पंडितजी सोफे पर बैठे हुए थे और सिर झुकाये मेरी वात सुन रहे थे। मैं उनसे कुछ मांगने नहीं गई थी। सच यह है कि उस समय मेरे मन में कोई इच्छा भी नहीं थी। मैं तो उन्हें कुछ वातें बताना चाहती थी, जो मैने पाकिस्तान में देखी, सुनी और भुगती थी।

बड़ी मधुर और हिम्मत बंधानेवाली आवाज में पंडितजी ने कहा, "बैठो और अपना हाल सुनाओ।"

मैने संक्षेप में अपनी बातें वताई और अंत में कहा कि मैं अपना शेष जीवन देश की सेवा में लगाना चाहती हूं। रहे वच्चे, उनके लिए जैसा आप ठीक समझें, कीजिये। मैं आपपर छोड़ती हूं।

पंडितजी के पास समय थोड़ा था। मेरे पास बातें बहुत थीं। पंडितजी ने कहा, "तुम मेरे साथ मोटर में दिल्ली चलो। रास्ते में पूरी बातें सुनने का मौका मिल जायगा।"

इनसब बातों को मैं विस्तार से अपनी पुस्तक 'काश्मीर पर हमला' में लिख चुकी हूं, जो 'सस्ता साहित्य मंडल' से प्रकाशित हुई है। उन्हें अब दोहराना नहीं चाहती। बस इतना ही कहना काफी होगा कि पंडितजी ने मुझे अपनी बहन बनाया और उस दिन से वह मेरे लिए भाई ही नहीं, एक अवतारस्वरूप रहे। मैंने उनमें बहुत-से गुण देखे, जो मुझे और कहीं नहीं दिखाई दिये। सन् १९४८ से लेकर मई १९६४ तक की उनकी बातों को लिखूं या उनके महान् गुणों की व्याख्या करूं तो एक पुस्तक ही तैयार हो जायगी। इस लेख में तो मैं कुछ ही बातों की चर्चा कर सकती हूं।

मैं और मेरे बच्चे दो महीने १७ यार्क रोड (नई दिल्ली) पर पंडितजी के साथ रहे। उन दिनों पंडितजी की छोटी बहन कृष्णा हठीसिंग भी वहां थीं और श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडितजी की छोटी लड़की रीता भी। पंडितजी ने मुझे लार्ड माउण्टबेटन तथा लेडी माउण्डबेटन से मिलाया और उन्हें सब बातें सुनाईं। मुझे याद है, उन दिनों जितने नेता वहां आते थे, उन सबसे मेरी भेंट होती थी। स्वर्गीय बी० सी० राय की एक बात मुझे अभीतक स्मरण है। वह पंडितजी से सारी बातें सुन चुके थे। मेरे कमरे में आये और बोले, "कृष्णा, तुम्हारे सिर्फ पांच ही बच्चे नहीं हैं। सारा हिन्दुस्तान तुम्हारा है।"

मुझे पंडितजी ने अपनी लिखी सब पुस्तकें पढ़ने को दीं और कुछ गांधीजी की भी। दिन-रात लगाकर मैंने वे पुस्तकें पढ़ीं और एक दिन जब उन्हें लौटाने गई तो पंडितजी ने कहा, "इतनी जल्दी कैसे पढ़ डालीं? अच्छा, क्या तुम उर्दू पढ़ सकती हो?"

मेरे 'हां' कहने पर उन्होंने 'मेरी कहानी' का उर्दू-अनुवाद मंगाकर दिया और कहा, "इसे पढ़ो। देखूं कहांतक पढ़ सकती हो?"

... ...

संभवतः सन् १९५० की बात है। पंडितजी इलाहाबाद गये थे। घर के सब लोग वहीं गये थे। लेडी माउण्टबेटन, मृदुलाबहन तथा कमला चट्टोपाध्याय भी वहां आई हुई थीं। मेरा बड़ा लड़का, जो नैनीताल में पढ़ता था, शरद ऋतु की छुटियों में आया हुआ था और हम लोग भी वहां थे। कुछ दिन पहले कोई ऐसी घटना घटी थी कि उससे मेरे मन को बड़ी चोट लगी थी और मैं सोच रही थी कि मुझे पंडितजी पर अपने बच्चों का बोझा नहीं डालना चाहिए, लेकिन पंडितजी से कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। उनका स्नेह और उदारता देखकर चुप रह जाती थी।

सब जने ड्राइंग रूम में बैठे थे। रात का समय था। पंडितजी अगले दिन सवेरे ही दिल्ली लौटने वाले थे। मैं भी ड्राइंग रूम में पहुंच गई। मेरे काम के बारे में चर्चा होने लगी। एक बहन ने कहा, "पंडितजी, कृष्णा जो कर रही है, उसके लिए कुछ तनखा लेले तो अच्छा हो।" पंडितजी ने फौरन उत्तर दिया, "नहीं, वह इसकी शान के खिलाफ है।" फिर मेरी ओर देखकर कहा, "क्यों ठीक है न?"

उनके मन में क्या था, मैं समझ नहीं सकी। मैंने उनकी बात का कोई जवाब नहीं दिया।

पिछले सत्रह साल से मैं बराबर समाज-सेवा करती रही। आर्थिक कठिनाइयों ने बहुत दबाया,

परन्तु अपनी इच्छाओं को मैंने कभी उभरने नहीं दिया, क्योंकि जिन्हें मैं अवतार मानती थी, उनका वरदान जो मुझे मिला हुआ था। उन्हीं दिनों मैंने दिल्ली आकर पंडितजी से अपने दिल की बात कही और अपने पैरों पर खड़े होने की इच्छा प्रकट की। भेदभरी मुस्कराहट के साथ पंडितजी ने कहा, "तुम्हारे दो पांव हैं। तो तुम अपने पांवों पर ही तो खड़ी हो।" फिर कुछ रुककर बोले, "तुमने बहन बनकर मुझ-पर जिम्मेदारी डाली है। देखो, एक बात याद रक्खो। जो वादा करके भूल जाते हैं, उसको पूरा नहीं करते, वे गिर जाते हैं। अपनी बात को हमेशा निभाना चाहिए।"

मैं क्या उत्तर देती! खामोश रही। उस महापुरुष के महान चरित्र की सीमा नहीं थी।

... ...

सन् १९६२ के चुनावों के दिनों की बात है। लोगों के निर्वाचित होने की घोषणाएं हो रही थीं। मैं उन दिनों दिल्ली में थी और प्रधान-मंत्री के निवास-स्थान पर ठहरी थी। किसी व्यक्ति के निर्वाचित होने की खबर आई तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। पंडितजी ने मेरी ओर देखकर कहा, "कृष्णा, इन छोटी बातों में ऐसा खुश होने की क्या चीज है?"

मैं उनकी ओर देखती-की-देखती रह गई।

... ...

गांधीजी के प्रति उनके मन में असीम प्रेम था। गांधीजी अक्सर कहा करते थे कि उनके जन्म-दिन पर अधिक कुछ न करके चर्खा काता जाय और प्रार्थना हो। पंडितजी १६ वर्ष से इन बातों का नियम से पालन करते थे। प्रातःकाल से यह कार्य आरम्भ होता था। सबसे पहले वह बिड़ला-हाउस जाते थे, जहां गांधीजी के गोली लगी थी। वहीं प्रार्थना में शामिल होकर फिर राजघाट पर बापू की समाधि पर सुन्दर फूलों का गुच्छा लेकर जाते। अपने बापू को श्रद्धांजलि अर्पित करते, फिर प्रार्थना में सम्मिलित होते। तत्पश्चात कताई के कार्यक्रम में शामिल होते और शान्त भाव से कताई करते। किसलिए? बापू की याद में। कितनी श्रद्धा थी उनके मन में। स्वतंत्रता-संग्राम में गांधीजी ने चर्खे को स्वाधीनता का हथियार बताया था और उनका यह भी विचार था कि स्वतंत्रता के बाद भी भारत की गरीब जनता को गांव-गांव में उठानेवाला एकमात्र चर्खा ही होगा। इसीलिए ही खादी को उन्होंने इतना महत्व दिया था।

मैं समझती हूं कि पंडितजी में भी चर्खे के लिए बहुत श्रद्धा थी। मैं नहीं जानती कि ऐसा गांधीजी की प्रेरणा से था अथवा अपनी विचार-धारा के कारण। उनके खादी और चर्खा प्रेम को मैंने १९४८ में देखा। मैं अपने बच्चों-सहित प्रधान मंत्री-निवास (१७ यार्क रोड, नई दिल्ली) पर ठहरी हुई थी। पंडितजी की बहन कृष्णा हठीसिंग भी वहीं थीं। मैं उन दिनों खादी नहीं पहनती थी। न मुझे चर्खा चलाना आता था। यह अवश्य है कि बचपन से मेरी गांधी-विचार-धारा के प्रति श्रद्धा थी और मेरा मन सर्वदा इस खोज में रहता था कि मैं भी उस विचारधारा का पालन करूं, परन्तु अनुकूल समय नहीं मिला था। समय बदलते ही विचारों की किरणें उभर आईं। इन्दिराजी लखनऊ गई थीं। श्रीमती हठीसिंग ने लाला ओंकारनाथजी (भूतपूर्व एम०पी०) से कहा कि कृष्णा को आप गांधी-आश्रम ले जाइये और खादी की साड़ियां आदि खरीदवा दीजिये। मैं नहीं जानती कि उनसे पंडितजी ने कहा था या उन्होंने स्वयं

तय किया। मैं ओंकारनाथजी के साथ गांधी-आश्रम, चांदनी चौक गई और खादी की साड़ियां ले आई। उस दिन से नियमपूर्वक खादी पहननी शुरू की। इस तरह खादी का वरदान मुझे प्रधान मंत्री-निवास से ही मिला। एक दिन पंडितजी ने मुझसे पूछा, "कृष्णा, तुम्हें चर्खा चलाना आता है?" मैंने कहा, "नहीं, मुझे नहीं आता।"

फिर क्या था! अगले दिन गांधी-आश्रम से चर्खा तथा पूनियां आ गईं और पंडितजी ने मुझे खुद चर्खा कातना सिखाया। मुझे याद है, एक दिन मेरी आंटी कुछ ढीली बनी तो पंडितजी ने अपने पैर के अंगूठे में सूत लगाकर कसकर, बट देकर, आंटी बनाई और मुझे दिखाई। कहा, "देखो, ऐसे बनाई जाती है।"

एक-दो दिन में मैं चर्खा चलाना सीख गई तो पंडितजी ने कहा, "बस, कृष्णा, अब तुम्हें यही करना है।" मैंने उत्तर दिया, "जहांतक होगा, मैं चर्खे का काम फैलाऊंगी। मैं बहुत-कुछ करूंगी।" उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "देखूंगा कि अब तुम क्या करोगी!"

चर्खे की प्रेरणा इस तरह मुझे उस महान पुरुष से ही मिली। एक दिन मैंने बात-बात में लाला ओंकारनाथजी से कहा कि मुझे पंडितजी ने चर्खा कातना सिखाया है तो वह बोले, "तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया। मैं तस्वीर लेता और कहता कि भारत के प्रधान-मंत्री इतने व्यस्त रहते हुए भी छोटी-छोटी बातों पर कितना ध्यान देते हैं और कितने बड़े गांधीवादी हैं।" लगभग १६ वर्ष से खादी-ग्रामोद्योग का काम करना मेरा धंधा बना है। काश्मीर में मैंने शरणार्थियों के लिए जो काम किया, उसमें पहला स्थान चर्खा का था। आज भी जम्मू-काश्मीर में खादी ग्रामोद्योग कमीशन के अंतर्गत मेरी बनाई एक प्रमाणित संस्था चल रही है, जिसमें कोई ३०,००० व्यक्तियों को काम मिला है। इसी तरह इलाहाबाद में भी चर्खे द्वारा काफी काम हो रहा है।

मैं प्रातः प्रतिदिन एक घण्टा सूत कातती थी, उसकी खादी बनवाती और पंडितजी के जन्म-दिन पर उनको भेंट करती थी।

एक दिन पंडितजी ने मुझसे पूछा "कृष्णा, गांधीजी से तुम्हारी कब मुलाकात हुई थी और कैसे हुई थी?" मैंने उन्हें सारी बातें बताईं और यह भी कि उनका मुझपर क्या प्रभाव पड़ा।

लगातार १६ वर्ष से जिस शक्ति से काम करती थी, अब वह कुछ क्षीण होती दिखाई देती है। इसलिए मन अब इन सब कामों से कुछ हटने को होता है, लेकिन एक आवाज कानों में गूंज उठती है, "कृष्णा, अब यही तुमको करना है।" इतना सुनते ही उखड़ते कदम जम जाते हैं। सोचती हूं, चाहे कैसी भी कठिनाई हो, जो काम पंडितजी ने मुझे सौंपा है, उसे किसी-न-किसी रूप में निभाना ही है। गांधीजी के महान उत्तराधिकारी की विशेषता थी कि जो बातें गांधीजी को प्रिय थीं, उनको किसी-न-किसी रूप में आगे बढ़ाते थे।

... ...

राखी के त्यौहार का मैं वर्ष-भर इंतजार करती थी और लगातार १६ वर्ष तक यही कोशिश मेरी रही कि राखी के अवसर पर दिल्ली में ही रहूं। जहांतक मुझे याद है, केवल दो बार ऐसा हुआ कि मैंने डाक-द्वारा राखी भेजी, क्योंकि किसी काम के कारण दिल्ली नहीं पहुंच सकी थी।

राखी के इस शुभ त्यौहार पर मेरा यही प्रयत्न रहता कि सबसे पहले मैं अपने पूज्य नेता को अपने हाथों राखी पहनाऊं। उन्होंने मेरे भारी दुखों के समय मुझे अपनी वहन वनने का सौभाग्य दिया था और उसे अन्त तक निभाया।

राखी के त्यौहार पर अक्सर प्रधान-मंत्री-निवास पर काफी भीड़ रहती थी। वड़ी आयु की महिलाएं, नवयुवतियां और वालिकाएं, झुण्ड-की-झुण्ड आती थीं। पंडितजी ठीक समय पर नीचे आते थे। भीड़ उमड़ पड़ती थी और वह कलाई आगे कर देते थे, एक सुन्दर मुस्कराहट के साथ।

सवको ऐसा लगता कि सबपर उनकी प्यार-भरी दृष्टि है, जो एक भाई की बहन के लिए होती है। देखते-देखते उनकी कलाई भर जाती थी। कई मरतवा कलाई को खाली करना पड़ता था, क्योंकि वह इतनी भर जाती थी कि और राखी बंध नहीं सकती थीं। वह दृश्य देखते ही बनता था। कोई तिलक लगा रही है, कोई फूलों का हार पहना रही है, कोई फूलों का सुन्दर गुलदस्ता भेंट कर रही है, कोई सुन्दर गुलाब की पंखुड़ियां उनपर विखेर रही है, कोई मिठाइयां तथा फल भेंट कर रही है।

लगभग घण्टे-भर यही कार्यक्रम रहता। पंडितजी के चेहरे पर बरावर वह मुस्कराहट रहती, जो एक-एक से कहती कि मैं तुम्हारा प्यार ऊंचे प्यार के साथ स्वीकार कर रहा हूं।

जनता ने उन्हें असीम प्यार से वांध रखा था। वह उसमें बुरी तरह बंध गये थे।

सन् १९४८ में पहली बार मुझे पंडितजी के राखी बांधने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। एक चमकती हुई राखी मैंने बाजार से खरीदी थी। प्रातः ८॥ वजे जब पंडितजी नाश्ता करने आये तो मुझे कमरे में खड़ा देखकर मुस्कराहट के साथ पूछा, "आज क्या है, कृष्णा ?"

"पंडितजी, आज राखी का त्यौहार है। राखी वांधनी है।" मैंने जवाब दिया।

चमकती आंखों के साथ उन्होंने कलाई आगे को कर दी और मैंने उस मजवूत कलाई पर राखी बांध दी।

एक क्षण में वह सुन्दर कलाईवाला हाथ मेरे सिर पर था और मुझे लगा, जैसे सारे हिन्दुस्तान का हाथ मेरे सिर पर है। मैं अपनेको बहुत सौभाग्यशालिनी मान रही थी। अपने सारे दुख भूल गई।

इतने में एक बहन ने हाथकते सूत की राखी पंडितजी के बांधी। मेरी ओर देखकर पंडितजी बोले, "देखो, कृष्णा, यह राखी वढ़िया है। हाथ से सूत कातकर बनाई है।"

मैं समझ गई की उन्हें सादे सूत की राखी पसन्द है। १९४८ के बाद १९६३ तक मैं अपने हाथ से सूत कातकर राखी बनाती रही। सफेद सूत के गुच्छे बनाकर उन्हें फैलाती और बीच में केसर का टीका लगाती। कोशिश करती कि नरगिस के फूल की तरह दिखाई दे।

राखीवाले दिन अक्सर सबेरे ४ बजे उठती। कभी-कभी केसर डालकर मीठे चावल बनाती। मैं जानती थी कि पंडितजी केसरवाले मीठे चावल प्रायः पसन्द करते हैं। मैं उस दिन उन्हें उनकी पसन्द की चीज भेंट करना चाहती थी। ८॥ बजे प्रधान मंत्री-निवास पर पहुंच जाती। सीधे नाश्ते के कमरे में जाती। बड़ी उत्कंठा के साथ पंडितजी का इंतजार करती। वह कमरे में प्रवेश करते। मैं अपनी सजी हुई थाली सामने करती। वही आवाज सुनाई देती, "आज क्या है, कृष्णा ?"

"पंडितजी, राखी का त्यौहार है।" मैं कहती। वही मुस्कान। मैं राखी बांध देती। फिर टीका

लगाती और चम्मच से थोड़े चावल उनके मुंह में डालने के लिए उनकी ओर बढ़ाती।

वह कहते, "सुबह-सुबह यह क्या?"

"नहीं पंडितजी, दो दाने सगुन के लिए।"

पंडितजी मुंह खोल देते। मन न चाहता, फिर भी स्वीकार कर लेते।

जब मैंने पहले-पहल राखी बांधी थी तो पंडितजी ने एक सुन्दर कीमती पेन मुझे दिया था और कहा था, "लो कृष्णा, तुम्हें लिखने के लिए देता हूं।"

वह पेन ४८ से ६१ तक लगातार मेरे पास रहा। मैं उस सुन्दर उपहार को हमेशा अपने पास रखती थी। एक बहुत बड़ा आशीर्वाद समझती थी। परन्तु १९६१ में जब मैं संसद की सदस्या थी तो दो सदस्य बहनों ने लिखने के लिए उसे मुझसे ले लिया और जल्दी में कहीं रखकर भूल गईं। मैं उसे किसीको नहीं देती थी, परन्तु उस दिन, न चाहने पर भी, उन्हें मना नहीं कर सकी। पेन खोने से मुझे बहुत धक्का लगा। मैं समझ रही थी कि जो आशीर्वाद मुझे मिला था, उसपर कुछ कठिनाई आ रही है। मेरा दिल कांप रहा था।

बहनें मुझसे कह रही थीं कि हम तुम्हें ऐसा ही पेन कल लाकर दे देंगी। मैं उन्हें उस पेन का भेद बताना नहीं चाहती थी। उन्हें कैसे बताती अपने मन की वेदना। उस पेन को जो दर्जा मिला था, वह दूसरे पेन से कैसे पूरा हो सकता था? बहुत दिनों तक उसके कारण मेरा मन दुखी रहा।

... ...

१९६३ की बात है। भैयादूज के दिन जब सब लोग चले गये तो पंडितजी ऊपर गये और माथे के तिलक वगैरा को साफ करके दफ्तर जाने लगे, तभी एक ग्रामीण वृद्धा, जो कहीं दूर से आई मालूम होती थी, लाठी टेकते-टेकते उनके सामने आ खड़ी हुई और बोली, "मैं तुम्हारे तिलक लगाने आई हूं। तिलक लगाकर जाऊंगी।"

पंडितजी खड़े हो गये। उनकी आंखें डबडबा आईं। वृद्धा ने अपनी चादर के छोर की गांठ को खोलकर रोली निकाली और पंडितजी के तिलक करने को हाथ ऊपर उठाया, पर उसकी कमर इतनी झुकी हुई थी कि उसका हाथ पंडितजी के माथे तक नहीं पहुंच सका। तब पंडितजी ने झुककर तिलक लगवाया। पंडितजी के चेहरे पर मुस्कान थी, वृद्धा की आंखें भीग रही थीं।

... ...

कुछ साल पहले देश में चावल की कमी होगई थी। मद्रास-बंगाल में चावल नहीं मिल रहा था। पंडितजी ने प्रधान-मंत्री-निवास पर चावल बनाना रोक दिया। अगर कोई चावल खानेवाले प्रदेश का ही मेहमान आता था तो उसके लिए पक जाता था। परन्तु पंडितजी अपनी थाली में चावल नहीं लेते थे। एक दिन पंडितजी ने मुझसे कहा, "कृष्णा, तुम्हें मेरे घर में चावल खाने को नहीं मिलेगा। देश में चावल नहीं है। पर तुम्हारी तो काश्मीर में चावल खाने की आदत पड़ गई होगी।"

मैंने उत्तर दिया, "नहीं, मेरी कोई खास आदत नहीं है।"

मद्रास से राजाजी दिल्ली आये हुए थे। उनका भोजन प्रधान-मंत्री-निवास पर था। उनके लिए

चावल वने, पर पंडितजी ने नहीं छुये।

इसी प्रकार गेहूं की कमी होने पर वह प्रायः शकरकंदी या मक्की-बाजरे की रोटी खाते देखे जाते थे। यह थी देश के लिए उनकी ममता। दूसरों के दुख को वह अपने ऊपर ले लेते थे।

... ...

लद्दाख की एक घटना मैं कभी नहीं भूल सकती। उनकी टोली में मैं भी थी। चांदी के वड़े-वड़े थालों में खाना परोसा गया। ये थाल काश्मीर से वहां लाये गए थे। खास किस्म के थे। दो थाल जुड़े थे। नीचे के थाल में गरम पानी रक्खा जाता था, जिससे भोजन गरम बना रहे। ऊपर के थाल में खाना रहता था। ये थाल महाराज के जमाने के थे। लद्दाख में ठण्ड वहुत है। खाना परोसते ही ठण्डा होजाता है।

पंडितजी ने जैसे ही उन थालों को देखा और पूछने पर मालूम हुआ कि हवाई जहाज से वे लाये गये हैं तो वह एकदम झल्ला पड़े। उन्होंने कहा, "देश में पेट्रोल की इतनी कमी है। क्या जरूरत थी इन थालों को लाने की? देश के लिए पेट्रोल की एक-एक बूंद खून की बूंद के वरावर है।"

इतना कहकर उन्होंने एक छोटा वर्तन मंगवाया। किसीने एक वड़ा कटारा लाकर दे दिया। पंडितजी ने सव चीजें थोड़ी-थोड़ी उसमें लेलीं। सात दिन के लद्दाख के उस दौरे में उन्होंने एक दिन भी चांदी के थाल में खाना नहीं खाया। मुझे लगा, जैसे दूसरों के गुनाहों का उन्होंने स्वयं प्रायश्चित्त किया हो।

... ...

पंडितजी का ऊंचा चरित्र, उनका त्याग, उनकी सचाई, ये तथा अन्य असामान्य गुण थे, जो लोगों को उनकी ओर खींचते गये। ●

भारतीय जनता का नेता होने के साथ-साथ जवाहरलाल नेहरू ने इण्डोनेशिया की आजादी के लिए जो योगदान दिया, उसके लिए इण्डोनेशिया के लोग उन्हें कभी नहीं भूल सकते। उनके जाने से सारी दुनिया शोक मनायगी, क्योंकि एक ज्यादा सुन्दर जगत् की स्थापना के संघर्ष में उनका योगदान पाने से वह वंचित रहेगी। हमें पूरा विश्वास है कि भारत के लोग उनके नेतृत्व को विकसित करते रहेंगे।

—सुकर्ण

शांति की आवाज़

बीते निशा, उदय निश्चय सुप्रभात--
आते नहीं दिवस हन्त ! पुनः गये जो ।
आशा भरी नयन मध्य अपार, किन्तु--
बीती वसन्त स्मृतियां दिल को दुखातीं ॥

पंडितजी को मैंने पहली बार गांधी-इर्विन-पैक्ट के अवसर पर मार्च १९३१ में दिल्ली में देखा था। उस समय का उनका वह अशांत--उग्र रूप कभी नहीं भूलता। वह उस पैक्ट से प्रसन्न नहीं थे और वह अप्रसन्नता उनकी प्रत्येक गतिविधि में उबल-उबल पड़ती थी। उन्हें एक सभा में झण्डाभिवादन के लिए आमंत्रित किया गया था। किसी कारणवश उसमें देर होगई। बस, वह क्रुद्ध हो उठे और उबलते-उफनते, न जाने क्या-क्या कहते, मंच से उतरकर चले गये। वह दृश्य--उनका तेजी से जाना और पं० इन्द्र विद्या-वाचस्पति का उनके पीछे-पीछे लपकना, कभी नहीं भूलता।

जीवन के अंतिम क्षण तक अव्यवस्था और अनियमितता के प्रति उनकी यह खीज बराबर बनी रही। असंख्य बार उनको इसी रूप में देखा। १५ अगस्त, १९५० की उस रात की याद आती है। राष्ट्र-पति-भवन में संयुक्त-राष्ट्र समिति की दिल्ली शाखा ने स्वतंत्रता-दिवस के उपलक्ष्य में एक स्वागत-समारोह का आयोजन किया था। तीन ओर से खुला रंगमंच, दूर-दूर तक राष्ट्रपति-भवन के प्रशस्त लान में बैठे हुए शरणार्थी, सामने अपनी-अपनी विशिष्ट वेशभूषा में सभी देशों के राजदूत, राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, प्रधान-मंत्री-सहित समस्त मंत्रिमण्डल, सरकारी अधिकारी और राजधानी के प्रमुख नागरिक। मंच पर थे आकाशवाणी के वाद्य-वादक और संगीतज्ञ और थीं सुप्रसिद्ध नृत्यकार कमला केसरकोडी।

समारोह अत्यंत सफल रहा। तब स्वाभाविक रूप से कलाकारों ने चाहा कि उनका राष्ट्रपति से परिचय हो। संयोजन-समिति के एक सदस्य के नाते मैंने पंडितजी से प्रार्थना की तो वह तुरंत बोले, "हां-हां, मैं कलाकारों का परिचय राष्ट्रपति से अवश्य कराऊंगा।"

परंतु समिति के संयोजक ने न जाने क्या सोचकर कलाकारों को मंच पर पंक्तिबद्ध खड़े होने की आज्ञा दी। उनका कहना था कि संयोजक होने के नाते परिचय कराने का अधिकार उनका है। लेकिन अभी पंक्ति बनी भी नहीं थी कि नेहरूजी आवेश में आकर कुर्सी से उठ खड़े हुए और बोले, "यह क्या, बत्तमीजी है ?"

मैं सवसे आगे था। कहना चाहा, "जी कलाकारों को..."

पंडितजी एकाएक बीच में बोल उठे, "कलाकार-कलाकार, क्या राष्ट्रपति उनसे मिलने के लिए मंच पर जायंगे?"

"जी, नहीं, संयोजक..."

वाक्य पूरा होने के पूर्व ही नेहरूजी तड़प उठे। मुझे एक जोर का धक्का दिया, बोले, "तुम कौन हो, कलाकार?"

"जी नहीं!"

"तो यहां क्यों खड़े हो? तमीज है? कोई तमाशा है?"

और फिर धक्का दिया। मैं दूर जाकर गिरा। संयोजक तवतक सभापति-सहित पिछले द्वार से जा चुके थे। किसी तरह उप-सभापति ने स्थिति को संभाला। कहा, "पंडितजी, यहां लाने के लिए ही कलाकारों को मंच पर इकट्ठा किया है।"

पंडितजी ने कहा, "तो लाओ न, राष्ट्रपति से कलाकारों का परिचय मैं कराऊंगा। मैं प्रधान-मंत्री हूं। मेरे रहते और कौन करा सकता है?"

और तवतक कलाकारों ने उन्हें घेर लिया था।

और नेहरूजी उनसे हँस-हँसकर वात करने लगे थे।

... ...

एक और घटना की याद आती है। ३ दिसम्वर, १९५०। राष्ट्रपति-भवन का एक शांत ठिठुरता सवेरा। उस दिन राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसादजी की वर्षगांठ थी। स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति की वर्षगांठ। जिसने चाहा उसे आने की अनुमति मिली। साढ़े आठ वजे तक मैं भी वहां पहुंच गया। देखा, एक छोटी-सी भीड़ अव्यवस्थित रूप से प्रशस्त मुगल उद्यान में विखरी हुई है। कुछ ही क्षण वाद ममता की मूर्त्ति राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद भी वहां आ गये। जनता भूल गई, वह भूल गये, उनके अंगरक्षक भी भूल गये कि वह राष्ट्रपति हैं। उस क्षण वह देश के दुलारे 'राजिन्नरवावू' बन गये, और जनता 'मैं पहले हार डालूं' की होड़ में उनपर पिल पड़ी। अंगरक्षक आये, सचिव आये, पर बाढ़ क्या रोके रुकती है! सभी विवश थे कि तभी दूर से एक कड़कता हुआ स्वर सुन पड़ा, "यह क्या वत्तमीजी है!"

देखता हूं कि हाथों में गुलाव के फूलों का गुच्छा, गति में आवेश और नेत्रों में आक्रोश लिये इन्दिराजी के साथ नेहरूजी चले आ रहे हैं। भीड़ ऐसे फट गई, जैसे उषा के आगमन पर पौ फट जाती है। सवसे पहले पंडितजी ने राष्ट्रपति का अभिवादन किया और फिर उस विस्तृत मुगल उद्यान में रविश के साथ-साथ जनता को खड़ा होने और अभिनन्दन करने का संकेत किया और फिर स्वयं सवसे हँस-हँसकर वातें करने लगे।

... ...

इसके विपरीत मैंने उनको अत्यंत उत्तेजित वातावरण में परम शांत रूप में देखा है। उनके निवास पर नृत्य-नाटकादि देखने का अवसर वहुत वार मिला है। परंतु उन्हें पास से देखने का सुयोग साहित्यिकों

के समारोह में ही हुआ है। ३ दिसम्बर, १९५६ की याद हृदय-पटल पर बड़ी गहरी अंकित है। उन दिनों राजधानी में यूनेस्को का सम्मेलन हो रहा था। उसमें विश्व के कई लेखक भी आये थे। इसी अवसर का लाभ उठाकर साहित्यिकों की विश्व-संस्था पी. ई. एन. ने पंडितजी की कोठी पर एक छोटी-सी सभा का आयोजन किया। प्रधान मंत्री-निवास के ऊपर के कमरे में सब लोक एकत्र हुए। उनके बीच में बैठे थे पंडितजी, अत्यन्त शांत-गंभीर मुद्रा में। बातें करते-करते वह मुस्कराते, फिर कहीं खो जाते। सहसा एक वृद्ध भारतीय सज्जन ने पंडितजी से पूछा, "पंडितजी, आप अमरीका जा रहे हैं। वहांपर मेरे एक अजीज हैं। क्या उनका आपसे मिलना हो सकता है?"

पंडितजी ने शांत भाव से उत्तर दिया, "क्यों नहीं हो सकता! आप उनको लिख दीजिये कि जब मैं वाशिंगटन पहुंचूं तो वह राजदूत से सम्पर्क स्थापित कर लें।"

बात जैसे समाप्त होगई। मैंने पंडितजी से कहा, "पंडितजी, आज हम आपके घर आये हैं, लेकिन इसके लिए निमंत्रण हमें पी. ई. एन. की ओर से मिला है। मैं चाहता हूं कि इस निमंत्रण पर आपके हस्ताक्षर भी होते।"

यह कहकर वह निमंत्रण-पत्र मैंने उनकी ओर बढ़ा दिया। पंडितजी मुस्कराये। वह पत्र लिया और उसके पृष्ठ भाग पर हस्ताक्षर बना दिये। वह हस्ताक्षर कर ही रहे थे कि वह पूर्व सज्जन फिर बोले, "लेकिन पंडितजी, राजदूत से सम्पर्क स्थापित होने पर भी आपसे मिलना कैसे होगा?"

पंडितजी उसी शांत भाव से बोले, "अरे भाई, वह जब राजदूत से सम्पर्क स्थापित करेंगे तो अपनी बात तो कहेंगे ही। तब राजदूत उन्हें किसी उत्सव में आमंत्रित कर लेंगे।"

किसीने कोई और प्रश्न पूछ लिया। पंडितजी उसका उत्तर देने लगे। परंतु वह पूर्व सज्जन अब भी संतुष्ट नहीं हुए थे। उन्होंने फिर पूछा, "पंडितजी, किस उत्सव में राजदूत उनको आमंत्रित करेंगे और फिर आपसे मिलना कैसे होगा?"

बड़ा अजीब-सा प्रश्न था। स्वाभाविक था कि पंडितजी उबल पड़ते। लेकिन वह पूर्णतः शांत बने रहे। बोले, "यह सब मैं इस समय कैसे बता सकता हूं। मेरे पास कार्यक्रम नहीं है। जब भी मैं कहीं जाता हूं, राजदूत वहां के भारतीयों को मुझसे मिलने के लिए आमंत्रित करते हैं। आप उनको लिख सकते हैं कि वे सब बातें राजदूत से कह दें। तब हमारा मिलना सहज हो जायगा।"

यह सज्जन कोई प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं थे, परंतु जिस प्यार और सहजता का पंडितजी ने उस दिन प्रदर्शन किया वह उनके लोक-प्रचलित रूप से भिन्न था।

... ...

आकाशवाणी के साहित्य-समारोह के बाद की एक और घटना याद आती है। पंडितजी ने सभी साहित्यिकों को चाय-पार्टी पर आमंत्रित किया था। नियत समय तक धीरे-धीरे सभी व्यक्ति उनके प्रशस्त लान में इकट्ठे होगये। लेकिन स्वयं वह वहां नहीं दिखाई दे रहे थे। सब लोग नाना प्रकार की कल्पनाओं में व्यस्त हो उठे कि तभी मैंने देखा, पंडितजी अपनी कोठी के अंदर के मार्ग से होकर जल्दी-जल्दी चले आ रहे हैं। आते ही उन्होंने अपने प्रिय पांडा को गोदी में उठा लिया। संयोग से उस ओर मैं सबसे आगे

खड़ा था। मैंने कहा, "पंडितजी, बड़ी देर हो गई आपको।" वह हँसे और पांडा पर हाथ फेरते-फेरते बोले, "...ने परेशान कर दिया। 'गाय-गाय', हर वक्त 'गाय-गाय' करता रहता है।"

और यह कहते हुए उन्होंने पांडा को राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की ओर फेंक दिया। गुप्तजी 'हाय दैया रे' कहते हुए तेजी से पीछे हट गये और पंडितजी खिलखिला पड़े। फिर मेरे कंधे पर हाथ रखकर आगे बढ़ते हुए बोले, "आओ-आओ, देर होगई, पहले चाय पी लें।"

उस दिन लोकसभा में गौ-रक्षा विधेयक को लेकर वह अत्यंत उत्तेजित हो उठे थे। परंतु साहित्यिकों की सभा में वह उतने ही सहज भाव से खिलखिलाते रहे। प्रधान मंत्री-निवास की वह संध्या, पंडितजी का हँस-हँसकर सबसे बोलना-बतियाना, फिर लॉन में आराम-कुर्सी पर बैठकर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमेन्द्र मित्र तथा पाकिस्तान के सुप्रसिद्ध कवि फैज अहमद 'फैज' से कविताएं सुनना। वह कैसा समां था! पंडितजी जैसे कहीं खो गये थे। 'फैज' अपने मादक स्वर में कुर्सी के पास लॉन पर बैठे कविता पढ़ रहे थे और हम सब बड़े-छोटे उनके चारों ओर घिर आये थे। वह भव्य दृश्य आज भी याद आता है तो रोमांच हो आता है।

... ...

पंडितजी के शांत, मधुर रूप की एक और स्मृति मिटाये नहीं मिटती। शनिवार, ५ दिसम्बर १९४८। सवेरे के लगभग ९ बजे थे। मैं दिल्ली के वुद्ध-विहार में हिन्दी के सुपरिचित लेखक तथा बौद्ध भिक्षु भदन्त आनंद कौसल्यायन के पास बैठा था, सहसा सड़क पर कुछ कोलाहल सुनाई दिया। दूर से आता जय-ध्वनि का मन्द स्वर भी कानों से आ टकराया। एक व्यक्ति ने दूसरे से पूछा, "क्यों भाई, कोई हादसा हो गया है?"

उत्तर मिला, "नहीं, हादसा नहीं हुआ, पंडितजी आये हैं।"

पंडितजी आये बिड़ला मंदिर में, हादसा ही तो है। भागे-भागे पुजारी आये और बोले, "भन्ते, पंडितजी मंदिर में दर्शन करने आये हैं। मैंने उनसे कहा था, "पंडितजी, आपको सब नास्तिक समझते हैं, लेकिन आप हैं नहीं। आप तो सब धर्मों को मानते हैं। हिन्दुओं का यह भ्रम दूर करने के लिए आपको बिड़ला मन्दिर में आना चाहिए।..."

तभी पंडितजी सर्वश्री जुगलकिशोर बिड़ला, गोस्वामी गणेशदत्त और इन्दिराजी के साथ हमारी ओर आते दिखाई दिये। आनन्दजी को देखकर पूछा, "कहो, यहां क्या कर रहे हो?"

और दो क्षण बातें करने के बाद हमें भी साथ लेकर आगे बढ़ गये और बड़ी देर तक उत्सुकता-पूर्वक मंदिर में अंकित तथागत के चित्रों को देखते और चर्चा करते रहे। यहां मुझे हिमालय में १२,००० फुट से ऊपर गोमुख के मार्ग पर रहनेवाले स्वामी तत्वबोधानन्द की बातें याद आती हैं। उन्होंने कहा था, "नेहरूजी नास्तिक नहीं हैं। बम्बई की एक सभा में मैंने उनको देखा था। बहुत भीड़ थी और वह उसको व्यवस्थित करने की चेष्टा कर रहे थे। सहसा उन्होंने एक ब्रह्मचारी को देखा और उससे बैठने की प्रार्थना की। लेकिन कहने से पूर्व हाथ जोड़कर प्रणाम किया। जिसका अन्तर्मन आस्तिक है, वही ऐसा कर सकता है। आज हम आस्तिकता की अत्यंत संकीर्ण व्याख्या में उलझे हैं।"

यह स्वामीजी की राय है; परंतु मुझे लगता है, पंडितजी नास्तिक ही थे। हां, उनकी नास्तिकता रोमा रोलां के शब्दों में "वह नास्तिकता थी, जो जब सर्वांशतः सच्ची बलवती प्रकृतियों से निकलती है और जब वह निर्बलता की नहीं, बल्कि शक्ति की एक मूर्त्तरूप होती है तो भी वह धार्मिक आत्मा की महान् सेना के प्रयाण में शामिल हो जाती है।"

... ...

पंडितजी के और भी अनेक रूप हैं। मैंने उनको शिशु जैसे अत्यंत सरल रूप में भी देखा है। २६ जनवरी के एक उत्सव की याद है। पंडितजी हजारों अभ्यागतों के बीच हँसते-हँसते घूम रहे थे और अभ्यागत लोग उनके साथ फोटो खिचवाने को उन्हें घेर-घेर लेते थे। सहसा एक सुन्दर युवती उनके सामने आई। अत्यंत विनम्र शब्दों में उसने कहा, "पंडितजी, कृपा करके मेरे साथ भी।"

पंडितजी ने उसकी ओर देखा, आगे बढ़ गये। वह युवती तेजी से आगे बढ़ी और बोली, "पंडितजी, बड़ी कृपा होगी, एक फोटो।"

पंडितजी फिर आगे बढ़ गये। युवती हार माननेवाली नहीं थी। वह उनके बिल्कुल आगे आ गई और जैसे गिड़गिड़ाती हो, "पंडितजी, प्लीज।"

और पंडितजी मुस्कराये। उसको प्यार से अपने बराबर खींचकर खड़े होगये। फोटो खिचा। असंख्य फोटो खिचे होंगे, लेकिन संयोग की बात, दो दिन बाद ही अंग्रेजी के एक साप्ताहिक में मैंने उस चित्र को देखा। उसके नीचे लिखा था—"भारत के प्रधान मंत्री सम्पादक की पत्नी के साथ।"

... ...

व्यापारिक मूल्य की ऐसी अनेक घटनाएं याद आती हैं, लेकिन याद नहीं आता कि पंडितजी ने कभी ऐसे लोगों को निरुत्साहित भी किया हो। कुछ वर्ष पूर्व एक गरीब युवक अपने प्रांत के नेता का पत्र लेकर उनसे मिलने के लिए दिल्ली आया था। परंतु प्रयत्न करने पर भी वह कोठी में प्रवेश न पा सका। आखिर आवेश में आकर एक दिन उसने उनकी कार को रुकने का संकेत किया। कार तो नहीं रुकी, पर पुलिस ने उस युवक को अवश्य रोक लिया। कई दिन बाद जब उसकी खोज हुई तो पता लगा कि वह जेल में है। जेल उसके लिए नई जगह नहीं थी। परंतु परिस्थिति का व्यंग्य अवश्य क्रूर था। जब पंडितजी को पता लगा तो उन्होंने उस युवक को उसी क्षण मुक्त करने का आदेश दिया। यही नहीं, उसकी शिक्षा के लिए जितने खर्च की आवश्यकता थी, उस सबकी अपने पास से उचित मात्रा में व्यवस्था कर दी। लेकिन दुर्भाग्य से वह युवक इस अवसर से लाभ न उठा सका। 'पंडितजी मेरे संरक्षक हैं' इस बात ने उसे पथ-भ्रष्ट ही किया। उनके नाम का अनुचित उपयोग करने से भी वह नहीं चूका। पंडितजी केवल वैधानिक प्रतिवाद करके ही रह गये।

... ...

इन संस्मरणों का कोई अंत नहीं है। लेकिन कान्स्टीट्यूशन क्लब की एक सभा की सहसा याद आ जाती है। इंडोनेशिया के प्रधान डा. सुकर्ण के सम्मान में वह समारोह था। अंधेरा हो चला था। समारोह के बाद पंडितजी अपनी कार की ओर जा रहे थे। सदा की भांति उनके आस-पास एक भीड़ थी। सुन्दर

नर-नारियां, प्रतिष्ठित नेता और कई विदेशी अभ्यागत। तभी मैंने देखा, उनकी उंगली पकड़े एक बालिका भी साथ-साथ चल रही है। वह कभी प्यार से उसका गाल थपथपाते, कभी उसके सिर पर हाथ फेरते। एक बंधु बोले, "यह बालिका किसी राजदूत की कन्या है।" दूसरे ने कहा, "नहीं-नहीं, उनके परिवार के किसी प्रिय की बालिका है।" तीसरे बोले, "अजी, नहीं, डाक्टर सुकर्ण के साथ आई है।"

कि सहसा देखता हूं कि वह बालिका पंडितजी का हाथ छोड़कर हमारी ओर भागी आ रही है। पास आई और फिर मुड़कर पंडितजी की ओर देखा, फिर भागती हुई सड़क के उस पार चली गई। जैसे बिजली कौंधीं। क्या देखा—'उसके शरीर पर पर्याप्त वस्त्र तक नहीं हैं। जो हैं, वे तार-तार हो रहे हैं। पैर नंगे हैं। आंखें कीच से भरी हैं और सिर गंजा है।'

वह किसी निर्धन मजदूर की निरीह बालिका थी, जो संयोग से वहां आ निकली थी और चाचा नेहरू को देखकर पास आ गई थी। पर मुझे उस समय याद आ गई १९४७ की एशियन कांफ्रेंस की, जब मैंने उन्हें उन्मुक्त रूप से सुन्दर युवतियों को थपथपाते और बच्चों की भांति उनके गाल मींड़ते देखा था।

... ...

ये घटनाएं स्वयं बोलती है। उनकी न कोई सीमा है, न संख्या। एक-से-एक बढ़कर भव्य, एक-से-एक बढ़कर कोमल। इस क्षण तुष्ट, उस क्षण रुष्ट। इस क्षण क्रोध से उबलते हुए, उस क्षण असीम करुणा से ओतप्रोत। परस्पर-विरोधी तत्वों के सम्मिश्रण से ही प्रतिभा में सजीवता और गहराई आती है तथा संवेदनशीलता सूक्ष्म होती है। वस्तुतः वह नैतिक स्तर पर नहीं जीते थे। इसीलिए उनके बहुत-से काम हमें गलत मालूम होते थे। उनकी दृष्टि संकुचित राष्ट्रीयता से बहुत ऊपर थी। इसीलिए राष्ट्रीय तल पर जीनेवाले हम लोग उनके बहुत-से कामों को नहीं समझ पाते थे। उनका एक और भी रूप था। उस समय वह अपनेको इस धरती से निर्वासित अनुभव करते थे।

उस दिन वह शब्दहीन संसार की साम्राज्ञी हेलन केलर के साथ राष्ट्रपति-भवन के अशोक कक्ष में एक कोच पर बैठे हुए थे। हेलन केलर धीरे-धीरे गोद में रखे हुए तकिए पर हाथ फेर रही थीं और पास के कक्ष से आती हुई वाद्य-संगीत की ध्वनि वहां गूंज उठी थी। स्पर्श के द्वारा वह उस गूंज को पहचानने का प्रयत्न कर रही थीं। लेकिन पंडितजी उस क्षण जैसे कहीं निर्वासित होगये थे, कहीं वहां, जहां किसीकी पहुंच नहीं है। वह भूल गये थे कि वह किसीके पास बैठे हैं, कि वहां संगीत की ध्वनि गूंज रही है। जिस क्षण आहट पाकर वह जागे, तो वह इस प्रकार चौंके मानो किसी अज्ञात प्रदेश में आ गये हों। उनकी वही, अन्तर्मुखी चकित दृष्टि, वह भोली-भाली रहस्यमयी मुस्कान, मैंने अनुभव किया कि वह सचमुच ही इस धरती पर नहीं थे। यद्यपि यह भी इतना ही सही है कि उन्होंने इस धरती को जितना प्यार किया और इस धरती के वासियों से जितना प्यार पाया, उतना शायद ही किसीने पाया हो।

... ...

अंत में सुदूर रूस की याद आती है। १९६१ का जुलाई मास, सुनहरी धूप में स्नात मास्को नगर—क्रेमलिन के विशाल सभा-भवन में शान्ति-सम्मेलन चल रहा था। अवकाश के क्षणों में सभी देशों के व्यक्ति एक-दूसरे का परिचय पाते, विचार-विनिमय करते—ऐसे ही क्षणों में एक दिन एक स्कॉच मित्र ने

पूछ लिया, "नेहरू के वाद आपके देश में कौन हैं, जो..."

इस प्रश्न से हम वहुत परेशान हो उठे थे, इसलिए मैंने वीच में ही कहा, "क्या मैं जान सकता हूं कि इस वात में आपकी इतनी रुचि क्यों है?"

वह मित्र पादरी थे। अत्यंत गंभीरता से उन्होंने उत्तर दिया, "क्योंकि शांति के पक्ष में नेहरूजी की आवाज सशक्त आवाज है। वह केवल राजनेता नहीं हैं..."

मैं उन्हें देखता रह गया। वह स्वर ईमानदारी से भरा था। मैंने कहा, "विश्वास रखिये, नेहरू के वाद कोई भी हो, यह आवाज कमजोर नहीं पड़ेगी।"

... ...

अपरिचय के कारण दूर-दूर से ही मैंने इस रहस्यमय व्यक्ति को देखा और अनुभव किया कि इसका मस्तिष्क वैज्ञानिक का होकर भी हृदय कवि का ही है, इसीलिए इसका स्पर्श पाकर राजनीति काफी सभ्य हो गई है। इसीलिए रॉवर्ट फ्रॉस्ट की ये पंक्तियां उसे प्रिय थीं:

वन पथ हैं प्रियतर, घोर अंधेरे और घनेरे
लेकिन वादे हैं जो करने पूरे
और दूर जाना है मीलों सोने से पहले
और दूर जाना है मीलों सोने से पहले। ●

मानव-समाज के लिए नेहरूजी का कितना वड़ा योगदान था! जिस तटस्थता का उन्होंने निर्माण किया, उसने अनेक वार लड़ाई को रोका। हम लोग उनकी मृत्यु से बहुत दुखी हैं।

—वर्ट्रेण्ड रसेल

सिद्धराज ढड्ढा

उनका अमर वाक्य

पिछले तीस-पैंतीस वरसों में पंडित जवाहरलालजी से साक्षात्कार और वातचीत के वीसों प्रसंग आये। महान् तो वह थे ही और ऐसे हर प्रसंग पर उनकी महानता की अनुभूति होनी भी स्वाभाविक थी, पर सच कहा जाय तो मानस के अन्तस्तल को छूनेवाले, जीवन को मोड़ देनेवाले और प्रेरणा तथा भावना से हृदय को भर देनेवाले प्रसंग तो वे थे, जिनमें पंडितजी का सदेह सान्निध्य नहीं था।

... ...

सन् १९२८ या १९२९ की बात होगी। कालेजों और विश्वविद्यालयों के छात्रावासों में जगह-जगह गरमागरम बहस हुआ करती थी। साइमन-कमीशन के वहिष्कार और नमक-सत्याग्रह के बीच का ज़माना था। मुल्क में धीरे-धीरे तूफान वढ़ रहा था। कालेजों में पढ़नेवाले हम विद्यार्थियों के दिलों का जोश वार-वार उमड़ता था। आज़ादी की लड़ाई का उपहास करनेवाले और उसकी छूत से दूर रहनेवाले लड़के भी कालेजों में थे, पर जिन्हें लगन लगी थी, उन्हें भी कभी-कभी घरवालों की याद और उनकी प्यारभरी दलील—'तुम्हींपर हम आस लगाये हैं, भगवान् न करे तुम्हें कुछ होगया, लाठी या गोली लगी, तो हमारा क्या हाल होगा'—कुछ ढीला कर देती थी।

चूंकि कांग्रेस बीच-बीच में गैरकानूनी कर दी जाती थी और विश्वविद्यालयों के अधिकारी लड़कों का खुले तौर पर कांग्रेस की कार्रवाइयों में हिस्सा लेना बर्दाश्त नहीं करते थे, इसलिए इलाहावाद में हमने 'यूथ लीग' शुरू की। पंडितजी, कमलाजी आदि तो सब उससे संबंधित थे ही। उसकी बैठकें भी अक्सर आनंद-भवन में ही होती थीं। यों तो पंडितजी की जोशीली तकरीर और कमलाजी के मूक, शांत त्याग की मिसाल हमारे जोश को बढ़ाने के लिए काफी थी, पर जिस चीज़ ने मेरे मन के असमंजस को उस समय छिन्न-भिन्न कर दिया था, वह पंडितजी के एक भाषण का वाक्य था, जो मैंने उनके मुंह से नहीं सुना था, बल्कि अखवार में या कहीं और पढ़ा था। आज भी वह वाक्य अक्सर अंतर में गूंजता और प्रेरणा देता है, लेकिन दूसरे स्तर पर और दूसरी पृष्ठभूमि में :

"Who dies if India lives ; who lives if India dies ?"—भारत ज़िन्दा रहता है तो फिर मरा कौन, और भारत ही मर गया तो फिर ज़िन्दा कौन ?

... ...

आज़ादी के बाद के इन पिछले वरसों में अक्सर सरकार की नीति से, खासकर उसकी योजनाओं

और आर्थिक नीति से मेरा तीव्र मतभेद रहा है। मेरे खयाल से हिन्दुस्तान की आज की बहुत-सी समस्याओं की जड़ सरकार की आर्थिक नीति में और सादगी तथा अपरिग्रह के आदर्श के बजाय तड़क-भड़क और भोग-प्रधान जीवन का ध्येय राष्ट्र के सामने रखने में है, जिसके लिए पंडितजी खुद बहुत हद तक जिम्मेदार रहे हैं। फिर भी उनके व्यक्तित्व का, उनके दिल की महानता का, सागर जैसी गंभीर और अथाह उनकी मानवता का, दर्शन उनके साथ में मुलाकातों में सदा होता था। पर इसकी चरम अनुभूति तो उनका पार्थिव शरीर चले जाने के बाद प्रकाशित उनकी वसीयत में हुई। अपनी एक मुट्ठी राख गंगा की गोद में डाल देने और बाकी को हिन्दुस्तान के कोने-कोने में—उसके खेतों और घाटियों में—बखेर देने का अनुरोध करते हुए उन्होंने जो-कुछ लिखा, उसका कुछ अंश तो शायद संसार की सर्वोत्तम साहित्यिक कृतियों में से एक रहेगा और आनेवाली पीढ़ियों को अपने लालित्य से मुग्ध तथा उदात्त भावों से प्रेरित करता रहेगा। ●

सत्रह वर्ष का देश का इतिहास 'नेहरू-युग' था, जो नेहरूजी के निधन के साथ समाप्त होगया। उनकी आत्मा हमारा सदा मार्ग-दर्शन करती रहेगी। नेहरूजी के बिना भारत की कोई कल्पना नहीं कर सकता। उनके रिक्त स्थान की पूर्त्ति संभव नहीं। गांधीजी राष्ट्र-पिता थे, लेकिन नेहरूजी ने औद्योगिक भारत की आधार-शिला रखी।

नेहरूजी महान देशभक्त ही नहीं, महान् लेखक, महान् समाज-सुधारक, महान् लोक-तंत्री और अन्य अनेक गुणों के स्वामी थे। वह देश-सेवा और मानवता के प्रतीक थे। उनके समान नेता अब दुनिया-भर में कोई मिल नहीं सकता। उन्होंने ही राष्ट्रीय एकता पैदा की तथा इस देश की विविधता में एकता के दर्शन कराये। उनकी आत्म-कथा ही देश की कथा है।

—कृष्ण मेनन

अजित प्रसाद जैन

भारत का प्रकाश-स्तम्भ

जवाहरलाल नेहरू जैसे विशिष्ट पुरुष के साथ जीवन-भर का सम्पर्क किसी भी व्यक्ति के लिए गर्व का विषय होगा। यह दिसम्बर १९१८ की बात है जब उत्तरप्रदेश कांग्रेस का वार्षिक सम्मेलन सहारनपुर में डा० एम० एन० ओहदेदार की अध्यक्षता में हुआ था। तभी मैं सबसे पहले जवाहरलाल के सम्पर्क में आया। मैं उस समय विद्यार्थी था और मैंने स्वयंसेवक के रूप में सम्मेलन के लिए अपनी सेवाएं दी थीं। तब महात्मा गांधी कांग्रेस में शामिल नहीं हुए थे और खादी एवं हिन्दी को उन दिनों की राजनीति में स्थान नहीं मिला था। जवाहरलाल साफ-सुथरी पोशाक पहने थे—सफेद अचकन और विदेशी मलमल की दुपल्ली टोपी, जिसपर प्रसिद्ध लखनवी चिकन का काम कढ़ा हुआ था। मुझे जवाहरलाल नेहरू, हर कर्ण नाथ मिश्र और कुछ अन्य इंगलैंड से लौटे हुए युवक प्रतिनिधियों की व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं की देखरेख रखने का काम सौंपा गया था। तबसे मैं जवाहरलाल को राष्ट्रीय नेता और बाद में विश्व-नेता बनते हुए गहरी दिलचस्पी और सहानुभूति से देखता आया हूं।

अनेक घटनाएं मुझे याद आ रही हैं, किन्तु मैं एक ही घटना का उल्लेख करूंगा, जो जवाहरलाल के दिल और दिमाग के गुणों पर प्रकाश डालती है। विभाजन के कुछ सप्ताह पहले गोस्वामी गणेशदत्त ने गांधीजी को हरिद्वार निमंत्रित किया, जहां शरणार्थी बड़ी संख्या में आये हुए थे। तरह-तरह की अफवाहें फैली हुई थीं। शरणार्थी गांधीजी की गाड़ी को घेर लेंगे, वे उनका अपमान करेंगे और उनके साथ मारपीट करेंगे और कुछ यहांतक कहते थे कि उन्हें मार डाला जायगा। जवाहरलाल नेहरू अन्तरिम सरकार में उपाध्यक्ष थे और उन्होंने गांधीजी की देखभाल के लिए हरिद्वार जाने का फैसला किया। मैं उनके साथ गया। दोपहर को वह शरणार्थी शिविर देखने गए। इनमें से अधिकतर शिविर धर्मशालाओं में थे। मैं इस दल में शामिल था। जब हम दूसरे शिविर से बाहर आ रहे तो एक विरोधी भीड़ ने जवाहरलाल को घेर लिया। पुलिस का लम्बे कद का सिपाई गोपालकृष्ण हाण्डू उनका अंगरक्षक था। मंत्रिमण्डल सचिव सच्चासिह उस समय मेरठ के संभागीय आयुक्त थे और उस पार्टी में शामिल थे। हम सबने जवाहरलाल को बचाने के लिए उनके इर्द-गिर्द घेरा बना लिया, किन्तु उन्होंने हमारी मदद नहीं ली। उन्होंने हमें एक ओर हटा दिया और भीड़ से दलील करने लगे। भीड़ ने नारा लगाया—"भारत माता मुर्दाबाद।" यह उनके लिए असह्य था। वह भारत माता की ऐसी भारी बेइज्जती सहन नहीं कर सकते थे और भीड़ से गुथ गये। एक आदमी ने पूरी ईंट जवाहरलाल के सिर में मारने को उठाई, किन्तु किसीने उमसे वह

ईंट छीन ली। जवाहरलाल को धक्कमधक्का सहन करना पड़ा। उनकी सफेद गांधी टोपी नीचे गिर गई और पांवोंतले कुचली गई। जवाहरलाल ने भारी साहस दिखाया और आखिर में भीड़ पर कावू पा लिया। अपनी टोपी उठाने के बाद उसे अपने केशरहित सिर पर रख लिया और मोटर में कूद गये। हमने उनका अनुसरण किया। जवाहरलाल को अब गुस्सा नहीं था और उनके चेहरे पर मधुर मुस्कान दौड़ गई, मानों कुछ हुआ ही न हो। भीड़ को उन्होंने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। भीड़ का मनोभाव भी बदल गया। उसने नारा लगाया—"जवाहरलाल जिन्दाबाद!" जवाहरलाल के दिल में कोई मैल नहीं था। वह समझते ही न थे कि किसीने उन्हें चोट पहुंचाई है और उनमें कभी भी बदला लेने की भावना नहीं जागी। इस बात की कल्पना की जा सकती है कि अगर किसी भी सरकार के उच्चतम अधिकारी के साथ ऐसी घटना होती तो क्या नहीं हो जाता!

मेरे ख्याल से तीन महत्वपूर्ण घटनाओं ने जवाहरलाल के जीवन पर निर्णायक प्रभाव डाला। पहली थी जलियांवाला-हत्याकाण्ड के योजक जनरल डायर की दर्पोक्ति, जो उसने अपने साथी सैनिक अफसर के सामने रेल-यात्रा के दौरान प्रकट की थी। नेहरू उसी डिब्बे में अमृतसर से दिल्ली के लिए सफर कर रहे थे, हालांकि जनरल डायर को उसका पता नहीं था और जवाहरलाल ने वह दर्पोक्ति सुन ली थी। जनरल डायर ने कहा कि अमृतसर का सारा शहर उसकी दया पर निर्भर था और उसके दिल में आया कि इस बागी शहर को राख का ढेर बना दिया जाय, पर उसे रहम आ गया और उसने ऐसा नहीं किया। दूसरी घटना मसूरी की है। जवाहरलाल सेवोय होटल में ठहरे थे और उसीमें अफगान मिशन भी ठहरा था। सरकार ने जवाहरलाल को मसूरी से निकाल दिया था। तीसरी घटना थी कि उन्होंने रायबरेली प्रतापगढ़ जिला और आसपास के क्षेत्रों का दौरा किया, जहां ताल्लुकेदारी का बोलबाला था। वह पैदल घूमे, किसानों की झोंपड़ियों में ठहरे और उनके साथ खाया-पिया। इस दौरे में उन्होंने भारत की गरीबी, अज्ञान और मुसीबत के दर्शन किये। गांधीजी के पहले की राजनीति के पास इन समस्याओं का कोई हल नहीं था। जवाहरलाल को भारी वेदना अनुभव हुई और वह गांधीजी के सत्याग्रह में भाग लेने को प्रेरित हुए, हालांकि उनके पिता ने उनको रोका।

घटना-चक्र तो तेजी से घूम रहा था और कांग्रेस ने गांधीजी के असहयोग को अपना कार्यक्रम मान लिया था। जवाहरलाल इस आन्दोलन में कूद पड़े और अपने पिता को भी उसमें लाये। गांधीजी का उन-पर इतना असर पड़ा कि उन्होंने सादा जीवन अपना लिया, अपना अलग शाकाहारी चौका चलाया और शाही आनन्द-भवन में रहते हुए भी उससे अपनेको अलग समझने लगे। उनके पिताजी एक खासा मजाक करते थे। कोई अतिथि आता तो पूछते—"आप खाना खायंगे या भोजन करेंगे?" मोतीलालजी अच्छा भोजन और अच्छा जीवन पसन्द करते थे। उनकी मेज पर हमेशा तरह-तरह के व्यंजन परोसे जाते थे। जवाहरलाल का भोजन सादा होता था। जो अच्छा खाना चाहते, वे मोतीलालजी के रसोईघर से प्राप्त करते और जिन्हें सादा भोजन पसंद था, उनकी जरूरत जवाहरलाल के रसोईघर से पूरी होती।

पिता और पुत्र की राजनीति में बहुत कम समानता थी। जवाहरलाल उग्र और क्रान्तिकारी थे, जबकि मोतीलालजी वकील और विधानवादी थे। जवाहरलाल ने सर्व-दल सम्मेलन के सचिव का पद

स्वीकार किया और उनके पिता उसके अध्यक्ष थे। सर्व-दल-सम्मेलन ने औपनिवेशिक स्वराज्य की सिफारिश की, किन्तु जवाहरलाल पूर्ण स्वतंत्रता के हिमायती थे। उन्होंने इस्तीफा देने का प्रस्ताव किया, कारण वह स्वतंत्रता लीग के संस्थापकों में थे। किन्तु कार्य-समिति ने फैसला किया कि वह कांग्रेस की नीति से किसी तरह संघर्ष में आये विना लीग का काम करते रह सकते हैं। जवाहरलाल ने अपना इस्तीफा वापस ले लिया। उन्होंने लिखा कि "यह आश्चर्य की वात है कि मुझे अपना इस्तीफा वापस लेने के लिए कितनी आसानी से राजी कर लिया गया।"

जवाहरलाल का कौटुम्बिक जीवन किसी तरह आदर्श नहीं था। वह राजनीति में इतने उलझ गये थे कि अपनी बीमार पत्नी कमला की देखभाल नहीं कर पाये। कमला सुन्दर और सुकुमार महिला थीं। उन्हें अपनी जवानी के दिनों में प्लूरिसी (फेफड़े में पानी भरने का) रोग हो गया था और वाद में उनका असामयिक निधन हो गया। कमला नेहरू ने देहरादून में रहने के लिए एक मकान किराये पर लिया था और देहरादून में ही नेहरू को कैद रखा गया था। मुझे याद है कि किस तरह मैं कमला और जवाहरलाल के संदेश एक-दूसरे तक पहुंचाता था। कमला वहादुर महिला थीं और अपने गिरते स्वास्थ्य के वावजूद उन्होंने अपने पति का विछोह सहन किया। इन्दिरा को शुरू के वर्षों में न केवल अपनी मां का लालन-पालन नहीं मिला, वल्कि उसके पिता भी उसकी ओर ध्यान नहीं दे पाये, कारण वह ज्यादातर राजनीति में व्यस्त रहे और अपनी जिन्दगी के अनेक साल कैदखाने में विताये। जब जवाहरलाल प्रधानमंत्री वने और इन्दिरा उनके साथ रहने के लिए दिल्ली आई, तभी वह अपने पिता के घर में मेजवान वन सकीं और पिता अपनी पुत्री को प्यार दे सके। इन्दिरा के पति श्री फीरोज गांधी वहुत अधिक स्वतंत्र व्यक्ति थे। वह अपने ससुर को प्रेम और उनका आदर करते थे, किन्तु रहते दूर ही थे। थोड़े ही समय के लिए वह जवाहरलाल के साथ एक मकान में रहे। फीरोज ने प्रधान मंत्री का मकान छोड़ दिया और अपने जीवन के अन्त तक संसद सदस्य के क्वार्टर में रहते रहे। जवाहरलाल की वहनें विजयालक्ष्मी पंडित और कृष्णा हठीसिंग उनसे बड़ा प्यार करती थीं, किन्तु जवाहरलाल ने ज्यादातर अपने ही विचारों में लिपटे रहते हुए एकाकी जीवन विताया।

जवाहरलाल बीसवीं सदी की तीसरी दशाब्दि के बीच रूस गये और ऐसा लगता है कि इस यात्रा से वह समाजवाद की छूत लेकर लौटे। वह आशा और उमंग से भरे हुए आये। यह लगने लगा कि उन्हें भारत के रोगों का इलाज मिल गया। उन्होंने रूस की यात्रा के वाद एक पुस्तक लिखी, जिसमें बोल्शेविक शासन की तारीफ की। अहिंसा में जवाहरलाल की श्रद्धा डगमगाने लगी और वह गांधीजी से दूर चले गए। गांधीजी का रचनात्मक काम उनमें काफी जोश नहीं पैदा कर पाया और उन्होंने यूथ लीग (युवक संघ) की स्थापना की। वह नौजवान कांग्रेसजनों का जोशीला संगठन था। जव जवाहरलाल सन् १९२९ में लाहौर में कांग्रेस-अध्यक्ष वने तो यूथ लीग खत्म हो गई। तबसे जवाहरलाल की देश के चोटी के नेताओं में गणना होने लगी। उन्होंने कम-से-कम छः बार कांग्रेस के अधिवेशनों की अध्यक्षता की।

जवाहरलाल बौद्धिक दृष्टि से गांधीजी के 'भारत छोड़ो'-आन्दोलन के अनुकूल नहीं थे। वह हिटलर के नाजीवाद और मुसोलिनी के फासिस्टवाद को नापसंद करते थे। उनके ख्याल से ये पश्चिम की प्रति-

क्रियावादी ताकतें थीं। उनका मानना था कि सोवियत रूस के युद्ध में शामिल होने के वाद मित्र राष्ट्र प्रगतिशील ताकतें हैं और यह दुनिया की प्रगति के लिए वांछनीय नहीं होगा कि भारत अंग्रेजों को उनकी कसौटी के समय परेशानी में डाले। किन्तु उनकी यह राय थी कि भारत ब्रिटेन के युद्ध-प्रयासों में तभी सहायक हो सकता है, जवकि वह स्वतंत्र हो। सन् १९४२ में जब सर स्टेफर्ड क्रिप्स के भारतीय जनता को सन्तुष्ट करने के प्रयत्न विफल रहे तो जवाहरलाल के रुख में परिवर्तन आया। वह कांग्रेस कार्यसमिति के दूसरे सदस्यों के साथ गिरफ्तार करके अहमदनगर किले में नजरबंद कर दिये गए।

स्वतंत्रता के वाद जवाहरलाल ने भारतीय राष्ट्र के निर्माण का रचनात्मक काम हाथ में लिया। सरकार के प्रमुख होने के नाते उन्होंने त्रिविध कार्यक्रम शुरू किया—योजना के द्वारा आर्थिक विकास, राष्ट्रीय एकता और गुटों से अलग रहने की विदेश-नीति। उनके इन त्रिविधि कार्यक्रम की जड़ उनकी लोकतंत्री विचारधारा में थी। अगर इस विशाल उपमहाद्वीप में रहनेवाले विभिन्न नस्लों और विभिन्न धर्मों को माननेवालों का एक राष्ट्र बनना हो तो उनको जोड़नेवाली कोई ताकत होनी चाहिए। वह आर्थिक सम्बन्धों की कड़ी ही हो सकती है। अगर भारत की आर्थिक प्रगति आम जनता के कल्याण के लिए होनी हो तो यह सामाजवाद को अपना ध्येय और योजना को उसका साधन बनाने से ही संभव होगा।

समाजवाद और अन्य समाज-व्यवस्थाओं में इसलिए अन्तर है कि समाजवाद सम्पत्ति के न्यायोचित वितरण का आग्रह करता है। जवाहरलाल मूलतः लोकतंत्री थे और लोकतंत्री योजना की सफलता लोक-समर्थन पर निर्भर करती है। अतः भारतीय जनता को नस्ल अथवा जातिगत भेदों के वावजूद एक संयुक्त और मजबूत राष्ट्र वनाना होगा। लोकतंत्र विचार-स्वातंत्र्य पर निर्भर करता है और कोई राष्ट्र अगर सैनिक संधियों और समझौतों में जकड़ जायगा तो उस हद तक अपनी पाई स्वतंत्रता को खो देगा। जवाहरलाल चाहते थे कि भारत विश्व-शान्ति और विश्व-कल्याण के लिए काम करने को स्वतंत्र रहे। इस तरह उनकी गुटों से अलग रहने की नीति उनकी समन्वित विचारधारा को प्रकट करती थी, जो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों क्षेत्रों को स्पर्श करती थी।

जवाहरलाल की सार्वजनिक प्रवृत्तियां नाना प्रकार की थीं, जिनसे सारा भारत मंत्र-मुग्ध था और जिनका विदेशों पर भारी असर पड़ता था। आज के जमाने में ऐसी कोई मिसाल नहीं मिलती कि किसी लोकतंत्री नेता ने ४० करोड़ से अधिक जनसंख्यावाले पूरे राष्ट्र पर सत्रह साल तक लगातार एकछत्र वर्चस्व रखा हो। जवाहरलाल को सारे समय भारतीय जनता से जो श्रद्धा मिली, वह और किसी नेता को नहीं मिल सकी। जहां कहीं वह जाते, लाखों आदमियों की भीड़ उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़ती। उन्होंने लोगों के और अपने बीच एक प्रकार का आध्यात्मिक सम्बन्ध जोड़ लिया था और जिन्होंने उन्हें बड़ी-बड़ी सभाओं में भाषण देते सुना है, उन्होंने देखा होगा कि किस प्रकार लोग उनकी वातों को शान्ति और श्रद्धा के साथ सुनते थे। निजी जीवन में जवाहरलाल को प्यार करने को जी चाहता था। आम तौर पर वह खुलते नहीं थे, किन्तु जव उनका दिल का दर्वाजा खुलता तो वह निराले बन जाते थे। जवाहरलाल के साथ बैठना और वात करना सचमुच एक विशेषाधिकार होता था। वहुत लोग उनसे मिल सकते थे।

वह मुलाकातों के पाबंद थे और जो भी उनसे मिलना चाहता, उसे कुछ ही घण्टों में मुलाकात का समय दे देते थे।

वह आदमी चला गया, जिसके दिल में मैल नहीं था, जो किसीसे दुश्मनी नहीं करता था और सबसे प्यार करता था। वह ऐसी खाई छोड़ गया है, जिसे भारत लम्बे समय तक भर नहीं सकेगा। उसकी स्मृति असंख्य देशवासियों और बहुत-से विदेशियों के दिलों में बनी रहेगी, जो और किसी नेता की अपेक्षा उन्हें ज्यादा अच्छी तरह समझते थे। भौतिक काया उसकी चली गई, किन्तु उसका जीवन-दर्शन और विचार भावी पीढ़ियों को प्रेरणा देने के लिए लम्बे समय तक टिका रहेगा और राष्ट्र की भाग्य-नौका को खेने के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम देगा। ●

नेहरूजी इतिहास के महान् पुरुष थे। उनके निधन से सारे संसार ने अपना एक सुविज्ञ नेता खो दिया।

वह मेरे सबसे बड़े और अच्छे दोस्तों में एक और विश्व के महान सपूत थे। मुझे यह विश्वास नहीं होता कि वह अब हमारे बीच नहीं हैं।

—माउण्टबेटन

अनुसूया प्रसाद पाठक

पंडितजी का हिन्दी-प्रेम

सन् १९२८ में मैं कलकत्ता-कांग्रेस, जिसके सभापति पंडित मोतीलालजी नेहरू थे, देखने गया। बड़ी श्रद्धा से पंडित मोतीलालजी का जुलूस देखा। घोड़े पर आसीन नेताजी सुभाष बोस का नेतृत्व मोहनीय था। घूमता-घामता जहां पं० मोतीलालजी ठहरे थे, एक सज्जन के साथ जा पहुंचा। उसी समय जी भरकर पं० जवाहरलाल के दर्शन मुझे मिले। उनके सुन्दर रूप-रंग, आकर्षक भावभंगिमा, तेजस्वी विचार और स्फूर्तिदायक बातचीत को देख-सुनकर मैं गद्गद् हो गया।

मेरे पास उनके साथ चर्चा करने को कोई बात नहीं थी। मैं कांग्रेस के क्षेत्र में नया-नया था, एक साधु पंडित के साथ वहां गया था, गौरांग की लीला-भूमि नवद्वीप से। कलकत्ते में चार दिन रहा। नेहरूजी के नाम के साथ जुड़ी अतिरंजित बातें भी मुझे भली लगीं। मालूम हुआ कि नेहरू-रिपोर्ट को लेकर पिता-पुत्र में काफी गरमागरमी होगई थी और जवाहरलालजी ने कुछ कठोर वाक्य कहे थे, जिससे माता स्वरूपरानी ने एक रोज खाना नहीं खाया था। लेकिन अपनी कहूं, मुझे यह अच्छा लगा। कारण, जवाहरलालजी की तेजस्विता का उससे आभास मिलता था। दूसरे, वह भारत से अंग्रेजी राज्य का जल्दी-से-जल्दी खात्मा चाहते थे।

अगले दिन लोगों में उत्तेजना देखकर गांधीजी ने कहा, "यह जो प्रस्ताव आप लोगों के सामने है, जवाहरलाल के द्वारा संशोधित किया हुआ है। मैंने उनको राजी कर लिया है कि एक साल और वह इस नेहरू-रिपोर्ट को देख लें, क्या फल देती है। लेकिन इतना होते हुए भी उनको यह पसंद नहीं है कि उपस्थित रहकर उस चीज का विरोध न करें, जिसको कि वह नहीं मानते, पसंद नहीं करते। पर इस प्रस्ताव में उन्होंने संशोधन कर दिया है। फिर भी उनका मन खुश नहीं है। कैसे हो? जवाहरलाल जवाहर हैं। उनकी अपनी सूझ है, पसंदगी है और जनता के सामने जवाबदेही है। लेकिन इस प्रस्ताव पर जो रंग चढ़ा है, उनके द्वारा ही चढ़ाया गया है। साल-भर की तो बात है। अगर बरतानिया की हुकूमत को भी यह बात पसंद नहीं होगी तो नेहरू-रिपोर्ट रद्दी की टोकरी में गई, जवाहरलाल की विजय हुई।"

नेहरू-रिपोर्ट पास होगई। उस समय गांधीजी ने नेहरूजी की जो प्रशंसा की थी, उसे सुनकर मैं फूल उठा था।

लाहौर-कांग्रेस के जवाहरलालजी के सभापति चुने जाने से जो आनंद मुझे मिला, उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। उस संबंध में 'प्रताप' के संपादक श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने गांधीजी को पत्र लिखा था और गांधीजी ने जो उत्तर दिया था, उसे 'कांटों का ताज' शीर्षक देकर छापा था। लाहौर-कांग्रेस को मैं तीर्थ से भी ज्यादा मानता था। किसीसे रुपये मांगकर लाहौर के लिए चला, लेकिन हावड़ा पुल पार होते-होते जेब से रुपये निकल गये और मैं मन मारकर रह गया।

मैं लाहौर नहीं जा पाया, लेकिन वहां के सारे समाचार मैंने दो-तीन बार पढ़े। नेहरूजी का भाषण तो मैंने दर्जनों बार पढ़ा होगा। अबतक भगतसिंह का नाम रौशन था, आजाद, रामप्रसाद विस्मिल, रोशनसिंह और अशफाक उल्ला खां का नाम लोगों की जबान पर था। दिन-दिन उस लोगों के प्रति मेरी भक्ति बढ़ रही थी, जो अंग्रेजों को मारकर भाग जाते थे। जब मैं सुनता था कि अमुक आदमी ने बम बनाया, अमुक आदमी ने पिस्तौल चलाकर अमुक बहादुरी का काम किया और नेहरूजी ने उसकी पीठ ठोंकी और वीरोचित कार्य के लिए जन-साधारण को ललकारा, जेल गये, तो मुझे अपार हर्ष होता। मैं कल्पना करता था कि मैं भी कोई बहादुरी का काम करूं, देश के काम में मेरा नाम भी जुड़ जाय।

गांधीजी के हिन्दी-प्रचार के काम के प्रति मेरा झुकाव था। सुनता था, हिन्दी प्रेम-रज्जु है, भारत को बांधने के लिए। इसी समय नमक-सत्याग्रह चला। एक दिन राष्ट्रीय झण्डा लेकर मैं भी नवद्वीप से अकेले नमक बनाने के लिए महिसवथान गया और बड़ा बाजार कांग्रेस कैम्प महिसवथान में जा शामिल हुआ। वह अवसर मेरे लिए परम सौभाग्य का था। नमक बनाया और बिक्री करने कलकत्ता गया। मार खाई और छः महीने के लिए जेल गया। फिर छूटा।

उसी समय किसी काम से जवाहरलालजी कलकत्ते आये हुए थे और बालीगंज में ठहरे हुए थे। हम पांच युवकों ने उन दिनों 'नवजीवन-संघ' बनाया था। उसका उद्देश्य था कि क्रांतिकारी काम करनेवाले युवकों को स्थान देना, उनकी मदद करना, उनके कामों में सहायक होना। जवाहरलालजी के हाथों उस संघ का श्रीगणेश किया जाय, इस कामना को लेकर हम लोग उनके दर्शन के लिए पहुंचे। कांग्रेसवालों की भीड़ थी। फिर भी हम लोग उनसे मिले। अपना उद्देश्य बताया। उन्होंने हमारा अनुरोध स्वीकार किया और समय पर पहुंचने का वचन दिया। दूसरे दिन सवेरे नौ बजे वह आगये। हम पांचों जने वहां मौजूद थे। उन्होंने खड़े-खड़े पांच मिनट तक हमारे कमरे को देखा, हमारा उद्देश्य सुना और कहा, "ऐसे संघों का मैं स्वागत करता हूं। मेरी सभी युवकों के साथ हमदर्दी है।"

वहीं एक दवा की दुकान थी। उसे देखने के लिए किसीने निमंत्रण दिया। लेकिन उसको उत्तर मिला, "मैं चाहता हूं, दवा की दुकानें बंद हो जायं और भारत के युवक ऐसे बलवान बनें कि उनको दवा की जरूरत ही न पड़े।"

इसके बाद वह चले गये। उनसे बातें करने का यह प्रथम अवसर था।

... ...

सन् १९३१ की कांग्रेस पुरी में होनेवाली थी। मैं कांग्रेस के स्वयं-सेवकों को हिन्दी सिखाने उड़ीसा गया और वहीं जम गया। 'जो जाय कटक, सो रह जाय अटक।' वाली कहावत चरितार्थ हुई।

१९३४–३५ में श्री नवकृष्ण चौधरी का पत्र लेकर प्रयाग गया। आनंद-भवन में पंडितजी से मिला। पत्र पढ़कर उन्होंने कुछ बातें मुझसे पूछीं। मैंने कहा, "जनता में बड़ा जोश है, पर उसे रास्ता नहीं मिलता।" उनके पास ही स्व० रफी अहमद किदवई खड़े थे। पंडितजी ने उनसे कहा, "देखा रफी, मैं कहता हूं, लोगों में उत्साह की कमी नहीं है। कमी है तो आप लोगों में।" फिर मुझसे बोले, "कहां ठहरे हो? यहीं क्यों नहीं चले आये? अच्छा, कल पत्र का उत्तर दे दूंगा। ले जाना।"

अगले दिन उन्होंने मुझे पत्र लिखकर दे दिया। उन मुलाकातों में मुझे ऐसा लगा, मानो पंडितजी तेज के पुंज हैं। उनके समान उत्साही और शक्तिशाली व्यक्ति दुर्लभ हैं।

१९३६ में जब पंडितजी दुबारा कांग्रेस के सभापति बने तो वह उत्कल में भ्रमण के लिए आये। मैंने उनके हाथ में एक पत्र दिया, जिसमें लिखा था, "मैं यहां हिन्दी का प्रचार करता हूं। आप हिन्दी में ही बोलियेगा। इससे हमारे काम को बल मिलेगा।"

पंडितजी ने पत्र पढ़ा। हँसे, पर बोले कुछ नहीं। वह स्वामी विचित्रानंदजी के घर ठहरे थे। वहां से ४० मील देहात में एक सभा का आयोजन किया गया। उस सभा में मैं भी गया। पंडितजी की मोटर के आगे एस० पी० की मोटर थी, जो धूल उड़ाती चली जा रही था। पंडितजी जब सभा में बोले तो सबसे पहले उन्होंने उसीकी चर्चा की और कहा, "यहां की पुलिस कैसी है कि मुझे रास्ते-भर धूल खिलाती आई है!"

इसके बाद वह लगभग एक घंटे हिन्दी में बोले। काफी भीड़ इकट्ठी थी। लेकिन श्रोताओं में से किसीने भी यह नहीं कहा कि हम पंडितजी का भाषण नहीं समझ सके।

सभा के बाद लोगों ने एस० पी० की वह खबर ली कि बेचारा हैरान हो गया और उसने पंडितजी से बहुत माफी मांगी।

उसी दिन शाम को कटक में एक विराट सभा हुई। उसमें पंडितजी हिन्दी में ही बोले। कालेज के कुछ विद्यार्थियों ने उनसे कहा, "अंग्रेजी में बोलिये।"

पंडितजी ने जवाब दिया, "नहीं, मैं हिन्दी में ही बोलूंगा। आप लोग समझने की कोशिश करें। अगर चाहेंगे तो पीछे पांच मिनट अंग्रेजी में भी बोल दूंगा।"

सारा भाषण हिंदी में ही हुआ। मैंने देखा, हिन्दी के लिए पंडितजी में बड़ा प्रेम था। बाद में तो वह अपने देश में और बाहर प्रायः हिन्दी में ही बोलते थे और उनकी हिन्दी इतनी सरल और सुबोध होती थी कि सब समझ लेते थे।

... ...

१९३९ में राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति, वर्धा के हम सब संचालक प्रयाग-सम्मेलन में जमा हुए। सोचा, पंडितजी के दर्शन कर लें। परंतु समय कैसे मिले? हमने पूज्य टंडनजी से कहा। उन्होंने फोन पर पंडितजी के सेक्रेटरी श्री उपाध्यायजी से कहा। १० मिनट का समय मिल गया, बाल बनाने और स्नान करने जाने के बीच में। हम सब समय पर पहुंच गये। पंडितजी भी आगये। उनके कानों पर साबुन का झाग लगा था। हम सबने अपना-अपना परिचय दिया। उन्होंने कहा, "ठीक है, राष्ट्र-भाषा का प्रचार जोरों

से करो। लेकिन साथ ही देहातों में जाकर, शब्दों का संग्रह भी करो। बढ़ई, लुहार, कुम्हार, वगैरा अपने-अपने पेशे की चीजों के लिए जिन शब्दों का इस्तेमाल करते हैं, उनको इकट्ठा करो। इससे राष्ट्रभापा का शब्द-भंडार भरेगा। उसके साहित्य की भी तरक्की होगी।"

हम लोगों ने पूछा, "हिन्दी, उर्दू का झगड़ा कैसे निपटाया जायगा?"

वह बोले, "मेरा समय होगया है। मैं जा रहा हूं।"

इतना कहकर वह चले गये। हम भी चले आये।

... ...

उत्कल प्रांतीय राष्ट्र-भाषा-प्रचार-सभा की पच्चीसवीं वर्षगांठ जब मनाई गई तो उसके उपलक्ष्य में हमने एक रजत-जयंती ग्रंथ भी प्रकाशित किया और एक प्रति भेजकर नेहरूजी का अभिमत तथा आशीर्वाद मांगा। उन्होंने जो पत्र लिखा, वह ज्यों-का-त्यों इस प्रकार है :

प्रिय पाठकजी,

आपका २२ अक्तूबर १९५९ का पत्र मैंने देखा, और जो राष्ट्र-भापा रजत-जयंती का ग्रंथ आपने भेजा है, वह भी मिला। इस बड़ी पुस्तक को तो मैं पढ़ नहीं सका, लेकिन उसका सूची-पत्र देखा और इधर-उधर और भी पढ़ा और देखा।

मैं समझता हूं कि उत्कल प्रांतीय राष्ट्रभापा प्रचार-सभा ने बहुत अच्छा और प्रशंसनीय काम किया है। अच्छा हो, अगर और प्रदेशों में भी इस ढंग का काम हो। इससे उड़ीसा के निवासियों को तो लाभ होगा ही, सभी साहित्य के प्रेमियों को लाभ उठाना चाहिए, विशेपकर जो हिन्दी जानते हों। ऐसी पुस्तक से हमारी अलग-अलग जो भाषाओं के साहित्य हैं, उनका ज्ञान एक-दूसरे को होगा। हमारी साहित्य अकादमी का यही लक्ष्य है।

आपके संपादक-मण्डल को इस पुस्तक के लिए मैं बधाई देता हूं।

आपका

जवाहरलाल नेहरू

बाद में राष्ट्र-भाषा के प्रश्न को लेकर उन्हें कई बार पत्र लिखे, पर वह अन्य कामों में बेहद व्यस्त थे। कई पत्रों में हमने बड़ा रोष प्रकट किया, लेकिन उन्होंने कभी बुरा नहीं माना। उनकी जैसी सहिष्णुता कहां मिलेगी!

नेहरूजी चले गये। उनके निधन से ऐसा व्यक्ति उठ गया, जो भारत का ही नहीं, समूची मानवता का हितैपी था और जिसने अपने जीवन के अंतिम क्षण तक मानव-जाति की भलाई के लिए कार्य किया। ●

विमला सिंधी

उनकी बेजोड़ इंसानियत

जिस महापुरुष के नीचे सत्रह साल के करीब काम किया हो, उसके विषय में कुछ लिखना बहुत मुश्किल हो जाता है, क्योंकि हम उसमें रम जाते हैं और फिर उसे अपने से अलग करके देखना आसान नहीं होता।

मैंने १९४८ की जनवरी में १७ यार्क रोड पर, जहां पंडितजी रहते थे, काम करना शुरू किया था, लेकिन असली काम का आरंभ तब हुआ जब हम तीन मूर्ति भवन में आये। उसके बाद तो हमने अपने हर रोज के काम में कुछ-न-कुछ नयापन अवश्य पाया।

अगस्त १९४८ में काश्मीर के श्री रामचन्द्र काक पंडितजी से मिलने आये। मैंने पढ़ रखा था कि उन्होंने पंडितजी को काश्मीर में घुसने नहीं दिया था। शाम के छः बजे वह आये और मैं देखती क्या हूं कि पंडितजी इन्हें खुद नीचे लेने पहुंचे और करीब एक घंटे के बाद जब वह जाने लगे तो उन्हें नीचेतक छोड़ने आये। मुझे बड़ा अजीब-सा लगा और कुछ गुस्सा भी आया। पंडितजी ने मेरे चेहरे की बदलती भावनाएं देख लीं। जब मेहमान चले गये तो उन्होंने मुझे बुलाया और कहा, "तुम्हें बुरा लगा कि मैं काक को लेने और पहुंचाने आया। मेहमान सदा मेहमान होता है और जब वह घरपर आये तो उसका हमेशा आदर करना चाहिए। काक ने तो काश्मीर में अपना फर्ज अदा किया था।"

पंडितजी ने मेहमानों की देखभाल में हमेशा खुद हिस्सा लिया। जो मेहमान उनके घरपर ठहरा, उसे उन्होंने उसकी जरूरत के हिसाब से पूरा आराम दिलवाया। मेहमान के आने से पहले वह उनके ठहरने के कमरे स्वयं देखते थे। सबकुछ देखने के बाद गुसलखाना देखा जाता था और यह भी कि गर्म-ठंडे पानी का नल ठीक काम कर रहा है या नहीं, कमरे की हरेक बत्ती जलती है या नहीं। मेहमान के शौक के मुताबिक किताबें रखी जातीं और कुछ खाने-पीने का सामान भी।

पंडितजी के यहां दावतें होती थीं और तरह-तरह के मेहमान बुलाये जाते थे। उनकी सूची बनाने में और इंतजाम में वह काफी दिलचस्पी लेते थे। सन् १९५४ की ३१ दिसम्बर को एक रात्रि-भोज था, जिसमें विदेशी मेहमान आ रहे थे। पंडितजी ने यह समझकर कि नये वर्ष की वह संध्या है, इच्छा प्रकट की कि खाने का कमरा सजाया जाय और वह चाहेंगे कि बिजली की बत्तियों के बजाय मोमबत्तियों का इस्तेमाल हो। यही किया गया और जब मेहमान लोग आये तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा।

हालांकि पंडितजी बहुत व्यस्त रहते थे, उन्हें यह कभी भी न भूला कि किस मेहमान की क्या जरूरत

है। हाल ही में २८ मार्च को दोपहर के भोजन में जनरल बडालिया आ रहे थे। उनके साथ मोटर दुर्घटना होगई थी। हमें तो बिलकुल याद नहीं थी, पर करीब पांच मिनट पहले ही चपरासी पंडितजी का पैगाम लेकर आया कि बडालिया साहब को लिफ्ट से लाना है। पंडितजी ने अतिथि को हमेशा ऊंची जगह दी, चाहे वह बड़े ओहदे का हो या छोटे का। हम लोग कभी भी पंडितजी की मोटर मेहमान से पहले नहीं लगवा सकते थे।

पंडितजी सुबह ८॥ बजे से ९॥ बजेतक जो भी उनके घर आता था, उससे मिलते थे। इसमें आंधी-बरसात, कोई भी चीज अंतर नहीं डाल पाई। हां, वह दिल्ली से बाहर होते तो लोगों को जरूर वापस जाना पड़ता। कुछ महिलाएं घरेलू झगड़े लेकर आती थीं, विद्यार्थी पढ़ाई की मदद के लिए, बीमार इलाज के लिए और कुछ धरना देनेवाले आते थे, जिनकी संख्या कभी-कभी सैकड़ों होती थी। पंडितजी बहुत हिम्मत दिखाते और कहते, "मैं इनसे हरगिज नहीं मिलूंगा।" लेकिन जब दोपहर को दफ्तर से लौटते और उन लोगों को धूप में बैठा देखते तो उनका मन पिघल जाता। अंदर आते ही हुक्म होता कि इन लोगों को शर्बत और खाने को भेजो। कभी-कभी पांचसौ आदमियों का इंतजाम करना पड़ता। ज़रा दिक्कत होती, लेकिन जहां से जो मिलता, मंगवाया जाता और उन्हें खिलाया-पिलाया जाता। तीर्थ-यात्रा के लिए निकलनेवाले यात्री दिल्ली आते तो पंडितजी के भी दर्शन करने के लिए तीन मूर्ति भवन आ जाते। पंडितजी उनसे पूछते, "क्यों भई, दिल्ली में क्या-क्या देखा?" जवाब मिलता, "कुतुब, ओखला, बिड़ला मंदिर।" पंडितजी हँसकर कहते, "तो आखिरी देखने की चीज मैं हूं। लीजिये, मैं खड़ा हूं। देख लें।" सब लोग हँस पड़ते।

पंडितजी का प्यार इन्सानों से ही नहीं था, जानवरों से भी था। हमारे यहां शेर के बच्चे रहते थे। एक बार भीम (नर) बीमार होगया और उसके बचने की कोई आशा न रही। दिल्ली के जानवर-अस्पतालों के सब डाक्टर बुलवाये, पर किसीका इलाज कारगर न हुआ। फिर भी पंडितजी ने उम्मीद न छोड़ी और फौजी अस्पताल के डाक्टर ब्रिगेडियर भण्डारी को बुलवाया। रात के करीब दस बजे का समय था। डाक्टर के आने से इलाज बदला और एक नई उम्मीद बंधी। रात-भर डाक्टर, श्री करतारसिंह मेहता और मैं, शेर के पास बैठे रहे, जो मकान के पिछले बरामदे में बेहोश पड़ा था। पंडितजी घंटे-घंटे के बाद नीचे आते, हाल पूछते और मायूस होकर चले जाते। दूसरे दिन सुबह ही उन्हें लखनऊ जाना था। शेर को सुबह तक होश न आया और पंडितजी इसी निराशा में लखनऊ के लिए रवाना होगये। मुझे वह दिन, २० अगस्त, कभी नहीं भूलता, क्योंकि उस दिन प्रधान मंत्री-निवास में नौकरों की पार्टी की। जैसे ही पार्टी शुरू हुई कि भीमजी भी अपनी नींद से जाग उठे और एकदम मेज से कूदकर पार्टी में शामिल हो गये। पंडितजी को फौरन फोन द्वारा लखनऊ खबर दी गई।

पंडितजी की हर रोज की जिंदगी बहुत नई थी और हरेक चीज बड़ी जल्दी बदलती थी, फिर भी उन्हें अपनी पुरानी चीजों से बहुत प्रेम था। वह अपना पुराना जूता, पुराना कपड़ा और पुराना शाल का इस्तेमाल करना नहीं छोड़ते थे। चाहे कितनी व्यस्तता हो, उन्हें अपनी पुरानी पश्मीने की शाल धोने का समय मिल जाता था। इसी साल जब उन्होंने उसे साबुन के झाग में डाला तो वह टुकड़े-टुकड़े होगई।

पंडितजी को अजीब दुःख हुआ, जैसेकि किसीको निज साथी के छूटने का होता है। यह नहीं कि पंडितजी के पास नई चीजें नहीं थीं, लेकिन उन्हें पुराने साथियों और चीजों से आनन्द मिलता था।

पंडितजी इन्सान की कदर करते थे और चाहते थे कि उनकी वजह से किसीको तकलीफ न पहुंचे। २६ मई, १९६४ की बात है, जबकि वह देहरादून से दिल्ली वापस आ रहे थे। कुछेक लोग सहस्रधारा के लिए मोटर में रवाना हुए, क्योंकि पंडितजी हेलीकाप्टर से आ रहे थे। जब पंडितजी सहस्रधारा पहुंचे और जहाज में आये तो पहली चीज जो उन्होंने हमसे पूछी, वह थी, "क्या आप लोग बहुत देर से इन्तजार कर रहे हैं?" हमने कहा कि नहीं, हम लोग आपके आने से १५ मिनट ही पहले पहुंचे हैं। तब वह अंदर जाकर अपनी सीट पर बैठे।

हममें से किसीको भी मालूम न था कि वह हमारा उनके साथ आखिरी सफर है। ●

हमारे इस जमाने के अंधेरे को जिस दीपक ने एक अरसे तक रोशन कर रखा था, वह बुझ गया। श्री नेहरू की जुदाई सारी दुनिया के लिए एक बहुत बड़ा धक्का है और सीलोन के लिए तो एक जबरदस्त आघात है।

—श्रीमती भण्डारनायक

अंतिम यात्रा

जवाहरलालजी के अंतिम अवशेषों को ले जानेवाली स्पेशल ट्रेन अपने पीछे शोक मनानेवालों की उस भारी भीड़ को, जो अपने प्यारे नेता को विदाई देने के लिए वहां जमा हुई थी, छोड़कर धीरे-धीरे, शान्ति से, नई दिल्ली के स्टेशन से चल दी। उसी गाड़ी में सफर करने का मुझे भी सौभाग्य मिला। यात्रा के दौरान मैं ज्यादातर उसी डिब्बे में बैठा रहा, जिसमें पंडितजी की अस्थियों का कलश रक्खा था। उस डिब्बे पर बाहर से सफेद रंग कर दिया गया था और अंदर से तिरंगा, जिससे काफ़ी फासले से ही वह नजर पड़ जाय। उसके दोनों ओर शीशे की दो बड़ी-बड़ी खिड़कियां विशेष रूप से लगा दी गई थीं और भीतर तेज रोशनी कर दी गई थी, ताकि लोग कलश के अच्छी तरह से दर्शन कर सकें। कलश बीच में एक चौकी पर रक्खा था। डिब्बे में से सारी सीटें हटा दी गई थीं और फर्श पर कालीन बिछा दिये गए थे। एक ओर नेहरू-परिवार के सदस्य बैठे थे, दूसरी ओर भजन-मंडली बैठी भक्ति के गीत और भजन गा रही थी, प्रार्थना के मंत्र बोल रही थी तथा गीता का पाठ कर रही थी। सुरक्षा-सेवाओं के प्रतिनिधि चार संतरी हथियारों का मुंह नीचे किये कलश की निगरानी कर रहे थे।

अपने जीवनकाल में पंडितजी जहां कहीं जाते थे, हजारों आदमी उनका भाषण सुनने अथवा उनके दर्शन करने इकट्ठे हो जाते थे। उनकी अंतिम यात्रा के समय भी वे रास्ते-भर इतनी बड़ी संख्या में एकत्र हुए, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती, यहांतक कि छोटे-छोटे स्टेशनों पर भी, जहां गाड़ी को नहीं रुकना था, तेज धूप का सामना करती हुई भीड़ गाड़ी को गुजरते देखने के लिए शान्तिपूर्वक प्रतीक्षा करती खड़ी थी।

अपने दिवंगत नेता के प्रति लोगों का कितना गहरा प्रेम और आदर था, इसकी अनुभूति हर पड़ाव पर होती थी। हाथ जोड़कर डिब्बे के पास से गुजरते लोग यथासंभव खिड़की में से हाथ बढ़ाकर कलश का स्पर्श करने का प्रयत्न करते थे और कुछ तो भक्ति-भाव से डिब्बे को ही छू लेते थे। कुछ रोते या सिसकियां भरते होते थे, कुछकी आंखों से आंसुओं की धारा बह रही होती थी और कुछ भारी दिल से चुपचाप आगे बढ़ जाते थे। बहुत-से बड़ी विनम्रता से कलश के चारों ओर लगे फूलों के ढेर में से, एक फूल या पंखुड़ी की मांग करते थे। हिन्दू-पद्धति के अनुसार अवशेषों पर चढ़ाये गए फूलों का संग्रह नहीं किया जाता। लेकिन पंडितजी के प्रति लोगों का इतना प्रेम और श्रद्धा थी कि उनकी भस्म और उनकी अस्थियों पर बरसाये गए फूल भी पवित्र बन गये थे। चूंकि विभिन्न पड़ावों पर भीड़ को संभालना मुश्किल

था, इसलिए धक्कामुक्की को बचाने के लिए फूलों का बांटना बंद कर दिया। एक स्टेशन पर एक आदमी ने खिड़की को एक हाथ से पकड़ लिया और बार-बार अनुरोध करने लगा, "कृपा करके एक फूल दे दो।" मुझे उससे कहना पड़ा कि फूल बांटे नहीं जा रहे हैं, लेकिन वह कहां माननेवाला था और मेरे जोर से इन्कार करने पर भी वह टला नहीं। "बस, एक फूल दे दीजिये, एक।" उसकी यह रट बराबर लगी रही। "मैं अपनी जिंदगी में कभी आपका अहसान नहीं भूलूंगा।" गहरी भावना से उसका गला इतना भरा हुआ था कि मैं उसे निराश न कर सका। मैंने लोगों की आंख बचाकर एक फूल उठाया और उसे दे दिया।

कुछ घंटे तक इंदिराजी एकाकी, अपने विचारों में खोई, एक कोने में खामोश बैठी रहीं। लेकिन जब उन्होंने पंडितजी के लिए नर-नारियों की भीड़ की महती भावना देखी और देखा कि लोगों में स्वयं उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करने की आंतरिक अभिलाषा है तो वह शीघ्र ही अपने दुख को भूल गईं। हालांकि वह बहुत थकी थीं, फिर भी वह लोगों की समवेदना को स्वीकार करने के लिए हाथ जोड़कर एक खिड़की से दूसरी खिड़की तक बराबर चक्कर लगाती रहीं। हर पड़ाव पर वह लोगों से फूलों की भेंट को स्वीकार करती थीं और उन्हें सावधानी से कलश के इधर-उधर चढ़ा देती थीं। अगर कोई कुछ पत्तियां देते थे तो उन्हें भी वह उनकी भावनाओं को मान देने के लिए स्वीकार कर लेती थीं। जब गाड़ी रवाना होती थी तो वह फूलों को कलश के चारों ओर अच्छी तरह से सजा देती थीं। सवेरे के ३॥ बजे भी वह फूलों को संवारती दिखाई दे रही थीं। सारी यात्रा में वह इतनी अभिभूत होगई थीं कि थोड़ी देर के लिए भी आराम नहीं कर सकी थीं।

मैं ऐसे किसी नेता को, विशेषकर किसी राजनीतिज्ञ अथवा राजनेता को नहीं जनता, जिसे अपनी जनता से इतनी श्रद्धा प्राप्त हुई हो। प्राचीन काल में लोग अपने धर्म-गुरुओं को प्रेम, भक्ति और आदर अर्पित करते थे, लेकिन पंडितजी कोई धार्मिक नेता तो थे नहीं। हालांकि, यह सच है कि वह अत्यंत आध्यात्मिक थे, परंतु वह परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों और कर्मकाण्डों के स्पष्ट आलोचक थे। दूसरी ओर, वह इतने बरसों तक सत्ता धारण किये रहे, फिर भी उनकी लोकप्रियता मंद नहीं पड़ी और लोग उनके अंतिम क्षणतक उनके प्रति गहरा प्रेम रखते रहे।

पंडितजी की अंतिम यात्रा के दृश्यों को देखकर गांधीजी के निधन के दृश्यों का स्मरण हो आया। वास्तव में गांधीजी दूसरे ढंग के व्यक्ति थे और उनके प्रति लोगों की भावना को समझा जा सकता था, लेकिन जवाहरलालजी तो बिल्कुल दूसरी किस्म के थे। वह सत्ताधारी नेता थे और जिसके हाथ में सत्ता होती है, उसे बहुत-से काम ऐसे करने पड़ते हैं, जो लोगों को हमेशा प्रिय नहीं होते। लेकिन पंडितजी थे कि किसी-न-किसी तरह शासक दल के नेता की मर्यादा से हटकर जनता के साथ गहरा एकात्म साध लेते थे। कमल की भांति, जोकि लगातार पानी में रहते हुए भी उससे प्रभावित नहीं होता, पंडितजी के काम उनकी लोकप्रिय प्रतिभा को छू नहीं पाते थे। उनके कुछ कामों से लोग असंतुष्ट हो सकते थे, लेकिन उनसे हर्गिज नहीं। वह लोगों की निगाह में अपने व्यक्तित्व को अपने कामों से अलग कर सकते थे। ये दो यानी उनका व्यक्तित्व और काम, एक दूसरे से टकराते या एक-दूसरे को गिराते नहीं थे। उन्होंने अपना सब-कुछ लोगों को अर्पित कर दिया था और दूसरी तरफ़ लोगों ने अपने प्रेम की उनपर खूब वर्षा की। सारे

रास्ते इकट्ठी होनेवाली भीड़ के शोक-ग्रस्त चेहरों को देखकर यह विचार मेरे मन में उठता रहा। जनता के बीच पंडितजी की असीम लोकप्रियता का रहस्य इससे शायद स्पष्ट हो जाता है।

कानपुर के स्टेशन पर बेशुमार भीड़ इकट्ठी थी। वह गाड़ी के रुकते ही डिब्बे की ओर दौड़ी—धक्का-मुक्की में पुलिस की व्यवस्था भंग हो गई। भीड़ पर काबू करने के लिए पुलिस ने उसे पीछे धकेलना शुरू किया। उन अव्यवस्थित दृश्यों को देखकर इंदिराजी परेशान होगईं। वह भीड़ के बीच कूद पड़ीं। उसे देखकर ऐसे अवसरों पर पंडितजी के भावनापूर्ण व्यवहार का ध्यान हो आया। जब विजयालक्ष्मी और राजीव ने उन्हें रोकना चाहा तो वह गुस्सा होगईं। "मुझे मत रोको", उन्होंने चिल्लाकर कहा, "अगर तुम मुझे रोकने की कोशिश करोगे तो मैं नीचे कूद जाऊंगी। ये लोग पापा के लिए प्रेम और आदर से खिचकर आये हैं और पुलिस लाठियों से उनके साथ दुर्व्यवहार कर रही है!" वह इस बात को सहन नहीं कर सकती थीं कि लोगों की भावना को ठेस पहुंचे या उनकी इच्छा अपूर्ण रहे।

कानपुर के दृश्यों को देखकर इंदिराजी तथा दूसरे लोगों को हैरानी हुई कि पंडितजी के अपने नगर इलाहाबाद में अधिकारी लोग कैसे भीड़ पर नियंत्रण रख सकेंगे। लेकिन इलाहाबाद पर व्यवस्था बहुत ही अच्छी थी और जनता ने भी बड़े संयम से काम लिया। बहुत-से स्टेशनों पर 'पंडित नेहरू अमर रहें' अथवा 'नेहरू जिन्दाबाद' के घोष हुए थे, लेकिन इलाहाबाद पर स्टेशन से संगम तक सारे रास्ते बेशुमार भीड़ थी, पर एक आवाज तक नहीं सुनाई दी। जवान और बूढ़े, सब चित्र की भांति निस्तब्ध खड़े थे।

"राम वियोग विकल सब ठाढ़े।
जहँ तहँ मनहूँ चित्र लिखि काढ़े।।

(रामचरितमानस)

इलाहाबाद स्टेशन से कलश बड़ी शांति और गंभीरता के साथ शहर की खास-खास सड़कों से गुजरता हुआ पंडितजी के घर आनन्द-भवन पहुंचा, उस आनन्द-भवन में, जिसे पंडित मोतीलालजी ने बड़े चाव से बनवाया था और जो पंडितजी का स्वयं का वर्षो तक प्यारा घर रहा तथा जिसके साथ उनका काफी मोह भी रहा। इन्दिराजी, विजयालक्ष्मीजी व परिवार के अन्य लोगों ने अभीतक काफी हिम्मत रखी थी, लेकिन बिना पंडितजी के उनके अंतिम अवशेषों के साथ आनंद-भवन पहुंचना उन सभीके लिए एक असहनीय वेदना का विषय था। कोई भी व्यक्ति ऐसे समय में भावनातिरेक में डूबे बिना कैसे रह सकता है! बीस-पच्चीस, व इससे भी अधिक बरसों से जिनका पंडितजी के साथ संबंध रहा, ऐसे सभी पुराने लोग वहां इकट्ठे थे। पंडितजी के अवशेष देखकर उनका बांध टूट गया और उनकी भावनाएं देखते हुए परिवार के लोग भी अपने संयम को बनाये न रख सके। उपस्थित सब लोगों की आंखें आंसुओं से भर गईं। एक तरह से यह ठीक ही हुआ, क्योंकि इससे परिवारवालों का दिल कुछ हल्का हो सका।

वहां अधिक रुकने की गुंजायश नहीं थी। आध घंटे में ही यात्रा संगम की तरफ चल पड़ी। रास्ते-भर अपार जन-समुदाय शांति से सिर झुकाये अपनी अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा था। किसीके मुख से किसी तरह के भी शब्द नहीं निकलते थे। संगम पर पहुंचे तो वहां राजीव और संजय कलश को सैनिक किश्ती पर रखकर परिवार के सदस्यों, तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री नन्दाजी, श्री लालबहादुरजी, आदि

नेताओं के साथ संगम की धार पर पहुंचे। हम लोगों को भी, जो उनके साथ थे, किश्तियों द्वारा दूसरी तरफ से उसी जगह ले जाया गया। वेदों के मंत्रोच्चार के बीच राजीव और संजय ने पंडितजी के अंतिम अस्थि-अवशेषों को गंगाजी के जल में समर्पित कर दिया। पंडितजी ने अपनी वसीयत में गंगाजी के बारे में अपनी गहरी भावना व्यक्त की थी। अस्थि-विसर्जन के समय चारों ओर से पुष्पों की वर्षा हो रही थी। वायुयान से भी पुष्पांजलियां समर्पित की जा रही थीं और सभी किश्तियों से रामधुन की गूंज उठ रही थी। ऐसे पुनीत वातावरण में हमारे पूज्य नेता पंडितजी के अंतिम पार्थिव अवशेष का विसर्जन कर बोझिल हृदय से हम लोग वापस लौटे। ●

जवाहरलालजी का व्यक्तित्व अद्भुत था। पूर्व और पश्चिम की मानवीय उत्कृष्टताओं का अपूर्व संगम उनकी विभूति में हुआ था। गांधी के रूप में विश्वात्मा अवतीर्ण हुई थी, जिसके उत्तराधिकारी जवाहरलाल थे। आज के इस अंतर्राष्ट्रीयता के युग में जवाहरलाल जागतिक राजनेता और लोकनेता थे। संसार-भर के सामान्य नागरिकों की आशाएं उनके उद्गारों में व्यक्त होती थीं। भारतीय राष्ट्रीयता के क्षेत्र में वह अखिल भारतीय जनता के नेतृत्व और प्रतिनिधित्व के अपूर्व तीर्थराज थे। उनके निधन से समस्त मानवता को अपरिमित हानि हुई है। उनके वियोग की वेदना से हीन विषाद नहीं, प्रेरणा मिलनी चाहिए। उनकी विभूति की विशेषताओं में ही उनका संदेश है।

—दादा धर्माधिकारी

मोहनलाल सुखाड़िया

शान्तिदूत

हमारे देश के प्रथम प्रधान मंत्री स्वर्गीय श्री जवाहरलाल नेहरू हमारे देश की ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व की एक महान विभूति थे। वह हमारी सभ्यता, संस्कृति एवं राष्ट्रीयता के प्रतीक थे। उन्होंने स्वयं को हमारे राष्ट्रीय जीवन के साथ इतना आत्मसात कर लिया था कि उनके बिना आज हमारे लिए अपने देश की कल्पना करना भी मुश्किल है। अंतर्राष्ट्रीय जगत में हमारे देश को जो ख्याति एवं स्थान मिला, उसका बहुत-कुछ श्रेय उनको ही है।

उन्होंने अपने जीवन-भर शोषण एवं उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष किया। उपनिवेशवाद के शोषण से त्रस्त एशिया एवं अफ्रीका के करोड़ों निवासियों का यदि उन्हें मुक्तिदाता कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। वह स्वतंत्रता और जनतंत्र के पुजारी थे और उन्होंने न केवल हमारे देश को ही स्वतंत्रता दिलाई, अपितु दुनिया के हर कोने में हो रहे उत्पीड़न, शोषण एवं दमन के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की।

वह शांति के अग्रदूत थे। वह सहयोग एवं सद्भावना के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय जगत् में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व चाहते थे। अणु बमों के विनाशकारी विस्फोटों एवं शस्त्रास्त्रों के भार से त्रस्त मानवता की सुरक्षा के लिए उन्होंने सदैव विश्व के राजनीतिज्ञों को सलाह दी कि केवल शांति के मार्ग से ही मानवता का कल्याण हो सकता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि गत १८ वर्षों में कितने ही ऐसे अवसर आये, जबकि विश्व-युद्ध का सूत्रपात होने को ही था, किन्तु ऐसे प्रत्येक अवसर पर हमारे स्वर्गीय प्रधान मंत्री ने लड़ने के लिए तत्पर गुटों को समझौते का मार्ग सुझाकर शांति भंग नहीं होने दी। इस शांतिदूत के निधन से सम्पूर्ण मानवता अपना रक्षक खो बैठी है।

स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों से ही वह योजनाबद्ध अर्थ-नीति को हमारे राष्ट्र के पुनर्निर्माण का एकमात्र उपाय मानकर चलते थे। समाजवाद में उनकी गहरी आस्था थी, लेकिन उनका समाजवाद रूढ़िवाद से ग्रस्त कोई किताबी समाजवाद नहीं था। उनके समाजवाद में मानवोचित अधिकारों तथा हमारी राष्ट्रीय सूझ-बूझ का अपूर्व सम्मिश्रण था। यह कहना गलत नहीं होगा कि जहां हमारे राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी ने हमारे राष्ट्रीय जीवन में राजनैतिक चेतना उत्पन्न की, नेहरूजी ने हमें एक आर्थिक एवं सामाजिक क्रांति के नये मोड़ पर ला खड़ा किया। उनकी यह निश्चित मान्यता थी कि राजनैतिक स्वतंत्रता तभी सुरक्षित रहकर पनप सकती है, जबकि आर्थिक दृष्टि से लोग संतुष्ट हों। १५ अगस्त, १९४७ को जब उन्होंने प्रधान मंत्री का पद संभाला, उस समय उन्हें विरासत में एक ऐसी अर्थ-व्यवस्था मिली, जो पूरी तरह से खोखली हो

चुकी थी। विदेशी शासन के लगातार दमन से जन-साधारण की कल्पना-शक्ति एवं उत्साह मृतप्रायः हो चुके थे। लेकिन उन्होंने देश के पुनर्निर्माण एवं आर्थिक विकास के कार्य का बीड़ा उठाया और हमारी पंचवर्षीय योजनाएं उसकी साक्षी हैं। भाखरा-बांध को देखते समय उन्होंने कहा था, "आज के जमाने में सबसे बड़ा मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारा यह स्थान है, जहां मनुष्य मानव-समाज की भलाई के लिए काम करता है।" उनका पूर्ण जीवन मानव-समाज की भलाई में ही बीता।

आज जब वह हमारे बीच नहीं हैं, हमारा यह सर्वोपरि कर्त्तव्य हो जाता है कि जिस देश को वह इतना प्यार करते थे, उसकी स्वतंत्रता की रक्षा एवं आर्थिक तथा सामाजिक पुनर्निर्माण के कार्य में बड़ी-से-बड़ी कुरबानी देने में भी कोई हिचकिचाहट न करें। हममें से जिनको उनके नेतृत्व में रहकर काम करने का शुभ अवसर मिला है, वे यह भली-भांति जानते हैं कि उनकी आत्मा कितनी महान थी और वह अपने देश को कितना प्यार करते थे। उनके प्यार का इससे अधिक बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि उन्होंने अपनी वसीयत में यह इच्छा प्रकट की कि मरने के बाद उनके अवशेषों को भारत की धरती पर वहां बिखेर दिया जाय, जहां किसान हल-बैल लेकर खेती करते हैं। वास्तव में उनकी काया के अवशेष भारत की मिट्टी के कण-कण में समा गये हैं और अब हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम इस धरती पर अधिक-से-अधिक समृद्धि, सुख और शांति का वातावरण उत्पन्न करने में कोई कसर न उठा रखें। वह जनतंत्र के एक महान उपासक थे और हमें इस जनतंत्र की रक्षा करने एवं इसे दृढ़ बनाने के हेतु आज यह प्रतिज्ञा पुनः दुहरानी है कि हम ऐसा कोई कार्य नहीं करेंगे, जिससे हमारे राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता को क्षति पहुंचे। नेहरूजी के स्वप्नों के देश का निर्माण करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करना है। ●

हममें से जिन्हें जवाहरलाल नेहरू को व्यक्तिगत रूप से जानने का सद्भाग्य मिला था, उनके मन में हमेशा ही उनकी यह अमिट याद बनी रहेगी कि वह एक महान् राजनीतिज्ञ थे और बहुत दिलदार इन्सान थे। जिनको उनकी जरूरत रहती उनके वह दोस्त थे और अमर विभूति गांधी के सच्चे अनुयायी थे।

—जोमो केन्याटा

राष्ट्रीय पुनर्जागरण के प्रतीक

मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता हूं, अपने देश के स्वाधीनता-संग्राम के उस सेनानी के प्रति, जिसने हमें मध्य-युग के पिछड़ेपन से उठाकर आधुनिक युग में लाकर खड़ा किया, जिसने मामूलीपन से उठाकर हमें एक शानदार हस्ती प्रदान की और जिसने हमारे निराशावाद को खत्म करके मनुष्य की शक्ति के प्रति हमारा विश्वास जगाया।

जो दर्द हम अपने दिलों में महसूस कर रहे हैं और जो आंसू बरबस हमारी आंखों से बहे जा रहे हैं, वह वेदना, और आंसू सिर्फ एक प्रधान मंत्री की याद में नहीं हैं। प्रधान मंत्री कोई-न-कोई हमेशा होगा। हमारा दर्द तो और भी गहरा है । हमें महसूस हो रहा है कि जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु के साथ हमारी कोई निजी, बहुत ही कीमती, बहुत ही नजदीकी, चीज खो गई है।

अपने उच्च और श्रेष्ठ विचारों के अगणित भण्डार से उन्होंने हमारे राष्ट्र-जीवन के सभी पहलुओं को अलंकृत किया। उनके व्यक्तित्व के असर से हर चीज और हर घटना को एक नया क्षितिज, एक नई महत्ता, प्राप्त हो जाती थी, जो इन चीजों या घटनाओं को वैसे प्राप्त नहीं थी।

उन्होंने राजनीति में से चैतन्यहीनता, मलिनता और शैथिल्य को हटाया और उसको अपने तेज, जोश और उत्साह से भर दिया। जब संग्राम होता था तो वह जान की बाजी लगाकर उसे लड़ा करते थे। मगर जो संघर्ष वह करते थे, उससे कटुता, अशिष्टता और क्षुद्रता को वह हमेशा दूर रखते थे।

वह दूरदृष्टि, जो तत्कालीन से ऊपर देख सकती थी, वर्तमान को वेधकर आगे जा सकती थी, जो क्षणिक और शाश्वत का भेद करना जानती थी, हमारे जीवन से सदा के लिए दूर हो गई।

हमें प्रयत्न करना होगा कि हम उस दृष्टि को पुनः प्राप्त करें और इस मूल्यवान धरोहर को सुरक्षित रखें।

जब-जब हम पूर्वाग्रहों का शिकार बनने से इन्कार करेंगे, असहिष्णुता को पास न फटकने देंगे और अन्याय के सामने घुटने टेकने से इन्कार कर देंगे तब-तब हम उस धरोहर का मूल्य बढ़ायंगे, उसकी वृद्धि करेंगे।

जर्मनी को अपना धर्मोद्धार मिला, इटली को अपना सांस्कृतिक पुनर्जीवन मिला और फ्रांस को अपनी क्रांति मिली, लेकिन जवाहरलालजी में हमारा धर्मोद्धार, हमारा सांस्कृतिक पुनर्जीवन और हमारी क्रान्ति, तीनों केन्द्रित थे।

उनके निर्वाण से यह देश अब वह नहीं रहा, जो पहले था, लेकिन जब कभी और जहां कहीं स्वाधीनता पर संकट आयगा, न्याय संकट में पड़ेगा, आक्रमण होगा और यह राष्ट्र अपना निर्णय करने में हिचकिचाहट नहीं दिखायगा और कर्तव्य का रास्ता मुस्तैदी से चुनेगा, तब-तब जवाहरलाल नेहरू का *पुण्य-स्मरण* हम कर रहे होंगे और एक नया स्मारक उनकी याद में खड़ा कर रहे होंगे। मगर आज भी तो उनके स्मारक हमारे चारों ओर हैं। लोकतंत्र में हमारी आस्था और श्रद्धा, इस आस्था का प्रतीक हमारी संसद, स्वतंत्र खड़े रहने का हमारी जनता का वज्र संकल्प और यद्यपि अनिश्चित ही है तो भी विश्व में व्याप्त शक्ति की स्थिति और हमारी एकता पर किसी दिशा से भी आनेवाले प्रहारों का जवाब देने का दृढ़ निश्चय--ये हैं उनके स्मारक। ●

जवाहरलालजी की असामयिक मृत्यु से हिन्दुस्तान ने अपना एक ऐसा महान् नेता खो दिया है, जिन्हें लोगों का आदर ही नहीं, श्रद्धा भी प्राप्त थी। भारत के लिए यह एक ऐसी क्षति है, जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। भारत सरकार और जनता के साथ हम अपनी पूरी समवेदना प्रकट करते हैं।

--अयूब खां

जनता के जवाहर

एक बार नेहरूजी अपने दौरे के सिलसिले में खण्डवा आनेवाले थे। नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों और नगरपालिका आदि के सदस्यों को हवाई अड्डे पर जाने के लिए प्रवेश-पत्र दे दिये गए। जैसे ही उनके हवाई जहाज के आने का समय हुआ, सब लोग अपने-अपने हाथों में मालाएं लेकर पंक्तिवद्ध खड़े होगये। उनका जहाज आया। एक मुस्कराहट के साथ वह उसमें से उतरे और उन्होंने देखा कि दूर, तारों के घेरे से बाहर, असंख्य जनता उनके दर्शनों के लिए खड़ी है। एक क्षण उन्होंने औपचारिक ढंग से स्वागत करने-वालों की ओर देखा और तुरंत जीप में सवार होकर, बड़ी-बड़ी घास को लांघते हुए, तार के घेरे के निकट खड़ी, जनता के पास जा पहुंचे। लोगों में हर्ष की लहर दौड़ गई और उन्होंने उनके जयघोष से आकाश गुंजा दिया। नेहरूजी एक मोहक मुस्कान के साथ अपने दोनों हाथ जोड़कर जनता के अभिवादन को स्वीकार करते हुए सभास्थल की ओर चले गये।

२३ फरवरी सन् १९३९ की वात है। मैं त्रिपुरी-कांग्रेस में जाने के पूर्व एक दिन इटारसी में ठहरा था। इसी बीच सुना, नेहरूजी वहां से गुजरनेवाले हैं। तुरंत स्टेशन जा पहुंचा। गाड़ी आई। नेहरूजी के जय-जयकार से समूचा प्लेटफार्म गूंज उठा। पंडितजी मुस्कराकर दोनों हाथ जोड़े जनता का अभिवादन करते हुए, अपने डिब्बे के दरवाजे पर खड़े हुए थे। मैं भीड़ को चीरकर उनके पास पहुंचने का प्रयत्न करने लगा। मेरी इच्छा उनके हस्ताक्षर लेने की थी। तभी मुझे ख्याल आया कि एक वार उन्होंने हस्ताक्षर चाहनेवाले की नोटबुक को झुंझलाकर जन-समुद्र में फेंक दिया था। फिर भी मैं साहस करके आगे वढ़ता ही गया। जब मैं उनके पास पहुंचा तो मैंने देखा कि वह प्लेटफार्म पर खड़े बच्चों से बातचीत करने में संलग्न थे। अवसर पाकर मैंने अपनी नोट-बुक उनके हाथ में दे दी। उन्होंने उसे उलट-पुलटकर देखा और अपने हाथ में दबाकर लोगों से बातचीत करने में लग गये। मुझे लगा कि उन्होंने मेरी नोट-बुक को अब फेंका, अब फेंका। इसी बीच गाड़ी के छूटने का समय हो गया। गार्ड ने झंडी दिखाई, एंजिन ने सीटी दी। गाड़ी के छूटने के पहले झटके के साथ, उन्होंने मेरी नोट-बुक पर हस्ताक्षर कर दिये और मुस्कराहट के साथ उसे मेरे हाथों में दे दिया। उनकी उस मुस्कराहट को मैं आजतक नहीं भूल पाया हूं।

एक बार उनके दर्शनों के लिए आई हुई भीड़ में एक आदमी गिर गया और दूसरे ने उसकी पीठ पर खड़े होकर पंडितजी के दर्शन करने चाहे। इसपर पंडितजी अपनी मोटर से उछलकर बाहर आये और उस आदमी के एक चांटा मारते हुए बोले, "मुझे क्या देखता है? उसे देख, जो तेरे पैरों के नीचे कुचल रहा है।" ●

मैं उनका ऋणी हूं

पं० जवाहरलाल नेहरू का नाम पहले-पहल सुना तब मैं हाई स्कूल का एक विद्यार्थी था। शिक्षा के लिए मैं अपने जिले (सुलतानपुर) के बाहर जौनपुर तक ही गया था। मेरा जिला तो उन दिनों मुख्यतः किसानों और राजा-नवाबों (ताल्लुकेदारों) का जिला था, जिसमें एक ओर घोर पीड़न, शोषण और क्रूरता के दृश्य दिखाई देते थे, दूसरी ओर नाच-गानों, शराबों और वेश्याओं की अठखेलियों के नजारे भरे-दरबारों में दिखाई देते थे। अवध में केवल इने-गिने राज्य ही इसके अपवाद थे, जिनमें मेरे जिले में तो केवल अमेठी राज्य ही ऐसा था, जिसके तत्कालीन राजा (भगवान बख्शसिंह) आचार-विचार और प्रजा के प्रति सद्व्यवहार के लिए प्रसिद्ध थे, किन्तु उन राजा को गद्दी के लिए प्रिवी कौंसिल तक लड़ना पड़ा था और पं० जवाहरलाल नेहरू के पिता पं० मोतीलाल नेहरू उनके वकील थे। मोतीलालजी ने ही प्रिवी कौंसिल तक लड़कर राजासाहब को उनका राजपाट दिलाया था।

उन दिनों ताल्लुकेदारी क्षेत्र में पं० मोतीलाल नेहरू का बड़ा नाम हो गया था। इसलिए जब जवाहरलालजी राजनैतिक क्षेत्र में आये तो उनका परिचय ताल्लुकेदारों और राजा-नवाबों में सहज ही हो गया। परिचय तो हुआ, पर किस अनूठे ढंग पर, यह न्यूनाधिक रूप में उन्हींके शब्दों में सुन लीजिये—

"एक वकील तो पं० मोतीलाल नेहरू थे, जिन्होंने राजासाहब अमेठी को विलायत तक लड़कर राज्याधिकार और गद्दी दिलाई और अब उन्हींके पुत्र जवाहरलाल नेहरू बैरिस्टर बनकर विलायत से आ गये तो हम लोगों का तख्ता ही पलटकर किसान-राज्य स्थापित करना चाहते हैं।"

यह उन दिनों के ऐसे रईसों की उच्चस्तरीय चर्चाओं का एक अंग था, जो १९२०–२१ में जवाहरलालजी के किसान-आंदोलन शुरू करने से घबराकर अंग्रेजों से भी पहले अपना बोरिया-बिस्तर समेटे जाने की आशंका इन शब्दों में प्रकट किया करते थे। वास्तव में वे थे तो इसीके पात्र, क्योंकि बड़े राजा-ताल्लुकेदारों की तो बात ही छोड़िये, छोटे-मोटे और मामूली समझे जानेवाले ज़मींदार भी धांधली करके किसान-प्रजा को चूसते थे।

जब अवध में यह धांधली चल रही थी, उन्हीं दिनों जवाहरलालजी ने ताल्लुकेदार-वर्ग के अत्याचारों की जांच कराई और उस जांच के सिलसिले में प्रजाजन के मर्मान्तक कष्टों की गाथा उनके कानों तक पहुंची। मालगुजारी ही नहीं, अवैध और मनमाने करों के वसूल करने में ताल्लुकेदारों के कारिन्दे रिआया के ऊपर लाठियों से पीटते, किसानों को पकड़कर अपने जिलों पर ले जाते और वहां उनको अनेक

प्रकार की शारीरिक यंत्रणाएं देते। इस अत्याचार की सुनवाई कहीं न होती। पर जैसे हम प्रपीड़ित प्रजाजन को त्राण दिलाने के लिए ही जवाहरलालजी प्रकट हो गये। उन्होंने अवध का, खासकर सुलतानपुर, प्रतापगढ़, फैजाबाद और गोंडा तक का, दौरा किया और किसानों के बीच काम करनेवाले तैनात किये। उन्होंने ताल्लुकेदार राजाओं के अत्याचारों की जो शिकायतें सुनी थीं, उनसे कहीं अधिक प्रपीड़न के प्रमाण उन्हें मिल गये। बाबा रामचन्द्र और देवनारायणजी ने दो-तीन जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में पहले से ही काम किया था। पंडित जवाहरलाल के भाषण और प्रोत्साहन से यह एक बड़े आन्दोलन, किसान-आन्दोलन, के रूप में बदल गया। पंडितजी ने कांग्रेस को किसान-आन्दोलन आगे बढ़ाने की प्रेरणा दी।

मैं अपने विद्यार्थी-जीवन से ही दो जिलों की सीमा पर गांव-गांव में काम करनेवाले बाबा रामचन्द्र के संपर्क में आ चुका था। बाबा रामचन्द्र दिन छिपने से आधी रात तक किसानों के गांवों, विशेषकर 'चमरौटियों' में सभाएं कर एक गांव से दूसरे गांव जाते और आधी रात के बाद प्रस्थान कर दूसरे जिले के गांवों में चले जाते। पुलिस उन्हें पकड़ ही नहीं पाती थी। क्षेत्र-परिवर्तन के कारण एक थाने से दूसरे थाने और एक जिले से दूसरे जिले में उनके लिए वारण्ट घूमा करते थे। मुझे बाबाजी के साथ हो जाने का सौभाग्य विद्यार्थी-जीवन की उस अल्पावस्था में ही प्राप्त हो गया। उनके कार्य में मेरी रुचि बढ़ी और पुलिस को चकमा देकर इधर-से-उधर निकल भागने में भी। उनकी कार्यप्रणाली का अनुसरण कर मैं अपने जिले के गांवों में काम करने लगा। मेरे जाति-बन्धुओं, जमीदारों, ने मुझे इसके लिए बुरा-भला भी कहा और ताल्लुकेदारों के ठाकुर-कारिन्दों में से एक ने तो मुझे राज्य में अच्छी नौकरी दिलाने का प्रलोभन भी दिया। किसानों की प्रशंसा, ठाकुरों की भर्त्सना ऑर धमकियां तथा घरवालों की फटकार-तिरस्कार सहकर भी मैं अपने मार्ग से नहीं डिगा।

इस प्रकार जब मैं अपने विद्यार्थी-जीवन का उपयोग आन्दोलन चलाने में कर रहा था, एक दिन मुझे एक इलाहाबादी कांग्रेसी कार्यकर्ता द्वारा सूचना मिली कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने किसान-आन्दोलन के कार्य-कर्ताओं को प्रयाग बुलाया है। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। जिला-कांग्रेस के अधिकारियों और किसान-आंदोलन के तत्कालीन सिरमौर बाबू गणपतसहाय से सलाह और सामग्री प्राप्त कर तीन-चार साथी कार्यकर्ताओं के साथ मैं इलाहाबाद पहुंचा। हम लोग बड़े अदब और भय के साथ पंडितजी के पास गये, किन्तु उनके प्रश्नों ने हमें निर्भय बना दिया। कुछ देर बात करके हम लोग लौट आये।

पंडितजी से मेरा प्रथम परिचय इस प्रकार हुआ। उस समय मेरी अवस्था १७ वर्ष के लगभग रही होगी। मैं उन दिनों जौनपुर में पढ़ता था। बाद में जौनपुर की पढ़ाई समाप्त करके जब मैं उच्च शिक्षा प्राप्त करने के ध्येय से इलाहाबाद पहुंचा तो पंडितजी से मिलने के अधिक अवसर प्राप्त हुए। साथ ही उनके पास आनेवाले अन्य नेताओं से भी परिचय हुआ। इलाहाबाद से सतत् संपर्क होने के कारण मैं पंडितजी द्वारा प्रेरित और संगठित विद्यार्थियों की वानर-सेना के भी निकट संपर्क में आया।

सन् १९२० में जब कांग्रेस का विशेष अधिवेशन कलकत्ते में हुआ तो उसमें प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित होने और साथ ही कलकत्ता देख आने का लोभ संवरण नहीं कर सका। उस अधिवेशन के सभापति लाला लाजपतराय थे। उनके अतिरिक्त असहयोग-आन्दोलन के जनक के रूप में महात्मा गांधी

के दर्शन मैंने वहीं पहले-पहल किये। देशबन्धु चित्तरंजनदास, जे० एम० सेन गुप्त आदि नेताओं को भी देखा। नये जोश, नये साहस और नई स्फूर्ति से भरकर मैं इलाहाबाद लौटा।

इलाहाबाद में पढ़ाई के साथ-साथ मैं प्राय: आनन्द-भवन जाता, पंडितजी के दर्शन करता और उनसे विद्यार्थी-संगठन, स्कूल-कालेज-बहिष्कार आदि के बारे में आदेश प्राप्त करता। उन्हीं दिनों कांग्रेस की योजना के अनुसार विदेशी कपड़ों की होली हुई, जिसमें मोतीलालजी तथा जवाहरलालजी के बहुमूल्य विलायती वस्त्रों को जलाये जाने के पहले नुमाइश के रूप में प्रदर्शित किया गया। उन कपड़ों को देखकर विद्यार्थियों और नागरिकों में त्याग-भाव जागृत हुआ और वह होली बहुत विशाल रूप में हुई। उन दिनों हममें जोश तो बहुत था, पर जानकारी कम। इसीलिए कोई भी गलती हो जाती तो पंडितजी की झिड़कियां खानी पड़तीं। विलायती वस्त्रों की होली के बाद हमें उन्होंने शहर तक ही सीमित न रहकर शनिवार और रविवार को गांवों में आन्दोलन करने के लिए जाने का हुक्म दिया। हम फूलपुर, हंडिया और करछना तहसीलों में काम करने गये। पंडितजी भी रविवार को विजयालक्ष्मी और कृष्णाजी के साथ गांवों में मोटर द्वारा आते थे और शहर से लाई हुई खाद्य सामग्री देहाती बच्चों में बांटते थे। छोटी-मोटी सभाओं में प्रवचन के रूप में भाषण भी कर जाते थे।

कालेज का बहिष्कार कर हमारे साथी विद्यार्थियों का जो दल आन्दोलन में प्रमुख रूप से पड़ा, उसमें इटावा जिले के विद्यार्थी अधिक संख्या में थे। मैं पान दरीबे में रहता था और मेरे साथ एक ब्राह्मण रसोइया और एक संस्कृत अध्यापक (जो मेरे गांव के थे और पिताजी की आज्ञा से मेरी देख-रेख रखते थे) भी रहते थे।

जब असहयोग-आन्दोलन अपने पूरे जोर पर था और इलाहाबाद शहर में दफा १४४ लगा दी गई थी, हम विद्यार्थियों की टोली उसे तोड़ने के लिए तैयार हो गई। मैं झंडा लेकर आगे-आगे चला और सिविल लाइन्स में हम सब गिरफ्तार कर लिये गए, पर हमें इस बात से दुख हुआ कि मजिस्ट्रेट ने हमारे ऊपर जैसे दया-सी दिखाते हुए हमें कच्ची उम्र का विद्यार्थी कहकर केवल तीन-तीन सप्ताह की सादी सजा सुनाई।

इस हलकी सजा को हम लोगों ने हँसी-मजाक में ही काट दिया। किन्तु इस बीच मेरे साथ रहनेवाले संस्कृत अध्यापक ने मेरे गांव जाकर पिताजी से मेरे जेल जाने और छूटने की तारीख बता दी, जिससे मेरे मलाका जेल से छूटकर बाहर आते ही वे वहां खड़े मिले और मेरे गाल पर एक जोर की चपत लगाकर बोले, "तुम्हें खुराफात करने के लिए इलाहाबाद भेजा गया था या पढ़ने-लिखने के लिए? अभी इसी गाड़ी से घर जाओ। तुम्हारी मां ने इक्कीस दिन से कुछ नहीं खाया। मैं शाम की गाड़ी से जाऊंगा।"

मैंने चुपचाप थप्पड़ सह लिया और "अच्छा" कहकर स्टेशन की ओर लपका। जेल डिपाजिट वापस मिलने के कारण कुछ रुपये तो जेब में हो ही गये थे। स्टेशन पहुंचा तो हावड़ा मेल खड़ा था। फौरन वहां का टिकट लेकर कलकत्ते के लिए रवाना हो गया। यह सन् १९२१ की बात है।

इस प्रकार राष्ट्र को जागृत करने का दम भरनेवाला, विदेशी वस्त्रों की होली जलानेवाला, किसान-आन्दोलन में योग देनेवाला और पंडितजी का अनुयायी होने का गर्व प्रदर्शित करनेवाला—मैं,

पलायनवादी बन गया, जैसे संघर्ष से भागना ही कोई लक्ष्य हो। मैंने रास्ते में संकल्प किया कि मैं पढ़ूंगा अवश्य, पर पिताजी की इच्छा के अनुसार वकील बनने के लिए नहीं, बल्कि ज्ञान-संपादन कर उसके द्वारा देश-सेवा करने के लिए। जाने-अनजाने मुझपर पंडितजी के उपदेशों और आदर्शों का प्रभाव तो पड़ा ही था, इसीलिए ज्ञानार्जन करके उसके द्वारा देश को जगाने का संकल्प दृढ़ हो गया।

पंडितजी के उपदेशों और पिताजी के आक्रोश की वदौलत मैं कलकत्ते पहुंच तो गया, पर वहां पहुंचते ही जैसे रोटी का सवाल सर्वोपरि हो गया। जिस प्रश्न की ओर कभी भी ध्यान नहीं गया था, उसको लेकर दर-दर भटकना पड़ा। आखिर दैनिक 'भारत-मित्र' में मुझे प्रूफ-रीडर का काम मिल गया और कुछ दिनों बाद श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे और श्री वासुदेवबाबू की वदौलत सहायक संपादक बन गया।

उस कार्य में लग जाने पर भी मैंने न तो कांग्रेस में काम करना छोड़ा, न पढ़ाई। बड़ा बाजार कांग्रेस कमेटी का सदस्य वन गया और विद्यासागर कालेज में नाम लिखा लिया। इस प्रकार सन् १९२४ तक मैं कलकत्ते में ही रहा। बीच-बीच में घर आने पर इलाहाबाद जाकर पंडितजी से मिलकर अपनी गतिविधियों से उन्हें अवगत कराता तो वह प्रसन्न होते और उनके आशीर्वाद ने मुझे राष्ट्रीयता और पत्र-कारिता के क्षेत्र में निरन्तर आगे बढ़ने में मदद दी। जब मैं 'कलकत्ता समाचार' में सहायक संपादक का काम कर रहा था, वह पत्र कलकत्ते से स्थानांतरित होकर दिल्ली से दैनिक 'हिन्दू-संसार' के नाम से निकलने लगा। तब पं० झाबरमल्ल शर्मा और पं० बाबूराम मिश्र के साथ में दिल्ली आ गया।

१९३३–३४ ई० में मैं साप्ताहिक 'श्री वैंकटेश्वर समाचार' में काम करने बम्बई पहुंचा। वहां भी कांग्रेस में लग गया। १९४२ में पंडितजी के बम्बई आने पर मैं उनसे मिला तो उन्होंने मुझे पहचान लिया और कहा, "तुम तो इलाहाबाद के हो न?" उन्हीं दिनों एक बार स्वामी भवानीदयाल संन्यासी के साथ पंडितजी से उनकी बहन श्रीमती कृष्णा हठीसिंग के बंगले पर मिला तो उन्होंने विस्तार से मेरी प्रवृत्तियों की जानकारी ली।

सन् १९४९-५० में मैं फिर दिल्ली आ गया और पंडितजी से मिलता-मिलाता रहा। उसके दो साल बाद ही 'नवभारत टाइम्स' के संस्थापक संपादक के रूप में काम करने पुनः बम्बई गया। १९५२ में समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन में भाग लेने दिल्ली आया तो पंडितजी से उनकी कोठी पर मिला और अपने संपादकीय कार्य की अड़चनों की बातें उन्हें सुनाई। उन्होंने मेरा नैतिक मार्ग-दर्शन किया।

सन् १९५८ में 'गांधी-मार्ग' के संपादन-कार्य के सिलसिले में फिर दिल्ली आ जाने के बाद तो अनेक बार पंडितजी के दर्शन हुए। वह 'गांधी-स्मारक-निधि' की कार्यकारिणी में थे और हर मीटिंग में आते थे। यह मेरा सौभाग्य था कि वह मुझे देखते ही पहचान लेते और मौका होता तो हाल-चाल भी पूछ लेते थे।

आज पंडितजी के उपदेश और पिताजी के थप्पड़ को लगे बयालीस वर्ष हो गये। उन दोनों गुरुओं में से अब कोई भी यह देखने को नहीं रहा कि उनके उपदेशों या थप्पड़ ने किस तरह से मेरे जीवन को नई दिशा प्रदान की। पिताजी की आकांक्षा के वकीली जीवन को न चुनकर मैंने क्या खोया, इसकी कल्पना मैं आजतक नहीं कर पाता, पर पंडितजी के उपदेश और प्रशिक्षण से राष्ट्रीय जीवन में अनेक कष्ट सहन करके भी मैंने जैसे सब-कुछ पा लिया। ●

पी० डी० टंडन

मानव नेहरू

चौदह नवम्बर को बहुत-सी आंखें जवाहरलाल नेहरू की खोज में इधर-उधर दौड़ेंगी, परंतु लोगों को उनके प्यारे पंडितजी नजर नहीं आयंगे। दिल में धक्का लगेगा, आंखों में आंसू आयंगे, चारों तरफ उदासी छाई मालूम होगी, परंतु फिर अचानक लोग समझेंगे कि गम करने से काम न बनेगा। ज्यादा गम करना नेहरू को पसंद न था और उनकी सबसे बड़ी याद यह होगी कि हम उनके शुरू किये हुए कामों को पूरा करें। 'जवाहरलाल नेहरू की जय' के नारे लगेंगे, लेकिन वह उसके बाद स्वयं 'जय हिन्द' का नारा लगाने के लिए मौजूद न होंगे।

मैंने नेहरूजी को करीब पचीस साल तक नजदीक से देखा था और उन्हें समझने की कोशिश की थी। मेरे दिमाग में बहुत-सी स्मृतियों का मजमा है। बहुत-सी बातें याद आती हैं और उनकी शराफत और इन्सानियत की कहानियां भूले नहीं भूलतीं। राजनीति में उन्होंने बड़े-बड़े काम किये। स्वतंत्रता-संग्राम में उन्होंने बड़ी बहादुरी, हिम्मत और समझ से कौम की रहनुमाई की। आनेवाली पीढ़ियां उनकी वीरता और योग्यता के गीत गायंगी। वह एक बड़े राजनीतिज्ञ और अनोखे देश-भक्त तो थे ही, परंतु इन सब बातों के अलावा वह एक बड़े शानदार और दयावान पुरुष भी थे। उनकी मानवता उनका सबसे बड़ा गुण था। राजनैतिक नेहरू को भले ही कुछ सालों बाद कुछ लोग भूल जायं, परंतु मानव नेहरू को भूलाना आसान न होगा। इस लेख में मैं उनकी शराफत, इन्सानियत और बड़प्पन की कुछ घटनाएं सुनाऊंगा, जो नेहरू की मानवता पर रोशनी डालती हैं।

अन्याय के विरुद्ध आवाज बुलन्द करना नेहरू का मजहब था। जुल्म के खिलाफ बगावत करना उनका स्वभाव था। जहां भी दुख हो, वह दुखियों के साथ होने की कोशिश करते थे। गम की कहानी उन्हें गमजदा करती थी। अगर कोई आदमी दुखद घटना की चर्चा उदासीनता से करता तो नेहरू को बुरा लगता था। वह 'नेशनल हेराल्ड' और 'नव जीवन' के दफ्तर में अक्सर आते रहते थे। जमाना लड़ाई का था। एक दिन उन्होंने 'नेशनल हेराल्ड' के दफ्तर में चेलापति राव के कमरे में पहुंचते ही पूछा, "कहो, ताजी खबर क्या है?" उन्होंने कहा, "लंदन के हवाई हमले में कुल पच्चीस आदमी मरे।" चेलापति राव की उदासीनता देखकर उन्हें कुछ ताज्जुब हुआ और उन्होंने कहा, "सिर्फ पच्चीस! क्या तुम यह नहीं सोचते हो कि पच्चीस आदमियों का मरना काफ़ी भयानक बात है!"

चेलापति राव के दिल पर नेहरू की इस बात का बड़ा भारी असर हुआ और उन्होंने एक दिन लिखा,

"नेहरू का यह सवाल मेरे जीवन की सबसे बड़ी फटकार थी। मैंने उस दिन से सदैव इस बात का प्रयत्न किया है कि मैं किसी दुखद घटना की तरफ उदासीन न रहूं और जब कभी दुनिया में कहीं भी दुखद घटना होती है तो मुझे नेहरू की कही हुई बात याद आ जाती है। मैं सोचता हूं कि उस घटना के बाद मैं दुखद घटनाओं की तरफ कभी उदासीन नहीं रहा हूं।" यह बात सही है। 'हेराल्ड' के पढ़नेवाले इस बात के साक्षी हैं।

बड़ लोगों के पास बहुधा समय नहीं रहता कि वे छोटी-मोटी चीजों का ध्यान रख सकें, क्योंकि उनके सामने सदैव बड़ी-बड़ी समस्याएं रहती हैं। जवाहरलाल के साथ यह बात नहीं थी। डाक्टर पी० ई० दस्तूर के, जो पहले प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर थे, पास मैंने नेहरू का एक पत्र देखा, जिसमें जवाहरलाल नेहरू की सज्जनता की झलक है। डा० दस्तूर ने सन् १९४७-४८ में देश-विदेश का भ्रमण किया और अमरीका में बड़े महत्वपूर्ण भाषण दिये। पर्ल बक ने उनसे कहा कि आप अमरीका फिर आइये। डा० दस्तूर ने उन्हें उत्तर दिया कि वह आना तो चाहेंगे, किन्तु भारत सरकार उन्हें डॉलर देगी या नहीं, इसमें उन्हें संदेह है। पर्ल बक ने नेहरू को पत्र लिखा और नेहरू ने एकदम डा० दस्तूर को पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने कहा, "पर्ल बक ने तुम्हारे अमरीका-भ्रमण के बारे में बड़ी प्रशंसा की है और उन्होंने इस बात का सुझाव दिया है कि तुम वहां फिर जाओ। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि तुमने अमरीका में अच्छा काम किया और मुझे प्रसन्नता होगी यदि तुम वहां फिर जा सको। मुझे ठीक मालूम नहीं कि मैं इस बारे में तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूं, लेकिन तुम मुझे बताओ कि इस बारे में क्या करना चाहिए?" इस बात की चर्चा करते हुए डा० दस्तूर ने मुझसे कहा, "तुम सोचते होगे कि मुझे इस पत्र को पाकर कितनी प्रसन्नता हुई होगी! यह पत्र बहुत दिनों के बाद मुझे विलायत में मिला और मैं नेहरूजी की उदारता से बड़ा प्रभावित हुआ। उन्होंने बड़े-बड़े लोगों का सत्संग किया है, किन्तु वह साधारण मनुष्यों का भी सदैव ध्यान रखते हैं।

... ...

एक दिन आनंद-भवन में मैं और श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित एक कोने में खड़े बातचीत कर रहे थे। बार-बार कोई-न-कोई आकर कहता था कि बीबीजी, गरम पानी तैयार है। श्रीमती पंडित झल्लाकर जवाब दे देती थीं कि आ रही हूं, कितनी बार कहोगे! लेकिन वह बात करती रहीं और बार-बार यही कहती थीं कि क्या करें, बड़ी परेशानी है। तबीयत ठीक नहीं है, लेकिन कई जगह जाने का वादा कर चुकी हूं। अगर न गई तो कार्यकर्ता निराश होंगे। न जाने की खबर अभी छपने दूं या नहीं, समझ में नहीं आता।

यह बात चल ही रही थी कि जवाहरलालजी कहींसे आ पहुंचे और हँसकर बोले, "टंडन, तुम क्या घुस-पुसकर रहे हो? तुम दोनों अंदर बैठकर बात नहीं कर सकते?" मैंने कहा, "कोई खास बात तो है नहीं।" पर पंडितजी कब माननेवाले थे। सारे देश का बोझ सिर पर होते हुए भी वह घर की छोटी-मोटी बातों में भी दखल देते थे और घर की छोटी-मोटी समस्याओं को भी सुलझाते थे। आखिरकार वह पूछकर ही माने कि हम क्या बात कर रहे थे। मैंने उन्हें बताया कि श्रीमती पंडित के बारे में खबर

छपना है। उसपर चर्चा कर रहे हैं कि कैसे लिखा जाय और समाचार में क्या कहा जाय।

"लाइये कागज, मुझे दीजिये। इधर आइये, आप लोगों को कुछ आता-जाता नहीं है।" जवाहरलालजी बोले। एक मिनट तक हम सब खामोश रहे और उसके बाद पंडितजी ने कहा, "जरा सुनाइये, आपने क्या लिखा है।" मैंने लिखा हुआ कागज उनके सामने रखा। उन्होंने पढ़ा। मेरी तरफ देखा और श्रीमती पंडित की तरफ घूमकर पूछा, "ठीक ही है न?" श्रीमती पंडित ने दबी हुई जबान से कहा, "जो चाहो सो प्रेस में दे दो, जब आप लोग मुझे इतना बीमार समझते हैं और घर से बाहर नहीं निकलने देना चाहते।" सन्नाटा होगया दो मिनट तक। सब लोग खामोश बैठे रहे। थोड़ी देर बाद पंडितजी ने मेरी लिखी हुई खबर फाड़ दी और अपने-आप यह लिखा और यही छपा—श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित कुछ दिनों से अस्वस्थ हैं और डाक्टर ने कई बार आराम करने को कहा है और सफर करने और अपनेको थकाने से मना किया है। इसलिए जहांतक मुमकिन हो सकता है, वह अपने काम को कम कर रही हैं। वह २१ दिसम्बर को कानपुर जिला सत्याग्रह कांफ्रेंस में शिरकत करेंगी और २४ तारीख को कोनोनाडा जाकर अखिल भारतीय महिला कांफ्रेंस की सदारत करेंगी। इन दो कामों के अलावा वह कहीं नहीं जायंगी और उन्होंने आराम करने का तय किया है। वह आशा करती हैं कि उनके मित्र दो माह तक उनसे किसी उत्सव में शिरकत करनेका आग्रह न करेंगे।

मैं चकित रह गया और समझ न पाया कि पंडितजी ने क्या खास बात लिख दी, जो मैंने नहीं लिखी। शायद वह यह नहीं चाहते थे कि धोखे में भी कोई ऐसी बात छप जाय, जिससे कार्यकर्ताओं में गलतफहमी हो और उनकी प्यारी बहन को दुख हो। बहुत कम लोग दुनिया में ऐसे हैं, जो दूसरों का इतना ख्याल रखते हों।

... ...

मुझे अपने मित्र श्रीमती डब्ल्यू० एच० फिशर की बात याद आती है, जो उन्होंने मुझसे जवाहरलाल के बारे में कही थी। उनका कहना है—"यह जवाहरलाल नेहरू की प्रतिभा और और चरित्र का गुण है कि वह खुश होते हैं, जब कोई भी उनके पास जाय। मगर जब बच्चे उनके पास जाते हैं तब तो वह बेहद खुश होते हैं। बच्चों को देखकर जवाहरलाल एकदम बच्चे बन जाते हैं। सन् १९५३ की बात है कि ग्वालियर में एक जलसे में जवाहरलाल गये। वहां कुछ लड़के नाटक कर रहे थे। नाटक के बाद उन्होंने कहा कि कुछ उपदेश दीजिए। यह सुनते ही लड़कों की तरह उछलकर माइक्रोफोन पर पहुंच गये और बोले, "हरेक आदमी, जो नाटक में हिस्सा ले रहा है, खूब अच्छे कपड़े पहने हुए है; लेकिन मैं बिना अच्छे कपड़े पहने इस नाटक में कैसे हिस्सा लूं?" सुननेवाले सब कहकहा लगाकर हँस पड़े और जवाहरलाल उसी लहजे में तकरीर करते रहे। लेकिन जब वह वहां से चले गये, तब भी लड़के खुशी में उनकी याद करते रहे। जब वह जा रहे थे तो उन्होंने भीड़ से एक लड़के और एक लड़की को गोद में उठा लिया और दोनों को अपनी बगल में दबाकर और हँसते, बच्चों से मजाक करते, अपनी मोटर में जा बैठे।"

इसमें शक नहीं, जवाहरलाल नेहरू बच्चों में एकदम बच्चा बन जाते थे। दूसरों को खुश करते थे

"नेहरू का यह सवाल मेरे जीवन की सबसे बड़ी फटकार थी। मैंने उस दिन से सदैव इस वात का प्रयत्न किया है कि मैं किसी दुखद घटना की तरफ उदासीन न रहूं और जव कभी दुनिया में कहीं भी दुखद घटना होती है तो मुझे नेहरू की कही हुई वात याद आ जाती है। मैं सोचता हूं कि उस घटना के वाद मैं दुखद घटनाओं की तरफ कभी उदासीन नहीं रहा हूं।" यह बात सही है। 'हेराल्ड' के पढ़नेवाले इस बात के साक्षी हैं।

बड़ लोगों के पास बहुधा समय नहीं रहता कि वे छोटी-मोटी चीजों का ध्यान रख सकें, क्योंकि उनके सामने सदैव बड़ी-बड़ी समस्याएं रहती हैं। जवाहरलाल के साथ यह वात नहीं थी। डाक्टर पी० ई० दस्तूर के, जो पहले प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे, पास मैंने नेहरू का एक पत्र देखा, जिसमें जवाहर-लाल नेहरू की सज्जनता की झलक है। डा० दस्तूर ने सन् १९४७-४८ में देश-विदेश का भ्रमण किया और अमरीका में बड़े महत्वपूर्ण भाषण दिये। पर्ल बक ने उनसे कहा कि आप अमरीका फिर आइये। डा० दस्तूर ने उन्हें उत्तर दिया कि वह आना तो चाहेंगे, किन्तु भारत सरकार उन्हें डॉलर देगी या नहीं, इसमें उन्हें संदेह है। पर्ल बक ने नेहरू को पत्र लिखा और नेहरू ने एकदम डा० दस्तूर को पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने कहा, "पर्ल बक ने तुम्हारे अमरीका-भ्रमण के वारे में बड़ी प्रशंसा की है और उन्होंने इस वात का सुझाव दिया है कि तुम वहां फिर जाओ। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि तुमने अमरीका में अच्छा काम किया और मुझे प्रसन्नता होगी यदि तुम वहां फिर जा सको। मुझे ठीक मालूम नहीं कि मैं इस वारे में तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूं, लेकिन तुम मुझे वताओ कि इस वारे में क्या करना चाहिए?" इस वात की चर्चा करते हुए डा० दस्तूर ने मुझसे कहा, "तुम सोचते होगे कि मुझे इस पत्र को पाकर कितनी प्रसन्नता हुई होगी! यह पत्र बहुत दिनों के वाद मुझे विलायत में मिला और मैं नेहरूजी की उदारता से बड़ा प्रभावित हुआ। उन्होंने वड़े-बड़े लोगों का सत्संग किया है, किन्तु वह साधा-रण मनुष्यों का भी सदैव ध्यान रखते हैं।

... ...

एक दिन आनंद-भवन में मैं और श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित एक कोने में खड़े वातचीत कर रहे थे। बार-वार कोई-न-कोई आकर कहता था कि बीवीजी, गरम पानी तैयार है। श्रीमती पंडित झल्लाकर जवाब दे देती थीं कि आ रही हूं, कितनी बार कहोगे! लेकिन वह वात करती रहीं और वार-वार यही कहती थीं कि क्या करें, बड़ी परेशानी है। तबीयत ठीक नहीं है, लेकिन कई जगह जाने का वादा कर चुकी हूं। अगर न गई तो कार्यकर्ता निराश होंगे। न जाने की खवर अभी छपने दूं या नहीं, समझ में नहीं आता।

यह वात चल ही रही थी कि जवाहरलालजी कहींसे आ पहुंचे और हॅसकर बोले, "टंडन, तुम क्या घुस-पुसकर रहे हो? तुम दोनों अंदर बैठकर बात नहीं कर सकते?" मैंने कहा, "कोई खास वात तो है नहीं।" पर पंडितजी कव माननेवाले थे। सारे देश का वोझ सिर पर होते हुए भी वह घर की छोटी-मोटी वातों में भी दखल देते थे और घर की छोटी-मोटी समस्याओं को भी सुलझाते थे। आखिरकार वह पूछकर ही माने कि हम क्या वात कर रहे थे। मैंने उन्हें बताया कि श्रीमती पंडित के वारे में खवर

छपना है। उसपर चर्चा कर रहे हैं कि कैसे लिखा जाय और समाचार में क्या कहा जाय।

"लाइये कागज, मुझे दीजिये। इधर आइये, आप लोगों को कुछ आता-जाता नहीं है।" जवाहरलालजी बोले। एक मिनट तक हम सब खामोश रहे और उसके बाद पंडितजी ने कहा, "ज़रा सुनाइये, आपने क्या लिखा है।" मैंने लिखा हुआ कागज उनके सामने रखा। उन्होंने पढ़ा। मेरी तरफ देखा और श्रीमती पंडित की तरफ घूमकर पूछा, "ठीक ही है न?" श्रीमती पंडित ने दबी हुई जबान से कहा, "जो चाहो सो प्रेस में दे दो, जब आप लोग मुझे इतना बीमार समझते हैं और घर से बाहर नहीं निकलने देना चाहते।" सन्नाटा होगया दो मिनट तक। सब लोग खामोश बैठे रहे। थोड़ी देर बाद पंडितजी ने मेरी लिखी हुई खबर फाड़ दी और अपने-आप यह लिखा और यही छपा--श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित कुछ दिनों से अस्वस्थ हैं और डाक्टर ने कई बार आराम करने को कहा है और सफर करने और अपनेको थकाने से मना किया है। इसलिए जहांतक मुमकिन हो सकता है, वह अपने काम को कम कर रही हैं। वह २१ दिसम्बर को कानपुर जिला सत्याग्रह कांफ्रेंस में शिरकत करेंगी और २४ तारीख को कोनोनाडा जाकर अखिल भारतीय महिला कांफ्रेंस की सदारत करेंगी। इन दो कामों के अलावा वह कहीं नहीं जायंगी और उन्होंने आराम करने का तय किया है। वह आशा करती हैं कि उनके मित्र दो माह तक उनसे किसी उत्सव में शिरकत करनेका आग्रह न करेंगे।

मैं चकित रह गया और समझ न पाया कि पंडितजी ने क्या खास बात लिख दी, जो मैंने नहीं लिखी। शायद वह यह नहीं चाहते थे कि धोखे में भी कोई ऐसी बात छप जाय, जिससे कार्यकर्ताओं में गलतफहमी हो और उनकी प्यारी बहन को दुख हो। बहुत कम लोग दुनिया में ऐसे हैं, जो दूसरों का इतना ख्याल रखते हों।

... ...

मुझे अपने मित्र श्रीमती डब्ल्यू० एच० फिशर की बात याद आती है, जो उन्होंने मुझसे जवाहरलाल के बारे में कही थी। उनका कहना है--"यह जवाहरलाल नेहरू की प्रतिभा और और चरित्र का गुण है कि वह खुश होते हैं, जब कोई भी उनके पास जाय। मगर जब बच्चे उनके पास जाते हैं तब तो वह बेहद खुश होते हैं। बच्चों को देखकर जवाहरलाल एकदम बच्चे बन जाते हैं। सन् १९५३ की बात है कि ग्वालियर में एक जलसे में जवाहरलाल गये। वहां कुछ लड़के नाटक कर रहे थे। नाटक के बाद उन्होंने कहा कि कुछ उपदेश दीजिए। यह सुनते ही लड़कों की तरह उछलकर माइक्रोफोन पर पहुंच गये और बोले, "हरेक आदमी, जो नाटक में हिस्सा ले रहा है, खूब अच्छे कपड़े पहने हुए है; लेकिन मैं बिना अच्छे कपड़े पहने इस नाटक में कैसे हिस्सा लूं?" सुननेवाले सब कहकहा लगाकर हँस पड़े और जवाहरलाल उसी लहजे में तकरीर करते रहे। लेकिन जब वह वहां से चले गये, तब भी लड़के खुशी में उनकी याद करते रहे। जब वह जा रहे थे तो उन्होंने भीड़ से एक लड़के और एक लड़की को गोद में उठा लिया और दोनों को अपनी बगल में दबाकर और हँसते, बच्चों से मजाक करते, अपनी मोटर में जा बैठे।"

इसमें शक नहीं, जवाहरलाल नेहरू बच्चों में एकदम बच्चा बन जाते थे। दूसरों को खुश करते थे

और खुद भी खुश होते थे। बच्चों के प्रति उनका प्रेम कोई मामूली नहीं था। उसमें गहराई और एक अजीब लहजा था।

जवाहरलाल युग-पुरुष थे । उन्होंने दुनिया के मामलों पर अपनी योग्यता और मानवता की छाप लगाई थी। डर तो उन्हें छू तक नही गया था। डरना वह पाप समझते थे। सच्चे मानी में वह एक महान् कमयोगी थे, मानवता के अवतार थे। जो लोग उनके और गांधी के युग में पैदा हुए, रहे, काम किया, बड़ भाग्यशाली है, परंतु जिन्हें उन्हें नजदीक से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनके सौभाग्य की तो कौन कल्पना कर सकता है! ●

नेहरूजी जैसे इन्सान दुनिया में कम हैं। उन्होंने देश के निर्माण के लिए जितनी मेहनत की उसकी आधी भी यदि अन्य लोग करें तो हमारे देश को उठने में देर नहीं लगेगी। वह चाहते थे कि कोई भूखा न हो, किसीके साथ अन्याय न हो । वह सबको निर्भय बनाना चाहते थे। उन्होंने कौमी एकता के लिए बड़ा भारी काम किया ।

—मोरारजी देसाई

विश्वम्भरसहाय 'प्रेमी'

नेहरूजी जब अल्मोड़ा-जेल से छूटे

पंद्रह जून, १९४५। पं० जवाहरलाल नेहरू के दर्शनों के लिए सूर्य की किरणों के उदय होने के साथ सैकड़ों नर-नारी अल्मोड़ा-जेल पर पहुंच गये और जैसे-जैसे सूर्य का प्रकाश बढ़ता गया, वैसे-वैसे जनता की संख्या भी बढ़ती गई। सभीके चेहरे अपने प्रिय नेता के दर्शन करने के लिए खिल रहे थे। सभी बार-बार जेल के मुख्य द्वार की ओर झांकते थे और यह जानने का यत्न करते थे कि नेहरूजी जेल से बाहर कितनी देर में आयंगे।

संयोगवश उस दिन मैं भी अल्मोड़ा गया हुआ था। अल्मोड़ा-जेल के मार्ग का मुझे पता नहीं था, परंतु जैसे ही मैं अपने ठहरने के स्थान से बाहर निकला, वैसे ही अनेक व्यक्ति जेल की ओर जाते हुए दिखाई दिये। मैं भी सपरिवार उनके पीछे हो लिया।

जेल के द्वार पर पहुंचकर मैंने वहां के पत्रकारों के साथ खड़ा होना पसंद किया। संयोग से एक ऐसे व्यक्ति मुझे मिल गये, जिन्होंने मेरे परिवार के व्यक्तियों को द्वार के पास ही खड़ा करा दिया। उन्होंने मेरी एक लड़की को कुछ फूल भी किसीसे मांगकर दे दिये।

जनता बार-बार जेल के द्वार की ओर देख रही थी। जेल के एक कर्मचारी ने जेल के द्वार पर आकर बताया, "आप लोग कुछ देर और प्रतीक्षा कीजिये। नेहरूजी चाय पीने के बाद बाहर आयंगे।"

जनता उनके दर्शनों के लिए उतावली हो रही थी। कुछ पत्रकार कह रहे थे—"यदि नेहरूजी हँसते हुए प्रसन्न मुद्रा में आये तो पांच-सात लाइनों का बयान हम ले ही लेंगे।" दूसरे सज्जन कह रहे थे कि "यदि नेहरूजी गंभीर मुद्रा में बाहर निकले तो भी मैं दो-चार पंक्तियों का समाचार ले ही लूंगा।" एक तीसरे व्यक्ति कहने लगे—"नेहरूजी आखिर क्या कहेंगे—केवल यही कि मैं तीन साल बाद बाहर आया हूं, राजनीति के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करके ही कुछ कहूंगा।"

पत्रकार के साथ कैमरामैन भी अपने कैमरों को बार-बार संभाल लेते थे। एक फोटोग्राफर काफी छोटे कद के थे, वह पास के क्वार्टर से एक टूटी-सी कुर्सी उठा लाये थे।

जेल-सुपरिन्टेन्डेंट कई बार दिखाई पड़े। जेलर भी कई बार जेल के दरवाजे तक आया। उन दोनों के चेहरों पर प्रसन्नता झलक रही थी। शायद सुपरिन्टेंडेंट सोच रहा था कि वह बेताज के बादशाह नेहरू को जेल के बाहर तक लायगा। एक बूढ़ा जेल वार्डर द्वार के बाहर जनता को देख-देखकर प्रसन्न हो रहा था। एक अन्य वार्डर ने कह डाला—"इस जेल के भाग्य खुल गये, जो यहां से नेहरूजी छोड़े जा रहे हैं।"

शायद वह समझ रहा था कि कहां यह छोटी-सी जेल अल्मोड़ा की और कहां इतने बड़े नेता जवाहरलाल! इस संबंध में यह बात उल्लेखनीय है कि नेहरूजी १९४२ के आंदोलन के समय गिरफ्तार किये जानेपर अहमदनगर के किले में रखे गये थे और छूटने से कुछ समय पूर्व उन्हें अल्मोड़ा-जेल लाया गया था।

जेलर अपना शासन बनाये रखने का यत्न कर रहा था। वह भीड़ को जेल के फाटक से दूर रखना चाहता था, जिससे नेहरूजी के बाहर आने पर भीड़ नियंत्रण में रहे। जेलर कई बार बाहर आया। वह बार-बार मीठी मुस्कान के साथ कांग्रेस के वयोवृद्ध नेता पं० बद्रीदत्त पाण्डे से बातें कर जाता था।

एक मजेदार बात और भी देखने में आई। जेलर की पत्नी अपनी बच्चों को लिये फाटक के पास खड़ी थी। बच्चों के हाथ में फूल-मालाएं थीं। उनके पास कुछ और महिलाएं भी खड़ी थीं और वे बार-बार जेल के फाटक की तरफ झांक लेती थीं। जेल के एक संतरी ने उनसे कहा, "कबतक खड़ी रहोगी, अभी नेहरूजी के आने में देर है।" मुझे स्मरण हैं, उसके ऐसा कहने पर कुछ महिलाएं अपने स्थान पर बैठ गई थीं, परन्तु कुछने कहा, "जब हम यहां आई है तो खड़ी रहेंगी। हमें तो नेहरूजी के दर्शन करने हैं।"

जेल के पास के क्वार्टरों के चबूतरों पर भी बहुत-सी महिलाएं एकत्र थीं। जेल के दरवाजे के बाहर दोनों ओर जनता बड़े नियंत्रण के साथ खड़ी थी।

नेहरूजी लगभग ९-३० पर अपनी बैरक से बाहर आये। उनके लिए जेल का पूरा फाटक खोल दिया गया था। नेहरूजी फाटक से बाहर आये और उनके साथ ही उनका सामान भी आया। नेहरूजी ने मंद मुस्कान के साथ जनता का अभिवादन स्वीकार किया। दो छोटी बालिकाओं ने नेहरूजी के गले में पुष्प-हार पहनाये। उसके बाद अन्य अनेक व्यक्तियों ने भी पंडितजी का पुष्प-मालाओं से स्वागत किया।

ऐसे अवसर पर सरकारी कर्मचारी भी जनता का ही एक अंग बन गये। वहां यह पता नहीं चल रहा था कि कौन व्यक्ति सरकारी नौकरी में है। सभी समान रूप से नेहरूजी के प्रति अपना प्रेम और अपनी श्रद्धा प्रकट कर रहे थे। कुछ व्यक्ति नेहरूजी के स्वास्थ्य की भी चर्चा कर रहे थे, "पंडितजी पहले से कुछ दुबले होगये हैं।" किसीने कहा, "उनके चेहरे पर पीलापन है।"

'भारत माता की जय' और 'जवाहरलाल की जय' की ध्वनि से वातावरण गूंज उठा। थोड़ी दूर चलने के बाद वह एक कार में बैठ गये। आगे वह कार से उतर गये और अल्मोड़े के बाजार में से पैदल चले। जनता ने उनका अभिनन्दन किया। बाजार में सर्वत्र तिरंगे झंडे फहरा रहे थे। स्थान-स्थान पर स्वागत-द्वार भी बनाये गए थे। हिमालय की उपत्यका में बसे अल्मोड़ा-निवासियों ने पंडितजी के स्वागत में कोई कसर न उठा रखी थी।

दोपहर बाद लगभग ३ बजे नेहरूजी के स्वागत में एक सभा का आयोजन किया गया, जिससे वहां की जनता अपने प्रिय नेता के अच्छी तरह दर्शन कर सके और उनकी वाणी सुन सके।

१९४२ के आंदोलन में पिसी जनता में उस समय अपने प्रिय नेता के दर्शनों से एक नवीन शक्ति का संचार हुआ। उस समय ऐसा लग रहा था मानों पीड़ित जनता में एक नई उमंग उत्पन्न हो रही है।

जब पंडितजी से पूछा गया कि आपका आगे का कार्यक्रम क्या है तो उन्होंने मुस्कराकर कहा, "पहले मैं महात्माजी से मिलूंगा। फिलहाल यही मेरा कार्यक्रम है।" ●

अकिंचन का प्रणाम

सत्ताईस मई का दिन। दिन के पौने दो बजे का समय। रेडियो से खबर सुनाई जा रही थी। एकाएक सुनाई पड़ा कि "गृहमंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा तथा वित्त-मंत्री श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने क्रमशः लोकसभा तथा राज्यसभा में बताया कि पंडित जवाहरलाल नेहरू की तबीयत बहुत खराब है। वह सुबह ६॥ बजे से बेहोश हैं।"

सुनते ही एक झटका-सा लगा। कुछ समझ में नहीं आया कि यह सुन क्या रहे हैं! यह सच हो नहीं सकता। कहीं कोई ग़लतफहमी या भ्रम होगा। अभी दूसरी खबर आ जायगी। भला यह कैसे हो सकता है कि अपनी मोहक मुस्कान से करोड़ों लोगों के दिलों में ताजगी भरनेवाला सजीव इन्सान, बेहोश हो! अभी सुबह ही तो पत्रों में पढ़ा था कि "नेहरूजी प्रसन्न मुद्रा में देहरादून से स्वस्थ होकर लौटे हैं।" नहीं, यह एकदम ग़लत बात है। इस तरह मन समझाया तो, लेकिन मन के एक कोने में डर घर कर गया। कहीं विधाता उल्टा न होगया हो!

और जो होना था, हो गया। २-२० पर सरकारी घोषणा कर दी गई—"हम बड़े दुःख के साथ सूचित करते हैं कि प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू का निधन होगया।"

दिमाग सुन्न है। बदहवास हो पैर भागे जा रहे हैं, प्रधान मंत्री-भवन की ओर। भयंकर गरमी और उमस है। अपार भीड़ है। लोग चिल्ला रहे हैं, 'नेहरू अमर हैं', लेकिन प्रधान मंत्री-भवन के दरवाजे बंद हैं, पुलिस तैनात हैं। अंदर कोई नहीं जा सकता है। पर भीड़ है कि बढ़ती ही जा रही है। बड़े, बच्चे कुचले जा रहे हैं। कोई किसीकी परवा नहीं करता है। एक ही आवाज़ लोगों की है, 'नेहरूजी के दर्शन कराओ।' 'नेहरूजी को देखना है।' गरमी तेज है, गले सूख रहे हैं, आंखें उदास और फ़टी हुई हैं, पर लोग हटते नहीं, दर्शन करके ही जायंगे।

सूचना दी जाती है कि पंडित नेहरू के शव के दर्शन रात ७॥ बजे से हो सकेंगे। लोग सड़क पर लाइन बनाकर बैठ जाते हैं। तीन-तीन, चार-चार आदमियों की दो मील लम्बी कतार बन जाती है। पांच बज रहे हैं। २॥ घंटे उमस-भरी घुटन और गरमी में बैठना है। किसलिए? उत्साह, जीवन, प्रेरणा और प्यार देनेवाले देवता के शव का दर्शन करने। कैसे देखा जायगा उसका शव? जिसे हँसते, बोलते, जीवन बिखेरते देखा, उसे मृत कैसे देख सकेंगे? शून्य मन से घर लौट आते हैं। खाया-पिया कुछ नहीं जाता। सबकुछ सूना-सूना-सा लगता है।

मित्र कहते हैं, "पंडितजी के दर्शन करने रात को ३।। बजे चलेंगे। अभी तो बड़ी भीड़ होगी। लम्बी कतार होगी। नम्बर बड़ी देर में आयगा।" मित्र की बात ठीक लगती है। सुनकर लेट जाता हूं। पर नींद कहां? प्रसन्नता और ताजगी के प्रतीक जवाहरलालजी ही नज़रों के सामने घूमते-फिरते नज़र आ रहे हैं...

अभी उसी दिन तो हम अपनी किताबें उन्हें दिखाने गये थे। 'मण्डल' ने उनकी बहुत-सी किताबें छापी थीं। इस नाते उससे उनका लगाव स्वाभाविक था। पर चरित्र-निर्माणकारी सत्साहित्य प्रकाशित करनेवाली एक संस्था के रूप में 'मण्डल' उनका स्नेहपात्र भी था। पांच मिनट का वक्त देकर कोई पौन घंटे तक 'मण्डल' की चुनी हुई विभिन्न विषयों की २५० के लगभग किताबें एक-एक करते देखते रहे। इतने में जापानी राजदूत आ जाते हैं। किताबों का देखना छोड़कर उनके पास जाते हैं। उनका अभिवादन करते हैं और उनसे कहते हैं, "योर एक्सलेन्सी को कुछ देर इन्तजार करने का कष्ट उठाना पड़ेगा। ये हिन्दी की किताबों के प्रकाशक हैं। कुछ अच्छी-अच्छी किताबें दिखाने लाये हैं। इनसे निबटकर आपकी सेवा में तुरंत हाजिर होता हूं।"

और वापस आकर किताबें देखने लगते हैं। फिर एकाएक बोलते हैं, "देखो, जापानी राजदूत खड़े हैं। अब जल्दी खत्म करना चाहिए। इन किताबों को तो मैं अपने इस कमरे में ठीक से लगवाऊंगा और सबोंको दिखलाऊंगा कि हिन्दी की कैसी अच्छी पुस्तकें हैं।" और अपने सेक्रेटरी को किताबें जमाने का आदेश देकर फिर बोलते हैं—

"लेकिन काम की बात बताओ। क्या मामला है?"

एक बड़ा-सा लिफाफा उनके हाथ में दिया जाता है। हँसकर कहते हैं:

"अच्छा, तो काम के साथ-साथ तुम्हारा लिफाफा भी बड़ा हो गया है!"

और पंडितजी पत्र पर अपनी निगाह दौड़ा रहे हैं। एकाएक रुककर बोले—

"क्या लिखते हो? किताबों की खरीदी टेंडर से होती है?"

"जी, पंडितजी!"

"क्या जी पंडितजी? क्या कोई जूते की दुकान है, जो टेंडर से माल खरीदा जाता है?"

मैंने बताया कि किस प्रकार प्रदेश सरकारों के शिक्षा-विभागों में तथा अन्य सरकारी क्षेत्रों में पुस्तकों पर टेंडर मांगा जाता है और अधिक कमीशन देनेवाले से पुस्तकें खरीदी जाती हैं। इसपर वह कहते हैं:

"यह कैसे मुमकिन है, भाई! किताबों की बराबरी और जिन्सों से कैसे की जाती है?"

"यह तो हमारी भी समझ में नहीं आ रहा है, पंडितजी। पर जो हो रहा है, वही आपकी सेवा में निवेदन किया है।" उनके चेहरे पर हलकी-सी विषाद की छाया आती है, और कहते हैं:

"अच्छा, यह लिखा हुआ छोड़ जाओ। क्या हो सकता है, यह देखेंगे।"

और उनकी वह मूर्त्ति अदृश्य हो जाती है और दूसरा चित्र सामने उभरता है।

"तुमने समझ क्या रखा है? जानते हो, मैं सारे अखबारों में छपा दूंगा कि तुम झूठे हो, धोखेबाज

हो, चोर हो। तुम समझते हो कि मैं तुम्हें पुलिस में दूंगा। मैं पुलिस में हर्गिज नहीं दूंगा। पर तुम्हारी ऐसी वदनामी कराऊंगा कि देखते रह जाओगे। कोई तुम्हारा भरोसा नहीं करेगा। तुमने दोस्तों को धोखा दिया है। विनोवाजी को वदनाम किया है।"

"पंडितजी, कुछ दिन की मुहलत और दें। मैं सारी रकम चुका दूंगा।"

"तुम्हारा मुंह क्या है मुहलत मांगने का! झूठे कहीं के! शरम नहीं आती, मुहलत मांगते!"

और अजीव-सा वातावरण हो गया कमरे में। मैं तो मारे डर के घबरा-सा गया। कुछ मिनट शांति से गुजरे। डर लग रहा था कि और कोई विस्फोट न हो। धीरे-धीरे गंभीर पर हल्की-सी मुस्कान-भरे सामने आकर वोलते हैं:

"इन साहव से कहें कि जितना हो सके, चुका दें, नहीं तो सारा पैसा मेरी रायल्टी के हिसाब में डालकर मुझसे वसूल कर लें। आपकी तो संस्था है। आप कहां से इतना नुकसान उठावेंगे!"

बात यह थी कि वनारस के एक कार्यकर्ता श्री अणे साहव (जो उन दिनों विहार के गवर्नर थे) की तथा उत्तर प्रदेश के प्रमुख कार्यकर्ताओं और विनोवाजी के दल के लोगों की अपने से संवंधित चिट्ठियां दिखाकर पंडितजी के पास पहुंचे और उनसे कहा कि मैं पढ़ना चाहता हूं, और विनोवाजी की पुस्तकें वेचकर उनसे मिले कमीशन द्वारा अपना खर्चा चलाना चाहता हूं। पंडितजी वड़े प्रभावित हुए उनकी सादगी, पढ़ने की इच्छा तथा दूसरों पर अपना भार न डालकर अपने पैरों पर खड़े होकर पुस्तकों के कमीशन से अपना खर्चा चलाने की सूझ से।

हमें पंडितजी ने वुलाया और कहा, "यह साहव हैं, जो इस तरह एक नायाव तरीके से पढ़ना चाहते हैं। विनोवाजी की पुस्तकें आप तो इनको उधार देंगे नहीं। सो किसीकी गारंटी चाहते हैं। आप मेरी गारंटी पर इनको दो हजार रुपये तक का माल दे दें। ये वेचकर पैसा आपको दे देंगे। कमीशन इनको जितना ज्यादा-से-ज्यादा दे सकें, आप दें।"

हमने समझा कि पंडितजी ने सव जानकारी इनके वारे में ले ली होगी और अपनी खातिरी कर ली होगी। हमने उन सज्जन को पुस्तकें दे दीं। एक-दो किस्त तो उनकी आईं, वाद में रुपये आने में देरी होने लगी। तकाजे किये गए। कुछ पत्रों के जवाव आये। वाद में वे भी वंद। पता चला कि महाशय वड़े धोखेवाज हैं। कई जगह धोखा दे चुके हैं और लोगों का पैसा मार चुके हैं। कई दिनों कोई पता नहीं चला। ग़ायव ही रहे। किसी कदर दिल्ली के एक होटल में वड़ी परेशानी से पकड़ में आये तो उनको हमने अपनी पूरी जांच-रिपोर्ट के साथ पंडितजी के सामने पेश किया और पंडितजी का वह रौद्र और उदार रूप देखा।

वरसों पुरानी एक और तस्वीर उभर आई।

"जानते न बूझते, न विषय का ज्ञान, न जुगराफिया का। लिख दिया 'लुजां'। देखा है कभी यूरोप का नक्शा?"

"जी, यह 'लुजां' नहीं, मेरे ख्याल से 'लोसान' होना चाहिए। अनुवादक ने गलत लिख दिया लगता है।"

" 'लोसान होना चाहिए। कह दिया गलत लिख दिया होगा लगता है।' अरे, लगने से गलत थोड़े ही हो जाता है। लाइये कागज। सही हिज्जे ये हैं।"

और अपनी जेब से कलम निकालकर कागज पर बड़े-बड़े और लम्बे-लम्बे हरूफों में लिखते हैं, 'लो—जा—न' और जोर देकर बोलते हैं, "इसे लोज़ान कहते हैं, जनाब 'लोज़ान', न कि 'लुजां या लोसान'। और फिर वही मनोहर मुस्कान। मैं सहमा हुआ खड़ा हूं कि उनकी मुस्कराहट देखकर मेरा मन भी मुस्करा उठता है।

यह दृश्य विलीन होकर दूसरा दृश्य आ जाता हैं।

१९३७ की बात है। जमनालालजी बजाज पंडित नेहरू के मेहमान थे। मैं जमनालालजी से मिलने आनंद-भवन जाता रहता था और वहां पंडितजी से भी नमस्कार हो जाता था।

जमनालालजी जिस दिन वर्धा गये उसी दिन शाम को एक विजिटिंग कार्ड थामे पंडितजी आनंद-भवन की पहली मंजिल की सीढ़ियों से उतर रहे हैं।

"तो जनाब, जमनालालजी के जाते ही विजिटिंग कार्ड लेकर मिलने चले आये। क्या काम है, जो अब बाकी रह गया है? मुझे फुर्सत नहीं है। जल्दी कह डालिये।..."

"अरे, यह हुलिया क्या बना रखी है। दाढ़ी बढ़ी हुई है! कपड़े मैले हैं! चेहरे पर परेशानी है।" और वह मुस्करा दिये।

मैंने झेंपते हुए कहा, "यह बारिश है, जो थमने का नाम ही नहीं लेती है। जमनालालजी के साथ इधर-उधर काफी घूमना भी पड़ा और आज रात को वापस चले जाना है। कपड़े बदलने और हजामत बनाने की फुर्सत ही नहीं मिली।"

"अरे जनाब, यह तो बजा है। पर लोगों से मिलो तो ठीक से तो नज़र आओ।..."

और पंडितजी जेब से सिगरेट निकालकर मुंह में लगाते हुए ड्राइंग रूम में घुसते हैं। पीछे-पीछे मैं चल रहा हूं। कोने में राजेंद्रबाबू सोफे पर बैठे दीखे तो पंडितजी ने चट-से सिगरेट वापस जेब में रख ली और हँसकर बोले, "राजेंद्रबाबू आये हुए है। सुबह से इतना फंसा रहा और कामों में कि उनसे बात तक नही हो सकी। और अब वह आये बैठे हैं, उनसे मिलना बहुत जरूरी है। अपनी बात खत्म करो जल्दी से।"

पंडितजी चाय की टेबल पर बैठ जाते हैं। भुनी हुई मूंगफली रखी हुई हैं। एक-एक उठाकर मुंह में रखते है और मेरी बातें सुनते जाते हैं। 'मेरी कहानी' के अनुवाद पर आई सम्मतियां, उसकी बिक्री का विवरण, 'विश्व-इतिहास की झलक' के अनुवाद की प्रगति, 'हिन्दुस्तान की समस्याएं' के नाम से नये लेख-संग्रह की तैयारी आदि की बातें मैं बता रहा हूं और वह कुछ अतीत में खो गये-से लगते हैं। माता स्वरूपरानीजी चाय का प्याला उनके आगे रखती हैं, एक मेरे आगे सरका देती हैं। पंडितजी चाय का घूंट लेते हुए फिर खिड़की के उस पार एक पेड़ पर बैठे पक्षी को देखते हुए कहते हैं, "ठीक है, किये जाइये काम। अनुवाद अच्छा हो। बिक्री खूब हो। जो संग्रह बने, उसकी फेहरिस्त मुझे देखने को भेज दें। और अब मुझे राजेंद्रबाबू से मिलने भागना चाहिए।"

मैं उठकर चला जाता हूं, यह निश्चय-सा करता हुआ कि आगे से जब पंडितजी से मिलने आया करूंगा तो हजामत बनाकर और ढंग के कपड़े पहनकर।

फिर दृश्य बदलता है। प्रधान मंत्री-भवन का विशाल कक्ष है। पंडितजी नाश्ता करके बाहर निकल रहे हैं। सिगरेट सुलगाई है और मुस्कराकर बोलते हैं :

"सेठ कहो, क्या खबर लाये हो?"

"बालकनजी-बारी का वार्षिकोत्सव दिवाली के आस-पास बम्बई में कर रहे हैं और आपको निमंत्रण देने आये हैं। बच्चों से आपका प्रेम है। बच्चों के बीच आपको बड़ी खुशी होगी।" कमलनयन बजाज ने कहा।

पंडितजी कहते हैं, "जरूर आयंगे। मेनन से मिलकर तारीखें वगैरा तय कर लेना। बच्चों के बीच जाना तो अच्छा लगता ही है।"

"पर पंडितजी, मित्रों का सुझाव है कि बाल्कनजी-बारी का पैट्रन बनने की आपसे प्रार्थना की जाय। राष्ट्रपति तो एक पेट्रन हैं ही। एक आप भी रहें।" कमलनयनजी ने सुझाव-सा देते हुए कहा और पंडितजी एकदम उबल पड़े :

"क्या बात कहते हो? पेट्रन के मानी क्या होते हैं? जानते हो? बुजुर्ग! बुजुर्ग बन सकते हैं पेट्रन। मैं नहीं बन सकता। मैं नफरत करता हूं ऐसी बातों से—घृणा करता हूं। ये सब ढोंग हैं—मेरे उसूल के खिलाफ है। मैं गलत चीज समझता हूं इसे। राष्ट्रपतिजी बन सकते हैं। वह बुजुर्ग हैं। मैं नहीं बन सकता। मैं बच्चों के बीच जाऊंगा, हँसने, बोलने, खेलने, जी बहलाने, बच्चों के बीच, उनसे दो-चार बातें करने, उनकी मीठी-प्यारी बातें सुनने और तुम बनाने चले हो पेट्रन। अजीब बातें हैं! मैं तो हैरान हो जाता हूं ऐसी बातें देख और सुनकर। वाहियात बातें हैं ये सब। बंद करो इन्हें।"

और कमलनयन और मैं चित्रलिखे से खड़े हैं। पंडितजी आवेश में हॉल में घूमने लगते है। दो-तीन चक्कर काटते हैं। फिर बोलते हैं :

"सेठ, अपने दोस्तों से कह देना कि ये पेट्रन-वेट्रन की बात नहीं होनेवाली है। मुझे बुलाना चाहते हो तो यह चर्चा छोड़ देनी होगी। समझे।"

और मैं जो अपनी बात कहने गया था सो सब भूल ही गया। कुछ देर इधर-उधर की बातें होती रहीं। जब पंडितजी के मुंह पर कुछ मुस्कराहट आई तो मैंने भी अपनी बात डरते-डरते कही। वह ध्यानपूर्वक सुनते हैं और कहते हैं :

"ठीक है। 'हिन्दुस्तान की कहानी' और 'मेरी कहानी' का संक्षिप्त संस्करण निकाल सकते हैं आप। जरा ढंग से संक्षेप कराइयेगा। किनसे करावेंगे? समझदार आदमी हों, नहीं तो सारा गड़बड़ कर देंगे।"

मैं कहता हूं कि जिनसे अनुवाद कराया है, उनसे ही संक्षेप करावेंगे और कराने पर आपको दिखला भी देंगे।

पंडितजी मुस्करा देते हैं और हम दोनों नमस्कार करके वापस आ जाते हैं।

एक के बाद एक करके और भी कई चित्र उभरते आते हैं और विलीन हो जाते हैं।

'हिन्दुस्तान की कहानी' (डिस्कवरी ऑव इंडिया) का अनुवाद हो रहा है। यह तय हुआ कि अवकी जव पंडितजी दिल्ली आयंगे तो थोड़ा-सा नमूने का अनुवाद करके पहले उनको दिखा दिया जायगा और उनके सुझाव तथा राय ले ली जायगी।

हार्डिज एवेन्यू पर पंडितजी श्री आर० के० नेहरू के यहां ठहरे हैं। मैं अनुवाद का नमूना लेकर पहुंचता हूं। पंडितजी अनुवाद का पहला वाक्य देखते ही बोले:

"अरे, सीधा-सा तर्जुमा करते—'ईद का चांद या दूज का चांद'। इतना लम्बा अंग्रेजी का हूवहू तर्जुमा कर दिया। लोग तर्जुमा करना जानते ही नही। अंग्रेजी का जुमला पढ़ा और वैसा ही उतार दिया। अरे भाई, पहले उसे पढ़ो, हजम करो और फिर अपनी भाषा में उसे ढालो।

"अंग्रेजी के मुहावरे अलग, हिन्दी के अलग। दोनों को वरावरी से समझने-जाननेवाले से अनुवाद कराना ठीक होता है। महादेवभाई ने मेरी आत्म-कथा का गुजराती में जो अनुवाद किया है, उसका ढंग समझना चाहिए। उन्होंने वड़ी मेहनत की है, उसपर। जो वात समझ में नहीं आती थी उसको फौरन चिट्ठी लिखकर पूछते थे। मुझे पूछ-पूछकर परेशान कर दिया था उन्होंने।"

और ऐसी ही एक सुवह का दृश्य सामने आता है। पंडितजी की नई किताब निकली है, "बंच ऑव ओल्ड लेटर्स'। उसके अनुवाद में एक विशेष कठिनाई सामने आई। इस पुस्तक में पंडितजी को पिछले ५० वर्ष में प्राप्त तथा उनके द्वारा देश के विभिन्न क्षेत्रों के प्रमुख नेताओं, विचारकों, कलाकारों, समाज-सेवियों व साथियों को लिखे पत्र संकलित है। इनमें दोनों ओर से अंग्रेजी शब्द 'यू' का प्रयोग हुआ। 'यू' का अर्थ हिंदी में 'आप' और तुम' दोनों होता है। किसको 'आप' कहा जाय, किसको 'तुम' यह आपसी संवंधों पर निर्भर करता है। हमें यह समझने में बड़ी कठिनाई हुई कि कौन तो पंडितजी को 'तुम' कहेंगे और कौन 'आप' तथा पंडितजी किसे 'तुम' या 'आप' कहकर संवोधित करेंगे। ऐसे नामों की एक सूची बनाकर हम पंडितजी के पास ले जाते है। पंडितजी वड़े विनोदी ढंग से 'तुम' और 'आप' का भेद वताते हैं।

"सरदार पटेल आपको क्या लिखते थे? तुम या आप?"

"सरदार मुझे 'तुम' लिखते थे, और मैं उन्हें 'आप' लिखता था।"

"मौलाना आजाद?"

"वह 'आप' और मैं भी 'आप'?

"सुभाषचन्द्र वोस?"

"दोनों 'तुम'—वह भी और मै भी।"

"राजेंद्रबाबू?"

"दोनों 'आप'। जाहिर है कि वे जाब्ते के आदमी है।"

"रफी साहव?"

"वह 'आप' और मैं 'तुम'।"

"सरोजिनी नायडू?"

"वह 'तुम' लिखेंगी, भाई।"

"महादेव देसाई?"

"दोनों 'आप'।"

इस तरह 'तुम' और 'आप' का भेद बताते जाते हैं और इन पुराने नामों की याद से उनके चेहरे पर एक चमक और व्यथा की झलक उभर आती है।

और फिर हम एक दिन पहुंचते हैं उनके पास 'मण्डल' की नई पुस्तकें और कुछ कठिनाई लेकर। वह ध्यान से सुनते हैं। पुस्तकें भी उलट-पुलटकर देखते जाते हैं। गंभीर हो जाते हैं। कहते हैं, जो आपको कहना है और जो चाहते हैं, वह एक चिट्ठी में लिखकर दे दीजिये। हम चिट्ठी आगे बढ़ा देते हैं। वे देखकर अपने कागज़ों में रख लेते हैं और नमस्कार को उनके हाथ उठ जाते हैं। हम भी विदा लेते हैं।

आज वह उल्लास और वह ताजगी नहीं दीखती है। वह थके हुए लगते हैं। उदास भी। बात ही ऐसी है। चीन का भारत की उत्तरी सीमा पर हमला हो चुका है—उस चीन का, जिसे पंडितजी ने अपना भाई कहा—'चीनी-हिन्दी भाई-भाई' के नारे लगे थे और चाऊ एन-लाई का अपूर्व स्वागत हुआ था, दिल्ली की सड़कों पर। और उसने यह बदला चुकाया था उसका—पीठ में छुरा भोंककर। पंडितजी के मन पर और उनके स्वास्थ्य पर बहुत बड़ा धक्का लगा था इस बात का। यह वह ही थे, जो इस धक्के को सहते गये और सारे देश को उन्होंने फिर से एक-जुज करके शत्रु के विरुद्ध रक्षा के लिए सन्नद्ध कर दिया था।

और ऐसे ही उनके कई चित्र उभर रहे हैं, विलीन हो रहे हैं। जितनी ही मुलाकातें, उतने ही चित्र। जितने दर्शन, उतनी ही उनकी झलकियां। मनमोहक, ताजगी देनेवाली, प्रसन्न और प्रसन्नता बांटनेवाली, सदाबहार।

एकाएक टेलीफोन की घंटी बजती है। रिसीवर उठाता हूं। उधर से आवाज आती है,

"नमस्कार! तीन बजे हैं, जी। आपने जगाने को कहा था। नमस्कार।"

"नींद ही कहां आई है, जो जागें?"

"जी, आज नींद किसे आनेवाली है! नींद तो सारे राष्ट्र की उड़ गई है। घटना ही ऐसी घटी है।" टेलीफोन-आपरेटर भी मेरे मन की—सबके मन की—बात कह रहा है।

३॥ बजे हैं। मित्र के साथ प्रधान मंत्री-भवन पहुंचते हैं। चारों ओर शान्ति है। हलकी-सी बूंदा-बांदी हो चुकी है। कल तीसरे पहर जैसी उमस और घुटन नहीं है। चुपचाप लोग पंक्ति में आगे सरकते जाते हैं। अजीब सन्नाटा है। प्रधान मंत्री भवन के बगीचे और लानों के बीच सड़क पर से गुजरते हुए बरसाती में पहुंचते हैं। एक ऊंचे मंच पर दरवाजे के बीचोंबीच चारों ओर फूलों से घिरे पंडितजी शांत चिरनिद्रा में सो रहे हैं। भोला, शांत, श्वेत चेहरा बड़ा भला लग रहा है। ऐसा लग रहा है, गहरी नींद में सो रहे हैं और बस, आवाज देने की देर है कि उठ बैठेंगे। बच्चे कुछ शोर-सा मचाते हैं 'चाचा नेहरू जिन्दाबाद'। मैं कहने को होता हूं कि 'शोर न करो। चाचा नेहरू जरा देर को आराम करने लेटे हैं, शोर करने से उनकी नींद टूट जायगी।' और मैं पंडितजी के चेहरे की ओर फिर देखने लगता हूं। ऐसा महसूस होता है कि बालकों का शोर सुनकर पंडितजी एकदम तड़पकर उठ बैठेंगे और बिगड़ पड़ेंगे।

"यह क्या गुल मचा रखा है। जरा देर को सोया था तो सोने ही नहीं दिया। चलो हटो, सामने

से।" और वह उठ खड़े होंगे और बच्चों की ओर मुस्कराकर फूलों के ढेर में से मालाएं उठा-उठाकर उनको देने और फेंकने लगेंगे।

यह सोचने में कुछ क्षण लगे। खड़ा रहा तो पीछे की लाइन खड़ी रह गई। संतरी बोला, "चलते जाइये। खड़े न होइये। चलते रहिये।"

और मैं सपने की दुनिया से इस झुलसती हुई दुनिया में जैसे पटक दिया गया।

अरे, पंडितजी तो गुजर गये। अब वह चिरनिद्रा में लीन हैं। अब वह नहीं उठेंगे। उनकी मनोरम मुस्कान हम नहीं देख पायंगे। उनके पास अपना दुख-दर्द सुनाने नहीं जा सकेंगे। आंखें डबडबा आईं। मैंने दोनों हाथ जोड़कर नतमस्तक हो नमस्कार किया और मन में बुदबुदाया—"मुझ अकिंचन का प्रणाम स्वीकार करें, पंडितजी।" और आगे बढ़ चला। ●

•

प्रधान मंत्री नेहरू की जिंदगी एक मशाल की तरह थी, जिससे हिन्दुस्तान, एशिया और सारी दुनिया को रोशनी मिलती थी।

—नासर

यशपाल जैन

कुछ नये-पुराने चित्र

बहुत पुरानी बात है । संभवत: २८–२९ वर्ष पहले की । महात्मा गांधी इलाहाबाद गये हुए थे और आनन्द-भवन में ठहरे थे। शाम को उनकी रोज खुले लॉन पर प्रार्थना होती थी। काफी लोग इकट्ठे हो जाते थे। मैं उन दिनों प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ता था। एक दिन अचानक शाम को प्रार्थना में शामिल होने के लिए आनन्द-भवन जा पहुंचा। प्रार्थना शुरू होने में देर थी। दरियां बिछ चुकी थीं और लोग बैठ रहे थे। गांधीजी आनेवाले थे।

इतने में अन्दर से एक नौजवान आया। रंग गोरा-चिट्टा, चेहरा अत्यन्त भव्य, तेज से दीप्त। उसने घुटनों से नीचे तक का श्वेत खादी का कुरता और खादी की बारीक धोती पहन रखी थी। ऊपर से जाकेट। जहां गांधीजी के बैठने की जगह थी वहां खड़े होकर उसने उपस्थित लोगों पर एक निगाह डाली और सिपहसालार के रूप में एकदम बोला, "आप लोग एक-एक गज पीछे हट जायं।"

कहने की देर थी कि लोग पीछे हट गये। उस भीड़ में कोई १७–१८ साल का एक लड़का था। उसने सोचा कि जब सब पीछे हट गये हैं तो उस एक के हटने-न हटने से क्या अन्तर पड़ेगा। सो वह वहीं बैठा रहा। नौजवान ने देखा कि वह लड़का न तो हटा और न हटने का नाम ले रहा है, तो वह आगे बढ़कर आया, आवेश के साथ लड़के की बाहें पकड़कर खड़ा किया और इतने जोर से धक्का दिया कि बेचारा भीड़ के ऊपर जा गिरा। फिर कुछ होठों में बड़बड़ाता हुआ वह नौजवान वापस लौट गया।

यह नौजवान थे हमारे जवाहरलाल नेहरू। उन्हें बहुत बार सभाओं में देखा था। उनके भाषण भी सुने थे। उनके जोश के भी नमूने सामने आये थे, पर उनकी उग्रता को इतने निकट से देखने का यह पहला ही अवसर था। सच बात यह है कि उसकी वह हरकत मुझे बहुत बुरी लगी, पर बाद में देखा कि उस समय उन्होंने जो किया, वह उनके लिए बहुत स्वाभाविक था। वह किसी भी अवस्था में अनुशासन का भंग सहन नहीं कर सकते थे।

... ...

इलाहाबाद विश्वविद्यालय से आनन्द-भवन अधिक दूर नहीं था। छात्र-छात्राएं अक्सर वहां चले जाते थे और मौका होता था तो जवाहरलालजी से मिल आते थे। आनन्द-भवन में आएदिन बड़े-बड़े नेताओं का जमघट लगा रहता था। जवाहरलालजी के साथ-साथ उनके भी दर्शन हो जाते थे।

मेरे मन में कई वार आनन्द-भवन जाने की इच्छा हुई, लेकिन जवाहरलालजी की उग्रता की बात इतनी गहरी अंकित हो गई थी कि मेरा हौसला पस्त पड़ गया था। फिर भी एक दिन मैंने मन पर जोर डाला और हिम्मत करके आनन्द-भवन पहुंच गया। यह सन् १९३६ की वात है। आनन्द-भवन में घुसते ही किसीने बताया कि पंडितजी अपने आफिस के कमरे में हैं। मैं वहां पहुंचा। पंडितजी दरवाजे के सामने कुर्सी पर बैठे कोई फाइल देख रहे थे। मेज पर कागजों का ढेर लगा था। समझ गया कि वह बहुत ही व्यस्त हैं। फिर भी मैं खड़ा ही रहा। थोड़ी देर में उन्होंने फाइल पर से निगाह हटाई तो मुझे देखा। बोले, "क्यों क्या बात है? अन्दर आइये।"

मैं कमरे में जाकर उनके पास खड़ा हो गया और कहा, "मैं यूनिवर्सिटी का विद्यार्थी हूं। आपके दर्शन करने आया हूं।"

उन्होंने प्रश्नभरी मुद्रा में मेरी ओर देखा। पूछा, "कौन-सी क्लास में पढ़ते हो?"

मैंने कहा, "लॉ की पहली साल में।"

"लॉ किसलिए पढ़ रहे हो?"

इस सवाल पर मैं सकपका-सा गया। विद्यार्थियों में कितने हैं, जो सोचते हैं कि वे किसलिए पढ़ते हैं? मैंने संकोच से उत्तर दिया, "अभी कुछ सोचा नहीं है। पढ़ाई पूरी करने के बाद जो होगा, देखा जायगा।"

इतना कहना था कि पंडितजी ने फाइल मेज पर रख दी। बोले, "तुम भी अजीव लड़के हो! पढ़ रहे हो और कहते हो कि यह सोचा ही नहीं कि क्या करोगे। बिना मकसद के पढ़ने से क्या फायदा?"

मैंने साहस जुटाया। कहा, "पंडितजी, अभी से हम क्या सोच सकते हैं? आजादी की लड़ाई आगे चलकर क्या रुख लेती है, यह कौन कह सकता है।"

पंडितजी थोड़ी देर जैसे खो-से गये। फिर चैतन्य होकर बोले, "आपका कहना वजा है। पर मैं कहता हूं कि मुल्क से बढ़कर और कोई चीज नहीं है। आप लोग अपने को आजादी की लड़ाई के लिए तैयार करें। नौजवान उठेंगे तो उससे बड़ी ताकत पैदा होगी।"

यह सब वह एक ही सांस में कह गये। मैं उनकी बात का क्या जवाब देता! पर उस समय कहे उनके दो वाक्य आज भी मेरे मानस-पटल पर ज्यों-के-त्यों अंकित हैं—"बिना मकसद पढ़ने से क्या फायदा?" और "मुल्क से बढ़कर और कोई चीज नहीं है।"

... ...

इसीके आस-पास की इलाहाबाद की एक और घटना है। श्रीमती कमला नेहरू की अस्थियां स्विट्जरलैंड से आई थीं और एक बहुत बड़े जुलूस में उन्हें संगम में प्रवाहित करने जा रहे थे। बड़ी भारी भीड़ थी। आगे-आगे अस्थियां थीं, फिर पं० सुन्दरलालजी, मैं तथा कुछ अन्य लोग एक कतार बनाकर चल रहे थे। हमारे पीछे जवाहरलालजी और उनके परिवार के सदस्य थे। जुलूस जैसे ही मुट्ठीगंज पहुंचा कि सामने से एक फोटोग्राफर आ गया और बीच सड़क पर स्टैण्ड पर कैमरा लगाकर उसने जलूस को ज़रा रुकने

का इशारा किया। जैसे ही लोगों की रफ्तार धीमी हुई कि पीछे से जवाहरलालजी चिल्लाये, "क्या बात है। जुलूस क्यों रुक रहा है?"

मैं उनके सामने था। उन्होंने तेजी से आगे बढकर मेरे कंधे पर हाथ रखा और कहा, "जाओ, कह दो, जुलूस नहीं रुकेगा। उसे कोई नहीं रोक सकता।"

मैं जैसे ही आगे बढ़ने को हुआ कि बड़ी उतावली से वह स्वयं लपककर आये। बोले, "ठहरो, मैं खुद जाकर कहूंगा।"

मुझे लगा, फोटोग्राफर की खैरियत नहीं। पंडितजी जरूर उसका कैमरा उठाकर फेंक देंगे, लेकिन फोटोग्राफर होशियार निकला। उसने जैसे ही पंडितजी को गुस्से में भरे आते देखा, वह कैमरा लेकर भागा और पासके किसी घर में घुस गया। लोगों को तेजी से आगे बढ़ने और किसीके भी रोके न रुकने को कहकर पंडितजी फिर अपनी जगह पर आ गये।

... ...

पढ़ाई पूरी करके मैं दिल्ली आ गया। देश के आजाद होने के कुछ समय पहले से ही पंडितजी दिल्ली आ गये और स्थायी रूप से यहां रहने लगे। एक दिन हम लोग उनसे मिलने गये। काम की बातचीत होने के बाद वह बोले, "...को आप लोग जानते हो?"

"जीहां।"

उन्होंने कहा, "उसकी शख्सियत के बारे में मैं क्या कहूं। मैं कुरुक्षेत्र गया था। वहां किसीने कहा कि एक मुसीबतजदा औरत है। पांच मिनट को मिलना चाहती है। जाहिर है, मेरे पास वक्त नहीं था। फिर भी मैंने उसे बुला लिया। थोड़ी देर में वह अपनी बात तो क्या कह सकती थी, लेकिन उसकी शख्सियत का मुझपर इतना असर पड़ा कि मैं उसे मोटर में साथ ले आया। रास्ते में उसने बताया कि काश्मीर पर कबाइलियों के हमले के समय किस तरह उसके पति मारे गये और किस तरह वह अपने बच्चों के साथ वहां से निकलकर आई। बड़ी दर्दनाक कहानी है।"

पंडितजी के जीवन में ऐसे एक-दो नहीं, सैकड़ों व्यक्ति आये। संकटग्रस्त लोगों के लिए उनकी करुणा सदा जाग्रत रहती थी और उनके घर का द्वार सदा खुला रहता था।

... ...

एक बार पंडितजी की वर्षगांठ पर उनसे मिलने गये। संयोग से उनसे बात करने का मौका मिल गया। मैंने कहा, "पंडितजी, महिला शिक्षा सदन, हटूंडी के बारे में हम लोग एक ग्रंथ निकाल रहे हैं। आप उसके लिए दो शब्द लिख दीजिये।"

उस दिन पंडितजी बड़ी प्रसन्न मुद्रा में थे। बोले, "अच्छी बात है, ग्रंथ छप जाय तो उसे मेरे पास ले आना। लिख दूंगा।"

ग्रंथ छप गया तो उसकी एक प्रति बंधवाकर हम लोग पंडितजी के पास ले गये। श्री हरिभाऊजी उपाध्याय, उनकी लड़की शकुन्तला तथा हम, कई जने थे। पंडितजी को ग्रंथ दिखाया। देखते ही बोले, "हिन्दीवालों की यह आदत क्या है कि पन्ने पर बार्डर डालकर छपाई करते हैं। ज़रा और मुल्कों की

मेरे मन में कई वार आनन्द-भवन जाने की इच्छा हुई, लेकिन जवाहरलालजी की उग्रता की बात इतनी गहरी अंकित हो गई थी कि मेरा हौसला पस्त पड़ गया था। फिर भी एक दिन मैंने मन पर जोर डाला और हिम्मत करके आनन्द-भवन पहुंच गया। यह सन् १९३६ की वात है। आनन्द-भवन में घुसते ही किसीने बताया कि पंडितजी अपने आफिस के कमरे में हैं। मैं वहां पहुंचा। पंडितजी दरवाजे के सामने कुर्सी पर बैठे कोई फाइल देख रहे थे। मेज पर कागजों का ढेर लगा था। समझ गया कि वह बहुत ही व्यस्त हैं। फिर भी मैं खड़ा ही रहा। थोड़ी देर में उन्होंने फाइल पर से निगाह हटाई तो मुझे देखा। बोले, "क्यों क्या बात है? अन्दर आइये।"

मैं कमरे में जाकर उनके पास खड़ा हो गया और कहा, "मैं यूनिवर्सिटी का विद्यार्थी हूं। आपके दर्शन करने आया हूं।"

उन्होंने प्रश्नभरी मुद्रा में मेरी ओर देखा। पूछा, "कौन-सी क्लास में पढ़ते हो?"

मैंने कहा, "लॉ की पहली साल में।"

"लॉ किसलिए पढ़ रहे हो?"

इस सवाल पर मैं सकपका-सा गया। विद्यार्थियों में कितने हैं, जो सोचते हैं कि वे किसलिए पढ़ते हैं? मैंने संकोच से उत्तर दिया, "अभी कुछ सोचा नहीं है। पढ़ाई पूरी करने के बाद जो होगा, देखा जायगा।"

इतना कहना था कि पंडितजी ने फाइल मेज पर रख दी। बोले, "तुम भी अजीब लड़के हो! पढ़ रहे हो और कहते हो कि यह सोचा ही नहीं कि क्या करोगे। बिना मकसद के पढ़ने से क्या फायदा?"

मैंने साहस जुटाया। कहा, "पंडितजी, अभी से हम क्या सोच सकते हैं? आजादी की लड़ाई आगे चलकर क्या रुख लेती है, यह कौन कह सकता है।"

पंडितजी थोड़ी देर जैसे खो-से गये। फिर चैतन्य होकर बोले, "आपका कहना बजा है। पर मैं कहता हूं कि मुल्क से बढ़कर और कोई चीज नहीं है। आप लोग अपने को आजादी की लड़ाई के लिए तैयार करें। नौजवान उठेंगे तो उससे बड़ी ताकत पैदा होगी।"

यह सब वह एक ही सांस में कह गये। मैं उनकी बात का क्या जवाब देता! पर उस समय कहे उनके दो वाक्य आज भी मेरे मानस-पटल पर ज्यों-के-त्यों अंकित हैं—"बिना मकसद पढ़ने से क्या फायदा?" और "मुल्क से बढ़कर और कोई चीज नहीं है।"

... ...

इसीके आस-पास की इलाहाबाद की एक और घटना है। श्रीमती कमला नेहरू की अस्थियां स्विट्-जरलैंड से आई थीं और एक बहुत बड़े जुलूस में उन्हें संगम में प्रवाहित करने जा रहे थे। बड़ी भारी भीड़ थी। आगे-आगे अस्थियां थीं, फिर पं० सुन्दरलालजी, मैं तथा कुछ अन्य लोग एक कतार बनाकर चल रहे थे। हमारे पीछे जवाहरलालजी और उनके परिवार के सदस्य थे। जुलूस जैसे ही मुट्ठीगंज पहुंचा कि सामने से एक फोटोग्राफर आ गया और बीच सड़क पर स्टैण्ड पर कैमरा लगाकर उसने जलूस को ज़रा रुकने

का इशारा किया। जैसे ही लोगों की रफ्तार धीमी हुई कि पीछे से जवाहरलालजी चिल्लाये, "क्या बात है। जुलूस क्यों रुक रहा है?"

मैं उनके सामने था। उन्होंने तेजी से आगे बढकर मेरे कंधे पर हाथ रखा और कहा, "जाओ, कह दो, जुलूस नहीं रुकेगा। उसे कोई नहीं रोक सकता।"

मैं जैसे ही आगे बढ़ने को हुआ कि बड़ी उतावली से वह स्वयं लपककर आये। बोले, "ठहरो, मैं खुद जाकर कहूंगा।"

मुझे लगा, फोटोग्राफर की खैरियत नहीं। पंडितजी जरूर उसका कैमरा उठाकर फेंक देंगे, लेकिन फोटोग्राफर होशियार निकला। उसने जैसे ही पंडितजी को गुस्से में भरे आते देखा, वह कैमरा लेकर भागा और पासके किसी घर में घुस गया। लोगों को तेजी से आगे बढ़ने और किसीके भी रोके न रुकने को कहकर पंडितजी फिर अपनी जगह पर आ गये।

... ...

पढ़ाई पूरी करके मैं दिल्ली आ गया। देश के आजाद होने के कुछ समय पहले से ही पंडितजी दिल्ली आ गये और स्थायी रूप से यहां रहने लगे। एक दिन हम लोग उनसे मिलने गये। काम की बातचीत होने के बाद वह बोले, "...को आप लोग जानते हो?"

"जीहां।"

उन्होंने कहा, "उसकी शख्सियत के बारे में मैं क्या कहूं। मैं कुरुक्षेत्र गया था। वहां किसीने कहा कि एक मुसीबतजदा औरत है। पांच मिनट को मिलना चाहती है। जाहिर है, मेरे पास वक्त नहीं था। फिर भी मैंने उसे बुला लिया। थोड़ी देर में वह अपनी बात तो क्या कह सकती थी, लेकिन उसकी शख्सियत का मुझपर इतना असर पड़ा कि मैं उसे मोटर में साथ ले आया। रास्ते में उसने बताया कि काश्मीर पर कबाइलियों के हमले के समय किस तरह उसके पति मारे गये और किस तरह वह अपने बच्चों के साथ वहां से निकलकर आई। बड़ी दर्दनाक कहानी है।"

पंडितजी के जीवन में ऐसे एक-दो नहीं, सैकड़ों व्यक्ति आये। संकटग्रस्त लोगों के लिए उनकी करुणा सदा जाग्रत रहती थी और उनके घर का द्वार सदा खुला रहता था।

... ...

एक बार पंडितजी की वर्षगांठ पर उनसे मिलने गये। संयोग से उनसे बात करने का मौका मिल गया। मैंने कहा, "पंडितजी, महिला शिक्षा सदन, हटूंडी के बारे में हम लोग एक ग्रंथ निकाल रहे हैं। आप उसके लिए दो शब्द लिख दीजिये।"

उस दिन पंडितजी बड़ी प्रसन्न मुद्रा में थे। बोले, "अच्छी बात है, ग्रंथ छप जाय तो उसे मेरे पास ले आना। लिख दूंगा।"

ग्रंथ छप गया तो उसकी एक प्रति बंधवाकर हम लोग पंडितजी के पास ले गये। श्री हरिभाऊजी उपाध्याय, उनकी लड़की शकुन्तला तथा हम, कई जने थे। पंडितजी को ग्रंथ दिखाया। देखते ही बोले, "हिन्दीवालों की यह आदत क्या है कि पन्ने पर बार्डर डालकर छपाई करते हैं। ज़रा और मुल्कों की

छपाई देखो। कैसी खूबसूरत होती है!"

हममें से एक ने कहा, "पंडितजी इस, ग्रंथ में तो वार्डर नहीं डाले गये हैं।"

उन्होंने कुछ तेज होकर कहा, "मैंने कब कहा कि इसमें डाले गये है! मैंने तो एक आम बात कही।"

इतना कहकर वह ग्रंथ के पन्ने पलट लगे। मैंने कहा "पंडितजी,, आपने कहा था कि यह ग्रंथ छप जाय तो आपको लाकर दे दूं। आप इसके लिए कुछ लिख देंगे।"

बोले, "जी नहीं, मेरे पास वक्त कहां है? मैं नहीं लिख सकता।"

इतना कहकर उन्होंने जैसे ही ग्रंथ के शुरू के पन्ने उलटे कि पारा चढ़ गया। बोले, "लोगों को इस तरह घेरने की आदत को मैं सख्त नापसन्द करता हूं। प्रस्तावना, भूमिका, प्राक्कथन, दो शब्द, निवेदन, आखिर यह सब क्या तमाशा है! बड़ी बुरी बात है। इसको पकड़ा, उसको पकड़ा, इस सबसे फायदा क्या? बगैर बात लोगों को परेशान करना है।"

ग्रंथ को मेज पर रखते हुए वह शकुन्तला की ओर बढ़े। बोले, "क्यों, तेरा क्या हाल है?"

उसने कहा, "मेरा हाल बहुत खराब है।"

"क्यों, क्या हुआ?"

शकुन्तला बोली, "अगर बच्चों को अपने बड़ों का आशीर्वाद भी न मिल सके तो उनका हाल अच्छा कैसे हो सकता है?"

पंडितजी एकदम मुस्करा उठे। बोले, "तू तो अब बड़ी हो गई है। बड़ों की-सी बातें करने लगी है। अरे, कुछ बातें टालने के लिए कही ज़ाती है। इसका मतलब यह थोड़ा है कि मैं कुछ लिखूगा नहीं।"

... ...

एक दिन प्रधान-मंत्री के निवास-स्थान पर बालकनजी बारी के बहुत–से बच्चे इकट्ठे हो गये। हम लोग ऊपर की मंजिल पर पंडितजी से बातें करके उनके साथ नीचे आये तो वह बोले, "बहुत-से बच्चे मेरी राह देख रहे है। आप लोग भी आ जाओ।"

बच्चे पीछे के लॉन पर कतार में खड़े थे। पंडितजी को देखते ही उन्होंने 'चाचा नेहरू जिन्दाबाद' के नारे लगाये। पंडितज़ी ने उनके बीच में जाकर कुछेक के नाम पूछे और फिर बोले, "आओ, मैं तुम्हें एक बढ़िया चीज दिखाऊं।"

बच्चों की फौज उनके साथ चल दी। एक घेरे के पास जाकर उन्होंने बच्चों को रुकने को कहा और स्वयं दाएं हाथ में सफेद दस्ताना पहनकर उसके अन्दर चले गये। वहां उनका प्रिय पांडा पेड़ के तने के ऊपर बैठा था। बड़े प्यार से उन्होंने उसे पुकारा, बड़ी कोमलता से उसकी पीठ सहलाई, फिर उसे धीरे-धीरे नीचे उतारा।

बच्चों से पूछा, "अच्छा, बताओ यह कौन जानवर है?"

बच्चों में से एक ने कहा, "यह भालू है।"

"वाह, खूब पहचाना! अरे, कहीं भाल ऐसा होता है!" नेहरूजी ने मुस्कराते हुए कहा।

दूसरे बच्चे ने कहा, "नहीं, यह ऊदबिलाव है।"

"ऊदबिलाव! अरे, ऊदबिलाव कभी देखा भी है? यह न भालू है, न ऊदबिलाव। यह भालू और बिल्ली के बीच की किस्म का एक जानवर है। जब मैं असम गया था तो वहां मुझे भेंट में मिला था।"

बच्चों में से एक ने पूछा, "चाचाजी, यह खाता क्या है?"

"पत्तियां।" उन्होंने उत्तर दिया।

एक लड़के ने पास के पेड़ से पत्तियां तोड़ने की कोशिश की तो पंडितजी ने रोक दिया। बोले, "क्या करते हो? यह हर किस्म के पेड़ की पत्तियां थोड़े ही खाता है।"

एक बच्चे ने कहा, "चाचाजी, हम आपके साथ तसवीर खिंचवायंगे।"

"अच्छा, खिंचवा लो।"

तसवीर खिंच गई तो दूसरा बालक बोला, "चाचाजी, हमारी ओटोग्राफ एलबम में कुछ लिख दीजिये।"

उन्होंने लिख दिया।

मेरा अनुमान है कि बच्चों के साथ उनके बीसेक मिनट निकल गये होंगे। वह बच्चों को बेहद प्यार करते थे और उनके बीच अपनेको भूल जाते थे। एक के बाद एक जब बच्चों की मांगें बढ़ने लगीं तो उन्होंने समझाते हुए कहा, "देखो, मेरे लिए बहुत-सा काम पड़ा है। अब मुझे जाना है। अच्छा, जय हिन्द!"

इतना कहकर वह बच्चों की-सी चपलता से दो-दो सीढ़ियां एक साथ लांघकर चले गये।

... ...

सन् १९४७ में दिल्ली के पुराने किले में एशियाई देशों की एक बहुत बड़ी कांफ्रेंस हुई थी। बाहर से काफी लोग आये थे। गांधीजी भी उसमें शरीक हुए थे। किले का सारा मैदान नर-नारियों से भरा था। नेताओं के आने-जाने के लिए भीड़ के बीच से एक रास्ता बनाया गया था। भीड़ गांधीजी के दर्शन के लिए उतावली हो रही थी। प्रबंधकों को डर हुआ कि अगर गांधीजी उस रास्ते से आये तो सारी व्यवस्था भंग हो जायगी। लोग उन्हें पास से देखने और उनके पैर छूने के लिए दौड़ पड़ेंगे। इसलिए उन्हें चुपचाप गाड़ी से ही मंच के पीछे तक ले जाया गया और वहां एक छोटे-से दरवाजे से उन्हें मंच पर पहुंचा दिया गया। जैसे ही लोगों को इसका पता चला, शोर मच गया। लोग धक्का-मुक्की करके मंच की ओर बढ़ने लगे। व्यवस्थापकों ने शान्ति रखने की बहुतेरी कोशिश की, पर कोई नतीजा नहीं निकला। स्वयंसेवकों ने लोगों के हाथ जोड़े, उन्हें पकड़-पकड़कर बिठाने की चेष्टा की, पर बेकार। जब भीड़ किसी तरह काबू में आती दिखाई नहीं दी तो मंच पर से नेहरूजी एकदम कूदकर लोगों के बीच पहुंच गये और धक्का मार-मारकर लोगों को पीछे हटाने लगे, कंधे पकड़-पकड़कर उन्हें बिठाने लगे।

वे दिन बड़े भयंकर थे। साम्प्रदायिक वैमनस्य अपनी चरम सीमा पर था। कुछ भी हो सकता

था। वहां की अव्यवस्था को देखकर ऐसा लगता था कि कांफ्रेंस शायद ही हो सके।

पर पंडितजी ने ज़रा-सी देर में जादू का-सा काम कर दिखाया। वह जिधर जाते थे, भीड़ फट जाती थी और लोग बैठ जाते थे। पंद्रह-बीस मिनट में चारों ओर शान्ति स्थापित हो गई और सभा की कार्रवाई आरम्भ हो गई।

ऐसा हौसला पंडितजी ही दिखा सकते थे, और उन्होंने ऐसा एक जगह नहीं, सैकड़ों जगह करके दिखाया था। जनता, जो किसीके वश में नहीं आती थी, अपने उस महान नेता को अपने बीच हैरान देखते ही खामोश हो जाती थी। सच बात यह है कि नेहरू ही एक ऐसे नेता थे, जिनकी मुस्कराहट से लाखों स्त्री-पुरुषों के हृदयों की कली खिल जाती थी और जिनके चेहरे पर उदासी देखकर लाखों व्यक्ति एक साथ व्यथित हो उठते थे।

... ...

उनके पचास वर्ष के कर्ममय जीवन में उनके व्यक्तित्व और कर्तृव्य के बहुत-से पहलू सामने आते हैं। कुछ चीजों में विरोधाभास-सा मालूम होता है। पर कुल मिलाकर जो चित्र मन पर बनता है, वह एक ऐसे व्यक्ति का है, जिसे किसी भी कोण से देख लो, उसमें महानता ही दिखाई देगी; जो मानव, और मानवता का हितैषी है, जो अपनी भूमि को बहुत प्यार करता है, और उस प्यार की प्रसादी सारी दुनिया को देता है; जिसका समूचा जीवन देश और संसार की लघुता और दैन्य को दूर करने के लिए जूझा है; जो इन्सान इन्सान के बीच के फासले के विरुद्ध तीव्र विद्रोह करता है; जिसकी मानवीयता और पारदर्शी ईमानदारी अद्वितीय है और जिसे अपनी प्रभुता का अभिमान छू तक नहीं गया है।

ऐसे युग-पुरुष संसार में कम ही पैदा होते हैं, पर जो होते हैं, वे अपने जीवन को कृतार्थ और धरा को धन्य कर जाते हैं। ●

नेहरूजी के साथ अपने बीस वर्ष के राजनैतिक सम्पर्क के आधार पर मैं कह सकता हूं कि वह जनता के आदमी थे, जिनके लिए अल्पसंख्यकों की रक्षा व उनका पक्ष एक विशेष कर्तव्य था। उनकी मृत्यु से एक ऐसी क्षति हुई है, जिसे पूरा करना कठिन होगा।

—अब्दुलगफ्फार खां
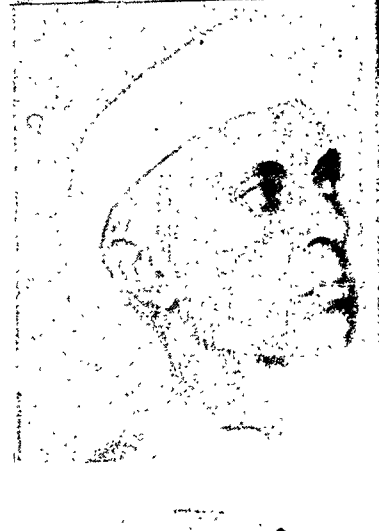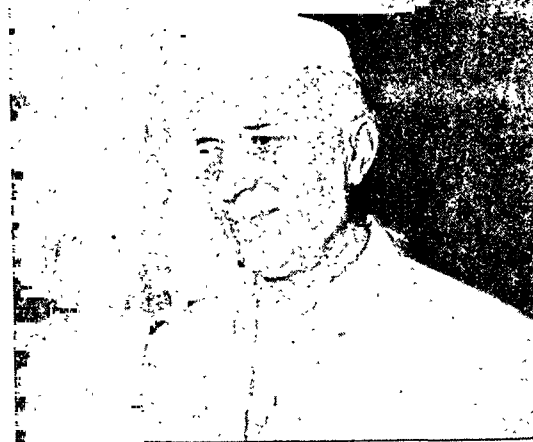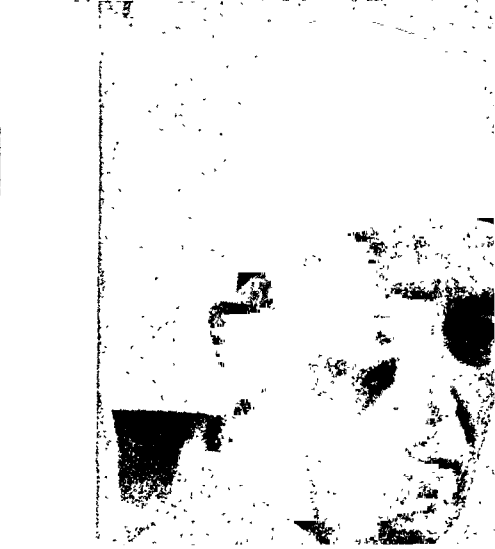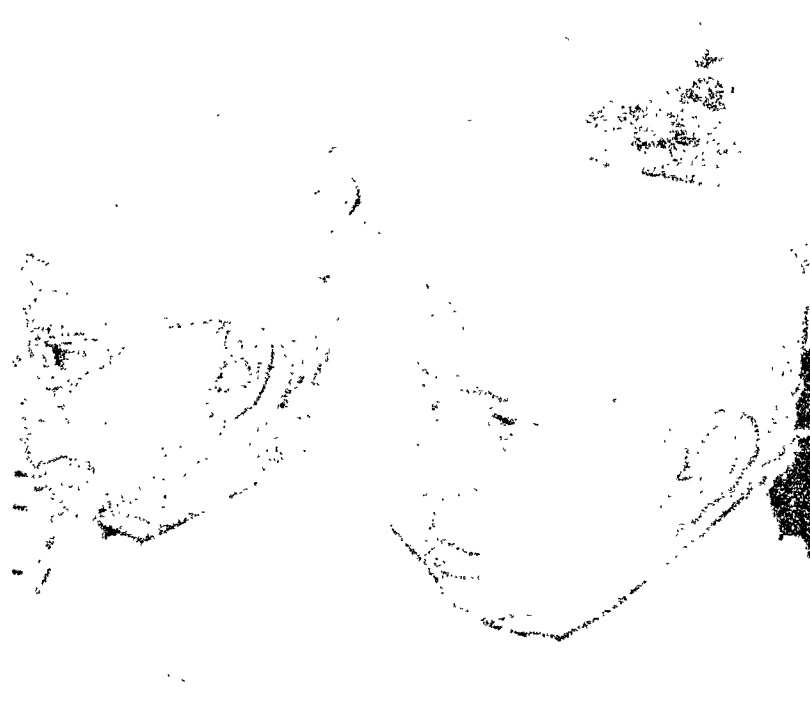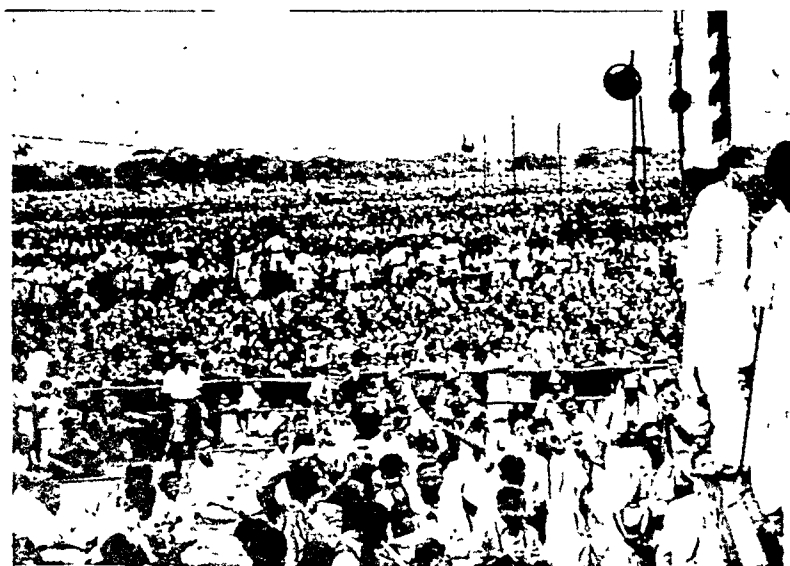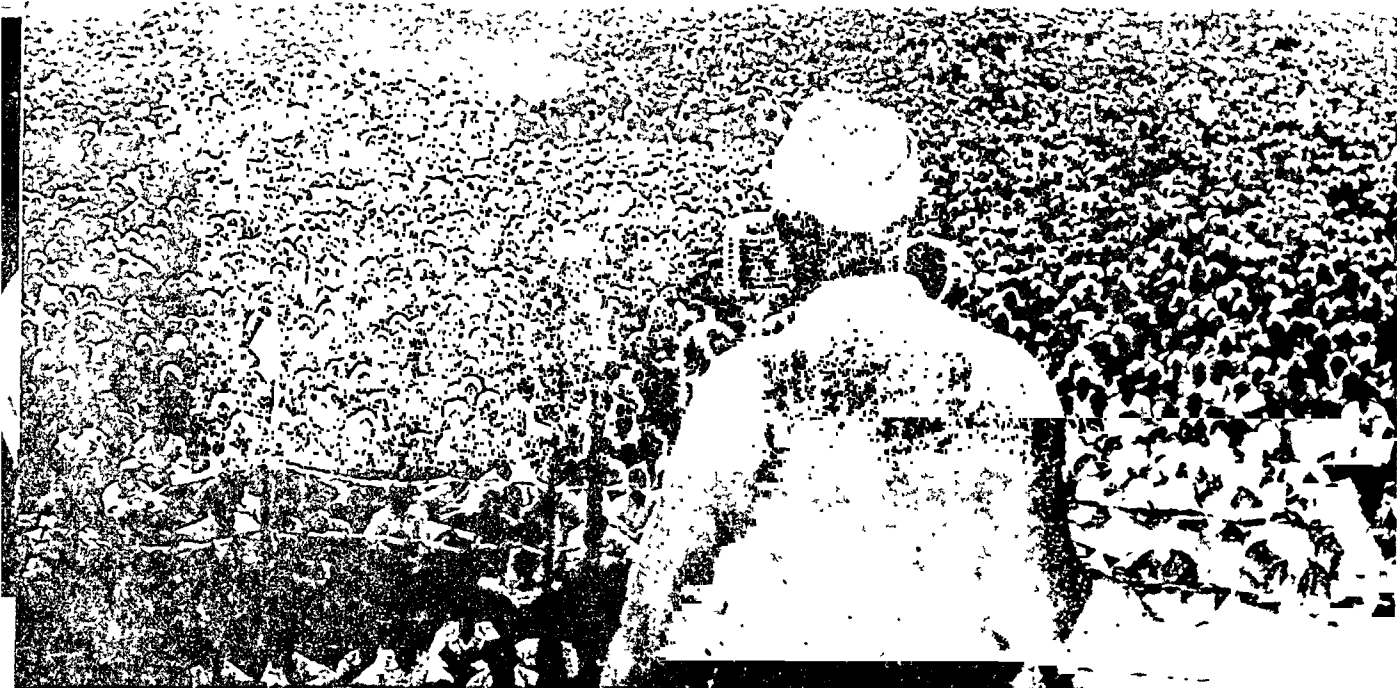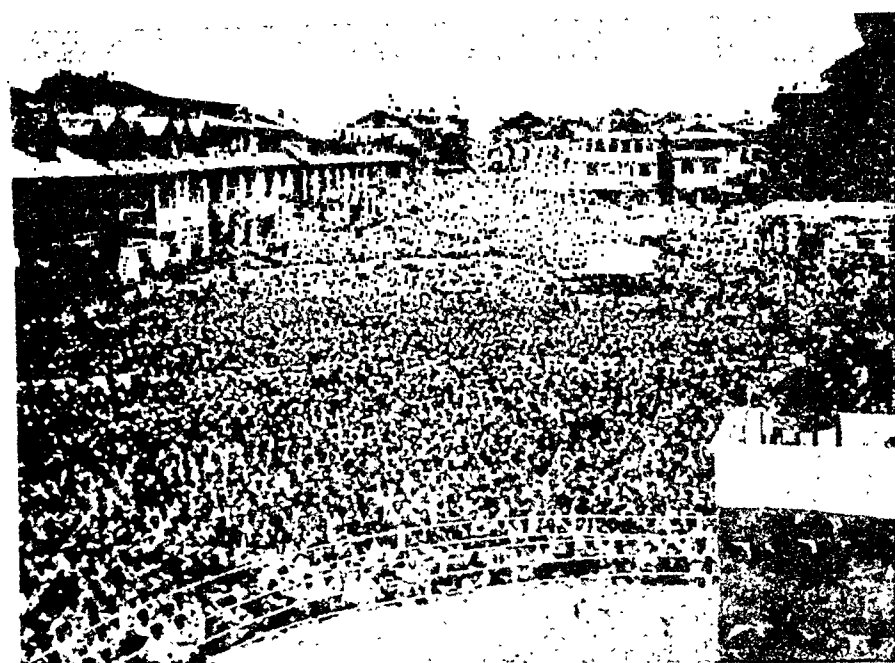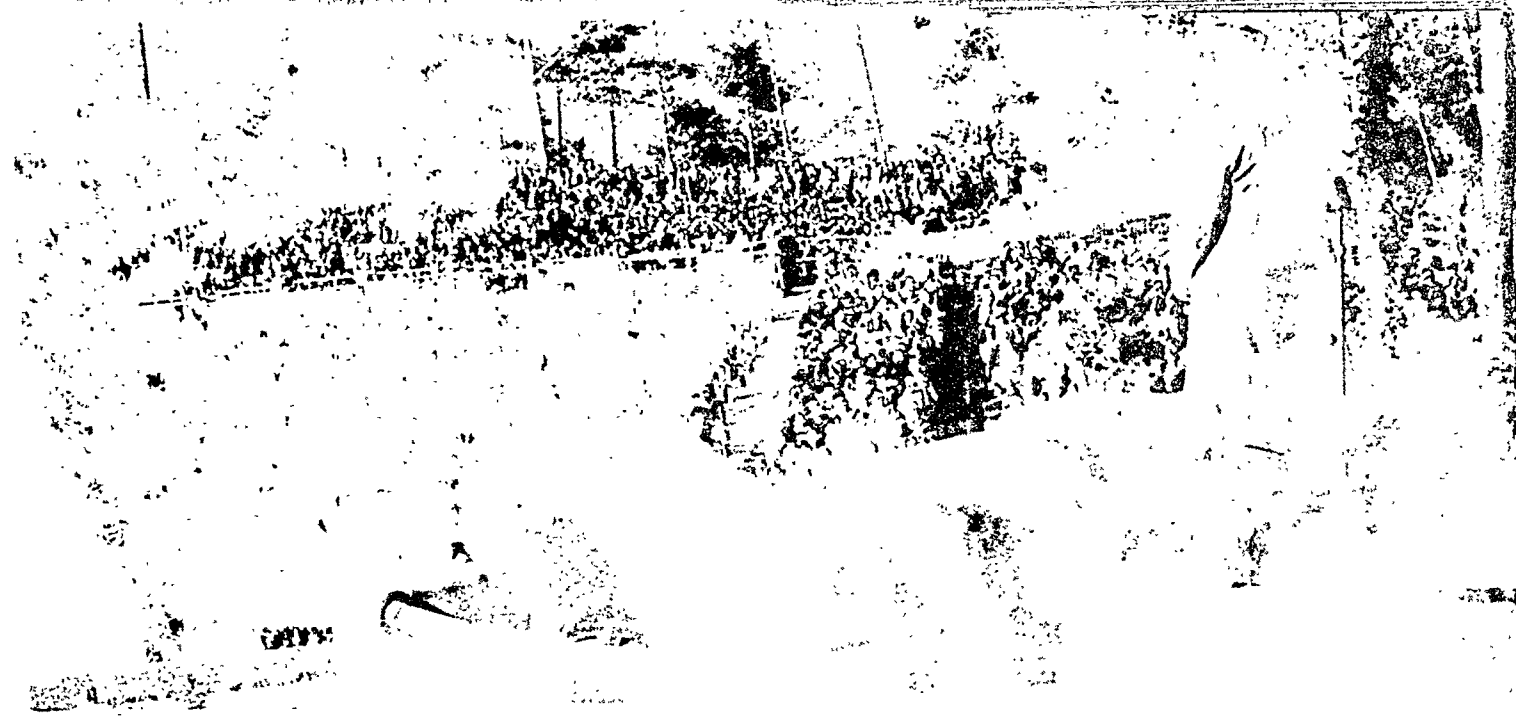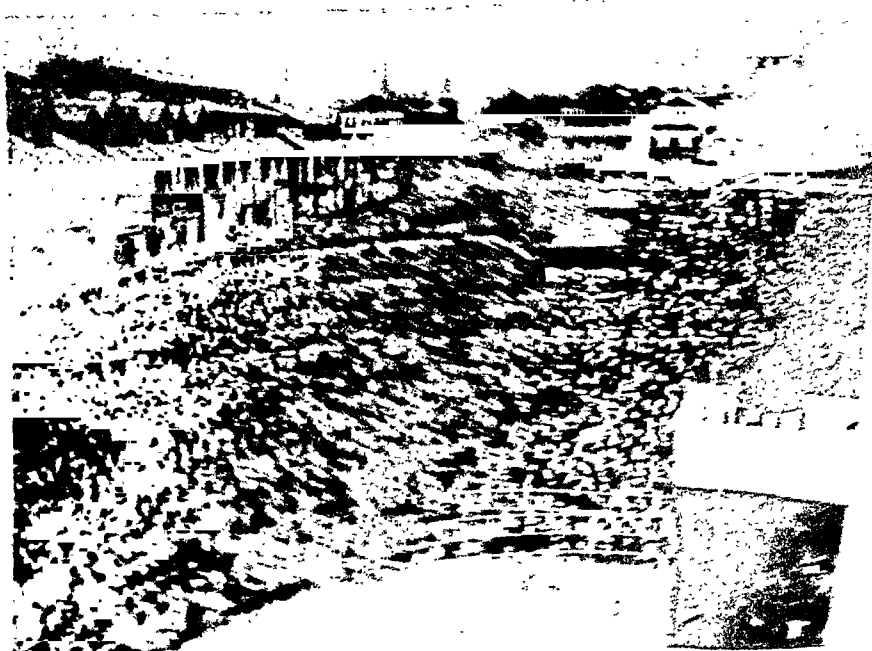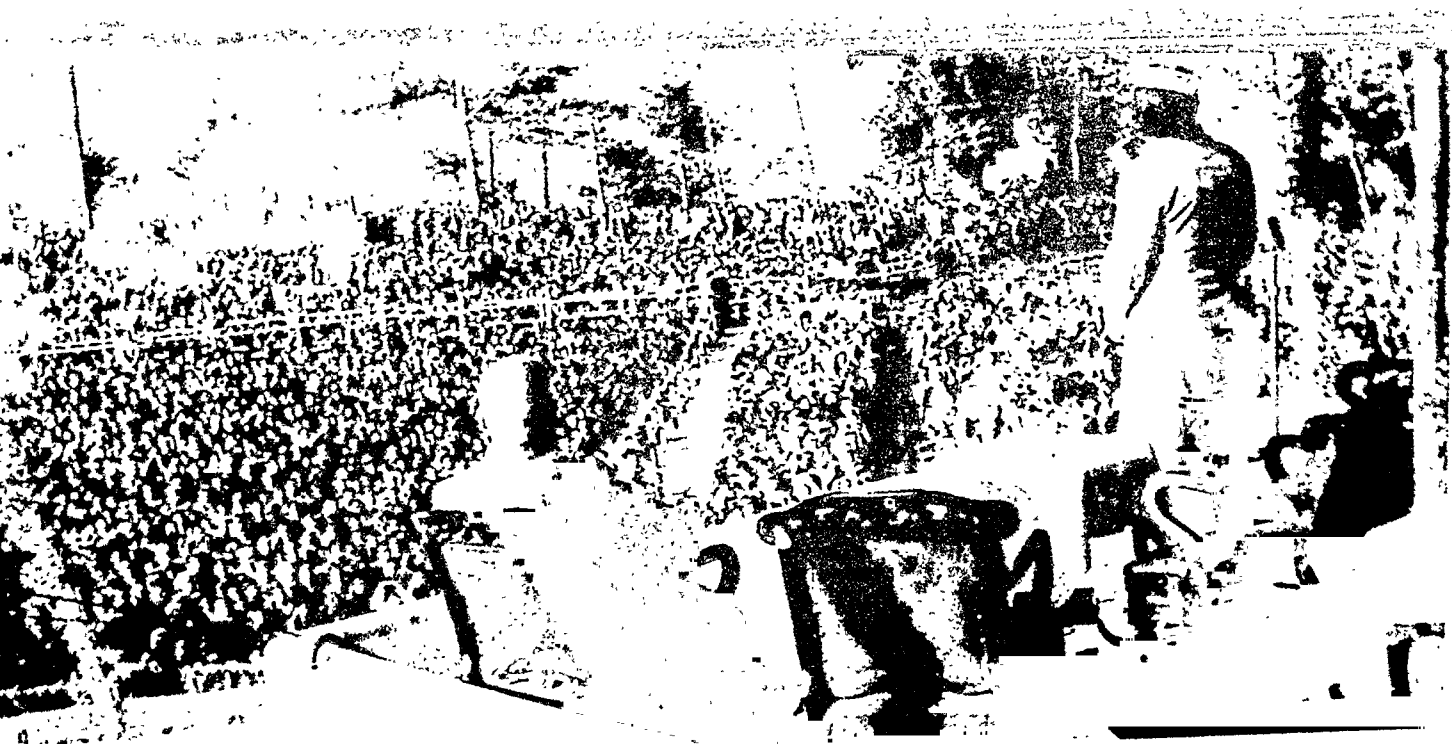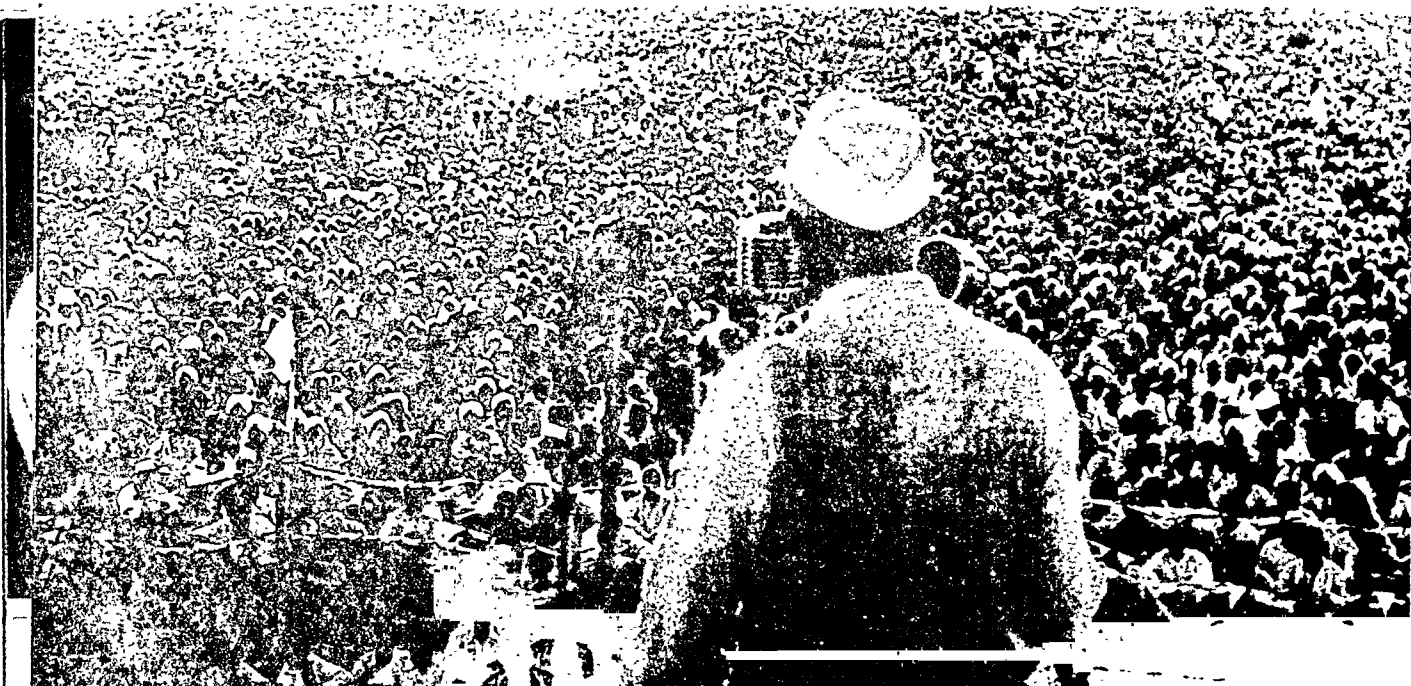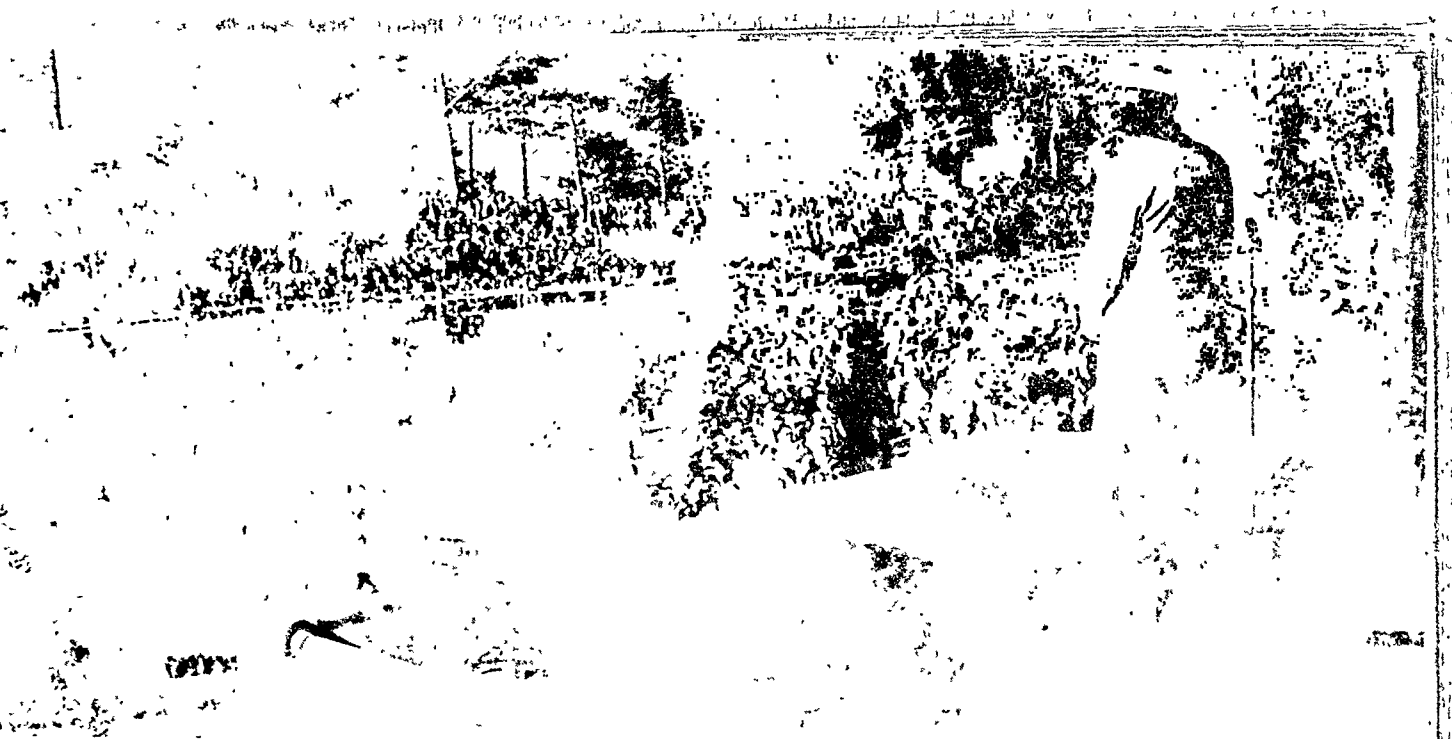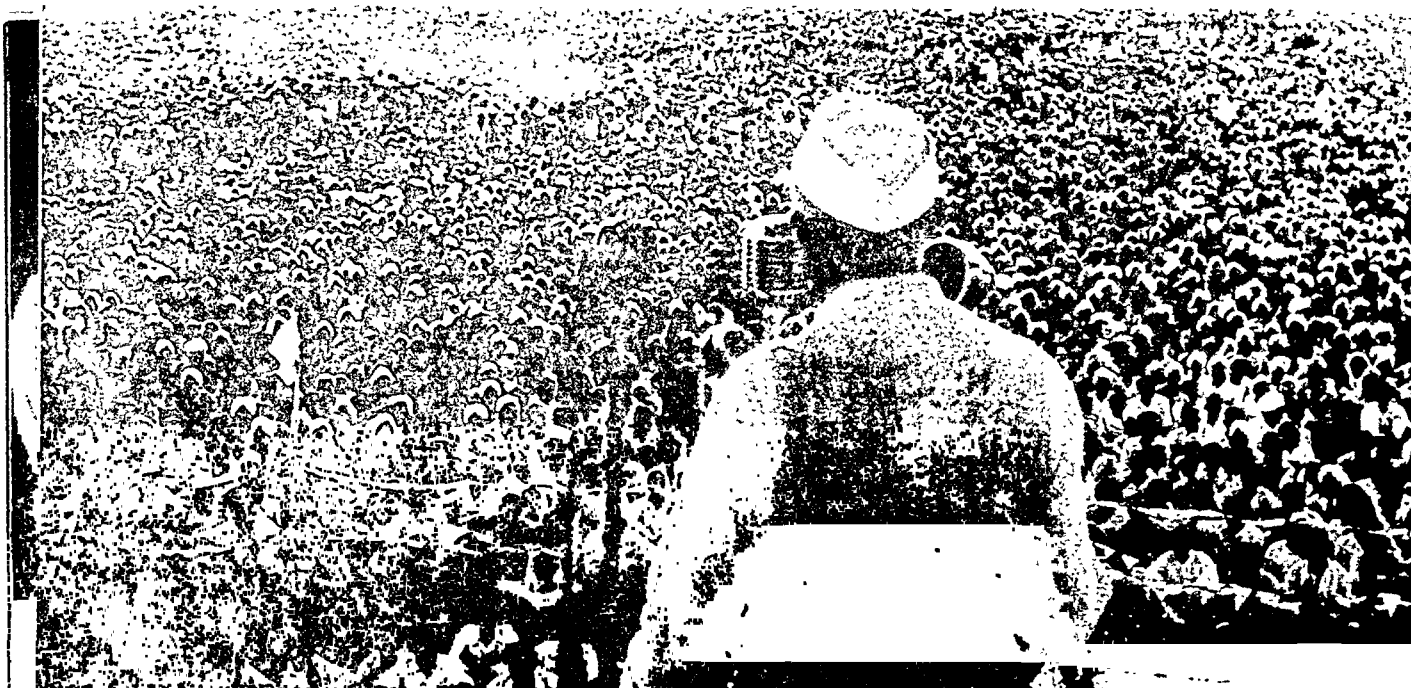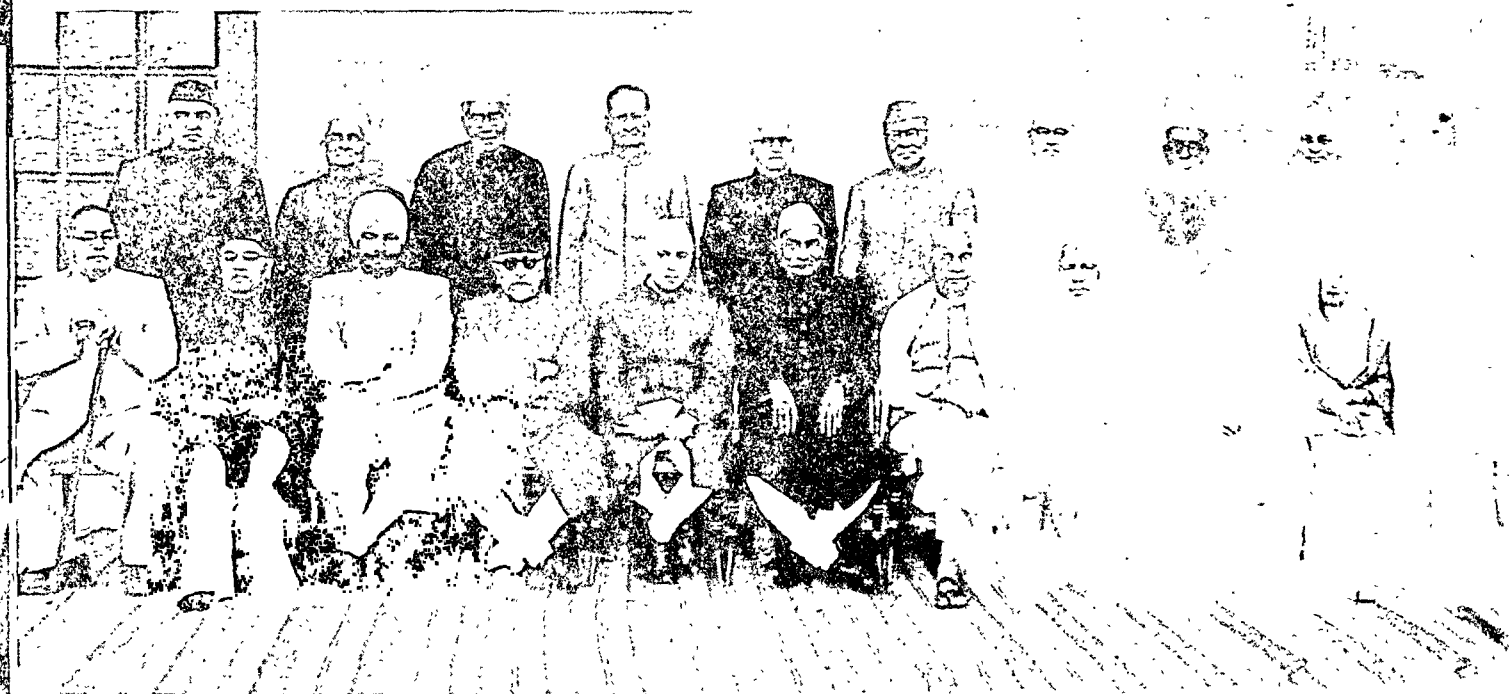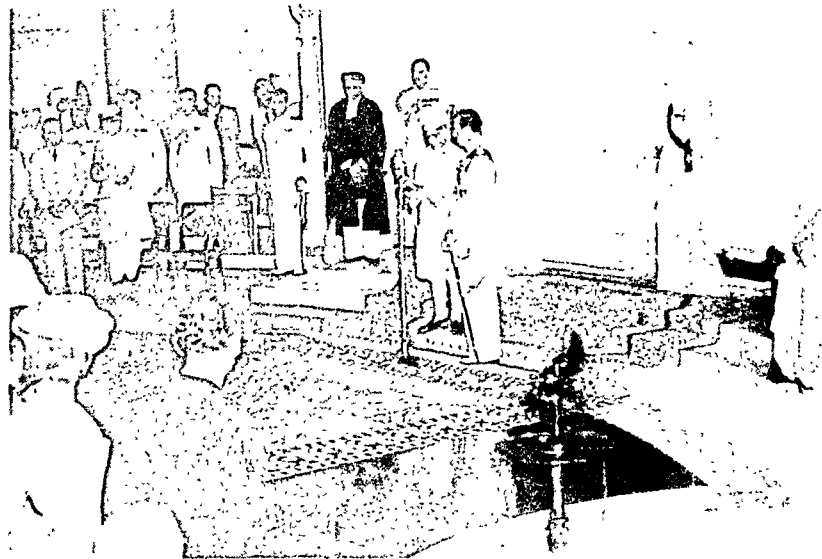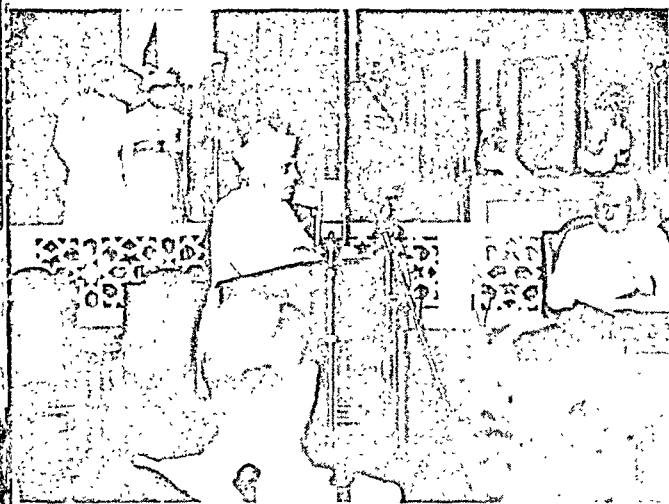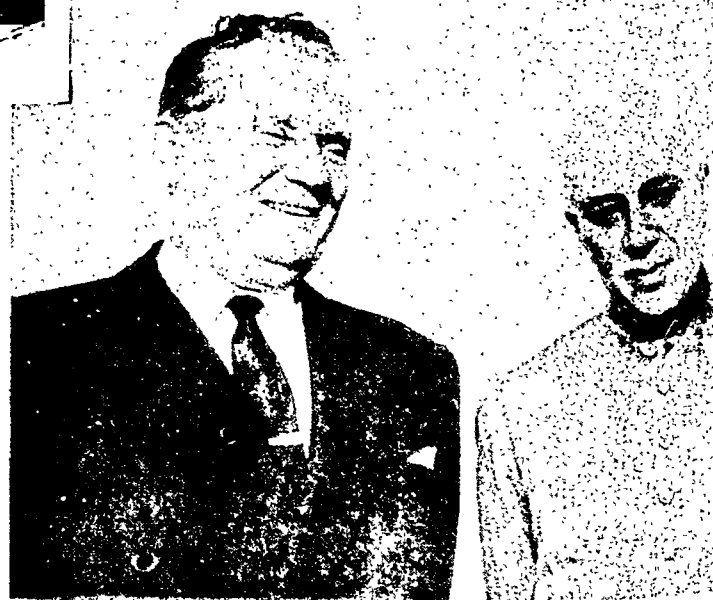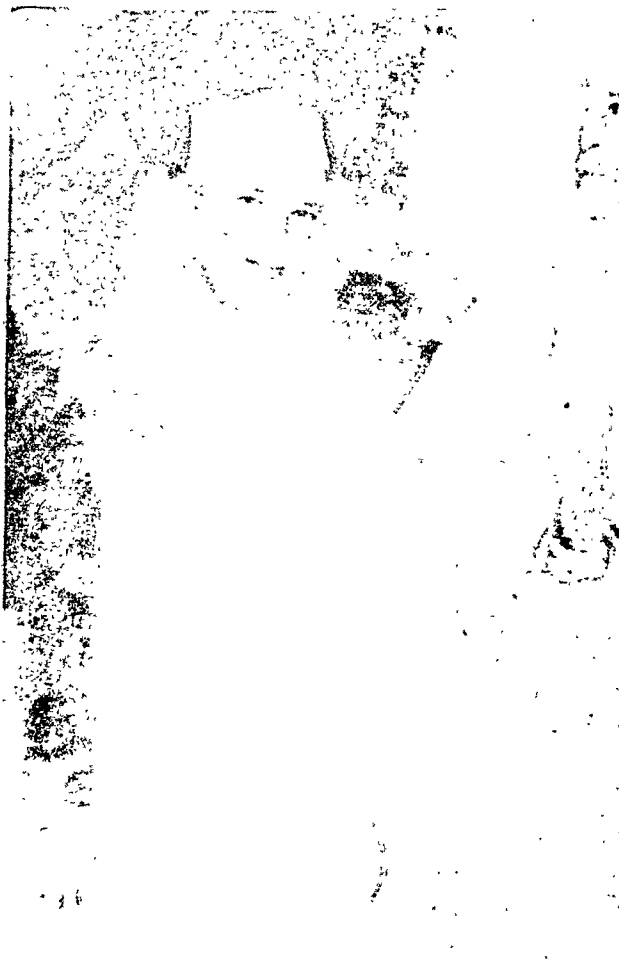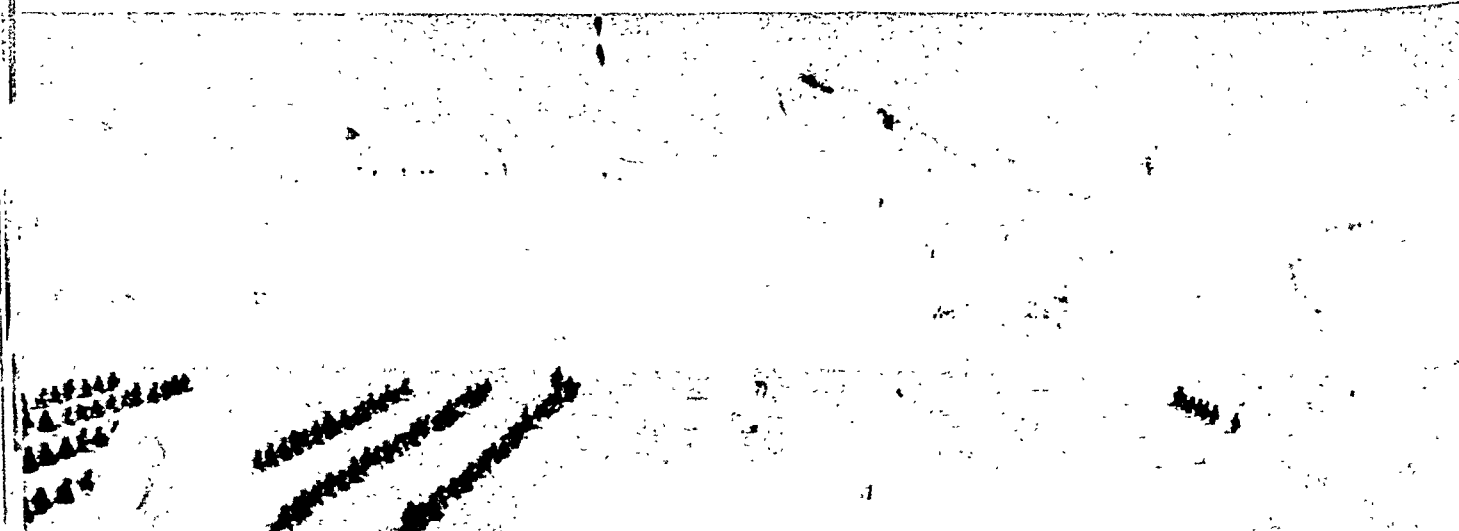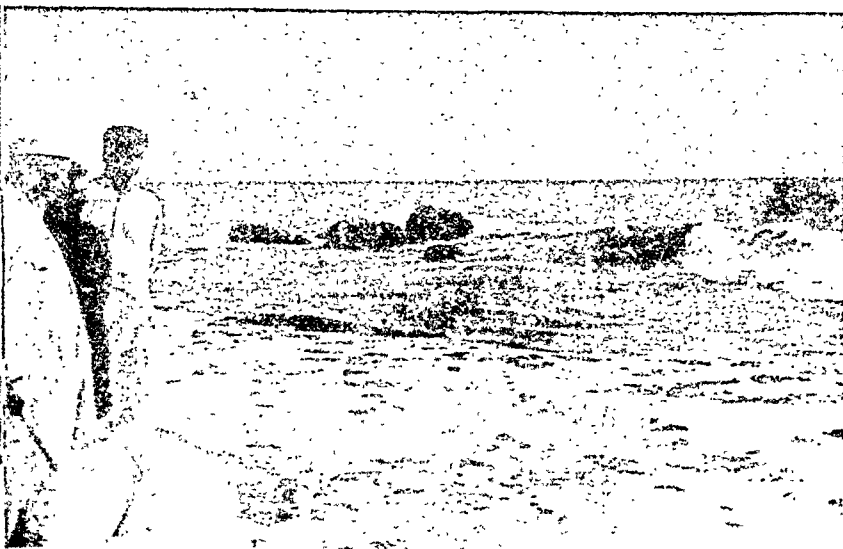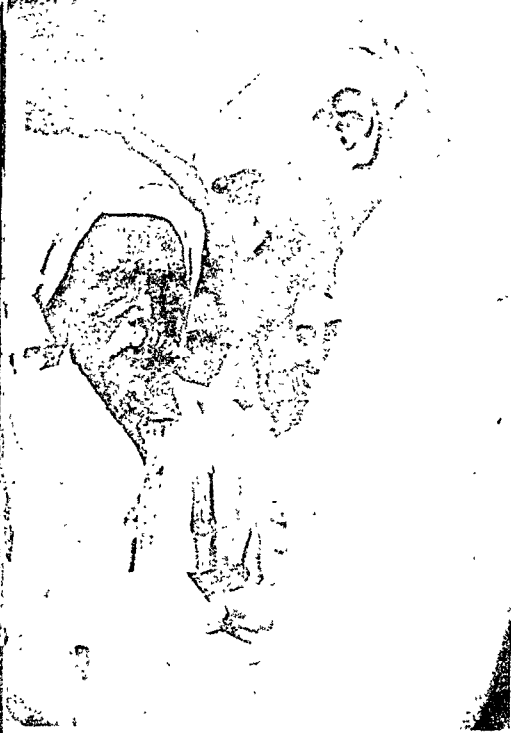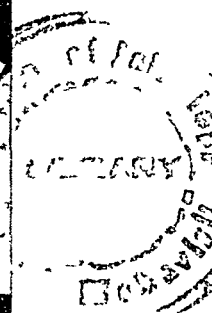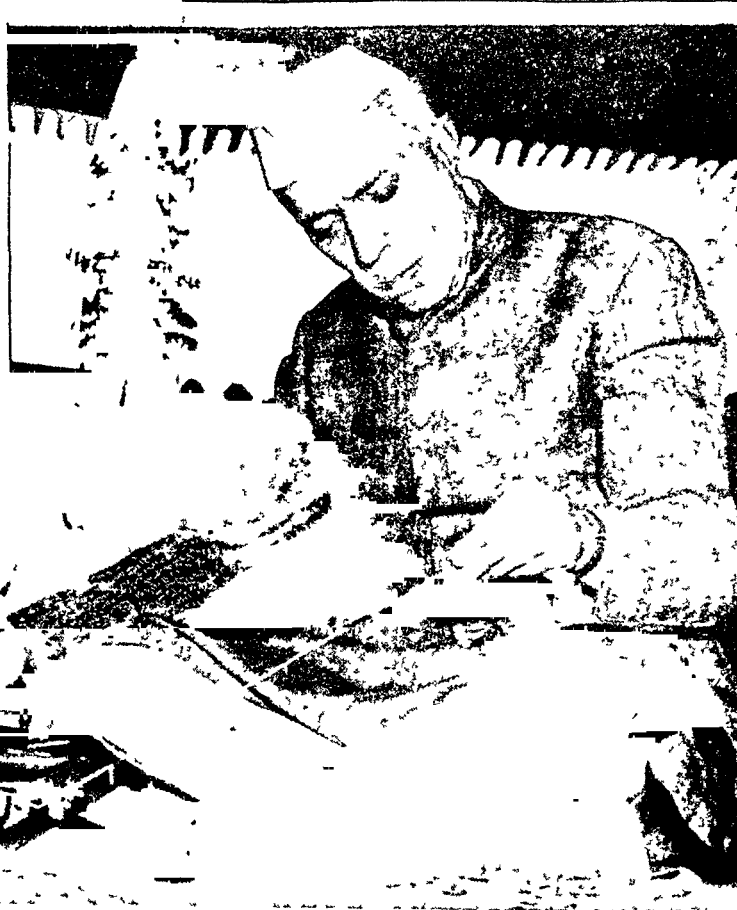
नेहरू

व्यक्तित्व
और
विचार

खंड : २

●

●

वि चा र

इस खण्ड में स्व० जवाहरलाल नेहरू के चुने हुए पत्र, भाषण तथा लेख दिये जा रहे हैं, जो उनके अंतर तथा वहिर्मन की झांकी प्रस्तुत करने के साथ-साथ उन घटनाओं पर भी प्रकाश डालते हैं, जिन्होंने भारतीय स्वातंत्र्य इतिहास को उत्तरोत्तर नया मोड़ दिया था।

२१ जून, १९१२ को विलायत से अपने पिता श्री मोतीलाल नेहरू को लिखा पत्र, जो उस उम्र में भी उनके स्वाभिमान को व्यक्त करता है।

स्वाभिमान का तकाज़ा

मुझे आपके पिछले पत्र से काफी दुःख और अचंभा हुआ है। मुझे इस बात का पूरा पता है कि पिछले कुछ दिनों में मैंने बहुत ज्यादा पैसा खर्च किया है और अपनी पढ़ाई में उतना ध्यान नहीं दिया, जोकि मुझे चाहिए था, और जोकि मैं कर सकता था। इस दूसरी बात का नतीजा उतना बुरा नहीं रहा, जितना कि हो सकता था, और जहांतक सवाल पहली बात का है, एक बार इन मंहगी हालतों में रहने का फसला कर लेने के बाद, मैं मजबूर हो गया था। चालीस पौंड के बारे में मैं इन्कार नहीं कर सकता। अपनी गलती का, आगे चलकर, मुझे काफी नुकसान उठाना पड़ा; जिंदगी में पहली बार मेरी हालत ऐसी हो गई कि मुझे अपनी घड़ी गिरवी रखनी पड़ी।······

आपने मुझे अपने खर्चे का हिसाब भेजने को कहा है।······क्या मैं जान सकता हूं कि क्या मुझे उस एक-एक पैनी का हिसाब रखना होगा जोकि मैं बस के किराये या डाक-टिकट पर खच करता हूं? या तो आप मुझपर यकीन करें, या न करें। और अगर आप मुझपर यकीन करते हैं तो हिसाब की कोई जरूरत नहीं रह जाती। और अगर आप यकीन नहीं करते तो जो हिसाब मैं आपको भेजूंगा उसपर भी यकीन नहीं किया जा सकता। मुझे तो हिसाब भेजने का ख्याल ही कचोटता है और लगता है कि मैं कुछ दिन के लिए रियायती छुट्टी पर भेजा गया हूं। इन हालतों में मुझे इंग्लैण्ड में, या किसी दूसरी जगह में रहना पसंद नहीं है। मेरा ख्याल है कि मेरे लिए एकाएक घर लौटना ही सबसे बेहतर होगा।

सन् १९१५ में नेहरूजी ने पहला सार्वजनिक भाषण इलाहाबाद में दिया था। उसके संबंध में उन्होंने 'मेरी कहानी' में स्वयं यह विवरण प्रस्तुत किया है।

पहला सार्वजनिक भाषण

लड़ाई के शुरू के सालों में मेरे अपने राजनैतिक और सार्वजनिक कार्य साधारण ही थे और मैं आम सभाओं में व्याख्यान देने से बचा रहा। अभी तक मुझे जनता में व्याख्यान देने में डर व झिझक मालूम होती थी। कुछ हद तक इसकी वजह यह भी थी कि मैं यह महसूस करता था कि सार्वजनिक व्याख्यान अंग्रेजी में तो होने नहीं चाहिए और हिंदुस्तानी में देर तक बोलने की अपनी योग्यता में मुझे सन्देह था। मुझे वह छोटी-सी घटना याद है, जो उस समय हुई जब मुझे इस बात के लिए मजबूर कर दिया गया कि मैं पहले-पहल इलाहाबाद में सार्वजनिक भाषण दूं। सम्भवतः यह १९१५ में हुआ। तारीख के बारे में मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता। इसके अलावा पहले क्या हुआ और फिर क्या तरतीब थी, मुझे साफ-साफ याद नहीं है। प्रेस का मुंह बन्द करनेवाले एक कानून के विरोध में सभा होनेवाली थी और उसमें मुझे यह मौका मिला था। मैं बहुत थोड़ा बोला, सो भी अंग्रेजी में। ज्योंही मीटिंग खतम हुई, मुझे इस बात से बड़ी सकुच हुई कि डाक्टर तेजबहादुर सप्रू ने मंच पर पब्लिक के सामने मुझे छाती से लगाकर प्यार से चूमा। मैंने जो कुछ या जिस तरह कहा, उसपर वह खुश हुए हों सो बात नहीं। बल्कि उनकी इस बेहद खुशी का सबब सिर्फ यह था कि मैंने आम सभा में व्याख्यान दिया, और इस तरह सार्वजनिक कार्य के लिए एक नया रंगरूट मिल गया। उन दिनों सार्वजनिक काम दरअसल केवल व्याख्यान देना ही था।

मुझे याद है कि उन दिनों हमें, इलाहाबाद के बहुत-से नौजवानों को, यह भी आशा थी कि, मुमकिन है, डाक्टर सप्रू राजनीति में कुछ आगे कदम रखें। शहर में माडरेट दल के जितने लोग थे, उन सबमें उन्हींसे इस बात की सबसे ज्यादा सम्भावना थी, क्योंकि वह भावुक थे और कभी-कभी मौके पर उत्साह की लहर में बह जाते थे। उनके मुकाबले पिताजी बहुत ठंडे मालूम पड़ते थे। हालांकि उनकी इस बाहरी चादर के नीचे काफी आग थी। लेकिन पिताजी की दृढ़ इच्छा-शक्ति के कारण हमें उनसे बहुत कम उम्मीद रह गई थी, और कुछ वक्त के लिए हमें सचमुच डाक्टर सप्रू से ही ज्यादा उम्मीदें थीं। इसमें तो कोई शक नहीं कि अपनी लम्बी सार्वजनिक सेवाओं के कारण पण्डित मदनमोहन मालवीय हमें अपनी तरफ खींचते थे और हम लोग उनसे देर-देर तक बातें करके उनपर यह जोर डालते थे कि वह जोर के साथ देश का नेतृत्व करें। ●

१४ मई, १९२० को यू० पी० सरकार की ओर से पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने मसूरी में श्री नेहरू को देहरादून जिला छोड़ देने का हुक्म तामील किया था। उसकी प्रतिक्रिया के विद्रोही स्वर की झलक निम्न पत्रों में देखिये।

विद्रोही स्वर

आज सुबह आपसे जो बातचीत हुई उसपर, और सरकार ने मुझसे जो 'पक्का इकरार' चाहा है कि मैं मसूरी में ठहरे हुए अफगान नुमायंदों से न मिलूं और न उनसे कोई ख़तो-खिताबत करूं, इस बाबत भी गौर से विचार किया है। मुझे अफसोस है कि इस बारे में मैं अपना ख्याल नहीं बदल सकता।

जैसाकि आप जानते हैं, मैं मसूरी अपनी माता, पत्नी और बहनों के साथ सिर्फ इसलिए आया हूं कि मेरी पत्नी की तन्दुरुस्ती ठीक नहीं है। मेरा इरादा था कि जबतक मेरे पिताजी को यहां आने की फुरसत नहीं मिलती, तबतक यहां ठहरता। अफगान नुमायंदों से मुझे कुछ सरोकार नहीं है और यह एक संयोग है कि हम दोनों एक ही होटल में ठहरे हैं। सच तो यह है कि उनकी मौजूदगी ने मेरे लिए कुछ परेशानी पैदा की है, क्योंकि मैं उन कमरों को लेना चाहता था, जहां वे ठहरे हुए हैं। इस नुमायंदा-जमात में मेरी दिलचस्पी जरूर है, जैसीकि हर समझदार आदमी को होनी चाहिए, लेकिन उनसे ख़ासतौर से मिलने की कोशिश करने का न कोई मेरा इरादा रहा है और न है। हम लोग यहां पिछले सत्रह दिनों से रह रहे हैं और इस बीच मैंने उनके एक आदमी को दूर से भी नहीं देखा है। आप इस बात को खुद जानते हैं, जैसाकि आपने आज सवेरे मुझे बताया था। लेकिन हालांकि अफगानियों से मिलने का और उनसे खतो-ख़िताबत करने का मेरा कोई भी ख्याल नहीं है, फिर भी सरकार के इशारे से अपनेको किसी तरह बांधने का विचार मुझे सख्त नापसंद है, भले ही ऐसा करना मेरे लिए परेशानी ही क्यों न साबित हो। मुझे भरोसा है कि आप मेरी हालत को समझेंगे। इसलिए यह कहते हुए मुझे दुःख है कि मैं आपकी इस महरबानी-भरी सलाह को मानने से लाचार हूं और सरकार को कोई वचन नहीं दे सकता।

अगर सरकार मुझपर कोई हुक्म करने का फैसला करती है तो इस वक्त तो मैं उसे मानने के लिए तैयार हूं। मेरे लिए यह बड़ी परेशानी की बात होगी कि मैं अपने घरवालों को यहां अकेला छोड़कर यकायक नीचे चला जाऊं। मेरी स्त्री की सेहत ऐसी है कि बड़ी एहतियात से देख-रेख की जरूरत है और मेरी मां तो एकदम अपाहिज हैं और दोनों को बिना देख-रेख के छोड़ना बहुत ही मुश्किल है। मेरे अचानक यहां से चले जाने से मेरे पिताजी की और मेरी योजनाएं बिलकुल उलट-पुलट हो जायंगी और इससे हमें बड़ी परेशानी और फिक्र होगी, लेकिन सरकार के बड़े मामलों में आदमी के ज़ाती आराम पर ध्यान नहीं दिया जा सकता, ऐसा मेरा ख्याल है। १४ मई १९२०।

मैंने फिरसे उस मामले पर पूरी तरह विचार कर लिया है और मुझे अफसोस है कि मैं, सरकार जो चाहती है, वह वचन नहीं दे सकता। ऐसी हालत में अगर सरकार मुझे हुक्म दे तो मैं मसूरी छोड़कर

चले जाने के लिए तैयार हूं। पहले तो मेरी इच्छा हुई थी कि आपका सुझाव मानकर, सरकार के विना लिखित आज्ञा दिये ही, अपने-आप यहां से चला जाऊं; लेकिन फिर विचार करने पर मैं नहीं समझता कि ऐसा करना मेरे लिए मुनासिब होगा, इसलिए मैं जाब्ते के नोटिस की राह देखूंगा। १५ मई १९२०।

आदेश

चूंकि स्थानीय सरकार की राय में यह विश्वास करने के लिए तर्क-संगत कारण है कि इलाहाबाद के जवाहरलाल नेहरू ऐसा काम कर रहे हैं, या करनेवाले हैं, जो जनसुरक्षा के खिलाफ है, इसलिए संयुक्तप्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर, भारत रक्षा कानून, १९१५ के नियम ३ द्वारा प्राप्त अधिकार का प्रयोग करते हुए यह आदेश देते हैं कि इलाहाबाद के कथित जवाहरलाल नेहरू संयुक्तप्रांत के जिला देहरादून की हद के किसी क्षेत्र में न प्रवेश करेंगे, न ठहरेंगे, न रहेंगे, और कथित जवाहरलाल नेहरू को आगाह किया जाता है कि अगर वह जानबूझकर इस आदेश की अवज्ञा करेंगे तो भारत रक्षा कानून, १९१५ के नियम ५ की उपधारा (१) के मातहत, जिसकी एक नकल इस आदेश के साथ नत्थी है, दंडित किये जा सकेंगे। ●

इलाहाबाद में विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के संबंध में पिकेटिंग के जुर्म में गिरफ्तार होने पर १७ मई, १९२२ को अदालत में दिया गया बयान।

जेल नहीं, तीर्थ-यात्रा

मैं यह बयान उन जुर्मों की सफाई में नहीं दे रहा हूं, जो मेरे खिलाफ पेश किये गए हैं, बल्कि इसके जरिये मैं अपनी स्थिति को साफ करना और उन मुद्दों को जाहिर करना चाहता हूं, जिन्होंने मुझे उस तरीके पर अमल करने की प्रेरणा दी कि जो मैंने किया है। मने अपनेको गुनाहगार या बेगुनाह मानने और गवाहों के साथ जिरह करने या किसी भी दूसरी तरह से इस मुकदमे में हिस्सा लेने से इन्कार कर दिया है। मैंने ऐसा इसलिए किया है कि मैं इस अदालत को ऐसी अदालत नहीं मानता, जहां इन्साफ किया जाता हो। जब मैं यह कहता हूं, जहांतक राजनैतिक जुर्मों का संबंध है, हिंदुस्तानी अदालतें महज पुलिस के हुक्मों को वजा लाती हैं, तो मेरा कतई यह मतलब नहीं कि मैं जज महोदय का अपमान कर रहा हूं। इन दिनों तो पहले से कहीं ज्यादा उनका इस्तेमाल इसलिए किया जा रहा है कि उनके जरिये उस सरकार के ढांचे को, जो हिंदुस्तान पर काफी अर्से से बेइन्साफी का राज कर चुकी है, ज्यों-त्यों करके खड़ा रखा जा सके। उसको अब ये तरीके इसलिए अपनाने पड़ गये हैं कि वह अपनी उस शान को फिर से जमाने की कोशिश में है, जो हमेशा के लिए खत्म हो चुकी है।

मेरे खिलाफ यहां यह जुर्म लगाया गया है कि मैंने लोगों को डराया-धमकाया है और उनसे रुपया ऐंठने की कोशिश की है। मेरी गिरफ्तारी के वारण्ट पर हमेशा की तरह दफा '१२४-ए' भी मौजूद है। हालांकि आज इस दफा के अधीन मेरे खिलाफ मुकदमा पेश नहीं हुआ, फिर भी, मेरा इरादा विस्तारपूर्वक बयान देने का है। मैं अपने-आपको कई हिस्सों में जुदा-जुदा नहीं कर सकता, जैसे मेरा एक भाग पिकेटिंग करनेवाला है, दूसरा बगावतवाला और उनसे भी जुदा स्वयंसेवकीवाला। मेरी सारी कार्रवाइयों के पीछे एक ही लक्ष्य रहा है और उसको प्राप्त करने में ही मैंने अपनी सारी शक्ति लगाई है।

दस साल से कम हुए होंगे, जब मैं काफी अर्से तक इंग्लैण्ड में रहने के बाद यहां वापस आया हूं। मैंने वहां स्कूली और यूनिवर्सिटी की तालीम के आम सिलसिले को पूरा किया। मेरे ऊपर हैरो और कैम्ब्रिज की शान-शौकत का रंग हावी हो चुका था और अपनी पसंदगियों और नापसंदगियों में मैं हिंदुस्तानी कम और अंग्रेज ज्यादा था। दुनिया को देखने का मेरा नजरिया अक्सर एक अंग्रेज जैसा ही था और इस तरह मैं जब हिंदुस्तान वापस आया तो मेरे विचार इंग्लैण्ड और अंग्रेजों के हक में उस हदतक हावी थे, जितने किसी भी हिंदुस्तानी के लिए मुमकिन नहीं हो सकते हैं।

आज, दस वर्ष के बाद, मैं यहां दो जुर्मों के साथ अदालत के कटघरे में खड़ा हूं और तीसरा मेरे सर पर लटक रहा है। मैं एक भूतपूर्व कैदी भारत में मौजूदा तरीके की सरकार का बागी हूं, जो पहले भी एक बार राजनैतिक अपराध के लिए जेल जा चुका है। यही है वह परिवर्तन, जो इन सालों में मुझमें आया है। यह जरूरी नहीं जान पड़ता कि इस परिवर्तन के कारणों का भी मैं जिक्र करूं। हर हिंदुस्तानी इन कारणों को जानता है, हर हिंदुस्तानी ने उन्हें महसूस किया है और उनके लिए उसका सर शर्म से झुक जाता है, और अगर उसके दिल में उस पुरानी आग

की नन्हीं-सी चिनगारी भी मौजूद है, तो वह भारत की आजादी हासिल करने के लिए अथक परिश्रम करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर चुका है, ताकि उसके देशवासियों को फिर कभी उन मुसीबतों और अपमानों को सहन न करना पड़े, जो एक गुलाम मुल्क के लोगों को सहन करने पड़ते हैं। हिंदुस्तान में मौजूदा सरकार के खिलाफ बगावत करना हिंदुस्तानियों का एक सिद्धान्त बन गया है और जिस बुराई की यह सरकार नुमायंदगी करती है, उसके खिलाफ नाराजी का प्रचार और उसपर अमल करना उनका खास पेशा बन गया है।

मुझपर धमकी देने और जबरन रुपया वसूली का इल्जाम लगाया गया है। क्या सचमुच ही सरकार इन इल्जामों को मुझपर लगाना चाहती है ? सरकारी गवाहों के बयानों में जो घटनाएं जाहिर की गई हैं, कानून की उस दफा के साथ उनका कोई संबंध नहीं दिखाई देता। मेरा ख्याल है कि इलाहाबाद में हमारे प्रयत्नों की अपूर्व सफलता के कारण सरकार पिकेटिंग करनेवालों के खिलाफ कुछ कार्रवाई करने के लिए प्रेरित हुई है। अगर न्याययुक्त ध्येय के लिए शान्तिपूर्ण पिकेटिंग करना जुर्म है, तो मैं वैसा करने की सलाह देने और मदद करने का जरूर अपराधी हूं। लेकिन मुझे यह जानना बाकी है कि ब्रिटिश भारत के कानूनों के अधीन शान्तिपूर्ण पिकेटिंग करना भी जुर्म बन गया है ? पिकेटिंग करने का हमारा मंशा यह था कि हम कपड़ा बेचनेवालों को उस प्रतिज्ञा पर कायम रख सकें, जो उन लोगों ने मिलकर ली थी। क्या कोई यह यकीन कर सकता है कि हम धमकी देकर या जबरन रुपया वसूल करके इस काम में सफलता पा सकते थे। सारी दुनिया यह जानती है कि हमारी शक्ति अपनी जनता के सहयोग और अपने देशवासियों की सद्भावना पर आश्रित है। दबाव और जबरदस्ती के पुराने तरीकों को हम काम में नहीं ला रहे हैं। हमारे महान् नेता ने जो नये तरीकों के शस्त्र हाथों में दिये हैं, वे हैं—प्रेम, और आत्म-त्याग। हम खुद कष्ट पाते हैं और अपने कष्ट-सहन से अपने विरोधी का दिल बदलने की कोशिश करते हैं।

अपराधपूर्ण धमकी में किसीकी जान को या उसकी जायदाद को नुकसान पहुंचाने की धमकी भी शामिल होती है और इस नुकसान का मतलब है 'गैर-कानूनी' तरीके से नुकसान पहुंचाया जाना। इसी प्रकार जबरन रुपया ऐंठने में किसीको नुकसान पहुंचाने का भय दिखाना और उसके द्वारा उसे अपनी संपत्ति छोड़ने के लिए 'बेईमानी से' मजबूर करना भी शामिल होगा। मैंने सरकारी गवाहों के बयान, यह जानने के लिए, दिलचस्पी के साथ सुने हैं कि इन विचित्र इल्जामों की बुनियाद क्या है। किसीकी जान या माल को क्या नुकसान पहुंचा कि जो 'गैर-कानूनी' नुकसान बताया गया है। हममें से किसी एक की भी 'बेईमानी' कहां जाहिर की गई है ? मुझे एक भी ऐसी शिकायत सुनने में नहीं आई, और न ही कोई सबूत मिला कि जिसमें यह कहा गया हो कि हमने किसीकी जान या माल को नुकसान पहुंचाया हो और उसके फलस्वरूप गैर-कानूनी तरीके से नुकसान पहुंचाना या बेईमानी से अमल करना जाहिर हो। पुलिस और सी. आई. डी. सहित किसी एक भी सरकारी गवाह ने इस तरह की कोई शिकायत नहीं की है। हजारों लोगों ने पिकेटिंग के नजारे को देखा था और इलाहाबाद-भर में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जो हमारे खिलाफ अपराधपूर्ण डरावा दिखाने या हमारे स्वयंसेवकों के मुंह से एक भी कड़े शब्द को इस्तैमाल करने तक का इल्जाम लगा सके। हमारी सफलता का इससे बड़ा कोई सबूत नहीं दिया जा सकता कि जो पुलिस और सी. आई. डी. ने बिना-मांगे ही दे दिया है। मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूं कि हमारा पिकेटिंग अपने ही ढंग का एक नमूना था, जो नम्रतापूर्वक समझाने-बुझाने तथा लोगों को प्रोत्साहित करने पर निर्भर रहते हुए सर्वथा शांतिपूर्ण और सभ्यतापूर्ण था, और जिसमें जबरदस्ती या धमकी का संकेत मात्र भी नहीं था। कपड़ा बेचनेवाले, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे धमकाये गए, जाहिर है कि फरियादी पक्ष है, लेकिन उनमें से किसीने भी ऐसी शिकायत नहीं की है।

दस महीने हुए इलाहाबाद के कपड़ा व्यापारियों ने प्रतिज्ञा की थी कि वे सन् १९२२ के अन्त तक विदेशी कपड़ा नहीं खरीदेंगे। इस प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करनेवालों ने, और इनमें शहर के प्रायः सभी कपड़ा बेचनेवाले शामिल थे, अपनी एक संस्था बना ली थी, जिसका नाम 'व्यापारी मण्डल' रखा गया। उन्होंने अपने पदाधिकारी चुने और एक कमेटी भी बनाई। इस मण्डल ने सबसे पहला यह नियम बनाया कि मण्डल का जो सदस्य अपनी इस प्रतिज्ञा को भंग करेगा और विदेशी कपड़ा खरीदेगा उसे कुछ जुर्माना देना पड़ेगा और यदि वह जुर्माना अदा नहीं करेगा, तो उसकी दुकान पर धरना दिया जायगा। प्रतिज्ञा-भंग के प्रत्येक मामले में मण्डल ही यह तय करेगा कि कितना विदेशी कपड़ा खरीदा गया और क्या जुर्माना होना चाहिए। पिछले बरस, कई अवसरों पर मण्डल की कमेटी ने प्रतिज्ञा-भंग के मामलों पर विचार किया और अपने नियमों के अनुसार जुर्माने किये और जुर्माना वसूल भी किया। कभी-कभी इस कमेटी की प्रार्थना पर पिकेटिंग भी की गई। दो महीने हुए इलाहाबाद के कुछ बजाजों ने बहुत-सा विदेशी कपड़ा खरीदा। यह प्रतिज्ञा का उल्लंघन था और इसलिए इनमें से चन्द-एक की दुकानों पर पिकेटिंग की गई। इसके बाद व्यापारी-मण्डल की कमेटी ने, जो नई बनाई गई थी, उन व्यापारियों पर, जिन्होंने प्रतिज्ञा तोड़ी थी, जुर्माने किये और उसे खुद ही वसूल किया। जुर्माने का यह रुपया अब भी मण्डल के पास मौजूद है। जहांतक मैं जानता हूं, दो सज्जन, जिन्होंने सरकार की ओर से इस मुकदमे में गवाही दी है, व्यापारी-मण्डल के सदस्य हैं और इस प्रकार जुर्माना करने और उसे वसूल करने में उन्होंने भी सहायता दी होगी।

इलाहाबाद की पिकेटिंग के बारे में वस्तुस्थिति यह है। इससे साफ जाहिर है कि न कोई धमकी दी गई और न जबरन रुपया वसूल करने की कोशिश की गई। वास्तव में यह मुकदमा इसलिए चलाया जा रहा है कि धमकी देने और जबरन रुपया वसूल करने की आड़ में कानूनी रूप से जायज़ और शांतिपूर्ण पिकेटिंग को दबाया जाय।

पिकेटिंग का आंदोलन कई महीनों से सारे हिन्दुस्तान में चल रहा है। इस सूबे में भी कई शहरों और बाजारों में पिकेटिंग हुआ है। यहां इलाहाबाद में ही कई बार किया गया है। लेकिन सरकार ने इसके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की, क्योंकि वह जानती थी कि शांतिपूर्ण पिकेटिंग न इंगलैण्ड में और न यहां कोई जुर्म है। लेकिन यह उसके अख्तियार में है कि वह अपनी कलम के ज़रा-से इशारे से शांतिपूर्ण पिकेटिंग को भी गैरकानूनी बना दे। लेकिन वह ऐसा करती है या नहीं करती, इसका जिक्र यहां करने की जरूरत नहीं। किसीको सलाह देना, प्रेरणा करना और दूसरों को यह सलाह देना कि वह अमुक एक काम को करें या उसे न करें, यह हमारा ऐसा हक है जो हम किसी भी हालत में छोड़ने को तैयार नहीं हैं, भले ही सरकार कुछ भी करे। इस देश में हमारे लिए बहुत ही थोड़े हक और सुविधाएं रह गई हैं और उनको भी सरकार छीनने की कोशिश में है। हमने दुनिया को यह जाहिर कर दिया है कि हम स्वतंत्र सहयोग के अधिकार को कितना कीमती समझते हैं। हजारों की तादाद में गिरफ्तार होने और सरकार की ओर से इसके विरोध में विज्ञप्तियां जारी करने के बावजूद हमारे स्वयंसेवक मैदान में बराबर बढ़े आ रहे हैं। हम वाणी-स्वतंत्रता के अपने हक पर किसी भी प्रकार की पाबंदी न तो स्वीकार करेंगे और न ही कर सकते हैं। करीब २५ साल हुए, एक महान अंग्रेज जज ने हाउस ऑव लार्डस में वाणी-स्वातंत्र्य के हक के बारे में कहा था, "किसी भी व्यक्ति को इस बात का हक है कि वह दूसरों को समझाने, प्रेरणा करने या हुक्म देने के लिए चाहे कुछ भी कहे, बशर्ते कि वह धोखा देने की खातिर मिथ्या प्रचार नहीं करता अथवा कानूनी दृष्टि से ऐसी कोई भूल नहीं करता कि जिसका माध्यम वाणी हो सकती है। जबतक यह साबित न हो जाय कि उसने अपने इस अधिकार का नाजायज इस्तेमाल किया है, उसे क्यों अपनी सफाई देने या अपनेको न्याय-संगत साबित करने के लिए

केवल इसलिए तलब किया जाय कि उसके शब्दों से किसी दूसरे के काम में विघ्न पड़ा है ।" वाणी-स्वातंत्र्य के इस हक पर हम जमे रहेंगे, भले ही इसके लिए हमें कितना ही त्याग करना पड़े ।

कई कारणों से मुझे इस बात की खुशी है कि मुझपर पिकेटिंग के लिए मुकदमा चलाया जा रहा है । मेरे इस मुकदमे से विदेशी कपड़े के बहिष्कार का प्रश्न और भी सामने आ जायगा । मुझे विश्वास है कि जब इलाहाबाद और इस सूबे के लोग इस बहिष्कार की अहमियत को समझ लेंगे तो वह विदेशी कपड़े का परित्याग कर देंगे । वह इसको अपवित्र ठहरायंगे और इसे छूना तक भी पाप समझेंगे । अगर वे उन बुराइयों, मुसीबतों और गरीबी पर विचार करें, जो विदेशी कपड़े के इस्तेमाल से इस चिर-पीड़ित देश में आई हैं, तो इसके पहनने के विचार मात्र से ही जितनी भयंकर भावनाएं मेरे दिल में पैदा होती हैं, उनके दिलों में भी कुछ हद तक पैदा होंगी । वे इस तरह की दलीलें पेश नहीं करेंगे कि पुराने कपड़ों को तो पहनना ही है और खुशियों के मौकों पर तो बढ़िया कपड़े पहनना लाजमी होता है । वे जान जायंगे कि भारत और उसके भूख से तड़पते लाखों व्यक्तियों का कल्याण इसीमें है कि चरखा चलाया जाय और खादी पहनी जाय । तब वह विदेशी कपड़े को उतार फेंकेंगे और उसे आग की लपटों में झोंक देंगे या कूड़े में फेंक देंगे । मेरा निवेदन है कि इलाहाबाद के बजाज अपनी उस प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहें, जो उन्होंने दो बार ली है और इस प्राचीन तथा पवित्र नगरी में विदेशी कपड़े का पूरा-पूरा बहिष्कार करने में कोई भी कसर बाकी न छोड़ें । इन बजाजों में से कुछने इस मुकदमे में सरकार की ओर से गवाही दी है । मुझे उनके खिलाफ कोई शिकायत नहीं है । कैद की जितनी सजा मुझे दी जायगी मैं उसे खुशी के साथ भुगतूंगा बशर्ते कि मुझे इस बात का भान हो जाय कि इसके जरिये उनके दिलों पर कुछ असर हुआ है और इस महान कार्य के लिए मैंने उनके दिलों पर विजय पा ली है । मैं इस शहर और सूबे की जनता से यह अपील करूंगा कि अपने देश की खातिर वह कम-से-कम इतना तो जरूर करे कि वह चर्खा चलाये और खद्दर पहने ।

मुझपर और मेरे साथी पर धमकी देने और जबरन रुपया ऐंठने का भी इल्जाम लगाया गया है । मैं चाहता हूं कि पुलिस और सरकारी कर्मचारी अपने अन्तःकरण में झांकें, अपने दिलों को टटोलें और बतलायें कि पिछले डेढ़ वर्षों में उनमें से कईयों ने क्या-कुछ किया है ! सारे सूबे में एक से दूसरे कोने तक त्रास, आतंक, घूंसखोरी और जबरन रुपया ऐंठने का दौर जारी है और जो लोग इसके दोषी हैं, वे कांग्रेस-जन या हमारे स्वयंसेवक नहीं, बल्कि सरकार के पिट्ठू हैं, जो अपने मालिकों की जानकारी और मर्जी से ही अक्सर यह काम करते आये हैं । इतने पर भी न तो उनपर मुकदमा चलाया गया और न ही उन्हें कोई सजा दी गई । इसके खिलाफ उनकी पीठ ठोंकी जाती है और उन्हें तरक्की दी जाती है ।

मैंने और मेरे साथियों ने खुद कई आतंकपूर्ण और अमानवीय घटनाओं की तहकीकात की है । हमने देखा है कि मर्दों और औरतों को किस बुरी तरह बेइज्जत किया गया है । सीतापुर में छाये हुए आतंक-राज्य को हमने अपनी आंखों देखा है। शोहरत गंज में किये गए अत्याचारों की भी हमने जांच की है और हमें मालूम है कि बलिया के सैकड़ों बहादुर कार्यकर्त्ताओं को केवल इस अपराध के लिए जेलों में ठूंस दिया गया है कि वे कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता तथा पदाधिकारी थे । इनके अलावा वे गरीब और पद-दलित किसान हैं, जिनकी आंखों से निराशा टपकती है और जो सुबह से शाम तक पशुओं की तरह सिर्फ इसलिए मेहनत करते हैं, कि दूसरे लोग उनकी कमाई पर गुलछर्रे उड़ायें । हमने देखा है कि उनको कैसे तंग किया जाता है और उनकी हालत किस प्रकार दयनीय बना दी गई है । उनकी जिंदगी इस कदर बोझिल बन गई है कि वह उसे सहन नहीं कर सकते । मुझे जिलेवार इसके बारे में जिक्र करने की

जरूरत नहीं है। प्रायः सभी जिलों की इसी तरह की दुखभरी कहानियां हैं। धमकियां देना और आतंकित करना सरकार के मुख्य साधन बन गये हैं। इन तरीकों से सरकार जनता को दबाकर रखना और उनके दिलों की घृणा को कुचल डालना चाहती है। क्या उसका यह ख्याल है कि ऐसा करने से वह जनता के अन्दर अपने प्रति प्रेम पैदा कर सकेगी और उसे अपने साम्राज्य का वफादार पुर्जा बना सकने में सफल होगी ?

प्रेम और वफादारी दिल से होती है। इनको बाजार में नहीं खरीदा जा सकता, और संगीन की नोक के बल पर तो इन्हें कभी भी हासिल नहीं किया जा सकता। वफादारी एक अच्छी चीज है। लेकिन हिंदुस्तान में कुछ शब्दों का अर्थ गलत बना दिया गया है। यहां वफादारी का अर्थ बन गया है मातृभूमि से गद्दारी करना। यहां वफादार वह है, जो अपने देश या ईश्वर के प्रति 'वफादार' नहीं, बल्कि अपने विदेशी मालिकों की दुम के पीछे लगा रहता है। लेकिन हमने वफादारी शब्द को अब उसकी घोर पतितावस्था से निकाल लिया है और भारत की सभी जेलों में ऐसे सच्चे वफादार लोग मिलेंगे, जिन्होंने अपने ध्येय, अपने विश्वास और देश को सबसे ऊपर माना है और भयंकर परिणामों की परवा न करते हुए उनके प्रति वफादार हैं। उनको आकाशवाणी सुनाई दे गई है। उन्होंने आजादी का नजारा देख लिया है और वे तबतक चैन नहीं लेंगे जबतक अपनी दिली मंशा हासिल नहीं कर लेते। इंगलैण्ड अपनी सेनाओं और समुद्री बेड़े के कारण एक शक्तिशाली देश है, लेकिन आज उसे ऐसे साधनों का मुकाबला करना पड़ा है, जो उससे भी ज्यादा शक्तिशाली हैं। उसकी सेनाओं और बेड़े को एक ऐसे राष्ट्र के कष्ट-सहन और आत्म-त्याग से मुकाबला करना पड़ रहा है, जो आज़ाद होने का निश्चय कर चुका है। इस संघर्ष का क्या परिणाम निकलेगा, इस बारे में किसी भी व्यक्ति को संदेह नहीं हो सकता। हम अपनी आजादी, अपने विश्वास और अपने देश की आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं। हम किसी राष्ट्र या लोगों को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहते। हम किसी दूसरे देश पर हुकूमत करना नहीं चाहते; लेकिन अपने मुल्क में हम पूरी तरह आज़ाद रहना चाहते हैं। इंगलैण्ड ने पिछले डेढ़ सौ सालों या उससे भी ज्यादा अर्से में हमारे साथ निर्दयतापूर्वक व्यवहार किया है, और इतने पर भी उसने पश्चात्ताप नहीं किया है और न अपना गलत रास्ता ही बदला है। डेढ़ साल हुआ, भारत ने उसे मौका दिया था, लेकिन उसने अपनी भौतिक शक्ति से मदान्ध होकर इस मौके से फायदा नहीं उठाया। भारत की जनता ने इंगलैण्ड के मामले की जांच कर ली है और उसने अपना फैसला भी दे दिया है, और अब इस फैसले से पीछे हटने का सवाल हीं पैदा नहीं होता। हिन्दुस्तान आज़ाद होगा, इसमें कोई शक नहीं, लेकिन, अगर इंगलैण्ड आज़ाद भारत की दोस्ती चाहता है, तो उसे प्रायश्चित्त करना होगा और उसे अपने अनेक पापों को धोना होगा, जिससे कि वह आनेवाली व्यवस्था में उचित स्थान पाने के योग्य हो सके।

मैं अपनी मंशा और बहुत खुशी से दुबारा भी जेल जाऊंगा। बेशक, जबसे हमारे सन्त और प्रिय नेता (गांधीजी) को जेल की सजा हुई, जेल हमारे लिए स्वर्ग और तीर्थ-स्थान बन गया है। भीमकाय और विशाल हृदय मौलाना शौकतअली, बहादुरों में सबसे बहादुर उनके भाई और हमारे हजारों साथी जेलों में पड़े हैं। जेल के बाहर तो अकेलापन-सा महसूस होता है और खुदगर्जी पुकार-पुकारकर कहती है कि हम भी जल्दी-से-जल्दी जेल में पहुंच जायं। शायद इस बार मुझे लम्बी सजा मिले। लेकिन सजा लम्बी हो या न हो, मैं इस यकीन के साथ जेल जा रहा हूं कि जेल से लौटने पर भारत में स्वराज्य का स्वागत करूंगा।

मैंने ब्रिटिश सरकार के बारे में कई कड़ी बातें कही हैं, लेकिन इस कारण मैं अवश्य उसका कृतज्ञ हूं कि उसने निहायत शानदार लड़ाई में शामिल होने का हमें मौका दिया। बेशक, बहुत कम लोगों को ऐसा सुनहरा मौका मिलता

है। जितना अधिक कष्ट हमें सहन करना होगा, जितनी अधिक कठिन परीक्षाएं हमारे सामने आयंगी, भारत का भविष्य उतना ही ज्यादा उज्ज्वल होगा। भारत लाखों सालों से जिन्दा इसलिए नहीं है कि वह अव खत्म हो जाय। भारत ने अपने श्रेष्ठ २५,००० सपूत जेलों में इसलिए नहीं भेजे कि इस संघर्ष को खत्म कर दें। भारत का भविष्य तो निश्चित है। हममें से कुछ स्त्री-पुरुष, जिनमें श्रद्धा कम है, कभी-कभी संदेह करने लगते हैं, लेकिन जिनके आंखें हैं, वे देख सकते हैं कि भारत का भविष्य कितना शानदार है !

मुझे अपनी खुशकिस्मती पर हैरानी होती है, आज़ादी की लड़ाई में शामिल होकर भारत की सेवा करना, वड़ी इज्जत की बात है; और महात्मा गांधी जैसे नेता की सरपरस्ती में सेवा करना तो दोहरी खुशकिस्मती है। एक भारतीय के लिए इससे बढ़कर और क्या खुशकिस्मती हो सकती है कि या तो अपने उद्देश्य को हासिल करने में मर जाय या उस शानदार सपने को पूरा करे ! ●

श्री महादेव देसाई को उनके पिता की मृत्यु पर अगस्त १९२३ को लिखा पत्र।

दुःख-दर्द के साझीदार

यह कुछ अजीब बात है कि जिन पत्रों को लिखने की हमारी सबसे ज्यादा इच्छा रहती है, वे अक्सर देर में लिखे जाते हैं। ज़ाब्ते के नोट और कामकाजी चिट्ठियां तो चली जाती हैं, पर जिन चिट्ठियों को लिखने का हम सबसे ज्यादा विचार करते हैं, वे बिना लिखी रह जाती हैं। ६ या ७ अगस्त से, जबकि तुम्हारा मार्मिक पत्र मुझे नागपुर में मिला, मैं हर रोज तुम्हारे और उस पत्र के बारे में सोचता रहा हूं। खबर मुझे नागपुर स्टेशन पर गाड़ी से उतरते ही मिली। रामदास ने मुझे बताई। मेरा दिल तुम्हारे दुःख से दुखी हुआ, क्योंकि मैं अच्छी तरह समझता था कि तुम कैसी तकलीफ में होगे। हममें से कुछ, जिन्होंने भूलें की हैं या काफी कसूर किये हैं, दुनियादारी के मामले में मजबूत होगये हैं, लेकिन वे ही बातें तुम्हारे जैसे सीधे आदमी को ज्यादा मुश्किल मालूम होंगी और मैं तुम्हारी कसक और आत्म-निंदा की मनोदशा को अच्छी तरह समझ सकता हूं।

मुझे भी पिता के प्रेम की गहराइयों को अनुभव करने का सौभाग्य मिल रहा है; और अनेक बार मैंने सोचा है कि क्या उस प्रेम और लालन-पालन का, जो जन्मदिन से मुझपर बरसाया गया है, मैं किसी भी रूप में कुछ बदला चुका सका हूं? मुझे इस सवाल का सामना अक्सर करना पड़ा है और हर बार मुझे अपने किये पर शरम आई है। कभी बड़े सवाल बीच में आ पड़े हैं और मैं परेशान और कशमकश में रहा हूं और क्या करना चाहिए, यह नहीं जान सका हूं। बापू ने, सत्याग्रह-सभा के पुराने दिनों में जब मेरे मन का संघर्ष सहने की सीमा को पार कर गया था, मुझे जो सलाह दी थी, वह मैं कभी नहीं भूलूंगा। उनके तसल्ली देनेवाले शब्दों ने मेरी दिक्कतें कम कीं और मुझे कुछ शांति मिली। मार्च १९१९ के वे दिन याद हैं, जब तुम और मैं पहली बार दिल्ली में प्रिंसिपल रुद्र के घर पर मिले थे? बापू, तुम, मैं और वह छोटा डाक्टर साथ-साथ इलाहाबाद गये। फिर एक-दो दिन बाद तुम लखनऊ या शायद बनारस चले गये थे। जो हो, 'बी.' के सुझाव पर मैं तुम्हारे साथ प्रतापगढ़ तक गया और रास्ते में वह और मैं बात करते रहे। यह मेरी उनके साथ पहली गंभीर और काफी लंबी चर्चा थी, चार बरस पहले। वे साल कितने लंबे लगते हैं!

तुम्हारे पिता से मिलने का मुझे सौभाग्य नहीं हुआ, लेकिन सिविल वार्ड के हमारे बगीचे में तुमने उनके बारे में मुझे बताया था। मैं भली-भांति इसकी कल्पना कर सकता हूं कि उन्हें अपने बेटे पर गर्व रहा होगा और इस बात पर पूरा-पूरा संतोष रहा होगा कि उनकी तकलीफों और मेहनत का कितना कीमती नतीजा निकला। तुम अपनेको बेकार दुखी कर रहे हो। अपने पिता से सेवा का जो पाठ तुमने सीखा, उसे तुम बाहर दुनिया में पहुंचा रहे हो और निश्चय ही अपनी निजी मिसाल से तुमने बहुतों पर असर डाला है। तुम्हारे पिता इसे बुरा नहीं मान सकते थे, और न यही पसंद करते कि तुम देश की व्यापक सेवा छोड़कर गृहस्थी के तंग दायरे में रहो। ●

ब्रसेल्स में १० फरवरी, १९२७ को साम्राज्यवाद-विरोधी अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में दिया गया भाषण।

शोषण की दर्दभरी कहानी

मैं बड़ी खुशी के साथ इंडियन नेशनल कांग्रेस की ओर से आपका दिली शुक्रिया अदा करता हूं कि जिसने मुझे साम्राज्यवाद का मुकावला करने के इस अंतर्राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे के साथ अपने मुल्क की सियासी तहरीक का संवंध जोड़ने के लिए तैनात किया है। भारत में हमें साम्राज्यवाद की पूरी ताकत का तजुरवा हो चुका है। साम्राज्यवाद का मतलव हम वहुत अच्छी तरह समझते हैं और इसलिए हमें उस हर तहरीक में दिलचस्पी है, जो साम्राज्यवाद के खिलाफ हो। अगर आप एक ऐसी जिन्दा मिसाल देखना चाहते हैं कि जिससे आपको साम्राज्यवाद के ढांचे को, और उसके नतीजों को समझने में मदद मिले तो मेरी राय में हिंदुस्तान से वढ़कर कोई दूसरी मिसाल नहीं है। जैसाकि हमारे सदर ने कहा है, हिंदुस्तान की अंदरूनी हालत से यह पता चल जाता है कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद किस तरह मजदूरों को दवाता और उनका शोषण करता है। भारत में आपको साम्राज्यवाद के हर पहलू की अजीव मिसालें मिलेंगी, जिनपर कि आप गौर कर सकते हैं। चाहे आप चीन से या मिस्र से या किसी दूर के मुल्क से आये हों आपके और हमारे हित एक ही हैं और हिंदुस्तान का मसला भी आपके लिए उतना ही अहम और दिलचस्प है।

मैं यहां आपके सामने हिंदुस्तान के शोषण का सारा इतिहास पेश नहीं कर सकता कि किस तरह उसके साथ वुरा सलूक किया जाता है, कैसे उसे कुचला और लूटा जाता है। यह वहुत लंवी और दर्दभरी कहानी है, और इन मामलों में मैं सिर्फ़ यही कर सकता हूं कि मैं आपके सामने सवसे अहम सवालों में से एक या दो को पेश करूं कि जिनपर हमें खास तौर से इस अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में विचार करना है। आपने कई तरह की मारकाट और कत्ल व खूनों के वारे में सुना होगा और अमृतसर के वाकयात की भी आपमें से कइयों को जानकारी होगी। आप यह न समझें कि क्योंकि इस मामले ने दूसरे कइयों की निस्वत वहुत ज्यादा हंगामा पैदा किया है, इसलिए अंग्रेजों के आने के वाद से हिंदुस्तान के इतिहास में यह कोई एक ही और सवसे भद्दा वाकया है। आप अच्छी तरह जानते हैं कि हिंदुस्तान में अंग्रेजों ने एक सूवे को दूसरे सूवे से लड़ाया और आखीर में अपने पैर यहां मजवूती से जमा लिये। अपनी मौजूदगी के समूचे दौर में उन्होंने 'फूट डालो और हुकूमत करो' के पुराने तरीके पर अमल किया है। मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि आज भी वह इसी नीति पर चल रहे हैं। हिंदुस्तान पर कव्जा जमाने का उनका शुरू-शुरू का इतिहास इतना खौफनाक और दर्दनाक है कि उसकी मिसाल दुनिया-भर के इतिहास में नहीं मिल सकती। अंग्रेज इतिहासकारों तक ने, जो यकीनन निष्पक्ष नहीं हैं, यह मान लिया है कि व्रिटिश हुकूमत में हिंदुस्तान का शुरू-शुरू का इतिहास लूटमार का जमाना था।

शायद आप उस वाकया से भी वाकिफ होंगे, जो ७० साल पहले हुआ था और, जिसे सन् ५७ के गदर के नाम से पुकारा जाता है। इसे उस नाम से पुकारा तो गया है, लेकिन अगर किस्मत को कुछ दूसरा ही मंजूर होता और वागी

कहे जानेवालों को कामयाबी का सेहरा मिल जाता तो आज उसका नाम हिंदुस्तान की आजादी की लड़ाई होता। यह सब कहने का मतलब यह है कि अमृतसर की घटना में जो कुछ हुआ है, वह तो सन् ५७ के गदर की घटनाओं के मुकाबले में कुछ भी नहीं है। लेकिन उसके बाद भी हिंदुस्तान में ऐसे वाकयात बराबर और काफी तादाद में होते रहे हैं और आज भी गोलियां तो अक्सर चलती ही रहती हैं। हमारे कितने ही साथियों और दोस्तों को बिना किसी जुर्म के, और बिना कोई मुकदमा चलाये जेलों में डाल दिया जाता है। हमारे बहुत-से साथियों ने तो जेल को ही अपना घर बना लिया है या उनमें कई जिलावतन हैं, जो अपनी मातृभूमि में वापस नहीं आ सकते ।

इससे कुछ सनसनी तो फैलती है, लेकिन असली नुकसान जो हिंदुस्तान में अंग्रेज कर रहे हैं, वह दरअसल शोषण है, जो गोली मारने और फांसी पर लटकाने से भी ज्यादा कड़ा है । उसकी वजह से कभी-कभी बदअमनी भी हो जाती है। लेकिन असल बात वह तरीका है, जिसके जरिये किसानों और मजदूरों का शोषण किया जाता है। उसीकी वजह से हिंदुस्तान मौजूदा हालत को पहुंचा है। हमने न सिर्फ पुराने जमाने के बल्कि मौजूदा जमाने के भी इतिहास में हिंदुस्तान की खुशहाली के बारे में पढ़ा है। भारत इतना खुशहाल और भरा-पूरा था कि उसकी दौलत की कशिश से दुनिया के कोने-कोने से कई कौमें यहां आईं, लेकिन अगर आज कोई उसको देखे, तो उसे दिल दहलानेवाली गरीबी चारों ओर दिखाई देगी। यहां उसे ज्यादातर ऐसे लोग मिलेंगे, जिन्हें यह मालूम नहीं कि उन्हें शाम का भी खाना नसीब होगा और अक्सर उन्हें भूखों ही रहना पड़ जाता है। हर कहीं भूखे या अध-भूखे लोग दिखाई पड़ेंगे। यह है आज का हिंद। यह साबित करने के लिए कि हिंदुस्तान की माली हालत को कितना नुकसान पहुंचा है, मुझे आंकड़े या कोई सबूत देने की जरूरत नहीं है। अगर इस सिलसिले को रोकने के लिए कोई पक्का कदम नहीं उठाया गया तो एक राष्ट्र के रूप में हिंदुस्तान का नामोनिशान मिट जायगा।

शायद आप जानते होंगे कि चंद साल हुए (अंग्रेजों के भारत में आने के फौरन बाद ही) उन्होंने अपने उद्योगों को अपने लिए फायदेमंद बनाने की खातिर किन हथकंडों को अपनाया था। उन दिनों भी, जब अंग्रेजों ने इस नये मंतक को जाहिर नहीं किया था कि वे हिंदुस्तान की जनता के सरपरस्त हैं, बड़ी सख्ती के साथ हमारा दमन किया जा रहा था। लेकिन यह जाहिर ही है कि हमारा बेरहमी के साथ और खुलेआम शोषण हुआ और हिंदुस्तान के सब उद्योगों को तहस-नहस कर दिया गया। यह बात काफी बुरी थी, लेकिन धीरे-धीरे इससे भी बदतर हालत यह हुई कि हमारी तालीम का पुराना तरीका बर्बाद कर दिया गया और हमें निहत्था बना डाला गया। हिंदुस्तानी जनता की भावना को कई तरीकों से कुचला गया, जिसका मुद्दा यह था कि जनता तामीरी काम करने के भी लायक न रहे। हिंदुस्तान में अंग्रेजों की जाहिरा नीति यह थी कि हम लोगों में फूट डाली जाय। हमें निहत्था करने के बाद अब वह कहते हैं कि हम अपने देश की हिफाजत करने के लायक भी नहीं हैं। हमारी तालीम का तरीका बर्बाद करके उसकी जगह हमें ऐसी बेहूदा तालीम दी जाती है कि जिसका मक़सद गलत इतिहास पढ़ाकर हमें अपनी मातृभूमि से नफरत और इंगलैण्ड की इज्जत करना सिखाया जाता है। यह सब करने के बाद अब वह कहते हैं कि आज़ाद कौम की तरह रहने के लिए हमारी संस्कृति भी अधूरी है।

अंग्रेजी अखबारों में इन दिनों यह प्रचार किया जा रहा है कि हिन्दुस्तानी आपस में लड़ते हैं। इस बारे में भी यह समझ लेना चाहिए कि यह हद दर्जे की ज्यादती है। यह भी अंग्रेजों की ही चाल है कि वह मुल्क में खुद झगड़े कराते हैं और जहां ऐसे झगड़े पैदा हो जाते हैं, उनको बढ़ाते रहते हैं और इन झगड़ों को जिन्दा रखने के लिए हर कोशिश की जाती है। ब्रिटेन की यही नीति है, चाहे उससे वह कितना ही इन्कार क्यों न करे।

आजकल भारत की क्या हालत है ? हम शोषण का जिक्र कर रहे थे। इसका हमें पूरी तरह तजुरबा है। हमारा इकहरा ही नहीं, लेकिन अक्सर दुहेरा और तिहेरा शोषण होता है। भारत के ऐसे हिस्से भी हैं, जिन्हें देशी रियासतें कहा जाता है, जहां ब्रिटेन की छत्र-छाया में जागीरदारी का चलन जारी है। अक्सर अंग्रेज लोग इनकी ओर संकेत करके दुनिया को और हमें भी यह बताया करते हैं कि भारत के इन हिस्सों को देखो कि जहां स्वराज्य है। इनकी निस्वत भारत का वाकी हिस्सा ज्यादा उन्नत है। लेकिन अंग्रेज लोग एक वात वतलाना भूल जाते हैं और वह यह है कि ये रियासतें उन्हींकी देख-रेख में चलती हैं और वह खुद ही वहां तरक्की नहीं होने देते। अंग्रेजों ने ही सबसे पहले उनको गुलाम वनाया और अब उनको तरक्की भी नहीं करने देते।

भारत के बड़े-वड़े जमींदारों का ख्याल कीजिये। वहां भूमि पट्टा प्रणाली है, जो भारत के एक वड़े भाग में जागीरदारी के चलन के रूप में मौजूद है। अंग्रेजों ने ही इसे जारी किया और पनपाया। जवतक ब्रिटिश सरकार रजामंदी न दे, इस इंतजाम में तबदीली नहीं हो सकती। देसी राजे और वड़े जमींदार भी भारत में अंग्रेजी सरकार की नीति के हिमायती हैं, क्योंकि आज़ाद भारत में किसानों का शोषण नहीं किया जा सकेगा। इसी तरह भारतीय और अंग्रेज सरमायदारों में भी ऐसे गठजोड़ अक्सर दिखाई देते हैं, जो देश के लिए नुकसानदेह हैं।

बीते इतिहास और पिछले चन्द सालों के वाक़यात पर गौर करने से यह सावित हो जाता है कि ब्रिटेन की विश्व-राजनीति भारत पर कब्जा वनाये रहने के लिए है। यह कौन नहीं जानता कि अगर भारत पर अंग्रेजों का अधिकार न रहे तो ब्रिटेन की क्या हालत होगी ! तव ब्रिटिशों का विश्व-साम्राज्य नहीं रहेगा। जव भारत एक वार आज़ाद हो जायगा तव आइंदा क्या होगा मैं नहीं कह सकता, लेकिन इतना जरूर है कि ब्रिटिश-विश्व-साम्राज्य का खात्मा हो जायगा। अपने पूंजीवादी और साम्राज्यवादी नजरिये से अंग्रेज अपनी सारी ताकत लगाकर भारत पर अपना कब्जा रखने की कोशिश करते हैं। उनकी सारी विदेश-नीति ज्यादातर इसी मुद्दे से प्रभावित है और इसी-लिए भारत में उन्हें बहुत मजवूत शासन कायम करना होगा। इसका नतीजा यह है कि भारत को नुकसान पहुंचा है और अभी पहुंच रहा है। लेकिन यह सब इतना ही नहीं है। भारत की वजह से दूसरे मुल्कों को भी तकलीफें उठानी पड़ी हैं, और पड़ भी रही हैं। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कार्यवाहियों की ताजा मिसाल आपको मालूम ही है—यानी भारतीय सेना को चीन में भेजना। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बेहद मुखालिफत के बावजूद उसे वहां भेजा गया। यह असलियत जाहिर करते हुए चाहे मैं कितना ही शर्मिन्दा हूं, लेकिन मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि भारतीय सेना का ज्यादातर इस्तेमाल दूसरे मुल्कों की जनता को दवाने में हुआ है। मैं आपके सामने कुछ राष्ट्रों के नाम रखना चाहता हूं, जहां अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ की खातिर भारतीय सेना को भेजा है। सबसे पहले सन् १८४० में चीन में भारतीय सेना भेजी गई, फिर सन् १९२७ में, जो अभी तक वरावर जा रही है और वहां कई वार उसका इस्तेमाल भी किया गया। इसके वाद मिस्र, एविसीनिया, ईरान की खाड़ी, मेसापोटामिया, अरव, सीरिया, तिव्वत, अफगानिस्तान और वर्मा में भी भारतीय सेना भेजी गई है। यह दिल-दहलानेवाली सूची है।

मैं यह जानना चाहूंगा कि भारत का यह मसला न सिर्फ राष्ट्रीय मसला है, वल्कि और वहुत-से मुल्कों पर भी इसका असर पड़ता है। दुनिया-भर में इसके वारे में दिलचस्पी पैदा हो गई है, क्योंकि इसका ताल्लुक हमारे जमाने के सबसे वड़े और सबसे ज्यादा ताकतवर साम्राज्यवाद से है। हम यह वात साफतौर पर कह देना चाहते हैं कि भारत अव इस तरह की वातों को सहन नहीं करेगा। हमारे और ज्यादा वर्दाश्त न करने की वजह न सिर्फ यह है कि आज़ादी अच्छी है और गुलामी बुरी है, वल्कि इसलिए कि अब हमारे देश और हमारे लिए यह जिंदगी

और मौत का सवाल बन गया है। आप लोग भी, जो मुख्तलिफ मुल्कों से यहां आये हैं, उन बंधनों को ब्रदाश्त नहीं कर सकते, जो आपकी आज़ादी की राह में बाधक होते हैं। हम भारतवासियों के लिए आजादी का मामला बेहद जरूरी बन गया है। लेकिन यह आपके लिए भी कम अहम नहीं कि हम अपनी आजादी चाहते हैं। चीनी राष्ट्रवादियों की शानदार मिसाल ने हमारे दिलों में उम्मीद पैदा कर दी है और हम जल्द उनके दिखाये रास्ते पर चलना चाहते हैं। हम अपने देश के लिए सब तरह से पूरी आज़ादी चाहते हैं। हमारी ख्वाहिश न सिर्फ यह है कि मुल्क के अंदरूनी मामलों पर हमारा कब्जा हो, बल्कि हमें इस बात की भी आजादी होनी चाहिए कि हम अपनी मर्जी से अपने पड़ौसी मुल्कों और दूसरे मुल्कों के साथ ताल्लुक कायम कर सकें। चूंकि हमें इस बात का यकीन है कि हमारी यह अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस संगठित कार्य का मौका दे सकती है, इसलिए हम इसका स्वागत करते हैं। ●

दिसम्बर, १९२७ में मद्रास-कांग्रेस के अवसर पर युद्ध-विरोधी प्रस्ताव को पेश करते हुए दिया गया भाषण।

युद्ध में शामिल होने की मंजूरी नहीं देंगे

"यह कांग्रेस ब्रिटिश सरकार की बड़े भारी पैमाने पर लड़ाई की उन तैयारियों को, जो वह भारत में, और पूर्वी सागर में, खासकर हिंदुस्तान की उत्तर-पश्चिमी-सीमा पर कर रही है, बड़ी तलखी से देखती है। इन युद्ध-संबंधी तैयारियों का उद्देश्य न सिर्फ भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें मजबूत करना और इस तरह आज़ादी की कोशिशों को कुचलना है, बल्कि इससे हम एक ऐसे विनाशकारी युद्ध की ओर अग्रसर होंगे, जिसके जरिये भारत को विदेशी साम्राज्यवादियों के हाथों में कठपुतली बनाया जायगा।

"यह कांग्रेस ऐलान करती है कि भारत की जनता को अपने पड़ौसियों के साथ कोई दुश्मनी नहीं है और वह उनके साथ अमन से रहना चाहती है। हमारा यह फैसला करने का हक है कि हम लड़ाई में शामिल हों या न हों।

"यह कांग्रेस इस बात की मांग करती है कि युद्ध-संबंधी तैयारियां बन्द कर दी जायं और यह भी ऐलान करती है कि अगर ब्रिटिश सरकार लड़ाई छेड़ती है और अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यों को पूरा करने के लिए भारत को भी उसमें घसीटती है तो भारत की जनता का यह फर्ज हो जाता है कि वह इस युद्ध में शामिल होने से या उसमें किसी भी तरह का साथ देने से इन्कार कर दे।"

कांग्रेस के इस इजलास में कई बड़े-बड़े प्रस्ताव पेश किये जायंगे और उन्हें मंजूर किया जायगा। लेकिन जो प्रस्ताव अभी मैंने पेश किया है, इससे ज्यादा अहम कोई भी दूसरा प्रस्ताव नहीं हो सकता। इसकी अहमियत इसलिए है कि आज के जमाने में कोई भी युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय विनाश की सूरत अख्तियार कर लेता है। इसके नतीज़े के तौर पर खौफनाक मारकाट और बरबादी होती है। इसमें नफरत और बर्बरता की ज़बरदस्त ताकतें मैदान में आ जाती हैं, जैसाकि पिछले महायुद्ध में हुआ था। आजकल जबकि सब राष्ट्र एक-दूसरे से इतने बंध चुके हैं कि वे जुदा नहीं रह सकते, तो यह मुमकिन नहीं कि भारत की सीमाओं के बाहर होनेवाले युद्ध की लपटें हमारे देश तक न पहुंचें। इस तरह की किसी भी लड़ाई के साथ हमारा बहुत गहरा संबंध हो जाता है, क्योंकि यह लड़ाई हमारी सीमाओं के आसपास ही होनेवाली है और बहुत मुमकिन है कि भारत को उसमें शामिल होना पड़े। अगर लड़ाई छिड़ जाती है तो हम चैन से बैठे सम्मेलन नहीं करेंगे। यकीनन, तब तो हमारे कानों में तोपों की गड़गड़ाहट सुनाई देगी और हमारे शांत गांवों पर हमें बम गिरते दिखाई देंगे। यह इसलिए भी बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस तरह की लड़ाई के नतीजे के तौर पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की ताकत, मुमकिन है, इस हद तक बढ़ जाय कि हमारे लिए आज़ादी हासिल करने का काम और भी मुश्किल हो जाय और आज़ादी का सपना एक-दो पीढ़ियों तक खत्म हो जाय। इसलिए हम युद्ध की किसी भी तरह की तैयारियों या युद्ध के किसी भी मौके से लापरवा नहीं हो सकते।

कोई भी भारतीय स्त्री या पुरुष, जो अपने देश के लिए आज़ादी हासिल करना चाहता है, इस युद्ध से बेखबर नहीं रह सकता । हर कोई जानता है कि सभी देश युद्ध की थोड़ी-बहुत तैयारियों में लगे हुए हैं । केवल इंगलैण्ड ही नहीं, बल्कि हर देश तैयारियों में लगा हुआ है, क्योंकि यूरोप-भर में इन दिनों भय छाया हुआ है । निरस्त्रीकरण और अमन कायम रखने की बातें भी चल रही हैं। लेकिन आपमें से जिन लोगों ने जेनेवा और दूसरी जगहों पर होने-वाली घटनाओं पर विचार करने का कष्ट उठाया है, उन्हें यह मालूम होगा कि निःशस्त्रीकरण की ये सारी बातें महज ढकोसला ही हैं। आज यूरोप की हालत सन् १९१४ की निस्वत, जब पिछला महायुद्ध शुरू हुआ था, कहीं ज्यादा विस्फोटक है। अभी तक युद्ध नहीं छिड़ा है, लेकिन युद्ध के सब कारण आज भी मौजूद हैं, और आज तो वे १३ बरस पहले की निस्बत कहीं ज्यादा तादाद में हैं । आप बल्कान, पोलैण्ड, इटली, चेकोस्लावेकिया, लिथुआनिया और रूस को देखिये, सभी जगह युद्ध की तैयारियां हो रही हैं, और कभी भी लड़ाई छिड़ सकती है । हमारा ताल्लुक सबसे ज्यादा इस वात से है कि युद्ध की इन तैयारियों और निरस्त्रीकरण तथा अमन की बातचीत के सिलसिले में क्या रवैया अख्तियार किया गया है। ब्रिटेन के रवैये में ही हमारी खास दिलचस्पी है । पिछले दिनों जेनेवा में कई निरस्त्रीकरण सम्मेलन हुए हैं । इनमें एक समुद्री निरस्त्रीकरण सम्मेलन भी हुआ था । लेकिन यह सम्मेलन इसलिए नाकाम रहे कि ब्रिटेन ने दूसरे देशों के सुझावों को नामंजूर कर दिया था । असलियत तो यह है कि पिछले दिनों ब्रिटेन ने स्विट्जरलैण्ड जैसे छोटे देश के साथ पंचफैसले के सिद्धान्त को यह कहकर मंजूर करने से इन्कार कर दिया था कि यह खतरनाक सिद्धांत है। उसने लीग ऑव नेशन्स (राष्ट्रसंघ) या ऐसी किसी दूसरी जमात के सामने अपना मामला पेश किये बिना ही युद्ध करने के अधिकार की बराबर हिमायत की । लीग आव नेशन्स के पिछले अधिवेशन में सर आस्टिन चेम्बरलेन ने इंगलैण्ड की ओर से एक असाधारण भाषण दिया है । उन्होंने कहा कि वह लीग ऑफ नेशन्स के अमन और निशस्त्रीकरण के बनावटी आदर्शों की खातिर ब्रिटिश साम्राज्य को नष्ट करने के लिए तैयार नहीं । उनके लिए उन आदर्शों के मुकाबले ब्रिटिश कामनवैल्थ का सवाल कहीं ज्यादा अहम है ।

भारत के सिवा ब्रिटिश साम्राज्य है क्या ? इसके माने यही तो हैं कि भारत को गुलाम बनाये रखने के लिए सर आस्टिन चैम्बरलेन और ब्रिटिश सरकार शांति और निरस्त्रीकरण के उसूलों को मंजूर नहीं कर सकती । यूरोप के छोटे-बड़े सभी राष्ट्र, जो इस प्रश्न को बार-बार लीग ऑव नेशन्स (राष्ट्रसंघ) में उठाते हैं, अच्छी तरह जानते हैं कि विश्वशान्ति या निशस्त्रीकरण के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट इंगलैण्ड की ओर से है । मैं इंगलैण्ड की युद्ध-संबंधी तैयारियों के बारे में भी कुछ कहना चाहता हूं । आप यह जानते ही हैं कि युद्ध के लिए गुप्त रीति से तैयारियां की जाती हैं । कोई भी राष्ट्र अपनी युद्ध की तैयारियों के बारे में इश्तिहार बाजी नहीं करता । लेकिन जब बहुत बड़े पैमाने पर तैयारियां होने लगती हैं, जैसाकि इंगलैण्ड, आजकल कर रहा है, तो उनको गुप्त रखना मुश्किल हो जाता है । इसलिए इंगलैण्ड की कुछ बातों का पता चल गया है । सबसे बड़ी और ताजा बात, जो इन सालों में हमारे सामने है, वह है सिंगापुर के जहाजी बेड़े के बारे में । इंगलैण्ड सिंगापुर के समुद्री अड्डे को बनाने के लिए क्यों करोड़ों पौंड खर्च कर रहा है ? इसका साफ मतलब यह है कि इंगलैण्ड चीन या जापान या फ्रांस के उप-निवेशों को खतरे में डाल सकता है । यह कदम डच ईस्ट इंडीज के खिलाफ भी हो सकता है ताकि युद्ध के समय इंगलैण्ड हालैण्ड को तटस्थ रहने पर मजबूर कर सके । किसी हद तक यह कदम अमरीका और प्रशांत महासागर में अमरीकी साम्राज्य के खिलाफ भी है, क्योंकि लड़ाई के दौरान में इंगलैण्ड फिलिपाईन द्वीपों को जीतकर अपने अधीन कर सकता है । जो हो, यह खासतौर पर भारत के ही खिलाफ उठाया गया कदम है, क्योंकि यह सारी

बातें भारत को अपने कब्जे में रखने की खातिर ही की जा रही हैं। कल्पना कीजिये कि अगर भारत में लड़ाई छिड़ जाती है तो सिंगापुर के अड्डे की राह आस्ट्रेलिया से भारत में फौजें लाना सहज हो जायगा। अलावा इसके, भारत से हमले करने के लिए भी अंग्रजों को कई तरह की सुविधाएं हो जायंगी। ये सब बातें सिंगापुर अड्डे के बारे में है।

फिर एक समुद्री अड्डा ट्रिनकोमेली में बनाया जा रहा है। हाल ही में ग्रेट रायल इंडियन नेवी (शाही भारतीय नौ सेना) का बड़ी शान के साथ संगठन किया गया है। लेकिन यह समुद्री बेड़ा भारतीय नहीं है। इसकी भारतीयता उसी हद तक है जहांतक कि उसपर खर्च होनेवाली रकम का भारतीय खजाने से दिया जाना है। यह समुद्री बेड़ा ब्रिटिश बेड़े का ही एक अंग है, जो भारत के खिलाफ ब्रिटिश सरकार की सहायता करेगा, भले ही इसका खर्च हमें ही देना पड़े। अब मैं आपका ध्यान यातायात के प्रबंधों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं, जिसका विस्तार पिछले दिनों भारत में, खासतौर पर उत्तर-पश्चिमी-सीमा प्रांत में, पश्चिमी पंजाब में और उत्तर-पूर्वी सीमा पर, बहुत तेजी से हुआ है। इन दिनों युद्ध बहुत हद तक यातायात पर निर्भर करता है। इसीलिए भारत में यातायात को पूरे तौर पर सही कर लिया गया है। उत्तर-पश्चिमी-सीमा प्रांत में फौजी ठिकानों पर रेल-पटरियों का जाल-सा बिछा दिया गया है। आप लोगों ने खैबर-पास-रेलवे का नाम तो सुना ही होगा। कुछ ही दिनों में आप दूसरी फौजी रेलों के बारे में भी सुनेंगे, जिन्हें फौजी नजरिये से बड़े भारी खर्च से और बनाया जा रहा है। जब फौजी नजरिये सामने होते हैं तो खर्च की परवा नहीं की जाती। खैबर घाटी, पंजाब और सीमा प्रांत को सीधे करांची तक जोड़नेवाली फौजी सड़कें बनाई गई हैं। कराची से पेशावर तक ही मोटर-लारी सर्विस भी चालू कर दी गई है। यह सब युद्ध की तैयारियां हैं, जिससे युद्ध के समय सैनिकों और दूसरे सामान को इधर-से-उधर आसानी से भेजा जा सके। हालांकि रेलें मौजूद हैं, तो भी मुमकिन है वह काम न आ सकें, क्योंकि मजदूरों के हड़ताल करने का खतरा हो सकता है, इसलिए इंगलैण्ड की तमाम फौजी व्यवस्था को आत्म-निर्भर बनाया जा रहा है।

अब मैं आसाम की उत्तर-पूर्वी सीमा के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। हाल ही में आप लोगों ने अखबारों में पढ़ा होगा कि इस तजवीज पर विचार किया जा रहा है कि उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत की तरह भारत के उत्तर-पूर्व में आसाम के एक भाग को नये फौजी सूबे की शक्ल दे दी जाय, जिससे अगर जरूरी हो तो, लड़ाई करने में सुविधा रहे। इसी उद्देश्य से सड़कें बनाई गई हैं, और भारत तथा बर्मा, और बर्मा तथा आसाम के बीच रेलें बिछाने की योजना बनाई गई है। आपको याद होगा कि कलकत्ते का एक अखबार 'फारवर्ड' बर्मा में जाने से रोक दिया गया था। इस रोक का कारण यह था कि इस पत्र ने आसाम में इन फौजी सड़कों, और वहां एक जुदा फौजी सूबा बनाने की तजवीज के बारे में कुछ आलोचना की थी।

अब मैं फिर से उत्तर-पश्चिमी सरहदी सूबे की चर्चा पर आता हूं, जहां हवाई जहाजों और टैंकों को बहुत बड़ी तादाद में जमा किया गया है। जानकारों ने हमें बतलाया है कि यह फौजी सामान इतना बढ़िया और मुकम्मिल है कि जो किसी भी सेना के पास होना लाज़िमी है। कराची को भी हवाई अड्डा बना दिया गया है। सरहदी सूबे में जगह-जगह पर अड्डे बनाये जा रहे हैं, जिनसे जाहिर होता है कि इन दिनों सूबे-भर में जोर-शोर के साथ लड़ाई की तैयारियां हो रही हैं। इंगलैण्ड के अखबारों और भारत के एंग्लो-इंडियन अखबारों में भी दो तजवीजें पेश की गईं हैं। हालांकि पार्लमेंट में सरकार ने इनसे इन्कार कर दिया है, तो भी अखबारों में उनका लगातार प्रचार किया जा रहा है। इन अखबारों के बारे में ख्याल किया जाता है कि वे सरकार की कार्रवाईयों को जानते हैं और यह तजवीजें हमारे बहुत ही काम की हैं। एक सुझाव तो यह है कि ब्रिटिश एक्सपीडिश्नरी फ़ोर्स के एक हिस्से को भारत

में तैनात किया जाय, क्योंकि यूरोप की बजाय एशिया में युद्ध का खतरा ज्यादा है। इसलिए यह उचित है कि यह सेना भारत में हरदम तैयार रहे और जरूरत पड़ने पर फौरन फौजी कार्रवाई शुरू कर दे। दूसरी तजवीज यह है कि ज्योंही युद्ध का खतरा हो, मशीनी साजोसामान से लैस इन फौजों को मैदान में उतार दिया जाय। अंग्रेजी अखबारों में तो यहांतक स्पष्ट लिखा गया है कि हमले की इंतजार न की जाय और एक ही झटके में अफगानिस्तान होते हुए मध्य एशिया में बढ़ जाना चाहिए। यह तजवीज इसलिए रखी गई है कि जर्मनी ने भी इसी तरह बेल्जियम को लांघकर फ्रांस पर हमला किया था।

मैं ब्रिटेन की युद्ध-संबंधी तैयारियों के बारे में दो-एक बातें और कहना चाहता हूं, जिनकी ओर एक मित्र ने मेरा ध्यान खींचा है। वह मित्र स्वयं एक प्रसिद्ध डाक्टर हैं। उन्होंने बतलाया है कि भारत सरकार के मेडीकल मिलिट्री डिपार्टमेन्ट की ओर से बहुत-से लोगों के नाम पत्र आये हैं। यह पत्र सिविल और मिलिट्री डिपार्टमेन्ट के हर सदस्य के पास पहुंचा है। इसमें उनसे पूछा गया ह कि क्या वह मुसीबत यानी लड़ाई के समय मेडीकल मिलिट्री आफिसर की हैसियत से काम करने के लिए तैयार हैं? एक पत्र उन सब डाक्टरों के नाम भी भेजा गया है, जिन्होंने पिछले महायुद्ध में काम किया था। उनसे भी यही पूछा गया है कि क्या वह मेडीकल रिजर्व में शामिल होने को तैयार हैं? मैं चाहता हूं कि आप विचार करें कि यह क्या हो रहा है? जिस समय यह प्रस्ताव विषय-समिति में रखा गया, तो कुछ लोगों का ख्याल था कि इस प्रस्ताव की अभी जरूरत नहीं है। उन्होंने किसी प्रकार की फौजी तैयारियों के बारे में नहीं सुना और आगामी युद्ध के बारे में भी वे कुछ नहीं जानते। उनका विचार था कि हमारी घरेलू समस्याएं कहीं ज्यादा अहम हैं। हमें अपना वक्त और ताकत इस बात में ज़ाया नहीं करनी चाहिए कि सर-हदी सूबे में क्या हो रहा है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप विचार करें कि क्या जो बातें मैंने आपके सामने रखी हैं, उनसे यह यकीन नहीं हो जाता कि युद्ध का खतरा वास्तविक है? यदि युद्ध का खतरा है तो क्या आप उसके प्रति उदासीन रहकर महज अपनी घरेलू समस्याओं पर चर्चा करने में ही लगे रहेंगे?

युद्ध-संबंधी तैयारियों के बारे में दो बातें और कहना चाहता हूं—एक तो इंगलैण्ड और ईराक की संधि है; दूसरी, अमीर की भारत-यात्रा। यह मुमकिन है कि ब्रिटिश सरकार ने अमीर का जो स्वागत किया है, उसका उद्देश्य अमीर को अपनी ओर पटाना हो। यह भी हो सकता है कि हम युद्ध को न रोक सकें। लेकिन हमें तो भारतीय नजरिया साफतौर पर जाहिर कर देना चाहिए। हो सकता है कि हमारे ऐसा करने पर ब्रिटेन भी अपना कुछ रवैया बदले। जब इंगलैण्ड को यह मालूम हो जायगा कि भारत युद्ध में उसका साथ नहीं देगा, बल्कि वह युद्ध चलाने में बाधा डालेगा, तो उसकी लड़ाई छेड़ने की हिम्मत टूट जायगी। इस प्रस्ताव में हमने जाहिर कर दिया है कि अपने पड़ौसियों के साथ हमारा कोई झगड़ा नहीं। युद्ध में शामिल होने या न होने का फैसला करने का हमें पूरा हक है। अगर युद्ध छिड़ जाय और उसमें आपका शोषण करने की कोशिश की जाय तो आपको अपना शोषण नहीं होने देना चाहिए और लड़ाई में किसी तरह का हिस्सा भी नहीं लेना चाहिए। मुझे यकीन है कि अगर युद्ध शुरू हो जाता है, और जैसा कि मेरा ख्याल है कि वह एक, दो, या पांच वर्ष में यकीनन छिड़ने ही वाला है, तो राष्ट्रीय कांग्रेस को जो मार्गदर्शन आज मिला है, उसीके अनुसार वह चलेगी। मैं आशा करता हूं कि भारतीय जनता आपसी भेदभाव भुलाकर कांग्रेस का साथ देगी और युद्ध में शामिल होने की मंजूरी नहीं देगी। इस फैसले के कारण जो नतीजे भोगने पड़ेंगे, जनता उन्हें खुशी के साथ सहन करेगी। मुझे यकीन है कि अगर कांग्रेस और भारत की जनता इस रवैये को अपना लेती है तो भारत इस अग्नि-परीक्षा में से ज्यादा सुगठित और ज्यादा आज़ाद होकर उभरेगा। ●

पंजाब राजनैतिक सम्मेलन में ११ अप्रैल, १९२८ को
लोकतंत्रीय समाजवाद पर व्याख्यात्मक भाषण।

लोकतन्त्रीय समाजवाद की घोषणा

आपने जो मान मुझे दिया है उसके लिए मैं आपका बहुत शुक्रिया अदा करता हूं। यह आम चलन बन गया है कि हम अपने कांग्रेसी जलसों और कान्फ्रेंसों में नाजुक हालात का जिक्र किया करते हैं और यह हालत हमेशा हमारे सामने आती है। हर साल हमें बतलाया जाता है कि हालात पहले से भी ज्यादा खतरनाक सूरत अख्तियार करते जा रहे हैं। बार-बार चेतावनी देने का नतीजा यह हुआ है कि अब उसका कुछ असर ही नहीं होता, जैसे कि 'भेड़िया आया, भेड़िया आया' वाली मसल मशहूर है। लेकिन चाहे हमारे सामने नाजुक हालत हो या न हो, इसमें शक नहीं कि जब हम किस्मत के उस चौराहे तक तेजी से पहुंच रहे हैं, जहां 'हां' और 'ना' का ख्याल किये बिना हमें एक अहम रास्ता चुनना ही होगा। मैं इंगलैण्ड से आये उन सात बे-बुलाये मेहमानों का जिक्र नहीं कर रहा कि जो कुछ दिन पहले हमारे यहां आये थे और हमारे विरोध के बावजूद फिर आने की धमकी दे रहे हैं। उनके आने या जाने का मुझ-पर कोई असर नहीं। 'साइमन कमीशन' से भी कहीं ज्यादा बड़ी तब्दीलियां होने जा रही हैं। दुनिया-भर में एक तूफान-सा आया हुआ है, और अजीब ताकतें काम कर रही हैं। जिन आदर्शों को लोग कल तक मानते थे आज उन्हें छोड़ रहे हैं और नये विचारों ने लोगों को झकझोर दिया है। यहांतक कि जो भारत पुराने जमाने की परंपराओं के बोझ से दबा पड़ा था और किसी भी तब्दीली से डरता था, आज उसने अपने अतीत को चुनौती दे दी है और उसकी रफ्तार लगातार बढ़ती ही जा रही है। ऐसे समय में हमारे लिए कौन-सा रास्ता बिलकुल सही होगा, यह भविष्यवाणी करनेवाला इन्सान दरअसल ही बहादुर होगा। यह दावा करने की हिम्मत मुझमें नहीं और इसीलिए मैं इस सम्मेलन की सदारत मंजूर करने से हिचकिचाता था।

औद्योगिक क्रांति का जितना असर दूसरे देशों पर पड़ा है, इतना भारत पर नहीं। इन सब परिवर्तनों के विस्तार में न जाकर मैं उसके केवल कुछ पहलुओं पर ही यहां विचार करना चाहता हूं।

औद्योगीकरण से उत्पादन भी बढ़ा है और दौलत भी बढ़ी है, लेकिन यह दौलत चंद देशों और चंद व्यक्तियों तक ही महदूद रह गई है, जिससे उसके बंटवारे में बहुत असमानता आ गई है। इसका नतीजा यह हुआ कि कच्चे माल और खपत के नये बाजारों के लिए जद्दोजहद होने लगी, और इस तरह पिछली सदी का साम्राज्यवाद पैदा हुआ। इसके कारण लड़ाइयां हुई और इसीकी वजह से आज के औपनिवेशिक राज्यों का उदय हुआ। इसीने आइंदा जमाने की लड़ाइयों के बीज बोये और अब इसने आर्थिक साम्राज्यवाद का रूप बना लिया है, जो अन्य देशों पर कब्जा किये बिना ही शोषण करने की पूरी ताकत रखता है। यह बात तो प्रायः सभी अच्छी तरह जानते हैं, लेकिन उद्योगों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान गया है। उद्योग ने राष्ट्रों की सीमाओं को तोड़ दिया

है और हर राष्ट्र को, चाहे वह कितना ही ताकतवर है, दूसरे देशों का मोहताज वना दिया है। राष्ट्रवाद की विचारधारा आज भी उतने ही जोरों पर है, जितनी कि पहले थी और उसके पवित्र नाम पर युद्ध किये जाते हैं और लाखों इन्सानों को मौत के घाट उतारा जाता है। लेकिन अब तो यह कोरी कल्पना ही है, जिसका असलियत के साथ मेल नहीं बैठता। दुनिया अन्तर्राष्ट्रीय वन गई है। उत्पादन भी अन्तर्राष्ट्रीय बन गया है, बाजार भी अन्तर्राष्ट्रीय है और यातायात भी अन्तर्राष्ट्रीय है; केवल लोगों के विचारों पर उसी पुरानेपन का राज है, जिसके आज कोई माने नहीं। सही मानों में आज कोई भी राष्ट्र आत्म-निर्भर नहीं, सब एक-दूसरे के मोहताज हैं। असलियत की दुनिया बिलकुल बदल चुकी है, लेकिन हमारे विचार अब भी पुराने ही चले आ रहे हैं। इसकी वजह से संघर्ष पैदा होता है और समाज में हरदम उफान-सा आया रहता है। और अगर पश्चिम में असलियत और ख़यालों के बीच संघर्ष है, तो भारत में इसका रूप हम कैसा कुछ देखते हैं? हममें से बहुत-से लोग, इस बात का ख्याल किये बिना कि दुनिया में क्या-कुछ हो रहा है, अब भी उस पुरानेपन से चिपटे बैठे हैं और यह कल्पना करते हैं कि वह उस पुरानेपन को फिर से जिंदा कर सकते हैं। कुछ लोग वैदिक युग लाना चाहते हैं और कुछ लोग इस्लाम के पहले लोकतंत्री दिनों को फिर से जारी कर लेना चाहते हैं। लेकिन काल की लेखनी लिखती चली जाती है और लिखकर आगे बढ़ जाती है। धर्म या अक्लमंदी उसको पीछे की ओर नहीं ले जा सकते और न ही एक भी फिकरा इसका काटा जा सकता है। हम भूल जाते हैं कि हमारी पुरानी संस्कृतियां, जो महान थीं, जुदा युगों और जुदा अवस्थाओं के लिए थीं। आज के औद्योगिक युग में हम वैदिक काल की पुरानी कृषि-अर्थव्यवस्था को फिर से नहीं ला सकते, और न ही आज से १३०० साल पहले की उस संस्कृति को इस देश में ला सकते हैं, जो रेगिस्तानी देश के लिए माने रखती थी। और हमारी बहुत-सी परंपराएं और आदतें, और रीति-रिवाज, सामाजिक कायदे, हमारे जांत-पांत के तरीके, हमारे समाज में स्त्रियों का स्थान और धर्म के कारण हममें जो रूढ़ियां हैं, ये सब पुराने जमाने के खण्डहरों जैसी हैं। वह सब उन बीते दिनों के लिए वाजिब था, लेकिन मौजूदा जमाने के साथ उनका कोई मेल नहीं। असलियत के मुकाबले में यह सब आज दकियानूसी है। मनुष्यों के विचार पिछड़े रह सकते हैं, लेकिन वक्त की चाल और जिंदगी में आनेवाली तब्दीलियों को रोक सकना मुमकिन नहीं है।

लेकिन जहां इन दोनों के बीच संघर्ष होता है, वहां मतभेद और रुकावट आ जाती है, और प्रगति की रफ्तार धीमी पड़ जाती है। जिस खुशकिस्मत देश के विचार असलियत के साथ मेल खा जाते हैं, वहां बेहद तरक्की होने लगती है। हमारे सामने तुर्की की मिसाल मौजूद है, जो कमाल पाशा के योग्य नेतृत्व में एक पिछड़े हुए, पराजित, असंगठित और रूढ़िपरायण देश से एकाएक मानो रातों-रात ही महान् प्रगतिशील देश वन गया है। हमारे सामने रूस की भी मिसाल है, जहां कि चरित्र-भ्रष्ट, अपढ़, और असंगठित जनता बहादुरी के सांचे में ढल गई, जिसने लड़ाई का मुकाबला किया और उसे जीता। इसके अलावा उसने अकाल और बीमारी जैसे बुनियादी शत्रुओं पर भी विजय हासिल की। इसी तरह भारत भी उन्नति कर सकता है, बशर्ते कि वह असलियत को अपनाये और रूढ़ियों और पुरातनपंथी को छोड़ दे।

इस तरह हम देखते हैं कि अब दुनिया के संगठन का एक नाजुक और पेचीदा रूप वन गया है, जिसका हर हिस्सा एक-दूसरे का मोहताज है और उनमें से कोई भी विलकुल जुदा होकर रहने के लायक नहीं है; तो फिर भारत बाकी दुनिया से कैसे जुदा बनकर रह सकता है? भारत को दुनिया की ताकतों को समझना चाहिए और उनके निर्माण में वाजिव हिस्सा भी लेना चाहिए। उसे भी अपने विचारों को वस्तुस्थिति के अनुरूप बनाना होगा।

जिस दिन वह इस तरह फैसला कर लेगा, उसकी प्रगति बहुत तेजी के साथ होने लगेगी।

मैंने औद्योगीकरण और मौजूदा युग पर उस असर का जिक्र किया है। उसकी बुराइयां जाहिर हैं और हम में से बहुत-से उनसे नफरत करते हैं। लेकिन चाहे हम उन्हें पसन्द करें या न करें, हमें यह याद रखना चाहिए कि औद्योगीकरण के विस्तार को रोका नहीं जा सकता। भारत में भी इसकी बहुत तेजी के साथ प्रगति हुई है और कोई भी देश इसकी बढ़ती हुई रफ्तार को नहीं रोक सकता। क्या हमें भी इससे पैदा होनेवाली बुराइयों को अपना लेना होगा या हमारे लिए यह फायदेमंद होगा कि हम औद्योगीकरण को उसकी बड़ी-बड़ी बुराइयों के बिना अपना लें ? हमें यह याद रखना चाहिए कि औद्योगीकरण के माने हैं, बड़ी-बड़ी मशीनें; और मशीनें अच्छे और बुरे दोनों ही कामों के लिए इस्तेमाल का जरिया हैं। अगर मशीन चलानेवाला आदमी उसका बुरा इस्तेमाल करता है और दूसरों को नुकसान पहुंचाता है तो हमें मशीन को दोष नहीं देना होगा।

पश्चिम में औद्योगीकरण के कारण पूंजीवाद और साम्राज्यवाद का बड़ा विस्तार हुआ है। हममें से बहुत-से लोग, जो भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की निन्दा करते हैं, अक्सर इस बात को नहीं समझते कि यह घटना भारत या इंगलैण्ड के लिए कोई अनोखी नहीं है अथवा यह कि यह पूंजीवादी औद्योगीकरण का ही नतीजा है। क्योंकि पूंजीवाद के कारण एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के द्वारा, एक समुदाय का दूसरे समुदाय के द्वारा या एक देश का दूसरे देश के द्वारा शोषण होता है, इसलिए हम इस साम्राज्यवाद और शोषण के खिलाफ हैं। हम एक प्रणाली के तौर पर पूंजीवाद और साथ ही एक देश के दूसरे देश पर प्रभुत्व के भी विरोधी हैं। फिर दूसरा रास्ता जो हमारे सामने है, वह है समाजवाद, अर्थात् उत्पादन और बंटवारे के साधनों पर राज्य का अधिकार हो। यह रास्ता अख्तियार किये बिना हमारा काम नहीं चल सकता। अगर दरअसल ही हम चाहते हैं कि सामाजिक प्रबंध बेहतर हो, और इन्सान का इन्सान शोषण न करे तो हमें समाजवाद के ही हक़ में अपना फैसला करना होगा।

अगर हम यह फैसला कर लेते हैं तो बदले में हमें नतीजे क्या हासिल होंगे ? इसका आवश्यक परिणाम यह होगा कि हमें ब्रिटिश सरकार का मुकाबला न केवल राष्ट्रीयता बल्कि सामाजिक और औद्योगिक मुद्दों के आधार पर भी करना होगा। इसकी और भी जरूरत इसलिए है कि साम्राज्यवादी प्रभुत्व का नया तरीका उस पुराने ढंग का नहीं है कि जिसमें एक इलाके पर कब्जा कर लिया जाता था; बल्कि यह तो आर्थिक साम्राज्यवाद का भेदभरा तरीका है। हो सकता है कि इंगलैण्ड हमें किसी हद तक राजनैतिक आजादी दे दे, लेकिन, अगर वह हमारी आर्थिक व्यवस्था पर कब्जा जमाये रखे तो यह आजादी किसी काम की नहीं। इसलिए कोई भी भारतीय चाहे वह पूंजीवादी है या समाजवादी, इस तरह की आर्थिक गुलामी को खुशी से स्वीकार नहीं करेगा।

अगर हम समाजवादी व्यवस्था को अपना लेते हैं तो हमें उन सब रीति-रिवाजों को छोड़ना होगा, जिनका आधार जन्म या जाति वगैरा है। हमारी भावी सामाजिक व्यवस्था में मुफ्तखोरों के लिए कोई स्थान नहीं होगा, जिससे अधिकांश जनता को, जो आज जीवन की सुख-सुविधाओं से महरूम है, कुछ राहत मिल सके। हमें यह याद रखना चाहिए कि गरीबी जीवन का आवश्यक अंग नहीं है। हालांकि मौजूदा पूंजीवादी तरीके में ऐसा होना लाजिमी है। दुनिया में और हमारे देश में उत्पादन इतना है या हो सकता है, जो आम लोगों के जीवन-माप को उन्नत करने के लिए काफी है, लेकिन खेद है कि उपयोगी वस्तुओं पर चंद लोगों का कब्जा है और लाखों लोग अभाव में रहते हैं। हमारे देश में जो, अकालों की पुरातन भूमि कहलाती है, अन्न की कमी के कारण अकाल नहीं पड़ते, बल्कि अन्न खरीदने के लिए रुपये की कमी के कारण अकाल पड़ते हैं। हमारे यहां अकाल धन का है न कि अन्न का।

तीसरे नतीजे का असर हमारे अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर पड़नेवाला है। अगर हम साम्राज्यवाद का विरोध करते हैं और जानते हैं कि यह पूंजीवाद का ही एक रूप है तो हमें उसका भी विरोध करना ही होगा। चूंकि इंगलैण्ड दुनिया में सबसे बड़ा पूंजीवादी और साम्राज्यवादी राष्ट्र है, इसलिए इस क्षेत्र में भी वह हमारा सबसे बड़ा विरोधी बन जाता है। भारत और इंगलैण्ड के बीच उस समय तक कोई सहयोग नहीं हो सकता जबतक कि इंगलैण्ड नई प्रगतिशील विचार-धारा को नहीं अपनाता।

इन विचारों को मद्दे नज़र रखते हुए हमें भारत की आजादी के सवाल की थोड़ी परीक्षा करनी है। मुझे विश्वास है कि राष्ट्रीय कांग्रेस के पूर्ण स्वतंत्रता का ऐलान करने से पहले ही आप लोग उसके हक में होंगे। लेकिन हमारे कुछ बुजुर्ग और दोस्त कई तरह की गलतफहमियों और भ्रमों में फंसे हुए हैं। ब्रिटिश साम्राज्य उनमें से एक है। उनके लिए उस विचार-प्रणाली से और आदतों से, जो उन्होंने अपने जीवन में पका ली हैं, निकलना मुश्किल है। आज ब्रिटिश साम्राज्य है क्या ? अगर हम भारत को इसमें से निकाल दें तो फिर ब्रिटिश साम्राज्य के नाम के अलावा उसका वजूद कुछ भी नहीं होगा। यह नाम-मात्र का साम्राज्य कितने दिन टिक सकता है, इसका फैसला आप खुद ही कर सकते हैं। दुनिया-भर को इसका पता चल गया है, लेकिन चंद ऐसे लोग भी हैं, जो यह ख्याल करते हैं कि वह चिरकाल तक टिका रहेगा। पर बड़ी तेजी के साथ यह नष्ट हो रहा है और दुनिया जिन मुसीवतों से गुजर रही है, वे इसका खात्मा कर देंगी। ब्रिटिश जनता की यह बड़ी खूबी है कि हर वह परिवर्तन के दौर को सहज ही अपना लेती है, और ऐसा वह लंबे अर्से तक भोगी हुई ताकत के बल पर ही कर सकती है। लेकिन दुनिया की हालत इतनी तेजी के साथ बदल रही है कि वह उसके साथ नहीं चल सकती। हाल ही की और खासतौर पर भारत से संबंधित घटनाओं से जाहिर हो गया है कि उनकी अक्लमंदी का दिवाला निकल चुका है। चाहे ब्रिटिश साम्राज्य रहे या न रहे, भारत उसमें कैसे शामिल रह सकता है, जबकि दोनों के राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय और आर्थिक हित एक दूसरे के खिलाफ पड़ते हैं। हमें आज की अन्तर्राष्ट्रीयता को मंजूर करना होगा और अगर हमें वास्तविकताओं का मुकाबला करना है तो अन्तर्राष्ट्रीय तरीके से अमल भी करना होगा। तंग नजरिये से तो हम आज़ाद नहीं हो सकते। जब हम आज़ादी की चर्चा करते हैं तो हमारा मतलब अंग्रेजों से नाता तोड़ लेने का है। उसके बाद हम दूसरे देशों के साथ, जिनमें इंगलैण्ड भी शामिल है, दोस्ताना ताल्लुक बना सकते हैं। ब्रिटिश कामनवैल्थ, अपने इस बड़े नाम के बावजूद इस अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के हक में नहीं है। इसकी विश्व-नीति हमेशा ही तंग और स्वार्थी तथा विश्व-शांति के खिलाफ रही है।

अगर हमारा एक मात्र लक्ष्य आज़ादी है तो हमारे लिए यह उचित नहीं और न ही हमें शोभा देता है कि हम विदेशी हमलों से वचाव की खातिर अंग्रेजों के मुंह की ओर देखें। मैं इस तर्क को पूरे तौर पर मंजूर करता हूं कि अगर हम अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए अंग्रेजों की सहायता मांगते हैं तो हम आज़ादी के काविल नहीं हैं। मैं इस बात को कतई मानने को तैयार नहीं कि हम अंग्रेजों की मदद के बिना विदेशी हमलों के खतरों का मुकाबला नहीं कर सकते। सिवा अमरीका के दूसरा कोई भी ऐसा ताकतवर देश नहीं, जो हमलावर देशों के गुट का मुकाबला कर सके और इंगलैण्ड तो कतई इस लायक नहीं। लेकिन इसके माने यह नहीं कि इस कारण इंगलैण्ड की आज़ादी छीन ली जाय और उसे विदेशी ताकत के अधीन कर दिया जाय। किसी देश की सुरक्षा का सवाल कई वातों पर निर्भर करता है जैसे, पड़ौसी देशों के साथ उसके संबंध, और दुनिया की आम हालत। अगर भारत की सुरक्षा का विचार इन सब बातों को मद्दे नज़र रखते हुए किया जाय तो उसकी ताकत साफ जाहिर हो जाती है। उसके सामने कोई

वहुत बड़े खतरे नहीं हैं, और न ही उसकी फौजी ताकत किसी तरह कम है। लेकिन अगर उसके सामने कोई खतरा हो भी, तो यह उसके लिए कितनी शर्मनाक और बुजदिली की बात है कि वह मदद के लिए उसी देश को कहे, जो पहले भी, और आज भी हमें दवाये चला आ रहा है और जिसने हमारी सारी प्रगति को रोक रखा है। इस 'आज़ादी' शब्द के चाहे जो माने लगाइये, लेकिन एक वात जो हमें अपने प्रोग्राम में सबसे ऊपर रखनी है, वह यह है कि भारत पर जिस ब्रिटिश फौज का कब्जा है वह यहां से फौरन हटा ली जाय। आज़ादी के यही सच्चे माने हैं। जवतक यह नहीं होता तवतक सव मन वहलावे की वातें हैं।

कई वातों की विना पर हम अपने देश की आज़ादी की मांग करते हैं। आखिरकार आर्थिक समस्या ही सबसे बड़ा मामला है। स्वराज्य की लड़ाई में अभी तक शिक्षित वर्ग ने ही हिस्सा लिया है। यह वर्ग आर्थिक कठिनाई में था, इसलिए इसने अपनी मांग अक्सर यही रखी कि नौकरियों में हिंदुस्तानी ज्यादा-से-ज्यादा लिये जायं और बड़े बड़े औहदेवाली नौकरियों के द्वार भी हिन्दुस्तानियों के लिए खुल जाने चाहिए। यह उनकी भूल थी कि उन्होंने ऐसी मांगें रक्खीं। उन्होंने वैसा ही किया है, जैसाकि अपने हितों के लिए जागरूक हर वर्ग करता है। लेकिन ऐसा करते वक्त उन्होंने आम जनता के सवालों का ख्याल तक नहीं रखा। आम जनता से संबंध रखनेवाले अहम सवाल जव सामने आये, उन्हें फौरन दवा दिया गया और उन्हें स्वराज्य मिल जाने तक इंतजार करने को कहा गया। लेकिन असल मुद्दों के वारे में यह हेरा-फेरी क्यों? यह कहा गया है कि हम अपनी समस्याएं वाद में तय कर सकते हैं। इस वर्ग के लोग अपने स्वार्थों को ही ज्यादा महत्व देते हैं और असलियत तो यह है कि आज़ादी के नाम पर वह निजी स्वार्थों को साधने की कोशिश में हैं। इस वर्ग के वहुत-से लोग, जब उन्हें सत्ता और पद मिल गया, तो वह ब्रिटिश साम्राज्य के सबसे कट्टर हामी वन गये। अगर भारत के उन सब ओहदों पर, जिनपर आज अंग्रेज तैनात हैं, हिंदुस्तानियों को मिल जायं, तो बेचारे किसानों, मजदूरों, दुकानदारों, कारीगरों और इस देश की आम जनता को इससे क्या लाभ पहुंचेगा? हां, शिक्षित वर्ग को अवश्य कुछ लाभ पहुंच सकता है, क्योंकि वह अपने भाइयों पर विदेशी सरकार की निस्वत ज्यादा दवाव डाल सकता है। लेकिन वुनियादी हालत तवतक नहीं सुधर सकती जवतक कि समूचे सामाजिक ढांचे को ही नहीं बदल दिया जाता। मेरे विचार में यह तब्दीली केवल तभी प्रभावकारी वन सकती है जव लोकतंत्री समाजवादी व्यवस्था का निर्माण किया जाय। लेकिन अगर हम शिक्षित वर्ग के संकुचित नजरिये से इसपर विचार करें तो यह स्पष्ट है कि जनसाधारण की हिमायत के विना ब्रिटिश सरकार पर दवाव नहीं डाला जा सकता। लेकिन इस बात को मान लेने के वावजूद जनता में जो भय है, उसे दूर करने का कोई उपाय नहीं किया जा सकता। स्वराज्य के कोरे आदर्शों के नाम पर तो जनता की हिमायत नहीं हासिल करी जा सकती। इसलिए यह जरूरी है कि हम अपने आर्थिक प्रोग्राम को उनके सामने साफतौर से रखें। हमारे सामने एक निश्चित लक्ष्य होना चाहिए और जनता को राहत पहुंचाने के लिए फौरी कार्रवाइयों की भी हमें गुंजाइश कर लेनी चाहिए।

इस तरह हमारा लक्ष्य महज यह हो सकता है—आत्म-निर्भर लोकतंत्री राज्य, और इसके साथ मैं 'समाजवादी' शब्द भी जोड़ना चाहूंगा—यानी लोकतंत्री समाजवादी राज्य। इसीके लिए हमें काम करना है। अव सवाल यह है कि हमारे काम करने के तरीके क्या हों? मौजूदा अवस्थाओं के लिए यह परिवर्तन काफी क्रांतिकारी है और क्रांतिकारी परिवर्तन सुधारवादी तरीकों और उपायों से नहीं लाये जा सकते। जो सुधारक वुनियादी परिवर्तन या दमनकारी शासन का खात्मा करने से डरता है और उसकी चंद-एक वुराइयों को ही दूर कर लेना चाहता है, वह उसका असली हिमायती वन जाता है। इसलिए हमें सुधारक के तंग नजरिये की बजाय एक ऐसे क्रांतिकारी नजरिये

को पैदा करना होगा, जिससे बुनियादी और महान परिवर्तन हों। मौजूदा हालतों में हम हिंसा की राह पर नहीं चल सकते, इसलिए दूसरा रास्ता सिर्फ असहयोग का ही है। क्रांतिकारी माहौल पैदा करनेवाली हर बात उसकी रुकावटों को कम करने में मदद पहुंचाती हैं। मैंने 'क्रांतिकारी' लफ्ज का इस्तेमाल सही मानों में किया है, जिसमें हिंसा के लिए कोई जगह नहीं। मेरा ख्याल है कि मौजूदा वक्त में हिंसा भारत के लिए क्रांति के कतई खिलाफ जाती है। किसी बहादुर आदमी के दहशत पैदा करनेवाले कारनामों का क्रांति पर उल्टा असर पड़ता है और इसी एक वजह से ऐसे कारनामे राष्ट्रीय हित के लिए भी नकसानदेह हैं। इस तरह के जाती खौफनाक कारनामों की बिना पर अभी तक किसी राष्ट्र का निर्माण नहीं हुआ।

कुछ साल पहले कौंसिलों में जाने की अच्छाइयों को लेकर बड़ी-बड़ी बातें हुई थीं और आज भी उनकी गूंज मौजूद है। इस सवाल ने एक सिद्धांत की सूरत अख्तियार कर ली थी। लेकिन ऐसे सवालों की जांच महज इस बात से की जा सकती है कि आम जनता पर उसका मुखालफ असर क्या होता है। मैं यह अंदाजा लगा सकता हूं कि कौंसिलों में जाकर जो काम किया जायगा, उससे सही महौल बनाने में किसी हद तक मदद मिलेगी। लेकिन यह उसी हालत में मुमकिन है, जबकि सही मानों में और अपने आदर्श को हमेशा सामने रखते हुए काम किया जाय। चंद सुधारों के ख्याल से कौंसिलों में शामिल होना बेमानी है। इतने पर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि संसदीय मामलों के जानकार और लायक व्यक्ति हमारी कौंसिलों में जाने से क्रांतिकारी नहीं कहे जा सकते हैं। यह बहुत ही बेमानी बात होगी।

आपके सामने असली सवाल है फिरकापरस्ती का कि कसे उसे खत्म किया जायं। जिस तरह के भारत का मैं निर्माण करना चाहता हूं, उसकी चर्चा मैं पहले भी कर चुका हूं। फिरकापरस्ती का कड़ाई के साथ मुकाबला करना होगा और उसे दबाना होगा। मेरे विचार में फिरका-परस्ती इतनी बड़ी ताकत नहीं है कि जैसी वह बना दी गई है। हो सकता है कि आज यह बहुत बड़ी ताकत जान पड़ती हो, लेकिन इसकी जड़ें निहायत कमजोर हैं। गुस्से और बेतहाशा जोश का ही यह नतीजा है, और जैसे ही हमारे दिमाग ठण्डे पड़ जायंगे, इसका खात्मा हो जायगा। यह एक कोरी कल्पना है, जिसका असलियत के साथ कोई ताल्लुक नहीं और यह जिंदा भी नहीं रह सकती। पढ़े-लिखे लोगों की उस जमात ने इसको पैदा किया है जो ओहदों और नौकरियों की तलाश में रहते हैं। एक हिन्दू या मुसलमान, या सिक्ख के आर्थिक हित एक-दूसरे से कैसे जुदा-जुदा हो सकते हैं? ऐसा हर्गिज नहीं हो सकता, भले ही वे अलग-अलग धर्मों को माननेवाले हैं। यह मुमकिन है कि अगर किसी हाई कोर्ट में एक जज की जगह या इसी तरह की कोई दूसरी जगह खाली हुई हो तो फिरकापरस्ती का सवाल उठाने से किसीकी जात को फायदा हो जाय। लेकिन इससे उसके फिरके यानी जाति को लाभ कैसे पहुंच सकता है? एक मुसलमान किसान को इससे क्या वास्ता कि लाहौर में फलां जज मुसलमान है या हिन्दू है। आर्थिक हितों की राह इससे जुदा होती है। मुसलमान, सिख और हिन्दू जमींदारों में काफी समानता दिखाई देती है और इसी तरह मुसलमान, सिख और हिन्दू काश्तकारों में भी काफी हद तक समानता है, लेकिन एक मुसलमान जमींदार और एक मुसलमान काश्तकार के बीच समानता का नाम भी नहीं। इसलिए हमें आर्थिक सवालों की निगाह से ही किसीके अमल पर विचार करना चाहिए। अगर हम ऐसा करेंगे तो फिरकापरस्ती आपसे-आप गायब हो जायगी। झगड़े तो तब भी होंगे ही, लेकिन ये रगड़े-झगड़े जुदा-जुदा जमातों (वर्गों) में होंगे, धर्मों के बीच नहीं।

किसी जाति के किन हितों की हिफाजत की जानी चाहिए? मेरी राय में बुनियादी तौर पर वे सांस्कृतिक हैं।

दुनिया के हर देश में सांस्कृतिक अल्पसंख्यक वर्ग हैं और सिद्धांत के तौर पर यह माना जाता है कि उन्हें अपनी संस्कृति को स्थिर रखने की पूरी-पूरी आजादी दी जायगी। इसी तरह भारत में भी हर सांस्कृतिक समह या वर्ग को अपनी-अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने और उसका विकास करने की आज़ादी होनी चाहिए। भारत में एक मिली-जुली और आम संस्कृति के निर्माण का यही एक तरीका है। संस्कृति में भाषा, तालीम और स्कूलों का मामला भी आ जाता है।

अगर हम संस्कृति के सवाल का हल ठीक तरह से कर लें, यानी अल्पसंख्यकों को उनके हितों की हिफाजत का यकीन दिला दें तब फिरकापरस्ती की वात ही क्या रह जाती है? इसके वाद अगर हम चुनावों को क्षेत्रीय न वनाकर माली नजरिये का वना देंगे तो इससे न केवल एक प्रगतिशील कार्यकारी प्रणाली वल्कि संयुक्त और पृथक् चुनावों तथा सीटों की रिजर्वेशन की समस्या से भी छुटकारा पा जायंगे। अव यह आम तौर पर मान लिया गया है कि पृथक् चुनाव, जिनका मुद्दा अल्पसंख्यकों के हितों की हिफाजत करना है, दर असल उनके लिए नुकसानदेह हैं और राज्य में उनकी ताकत को कम करका है। अगर किसीको उसके खिलाफ होना चाहिए तो अल्पसंख्यकों को ही, लेकिन इस कोरी कल्पना की ताकत को देखिये कि हममें से कई इस पृथक चुनाव को इतना 'कीमती हक' मानने लगे हैं कि उससे चिपके रहना चाहते हैं। मेरा ख्याल है कि अगर थोड़ी भी आजादख्याली से काम लिया जाय तो हर कट्टरपंथी सहज ही समझ जायगा कि पृथक् चुनाव महज राज्य के लिए ही खतरा नहीं है, वल्कि अल्पसंख्यकों के लिए खास तौर पर नुकसानदेह है। निजी तौर पर मैं क्षेत्रीय चुनावों के खिलाफ हूं, लेकिन अगर इस तरीके को जारी रखा जाता है तो मैं पृथक् चुनावों के सख्त खिलाफ हूं।

फिरकापरस्ती के आधार पर सीटें रिजर्व रखना मुझे पसन्द नहीं है, लेकिन अगर जनता को इस समस्या का यही हल मंजूर है तो मैं भी उसे मंजूर कर लूंगा। हमें असलियतों का सामना करना है और यह भी सही वात है, कि वहुत-से लोग इन मामलों को वेहद अहमियत देते हैं। जहांतक सवाल मेरे ख्याल का है, मैं यकीन के साथ कहता हूं कि जो भी कोई फैसला होगा, वह आरजी तौर का ही होगा। हममें से कुछ लोगों को यह कतई हक नहीं कि हम आनेवाली पीढ़ी को भी इन ख्यालों में बांध दें। मेरा विश्वास है कि जो हमारे वाद आयंगे वे धर्मों और फिरकापरस्ती से आजाद होकर ही सव समस्याओं पर विचार करेंगे। हममें जो लोग सियासी यानी राजनैतिक और माली यानी आर्थिक मामलों में फिरकापरस्ती और मजहवी दखलंदाजी को पसन्द नहीं करते, उनके लिए जरूरी हो जाता है कि अव वे पक्के इरादे के साथ उन कट्टरपंथियों को मनमानी न करने दें।

मैंने इस लम्वे भाषण में 'साइमन कमीशन' का महज जिक्र-भर ही किया है। मेरे ऐसा करने की एक वजह यह है कि जो समस्या हमारे सामने है, वह इससे कहीं ज्यादा बड़ी है। दूसरी यह कि मुझे आप लोगों को कमीशन के वायकाट के बारे में कुछ ज्यादा समझाने की भी जरूरत नहीं है। वायकाट का यह सिलसिला तो जारी ही रहेगा, चाहे अच्छी नीयत से खाई को पाटने यानी समझौते की कोशिशें बेकार जायं और कमजोर दिलों को निराशा ही हो।

हमारे और अंग्रेजों के दर्मियान जो खाई है, उसे पाटना सहज नहीं है। यह समझना कि यह आसानी से पाटी जा सकती है, अपनेको धोखा देना है। इंगलैण्ड के साथ दोस्ती और सहयोग की विना पर इस खाई को पाटने के लिए एक नया पुल वनाने के पहले जिन वंधनों से हम उसके साथ वंधे हुए हैं, उन्हें तोड़ डालना होगा। केवल तभी असली सहयोग हो सकता है। मुमकिन है, इसमें से चंद लोगों की अव भी यह ख्वाहिश हो कि वे सहयोग की सुखद और टूटी-फूटी राहों के लिए कोई उपाय निकाल ही लेंगे। अगर ऐसा ही है तो अंग्रेजों के लिए वह स्वागत के लायक

हैं, हममें से कोई उनका स्वागत नहीं करेगा। हम इन पिछलग्गुओं के वावजूद कमीशन का वायकाट जारी रखेंगे। लेकिन सभाओं और प्रस्तावों के जरिये कमीशन के वायकाट का प्रोग्राम वहुत ही हलके तरीके का है। हम इसे पुर-असर कैसे वना सकते हैं ?

अंग्रेजी चीजों के वायकाट का एक सुझाव दिया गया है और इसका हमें पूरा-पूरा हक है और मुझे उम्मीद है कि हम ताकत-भर इसपर अमल भी करेंगे। लेकिन हमें यह याद रखना चाहिए कि हम इस तरह के आम वायकाट की विना पर हम ज्यादा कामयाव नहीं हो सकेंगे। असली चीज, जिसका वायकाट करना चाहिए वह है अंग्रेजी कपड़ा। कपड़े के वारे में देश की मौजूदा हालत, मेरे ख्याल से यह है—हमारी कपड़े की खपत का एक-तिहाई हिस्सा हमारी हिन्दुस्तानी मिलें तैयार करती हैं और दूसरा एक-तिहाई हाथकरघों पर तैयार किया जाता है और वाकी का एक-तिहाई विदेशों से आता है, जिसमें ९० फीसदी इंगलैण्ड का है।

हमारे देश में इन दिनों अंग्रेजी कपड़े के वायकाट की लहर तेजी से चल रही है। यह विलकुल न्याय-युक्त है और अगर हम इसमें कामयाव होंगे तो इंगलैण्ड हमारे सामने घुटने टेक देगा। लेकिन इसमें हमारे नाकाम रहने का भी एक वड़ा खतरा है। अगर हम दूसरे विदेशी कपड़े को देश में आने की छूट दे देंगे, तो फिर ब्रिटिश कपड़ा जापानी या दूसरे विदेशी कपड़े के शक्ल में चोरी से आने लगेगा, और तव आम खरीदार और दुकानदार के लिए दोनों किस्म के कपड़ों में भेद करना मुश्किल होगा। यह मुश्किल दर असल ही नजरंदाज करने लायक नहीं है; और इसलिए यह जरूरी है कि ब्रिटिश कपड़े का वायकाट करने की खातिर हमें सव विदेशी कपड़ों का वायकाट करना चाहिए। इससे एक लाभ यह होगा कि देश की मिलों का कपड़ा और खादी विदेशी कपड़े के वायकाट के लिए एक-दूसरे का साथ देंगे। अगर हम दूसरे विदेशी कपड़ों को छूट देते हैं तो देश की मिलों और खादी वनानेवालों में सहयोग कायम नहीं हो सकेगा। इसलिए हमें सव तरह के विदेशी कपड़े के वायकाट पर जोर देना चाहिए। इससे हम अपने देश के उत्पादन को भी वढ़ाने में सहायक होंगे। आज विदेशी कपड़े के वायकाट के मानी हैं अंग्रेजी कपड़े का वायकाट। इसका मतलव यह हुआ कि हमारे कपड़े की खपत का एक-तिहाई, जो पहले इंगलैण्ड पूरा करता था, अव हमें खुद पैदा करना है। यह कोई वहुत मुश्किल काम नहीं है, वशर्ते कि हमारी खादी की संस्थाएं और हमारी सूती मिलें एक-दूसरे का मुकावला करने की वजाय इस काम को मिल-जुलकर करें। इस वात को सव जानते हैं कि अगर मांग हो तो खादी वहुत थोड़े अर्से में वहुत वड़ी मात्रा में वनाई जा सकती है। हमारी मिलें भी मौजूदा मशीनों से अपने उत्पादन को काफी वढ़ा सकती हैं। इस तरह, वेशक, हम वहुत थोड़े अर्से में इतना कपड़ा पैदा कर सकते हैं, जो विदेशी कपड़े का वायकाट करने के लिए काफी होगा, वशर्ते कि हममें ऐसा करने की ख्वाहिश मौजूद हो। इस ख्वाहिश को जाहिर करने का काम जनता का है। अगर जनता यह कर देती है तो सारी मुश्किलें हल हो जाती हैं।

हम वायकाट के वारे में उन लोगों से किसी भी तरह की मदद की आशा नहीं कर सकते, जो विदेशी कपड़ा मंगाते हैं, क्योंकि उसके कारण आयात करनेवालों और दूसरे व्यापारियों को नुकसान होगा। लेकिन क्या हमें मुट्ठी-भर व्यापारियों की खातिर भारत और उसकी करोड़ों जनता के हितों की कुर्वानी कर देनी होगी ? हमारे वहुत-से मिल-मालिकों का भी पिछला इतिहास कुछ अच्छा नहीं है। उन्होंने वीते दिनों में देश की राष्ट्रीय भावनाओं से फायदा उठाया है। उन्होंने वड़े-वड़े मुनाफे कमाये हैं, और इतना होने पर भी उन्होंने उन गरीव मजदूरों की दयनीय दशा की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया, जिनकी वदौलत उनकी किस्मत का सितारा वुलंद हुआ। इन

दिनों उनमें से बहुत-से मिल-मालिक विदेशी कपड़े का मुकाबला करने की बजाय खादी का मुकाबला कर रहे हैं, और इस तरह जनता की खादी की भावना से भी फायदा उठा रहे हैं। अगर वे दूरंदेशी से काम लें और अपने असली फायदे को जान लें तो उन्हें यह मालूम हो जायगा कि उनकी प्रगति आम जनता की सद्भावनाओं के साथ जुड़ी हुई है, और उनके दिलोजान से बायकाट में सहयोग देने से उन्हें समूचे राष्ट्र के मुकाबले कहीं ज्यादा फायदा होगा। लेकिन इस सहयोग की एक ही शर्त है कि वे अपनी मिलों के मजदूरों के साथ पूरा-पूरा इन्साफ करें और कम-से-कम मुनाफा कमायें।

खादी और हिन्दुस्तानी मिलों के कपड़े के सहयोग से ही पुरअसर बायकाट मुमकिन है। अगर थोड़े भी मिल-मालिक हमारी शर्तों को मान लें तो हम उनके साथ काम कर सकते हैं और मुझे यकीन है कि बाकी भी बाद में हमारी तहरीक में शामिल हो जायंगे। लेकिन अगर मिलों के साथ सहयोग नहीं होता तब हमें क्या करना होगा ? उस हालत में हमारा फर्ज यही है कि खादी पर ही अपनी सारी ताकत लगाते हुए इन गुमराह मिल-मालिकों को सही राह पर लाने के उपाय करें और जितना भी हमसे हो सके, हम विदेशी कपड़े के बायकाट को कामयाब बनावें।

मैंने अपने भाषण के शुरू के हिस्से में भारत में औद्योगीकरण के उदय का जिक्र किया है, और यह भी कहा है कि मेरी राय में ऐसा होना लाजिमी था। मुझे छोटी या बड़ी मशीनों के बारे में कोई एतराज नहीं और मेरा ख्याल हैकि अगर उनका इस्तेमाल सही तौर पर किया जाय तो मानव-जाति पर हावी होने के बजाय उन्हें उसकी सेवा का जरिया बनाया जा सकता है, और दूसरी और मैंने खादी के इस्तेमाल की भी हिमायत की है। ऐसा मैंने इसलिए किया है, क्योंकि देश की मौजूदा हालात में, और आइंदा भी कुछ समय तक खादी भारत की करोड़ों गरीब जनता के लिए बरकत बनी रहेगी। मैं नहीं कह सकता कि बहुत आगे के दिनों में भी खादी हमारे लिए जरूरी होगी। लेकिन मैं यह कह सकता हूं कि आज तो यह एक अमली जरूरत को पूरा करती है और जहां भी इसका उत्पादन किया गया है, वहां इसके कारण खुशहाली आई है। किसानों के लिए यह एक सहायक धंधा है, यह सिद्धांत इससे साबित हो जाता है। लेकिन इस बारे में अगर हमें कोई शक भी था तो हमारे तजुरबे और हमारी आंखों ने उसे कतई दूर कर दिया है। अर्से से तंग-हाल किसानों को राहत पहुंचाने, कपड़े के मामले में भारत को अपने पांव पर खड़ा करने और विदेशी कपड़े के बायकाट को कामयाब बनाने के लिए खादी आज निहायत जरूरी है। लड़ाई या संकट के समय खादी का महत्व बढ़ सकता है, क्योंकि बाहर से कपड़ा आना बंद हो जाता है। तब हम अपनी जरूरतों को कैसे पूरा करेंगे ? हमारे यहां की मिलों को बड़े-बड़े मुनाफे होंगे, कपड़े की कीमतें बेहद चढ़ जायंगी और हमारी गरीब जनता को, ऐसी हालत में, नंगे ही रहना होगा। उस हालत में खादी ही हमारी रक्षा करेगी। यह बढ़ती हुई मांग को पूरा करेगी और मिलों को कपड़े की कीमतें कम बनाये रखने के लिए लाचार करेगी। इसलिए लड़ाई के नजरिये से भी खादी निहायत जरूरी है।

लेकिन अगर लड़ाई छिड़ जाती है और जैसाकि जाहिर होता है कि यह तुरंत ही छिड़नेवाली है, तब विदेशी कपड़े के बायकाट से कहीं ज्यादा अहम और दूसरे सवाल हमारे सामने आ जायंगे। मद्रास-कांग्रेस ने इस मामले में हमें रास्ता दिखाया है, और इस सबके लिए यह जरूरी है कि वह उस राह की अगवानी करे, क्योंकि मोर्चेबन्दी का असली भार तो पंजाब पर ही पड़ेगा। बीते दिनों में आपका और आपके बहादुर सिपाहियों का भारत के अन्दर ही नहीं बल्कि दुनिया के चारों ओर जी-भर शोषण किया गया है। यहांतक कि आज भी चीन,

ईरान और मेसोपोटामिया में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के गंदे काम करने के लिए उन्हें लाचार किया जाता है और उनका इस्तेमाल उन लोगों को कुचलने की खातिर किया जाता है, जो हमारे दोस्त हैं और पड़ौसी हैं और जिन्होंने हमारा कुछ भी नहीं विगाड़ा है। अव वह वक्त आ गया है, जवकि हमें अपने वीरों के जरिये होनेवाले इस तरह के लज्जापूर्ण शोषण का खातमा कर देना होगा। एक ओर तो हमें यह कहा जाता है कि हम विदेशी हमलों से अपने देश की हिफ़ाजत करने के लायक नहीं हैं, लेकिन दूसरी ओर हमारे सिपाहियों को इतना काविल समझा जाता है कि वे यूरोप में, एशिया में और अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा करने लायक हैं। आप यह जानते ही हैं कि पिछले महायुद्ध में अंग्रजों ने हमारी दौलत और हमारी मानव-शक्ति का किस तरह शोषण किया था! आप यह भी जानते हैं कि हमारी इस मदद के एवज में हमें रौलेट एक्ट और पंजाव में मार्शल ला हासिल हुए हैं। क्या आप फिर से अपना शोषण कराने को तैयार हैं और क्या आप इस वात के लिए भी तैयार हैं कि आपको फिर से मलवे के ढेर में डाल दिया जाय ? उनका कहना है कि अक्लमंद लोग दूसरों की नाकामियों और तजुरवों से और आम लोग अपने निजी तजुरवों से फायदा उठाते हैं; लेकिन मूर्ख लोग किसी एक से भी फायदा नहीं हासिल कर पाते। हम भले ही अक्लमंद न हों, लेकिन हमें मूर्ख भी नहीं वनना है। हमें अव फैसला करना है। हमें यह फैसला कर लेना है कि हम चाहे कुछ और कर सकें या न कर सकें, लेकिन हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अपना शोषण नहीं करने देंगे। हमें मद्रास-कांग्रेस की इस वात की हिमायत करनी चाहिए कि अगर ब्रिटिश सरकार लड़ाई छेड़ती है और भारत का शोषण करने पर उतारू होती है तो हमारा यह फर्ज हो जाता है कि हम सव इस लड़ाई में किसी भी तरह का हिस्सा लेने या किसी भी तरह का सहयोग देने से इन्कार कर दें। यह इतना सहज काम नहीं होगा। इसके माने यह होंगे कि वदले में हमें भारी मुसीवतों का सामना करना होगा। लेकिन अगर हममें उनका मुकावला करने की हिम्मत हुई, और आखिरी दम तक उन्हें वर्दाश्त करने और समझौता न करने की सियासी लियाकत हममें हुई तो हम इस इम्तिहान में कामयाव होंगे और हमारा प्यारा देश, जो इतने लम्वे अर्से से विदेशी हुकूमत का गुलाम है, फिर से आज़ाद हो जायगा। ●

लखनऊ में आल पार्टीज कान्फ्रेंस में २८ अगस्त, १९२९ को औपनिवेशिक स्वराज्य के प्रस्ताव के विरोध में दिया गया भाषण।

औपनिवेशिक दर्जे के खतरे

जिस कमेटी की रिपोर्ट पर हम विचार कर रहे हैं, उसके मैम्बरों ने मेरे उस मामूली से काम के एवज में मेरी तारीफ करने की मेहरबानी की है, जो मैंने उनके लिए किया। मेरे लिए यह बात बड़ी नामुनासिब होगी कि मैं उनके काम की नुक्ताचीनी करूं, जबकि खासतौर पर, मैं यह बहुत अच्छी तरह जानता हूं कि इस रिपोर्ट को तैयार करने में उन्होंने किस कदर सख्त मेहनत की है।

यह कमेटी क्यों तैनात की गई थी। हम सब जानते हैं कि यह हमारी फिरकापरस्ती की मुश्किलों का कोई हल निकालने के लिए तैनात की गई थी। बंबई में हमें एक बड़ी भारी मुसीबत का सामना करना पड़ा और उस वक्त उसमें से निकलने का कोई रास्ता हमें नजर नहीं आया। और इसीलिए यह कमेटी बनाई गई थी, न कि इसलिए कि एक अच्छे विधान का मस्विदा तैयार करना जरूरी हो गया था। इस हल की तलाश में वह कहांतक कामयाब रही है, यह उसकी रिपोर्ट से साबित हो जाता है। यह एक सही हल है, जो सब पार्टियों के साथ इन्साफ करता है और मुझे यकीन है, यह कान्फ्रेंस इसे मंजूर कर लेगी।

कुछ दूसरे सुझाव, जो इस कमेटी ने दिये हैं, मेरे खयाल में वे इतने सही नहीं हैं। मैं खासकर डोमीनियन स्टेटस (औपनिवेशिक दर्जा) और उसकी तमाम पेचीदा बातों के लिए अपने-आपको किसी भी तरह रजामंद नहीं कर पाता हूं। जिस रेजोल्यूशन पर हम विचार कर रहे हैं, उसके क्या माने हैं? उसकी प्रस्तावना में हमें बताया गया है कि आज़ादी के लिए काम करने और उसका प्रचार करने की हमें छूट है। लेकिन यह तो महज एक पैंतरेबाजी है, जिसके कुछ माने नहीं। रेजोल्यूशन का दूसरा हिस्सा वाकई में हर जमात को और हर शख्स को डोमीनियन स्टेटस का पाबंद बनाता है। इसकी हिमायत में जो तकरीरें की गई हैं, उनसे यह बात और भी साफ हो गई है। जिस वक्त मैं उन्हें सुन रहा था तो मुझे यह शक हुआ कि क्या मैं एक पीढ़ी पहले ही के कांग्रेस के इजलास में हिस्सा ले रहा हूं? उन तकरीरों में एक ऐसा मुद्दा पेश किया गया है, जो गुजरे जमाने का है, और जो आज के हालात और असलियतों से बिल्कुल नावाकिफ है। हिंदुस्तानियों का गवर्नर के ओहदों पर न लिया जाना, और सरकारी नौकरियों के बड़े ओहदों और रेलवे बोर्ड में हिंदुस्तानियों को जगह न मिलने की बेइन्साफी का जिक्र किया गया है। मुझे महसूस होता है कि हम बीसवीं सदी से उन्नीसवीं सदी के तरीकों और रास्तों की तरफ बहे जा रहे हैं।

हमें कहा गया कि हमें व्यावहारिक बनना चाहिए और व्यावहारिक बनने का मतलब यह लगाया जाता है कि हम उन पुराने और घिसे-पिटे नजरियों के साथ चिपके रहें कि जिनका दुनिया में हुई तब्दीलियों के साथ कोई वास्ता नहीं। इस रेजोल्यूशन को पेश करनेवाले साहब का कहना है कि उन्होंने सियासत की तालीम जान स्टुअर्ट मिल और ग्रीन से हासिल की है, जो 'ए शार्ट हिस्ट्री ऑव इंडियन पीपुल' के लेखक थे। वाक़ई, वे दोनों बड़े

मशहूर आदमी थे, पर क्या मुझे यह याद दिलाना पड़ेगा कि वे मर गये हैं, और जा चुके हैं, और तबसे लेकर बहुत कुछ हो चुका है। महारानी ऐन, चार्ल्स प्रथम, सोलहवें लुई और रूस के आखिरी जार की तरह ही वे भी मर चुके हैं। दुनिया बदल गई है, और आगे बढ़ गई है, और अगर हम व्यावहारिक होना चाहते हैं, तो हमें उन तब्दीलियों पर गौर करना होगा, जो दुनिया में आई हैं। ब्रिटिश कामनवेल्थ ऑव नेशन्स, जैसाकि अब उसका नाम है, किस मकसद के लिए है? इसका मकसद है एक हिस्से का दूसरे हिस्से पर जुल्म करना और शोषण करना। उसमें इंगलैण्ड और उसके खुद-मुख्तारी डोमीनियन (स्वशासित उपनिवेश) हैं, जो हिंदुस्तान, अफ्रीका के कुछ हिस्सों, मलाया और दुनिया के दूसरे हिस्सों का शोषण कर रहे हैं। जब हम डोमीनियन स्टेटस हासिल कर लेंगे तो क्या हम शोषित से तरक्की करके शोषण करनेवालों के दर्जे पर पहुंच जायंगे? क्या हम इंगलैण्ड और उसके दूसरे उपनिवेशों को मिस्र और अफ्रीका का शोषण करने में मदद देंगे? यह बात लाजिम है। हिंदुस्तान के लिए डोमीनियन स्टेटस का जरूरी तौर पर यह मतलब होना चाहिए कि ब्रिटिश सल्तनत जैसी आज है, वह टूट जाय।

फिर हमें यह भी बताया गया है कि डोमीनियन स्टेटस रजामंदी से हासिल हो सकेगी; लेकिन आजादी हथियारों और हिंसा के जरिये ही मिलेगी। हम जो यहां मौजूद हैं, उनमें से कोई ख्याल कर सकता है कि डोमीनियन स्टेटस मीठी-मीठी दलीलों और वाजिब बातें बनाने से ही मिल जायगी? अगर किसीका यह ख्याल हो तो मैं यह कहूंगा कि वह निहायत भोलापन है। डोमीनियन स्टेटस या आज़ादी दोनों के पीछे मंजूरी होना जरूरी है, चाहे वह हथियारबंद फौजों की हो या अहिंसा की ताकत की हो। आप लोगों को डोमीनियन स्टेटस उसी वक्त मिलेगा, जब आप अंग्रेजों को यह बिल्कुल साफ तौर पर समझा देंगे कि अगर यह मंजूर नहीं किया जाता, तो उन्हें ज्यादा नुकसान उठाना होगा। आपको यह तभी मिलेगा जब वे यह महसूस करेंगे कि अगर वे इसे मंजूर नहीं करते तो हिंदुस्तान में उनकी हालत बुरी हो जायगी। आपकी दलीलों या खूबसूरत जुमलों से यह हासिल नहीं होगा। इस तरह के वाक़यात में इन्साफ के लिए बहुत थोड़ी जगह होती है। इसलिए आज़ादी और डोमीनियन स्टेटस दोनों के लिए एक मंजूरी, एक ताकत होना जरूरी है, चाहे वह किसी भी तरह क़ी हो। ऐसी मंजूरी तैयार कर लेने के बाद ही रजामंदी का सवाल पैदा होगा। इसके बिना यह नहीं हो सकता। अलावा इसके, अगर हिंदुस्तान और इंगलैण्ड के बीच राजीनामे का नतीजा डोमीनियन स्टेटस हो सकता है, तो कोई वजह नहीं कि आज़ादी के बारे में भी दोनों के बीच क्यों रजामंदी नहीं हो सकती। अगर जरूरी हुआ तो अंग्रेजों के हक में हम कुछ संरक्षण के लिए भी राजी हो सकते हैं। ऐसा करने में हमारा यह ख्याल नहीं है कि अंग्रेज किन्हीं संरक्षणों के हकदार हैं, बल्कि भारी तकलीफों और खूं-रेजी से बचने के गरज से अमन की कीमत के तौर पर हम ऐसा करेंगे। शायद मेरे लिए अंग्रेजों के साथ सहयोग करना ज्यादा आसान है, बजाय उन लोगों के, जो डोमीनियन स्टेटस की बातें करते हैं। लेकिन मैं उनकी शर्तो के साथ सहयोग नहीं कर सकता। मैं बराबरी की शर्तो पर तभी सहयोग करूंगा जब मेरी पीठ पर कोई ताकत होगी।

इसलिए, मैं एक खूबसूरत विधान बनाने की बजाय इस मंजूरी की तामीर करने में ज्यादा दिलचस्पी रखता हूं। आप जैसा चाहें करें, लेकिन यह याद रखें कि इसे लागू करने के लिए आपके पास मंजूरी होना लाज़िमी है और वह मंजूरी डोमीनियन स्टेटस और आज़ादी दोनों पर ही लागू होती है। ऐसे किसी भी शुबा में न रहिये कि डोमीनियन स्टेटस रजामंदी का मामला है और आसानी से हासिल किया जा सकता है और कि आज़ादी हासिल करना इससे कहीं ज्यादा मुश्किल है और वह सिर्फ लड़ाई के जरिये ही आ सकती है। अगर हिंदुस्तान डोमीनियन स्टेटस हासिल कर लेता है, तो इसके बाद यह जरूरी हो जाता है कि हम अपनी विदेश-नीति और इंगलैण्ड की

विदेश-नीति में समझौता करें और मिस्र, चीन और दूसरी जगहों पर इंगलैण्ड की हिमायत करें। दरअसल इस रिपोर्ट से यह साफ जाहिर होता है कि एक मिली-जुली शाही नीति होनी चाहिए । क्या आप लोग इंगलैण्ड के रथ के पहियों के साथ इस तरह बंधने को तैयार हैं ? डोमीनियन स्टेटस में इंगलैण्ड और हिंदुस्तान के बीच सहयोग शामिल है।

आइये, हम आज इंगलैण्ड के अलग-अलग दलों के बारे में विचार करें। क्या आप लोग लार्ड बरकनहैड और विन्टरटन या 'स्टील फ्रेम' के मशहूर मिस्टर लायड जार्ज और उनके हिमायती अखबार 'मानचेस्टर गार्जियन' के साथ सहयोग करेंगे कि जिसने इस रिपोर्ट को एक पागलपन बताया है, जिसपर हम विचार कर रहे हैं, या क्या आप इंगलैण्ड के होम सेक्रेटरी जिक्स के साथ सहयोग करेंगे कि जिसकी चंद सिफ्तों में साफगोई भी एक है, और जिन्होंने कहा है कि अंग्रेज हिंदुस्तान में हिंदुस्तान के फायदे के लिए नहीं, बल्कि अपनी जेबें भरने की खातिर आये हैं, या आप लोग उन झूठे और ढोंगी रंगे सियारों के साथ सहयोग करेंगे, जो इंगलैण्ड की लेबर पार्टी को चलाते हैं ? मुझसे पूछा जाय तो मैं मैकडोनल्ड एण्ड कंपनी के बजाय बरकनहैड के साथ निबटना पसंद करूंगा। तब आप इंगलैण्ड में किसके साथ सहयोग करते हैं ? कोई भी आपको नहीं लेगा, कोई भी आपके साथ मतलब नहीं रखेगा, फिर भी आप लोग अंग्रेजों के आगे सुझाव रखने के, समझौते करने और उनको यकीन दिलाने के पुराने फार्मूले को दोहराते जा रहे हैं। आप ऐसा हर्गिज नहीं करेंगे जबतक आप मंजूरी की तामीर नहीं कर लेते और अपनी ख्वाहिश को लागू नहीं करते। इसलिए मैं आप लोगों को निहायत हलीमी के साथ कहता हूं कि डोमीनियन स्टेटस की बात करना अपने-आपको भुलावे में रखना है और मुल्क को एकदम गुमराह करना है। सिर्फ आजादी एक कारआमद मुद्दा है और किसी भी सूरत में डोमीनियन स्टेटस के लिए रजामंद होना बुरी नीति और बेहद खराब तरीका है, चाहे वह आरजी हो और चाहे वह समझौते की खातिर ही क्यों न हो !

मुख्तलिफ पार्टियों के बीच एकता की बात हो रही है और इसमें कोई शक नहीं कि यह मजलिस एक बड़ी नुमाइन्दा जमात है। लेकिन मैं आप लोगों से यह याद रखने की इल्तिजा करूंगा कि हम ज्यादातर इस मुल्क के पढ़े-लिखे लोगों की ही नुमाइंदगी करते हैं। सीधे तौर पर हम इस मुल्क के कुल दो-तीन या पांच फीसदी लोगों की नुमाइन्दगी करते हैं। जैसाकि हम सब जानते हैं, इस साल सारा मुल्क मजदूरों की मुसीबतों से हिल चुका है। हड़तालें, तालाबंदियां, गोली चलना और खौफनाक तकलीफें इन सबमें शामिल हैं, और मुल्क के मुख्तलिफ हिस्सों में किसानों को परेशानियां उठानी पड़ीं। इतने पर भी इन मामलों के बारे में इस रिपोर्ट में आपको क्या देखने को मिला है ? डिक्लेरेशन ऑव राइट्स (अधिकारों की घोषणा) में और दूसरी जगहों में कुछ अच्छे मंतकों के सिवा इसमें कुछ भी नहीं है । सिर्फ चन्द दिन पहले सरकार ने ट्रेड डिस्प्यूट बिल के नाम से एक कदम उठाया था, जिसका मंशा मजदूरों की जमातों को दबाना और रोकना है। इसके बारे में हमें क्या कहना है; इससे भी आगे, हाल ही में एक नया कदम उठाया गया है, जिसके बारे में कहा गया है कि यह कानून मुल्क में बोल्शेविक उपद्रवियों से निबटने के लिए बनाया गया है। वह शख्स बहुत भोला होगा, जो यह समझता है कि कुछ थोड़े-से बोल्शेविक या उसी किस्म के दूसरे लोग या उनके कुछ सैंकड़े लोग हिंदुस्तान में मजदूरों और किसानों से ताल्लुक रखनेवाली यह सारी परेशानियां पैदा कर सकते हैं। यह कदम ग़ैर-हिंदुस्तानियों पर लागू करने के लिए उठाया गया है, लेकिन हमें यह पता है कि कानूनी किताब में बंगाल आर्डिनेन्स जैसे बहुत-से तरीके हैं, जो हिंदुस्तानियों पर भी लागू किये जा सकते हैं। हिंदुस्तानियों के लिए कोई और ज्यादा कानून बनाने की जरूरत नहीं है। इंगलैण्ड की हिंदुस्तान के लिए

हमेशा से यही नीति रही है, और अब भी है ।

क्या आप समझते हैं कि हमारे लिए डोमीनियन स्टेटस की मांग करना, और इस तरीके से इस नीति पर हमारा मुहर लगाना ठीक है ?

मैं यह नहीं कहता कि डोमीनियन स्टेटस को अपना मुद्दा बना लेना हिंदुस्तान के लिए एक गलत और खतरनाक बात होगी। पर हममें से उन लोगों ने, जो मेरी तरह सोचते हैं, इस रेजोल्यूशन पर बड़े ग़ौर के साथ विचार किया है और यक़ीनी तौर पर हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि हम इसकी हिमायत नहीं कर सकते। जो हो, हम इस कान्फ्रेंस के काम में रुकावट नहीं डालना चाहते, क्योंकि हम यह महसूस करते हैं कि जो खास काम इसके सामने है, वह है फिरकापरस्ती के मसले को हल करना। इस मसले को हल करने के लिए हम हर तरह की मदद करने को तैयार हैं। इसलिए हमने अपने-आपको इस रेजोल्यूशन से जुदा रखने का फैसला किया है और इसमें कोई तरमीम करके या किसी दूसरे तरीके से भी इसके साथ कोई ताल्लुक नहीं रखना चाहते । ●

झांसी में २७ अक्तूबर, १९२९ को प्रांतीय राजनैतिक कान्फ्रेंस में भाषण।

आजादी का असली रूप

आपने इस प्रांतीय कांफ्रेंस की सदारत के लिए दूसरी बार चुनकर जो मेरा मान किया है, उसके लिए मैं आपका शुक्रिया करता हूं।

पांच साल पहले जब आपने मुझे इस कांफ्रेंस का सदर चुना था तो मैंने कहा था कि हम सिर्फ एक ही मुद्दे के लिए काम कर सकते हैं, और वह है पूरी आज़ादी। हमारी कांफ्रेंस ने इस मुद्दे को मंजूर किया था और नेशनल कांग्रेस को उसकी सिफारिश भेज दी थी। आजकल आजादी और औपनिवेशिक दर्जे के बारे में जो दलीलें और बहसें हो रही हैं, उनपर गौर कर लेना जरूरी है। भारत में आज़ादी की पुकार नई नहीं है। जिस दिन से हमारा देश विदेशी सत्ता का गुलाम हुआ, तबसे हमेशा ही ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने आज़ादी की लड़ाई का सपना देखा और उसके लिए काम किया और अपना सबकुछ उसपर कुर्बान कर दिया। सन् १८५७ की इतनी बड़ी जद्दोजहद सिवा आज़ादी की लड़ाई के और क्या थी कि जो बहादुराना कारनामों और बलिदानों से रौशन है और साथ-ही-साथ उसमें ऐसे बुरे कारनामों की कालिख भी मौजूद है कि जिनकी वजह से नाकामी हासिल हुई। यहां, झांसी के इस नगर में उस एक बालिका की प्यारभरी याद दिल में समा जाती है, जो निडर होकर अपने स्त्रीत्व और भारत की शान के लिए बे-अंदाज मुसीबतों के खिलाफ लड़ने और जान देने के लिए निकल पड़ी थी!

पीढ़ी-दर-पीढ़ी ऐसे मर्द और औरतों की कभी कमी नहीं रही, जिन्होंने विदेशी सत्ता के सामने सर झुकाने और घुटने टेकने से इन्कार कर दिया। इस नाफर्मानी के लिए उन्हें भारी कीमतें चुकानी पड़ीं। लेकिन बहादुरी का यह सिलसिला जारी रहा और लगातार बढ़ता ही रहा। आदमी की याददाश्त ऐसी है कि वह बीती बातों को अक्सर भूल-सा जाता है। लेकिन मौजूदा पीढ़ी के भी ऐसे कारनामे हैं, जो प्रेरक हैं और सुनहरे अक्षरों में लिखने लायक हैं। क्या वे सब नौजवान और बुजुर्ग, जिन्हें मौत और लंबी-लंबी कैद की सजाएं दी गईं, औपनिवेशिक दर्जे या खून से भरी आज़ादी के ही धोखे में थे?

विदेशी ताकत के अधीन कोई भी जिंदा कौम अपने विजेता के साथ कभी चैन की सांस नहीं ले सकती; क्योंकि इस चैन के माने हैं गुलामी और गुलामी के माने हैं उस सबकी मौत, जो कौम को जिंदा रखने की ताकत होती है। और भारत ने विदेशी सत्ता से अपनेको आज़ाद करने के लिए अपने बेटों और बेटियों की अनगिनत कुर्बानियों से अपनी वह ताकत जाहिर कर दी है। भारत इंगलैण्ड के साथ उस वक्त तक चैन से नहीं रह सकता जबतक वह अपनी आज़ादी हासिल नहीं कर लेता। आज़ादी की हमारी ख्वाहिश और उसके लिए हमारे काम करने की यही एक बुनियादी वजह है। यह आज़ादी उस साम्राज्यवादी गुट में हमारे हिस्सेदार बनने से भी नहीं आ सकती कि जो ब्रिटिश साम्राज्य कहलाता है। हम यह जान गये हैं, या हमें जान लेना चाहिए कि साम्राज्यवाद और आज़ादी

दोनों एक-दूसरे के मुखालिफ हैं। जिस दिन इंगलैण्ड अपने साम्राज्यवादी रवैये को छोड़ देगा, हम खुशी के साथ उससे सहयोग करेंगे। लेकिन क्या आपको इस बात के लिए कहीं कोई संकेत मिलता है या क्या आप भोलेपन में यह कल्पना कर सकते हैं कि हमें पहले तो उसके साम्राज्य में शामिल हो जाना चाहिए, और उसमें रहते हुए हम उसका सुधार कर सकते हैं? आज इंगलैण्ड साम्राज्यवाद का सबसे बड़ा हिमायती है और शायद सबसे ज्यादा गुनहगार उसके यहां का वह मजदूर दल (लेबर पार्टी) है, जो खूनी साम्राज्यवाद की हिमायत के साथ-साथ आज़ादी और आत्मनिर्णय की लंबी-लंबी बातें बनाने में कमाल की लियाकत रखता है।

हमारा दुश्मन इंगलैण्ड नहीं है। हमारा दुश्मन तो साम्राज्यवाद है और जहां साम्राज्यवाद है, वहां हम खुशी के साथ नहीं रह सकते।

लेकिन आज़ादी के हक में आपके सामने दलीलें पेश करने की मुझे जरूरत नहीं है। कांग्रेस की इस जमात के अन्दर रहते आप सब इस तहरीक के नेता रहे हैं और आप इस बात का नाज कर सकते हैं कि जो राह आपने दिखाई थी, खुद कांग्रेस उसपर चल रही है।

अबतक हमने सियासी आज़ादी पर जोर दिया था। अब वह वक्त आ गया है कि आप फिर से नेतृत्व संभालें और एलान करें कि आज़ादी से आपकी क्या मुराद है? कुछ लोग कहते हैं कि कांग्रेस को सियासी मसलों के अलावा दूसरे मामलों से ताल्लुक नहीं रखना चाहिए। लेकिन जिंदगी को जुदा-जुदा हिस्सों में तो नहीं बांटा जा सकता और न ही सियासत अपनेको समाज के दूसरे पहलुओं से जुदा रख सकती है। हमारे सामने सवाल है एक आज़ाद समाज की रचना का और इसके लिए हमें समाजी और माली मसलों पर विचार करना है, और उन्हें बदल डालने की कोशिश करनी है। ऐसी आज़ादी किस काम की है, जिसकी वजह से बहुतों को भूखा मरना पड़े और करोड़ों का शोषण हो? आज़ादी की लाजिमी शर्त यह है कि इसमें सब तरह के शोषण से छुटकारा मिले, और इसके लिए हमें समाज की उन सब बुराइयों का खात्मा कर डालना होगा, जो शोषण करनेवालों की मदद करती हैं। औपनिवेशिक दर्जे से हमारी तसल्ली न होने की यह भी एक बहुत बड़ी वजह है, क्योंकि इससे लाजिमी तौर पर विदेशी पूंजी हमपर छा जायगी और विदेशी पूंजी के माने हैं विदेशी शोषण।

इस तरह, हमारे सामने जो मसला है, उसके दो पहलू हैं—पहला यह है कि हमें एक माली और समाजी प्रोग्राम बनाना है, जिसके जरिये जनता को आजादी मिलेगी, और दूसरा यह कि ऐसे हालात पैदा करने के उपाय करना कि जिनमें हमारा प्रोग्राम लागू हो सके।

इस प्रोग्राम को तय करने से पहले हमें अपने मुद्दों और अपने आम नजरिये पर गौर कर लेना चाहिए। हम अक्सर जनता की सेवा करने और उसको गरीबी से निजात दिलाने की बातें किया करते हैं। लेकिन इसे अमल में कैसे लाया जाय, इस बारे में हमारे जो ख्याल हैं, वे स्पष्ट नहीं हैं। हम सोचते हैं कि स्वराज मिल जाने पर जनता को लाभ पहुंचेगा ही। किसी हद तक यह ठीक भी है, लेकिन यह किसी तरह निश्चित नहीं कि ऐसा होकर ही रहेगा। जिस ढंग से हम जनता का जिक्र करते हैं, उससे यह जान पड़ता है कि हम अपने-आपको जनता से कुछ जुदा समझते हैं। अपनी अक्लमंदी या अपनी दुनियावी मालीयत की वजह से हम अपने-आपको जनता का नेता मानते हैं। जब कभी हमारे और जनता के हितों में संघर्ष पैदा हो जाता है तो कुदरती तौर पर हम अपने हितों को ज्यादा महत्ता देते हैं। हम यह मान बैठे हैं कि हम ही देश के नौनिहाल हैं और इस मुल्क को आज़ाद कराने का भार चूंकि हमारे कंधों पर आ पड़ा है, इसलिए हमें अपनी निज की स्थिति भी बेहतर बनानी ही है।

जाने या अनजाने, हमारे सोचने का कुछ यही तरीका है। यह धूर्तता है, दंभ है। अगर हमारा खास ध्येय अपने वर्ग को ही फायदा पहुंचाना है तो हमें जनता की सेवा की बातें नहीं करनी चाहिए। इसलिए कोई प्रोग्राम बनाते वक्त हमें जनता के हितों को सबसे ऊपर रखना होगा और उसके लिए हर चीज की कुर्बानी करनी होगी, क्योंकि जनता ही असली मानों में हमारा राष्ट्र है। वह खुशहाल होगी तो सारा देश खुशहाल होगा। हम अपने प्रोग्राम में जनता के हितों को सबसे ऊपर रखें, यह महज मुनासिब ही नहीं, बल्कि दूसरे कई नजरियों से निहायत जरूरी और वाजिब है। सिर्फ यही एक तरीका है कि जिससे हम उसकी हिमायत हासिल कर सकते हैं और ऐसा हो जाने पर उसकी ख्वाहिश भी पूरी हो सकती है। लेकिन इस प्रोग्राम को अमली जामा देने के लिए हमें अपने-आपको छोटा समझना होगा और अपने आंदोलन में जनता के नुमायंदों को ऊंचा स्थान देना होगा। तभी हम सही तौर पर इसे जनता का आन्दोलन बना सकते हैं। केवल वही लोग, जो खुद आर्थिक रद्दोबदल में दिलचस्पी रखते हैं, इस काम को पूरा कर सकते हैं। इसलिए इस आन्दोलन के नेतृत्व और नियंत्रण का भार उन्हीं लोगों के हाथों में होना चाहिए, जिनका आज सबसे ज्यादा शोषण हो रहा है। बेशक, वे लोग लड़खड़ायंगे और गिरेंगे और बहुत-सी गलतियां भी करेंगे, लेकिन उनमें आर्थिक जरूरतों की एक ऐसी ताकत होगी, जो उन्हें लगातार आगे धकेलती रहेगी और उससे लाजिमी तौर पर उन्हें फतह हासिल होगी। जबतक हमारे अन्दर यह ताकत नहीं आ जाती, हमारी राजनीति कुछ प्रस्तावों, जलूसों और नारों की महज खिचड़ी-सी बनकर रह जायगी; क्योंकि अमल तो होगा नहीं। स्वराज वकीलों की तरह नुक्ते निकालने या कानूनी बहसों से हासिल नहीं होगा।

मैंने कई बार कहा है कि हमारी सब बुराइयों का एक ही इलाज है और वह है 'समाजवाद'। इसलिए हमारा ध्येय समाजवाद होना चाहिए। शायद आपमें से कुछ लोग सोचते होंगे, और यह सोचना ठीक भी है, कि हम एक ही छलांग में तो वहां नहीं पहुंच सकते, इसलिए इसकी निस्बत कोई अच्छा प्रोग्राम होना चाहिए। इस कांफ्रेंस में प्रोग्राम बनाना सहज नहीं होगा। इसलिए मैं यह सिफारिश करूंगा कि यह कांफ्रेंस इस काम के लिए एक कमेटी तैनात कर दे। मैं यहां केवल चंद ऐसे जरूरी मामलों की चर्चा करूंगा, जिनको कांफ्रेंस में शामिल कर लेना चाहिए।

हमारे समाजवादी प्रोग्राम में यह बात साफतौर पर लिखी जानी चाहिए कि हम अनेक समाजी बंदिशों को, जो अछूत कहे जानेवाले लोगों पर लगी हुई हैं, बरदाश्त नहीं कर सकते। हमें आपसी भेदभाव को खत्म कर देना होगा और हर किसीको उन्नति का पूरा-पूरा मौका देना होगा। हमें स्त्री-जाति की ओर खास तौर पर ध्यान देना है और जिन बुराइयों और बंदिशों के बोझतले वह दबी हुई है, कानून से, और दूसरे उपायों से उसको मुक्त कर देना होगा। उसका वही दर्जा है, जो मर्दों का है, पर्दे जैसे जंगली रिवाज को फौरन खत्म कर देना चाहिए।

हमारे आर्थिक प्रोग्राम का लक्ष्य यह होना चाहिए कि आर्थिक असमानताएं दूर हों और संपत्ति का समान बंटवारा हो। फिलहाल हम अपने आर्थिक प्रोग्राम की बुनियादी शर्तें वे ही मान लें जो कि बुनियादी हकों के बारे में सब दलों ने तय की हैं—यानी मजदूर को कम-से-कम गुजारे लायक वेतन मिलना चाहिए और बुढ़ापे तथा प्रसूति वगैरा के लिए भी कुछ इंतजाम हो। यह गुंजायश कैसे की जा सकती है? बेशक, मौजूदा माली और समाजी ढांचे को बरकरार रखते हुए यह नहीं किया जा सकता। गरीबों और पिछड़े हुओं को देने के लिए आपको उन लोगों से लेना होगा, जो दौलतमंद हैं और जिनके पास दौलत है। इसलिए हमें एक ओर तो जहांतक मुमकिन हो, संपत्ति के मौजूदा भेदभाव को मिटाना होगा और दूसरी ओर टैक्स लगाने के सिद्धांत के बारे में यह खयाल रखना होगा कि

उसकी वजह से न तो ज्यादा संपत्ति एक जगह इकट्ठी हो और न ही गरीवी ज्यादा बढ़े। मतलब यह कि अमीरों पर टैक्स के भार में वढ़ती करनी होगी और गरीवों पर से उसे विल्कुल हटा देना होगा।

हमें अपने इस सूबे में जमींदार और किसान की समस्या का खासतौर पर सामना करना पड़ता है। बदकिस्मती से हमारे सूबे में सब ओर जमींदार-ही-जमींदार हैं और उन्होंने सब तरह की उन्नति के रास्ते रोक रखे हैं। हमारे सूबे का पंजाब और गुजरात जैसे सूबों के साथ मुकाबला करने पर पता चलता है कि वहां जमीन के मालिक किसान हैं। इसमें शक नहीं कि पहले भी और आज भी हमारे इस सूबे ने ऐसे महापुरुष पैदा किये हैं, जिन्होंने देश का नाम ऊंचा किया, और कर रहे हैं। लेकिन यहां मध्यम वर्ग नहीं—या तो यहां बहुत धनी लोग हैं और या बेहद गरीब। इसलिए हमें जमींदारी के इस मसले पर गौर करना होगा, और अगर हम गौर करते हैं तो इसका खात्मा करने के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं। इसके लिए बीच का कोई रास्ता ही नहीं है। यह पुराने जमाने की जागीरदारी की ऐसी निशानी है, जिसका मौजूदा हालतों के साथ कतई मेल नहीं बैठता।

इसलिए हमारे प्रोग्राम में सबसे पहली बात जमींदारी-प्रथा का खात्मा करना और उसकी जगह किसानों के लिए ऐसी छोटी इकाइयों का इंतजाम करना है, जिनपर एक किसान और उसका परिवार आसानी से गुजारा कर सके, लेकिन जमीनें एक ही हाथ में जमा न होती जायं, इसे रोकने के लिए जरूरी है कि जमीनों को बय करने और कर्जे के लिए तबादला करने पर रोक लगा दी जाय।

बड़ी-बड़ी जमींदारियां का किस प्रकार खत्मा किया जाय? कुछ कहते हैं, उनको जब्त कर लिया जाय और कुछ कहते हैं कि उनका मुआवजा दिया जाय। यह तो जाहिर ही है कि पूरा मुआवजा देना तो नामुमकिन है, क्योंकि इसके लिए हमारे पास इतना रुपया नहीं है और अगर हम रुपया हासिल भी कर लें तो जमीन पर बोझ तो ज्यों-का-त्यों रहेगा और तबदीली से जमीन के किसान-मालिक को कोई फायदा नहीं होगा। फायदा तो होगा जमींदार को, जो सब तकलीफों और परेशानियों से बच जायगा और जिसे घटने-बढ़ने और परेशानियों के साथ होनेवाली आमदनी की बजाय एकमुश्त नकद रकम मिल जायगी। इसके अलावा, अगर पूरा मुआवजा चुका दिया जाता है तो संपत्ति के समान बंटवारे की हमारी कोशिश भी बेकार हो जाती है। दूसरे मुल्कों की मिसाल से यह जाहिर है कि पूरा मुआवजा देने से न तो कोई राहत ही मिली और न ही यह मसला हल हुआ। इसलिए, पूरा मुआवजा तो हम किसी भी सूरत में नहीं दे सकते।

दूसरी ओर, अगर जमीनें जब्त कर ली जायं तो, अगर्चे बराबरी के नजरिये से यह है निहायत वाजिब; लेकिन इसकी वजह से बहुत-सी मुसीबतें भी पैदा हो सकती है। इसलिए मेरी राय है कि खास मुश्किल मामलों में कुछ मुआवजा भी दे देना चाहिए। लेकिन मुआवजा हर्गिज इस तरह नहीं दिया जाना चाहिए कि जिससे मुआवजा लेनेवाले फिर से दौलतमंद बन जायं।

मैं यह भी राय दूंगा कि जिन किसानों के पास इतनी थोड़ी जमीन है कि वे मुश्किल से सिर्फ अपना गुजारा ही चला पाते हैं, उन्हें टैक्स से पूरी-पूरी छूट दे दी जाय।

एक और समस्या है, जिसका हमें सामना करना होगा और वह है किसान का कर्जा। इन कर्जों के खास मुश्किल मामलों में आंशिक मुआवजा चुकाने की शर्त होनी चाहिए।

टैक्स लगाने का तरीका प्रत्यक्ष होना चाहिए, और जहांतक मुमकिन हो, अप्रत्यक्ष तरीके से टैक्स लगाना बंद हो जाना चाहिए। इसके अलावा, यह प्रत्यक्ष टैक्स ऐसे सिलसिलेवार बढ़ते जाने चाहिए कि उनका भार खासतौर

पर बड़ी-बड़ी आमदनियों पर पड़े। एक और तरीके का भी टैक्स है, जो भारत में अभी जारी नहीं हुआ, लेकिन इंगलैण्ड जैसे कई दूसरे देशों में है। वह है उत्तराधिकार (विरासत) टैक्स और मृत्यु टैक्स। यह एक निहायत वाजिब टैक्स है, जिसे भारत में जारी करना चाहिए, जिससे विरासत में बड़ी-बड़ी संपत्तियां मिलना बंद हो जाय।

भारत का औद्योगीकरण इस हद तक बढ़ चुका है कि अब हमें मिलों में काम करनेवाले मजदूरों की ओर भी खास ध्यान देना है। पिछले चंद महीनों में हड़तालों, ताला-बंदियों और गोलियां चलाने की ऐसी वारदातें हुई हैं, जिनकी वजह से मिल-मजदूरों के मामलों पर खामोश नहीं रहा जा सकता। सरकार भी उनकी ओर से बेखबर नहीं है। हमारे नेताओं की निस्वत सरकार मजदूरों की ठोस ताकत को कहीं ज्यादा अच्छी तरह पहचानती है और यही वजह है कि ट्रेड यूनियनों पर पाबंदियां लगाने में उसने इतनी मुस्तैदी दिखाई है। सरकार हमारी कांफ्रेंसों वगैरा से इतना नहीं डरती, क्योंकि वह जानती है कि हमारा पेशा तो सिर्फ बातें बनाना ही है। सरकार को असली खतरा किसानों और मजदूरों से, और खासकर उन मिल-मजदूरों से है, जो संगठित जद्दोजहद में ज्यादा काबिल हैं और जिनकी जद्दोजहद लाजिमी तौर पर बड़ी सूरत अख्तियार कर सकती है। इसलिए, हम देखते हैं कि सरकार उनकी जमातों को कुचलने और उनकी संगठित जद्दोजहद पर रोक लगाने की कोशिश में है। जहां भी कहीं औद्योगिक झगड़े होते हैं, सरकार हमेशा बड़े-बड़े मालिकों का ही साथ देती है। नतीजा यह होता है कि मजदूरों को फाके-हाल, मजूरियों, और बस्तियों की गंदी-सड़ी हालतों में रहने के अलावा सरकार के फौजियों तथा पुलिस की गोलियों का निशाना बनना पड़ता है। इस तरीके से उन्हें कुचलने पर भी सरकार को तसल्ली नहीं हुई और उसने दो कानून बना डाले यानी ट्रेड डिस्प्यूट बिल और पब्लिक सेफ्टी बिल। अंग्रेज सरकार पहले भी, और आज भी अपनी सारी ताकत लगाकर मजदूरों के संगठन को बर्बाद करना चाहती है। क्या आप चाहते हैं कि इस मामले में चुप रहा जाय और मजदूरों को कुचलने दिया जाय ? आप कानपुर जाइये और मजदूरों और उनकी रहने की बस्तियों के बुरे हालों को देखिये। जाइये बंगाल के जूट के उन इलाकों में, जहां अंग्रेज सरमायेदारों ने लाखों के मुनाफे कमाये हैं। वहां, उनके साथ गरीब मजदूरों का मुकाबला तो कीजिये।

इन्सानियत का यह तकाजा है कि हम मजदूरों का साथ दें। सियासी समझ-बूझ भी यही रास्ता बतायगी, क्योंकि मजदूर ही आज के समाज का सबसे ज्यादा ताकतवर अंग है और यदि हम उनकी परवा नहीं करेंगे, तो वह भी हमारी परवा नहीं करेगा और हम पिछड़े रह जायंगे!

इसलिए, हमें इस बात की खुलकर मदद करनी होगी कि मजदूर अपने-आपको संगठित कर सकें। और मजदूरों से मेरा मतलब महज उन्हींसे नहीं, जो जिस्मानी मेहनत करते हैं, बल्कि उन सबसे भी है, जो अपने दिमागों से भी काम करते हैं। सबसे पहले हमें सरकार के उन कानूनों का मुकाबला करना है, जो मजदूरों की तरक्की की राह में रुकावट हैं। हमें मजदूर संगठनों की मदद करनी चाहिए। हमें मजदूर के हकों की हिफाजत के लिए कारखाना कमेटियां बनाने की कोशिश करनी है। हमारा तुरत का प्रोग्राम यह होना चाहिए कि हम मजदूरों के लिए आठ घण्टे का दिन और हफ्ते में काम के चवालीस घण्टे और मुआवजे तथा बीमे जैसी सहूलियतें जारी करा दें। औरतों और बच्चों के लिए तो खास रियायतें होनी चाहिए, जैसे काम करने के घण्टों और उनकी ताकत के मूजिब काम करने के बारे में तथा औरतों के लिए जच्चा के दिनों में गुंजायश। हर मजदूर के लिए खुले और हवादार मकानों का इंतजाम करना होगा और कम-से-कम मजूरी भी तय कर देनी होगी। यह सुझाव कोई इन्किलाबी नहीं है। सरमायेदारों के नजरिये से भी, मजदूरों की लियाकत को बढ़ाने के लिए, इन्हें निहायत जरूरी मान लिया गया है।

मैंने चंद एक सुझाव आपके सामने पेश किये हैं। और भी कई बातें हैं, जिनकी तजवीज आप खुद भी कर सकते हैं। इस वक्त तो मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि हम सिर्फ 'स्वराज' की रट लगाकर किसी तरह की तरक्की नहीं कर सकेंगे। हमें यह साफ जाहिर कर देना होगा कि हमारा लक्ष्य राजनैतिक स्वराज के साथ-साथ माली और समाजी स्वराज भी हासिल करना है और इस मुद्दे के लिए हमें माली और समाजी प्रोग्राम भी देश के सामने रखना होगा। सिर्फ यही एक तरीका है, जिसपर चलकर हम अपनी आजादी की तहरीक असलियत के साथ जोड़ सकते हैं और उसे एक जबरदस्त और बेरोक ताकत बना सकते हैं। फिरकापरस्ती को बर्बाद करने का भी यही एक तरीका है।

अच्छे-अच्छे प्रस्ताव पास करने से या एकता की बेहद बातें बनाने से फिरकापरस्ती खत्म नहीं हो सकती। अगर आप गौर से देखें तो आपको मालूम हो जायगा कि फिरकापरस्ती का जहर सिर्फ कुछ पढ़े-लिखे लोगों ने ही अपने स्वार्थों, यानी सरकारी नौकरियां हासिल करने के लिए फैलाया है। आम जनता का इससे कोई वास्ता नहीं है। उसको तो बहकाया और गलत रास्ते पर डाला जाता है और इस तरह उसे इस बात के लिए तैयार किया जाता है कि वह अपनी असली तकलीफों को भूल जाय। अगर आप उसका ध्यान माली मामलों की ओर बदल देंगे तो फिरकापरस्ती और धर्म के नाम पर होनेवाले झगड़ों की ओर से उसका ध्यान आप-से-आप पलट जायगा।

यह बड़ी हैरानी की बात है कि इन दिनों हमारे कुछ बड़े-बड़े सियासतदां यानी राजनैतिक लोग एक ओर तो भारत की आज़ादी की बातें करते हैं, और दूसरी ओर फिरकापरस्ती की बिना पर हकों और सहूलियतों की मांग करते हैं। हमें बार-बार यह बताया जाता है कि इस बारे में उनकी जाति की नीयत भी साफ है। मुझे इसमें ज़रा भी शक नहीं कि हर जाति की नीयत साफ है, लेकिन आज़ादी और फिरकापरस्ती की इस अजीब-सी मिलावट को देखकर मुझे उन लोगों के दिमागों की दुरुस्ती के बारे में संदेह होता है कि जो इन दोनों को एक समझते हैं, क्योंकि इन दोनों में कोई भी एक-सी बात नहीं है और आप फिरकापरस्ती की रपटीली और रेतीली नींव पर आज़ाद भारत की वह शानदार इमारत हर्गिज खड़ी नहीं कर सकते। सर्वदल (आल पार्टीज) कान्फ्रेंस ने फिरकापरस्ती के मामले के बारे में कई सुझाव पेश किये हैं। इनसे फिरकापरस्ती का पूरी तरह खात्मा तो नहीं होता, लेकिन काफी हद तक इस मामले में हमें उनसे मदद मिलती है और इसलिए हमें उनका स्वागत करना चाहिए। मौजूदा हालतों में, मेरा ख्याल है कि इस मसले का यह सबसे बेहतर हल है और मुझे यकीन है कि यह कान्फ्रेंस उन्हें पूरी तरह मंजूर करेगी और उनपर अमल करेगी।

अपने मुद्दे का नक्शा जाहिर कर लेने के बाद कैसे हम उसे हासिल करेंगे? हर कोई यह कहता है कि हमें मंजूरी मिलनी चाहिए, लेकिन मैंने देखा है कि हममें से कुछ लोग इस बात का यकीन करने लगे हैं कि अगर हम मिलकर चिल्लायंगे और लंबे अर्से तक चिल्लाते रहेंगे, और करेंगे कुछ भी नहीं तब भी कामयाब हो जायंगे। जाहिरा तौर पर उन्हें यकीन है कि भारत में अंग्रेजी राज जैरीको की दीवारों जैसा है, जो ज्यादा-से-ज्यादा शोर मचाने से ढह जायगा। मेरे खयाल में औपनिवेशिक दर्जे की मांग की बुनियाद यही है, और औपनिवेशिक दर्जे के मुद्दे को सही रास्ते से भटकानेवाला मैं क्यों मानता हूं, इसकी एक दूसरी वजह यह भी है। इससे हम सोचने लगते हैं कि मंजूरियों की दरकार नहीं और यह ख्याल बहुत खतरनाक है। सियासत में एक नौसिखिया भी यह जानता है कि जिस मांग के पीछे कोई ताकत नहीं होती वह मांग बेमानी होती है।

इसलिए हमें उन मंजूरियों का एक खाका बनाना होगा। मैंने पहले भी जिक्र किया है कि ये मंजूरियां

सिर्फ जन-संगठन और जन-कार्रवाइयों से ही मिल सकती हैं। कार्रवाई के उस ढांचे को उस खास मौके पर तय करना होगा; लेकिन उसूली तौर पर इसकी शकल सिविल नाफरमानी (असहयोग) की होनी चाहिए। मुमकिन है कि सन् १९२१ के असहयोग के प्रोग्राम की सारी बातों पर न चल सकें; लेकिन हमें उसकी भावना को तो अपनाना ही होगा, ताकि अखीर में यह टैक्स अदा न करने या बड़े पैमाने पर सिविल नाफर्मानी की सूरत अख्तियार करले।

यह भी हो सकता है कि इंगलैण्ड साम्राज्यवादी लड़ाई की खातिर हमसे धन और जन की मदद मांगे। कांग्रेस इस बारे में पहले ही अपना फैसला दे चुकी है, और हमें इस बात से खबरदार रहना होगा कि फिर से हमारा शोषण नहीं किया जाय, जैसाकि १९१४ में हुआ था।

भारत इतना कमजोर नहीं जितना कि कुछ लोग खयाल करते हैं। हमारी कमजोरी सिर्फ हमारे दिलों की बुजदिली और खासतौर पर जनता से हमारे डरने की वजह से है। अगर हम जनता के साथ एक बार अपना ताल्लुक बनालें और उसके साथ मिलकर तथा उसके लिए काम करने लगें तो हमारी ताकत बेअंदाज हो जायगी। दुनिया-भर की ताकतें हमारी मदद करती हैं, और हिंदुस्तान भी, चाहे वह जैसा कमजोर है, आफत के मौके पर कुछ तो कर ही सकता है।

अभी तक मैंने साइमन-कमीशन के बारे में कुछ भी जिक्र नहीं किया। उससे बेशक हमारा कोई ताल्लुक नहीं है। यह तो इंगलैण्ड के रवैये की महज एक मिसाल है और उससे यह जाहिर होता है कि वह हमारे साथ कैसा सलूक करना चाहता है। वह हमारे साथ किसी भी तरह का सहयोग नहीं करेगा। यह तो सिर्फ हमपर अपनी ख्वाहिश को लादना चाहता है। तो फिर उसके साथ सहयोग करने की स्कीमें बनाने में अपना वक्त जाया क्यों करें? हमें अपनी ताकत को बढ़ाना चाहिए और अखीर में जो ताकतवर होगा, मैदान उसीके हाथ में रहेगा।

नेहरू-कमेटी की रिपोर्ट और आल पार्टीज कान्फ्रेंस के फैसलों की अच्छाइयों और बुराइयों पर बहस हो चुकी है और कुछ ही दिन हुए जब एक दूसरी प्रांतीय कान्फ्रेंस में मैंने काफी तफसील के साथ उनकी चर्चा की थी। उसके कुछ हिस्सों का जिक्र मैंने अभी-अभी किया है, जिनमें फिरकापरस्ती की सिफारिशें खास ध्यान देने लायक हैं। बाकी सिफारिशों में कुछके साथ अगर्चे मेरी रजामंदी नहीं है, फिर भी मैं इस शर्त पर उनकी सिफारिश करने को तैयार हूं कि उनके जरिये हमें आज़ादी हासिल होगी। मैं रिपोर्ट की अहमियत को अच्छी तरह समझता हूं और उसकी नुकताचीनी से उसे कम नहीं करना चाहता।

एक और बात का मैं जिक्र करना चाहता हूं, और वह देसी रियासतों का सवाल है। थोड़े दिन हुए, जब महाराजा बीकानेर ने एक चमत्कारी भाषण दिया था। उसमें उन्होंने कई बातों का खुलकर जिक्र किया और सबसे ज्यादा खुलकर जो बात उन्होंने कही, वह था उनका यह ऐलान कि आइंदा वक्तों में अगर भारत और इंगलैण्ड के बीच लड़ाई छिड़ी तो वह अपने मुल्क के खिलाफ इंगलैण्ड का पूरा-पूरा साथ देंगे। इस हैरतअंगेज ऐलान पर मुझे आपको कुछ भी बताने की जरूरत नहीं जान पड़ती। अगर महाराजा इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, अमरीका या किसी दूसरे मुल्क के रहनेवाले होते, तो उनके इस तरह के ऐलान के लिए उनके साथ क्या सलूक किया जाता? दिमागी तौर पर शायद महाराजा साहब मध्य काल के जमाने में रह रहे हैं और अब भी राजाओं के खुदाई हकों के बारे में सोच रहे हैं, और फ्रांसीसी राजा की तरह अंदाज लगा बैठे हैं कि वह और उनका राज अमर है। लेकिन जिस राजा ने यह खयाल किया था, उसे मरे हुए एक जमाना बीत गया है और उसीके मुल्क में इस वक्त जनता के राज का बोलबाला है। और जहांतक सवाल इंगलैण्ड के राजा का है, वह महज नाम का राजा होता है, जिसके हाथ में ताकत कोई भी

नहीं होती । हमारे यहां के राजा-महाराजाओं को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि राजा-महाराजाओं के दिन लद चुके हैं । यह वात हमें एक दूसरे नतीजे पर भी पहुंचाती है । अपने काम का प्रोग्राम बनाते वक्त हमें यह ध्यान रखना है कि मुल्क के कौन-से ऐसे वर्ग और फिरके हैं, जो भारत की आजादी से खास हकों का फायदा उठायंगे और कौन है, जो उनसे महरूम रहेंगे । हमें इस बारे में सही तौर पर विचार कर लेना चाहिए । और यह भेद कर चुकने के वाद फायदा उठानेवालों के हक में हमें अपना प्रोग्राम वनाना होगा । महरूम रहनेवाले हमारी कभी भी मदद नहीं कर सकते और आफत के मौके पर तो वे हमारे खिलाफ जाकर हमें नुकसान भी पहुंचा सकते हैं । अपने प्रोग्राम में उन्हें खुश करने और उन्हें शामिल करने की कोशिश न सिर्फ समानता की बिना पर, बल्कि उसके मूजिब काम करने के नजरिये से भी महज नासमझी ही है । ●

४ नवम्बर, १९२९ को महात्मा गांधी के नाम लिखा गया पत्र, जिसमें कार्यकारिणी के सदस्यों से अपने मतभेद के कारण कांग्रेस की अध्यक्षता छोड़ने की इच्छा व्यक्त की थी ।

कांग्रेस की अध्यक्षता

मैंने दो रोज अच्छी तरह से विचार किया है । मेरा ख्याल है, अब मैं स्थिति पर दो दिन पहले की बनिस्वत कुछ ज्यादा ठंडे दिमाग से विचार कर सकता हूं, लेकिन मेरा दिमागी बुखार अभी दूर नहीं हुआ है । अनुशासन की बिना पर आपने मुझसे जो अपील की है, उसे मैं दर-गुजर नहीं कर सकता था । मैं खुद अनुशासन का कायल हूं । फिर भी मेरा खयाल है कि अनुशासन की ज्यादती भी हो सकती है । परसों शाम को मेरे अंदर कुछ ऐसी बातें उठीं, जिनको मैं एकसूत्र में नहीं बांध सकता । कांग्रेस के महामंत्री होने के नाते कांग्रेस के तईं मेरी वफादारी होनी चाहिए और उसके अनुशासन में मुझे रहना चाहिए । मेरी और हैसियतें और वफादारियां भी हैं । मैं इंडियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस का सदर हूं और 'इंडिपेंडेंस फार इंडिया लीग' का सेक्रेटरी हूं और युवक-आंदोलन से मेरा गहरा ताल्लुक है । इन दूसरी जमातों के तईं, जिनसे मेरा ताल्लुक है, अपनी वफादारी के लिए मै क्या करूं ? मैं इस वात को पहले से ज्यादा अब महसूस करता हूं कि कई घोड़ों पर एक साथ सवारी करना काफी मुश्किल है । जब जिम्मेदारियों और वफादारियों की आपस में टकराहट हो तो इसके अलावा कोई क्या कर सकता है कि अपनी सहज प्रवृत्ति और बुद्धि पर भरोसा करे ?

इसलिए सभी बाहरी लगावों और वफादारियों से अलग रहकर मैंने हालत पर ग़ौर किया है और मेरा यह यकीन ज्यादा मजबूत होता गया है कि परसों मैंने जो किया, वह ग़लत किया । मैं बयान की अच्छाइयों या उसकी पालिसी के बारे में कुछ न कहूंगा । मुझे डर है कि उस मसले पर हमारा बुनियादी मतभेद है और यह मुमकिन नहीं कि मैं आपकी राय बदल दूं । मैं सिर्फ़ इतना ही कहूंगा कि मेरा यकीन है कि वह बयान नुकसानदेह है और मजदूर सरकार के ऐलान का बिलकुल नाकाफी जवाब है । मेरे खयाल से कुछ प्रतिष्ठित लोगों को खुश करने और अपने साथ बनाये रखने की कोशिश में हमने अपने दल के बहुत-से उन दूसरे लोगों को परेशान किया है और करीब-करीब उन्हें दल से बाहर किया है, जिनको साथ रखना कहीं अच्छा था । मेरा खयाल है कि हम लोग एक खतरनाक जाल में उलझ गये हैं, जिससे निकल सकना आसान नहीं, और मैं समझता हूं कि हमने दुनिया को यह दिखला दिया है कि अगर्चे हम लोग बातें तो ऊंची करते हैं, लेकिन सौदेबाजी छोटी-मोटी चीजों के लिए कर रहे हैं ।

मैं नहीं जानता कि ब्रिटिश सरकार अब क्या करेगी । मुमकिन है, वह आपकी शर्तों को नहीं मानेगी । मुझे उम्मीद यही है कि वह नहीं मानेगी । लेकिन मुझे इसमें ज़रा भी शक नहीं कि ज्यादातर हस्ताक्षर करनेवाले—निश्चय ही आपको छोड़कर—उन शर्तों में ब्रिटिश सरकार जो भी रद्दो-बदल सुझायगी, उसे मंजूर कर लेंगे । हर हालत में मुझे यह जान पड़ता है कि कांग्रेस के भीतर मेरी हालत रोज-ब-रोज ज्यादा मुश्किल होती जायगी । मैंने कांग्रेस की सदारत बड़े शक-शुबहा के साथ मंजूर की थी, लेकिन इस उम्मीद से कि अगले साल हम एक निश्चित

मसले को फैसला कर लेंगे। इस मसले पर पहले से ही बादल छा गये हैं और इस पद को मंजूर करने की जो एक-मात्र वजह थी, वह अब नहीं रह गई है। इन 'नेताओं के सम्मेलनों' से मुझे क्या सरोकार ? मैं अपनेको अनाधिकार धोखा करनेवाला समझने लगा हूं और इससे मुझे परेशानी है। मैं अपनी बात खुलकर इसलिए नहीं कह पाता कि सम्मेलन के बिगड़ने का मुझे डर है। मैं अपनेको दबाता हूं और यह दबाना कभी-कभी मेरे लिए भारी पड़ता है और मैं भभक उठता हूं और ऐसी चीजें भी कह जाता हूं, जिनको कहने का मेरा कोई मतलब नहीं होता है।

मैं महसूस करता हूं कि मुझे ए. आई. सी. सी. के मंत्री के पद से इस्तीफा दे देना चाहिए। मैंने पिताजी के पास एक जाब्ते का खत भेज दिया है, जिसकी नकल साथ में भेज रहा हूं।

कांग्रेस के सभापति का सवाल इससे कहीं ज्यादा मुश्किल है। मैं नहीं समझता कि इस ऐन मौके पर मैं क्या कर सकता हूं। मुझे इस बात का यकीन हो गया है कि मेरा चुनाव गलत था। इस अवसर पर और इस साल के लिए सिर्फ आपको ही चुना जाना चाहिए था। अगर कांग्रेस की पालिसी वही है, जिसे मालवीयजी की पालिसी कह सके तो मैं सभापति नहीं रह सकता। अब भी अगर आप राजी हों तो बिना ए. आई. सी. सी. की बैठक बुलाये एक रास्ता निकल सकता है। ए. आई. सी. सी. के मेंबरों के नाम एक गश्ती चिट्ठी भेजी जा सकती है कि आप सदर बनने के लिए रजामंद हैं। मैं उनसे माफी मांग लूंगा। यह सिर्फ जाब्ते की कार्रवाई होगी, क्योंकि सभी या करीब-करीब सभी मेंबर आपके फैसले को खुशी से मान लेंगे।

एक दूसरा रास्ता यह है कि मैं यह ऐलान कर दूं कि मौजूदा हालतों में और इस ख्याल से कि इस वक्त दूसरा सदर चुनने में दिक्कत होगी, अभी सदारत न छोड़ूं, लेकिन कांग्रेस के फौरन बाद छोड़ दूं। मैं चेयरमैन के तौर पर काम करूंगा और मेरी कोई भी परवा किये बिना कांग्रेस जैसा चाहे फैसला कर सकती है।

अगर मैं अपने जिस्म की और दिमागी तंदुरुस्ती बनाये रखना चाहता हूं तो इन दो में से एक रास्ता मेरी समझ में जरूरी है।

जैसाकि मैंने दिल्ली से आपको लिखा था, मैं कोई पब्लिक बयान नहीं निकाल रहा हूं। दूसरे लोग क्या करते हैं या क्या नहीं, इसकी मुझे ज्यादा फिक्र नहीं है। लेकिन खुद मुझे शांति होनी चाहिए।

इस खत की एक नकल मैं पिताजी के पास भेज रहा हूं। इस खत को लिखकर मैं कुछ हलकापन महसूस कर रहा हूं। मुझे डर है कि इससे आपको कुछ परेशानी होगी। ऐसा मैं करना नहीं चाहता। आधा मन कर रहा है कि इसे आपके पास न भेजूं, बल्कि आपके यहां आने का इंतजार करूं। दस दिन और सोचने पर जरूरी तौर पर मेरी परेशानी कम हो जायगी और मेरी निगाह ज्यादा साफ हो जायगी। लेकिन यह अच्छा है कि आप जान लें कि मेरा दिमाग किस तरह काम कर रहा है। ●

१९२९ में लाहौर-कांग्रेस के अध्यक्ष-पद से दिया गया ऐतिहासिक भाषण। इसी कांग्रेस में भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा की गई थी।

बड़े-बड़े सवाल

मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि आपके न चाहने पर भी अचानक ही मैं इस इज्जत की जगह पर बैठ गया हूं। आपकी ख्वाहिश एक ऐसे शख्स को चुनने की थी, जो हमारी आज की दुनिया में सबसे बड़ा है, और उनसे बेहतर कोई दूसरा चुनाव भी नहीं हो सकता था। लेकिन किस्मत ने और उन्होंने ऐसा जाल रचा कि आपकी और खुद मेरी भी ख्वाहिश के खिलाफ मुझे बहुत बड़ी जिम्मेदारी की इस कुर्सी पर बैठा दिया गया। इस कशमकश में डाल देने के लिए क्या मुझे आपका अहसान जाहिर करना ही होगा ? लेकिन मैं आप लोगों का दर असल ही अहसानमंद हूं कि आपने उस व्यक्ति में इतना भरोसा जाहिर किया है कि जितना शायद उसे खुद में नहीं है।

आप कई ऐसे अहम कौमी मसलों पर विचार करेंगे कि जो आज हमारे सामने हैं और मुमकिन है, आपके फैसलों से हिंदुस्तान के इतिहास का दौर ही बदल जाय। लेकिन महज हिंदुस्तान ही ऐसा मुल्क नहीं है कि जिसके लोगों के सामने इतने मसले हैं। आज तो सारी दुनिया ने ही इतने बड़े सवाली निशान की सूरत अख्तियार कर ली है और हर मुल्क और हर कौम पचड़े में पड़ी हुई है। श्रद्धा का वह दौर बीत चुका है, जिसमें इत्मीनान और मजबूती होती थी और हमारे बुजुर्गों को यह चिरस्थायी या पाक भी जान पड़ती होगी, लेकिन आज तो हर बात के लिए सवाल किया जाता है। हर कहीं शुबा और बेचैनी नज़र आती है और राज्य और समाज की नींवों में बुनियादी तब्दीलियां होने जा रही हैं। आजादी, इंसाफ, जायदाद और यहांतक कि खानदान के पुराने आदर्शों पर भी एतराज किये जा रहे हैं और नतीजा अभी बीच में ही लटक रहा है। लगता है कि हम इतिहास के बदलते दौर में से गुजर रहे हैं, जहां दुनिया मेहनत करने में लगी हुई है और उसकी कड़ी मेहनत से एक नया नज़ाम पैदा होगा।

मौजूदा वक्त में हिंदुस्तान बुनियादी तहरीक का एक हिस्सा है। न सिर्फ चीन, टर्की, पर्शिया और मिस्र ही, बल्कि रूस और पश्चिम के दूसरे मुल्क भी इस तहरीक में हिस्सा ले रहे हैं और भारत अपनेको उससे जुदा नहीं रख सकता। हमारे अपने निजी मसले हैं, जो मुश्किल और पेचीदा हैं और हम उनसे मुंह नहीं मोड़ सकते, और उन बड़े-बड़े मसलों में पनाह नहीं ले सकते कि जो दुनिया पर असर डालते हैं। लेकिन अगर हम दुनिया की परवा नहीं करते तो हम अपने लिए खुद खतरा पैदा करते हैं। जैसी भी मौजूदा वक्त की संस्कृति है, वह किसी एक कौम या मुल्क की बनाई हुई या बपौती नहीं है। यह तो मिली-जुली संस्कृति है, जिसमें सब देशों ने अपना-अपना हिस्सा शामिल किया है, और उसके बाद अपनी खास जरूरतों के मुताबिक उसे अपना लिया। और अगर दुनिया को देने के लिए हिंदुस्तान के पास कोई पैगाम है, और मैं उम्मीद करता हूं कि उसके पास है, तो उसे दूसरी कौमों के पैगामों से भी बहुत-कुछ हासिल करना और सीखना है।

जब हर चीज बदल रही है तो हिंदुस्तान के इतिहास के लंबे दौर पर भी निगाह कर लेना मुनासिब होगा। इतिहास की कुछ आश्चर्यजनक बातों में हिंदुस्तान के समाजी ढांचे की मजबूती भी एक खास चीज है, जिसने बेशुमार विदेशी असरों और हजारों साल के रद्दोबदल और जद्दोजहद की टक्करों का मुकाबला किया। यह इसलिए उनका मुकाबला कर सका, क्योंकि इसने हमेशा उन्हें अपने अंदर जज्ब करने और उन्हें बर्दाश्त करने की कोशिश की। आर्य और अनार्य मिल-जुलकर बस गये। उन्होंने एक-दूसरे की संस्कृति के हक को मंजूर किया, और जो लोग बाहर से आये, जैसे कि पारसी, उन्हें समाजी नज़ाम में जगह मिली और उनका स्वागत हुआ। मुसलमानों के आने से बराबरी की वह हालत बिगड़ गई, लेकिन हिंदुस्तान ने उसपर क़ाबू पा लिया और काफी हद तक कामयाबी भी हुई। बदकिस्मती से, उसके पहले कि हम अपने भेदभाव दूर कर सकते, सियासी ढांचा तहस-नहस हो गया। अंग्रेज आ गये और हम गिर गये।

एक मजबूत समाज के बनाने में हिंदुस्तान की कामयाबी बहुत बड़ी थी, लेकिन वह एक खास अंग के बारे में नाकाम भी हुआ, और चूंकि वह इसमें नाकाम रहा, वह गिर गया और अबतक गिरा पड़ा है। समानता के मसले के लिए कोई हल नहीं निकाला गया। हिंदुस्तान ने जान-बूझकर इस ओर से आंखें मूंद लीं और ऊंच-नीच की जमीन पर अपना समाजी ढांचा बनाया। इस नीति के खौफनाक नतीजों का असर हम अपने मुल्क के लाखों बाशिन्दों पर देख चुके हैं, जो कल तक कुचले हुए थे, और जिन्हें तरक्की का कोई मौका हासिल नहीं था।

जिन दिनों यूरोप में मजहब के नाम पर लड़ाइयां हो रही थीं और ईसाई लोग ईसा के नाम पर एक-दूसरे के गले काट रहे थे, हिंदुस्तान में बर्दाश्त करने का माद्दा था, हालांकि, अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि आज तो उस बर्दाश्त का नामों-निशान भी नज़र नहीं आता। कुछ हद तक मजहबी आज़ादी हासिल कर चुकने पर यूरोप ने सियासी आज़ादी और समानता हासिल करने की कोशिश की। इन्हें भी हासिल करने पर उसे महसूस हुआ कि माली आज़ादी और समानता के बिना ये भी बेमानी हैं। और इस तरह मौजूदा वक्त में सियासत की अहमियत कम हो गई है और समाजी और माली समानता का सवाल सबसे अहम बन गया है।

हिंदुस्तान को भी इस मसले का कोई हल निकालना होगा और जबतक वह यह नहीं करता, उसका सियासी और समाजी ढांचा मजबूत नहीं हो सकता। इस हल के लिए यह जरूरी नहीं कि हम किसी दूसरे मुल्क की मिसाल के पीछ चलें। अगर हम चाहते हैं कि वह हल टिकाऊ हो तो उसकी बुनियाद जनता की चेतना और उसके विचार तथा संस्कृति के नतीजे की बिना पर ही होनी चाहिए। और यह हल मिल जाने पर मुख्तलिफ जातियों में जो गहरा भेदभाव है, जो आज हमें तकलीफ दे रहा और जो हमारी आज़ादी में रुकावट है, वह खुद-ब-खुद गायब हो जायगा।

मुझे धर्म की कट्टरता और रूढ़ियां पसन्द नहीं और मुझे खुशी है कि अब ये कमजोर पड़ रही हैं। मैं किसी भी शक्लो-सूरत में फिरकापरस्ती का भी हामी नहीं हूं। मैं इस बात की दाद नहीं दे सकता कि किसी जाति या धर्म के नाम पर ही सियासी और माली हक निर्भर करने चाहिए। धर्म की आज़ादी के हक और किसीकी संस्कृति के हक की बात तो मुझे बिल्कुल ठीक जंचती है—और खासकर हिंदुस्तान में तो इन हकों को हमेशा से मंजूर भी किया जाता रहा है, और मंजूर हैं भी। यक़ीनी तौर पर उन्हें जारी रखने में भी कोई मुश्किल नज़र नहीं आती। हमें तो महज एक ऐसा रास्ता बनाना है, जिससे हम डर और शुबा को जड़ से उखाड़ दें जिसने हमारे मुद्दे को धुंधला कर रखा है। गुलाम कौम की सियासत ज्यादातर डर और नफरत पर टिकी रहती है। और हम, जोकि एक लंबे अर्से से गुलामी में रह चुके हैं, उनसे आसानी के साथ छुटकारा नहीं पा सकते।

पैदायशी तौर पर तो मैं हिंदू हूं, लेकिन मैं नहीं कह सकता कि मैं अपनेको हिंदू कहलाने में, या हिन्दुओं की ओर से बोलने का कहांतक हकदार हूं। लेकिन इस मुल्क में अभी पैदायश को अहमियत दी जाती है, और इस नाते मैं हिन्दू नेताओं से अपील करूंगा कि अगर वह उदारता करने में पहल करेंगे तो इसमें उनकी शान ही होगी। फराखदिली के माने महज नेक-चलनी ही नहीं है, बल्कि अक्सर यह अच्छी सियासत और काम करने के लिए निहायत वाजिब दलील भी होती है। और मैं इस बात का क़तई अंदाजा नहीं कर सकता कि आज़ाद हिंदुस्तान में हिन्दू कभी कमजोर हो सकते हैं। जहांतक मेरा ताल्लुक है, मैं खुशी-ब-खुशी अपने मुसलमान और सिख दोस्तों से कहूंगा कि मेरी ओर से, बिना किसी हुज्जत के, वे जो चाहें, ले लें। मैं जानता हूं कि वह वक्त जल्द आनेवाला है, जब इन नामों और निशानियों के कोई माने नहीं रह जायंगे और जब हमारी लड़ाई माली बिनाओं पर ही होगी। फिलहाल यह बात कोई माने नहीं रखती कि हमारे आपसी समझौते क्या हैं, बशर्तेकि हम ऐसी कोई रुकावटें नहीं पैदा कर लेते कि जो हमारी आइंदा होनेवाली तरक्की की राह को रोकें।

बेशक, अब वह वक्त आ चुका है, जब हम आल पार्टीज रिपोर्ट को ताला-ए-ताक रख देंगे और अपने मुद्दे की तरफ बेरोक-टोक आगे बढ़ने लगेंगे। आपको पिछली कांग्रेस का वह प्रस्ताव याद होगा, जिसमें आल पार्टीज योजना के अमल के लिए एक बरस की मियाद रखी गई थी। साल-भर की वह मियाद तकरीब खत्म हो चुकी है और इस फैसले के कुदरती नुक्ते की निगाह से इस कांग्रेस को आजादी का ऐलान कर देना चाहिए और उसे हासिल करने के तरीकों की मंजूरी भी देनी चाहिए।

इस साल के दौरान में औपनिवेशिक दर्जा या आल पार्टीज का संविधान हमें हासिल नहीं हुआ। उसके बदले हमें मुसीबतें हासिल हुईं और हमारी कौमी और मजदूर-तहरीकों को ज्यादा दबाया गया। हमारे बहुत-से साथियों को विदेशी ताकत ने हमसे जबरन जुदा कर रखा है, उनमें से कई जलावतन हैं और उन्हें अपनी मातृभूमि में आने की इजाजत नहीं है। जिन फौजों ने कब्जा कर लिया था, सारा मुल्क उनके पंजे में जकड़ा हुआ है और हमारे जो बेहतरीन और इज्जतदार लोग उनके खिलाफ सर उठाने की हिम्मत करते हैं, उनपर किसी भी वक्त कोड़े बरसाये जा सकते हैं। इस तरह कलकत्ता के प्रस्ताव का जो जवाब मिला है, वह साफ जाहिर है।

चंद दिन हुए ब्रिटिश पार्लमेन्ट में इस मामले पर फिर से विचार हुआ और भारत के सेक्रेटरी ऑव स्टेट ने यह जतलाने की कोशिश की कि एक-के-बाद एक आनेवाली सरकारों ने भारत के बारे में जबानी ही नहीं बल्कि अपने कारनामों से भी अपनी सचाई का सबूत देने की कोशिश की है। हमें मि० वेजवुड बेन की भारत के लिए कुछ करने की ख्वाहिश और जनता की सद्भावना हासिल करने की उनकी फिक्र को मंजूर करना ही होगा, लेकिन पार्लमेन्ट में उनके या दूसरे भाषणों से हमें कुछ ज्यादा उम्मीद नहीं नज़र आती। जिस औपनिवेशिक दर्जे पर उन्होंने खास जोर दिया है, वह हमारे लिए एक जाल जैसा है, और उससे भारत के शोषण में कोई कमी नहीं होती। इस औपनिवेशिक दर्जे और दस साल पहले किये गए संसदीय सुधारों की वजह से भारत की जनता पर आज कहीं ज्यादा बोझा बढ़ गया है। लंदन में हाई कमिश्नर, और लीग ऑव नेशन्स में नुमायंदा, बड़े-बड़े साजो-सामान की खरीद और हिंदुस्तानी गवर्नर तथा आला अफसर तो हमारी मांग के हिस्से हैं नहीं, हम तो भारत की ग़रीब जनता के शोषण का खात्मा और असली ताकत को हासिल करना चाहते हैं, और महज ओहदों का दिखावा हमें नहीं चाहिए।

मि० वेजवुड बेन ने पिछले दस साल की कामयाबियों का रिकार्ड हमें दिखाया है। इस रिकार्ड में उन्हें इन

बातों को भी जोड़ देना चाहिए था—पंजाब में मार्शल ला और जलियांवाला बाग में गोलीकाण्ड, और औपनिवेशिक दर्जे के इस दौरान में लगातार होनेवाला दमन और शोषण। उन्होंने अंदरूनी झांकी दिखाते हुए हमें जतला दिया है कि 'औपनिवेशिक दर्जे' का हमें क्या मतलब समझना चाहिए। इसके माने होंगे चंद हिन्दुस्तानियों के हाथों में सरकारी ताकत की महज परछाई और जनता का और ज्यादा दमन तथा शोषण।

तो यह कांग्रेस क्या करेगी ? सहयोग की शर्त तो पूरी नहीं हुई। क्या हम तबतक सहयोग कर सकते हैं जबतक असली आज़ादी मिलने का हमें पक्का यक़ीन नहीं दिलाया जाता ? क्या हम सहयोग कर सकते हैं, जबकि हमारे साथी जेलों में पड़े हैं और दमन जारी है ? क्या हम सहयोग कर सकते हैं जबतक हमें यह यक़ीन नहीं दिलाया जाता कि असली सुलह की उसकी ख्वाहिश है और हमारे साथ सिर्फ चालें ही नहीं चली जा रही हैं ? तलवार की नोक पर तो सुलह की नहीं जा सकती और अगर विदेशी हुकूमत जारी ही रहनी है तो हम उसमें हर्गिज शामिल नहीं होंगे।

अगर कलकत्ता का प्रस्ताव ज्यों-का-त्यों है, तो आज भी हमारा एक ही मुद्दा है, यानी पूरी आज़ादी। आज की दुनिया में आजादी का लफ्ज कोई अच्छा नहीं माना जाता, क्योंकि इसके माने हैं अलगाव और अकेलापन। सभ्यता पर तंग कौमियत का काफी असर पड़ चुका है। और आज वह उस राह की टोह में है कि जहां ज्यादा सहयोग और एक-दूसरे पर निर्भर रहने की गुंजायश हो। और अगर हम 'आज़ादी' लफ्ज़ का इस्तेमाल करते हैं तो इसके यह माने नहीं कि हम इस महान आदर्श के खिलाफ हैं। आज़ादी से हमारा मतलब है ब्रिटिश हुकूमत और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से पूरी निजात हासिल करना। अपनी आज़ादी हासिल कर चुकने पर मुझे इसमें कोई शक नहीं कि हिंदुस्तान दुनिया-भर के सहयोग और संघ बनाने की सब कोशिशों का स्वागत करेगा और जिस बड़े समुदाय का वह बराबरी का हिस्सेदार होगा, उसके लिए अपनी निजी आज़ादी के हिस्से तक को छोड़ने के लिए तैयार हो जायगा।

मौजूदा वक्त में ब्रिटिश साम्राज्य ऐसा संघ नहीं है और उस वक्त तक वह वैसा बन भी नहीं सकता, जबतक कि वह करोड़ों लोगों पर हुकूमत करता रहेगा और जबतक कि वह इस धरती के बड़े-बड़े इलाकों पर, वहां के रहनेवालों की मर्जी के खिलाफ, कब्जा जमाये रहेगा। यह तबतक सही मानो में राष्ट्र-संघ (कामनवैल्थ) नहीं बन सकता जबतक इसकी नींव साम्राज्यवाद पर है और दूसरी कौमों का शोषण ही इसके गुजर-बसर का खास धंधा है। असलियत तो यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य आज धीरे-धीरे सियासी मौत के दौर से गुजर रहा है। इसकी हालत डांवाडोल हो रही है। दक्षिण अफ्रीका का संघ इस कुटुंब में खुश नहीं है और न ही आयरलैण्ड इसमें शामिल रहना पसन्द करता है। मिस्र भी धीरे-धीरे अलग हो रहा है। हिंदुस्तान भी कामनवैल्थ का हर्गिज समान सदस्य नहीं रह सकता, जबतक कि साम्राज्यवाद और उससे जुड़ी हुई सारी बुराइयां खतम नहीं होजातीं। जिस वक्त तक यह नहीं किया जाता, हिंदुस्तान इस साम्राज्य में गुलामी की हालत में ही रहेगा और उसका शोषण भी जारी रहेगा। ब्रिटिश साम्राज्य से गले मिलना बड़ा खतरनाक है। ये जिंदगी देनेवाली प्यार भरी ऐसी गलबहियां नहीं, जो खुलकर दी और ली जाती हैं। और अगर यह वैसी नहीं हैं, तो यह मौत की गल-बहियां होंगी, जो बीते वक्त में भी थीं।

आज़ादी और औपनिवेशिक दर्जे के बारे में हम काफी बहस कर चुके हैं और लफ्जों को लेकर हम लड़ भी चुके हैं। लेकिन असली चीज है सत्ता हासिल कर लेने की, चाहे उसका कोई भी नाम रख लीजिये। मेरा ख्याल है कि किसी भी शक्ल का औपनिवेशिक दर्जा, जो हिंदुस्तान को दिया जायगा, उससे हमें सच्ची सत्ता नहीं मिलती।

अगर वह इस ताकत को सही तौर पर हमारे हवाले करना चाहते हैं तो सारी विदेशी फौज यहां से हटाली जाय और माली अधिकार हमें सौंप दिये जायं। हमें इन्हींपर जमे रहना चाहिए और बाकी बातें तो आप-से-आप बाद में हो ही जायंगी।

इसलिए, आज हम हिंदुस्तान की पूरी आज़ादी चाहते हैं। इस कांग्रेस ने ब्रिटिश पार्लमेन्ट के इस हक को न तो माना है और न ही मानेगी कि वह किसी भी तरह से हमें राह दिखाये। इसके लिए हम कोई अपील भी नहीं करते। लेकिन हम पार्लमेन्ट और दुनिया की ईमानदारी को इस बात की जरूर अपील करते हैं, और उन्हें तो इस बात का ऐलान करते हैं कि हिन्दुस्तान, जहांतक मुझे उम्मीद है, अब किसी भी विदेशी हुकूमत की सरपरस्ती नहीं रहेगा। आज या कल, मुमकिन है, हम इतने ताकतवर न भी हों कि अपनी ख्वाहिश का दावा कर सकें। हम अपनी कमजोरियों से खबरदार हैं और हममें घमण्ड या ताकत का गर्व भी नहीं है। लेकिन किसीको, और सबसे बढ़कर इंगलैण्ड को हमारे इरादे की ताकत के बारे में कोई गलतफहमी भी नहीं रखनी चाहिए या उसके मानो को भी किसी कदर हलका नहीं समझना चाहिए। निहायत मजबूती के साथ, और नतीजों को पूरी तरह जानते हुए, हम इरादा करेंगे, और उससे पीछे हटने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। जब कोई बड़ी कौम साफदिली से अपना इरादा पक्का कर लेती है तो ज्यादा देर तक उसे रोका नहीं जा सकता। अगर आज हम नाकाम होते हैं और कल भी हमें कोई कामयाबी नहीं होती, तो परसों के दिन तो हमें कामयाबी हासिल होकर ही रहेगी।

मैं निहायत साफगोई के साथ मंजूर करता हूं कि मैं समाजवादी और लोकतंत्रवादी हूं और राजा-महाराजाओं में मेरा कोई यक़ीन नहीं है, न ही मेरा उस नज़ाम में कोई यक़ीन है, जिसकी बदौलत उद्योगों में आजकल के राजा पैदा होते हैं, जिनके हाथों में आम लोगों की जान और किस्मत के बारे में पुराने जमाने के राजाओं तक से कहीं ज्यादा ताकत है, और जिनके तरीके पुराने जमाने के जागीरदारों के समान ही लुटेरेपन के है। मैं यह मानता हूं कि इस नेशनल कांग्रेस जैसी संस्था के लिए, और मुल्क की मौजूदा हालतों को सामने रखते हुए, मुमकिन है कि पूरा समाजवादी प्रोग्राम अपनाना मुश्किल हो। लेकिन हमें यह महसूस कर लेना चाहिए कि समाजवादी विचारधारा धीरे-धीरे सारी दुनिया में समाज के समूचे ढांचे में दाखल हो चुकी है और उसको पूरी तरह से अपना लेने के लिए कितना वक्त और उसे बढ़ाने का क्या तरीका होगा, सिर्फ यही सवाल सोचने को बाकी हैं। हिंदुस्तान को भी वही रास्ता अख्तियार करना होगा, अगर वह चाहता है कि उसकी गरीबी और असमानता का खात्मा हो जाय। मुमकिन है, उसे इस राह पर चलने के अपने निजी तरीके बनाने पड़ें और यह भी हो सकता है कि वह अपनी कौम की चेतना के आदर्शों के मुताबिक अपना रास्ता तय करे।

हमारे सामने तीन बड़े मसले हैं—अल्पसंख्यक, हिंदुस्तानी रियासतें, और मजदूर तथा किसान। अल्पसंख्यकों के सवाल पर मैं पहले भी जिक्र कर चुका हूं। उसे सिर्फ इसलिए दोहराता हूं कि हमें उन्हें जबान से भी, और अपने कामों से भी इस बात का पूरा यक़ीन कराना होगा कि उनकी संस्कृति और उनके रीति-रिवाजों की हिफाजत होगी।

जहांतक सवाल हिंदुस्तानी रियासतों का है, वे हिंदुस्तान के लिए भी बहुत पुराने जमाने की सबसे अजीब-सी यादगारें हैं। उनके बहुत-से शासक अब भी राजाओं के दैवी अधिकार में यक़ीन करते हैं, और समझते हैं कि रियासत के अन्दर जो कुछ भी है, वह उनकी जाती मिलकियत है, जिसे वे अपनी मर्जी से उड़ा-फूंक सकते हैं। उनमें से चंद एक में जिम्मेदारी का भी माद्दा है, और उन्होंने अपनी जनता की सेवा करने की भी कोशिश की है, लेकिन उनमें बहुत-से ऐसे हैं, जिनमें जन-सेवा जैसी भावना नाम को नहीं। उन्हें इसके लिए इल्जाम देना भी शायद

उचित नहीं, क्योंकि वे भ्रष्ट तरीके की पैदावार हैं, और यही है वह तरीका, जिसको खत्म करना ही होगा। उनमें से एक राजा ने हमें साफतौर पर बतलाया है कि भारत और इंगलैण्ड के बीच अगर लड़ाई होगी, तो वह इंगलैण्ड का साथ देगा और अपनी मातृभूमि के खिलाफ लड़ेगा। उसकी देशभक्ति का यह नमूना है। वह लोग जब यह दावा करते हैं कि किसी भी कांफ्रेंस में अपनी प्रजा की नुमायंदगी महज वही कर सकते हैं, और उनकी प्रजा में से किसी भी व्यक्ति को कुछ कहने का हक नहीं, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं समझनी चाहिए, क्योंकि ब्रिटिश सरकार उनके इस दावे को मंजूर करती है। हिंदुस्तानी रियासतें हिंदुस्तान के बाकी हिस्से से जुदा नहीं रह सकतीं। उनके राजाओं को अपनी मर्यादाएं मंजूर कर लेनी चाहिए वरना उनका वही हाल होगा, जो उनके जैसे विचार रखनेवालों का हुआ है। और रियासतों के भविष्य के बारे में सिर्फ उन्हीं लोगों को फैसला देने का हक है, जो उन रियासतों के बाशिंदे हैं, जिनमें राजा भी शामिल होंगे। यह कांग्रेस जिस आत्म-निर्णय का दावा करती है, उसे वह रियासती जनता के लिए इन्कार नहीं कर सकती। इस बीच कांग्रेस उन राजाओं के साथ बातचीत करने को तैयार है कि जो ऐसा करना चाहते हैं, जिससे कि उसके लिए तरीके सोचे जा सकें और तब्दीली का दौर भी एकाएक न आ जाय। मतलब यह कि रियासती जनता को किसी भी हालत में भुलाया नहीं जा सकता।

हमारा तीसरा बड़ा मसला सबसे बड़ा है। क्योंकि हिंदुस्तान किसानों और मजदूरों का ही मुल्क है, और जिस हदतक हम उनकी तरक्की करेंगे और उनकी जरूरतों को पूरा करेंगे, उसी हद तक हम अपने काम में कामयाब होंगे। और हमारी कौमी तहरीक की ताकत का अंदाजा भी उनके इसमें शामिल होने से ही लगाया जायगा। हम उन्हें सिर्फ तभी अपनी तरफ कर सकते हैं जब हम उनके पक्ष की हिमायत करेंगे, और सही मानो में वही मुल्क के पक्ष की भी हिमायत है। यह कहा जाता है कि पूंजीपति तथा मजदूर और जमींदार तथा काश्तकार के बीच कांग्रेस को बराबरी की तुला कायम रखनी चाहिए। लेकिन इसके पलड़े का भार बहुत बुरी तरह एक ही ओर झुका हुआ है, और झुका रहा है और इस हालत को ज्यों-का-त्यों बनाये रखने का मतलब यह होगा कि बेइन्साफी और शोषण को कायम रखा जाय। इसे सही करने का सिर्फ एक ही रास्ता है कि एक वर्ग का दूसरे वर्ग पर हावी होने का सिलसिला खत्म किया जाय। चंद माह हुए, बंबई में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने एक प्रस्ताव में समाजी और माली तब्दीली के मुद्दे को मंजूर किया था। मुझे उम्मीद है कि यह कांग्रेस भी उसपर अपनी मोहर लगा देगी और उससे भी आगे इस तरह की तब्दीलियों का प्रोग्राम बना देगी, जिन्हें जल्द-से-जल्द अमल में लाया जा सके।

इस प्रोग्राम में, मुमकिन है, मौजूदा हालतों में कांग्रेस समूचे तौर पर बहुत आगे न जासके। लेकिन उसे अखीरी मुद्दे का ध्यान रखना होगा, और उसके लिए काम भी करना होगा। सवाल सिर्फ पगारों का, और मालिकों या जमींदारों की खैरात बांटने का नहीं है। असली सवाल है उद्योग या जमींदारी में पुश्त-दर-पुश्त का सिलसिला, जो अपनी सारी बुराइयों के साथ खैरात का ही एक तरीका है, और उसमें बुराई को खत्म करने की भी कोई गुंजाइश नहीं। 'ट्रस्टीशिप' का नया कायदा भी, जिसकी कुछ लोग हिमायत करते हैं, उतना ही बेकार है। क्योंकि 'ट्रस्टीशिप' का मतलब यह है कि अच्छा या बुरा करने का हक आप-से-आप बने हुए ट्रस्टी के हाथों में रहेगा और अपनी मर्जी से वह उसपर अमल भी करेगा। 'ट्रस्टीशिप' सिर्फ एक ही ठीक हो सकता है, और वह है कौम या राष्ट्र का ट्रस्टीशिप, किसी एक आदमी या एक जमात का नहीं। बहुत-से अंग्रेज ईमानदारी के साथ अपने-आपको हिंदुस्तान का ट्रस्टी समझते हैं, और इतना होने पर भी उन्होंने हमारे मुल्क की हालत कितनी बुरी कर दी है।

हमें इस बात का फैसला करना होगा कि किसके फायदे के लिए उद्योग चलाया जाय और धरती से अनाज

पैदा किया जाय । आज धरती, जो इतनी पैदावार देती है, वह उसपर काम करनेवाले मजदूर या किसान के लिए नहीं है और उद्योग का खास काम तो लखपति पैदा करना ही माना जाता है । अनाज की फसलें चाहे जितना सोना उगलें, और मिलों के हिस्सों से चाहे जितनी बड़ी-बड़ी रकमें मिलें, लेकिन मिट्टी के झोंपड़ों और घूरे और हमारी जनता की नग्नता ब्रिटिश साम्राज्य और हमारे मौजूदा समाजी नज़ाम के शानदार नमूने हैं !

इसलिए, इन्सानी नजरिये की बिना पर ही हमारा माली प्रोग्राम बनना चाहिए और वह ऐसा नहीं होना चाहिए, जो दौलत पर इन्सान की कुर्बानी करदे । अगर कोई उद्योग अपने मजदूरों को भूखों रखे बगैर नहीं चलाया जा सकता, तो उसे बंद कर देना चाहिए । अगर धरती पर काम करनेवाले मजदूरों को खाने के लिए काफी नहीं मिलता तो उन बिचौलियों को हटा देना होगा, जो उन्हें अपना पूरा हिस्सा लेने से महरूम रखते हैं । खेत में या कारखाने में काम करनेवाले हर मजदूर को कम-से-कम इतनी मजूरी पाने का हक है, जिससे वह मामूली आराम की जिंदगी बसर कर सके, और मेहनत करने के घण्टे भी उतने ही होने चाहिए, जो उसकी ताकत और हौसले को पस्त न करें । आल पार्टीज कमेटी ने इस मंतक को मंजूर किया और अपनी सिफारिशों में उसे शामिल भी कर लिया है । मुझे उम्मीद है कि कांग्रेस भी वैसा ही करेगी और साथ-साथ उसके फौरी नतीजों को भी मंजूर करने को तैयार होगी । इससे भी ज्यादा यह कि वह बेहतर जिंदगी के लिए मजदूरों की आम मांगों को मंजूर करेगी और वह मजदूरों की तहरीक को संगठित करने के लिए हर तरह की मदद भी देगी । अलावा इसके, वह अपने-आपको उस दिन के लिए तैयार करेगी, जब सहयोग की बिना पर उद्योगों पर काबू पा सके ।

लेकिन उद्योगों में काम करनेवाले मजदूरों की तादाद तो बहुत थोड़ी है, हालांकि बड़ी तेजी के साथ यह एक ऐसी ताकत बन रही है, जिसे दरगुजर नहीं किया जा सकता । दूसरी ओर किसान हैं, जो मदद के लिए दर्द-भरी आवाज़ में ज़ोरों से चिल्ला रहे हैं और हमारा प्रोग्राम उनकी मौजूदा हालत पर कारगर होना चाहिए । पट्टेदारी के मौजूदा तरीके की बिना और जमीन-संबंधी कानूनों में बड़ी भारी तब्दीली से ही उन्हें सच्ची मदद मिल सकती है । हममें से भी कई बड़े-बड़े जमींदार हैं और हम उनका स्वागत करते हैं । लेकिन उन्हें समझ लेना चाहिए कि बड़ी-बड़ी जायदादों की ज़ाती मिल्कियत का यह तरीका, जो यूरोप की पुरानी जागीरदारी की मिलती-जुलती हालत का नतीजा है, अब तेजी के साथ दुनिया-भर से गायब हो रहा है, यहांतक कि उन मुल्कों में भी बड़ी-बड़ी जायदादों के टुकड़े कर दिये गए हैं और उनपर काश्त करनेवालों को ही वह दे दी गई हैं, जहां पूंजीवाद का बड़ा दबदबा है । हिंदुस्तान में भी ऐसे बड़े-बड़े इलाके हैं, जहां किसान-मिल्कियत का तरीका जारी है और हमें सारे मुल्क में इसे जारी करना होगा । मुझे उम्मीद है कि बड़े-बड़े जमींदारों में से कुछ लोग ही सही, हमारे इस काम में हमारा साथ देंगे ।

पिछला साल तो हमारी तैयारियों का रहा है और हमने कांग्रेस के संगठन को मज़बूत बनाने और उसमें सुधार करने की हर कोशिश की है । इसके नतीजे भी अच्छे हुए हैं और असहयोग की तहरीक की प्रतिक्रिया के वक्त में जो हालत इस संगठन की हो गई थी, उससे तो आज इसकी हालत कहीं बेहतर है । लेकिन हममें कमज़ोरियां बहुत हैं और काफी ज़ाहिरा भी हैं । आपसी झगड़े, यहांतक कि कांग्रेस कमेटी के अन्दर भी, अक्सर चलते ही रहते हैं और चुनावों की खींचातानी में हमारी सारी ताकत और लियाकत नष्ट होती है । अगर हम अपनी इस पुरानी कमज़ोरी को जीत नहीं सकते और अपनी छोटी-छोटी बातों से ऊपर नहीं उठ सकते, तो हम उस बड़ी लड़ाई को कैसे लड़ सकते हैं ? मुझे उम्मीद है कि मुल्क के लिए काम करने का एक मज़बूत प्रोग्राम होने से हमारा नजरिया

भी उन्नत होगा और हम इस तरह के फिजूल और गिरावट पैदा करनेवाले झगड़ों को वर्दाश्त नहीं करेंगे।

यह प्रोग्राम हो क्या सकता है? हमारी पसन्द सीमित है, अपने विधान की वजह से नहीं कि जिसे हम अपनी मर्ज़ी से वदल सकते हैं, वल्कि असलियतों और हालात की वजह से। हमारे विधान की शर्त नं० १ में कहा गया है कि हमारा तरीका सच्चा और शांतिपूर्ण होना चाहिए। मैं उम्मीद करता हूं कि सच्चे तो वह हमेशा ही होंगे; क्योंकि हमें उस वड़े मुद्दे को वदनाम नहीं करना कि जिसके लिए हम लड़ रहे हैं और हम ऐसा कोई काम भी नहीं करेंगे कि जिससे उसकी वेइज्जती हो और वाद में अपने किये पर हमें पछताना पड़े। शांतिपूर्ण भी मैं चाहूंगा कि वह हों, क्योंकि शांतिपूर्ण तरीके ज्यादा वाजिव होते हैं और हिंसा के तरीकों की निस्वत ज्यादा प्रभावशाली होते हैं। हिंसा का ज्यादातर उल्टा असर होता है, और उसकी वजह से गिरावट भी आती है, और खासतौर पर हमारे मुल्क में उसकी वजह से फूट भी पैदा होजाती है। यह विल्कुल सच है कि आज दुनिया में संगठित हिंसा का राज है और हो सकता है कि हम भी उसके इस्तेमाल से फायदा उठा सकें। लेकिन हमारे यहां संगठित हिंसा के लिए साजो-सामान या उसकी तालीम के भी इंतज़ाम नहीं हैं और ज़ाती तौर पर या इक्की-दुक्की हिंसा से तो हम अपनी दुर्वलता को ही मंजूर करते हैं। मेरे खयाल में, हममें से वहुत-से लोग इस मामले को नैतिक नजरिये से नहीं, वल्कि व्याव-हारिक नजरिये से आंकते हैं और अगर हम हिंसा का तरीका नामंजूर करते हैं तो इसकी वजह यह है कि इससे हमें ठोस नतीजे हासिल होते हैं। लेकिन अगर यह कांग्रेस या सारी कौम आइंदा वक्त में इस नतीजे पर पहुंचती है कि हिंसा के तरीकों से हम गुलामी से पिंड छुड़ा लेंगे तो मुझे इसमें कोई शक नहीं कि वह उन्हें भी अपना लेगी। हिंसा तो वुरी है, लेकिन गुलामी तो कहीं ज्यादा वुरी है। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि अहिंसा के देवता ने हमें खुद ही वतलाया है कि वुज़दिली की वजह से लड़ने से इन्कार करने की वजाय लड़ना वेहतर है।

मौजूदा वक्त में आजादी की कोई भी तहरीक जरूरी है कि वड़े पैमाने की तहरीक होनी चाहिए और आम जनता की तहरीकें भी जरूरी तौरपर शांतिपूर्ण होनी चाहिए सिवा संगठित तौरपर गदर की हालतों के। हमारा असहयोग का तरीका चाहे दस ही साल पहले का है या उद्योगों में आम हड़ताल का हमारा हथियार नया ही है, लेकिन शांतिपूर्ण संगठन और शांतिपूर्ण काम ही उसके आधार हैं। और अगर वड़ी तहरीक शांतिपूर्ण ढंग की होती है और उसके साथ-ही-साथ इक्की-दुक्की हिंसा की कोशिशें की जाती हैं तो उनसे महज ध्यान वंट सकता है और वह तहरीक को भी कमजोर वनाती हैं। दोनों तहरीकों का एक ही वक्त में साथ-साथ चलना मुमकिन नहीं है। हमें उनमें से किसी एक को चुनना होगा और अपनी पसंद पर मजवूती के साथ डटना होगा। इस कांग्रेस की पसंद क्या होगी, इसके वारे में मुझे कोई शुवा नहीं है। वह तो शांतिपूर्ण आम तहरीक को ही पसंद कर सकती है।

असहयोग की तहरीक और उसके तरीकों को क्या हमें दोहराना ही होगा? यह जरूरी नहीं, लेकिन वुनियादी ख्याल तो वही रहेगा। प्रोग्राम और तरीके हालात के मूजिव वनाने होंगे और इस कांग्रेस के लिए न तो सहज है और न ही वाजिव है कि वह इस मौके पर उन्हें विस्तारपूर्वक तय करे। यह काम आल इंडिया कांग्रेस कमेटी का है, और वही उसे करेगी। लेकिन वुनियादी सिद्धांत तो तय करने ही होंगे।

पहले प्रोग्राम में तीन तरह का वायकाट था—कौंसिलों का, अदालतों का और स्कूलों का—जिसे फौज में भरती होने से इन्कार करने और टैक्सों की अदायगी न करने तक वढ़ाया जाना था। जव कौमी लड़ाई अपनी वुलंदी पर हो, तो मैं यह समझ नहीं सकता कि जो शख्स उसमें लगा हो उसके लिए यह क्योंकर मुमकिन होगा कि वह अदालतों या स्कूलों में पड़ा रहे। लेकिन इतने पर भी मेरा ख्याल है कि इस मौके पर अदालतों और स्कूलों के

वायकाट का ऐलान अक्लमंदी का नहीं होगा। विधान-सभाओं के वायकाट को लेकर पिछले दिनों काफी गरमागरमी भी हो चुकी है और यह कांग्रेस भी इस मामले पर दो हिस्सों में वंट चुकी है। उस विवाद को फिर से जिंदा करने की जरूरत नहीं, क्योंकि आज के हालात विल्कुल जुदा हैं। मैं महसूस करता हूं कि कांग्रेस ने कुछ साल पहले कांग्रेसियों को कौंसिलों में जाने की इजाजत देने का जो कदम उठाया था, वह एक लाजिमी कदम था और मैं यह कहने को तैयार नहीं हूं कि उससे कोई अच्छा नतीजा नहीं निकला। लेकिन हम उस अच्छाई को खत्म कर चुके हैं, और वायकाट तथा पूरे सहयोग में आज वीच का रास्ता नहीं रह गया। हम सव उस गिरावट से वाकिफ हैं कि जो इन नाम की विधान-सभाओं की वजह से हुई है और कितने ही हमारे अच्छे-अच्छे आदमियों को उनकी कमेटियों और कमीशनों में फुसलाकर ले लिया गया है। हमारे कार्यकर्ताओं की तादाद महदूद है और जवतक वह जमकर नहीं बैठेंगे और विधान सभाओं के आलीशान कौंसिल-भवनों से मुंह नहीं मोड़ेंगे, तवतक हम आम जनता की कोई तहरीक नहीं चला सकते। और अगर हम आज़ादी का ऐलान करते हैं, तो हम कैसे कौंसिलों में दाखल हो सकते हैं, और कैसे हम वहां वेईमानी और वेफायदा की कार्रवाइयों को चला सकते हैं? कोई भी प्रोग्राम या नीति हमेशा ही के लिए नहीं बनाई जा सकती, और न ही यह कांग्रेस मुल्क को या अपने-आपको अनिश्चित समय तक एक ही नीति पर चलते रहने को लाचार कर सकती है। लेकिन आज मैं नम्रतापूर्वक कांग्रेस को इस वात की सिफारिश करूंगा कि कौंसिलों के वारे में सिर्फ एक ही नीति है और वह है उनके पूरे वायकाट की। आल इंडिया कांग्रेस ने पिछली जुलाई में इस तरीके की सिफारिश की थी और अव उसपर अमल करने का वक्त आ गया है।

इसलिए हमारा प्रोग्राम सियासी और माली वायकाट का ही होना चाहिए। जवतक हम सही मानो में आजाद नहीं हो जाते, और यहांतक कि उसके वाद भी, किसी दूसरे मुल्क का पूरा-पूरा वायकाट करना या उससे सव तरह के ताल्लुक तोड़ देना मुमकिन नहीं होगा। लेकिन हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि व्रिटिश सरकार के साथ कम-से-कम ताल्लुक रखें और अपने-आपपर भरोसा करें। हमें यह भी साफ कह देना होगा कि इंगलैण्ड ने हिंदुस्तान पर जो कर्ज़ जमा कर रखे हैं, उन सवकी ज़िम्मेदारी हिंदुस्तानी अपने ऊपर नहीं लेंगे। गया-कांग्रेस ने इन कर्ज़ों को चुकाने की ज़िम्मेदारी को नामंज़ूर कर दिया था और हम उस नामंज़ूरी को फिर से दोहराते हैं, और उसपर दृढ़ हैं। हिंदुस्तान के वह सरकारी कर्ज़े, जो हिंद के फायदे के लिए इस्तेमाल किये गए हों, उन्हें हम मंज़ूर करने और लौटाने को तैयार हैं। लेकिन हम उन वड़ी भारी रकमों को लौटाने की सारी ज़िम्मेदारी से एकदम इंकारी हैं, जिन्हें इसलिए लिया गया कि हिंदुस्तान को गुलाम वनाकर रखा जा सके और उसके वोझे को वढ़ाया जासके। खासतौर पर, भारत की गरीव जनता उन लड़ाइयों के वोझ को उठाने के लिए रजामंद नहीं हो सकती कि जो इंगलैण्ड ने अपने राज को वढ़ाने या हिंद में अपनी हालत को मज़बूत वनाने के लिए लड़ी हैं। न ही वह विदेशी शोषकों को अंधाधुंध दी गई उन वहुत-सी रियायतों को मंज़ूर कर सकती है, जिनका कोई मुनासिव मुआवज़ा तक नही है।

यह वायकाट लक्ष्य को पाने का महज़ एक ज़रिया होगा। इससे ताकत हासिल होगी और असली लड़ाई की तरफ ध्यान वंटेगा। इसके वाद यह लड़ाई टैक्स अदा न करने और जहां मुमकिन होगा, वहां मजदूर तहरीक के साथ मिलकर आम हड़तालों की सूरत अख्तियार कर लेगी। लेकिन टैक्स न अदा करने की तहरीक खास-खास इलाकों में वहुत संगठित होनी चाहिए और इस मतलव के लिए कांग्रेस को चाहिए कि वह आल इंडिया कांग्रेस कमेटी को यह अख्तियार दे कि वह जव और जहां मुनासिव समझे, इसके लिए जरूरी कार्रवाई करे।

मैंने अभीतक कांग्रेस के रचनात्मक प्रोग्राम की चर्चा नहीं की। यक़ीनी तौर पर यह जारी रहना ही चाहिए, लेकिन पिछले चंद सालों का तजुरवा हमें वतलाता है कि इसमें हमारा काम तेजी के साथ आगे नहीं बढ़ा। यह आइंदा कार्रवाई की जमीन तैयार करता है और दस साल तक चुपचाप काम करने का नतीजा आज हमें मिल रहा है। मैं समझता हूं कि हमें विदेशी कपड़े का और अंग्रेजी चीजों का खासतौर पर वायकाट जारी रखना चाहिए।

मैंने समुद्र-पार रहनेवाले हिंदुस्तानियों के वारे में अभीतक कुछ नहीं कहा और उनके वारे में वहुत-कुछ कहने का मेरा खयाल भी नहीं। यह इसलिए नहीं कि पूर्वी अफ्रीका या दक्षिणी अफ्रीका या फिजी या दूसरी जगहों में वसनेवाले अपने उन भाइयों के साथ हमारी कोई हमदर्दी नहीं कि जो भारी मुसीवतों के खिलाफ वहादुरी से वहां लड़ रहे हैं। लेकिन उसकी किस्मत का फैसला तो हिंद के मैदानों में होगा और जिस लड़ाई में हम कूदने जा रहे हैं, वह जितनी हमारे लिए है, उतनी ही उनके लिए भी है।

इस लड़ाई के लिए मौजूदा ज़माने के मूजिब ज़रियों की दरकार है, हमारी कांग्रेस का विधान और संगठन वहुत पुराने जमाने के हैं, और रफ्तार भी उनकी वड़ी धीमी है। वह आफत के वक्तों के लिए वाजिव भी नहीं हैं। वड़े-वड़े हंगामों के वक्त वीत चुके हैं। अव हम चुपचाप और वेरोक कार्रवाई करना चाहते हैं और यह सिर्फ तभी हो सकता है जव अपने लोगों में कड़ा अनुशासन हो। हमारे प्रस्ताव कार्रवाई करने की ही खातिर मंजूर होने चाहिए। अगर कांग्रेस अनुशासन के साथ काम करती है तो उसकी ताकत वढ़ेगी, चाहे उसके मैम्वरों की तादाद थोड़ी ही क्यों न हो। इरादे की पक्की अल्पसंख्याओं ने कौमों की किस्मत को वदल डाला है। भीड़ और हुल्लड़वाजी से कुछ नहीं होता। आज़ादी के माने हैं संयम और अनुशासन और हममें से हरेक को इस वड़ी अच्छाई के मुकाविले में अपनेको छोटा समझना होगा।

कांग्रेस मुल्क की वहुत वड़ी तादाद की नुमायंदा-जमात है, हालांकि कई लोग इतने कमजोर हैं कि वे इसमें शामिल नहीं हो पाते या इसके लिए काम नहीं कर पाते, लेकिन वे इसे इस उम्मीद के साथ देखते कि वह उन्हें नजात दिलानेवाली है। कलकत्ता-प्रस्ताव की वजह से सारा मुल्क इस वड़े दिन की सरगर्मी के साथ इंतजार कर रहा था कि जव इस कांग्रेस का इजलास होगा। हममें से कोई नहीं कह सकता कि क्या और कव हम कामयाव होंगे। कामयावी पर हमारा जोर नहीं चल सकता। लेकिन कामयावी अक्सर उन्हें मिलती है, जो साहसी होते हैं और काम करते हैं, वुज़दिलों को यह हासिल नहीं होती, जो हमेशा नतीजों से ही डरते रहते हैं। हमने वड़ी भारी वाज़ी लगाई है और अगर हमने वड़ी-वड़ी वातें हासिल करने की कोशिश की, तो यह वड़े-वड़े खतरों में से ही निकलकर हो सकता है। चाहे हम जल्द या देर में कामयाव हों, लेकिन ऊंचे दर्जे की कोशिश से, और अपने देश के लंबे और शानदार इतिहास में सुनहला पन्ना जोड़ने से हमें सिवा अपने कोई नहीं रोक सकता।

मुल्क के कई हिस्सों में षड्यंत्र के मुकदमें भी चल रहे हैं। हमेशा ही उनकी याद हमें रहती है। लेकिन गुप्त षड्यंत्र करने का वक्त अव निकल चुका है। अव हमारे सामने खुला षड्यंत्र है, इस मुल्क को विदेशी हुकूमत से आजाद कराने का, और हम आपको तथा मुल्क के सारे स्त्री-समाज को उसमें शामिल होने का निमंत्रण देते हैं। लेकिन इसके वदले में जो इनाम आपके लिए जमा है, वह है तकलीफें, जेल, और हो सकता है कि मौत भी। लेकिन आपको इस वात की तसल्ली होगी कि आपने हिंदुस्तान के लिए कुछ तो किया है, जो वहुत पुराना है, लेकिन है हमेशा जवान और आपने इन्सानियत को उसके मौजूदा वंधनों से नजात दिलाने में थोड़ी मदद की है। ●

सेंट्रल जेल, नैनी से २६ अक्तूबर, १९३० को इंदिरा प्रियदर्शिनी के नाम उसके तेरहवें जन्म-दिवस पर लिखा गया पत्र

सालगिरह की चिट्ठी

अपनी सालगिरह के दिन तुम बराबर उपहार और शुभ कामनाएं पाती रही हो। शुभ कामनाएं तो तुम्हें भी बहुत-सी मिलेंगी। लेकिन नैनी-जेल से मैं तुम्हारे लिए कौन-सा उपहार भेज सकता हूं?

इतिहास की किताबों में हम राष्ट्रों के जीवन में बीतनेवाले बड़े-बड़े ज़मानों का और उनके महान् पुरुषों और महिलाओं का हाल और उनके शानदार कारनामों की कहानियां पढ़ते ही रहते हैं। कभी-कभी हम सोचते-सोचते और सपने देखते-देखते यह ख्याल करने लगते हैं कि मानों हम भी उसी पुराने ज़माने में चले गये हैं और पुराने ज़माने के उन वीरों और वीरांगनाओं के समान हम भी बहादुरी के काम कर रहे हैं। क्या तुम्हें याद है कि जब तुमने पहले-पहल 'जीन द आर्क' की कहानी पढ़ी थी, तो तुम कितनी मुग्ध हो गई थीं और तुम्हारे दिल में कितना हौसला पैदा हुआ था कि तुम भी उसीकी तरह कुछ काम करो? साधारण मर्दों और औरतों में आमतौर पर साहस की भावना नहीं होती। वे तो अपनी रोज़ाना की दाल-रोटी की, अपने बाल-बच्चों की, घर-गिरस्ती की झंझटों की, और इसी तरह की दूसरी बातों की चिन्ता में फंसे रहते हैं। लेकिन एक समय आता है जब किसी बड़े उद्देश्य के लिए सारी जनता में उत्साह भर जाता है और उस वक़्त सीधे-सादे मामूली स्त्री और पुरुष वीर बन जाते हैं, और इतिहास दिल को थर्रा देनेवाला और नया युग पैदा करनेवाला बन जाता है। महान् नेताओं में कुछ ऐसी बातें होती हैं, जो सारी जाति के लोगों में जान पैदा कर देती हैं और उनसे बड़े-बड़े काम करवा देती हैं।

वह वर्ष, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ, अर्थात् सन् १९१७, इतिहास का एक बहुत प्रसिद्ध वर्ष है। इसी वर्ष एक महान् नेता ने, जिसके हृदय में ग़रीबों और दुखियों के लिए बहुत प्रेम और हमदर्दी थी अपनी क़ौम से इतिहास के एक शानदार और अमर अध्याय की रचना करवा दी। उसी महीने में, जिसमें तुम पैदा हुई, लेनिन ने उस महान् क्रान्ति को शुरू किया था, जिससे रूस और साइबेरिया की काया पलट गई। और आज भारत में एक दूसरे महान् नेता ने, जिसके हृदय में मुसीबत के मारे और दुखी लोगों के लिए दर्द है और जो उनकी सहायता के लिए बेताब हो रहा है, हमारे राष्ट्र में महान् प्रयत्न और उच्च बलिदान करने के लिए नई जान डाल दी है कि जिससे हमारा राष्ट्र फिर आज़ाद हो जाय, और भूखे, ग़रीब और पीड़ित लोग अपने पर लदे हुए बोझ से छुटकारा पा जायं। बापूजी जेल में पड़े हैं, लेकिन हिन्दुस्तान की करोड़ों जनता के दिलों में उनके संदेश का जादू पैठ गया है और मर्द-औरतें और छोटे-छोटे बच्चे तक अपने-अपने छोटे-छोटे और तंग दायरों से निकलकर भारत की आज़ादी के सिपाही बन रहे हैं। भारत में आज हम इतिहास का निर्माण कर रहे हैं। हम और तुम आज बड़े ख़ुशक़िस्मत हैं कि यह सारी बातें हमारी आंखों के सामने हो रही हैं, और इस महान् नाटक में हम भी कुछ हिस्सा ले रहे हैं।

इस महान् आन्दोलन में हमारा व्यवहार कैसा रहेगा ? इसमें हम क्या भाग लेंगे ? मैं नहीं कह सकता कि हम लोगों के ज़िम्मे कौन-सा काम आयगा। लेकिन हमारे ज़िम्मे चाहे जो काम आ पड़े, हमें यह याद रखना चाहिए कि हम कोई ऐसी बात नहीं करेंगे, जिससे हमारे उद्देश्यों पर धब्बा लगे और हमारे राष्ट्र की बदनामी हो। अगर हमें भारत के सिपाही होना है, तो हमको उसके गौरव का रक्षक बनना होगा और यह गौरव हमारे लिए एक पवित्र धरोहर होगी।

कभी-कभी हमें यह दुविधा हो सकती है कि इस समय हमें क्या करना चाहिए ? सही क्या है और ग़लत क्या है, यह तय करना आसान काम नहीं होता। इसलिए जब कभी तुम्हें शक हो तो ऐसे समय के लिए मैं एक छोटी-सी कसौटी तुम्हें बताता हुं। शायद इससे तुम्हें मदद मिलेगी। वह यह है कि कोई काम खुफिया तौर पर न करो, कोई काम ऐसा न करो, जिसे तुम्हें दूसरों से छिपाने की इच्छा हो; क्योंकि छिपाने की इच्छा का मतलब यह होता है कि तुम डरती हो; और डरना बुरी बात है और तुम्हारी शान के ख़िलाफ़ है। तुम बहादुर बनो और बाक़ी चीजें तुम्हारे पास आप-ही-आप आती जायंगी। अगर तुम बहादुर हो तो तुम डरोगी नहीं, और कभी ऐसा काम न करोगी जिसके लिए दूसरों के सामने तुम्हें शर्म मालूम हो। तुम्हें मालूम है कि हमारी आज़ादी के आन्दोलन में, जो बापूजी की रहनुमाई में चल रहा है, गुप्त तरीकों या लुक-छिपकर काम करने के लिए कोई स्थान नहीं है। हमें तो कोई चीज़ छिपानी ही नहीं है। जो-कुछ हम कहते हैं या करते हैं, उससे हम डरते नहीं। हम तो उजाले में और दिन-दहाड़े काम करते हैं। इसी तरह अपनी निजी ज़िन्दगी में भी हमें सूरज को अपना दोस्त बनाना चाहिए और रोशनी में काम करना चाहिए। कोई बात छिपाकर या आंख बचाकर नहीं करनी चाहिए। एकान्त तो अलबत्ता हमें चाहिए और वह स्वाभाविक भी है, लेकिन एकान्त और चीज है और पोशीदगी दूसरी चीज़ है। इसलिए, प्यारी बेटी, अगर तुम इस कसौटी को सामने रखकर काम करती रहोगी तो प्रकाश की सन्तान होकर बढ़ोगी और चाहे जो घटनाएं तुम्हारे सामने आयें, तुम निर्भय और शांत रहोगी और तुम्हारे चेहरे पर शिकन तक न आयगी।

मैंने तुम्हें बताया कि तुम बड़ी खुशक़िस्मत हो कि आज़ादी की बड़ी लड़ाई, जो हमारे देश में इस वक्त चल रही है, तुम्हारी आंखों के सामने हो रही है। तुम्हारी एक बड़ी खुशक़िस्मती यह भी है कि तुम्हें एक बहुत बहादुर और दिलेर स्त्री 'मम्मी' के रूप में मिली है। जब कभी तुम्हें कोई शक-शुबा हो, या कोई परेशानी सामने आये, तो उनसे बढ़कर मित्र तुम्हें दूसरा नहीं मिल सकता।

मेरी यह कामना है कि तुम बड़ी होकर भारत की सेवा के लिए एक बहादुर सिपाही बनो। ❁

१ जनवरी, १९३१ को इंदिरा प्रियदर्शिनी के नाम लिखा पत्र। इसमें उन्होंने अपनी पत्नी--इंदिरा की मां, श्रीमती कमला नेहरू की गिरफ्तारी का 'नये साल की भेंट' के रूप में स्वागत किया है।

नये साल की भेंट

संसार के बीते हुए ज़माने की कहानी और उसके महान् पुरुषों और स्त्रियों और उनके महान् कार्यों का चिन्तन करना बहुत दिलचस्प चीज़ है। इतिहास का पढ़ना अच्छा है, लेकिन उससे ज्यादा दिलचस्प और दिल लुभानेवाली बात इतिहास के निर्माण में मदद देना है। और तुम जानती ही हो कि हमारे देश में आज इतिहास का निर्माण हो रहा है। भारत का पिछला इतिहास बहुत ही पुराना है, और प्राचीनता के कुहरे में खो गया है। इसमें अनेक दुःखद और अप्रिय युग भी हैं, जिनकी याद करके हमें शर्म आती है और ग्लानि होती है। लेकिन सभी बातों की लिहाज से हमारा पिछला ज़माना बहुत शानदार है, जिसपर हम सही तौर पर गर्व कर सकते हैं और जिसका ख़याल करके हम ख़ुशी हासिल कर सकते हैं। लेकिन आज हमें इतनी फ़ुरसत नहीं कि हम अतीत की याद करने बैठें। हमारे दिमाग़ में तो वह भविष्य, जिसका हम निर्माण कर रहे हैं, भरा पड़ा है, और वह वर्तमान है, जिसमें हमारा पूरा समय और हमारी पूरी शक्ति लग रही है।

कितनी विचित्र बात है कि हम एक-दूसरे से इतने नज़दीक होते हुए भी इतनी दूर हैं। मसूरी में तुम मुझसे कई सौ मील के फ़ासले पर थीं; लेकिन तब मैं जितनी दफ़ा चाहता तुम्हें पत्र लिख सकता था, और जब कभी तुम्हें देखने को बहुत तबीयत चाहती तब जाकर मिल सकता था। लेकिन आजकल तुम जमना नदी के उस पार हो, और मैं इस पार हूं; एक-दूसरे से बहुत दूर नहीं। फिर भी नैनी-जेल की ऊंची दीवारों ने हमें एक एक-दूसरे से एकदम अलग कर रक्खा है। पन्द्रह दिन में मैं एक पत्र लिख सकता हूं और एक पा सकता हूं, और पंद्रह दिन में बीस मिनट की मुलाकात भी मुझे मिल सकती है। फिर भी मैं इन बंदिशों को अच्छा समझता हूं, क्योंकि जो चीज़ हमें सस्ती मिल जाती है, हम अक्सर उसकी क़द्र नहीं करते, और मैं यह विश्वास करने लग गया हूं कि कुछ दिन जेल में बिताना आदमी की शिक्षा का बहुत वांछनीय हिस्सा है। खुशक़िस्मती की बात है कि हमारे देश के बीसों हज़ार आदमी आज इस तरह की शिक्षा पा रहे हैं।

आज नये साल का पहला दिन है। आज बड़े सवेरे जब मैं बिस्तर पर लेटे-लेटे तारों को देख रहा था, तो मेरे दिल में पिछले महत्वपूर्ण वर्ष का ख़याल हो आया। और साथ ही, ख़याल में आई उस साल की वे सब उम्मीदें, टीसें और खुशियां और वह सारे महान् और वीरता के काम जो, इस साल में किये गए। मुझे बापूजी का भी ख़याल आया, जिन्होंने यरवदा-जेल की कोठरी में बैठे-बैठे अपने जादूभरे स्पर्श से हमारे बूढ़े देश को जवान और ताक़तवर बना दिया। मुझे 'दादू' (पिताजी) की भी याद आई, और दूसरों की भी। मुझे ख़ास तौर से तुम्हारी मम्मी और तुम्हारा ख़याल आया। इसके बाद सुबह होने पर ख़बर आई कि तुम्हारी मम्मी गिरफ्तार करली गईं और जेल पहुंचा दी

इंदिरा प्रियदर्शिनी के नाम ७ जनवरी, १९३१ को लिखा गया पत्र, जिसमें क्रांति का उद्बोधन है।

इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद !

आज, जब मैं तुम्हें पत्र लिखने बैठा तो दूर के बादल की गरज जैसा कुछ हलका-सा शोर मुझे सुनाई दिया। पहले तो मुझे पता न चला कि यह आवाज़ कैसी है, लेकिन यह कुछ परिचित-सी जान पड़ी और ऐसा मालूम हुआ कि उसके जवाब में मेरे हृदय से गूंज उठ रही है। धीरे-धीरे यह आवाज़ नज़दीक आती और बढ़ती हुई मालूम देने लगी और थोड़ी ही देर में वह क्या है उसके बारे में कोई शक नहीं रहा। 'इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद' ! 'इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद' !! इस जोशभरी ललकार से जेलखाना गूंज उठा और इसे सुनकर हम सबके दिल हरे हो गए। मैं नहीं जानता कि ये कौन लोग थे—जो हमारे इस जंगी नारे को हमसे इतना नज़दीक जेल के बाहर बुलन्द कर रहे थे—शहर के मर्द और औरतें थीं या गांवों के किसान लोग ? और न मैं यह जानता हूं कि आज इसका कौन-सा मौक़ा था ? लेकिन ये लोग चाहे जो हों, इन्होंने हमारे दिलों के हौसले बढ़ा दिये और इनके अभिवादन का हम लोगों ने ख़ामोश जवाब भेज दिया, जिसके साथ-साथ हमारी सारी शुभकामनाएं भी थीं।

सवाल यह होता है कि हम 'इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद' क्यों पुकारते हैं ? हम क्रांति और परिवर्तन किसलिए चाहते हैं ? इसमें शक नहीं कि भारत में आज बहुत परिवर्तन की ज़रूरत है। लेकिन वे सारे बड़े परिवर्तन, जो हम चाहते हैं, हो भी जायं, और भारत को आज़ादी भी मिल जाय, तो भी हम निश्चिंत नहीं बैठ सकते। दुनिया की कोई भी चीज़, जिसमें जान है, बिना परिवर्तन के नहीं रहती। सारी कुदरत रोज़-ब-रोज़ और मिनट-मिनट पर बदलती रहती है। केवल मुर्दों की ही बढ़ोतरी रुक जाती है, और वे निश्चल हो जाते हैं। ताज़ा पानी बहता रहता है और अगर कोई उसे रोक दे तो वह बंधकर गंदा हो जाता है। मनुष्य-जाति की और राष्ट्र की ज़िंदगी का भी यही हाल होता है। हम चाहें या न चाहें बूढ़े होते जाते हैं। बच्चियां छोटी लड़कियां हो जाती हैं; छोटी लड़कियां बड़ी लड़कियां हो जाती हैं; वही बाद में युवतियां और फिर बूढ़ियां हो जाती हैं। हमें इन सब परिवर्तनों को बर्दाश्त करना पड़ता है। लेकिन बहुत-से लोग इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं कि दुनिया बदलती रहती है। वह अपने दिमाग़ को बंद रखते हैं और उसपर ताला डाल देते हैं और उसमें किसी नये ख़याल को घुसने नहीं देते। सोच-विचार करने की भावना से उन्हें जितना डर लगता है, उतना किसी दूसरी चीज़ से नहीं। नतीजा क्या होता है ? दुनिया तो फिर भी आगे-आगे बढ़ती ही जाती है, और चूंकि वे और उन्हींके ख़यालों के दूसरे लोग बदलती हुई परिस्थितियों के मुताबिक़ अपनेको नहीं ढालते, इसलिए समय-समय पर बड़े-बड़े विस्फोट होते हैं; बड़ी-बड़ी क्रान्तियां हो जाती हैं—जैसीकि १४० वर्ष पहले फ्रांस में और आज से १३ वर्ष पहले रूस में हुई थी। इसी तरह अपने देश में हम भी आज एक क्रान्ति के बीच से गुज़र रहे हैं। बेशक हम आज़ादी चाहते हैं; लेकिन हम इससे भी कुछ और ज्यादा चाहते

हैं। हम तमाम बदबूदार गड्ढों को साफ कर डालना चाहते हैं और हरेक जगह ताज़ा और साफ़ पानी की धार पहुंचा देना चाहते हैं। हमारा फर्ज है कि हम अपने देश की गंदगी, ग़रीबी और मुसीबतों को निकाल फेंकें और जहां-तक हो सके बहुत-से आदमियों के दिमाग़ों में भरे हुए जालों को भी साफ कर दें, जिनकी वजह से कि वह लोग विचार नहीं कर पाते और उस महान् काम में, जो हमारे सामने है, सहयोग नहीं देते। यह एक बड़ा काम है और मुमकिन है, इसके पूरा होने में देर लगे। आओ, कम-से-कम एक धक्का लगाकर इसे आगे तो बढ़ा दें—इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद !

हम अपनी क्रान्ति के दरवाज़े पर खड़े हैं और यह नहीं जानते कि भविष्य में क्या होनेवाला है, लेकिन हमारी मेहनतों का फल बहुत काफ़ी मात्रा में वर्तमान ने ही हमारे सामने ला रक्खा है। भारत की स्त्रियों को देखो कि वे कितने अभिमान के साथ लड़ाई में सबसे आगे बढ़ती जा रही हैं ! नम्र, लेकिन बहादुर और किसीसे न दबनेवाली स्त्रियां, देखो किस तरह दूसरों को आगे बढ़ने का रास्ता बता रही हैं ? और कहां गया आज वह परदा, जिसने हमारी बहादुर और सुन्दर स्त्रियों को छिपा रक्खा था, और जो उनके और उनके देश के लिए एक अभिशाप था ? क्या वह तेज़ी के साथ हट नहीं रहा कि अजायबघरों की आलमारियों में, जहां कि बीते ज़माने की निशानियां रक्खी जाती हैं, जाकर अपनी जगह ले !

बच्चों को—लड़के और लड़कियों को—वानर-सेना और बाल-बालिका-सभाओं को भी देखो। इनमें से बहुत-से बच्चों के माता-पिता ऐसे होंगे, जो शायद पहले कायरों और गुलामों की तरह आचरण करते रहे हों। लेकिन क्या अब कोई यह शक करने की हिम्मत कर सकता है कि हमारी पीढ़ी के बच्चे गुलामी या कायरता को कभी भी बरदाश्त करेंगे ?

और इस तरह परिवर्तन-चक्र चल रहा है और जो नीचे थे वे ऊपर आ रहे हैं और जो ऊपर थे वह नीचे जा रहे हैं। हमारे देश में भी इस चक्र के चलने का समय आगया है। लेकिन इस बार हम लोगों ने इसे ऐसा धक्का दिया है कि अब कोई भी इसे रोक नहीं सकता।

इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद ! ●

क्रेकोविया जहाज से अपने पिता पंडित मोतीलाल नेहरू की मृत्यु पर २१ अप्रैल, १९३१ को इंदिरा प्रियदर्शिनी के नाम लिखा गया पत्र ।

पिता की मृत्यु

तुम्हें पत्र लिखे बहुत दिन हो गये। क़रीब तीन महीने—दुःख, परेशानी और मुसीबत के तीन महीने—गुज़र गये। भारत के, और सबसे बढ़कर हमारे कुटुम्ब के परिवर्तन के ये तीन महीने! भारत ने फ़िलहाल सत्याग्रह या सविनय अवज्ञा आंदोलन रोक दिया है; लेकिन जो सवाल हमारे सामने हैं, उनके हल करने में कोई आसानी पैदा नहीं हुई। और हमारे कुटुम्ब ने अपना प्यारा बुजुर्ग खो दिया, जिसने हमें बल और प्रेरणा दी थी, और जिसकी आश्रय देनेवाली देख-रेख में हम सब बड़े हुए और अपनी सबकी माता भारत के लिए अपना कर्त्तव्य अदा करना सीखा।

नैनी-जेल का वह दिन मुझे कितनी अच्छी तरह याद है! वह २६ जनवरी का दिन था और मैं हमेशा की तरह पुरानी बातों के बारे में तुम्हें पत्र लिखने बैठा था। और जब मैं अशोक की याद कर रहा था, मेरा मन घूम-फिरकर वर्तमान की ओर—२६ जनवरी पर आ पहुंचा, जिस दिन मैं कलम-दवात लेकर तुम्हें लिखने बैठा था। हम लोगों के लिए यह एक बहुत बड़ा दिन था, क्योंकि एक साल पहले इसी दिन हमने सारे भारत में, शहरों और गांवों में, आज़ादी का दिन—पूर्ण स्वराज का दिन—मनाया था और हमारे देश के करोड़ों लोगों ने स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा ली थी। तबसे एक साल बीत गया—संघर्ष का, तकलीफ़ों का और विजय का एक साल—और एक बार फिर भारत उसी महान् दिन को मनाने जा रहा था। जब मैं नैनी-जेल की ६ नम्बर की बैरक में बैठा हुआ था, मुझे उस दिन सारे देश में होनेवाली सभाओं, जलूसों, लाठी-प्रहारों और गिरफ्तारियों का ख्याल हो आया था। गर्व, खुशी और दर्द के साथ मैं इन सब बातों का विचार कर ही रहा था कि मेरी कल्पना की धारा एकदम रुक गई। बाहर से ख़बर मिली कि दादू बहुत बीमार हैं और उनके पास जाने के लिए मैं फौरन ही छोड़ दिया जाऊंगा। चिन्ता से मेरी विचारधारा टूट गई और तुम्हें जो पत्र लिखना शुरू किया था, उसे एक ओर रखकर नैनी-जेल से आनंद-भवन के लिए रवाना हो गया।

दादू की मृत्यु से पहले दस दिन मैं उनके साथ रहा। दस दिन तक हम उनके क़ष्ट और यातना को और मौत के दूत से उनकी बहादुराना लड़ाई को देखते रहे। अपने जीवन में उन्होंने बहुत-सी लड़ाइयां लड़ीं और बहुत-सी विजय हासिल कीं। हार मानना तो वह जानते ही न थे, और मौत को अपने सामने खड़ा हुआ देखकर भी वह उसके सामने डटे रहे। जब मैं उनकी इस आखिरी लड़ाई को देख रहा था, और जिन्हें मैं इतना प्यार करता था, उन्हें मदद पहुंचाने में अपनी बेबसी पर व्याकुल हो रहा था, तो मुझे कुछ पंक्तियां, जो मैंने बहुत दिन हुए एडगर एलन पो की किसी कहानी में पढ़ी थीं, याद आ गईं, जिनका अर्थ यह है—

> "मनुष्य खुद देवदूतों के सामने हार नहीं मानता और न वह मौत के सामने ही पूरी तरह सिर झुकाता है; अगर वह हार मानता है, तो अपनी इच्छा-शक्ति की कमज़ोरी की वजह से ही मानता है।"

६ फरवरी को सुबह वह हमें छोड़कर चले गए। जिस झंडे को वह इतना प्यार करते थे उसीमें उनका शरीर लपेटकर हम उन्हें लखनऊ से आनन्द-भवन ले आये। थोड़ी ही देर में वह जलकर मुट्ठी-भर राख हो गया और गंगा इस अनमोल विभूति को समुद्र की ओर बहा ले गई।

लाखों आदमियों ने उनके लिए शोक मनाया, लेकिन हम सबपर, जो उनके बच्चे हैं और जो उनके मांस और उनकी हड्डियों से बने हैं, कैसी बीती ! और उस नये आनन्द-भवन का, जो हम लोगों के समान ही उनका बच्चा है, और जिसे उन्होंने इतने प्यार से और इतनी सावधानी से तैयार करवाया था, क्या हुआ ? वह अब सुन-सान और वीरान हो गया, मानो उसकी जान ही निकल गई। और हम उसके बरामदों में, उन्हींका बराबर ख़याल करते हुए, जिन्होंने इसे बनाया था, दबेपांव चलते हैं कि कहीं उनकी शान्ति भंग न हो जाय।

हम उनके लिए शोक करते हैं और क़दम-क़दम पर उनकी कमी को महसूस करते हैं। दिन गुज़रते जाते हैं, लेकिन न तो दुःख कम होता दीखता है और न उनका विछोह सहना आसान होता दीखता है। लेकिन फिर मैं सोचता हूं कि यह चीज़ उन्हें कभी पसंद न आयगी। उन्हें यह कभी पसंद न होगा कि हम रंज से हार मान लें। वह तो चाहेंगे कि जैसे उन्होंने अपनी तकलीफों का मुक़ाबला किया वैसे ही हम अपने रंज का मुक़ाबला करें और उसपर विजय पायं। वह चाहेंगे कि जो काम उन्होंने अधूरा छोड़ा है, उसे हम जारी रक्खें। फिर, जब काम हमें बुला रहा है और भारत की आज़ादी का उद्देश्य हमारी सेवाओं की मांग कर रहा है, तब हम चुप कैसे बैठ सकते हैं, और व्यर्थ के शोक के सामने कैसे सिर झुका सकते हैं ? इसी उद्देश्य के लिए उन्होंने जान दी। इसीके लिए हम जिन्दा रहेंगे, कोशिश करेंगे और अगर जरूरत हुई तो जान भी देंगे। आख़िर हम उनकी सन्तान हैं और हममें उनकी आग, ताक़त और पक्के इरादों का कुछ-न-कुछ अंश मौजूद है। ●

२२ अप्रैल, १९३१ को कोकोविया जहाज से लिखा गया पत्र, जिसमें अपने प्यारे दोस्त और महान नेता श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के महान बलिदान की कहानी कही है।

प्यारे दोस्त का विछोह

पिछले कुछ हफ्तों में एक बात ऐसी हुई है, जिसे मैं चाहता हूं कि तुम याद रक्खो; क्योंकि भारत उसे बहुत वर्षों तक याद रक्खेगा। एक महीने से कम हुआ, कानपुर शहर में भारत के एक बहादुर सिपाही, गणेशशंकर विद्यार्थी, चल बसे। वह उस समय मारे गये, जब वह दूसरों को बचाने की कोशिश कर रहे थे।

गणेशजी मेरे प्यारे दोस्त थे। एक बहुत नेक और बेगर्ज़ साथी थे, जिनके साथ काम करना सौभाग्य की बात थी। पिछले महीने जब कानपुर में लोगों के सिर पर पागलपन सवार हुआ, और एक भारतीय दूसरे भारतीय को क़त्ल करने लगा, तो गणेशजी आग में कूद पड़े—अपने किसी देश-भाई से लड़ने के लिए नहीं—बल्कि उन्हें बचाने के लिए। उन्होंने सैकड़ों को बचाया; सिर्फ अपनेको वह नहीं बचा सके। अपने बचाव की उन्होंने परवा भी नहीं की और उनकी मौत उन लोगों के हाथों हुई, जिन्हें वह बचाना चाहते थे। कानपुर का और हमारे प्रान्त का एक हीरा लुट गया और हममें से बहुतेरे अपने एक प्रिय और बुद्धिमान मित्र से हाथ धो बैठे। लेकिन कितनी शानदार थी उनकी मौत! उन्होंने शांत मुद्रा और निर्भीकता के साथ गुण्डों के पागलपन का मुक़ाबला किया और ख़तरे और मौत के बीच भी उन्हें ध्यान था तो सिर्फ दूसरों का और उन्हें बचाने का!

तब्दीलियों के ये तीन महीने! समय के सागर में एक बूंद के समान और राष्ट्र की ज़िन्दगी में एक पल के समान! सिर्फ तीन हफ्ते पहले मैं मोहेन-जो-दड़ो के खण्डहर देखने गया था, जो सिंध में, सिंध नदी के कांठे में हैं। उस समय तुम मेरे साथ नहीं थी। मैंने वहां एक बहुत बड़ा शहर ज़मीन के अन्दर से निकला हुआ देखा—ऐसा शहर, जिसमें मज़बूत ईंटों के मकान और लम्बी-चौड़ी सड़कें थीं और कहा जाता है कि जिसे बने पांच हज़ार बरस हो गये। मैंने इस प्राचीन शहर में मिले हुए सुंदर-सुंदर ज़ेवर और मिट्टी के बरतन देखे। इन सबको देखते-देखते मुझे ऐसा मालूम होने लगा मानो चटकीले-भड़कीले कपड़े पहने हुए पुरुष और स्त्रियां इसकी सड़कों और गली-कूचों में आ-जा रहे हैं, बच्चे बच्चों-के-से खेल खेल रहे हैं, माल से भरे बाज़ार गुलज़ार हो रहे हैं, लोग सौदा ले-दे रहे हैं और मंदिरों की घंटियां बज रही हैं।

इन पांच हज़ार बरसों से भारत अपना जीवन क़ायम रखता आ रहा है और उसने बहुत-से परिवर्तन देखें हैं। मैं कभी-कभी सोचने लगता हूं कि क्या हमारी यह बूढ़ी भारतमाता, जो इतनी प्राचीन और फिर भी इतनी नौजवान और सुन्दर है, अपने बच्चों के उतावलेपन पर, उनकी छोटी-मोटी परेशानियों पर, उनके हर्ष और शोक पर, जो दिन-भर रहते हैं और फिर ख़तम हो जाते हैं, मुस्कराती न होंगी? ●

२६ सितम्बर, १९३२ को इंदिरा प्रियदर्शिनी को लिखे अपने पत्र में इंगलैण्ड की उद्योगी क्रान्ति तथा उसके प्रभाव से हुए परिवर्तनों पर रोशनी डाली है।

उद्योगी क्रान्ति और उसकी देन

अब हम उसकी चर्चा करेंगे जो उद्योगी क्रान्ति कहलाती है। इसकी शुरुआत इंगलैण्ड में हुई, इसलिए इंगलैण्ड में ही हम संक्षेप में इसपर ग़ौर करेंगे। मैं इसके लिए कोई ठीक सन् नहीं बतला सकता, क्योंकि यह परिवर्तन जादू की तरह किसी ख़ास साल में नहीं हुआ। लेकिन फिर भी वह काफी तेज़ी के साथ हुआ और अठारहवीं सदी के बीच से लगाकर आगे के सौ वर्षों से कम में ही उसने ज़िंदगी की सूरत बदल दी। इन पत्रों में तुमने और मैंने, दोनों ने दुनिया की शुरुआत से लगाकर हज़ारों वर्षों के इतिहास के सिलसिले का सिंहावलोकन किया है और बहुत-से परिवर्तन हमारी निगाह में आये हैं। लेकिन ये सब परिवर्तन, जो कभी-कभी बहुत बड़े भी हुए, लोगों की ज़िन्दगी और रहन-सहन के ढंग को गहराई के साथ नहीं बदल सके। अगर सुक़रात या अशोक या जुलियस सीज़र भारत में अकबर के दरबार में अचानक चले आते, या अठारहवीं सदी के शुरू में इंगलैण्ड या फ्रान्स में पहुंच जाते, तो बहुत-से परिवर्तन उनकी नज़र में आते। इनमें से कुछ परिवर्तनों को वे पसंद करते और कुछको नापसंद। लेकिन सरसरी तौर पर, कम-से-कम बाहर से, वे दुनिया को पहचान लेते, क्योंकि विचारों में उन्हें बहुत फ़र्क़ नहीं मालूम होता। और जहांतक ऊपरी बातों से ताल्लुक है वे अपनेको बिलकुल अजनबी नहीं महसूस करते। अगर वे सफ़र करना चाहते तो घोड़े पर या घोड़ा-गाड़ी पर करते, जैसाकि अपने ज़माने में किया करते थे; और सफर में वक्त भी क़रीब-क़रीब उतना ही लगता।

लेकिन इन तीनों में से एक भी अगर हमारे ज़माने की दुनिया में आ जाय तो उसे बड़ा ज़बरदस्त अचम्भा होगा। और यह अचम्भा बहुत करके उसके लिए दर्दभरा हो सकता है। वह देखेगा कि आजकल लोग तेज़-से-तेज़ घोड़े से भी ज्यादा तेज़ी के साथ, या शायद कमान से छूटे हुए तीर से भी ज्यादा तेज़ी के साथ, सफर करते हैं। रेल, स्टीमर, मोटर और हवाई जहाज़ में वे अद्भुत तेज़ी के साथ सारी दुनिया में दौड़ते-फिरते हैं। फिर उसकी दिलचस्पी तार, टेलीफोन, बेतार के तार, छापेख़ाने से प्रकाशित होनेवाली अनगिनती किताबों, अख़बारों और सैकड़ों दूसरी चीज़ों में होगी, जो सब अठारहवीं सदी और उसके बाद की औद्योगिक क्रान्ति के जरिए लाये हुए नये तरीकों के नतीजे हैं। सुक़रात या अशोक या जुलियस सीज़र इन नये तरीक़ों को पसंद करेंगे या नापसंद, यह मैं नहीं कह सकता, लेकिन इसमें शक नहीं कि वे उनको अपने ज़माने के तरीक़ों से बिलकुल अलग तरह के पायंगे।

औद्योगिक क्रान्ति ने दुनिया को बड़ी मशीन दी। उसने मशीन-युग या यांत्रिक युग की शुरुआत की। पहले भी मशीनें ज़रूर थीं, लेकिन इतनी बड़ी नहीं, जितनी कि नई मशीनें। मशीन है क्या? वह इन्सान को उसके काम में मदद देनेवाला बड़ा औज़ार है। आदमी औज़ार बनानेवाला जंतु कहा जाता है और अपनी ज़िन्दगी के शुरू से वह औज़ार बनाता रहा है और उनको अच्छा बनाने की कोशिश करता रहा है। दूसरे जानवरों में, जिनमें से

बहुत-से उससे ज्यादा ताकतवर थे, उसका प्रभुत्व औज़ारों की ही वजह से कायम हुआ था। औज़ार उसके हाथ का ही बढ़ा हुआ रूप है; या उसे तीसरा हाथ भी कह सकते हैं। मशीन औज़ार का बढ़ा हुआ रूप है। औज़ार और मशीन ने मनुष्य को पशु-जगत से ऊपर उठा दिया। इन्होंने मनुष्य-समाज को प्रकृति की गुलामी से छुड़ाया। औज़ार और मशीन की मदद से मनुष्य के लिए चीज़ें बनाना आसान हो गया। वह ज्यादा चीज़ें बनाने लगा और फिर भी उसे ज्यादा फ़ुरसत रहने लगी। और इसका नतीजा यह हुआ कि सभ्यता की कलाओं में और विचारों व विज्ञान में प्रगति हुई।

लेकिन बड़ी मशीन और उसके सब साथी निरी बरकतें ही नहीं साबित हुए। अगर इसने सभ्यता की तरक्की में मदद दी है तो लड़ाई और बर्बादी के भयंकर हथियार ईजाद करके वहशीपन को बढ़ाने में भी मदद की है। अगर इसने चीज़ों की बहुतायत पैदा की है तो यह बहुतायत जनता के लिए नहीं बल्कि कुछ थोड़े-से लोगों के लिए हुई है। इसने तो दौलतमंदों के ऐश-आराम और ग़रीबों की ग़रीबी के अन्तर को पहले से भी ज्यादा बढ़ा दिया है। यह मनुष्य का औज़ार और सेवक होने के बजाय उसका स्वामी बनने का दावा करने लगी है। एक तरफ़ तो इसने सहयोग, संगठन, समय की पाबंदी वग़ैरा गुण सिखाये हैं; दूसरी तरफ लाखों की ज़िन्दगी को एक ऐसा नीरस ढर्रा और ऐसा मशीनी बोझ बना दिया है, जिसमें ज़रा भी ख़ुशी और आज़ादी नहीं है।

लेकिन मशीन से जो बुराइयां पैदा हुई हैं, उनके लिए हम उस बेचारी को क्यों दोष दें? दोष तो मनुष्य का है, जिसने उसका दुरुपयोग किया है, और समाज का है, जिसने उससे पूरा फ़ायदा नहीं उठाया। यह तो ध्यान में भी नहीं आ सकता कि दुनिया या कोई देश, उद्योगी क्रान्ति से पहले के पुराने ज़माने को लौट जाय; और यह बात न तो ज़रूरी मालूम होती है, न बुद्धिमानी की कि हम लोग कुछ बुराइयों से छुटकारा पाने के लिए उद्योगवाद की लाई हुई बहुत सारी अच्छी चीज़ों को फेंक दें। चाहे जो हो, मशीन तो अब आ गई और बनी रहेगी। इसलिए हमारे सामने सवाल यही है कि उद्योगवाद की लाभकारी चीज़ों को रख लें और उसके साथ जो बुराइयां चिपक गई हैं, उनसे पिंड छुड़ायें। इससे पैदा होनेवाली दौलत से हमको फायदा उठाना चाहिए, लेकिन इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि यह दौलत उन लोगों में बराबर बंट जाय, जो उसे पैदा करते हैं।

इस पत्र में मेरा इरादा तुम्हें इंगलैण्ड की उद्योगी क्रान्ति के बारे में कुछ बतलाने का था। लेकिन जैसीकि मेरी आदत है, मैं असली बात से अलग हट गया हूं और उद्योगवाद के नतीजों की चर्चा करने लगा हूं। मैंने तुम्हारे सामने वह समस्या रख दी है, जो आज लोगों को परेशान कर रही है। लेकिन यहांतक आ पहुंचने से पहले हमको पिछले कल की बातों से निबटना है; उद्योगवाद के नतीजों पर विचार करने से पहले हमको यह जांच करना है कि वह कब और कैसे आया। मैंने यह भूमिका इतनी लम्बी इसलिए की है कि तुमको इस क्रान्ति का महत्व महसूस करा सकूं। यह कोरी राजनैतिक क्रान्ति न थी, जिससे चोटी पर के बादशाह और शासक बदल गये हों। यह ऐसी क्रान्ति थी, जिसका असर सब वर्गों पर और असल में हर आदमी पर पड़ा। मशीन और उद्योगवाद की विजय का मतलब था मशीन पर क़ब्ज़ा रखनेवाले वर्गों की विजय। जैसाकि मैं बहुत पहले बता चुका हूं, राज वही वर्ग करता है, जो पैदावार के साधनों पर क़ब्ज़ा रखता है। पुराने ज़माने में उपज का सबसे बड़ा ज़रिया सिर्फ़ ज़मीन थी, इसलिए जो लोग ज़मीन के मालिक यानी ज़मींदार थे, उन्हींका बोलबाला था। सामन्तशाही के ज़माने में भी यही हाल रहा। इसके बाद ज़मीन के अलावा दूसरी तरह की दौलत सामने आई और ज़मींदार वर्ग के लोगों की सत्ता में पैदावार के नये साधनों के मालिकों का साझा हो गया और अब बड़ी मशीन आती है, जिससे उसपर क़ब्ज़ा

रखनेवाले वर्ग क़ुदरती तौर पर आगे आ जाते हैं और मालिक बन बैठते हैं।

इंगलैण्ड की १६८८ ई० की क्रान्ति का नतीजा यह हुआ कि पार्लमेण्ट की विजय हो गई, लेकिन तुम्हें याद होगा कि खुद पार्लमेण्ट भी लोगों की एक छोटी-सी संख्या की, और खासकर ज़मींदारों की, प्रतिनिधि थी। शहरों के कुछ बड़े-बड़े व्यापारी उसमें भले ही घुस जाते हों, लेकिन असल में व्यापारी वर्ग, यानी मध्यमवर्ग के लिए उसमें कोई जगह न थी।

इसलिए राजनैतिक सत्ता उन लोगों के हाथों में थी, जो ज़मींदारियों के मालिक थे। इंगलैण्ड में ऐसा ही था और दूसरे देशों में तो और भी ज्यादा था। ज़मींदारी पिता से पुत्र को विरासत में मिलती थी। इसलिए राजनैतिक सत्ता खुद भी एक मौरूसी रियायत बन गई। मैं इंगलैण्ड के 'जेबी निर्वाचन क्षेत्रों' यानी पार्लमेण्ट में प्रति-निधि भेजनेवाले ऐसे चुनाव-क्षेत्रों के बारे में पहले ही लिख चुका हूं, जिनमें सिर्फ कुछ गिने-चुने निर्वाचक होते थे। ये गिने-चुने निर्वाचक आमतौर पर किसीकी मुट्ठी में होते थे और इसलिए वह निर्वाचन-क्षेत्र उसकी जेब में समझा जाता था। ऐसे चुनाव लाज़मी तौर पर एक तमाशा होते थे; ख़ूब रिश्वतें चलती थीं और वोट व पार्लमेण्ट की सीटें बिकती थीं। बढ़ते हुए मध्यमवर्ग के कुछ मालदार लोग इस तरह से पार्लमेण्ट की सीट ख़रीद सकते थे। लेकिन जनता के लोग दोनों में से एक तरफ भी निगाह नहीं डाल सकते थे। उनको तो कोई मौरूसी रियायत या सत्ता मिलनी न थी, और ज़ाहिर है कि वे सत्ता ख़रीद भी नहीं सकते थे। इसलिए जब धनवान और रियायती लोग उनकी छाती पर बैठकर उन्हें चूसते थे तो वे कर ही क्या सकते थे? पार्लमेण्ट में या पार्लमेण्ट के मेम्बरों के चुनाव में भी उनकी कोई आवाज़ न थी। सत्ताधारी लोग उनके बाहरी प्रदर्शनों तक से बहुत नाराज़ होते थे और उन्हें बलपूर्वक दबा दिया जाता था। वे बिखरे हुए, कमज़ोर और असहाय थे। लेकिन जब ज़ुल्मों और मुसीबतों का प्याला भर गया तो वे क़ानून और व्यवस्था को भूलकर दंगा कर बैठे। इस तरह इंगलैण्ड में अठारहवीं सदी में ग़ैर-क़ानूनी हर-कतों का बहुत ज़ोर रहा। जनता की माली हालत आम तौर पर बहुत ख़राब थी। छोटे-छोटे काश्तकारों की ज़मीनें छीनकर और उन्हें ज़बरदस्ती बेदख़ल करके बड़े-बड़े ज़मींदार अपनी जागीरें बढ़ाने की कोशिशें कर रहे थे, जिससे यह हालत और भी बुरी होती जा रही थी। गांवों की शामलाती ज़मीन भी हड़प ली जाती थी। ये सब बातें जनता की मुसीबतों को बढ़ानेवाली थीं। शासन में कोई आवाज़ न होने के कारण भी आम लोग नाराज़ थे और कुछ ज्यादा स्वतंत्रता के लिए दबी-दबी-सी मांग करते थे।

फ्रान्स में तो हालत और भी ख़राब थी, जिसने वहां राज्य-क्रान्ति करा दी। इंगलैण्ड में बादशाह का महत्व कुछ नहीं रहा था और सत्ता ज्यादा लोगों के हाथ में आ गई थी। इसके अलावा इंगलैण्ड में फ्रान्स की तरह के राजनैतिक विचारों का विकास नहीं हुआ था। इसलिए इंगलैण्ड एक बड़े भारी विस्फोट से बच गया और वहां परिवर्तन ज़रा धीरे-धीरे हुए। इसी अर्से में उद्योगवाद और नये आर्थिक ढांचे की वजह से जल्दी-जल्दी होनेवाले परिवर्तनों ने इस चाल को तेज़ कर दिया।

अठारहवीं सदी में इंगलैण्ड की राजनैतिक हालत का पिछवाड़ा यही था। ख़ासकर विदेशी कारीगरों के आ बसने से इंगलैण्ड घरेलू उद्योग-धंधों में बहुत आगे बढ़ गया। यूरोप के मज़हबी युद्धों ने बहुत-से प्रोटेस्टेण्टों को अपने देश और घर छोड़कर इंगलैण्ड में शरण लेने के लिए मजबूर किया। जिस समय स्पेनवाले निदरलैंड्स के विद्रोह को कुचलने की कोशिश कर रहे थे, उस समय बहुत-से कारीगर निदरलैंड्स से भागकर इंगलैण्ड आ गये। कहा जाता है कि इनमें से तीस हज़ार इंगलैण्ड के पूर्वी भाग में बस गये और रानी एलिज़ाबेथ ने उनको इस शर्त

पर वहां बसने की आज्ञा दी कि हरेक घर में एक अंग्रेज़ को काम सिखाने के लिए रक्खा जाय। इससे इंगलैण्ड को अपने कपड़ा-उद्योग को बनाने में मदद मिली। जब यह उद्योग जम गया तो अंग्रेज़ों ने निदरलैण्ड्स के बने हुए कपड़े का इंगलैण्ड में आना रोक दिया। उधर निदरलैण्ड्स अभी तक अपनी आज़ादी के भयानक युद्ध में फंसा हुआ था, जिससे उसके उद्योग-धंधों को नुकसान पहुंच रहा था। नतीजा यह हुआ कि जहां पहले निदरलैण्ड्स के कपड़ों से भरे हुए जहाज़-के-जहाज़ इंगलैण्ड जाया करते थे, वहां बहुत जल्दी न सिर्फ यह बन्द हो गया, बल्कि उल्टे अंग्रेज़ी कपड़े निदरलैण्ड्स की तरफ़ जाने लगे और इनकी मिक़दार बढ़ती ही गई।

इस तरह बेलजियम के वॉलून लोगों ने अंग्रेज़ों को कपड़ा बुनना सिखाया। बाद में फ्रान्स से प्रोटेस्टेण्ट शरणार्थी ह्यूजिनॉत आये और इन्होंने अंग्रेज़ों को रेशमी कपड़ा बुनना सिखाया। सत्रहवीं सदी के पिछले हिस्से में यूरोप के बहुत-से होशियार कारीगर इंगलैण्ड चले आये और अंग्रेज़ों ने इनसे बहुत-से धन्धे सीखे, जैसे—कागज़, कांच, चाभी के खिलौने, और जेबी व दीवार की घड़ियां बनाना।

इस तरह इंगलैण्ड, जो अभी तक यूरोप का एक पिछड़ा हुआ देश था, महत्व में और दौलत में बढ़ने लगा। लन्दन की भी बढ़ोतरी हुई और वह सौदागरों और व्यापारियों की मालामाल होती हुई आबादीवाला काफी महत्व का बन्दरगाह बन गया। एक दिलचस्प कहानी से हमको पता लगता है कि सत्रहवीं सदी के शुरू में ही लन्दन एक बड़ा भारी बन्दरगाह और व्यापार का केन्द्र था। इंगलैण्ड का बादशाह जेम्स प्रथम, जो चार्ल्स प्रथम का—जिसका कि सिर उड़ा दिया गया था—पिता था, बादशाहों की निरंकुशता व दैवी अधिकार को पूरी तरह माननेवाला था। वह पार्लमेण्ट को और लन्दन के इन कल के छोकरे व्यापारियों को पसंद नहीं करता था और उसने गुस्से में आकर लन्दन के नागरिकों को, अपनी राजधानी ऑक्सफोर्ड ले जाने की धमकी दी। लन्दन के लार्ड मेयर पर इस धमकी का कुछ भी असर न हुआ और उसने कहा—"मुझे उम्मीद है कि हिज़ मैजेस्टी हमारे लिए टेम्स नदी तो छोड़ जाने की इनायत करेंगे!"

इंगलैण्ड में जो ये सब उद्योग-धन्धे पैदा हुए, वे घरेलू उद्योग या कुटीर-उद्योग कहलाते हैं। यानी कारीगर या दस्तकार लोग आम तौर पर अपने घरों में या छोटे-छोटे गिरोहों में काम करते थे। हरेक धन्धे के दस्तकारों की 'गिल्ड' या समितियां होती थीं, जो भारत की बहुत-सी जातियों से मिलती-जुलती थीं, लेकिन जिनमें इन जातियों का-सा मज़हबी तत्व नहीं होता था। दस्तकारियों के उस्ताद शागिर्द रखते थे और उनको अपने हुनर सिखलाते थे। जुलाहों के निजी करघे होते थे, कातनेवाले निजी चरखे रखते थे। कताई का खूब प्रचार था और यह धन्धा लड़कियां और औरतें फालतू वक्त में करती थीं। कहीं-कहीं छोटे-छोटे कारखाने होते थे, जहां बहुत-से करघे इकट्ठे कर लिये जाते थे और जुलाहे मिलकर काम करते थे। लेकिन हरेक बुनकर अपने करघे पर अलग ही काम करता था, और चाहे वह इस करघे पर अपने घर ही काम करता या दूसरे बुनकरों और उनके करघों के साथ किसी दूसरी जगह काम करता, इन दोनों बातों में कोई असली फर्क़ न था। यह छोटा कारखाना बड़ी मशीनोंवाले आधुनिक कारख़ानों से बिल्कुल अलग तरह का था।

उस ज़माने में उद्योग-धन्धों का यह घरेलू दर्जा सिर्फ इंगलैण्ड में ही नहीं बल्कि दुनिया-भर के हरेक देश में, जहां उद्योग-धन्धे होते थे, फूल-फल रहा था। मसलन भारत में ये घरेलू उद्योग-धन्धे बहुत उन्नत थे। इंगलैण्ड में घरेलू उद्योग-धन्धे क़रीब-क़रीब बिल्कुल ख़त्म हो गये, लेकिन भारत में अब भी बहुत-से मौजूद हैं। भारत में बड़ी मशीन और घरेलू करघा दोनों साथ-साथ चल रहे हैं, और इन दोनों का मिलान और फर्क़ देखा जा सकता

है। तुम जानती हो कि हम जो कपड़ा पहनते हैं, वह खादी है। यह हाथ-कता और हाथ-बुना है और इसलिए पूरी तरह भारत के कुटीरों व कच्ची झोंपड़ियों में बना हुआ है।

नये मशीनी आविष्कारों ने इंगलैण्ड के घरेलू उद्योग-धन्धों की काया ही पलट दी। मशीनें आदमी का काम दिन-पर-दिन ज्यादा करने लगीं और उनके ज़रिये कम मेहनत से ज्यादा काम पैदा करना आसान हो गया।

मैंने थोड़े में अपने खादी-आन्दोलन का ज़िक्र किया है। इसके बारे में यहां मैं ज्यादा नहीं लिखना चाहता। लेकिन मैं तुमको बतला देना चाहता हूं कि यह आन्दोलन या चरखा बड़ी मशीन से मुक़ाबला करने के लिए नहीं है। बहुत-से लोग इस ग़लती में पड़ जाते हैं और यह ख़याल करने लगते हैं कि चरखे का अर्थ है मध्य-युगों को लौट जाना और मशीनों व उद्योगवाद के सब फलों को रद्दी समझकर फेंक देना। यह सब ग़लत है। हमारा आन्दोलन यक़ीनी तौर पर न तो उद्योगवाद के ही खिलाफ है और न मशीनों और कारख़ानों के। हम तो चाहते हैं कि भारत को सबसे अच्छी चीज़ें मिलें और जहांतक हो सके बहुत जल्दी मिलें। लेकिन भारत की मौजूदा हालत को, और ख़ासकर अपने किसानों की भयंकर ग़रीबी को देखते हुए, हम उनसे अनुरोध करते हैं कि वे अपने फालतू समय में सूत कातें। इस तरह वे न सिर्फ कुछ हद तक अपनी हैसियत सुधारते हैं, बल्कि विदेशी कपड़े पर हमारी उस निर्भरता को भी कम करते हैं, जिसकी वजह से हमारे देश की इतनी दौलत बाहर जाती रहती है। ●

इंदिरा प्रियदर्शिनी को लिखे ७ दिसंबर, १९३२ के अपने पत्र में नई राष्ट्रीयता के पोषक सामाजिक और धार्मिक सुधार-आन्दोलनों पर रोशनी डाली है ।

भारत की नई चेतना

भारत में अंग्रेज़ी राज की नींव जिस तरह जमी और जिस नीति ने भारत की जनता में ग़रीबी और मुसीवत पैदा कर दी, यह मैं तुम्हें वतला चुका हूं । देश में शान्ति ज़रूर आई और वाकायदा शासन भी आया और मुग़ल साम्राज्य के टूटने से पैदा हुई गड़वड़ी के वाद ये दोनों ही वातें अच्छी हुईं । चोर-डाकुओं के संगठित दलों को दवा दिया गया । लेकिन खेतों और कारख़ानों में काम करनेवाले किसानों और मज़दूरों के लिए इस शान्ति और व्यवस्था का कोई मूल्य न था, क्योंकि अब वे नई हुकूमत की भारी चक्की में पीसे जा रहे थे । लेकिन मैं तुम्हें एक वात याद दिलाऊंगा कि किसी देश पर या क़ौम पर—इंगलैण्ड पर या अंग्रेज़ों पर, नाराज़ होना ठीक नहीं है; क्योंकि वे भी हमारी ही तरह परिस्थितियों के शिकार थे । इतिहास के अध्ययन ने हमें वताया है कि जीवन अक्सर वड़ा निर्दयी और कठोर होता है । इसपर तैश में आना या लोगों पर खाली दोष लगाना वेवक़ूफी है, और उससे कुछ नहीं वनता । वुद्धिमानी इसीमें है कि ग़रीवी, मुसीवत और शोषण के कारणों को समझने की और उन्हें दूर करने की कोशिश की जाय । अगर हम ऐसा नहीं करते हैं और घटना-क्रम की दौड़ में पिछड़ जाते हैं, तो लाज़िमी तौर पर मुसीवतें भुगतनी पड़ती हैं । भारत इसी तरह पिछड़ गया । वह एक तरह से पथरा-सा गया, उसका समाज पुरानी लकीर का फ़कीर वन गया, और उसकी सामाजिक व्यवस्था वेताक़त और वेज़ुवान हो गई और वहाव रुक जाने से गंदी होने लगी । ऐसी हालत में भारत को मुसीवतें झेलनी पड़ीं तो उसमें अचम्भे की वात नहीं है । संयोग से अंग्रेज़ इन मुसीवतों के निमित्त वन गये । अगर वे यहां न होते, तो शायद कोई दूसरे लोग इसी तरह का वर्ताव करते ।

लेकिन अंग्रेज़ों ने भारत को एक वड़ा फ़ायदा ज़रूर पहुंचाया । उनकी नई और ज़ोरदार ज़िन्दगी की टक्कर ने ही भारत को हिला दिया और उसमें राजनैतिक एकता और राष्ट्रीयता पैदा कर दी । हालांकि यह धक्का दुखदाई था, लेकिन हमारे प्राचीन देश और क़ौम में नई ज़िन्दगी पैदा करने के लिए शायद इसकी ज़रूरत भी थी । वावू लोग तैयार करने के इरादे से दी जानेवाली अंग्रेज़ी शिक्षा ने भारतवासियों को पश्चिम में चालू विचारों के सम्पर्क में भी ला दिया । इससे अव अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों का एक नया वर्ग वनने लगा । ये लोग, हालांकि संख्या में कम और जनता से अलग थे, लेकिन फिर आगे चलकर नये राष्ट्रीय आंदोलनों की रहनुमाई करनेवाले थे । ये लोग शुरू में तो इंगलैण्ड के, और स्वतंत्रता के वारे में अंग्रेज़ी विचारों के वड़े क़द्रदान थे । उन दिनों इंगलैण्ड में लोग स्वतन्त्रता और लोकतंत्र के वारे में वड़ी चर्चाएं कर रहे थे । लेकिन ये सव वातें वे-सिर-पैर की थीं, और यहां भारत में इंगलैण्ड सिर्फ़ अपने फ़ायदे के लिए अत्याचारी राज कर रहा था । लेकिन फिर भी कुछ अच्छी उम्मीदें लेकर यह आशा की जाती थी कि ठीक वक्त आ जाने पर इंगलैण्ड भारत को आज़ादी प्रदान कर देगा ।

भारत पर पश्चिमी विचारों की टक्कर का कुछ असर हिन्दू-धर्म पर भी पड़ा । जनता पर तो कोई असर

नहीं हुआ बल्कि, जैसाकि मैं पहले तुम्हें बता चुका हूं, सरकार की नीति ने तो जानकर कट्टरपंथियों को ही मदद पहुंचाई। लेकिन सरकारी नौकरों और पेशेवर लोगों का जो नया मध्यमवर्ग बन रहा था, उनपर इसका असर हुआ। उन्नीसवीं सदी के शुरू में ही बंगाल में हिन्दू-धर्म को पश्चिमी ढंग पर सुधारने का कुछ जतन किया गया था। इसमें शक नहीं कि पुराने ज़माने में हिन्दू-धर्म में अनगिनती सुधारक हो चुके हैं, जिनमें से कुछका ज़िक्र तो मैं इन पत्रों में कर चुका हूं। लेकिन इस नये जतन पर तो साफ़-साफ़ ईसाइयत का और पश्चिमी विचारों का असर था। इस जतन के करनेवाले थे एक महान् व्यक्ति और बड़े विद्वान राजा राममोहन राय, जिनके नाम का ज़िक्र सती-प्रथा के सिलसिले में आ चुका है। उन्हें संस्कृत, अरबी और कई दूसरी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था, और उन्होंने जुदा-जुदा मज़हबों का गहरा अध्ययन किया था। वे मज़हबी रीतियों और पूजा वग़ैरा के विरोधी थे और समाज-सुधार व स्त्री-शिक्षा के हिमायती थे। उन्होंने जो समाज क़ायम किया, वह ब्रह्म समाज कहलाया। जहांतक संख्या का ताल्लुक है, यह एक छोटी-सी संस्था थी, और अब भी वह वैसी ही है, और उसका दायरा बंगाल के अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों तक ही रहा है। लेकिन बंगाल के जीवन पर इसका ज़बर्दस्त असर पड़ा है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का परिवार इसका अनुयायी बन गया और कविवर रवीन्द्रनाथ के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर बहुत वर्षों तक इस समाज के आधार-स्तम्भ रहे। इसके एक और प्रमुख सदस्य थे केशवचन्द्र सेन।

इस सदी के पिछले हिस्से में एक और मज़हबी सुधार-आंदोलन चला। यह पंजाब में शुरू हुआ और स्वामी दयानन्द सरस्वती इसकी नींव डालनेवाले थे। उन्होंने आर्यसमाज नाम का एक दूसरा समाज क़ायम किया। इसने भी हिन्दू-धर्म में पीछे से पैदा हुई बहुत-सी रूढ़ियों का खण्डन किया और जात-पात के ख़िलाफ युद्ध छेड़ा। इस समाज की पुकार थी, "वेदों की शरण में आओ।" हालांकि यह एक सुधार-आन्दोलन था, जिसपर साफ़ तौर से इस्लामी व ईसाई विचारों का असर पड़ा था, लेकिन असर में यह एक सरज़ोर लड़ाकू आंदोलन था। और विचित्र बात यह हुई कि आर्यसमाज, जो शायद हिन्दुओं के बहुत-से सम्प्रदायों में इस्लाम के सबसे ज़्यादा नज़दीक पहुंचता था, इस्लाम का मुक़ाबला करनेवाला दुश्मन बन गया। इसने अपना बचाव करनेवाले व एक गतिहीन हिन्दू-धर्म को सरगर्मी से अपना प्रचार करनेवाला मज़हब बना देने की कोशिश थी। इसका इरादा हिन्दू-धर्म में जान डालने का था। राष्ट्रीयता का पुट दे देने से इस आंदोलन को कुछ बल मिल गया।

इस सदी में धर्म में निष्ठा रखनेवाले एक और नामी व्यक्ति हुए—रामकृष्ण परमहंस। ये उन दूसरों जैसे बिलकुल नहीं थे, जिनका इस पत्र में मैंने ज़िक्र किया है। उन्होंने सुधार के लिए किसी खंडन-मंडन करनेवाले समाज की स्थापना नहीं की। उन्होंने सेवा पर ज़ोर दिया, और 'रामकृष्ण सेवाश्रम' देश के कई भागों में निर्बलों व ग़रीबों की सेवा की यह परम्परा आज भी चला रहे हैं। रामकृष्ण के एक मशहूर शिष्य स्वामी विवेकानन्द हुए हैं, जिन्होंने व्याख्यान देने के बड़े मोहक और ज़ोरदार ढंग से राष्ट्रीयता के मंत्र का प्रचार किया। यह राष्ट्रीयता किसी तरह भी इस्लाम-विरोधी या दूसरों की विरोधी नहीं थी, न आर्यसमाज की तंग राष्ट्रीयता की तरह की थी। फिर भी विवेकानन्द की राष्ट्रीयता हिन्दू राष्ट्रीयता ही थी और इसका आधार हिन्दू-धर्म व हिन्दू-संस्कृति ही थी।

इस तरह यह एक दिलचस्प बात मालूम होती है कि उन्नीसवीं सदी में भारत में राष्ट्रीयता की शुरू की लहरों का रूप मज़हबी और हिन्दू था। इस हिन्दू राष्ट्रवाद में मुसलमान लाज़िमी तौर पर कोई हिस्सा नहीं ले सकते थे। वे अलग ही रहे। अंग्रेज़ी शिक्षा से अपनेको दूर रखने के कारण नये विचारों का उनपर कम असर हुआ और उनमें दिमाग़ी हलचल बहुत ही कम थी। कई दशाब्दियों बाद उन्होंने अपने तंग दायरे से बाहर निकलना शुरू किया

और तब हिन्दुओं की तरह उनकी राष्ट्रीयता ने इस्लामी जामा पहन लिया। वे इस्लामी परम्पराओं व संस्कृति की तरफ मुड़कर देखने लगे और उन्हें यह डर हो गया कि हिन्दुओं के वहुमत के कारण कहीं वे इन्हें खो न वैठें। लेकिन मुसलमानों का यह आंदोलन वहुत दिन वाद, सदी के अन्त में, जाहिर हुआ।

हिन्दू-धर्म और इस्लाम के इन सुधारक और प्रगतिशील आंदोलनों के वारे में एक और मज़ेदार वात यह है कि इन्होंने अपने पुराने मज़हबी विचारों और दस्तूरों को, जहांतक हो सका, पश्चिम से आनेवाले नये वैज्ञानिक व राजनैतिक विचारों के मुताविक ढालने की कोशिश की। न तो वे निडर होकर इन पुराने विचारों और दस्तूरों को चुनौती देने को और उन्हें कसौटी पर कसने को तैयार थे, न वे विज्ञान की दुनिया को और अपने चारों तरफ के और राजनैतिक व सामाजिक विचारों को दरगुज़र कर सकते थे। इसलिए उन्होंने यह सावित करने की कोशिश करके दोनों का मेल मिलाने का जतन किया, कि तमाम आधुनिक विचारों और प्रगति का मेल उनके मज़हबों की पुरानी पवित्र पुस्तकों में मिल सकता है। यह जतन लाज़िमी तौर पर विफल होना ही था। इसने लोगों को सही विचार करने से रोक दिया। साहस के साथ विचार करने और दुनिया को वदलनेवाली नई ताकतों व विचारों को समझने के बजाय वे प्राचीन दस्तूरों और परम्पराओं के वोझ से दव गये थे। आगे देखने और आगे वढ़ने के बजाय वे हर वक्त लुक-छिपकर पीछे की तरफ़ ताकते थे। अगर कोई अपनी गर्दन हमेशा मोड़े रहे और पीछे की तरफ़ देखता रहे, तो वह आसानी से आगे नहीं वढ़ सकता।

शहरों में धीरे-धीरे अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों का वर्ग वढ़ गया, और साथ-ही-साथ वकीलों, डाक्टरों, वग़ैरा पेशेवर लोगों का, और सौदागरों व व्यापारियों का एक नया मध्यम वर्ग पैदा हो गया। पहले भी एक मध्यम वर्ग था, लेकिन उसे अंग्रेज़ों की शुरू की नीति ने वहुत-कुछ कुचल दिया था। यह नया मध्यम वर्ग अंग्रेज़ी राज का सीधा नतीजा था; एक तरह से ये इस राज के टुकड़-खोर थे। जनता की लूट में से इन लोगों को भी थोड़ा-सा हिस्सा मिल जाता था; अंग्रेज़ शासक-वर्ग की रकाबियों भरी मेज़ से गिरी हुई जूठन के कुछ टुकड़े ये लोग उठा लेते थे। इस वर्ग में थे देश के अंग्रेज़ी प्रशासन में सहायता देनेवाले छोटे-छोटे अहलकार; अदालतों की क़ानूनी कार्रवाइयों में मदद देनेवाले और मुकद्दमेवाजी से मालदार वननेवाले वकील-बैरिस्टर; और इंगलैण्ड के व्यापार व उद्योग के आढ़तिये सौदागर, जो अपने मुनाफे या दलाली के लिए अंग्रेज़ी माल वेचते थे।

इस नये मध्यम वर्ग के इन लोगों में ज़्यादातर हिन्दू थे। इसकी एक वजह तो यह थी कि मुसलमानों की बनिस्वत इनकी माली हालत कुछ वेहतर थी, और दूसरी यह थी कि इन लोगों ने अंग्रेज़ी शिक्षा को अपना लिया, जो सरकारी नौकरियों में और पेशों में घूमने का परवाना थी। मुसलमान आमतौर पर ज़्यादा ग़रीब थे। अंग्रेज़ों के हाथों यहां के उद्योग-धन्धों की वर्वादी के कारण जिन वुनकरों की रोज़ी जाती रही थी, उनमें ज़्यादातर मुसलमान जुलाहे थे। बंगाल में, जहां की मुस्लिम आवादी भारत के दूसरे सब प्रान्तों से ज़्यादा है, ये लोग ग़रीब काश्तकार और छोटे-छोटे भूमिया थे। ज़मींदार आमतौर पर हिन्दू थे; इसी तरह गांव का वनिया भी हिन्दू होता था, जो लोगों को सूद पर रुपया उधार देता था, और गांव का दूकानदार होता था। इस तरह ज़मींदार और महाजन दोनों ही काश्तकार को सताने और निचोड़ने की हैसियत में थे और अपनी इस हैसियत का वे पूरा फायदा उठाते थे। इस तथ्य को अच्छी तरह से ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि हिन्दू-मुस्लिम तनाज़े की जड़ इसीमें है।

इसी तरह ऊंची जातियों के हिन्दू, ख़ासकर दक्षिण में, दलित कही जानेवाली जातियों का, जो ज़्यादातर खेतों पर काम करती थीं, शोषण करते थे। पिछले दिनों, और ख़ासकर वापू के उपवास के वाद से, दलित जातियों

की यह समस्या बहुत जोरों से हमारे सामने है। छुआछूत पर आज चारों तरफ़ से हमले हो रहे हैं और सैकड़ों मंदिर व दूसरे स्थान अछूतों के लिए खोल दिये गए हैं। लेकिन असली बुनियादी सवाल तो आर्थिक शोषण का है, और जबतक यह दूर नहीं होता, तबतक दलित जातियां दलित ही रहेंगी। अछूत लोग खेतिहर चाकर रहे हैं, जिन्हें ज़मीन का मालिक नहीं बनने दिया जाता था। उन्हें और भी कितने ही हक़ नहीं हैं।

हालांकि सारा भारत और उसकी जनता दिन-पर-दिन ग़रीब होते गये, फिर भी नये मध्यमवर्ग के मुट्ठी-भर लोग कुछ हद तक खुशहाल हो गये, क्योंकि देश के शोषण में इनको भी हिस्सा मिलता था। वकील-बैरिस्टरों व दूसरे पेशेवर लोगों व साहूकारों ने कुछ धन जमा कर लिया। इस धन को वे कारोबार में लगाना चाहते थे, ताकि उनको सूद की आमदनी होती रहे। बहुतों ने ग़रीबी के शिकार ज़मींदारों से ज़मीन ख़रीद ली और खुद उसके मालिक बन गये। दूसरे लोग अंग्रेज़ी उद्योगों की अद्‌भुत सफलता देखकर भारत में भी कारख़ानों में रुपया लगाने की सोचने लगे। इस तरह भारतीय पूंजी इन बड़ी मशीनों के कारख़ानों में लगी और एक नया भारतीय उद्योगी पूंजीपति वर्ग पैदा होने लगा। यह हुआ क़रीब पचास साल पहले, यानी १८८० ई० के बाद।

जितने ये मध्यमवर्गी लोग बढ़ते गए, उतनी ही उनकी हविस भी बढ़ती गई। उनकी इच्छा अब आगे-आगे बढ़ने की, ज़्यादा रुपया पैदा करने की, सरकारी नौकरियों में ज़्यादा जगहें पाने की, और कारख़ाने खोलने के लिए ज़्यादा सहूलियतें हासिल करने की होती गई। उन्होंने अंग्रेज़ों को अपने हर रास्ते में रुकावटें डालते हुए पाया। सब ऊंचे-ऊंचे ओहदों पर अंग्रेज़ों ने अपना ठेका जमा रक्खा था और तमाम उद्योग-धन्धे उन्हींके फ़ायदे के लिए चलाये जा रहे थे। इसलिए उन्होंने हलचल मचाई और नये राष्ट्रीय आन्दोलन की यहीं से शुरुआत हुई। १८५७ ई० के विद्रोह और उसके बेरहमी से दमन के बाद लोगों की कमर ऐसी टूट गई कि उनके लिए कोई भी हल्ला-गुल्ला या सरगर्म आन्दोलन करना कठिन हो गया। फिर से कुछ जान आने में उन्हें बहुत बरस लग गये।

लेकिन राष्ट्रीय भावनाएं जल्दी ही फैलने लगीं और बंगाल इसमें सबसे आगे क़दम उठा रहा था। बंगाल में नई-नई पुस्तकें निकलने लगीं, जिनका बंगला साहित्य पर और साथ ही बंगाल में राष्ट्रीयता के विकास पर ज़बर्दस्त असर पड़ा। हमारा मशहूर राष्ट्रीय गीत 'वन्देमातरम्' बंकिमचन्द्र चटर्जी की ऐसी ही एक बंगला पुस्तक 'आनन्द मठ' से लिया गया है। 'नील दर्पण' नामक एक बंगला कविता ने भी बड़ी हलचल पैदा कर दी थी। इसमें नील की खेती की बागान-प्रथा से, जिसका कुछ हाल मैं तुम्हें बता चुका हूं, बंगाल के किसानों की तबाही का बड़ा ही दर्दभरा वर्णन किया गया था।

इसी बीच भारतीय पूंजीपतियों की शक्ति भी बढ़ रही थी, और वे हाथ-पैर फैलाने के लिए ज्यादा जगह मांग रहे थे। आख़िरकार, १८८५ ई० में नये मध्यमवर्ग के इन तरह-तरह के तत्वों ने मिलकर अपने दावे की हिमायत के लिए एक संगठन बनाने का फैसला किया। इस तरह १८८५ ई० में हमारी राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव पड़ी। जैसा-कि तुम और भारत का बच्चा-बच्चा अच्छी तरह जानता है, यह संगठन पिछले बरसों में बहुत बड़ा और ताक़तवर बन गया है। इसने जनता के हितों को हाथ में लिया और कुछ हद तक यह उनकी हिमायती बन गई। इसने भारत में अंग्रेज़ी राज के आधार का ही ग़लत क़रार दिया और उसके ख़िलाफ़ जनता के बड़े-बड़े आन्दोलनों की रहनुमाई की। इसने स्वाधीनता का झंडा उठाया और यह आज़ादी के लिए मर्दानगी के साथ लड़ी। लेकिन यह सबकुछ बाद का इतिहास है। कांग्रेस जब पहले-पहल क़ायम हुई, तब एक बहुत ही नरम और फूंक-फूंककर कदम रखनेवाली संस्था थी, जो अंग्रेज़ों के लिए अपनी वफ़ादारी का इक़रार करती थी और छोटे-छोटे सुधारों के लिए बड़ी आजिज़ी-

से मांगें पेश करती थी। उस समय यह मध्यमवर्ग के कुछ आसूदा लोगों की प्रतिनिधि थी, ग़रीब मध्यमवर्ग तक के लोग इसमें शामिल नहीं थे। जनता का, यानी किसानों और मज़दूरों का तो इससे कोई ताल्लुक़ ही नहीं था। यह ख़ासकर अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे वर्गों की वकील थी, और इसकी सारी कार्रवाई हमारी सौतेली भाषा अंग्रेज़ी में होती थी। इसकी मांगें ज़मींदारों, भारतीय पूंजीपतियों और नौकरियों की तलाश में रहनेवाले पढ़े-लिखे बेकारों की मांगें होती थीं। जनता को पीस डालनेवाली ग़रीबी पर या जनता की ज़रूरतों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। इसने नौकरियों के 'भारतीयकरण' की, यानी सरकारी नौकरियों में अंग्रेज़ों के बजाय भारतवासियों को ज्यादा जगहें दी जाने की मांग की। इसने यह न देखा कि भारत की जो कुछ ख़राबी है, वह उस मशीन में है, जो जनता का शोषण करती है, और इसलिए इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि वह मशीन किसके हाथों में है—भारतवासियों के या विदेशियों के। कांग्रेस की दूसरी शिकायतें फौज और सिविल सर्विस के अंग्रेज़ी अफसरों के ज़बर्दस्त खर्चों के बारे में, और भारत से इंगलैण्ड को जानेवाले सोने-चांदी के *'नाली'* के बारे में, थी।

यह ख़याल न करना कि शुरू में कांग्रेस कितनी नरम थी, यह बताकर मैं उसकी आलोचना कर रहा हूं या या इसके महत्व को कम करने की कोशिश कर रहा हूं। मेरा यह मतलब नहीं है, क्योंकि मेरा विश्वास है कि उन दिनों की कांग्रेस ने और उसके नेताओं ने बहुत बड़ा काम किया था। भारतीय राजनीति के कठोर तथ्यों ने इसे धीरे-धीरे, और बहुत-कुछ बिना मर्जी के, दिन-पर-दिन ज्यादा ग़र्म नीति अपनाने के लिए मजबूर किया। लेकिन अपने शुरू के दिनों में वह जैसी थी उसके अलावा और कुछ हो भी नहीं सकती थी। उन दिनों इसके संस्थापकों को आगे क़दम बढ़ाने के लिए बड़ी हिम्मत की ज़रूरत थी। आज जब भीड़-की-भीड़ हमारे साथ है और इसके लिए हमारी तारीफ करती है, तब बहादुरी के साथ आज़ादी की बातें करना बड़ा आसान है। लेकिन किसी बड़े प्रयत्न में अगुवा बनना बड़ा कठिन है।

पहली कांग्रेस १८८५ ई० में बम्बई में हुई। बंगाल के उमेशचन्द्र बनर्जी इसके पहले अध्यक्ष थे। उन शुरू दिनों के दूसरे नामी व्यक्तियों के नाम हैं: सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, बदरुद्दीन तैयबजी और फीरोज़शाह मेहता। लेकिन इन सबके ऊपर नज़र आनेवाला नाम है दादाभाई नौरोज़ी का, जो 'भारत के वृद्ध पितामह' कहलाये और जिन्होंने सबसे पहले भारत के लक्ष्य के लिए 'स्वराज्य' शब्द का इस्तेमाल किया। एक नाम मैं बताऊंगा, क्योंकि कांग्रेस के पुराने सेनानियों में से आज एक वही ज़िन्दा हैं और उन्हें तुम अच्छी तरह जानती हो। वह हैं पण्डित मदनमोहन मालवीय। पचास बरस से भी ज्यादा समय से वह भारत के हित के लिए जूझ रहे हैं, और बुढ़ापे व चिन्ताओं से जर्जर हो जाने पर भी अपनी जवानी के सपने को सच्चा बनाने के काम में अभी तक जुटे हुए हैं।

इस तरह कांग्रेस साल-दर-साल आगे बढ़ती गई, और मज़बूती हासिल करती गई। इससे पहले के दिनों की हिन्दू राष्ट्रीयता की तरह इसका नज़रिया तंग नहीं था। फिर भी यह बहुत-कुछ हिन्दू ही थी। कुछ मुसलमान नेता इसमें शामिल हुए, और इसके अध्यक्ष तक बने, लेकिन कुल मिलाकर मुसलमान इससे दूर ही रहे। उस समय के एक बड़े मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद खां थे। उन्होंने देखा कि शिक्षा की कमी ने, ख़ासकर आधुनिक शिक्षा की कमी ने, मुसलमानों का बहुत नुक़सान किया है, और उन्हें पिछड़ा हुआ रक्खा है। इसलिए उन्होंने यह महसूस किया कि राजनीति में टांग अड़ाने से पहले मुसलमानों को इस शिक्षा के लिए रज़ामन्द करना चाहिए और अपनी सारी ताक़त इसीपर लगानी चाहिए। इसलिए उन्होंने मुसलमानों को कांग्रेस से अलग रहने की सलाह दी, सरकार के साथ सहयोग किया और अलीगढ़ में एक बढ़िया कालेज कायम किया, जो अब विश्वविद्यालय बन गया है।

मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या ने सर सैयद की राय मानकर अपनेको कांग्रेस से अलग रक्खा। लेकिन उनकी छोटी-सी संख्या हमेशा कांग्रेस के साथ रही। यह याद रहे कि जब मैं बड़ी संख्या या छोटी संख्या की चर्चा करता हूं तो उससे मेरा मतलब ऊंचे मध्यमवर्ग के अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे हिन्दुओं और मुसलमानों की बड़ी संख्या या छोटी संख्या से होता है। हिन्दू जनता और मुसलमान जनता, दोनों ही का कांग्रेस से कोई वास्ता न था, और उन दिनों इनमें से बहुतों ने तो इसका नाम तक न सुना था। नीचे के मध्यम वर्गों तक पर उस समय इसका कोई असर नहीं हुआ था।

कांग्रेस बढ़ी, लेकिन कांग्रेस से भी तेज़ रफ्तार से राष्ट्रीयता के विचार और आज़ादी की चाह बढ़ी। कांग्रेस की पहुंच का दायरा लाज़िमीतौर पर छोटा था, क्योंकि इस दायरे में सिर्फ अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग ही शामिल थे। कुछ हद तक इसने अलग-अलग प्रान्तों को एक दूसरे से ज्यादा नज़दीक लाने में और एक-सा नज़रिया बनाने में मदद दी। लेकिन जनता में इसकी पैठ गहरी न होने के कारण इसकी ताक़त कुछ नहीं थी। एक पिछले पत्र में मैंने तुमसे एक घटना का ज़िक्र किया है, जिसने एशिया-भर में भारी हलचल मचा दी थी। यह १९०४-५ ई० में छोटे-से जापान की भारी-भरकम रूस पर विजय थी। दूसरे एशियाई देशों के साथ-साथ भारत पर भी इसकी गहरी छाप पड़ी, यानी यहां के अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे मध्यम वर्गों पर असर पड़ा और उनका आत्म-विश्वास बढ़ गया। अगर यूरोप के एक सबसे ज्यादा शक्तिशाली देश के खिलाफ जापान सफल हो सकता है तो भारत क्यों नहीं हो सकता? बहुत अर्से से भारत के लोग अंग्रेजों के सामने छोटेपन की भावना के शिकार हो रहे हैं। अंग्रेज़ों की लम्बी हुकूमत ने, और १८५७ के विद्रोह के वहशियाना दमन ने, उनकी हिम्मत पस्त कर दी थी। हथियार न रखने का क़ानून बनाकर उन्हें हथियार रखने से रोक दिया गया था। भारत में होनेवाली हरेक बात उन्हें यह याद दिलाती थी कि वे एक पराधीन और एक हीन जाति हैं। उन्हें दी जानेवाली शिक्षा तक भी उनमें हीनता की यही भावना भरती थी। बिगड़े हुए और झूठे इतिहास के जरिये उन्हें पढ़ाया जाता था कि भारत ऐसी भूमि है जहां सदा से अराजकता फैली रही है, और हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे का गला काटते रहे हैं और अन्त में अंग्रेज़ों ने ही आकर इस देश को इस बदनसीब हालत से छुटकारा दिलाया, और इसे अमन व खुशहाली दी। तथ्यों की और इतिहास की कोई परवा न करके, यूरोप के लोग यह समझते और ढिंढोरा पीटते रहते थे कि सारा-का-सारा एशिया वास्तव में एक पिछड़ा हुआ महाद्वीप है, और इसलिए इसे यूरोपीय लोगों की ही हुकूमत में रहना चाहिए।

इसलिए जापान की विजय ने एशियावालों के लिए ताज़गी देनेवाली ज़बर्दस्त दवा का काम किया। भारत में हमारे बहुत-से लोगों में हीनता की जो भावना घर किये हुए थी, वह इससे कम हुई। राष्ट्रीयता के विचार, ख़ासकर बंगाल और महाराष्ट्र में, चारों तरफ फैलने लगे। इसी समय एक घटना घटी, जिसने बंगाल को जड़ से हिला दिया और देश-भर में हलचल मचा दी। सरकार ने बंगाल के बड़े प्रान्त को (जिसमें उस समय बिहार भी शामिल था) दो हिस्सों में बांट दिया, जिनमें एक हिस्सा पूर्वी बंगाल था। बंगाल के मध्यमवर्ग की बढ़ती हुई राष्ट्रीयता ने इसपर नाराज़ी ज़ाहिर की। उसे डर था कि अंग्रेज़ बंगाल के इस तरह टुकड़े करके उसे कमज़ोर करना चाहते हैं। पूर्वी बंगाल में मुसलमानों की संख्या ज्यादा थी, इसलिए इस बंटवारे से हिन्दू-मुस्लिम सवाल भी उठ खड़ा हुआ। बंगाल-भर में एक ज़बर्दस्त ब्रिटिश-विरोधी आन्दोलन चल पड़ा। ज्यादातर ज़मींदार और भारतीय पूंजीपति भी इसमें शामिल हो गये। सबसे पहले उसी समय 'स्वदेशी' का नारा उठाया गया और इसके साथ ही ब्रिटिश माल के बायकाट का भी, जिससे भारतीय उद्योग और पूंजी को अलबत्ता सहायता मिली। कुछ हद तक जनता में भी यह आन्दोलन फैल गया, और हिन्दू-धर्म से भी इसने कुछ प्रेरणा ली। इसके साथ-साथ बंगाल में क्रान्तिकारी हिंसा

से मांगें पेश करती थी। उस समय यह मध्यमवर्ग के कुछ आसूदा लोगों की प्रतिनिधि थी, ग़रीव मध्यमवर्ग तक के लोग इसमें शामिल नहीं थे। जनता का, यानी किसानों और मज़दूरों का तो इससे कोई ताल्लुक़ ही नहीं था। यह ख़ासकर अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे वर्गों की वकील थी, और इसकी सारी कार्रवाई हमारी सौतेली भाषा अंग्रेज़ी में होती थी। इसकी मांगें ज़मींदारों, भारतीय पूंजीपतियों और नौकरियों की तलाश में रहनेवाले पढ़े-लिखे वेकारों की मांगें होती थीं। जनता को पीस डालनेवाली ग़रीवी पर या जनता की ज़रूरतों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। इसने नौकरियों के 'भारतीयकरण' की, यानी सरकारी नौकरियों में अंग्रेज़ों के वजाय भारतवासियों को ज्यादा जगहें दी जाने की मांग की। इसने यह न देखा कि भारत की जो कुछ ख़रावी है, वह उस मशीन में है, जो जनता का शोषण करती है, और इसलिए इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि वह मशीन किसके हाथों में है—भारतवासियों के या विदेशियों के। कांग्रेस की दूसरी शिकायतें फौज और सिविल सर्विस के अंग्रेज़ी अफसरों के ज़वर्दस्त ख़र्चों के वारे में, और भारत से इंगलैण्ड को जानेवाले सोने-चांदी के 'नाली' के वारे में, थी।

यह ख़याल न करना कि शुरू में कांग्रेस कितनी नरम थी, यह वताकर मैं उसकी आलोचना कर रहा हूं या या इसके महत्व को कम करने की कोशिश कर रहा हूं। मेरा यह मतलव नहीं है, क्योंकि मेरा विश्वास है कि उन दिनों की कांग्रेस ने और उसके नेताओं ने वहुत वड़ा काम किया था। भारतीय राजनीति के कठोर तथ्यों ने इसे धीरे-धीरे, और वहुत-कुछ विना मर्ज़ी के, दिन-पर-दिन ज्यादा ग़र्म नीति अपनाने के लिए मजवूर किया। लेकिन अपने शुरू के दिनों में वह जैसी थी उसके अलावा और कुछ हो भी नहीं सकती थी। उन दिनों इसके संस्थापकों को आगे क़दम वढ़ाने के लिए वड़ी हिम्मत की ज़रूरत थी। आज जव भीड़-की-भीड़ हमारे साथ है और इसके लिए हमारी तारीफ करती है, तव वहादुरी के साथ आज़ादी की वातें करना वड़ा आसान है। लेकिन किसी वड़े प्रयत्न में अगुवा वनना वड़ा कठिन है।

पहली कांग्रेस १८८५ ई० में वम्वई में हुई। वंगाल के उमेशचन्द्र वनर्जी इसके पहले अध्यक्ष थे। उन शुरू दिनों के दूसरे नामी व्यक्तियों के नाम हैं: सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, वदरुद्दीन तैयवजी और फीरोज़शाह मेहता। लेकिन इन सवके ऊपर नज़र आनेवाला नाम है दादाभाई नौरोजी का, जो 'भारत के वृद्ध पितामह' कहलाये और जिन्होंने सवसे पहले भारत के लक्ष्य के लिए 'स्वराज्य' शव्द का इस्तेमाल किया। एक नाम मैं वताऊंगा, क्योंकि कांग्रेस के पुराने सेनानियों में से आज एक वही ज़िन्दा हैं और उन्हें तुम अच्छी तरह जानती हो। वह हैं पण्डित मदनमोहन मालवीय। पचास वरस से भी ज्यादा समय से वह भारत के हित के लिए जूझ रहे हैं, और बुढ़ापे व चिन्ताओं से जर्जर हो जाने पर भी अपनी जवानी के सपने को सच्चा वनाने के काम में अभी तक जुटे हुए हैं।

इस तरह कांग्रेस साल-दर-साल आगे वढ़ती गई, और मज़वूती हासिल करती गई। इससे पहले के दिनों की हिन्दू राष्ट्रीयता की तरह इसका नज़रिया तंग नहीं था। फिर भी यह बहुत-कुछ हिन्दू ही थी। कुछ मुसलमान नेता इसमें शामिल हुए, और इसके अध्यक्ष तक वने, लेकिन कुल मिलाकर मुसलमान इससे दूर ही रहे। उस समय के एक वड़े मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद खां थे। उन्होंने देखा कि शिक्षा की कमी ने, ख़ासकर आधुनिक शिक्षा की कमी ने, मुसलमानों का वहुत नुक़सान किया है, और उन्हें पिछड़ा हुआ रक्खा है। इसलिए उन्होंने यह महसूस किया कि राजनीति में टांग अड़ाने से पहले मुसलमानों को इस शिक्षा के लिए रज़ामन्द करना चाहिए और अपनी सारी ताक़त इसीपर लगानी चाहिए। इसलिए उन्होंने मुसलमानों को कांग्रेस से अलग रहने की सलाह दी, सरकार के साथ सहयोग किया और अलीगढ़ में एक वढ़िया कालेज कायम किया, जो अव विश्वविद्यालय वन गया है।

मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या ने सर सैयद की राय मानकर अपनेको कांग्रेस से अलग रक्खा। लेकिन उनकी छोटी-सी संख्या हमेशा कांग्रेस के साथ रही। यह याद रहे कि जब मैं बड़ी संख्या या छोटी संख्या की चर्चा करता हूं तो उससे मेरा मतलब ऊंचे मध्यमवर्ग के अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे हिन्दुओं और मुसलमानों की बड़ी संख्या या छोटी संख्या से होता है। हिन्दू जनता और मुसलमान जनता, दोनों ही का कांग्रेस से कोई वास्ता न था, और उन दिनों इनमें से बहुतों ने तो इसका नाम तक न सुना था। नीचे के मध्यम वर्गों तक पर उस समय इसका कोई असर नहीं हुआ था।

कांग्रेस बढ़ी, लेकिन कांग्रेस से भी तेज़ रफ्तार से राष्ट्रीयता के विचार और आज़ादी की चाह बढ़ी। कांग्रेस की पहुंच का दायरा लाज़िमीतौर पर छोटा था, क्योंकि इस दायरे में सिर्फ अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग ही शामिल थे। कुछ हद तक इसने अलग-अलग प्रान्तों को एक दूसरे से ज्यादा नज़दीक लाने में और एक-सा नज़रिया बनाने में मदद दी। लेकिन जनता में इसकी पैठ गहरी न होने के कारण इसकी ताक़त कुछ नहीं थी। एक पिछले पत्र में मैंने तुमसे एक घटना का ज़िक्र किया है, जिसने एशिया-भर में भारी हलचल मचा दी थी। यह १९०४-५ ई० में छोटे-से जापान की भारी-भरकम रूस पर विजय थी। दूसरे एशियाई देशों के साथ-साथ भारत पर भी इसकी गहरी छाप पड़ी, यानी यहां के अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे मध्यम वर्गों पर असर पड़ा और उनका आत्म-विश्वास बढ़ गया। अगर यूरोप के एक सबसे ज्यादा शक्तिशाली देश के ख़िलाफ जापान सफल हो सकता है तो भारत क्यों नहीं हो सकता? बहुत अर्से से भारत के लोग अंग्रेजों के सामने छोटेपन की भावना के शिकार हो रहे हैं। अंग्रेज़ों की लम्बी हुकूमत ने, और १८५७ के विद्रोह के वहशियाना दमन ने, उनकी हिम्मत पस्त कर दी थी। हथियार न रखने का क़ानून बनाकर उन्हें हथियार रखने से रोक दिया गया था। भारत में होनेवाली हरेक बात उन्हें यह याद दिलाती थी कि वे एक पराधीन और एक हीन जाति हैं। उन्हें दी जानेवाली शिक्षा तक भी उनमें हीनता की यही भावना भरती थी। बिगड़े हुए और झूठे इतिहास के ज़रिये उन्हें पढ़ाया जाता था कि भारत ऐसी भूमि है जहां सदा से अराजकता फैली रही है, और हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे का गला काटते रहे हैं और अन्त में अंग्रेज़ों ने ही आकर इस देश को इस बदनसीब हालत से छुटकारा दिलाया, और इसे अमन व खुशहाली दी। तथ्यों की और इतिहास की कोई परवा न करके, यूरोप के लोग यह समझते और ढिंढोरा पीटते रहते थे कि सारा-का-सारा एशिया वास्तव में एक पिछड़ा हुआ महाद्वीप है, और इसलिए इसे यूरोपीय लोगों की ही हुकूमत में रहना चाहिए।

इसलिए जापान की विजय ने एशियावालों के लिए ताज़गी देनेवाली ज़बर्दस्त दवा का काम किया। भारत में हमारे बहुत-से लोगों में हीनता की जो भावना घर किये हुए थी, वह इससे कम हुई। राष्ट्रीयता के विचार, ख़ासकर बंगाल और महाराष्ट्र में, चारों तरफ फैलने लगे। इसी समय एक घटना घटी, जिसने बंगाल को जड़ से हिला दिया और देश-भर में हलचल मचा दी। सरकार ने बंगाल के बड़े प्रान्त को (जिसमें उस समय बिहार भी शामिल था) दो हिस्सों में बांट दिया, जिनमें एक हिस्सा पूर्वी बंगाल था। बंगाल के मध्यमवर्ग की बढ़ती हुई राष्ट्रीयता ने इसपर नाराज़ी ज़ाहिर की। उसे डर था कि अंग्रेज़ बंगाल के इस तरह टुकड़े करके उसे कमज़ोर करना चाहते हैं। पूर्वी बंगाल में मुसलमानों की संख्या ज्यादा थी, इसलिए इस बंटवारे से हिन्दू-मुस्लिम सवाल भी उठ खड़ा हुआ। बंगाल-भर में एक ज़बर्दस्त ब्रिटिश-विरोधी आन्दोलन चल पड़ा। ज्यादातर ज़मींदार और भारतीय पूंजीपति भी इसमें शामिल हो गये। सबसे पहले उसी समय 'स्वदेशी' का नारा उठाया गया और इसके साथ ही ब्रिटिश माल के बायकाट का भी, जिससे भारतीय उद्योग और पूंजी को अलबत्ता सहायता मिली। कुछ हद तक जनता में भी यह आन्दोलन फैल गया, और हिन्दू-धर्म से भी इसने कुछ प्रेरणा ली। इसके साथ-साथ बंगाल में क्रान्तिकारी हिंसा

की विचार-धारा भी पैदा हुई और भारतीय राजनीति में पहली बार 'बम' सामने आया। बंगाल में आन्दोलन के एक नामी नेता अरविन्द घोष थे।

पश्चिमी भारत के महाराष्ट्र प्रदेश में भी इस समय भारी खलबली फैली हुई थी, और हिन्दू-धर्म के ही रंग में रंगी हुई जोशीली राष्ट्रीयता का उदय हो रहा था। वहां बालगंगाधर तिलक नामक एक महान् नेता हुए, जो भारत में लोकमान्य करके मशहूर हैं। तिलक एक बड़े विद्वान थे। वह पूर्व की पुरानी परिपाटियों के भी उतने ही जानकार थे, जितने पश्चिम की नई परिपाटियों के। वह बड़े भारी राजनीतिज्ञ थे; लेकिन सबसे बड़ी बात यह कि वे जनता के एक महान् नेता थे। कांग्रेस के नेताओं की पहुंच अभी सिर्फ अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों तक ही थी; जनता उन्हें नहीं जानती थी। लेकिन तिलक नये भारत के पहले राजनैतिक नेता हुए, जो जनता तक पहुंचे और जिन्होंने उससे बल हासिल किया। उनके व्यक्तित्व से मज़बूती और न-दबनेवाली दिलेरी का एक नया बल पैदा हुआ, जिसने बंगाल में राष्ट्रीयता और बलिदान की नई भावना से जुड़कर भारतीय राजनीति की शकल ही बदल दी।

१९०६, १९०७ और १९०८ ई० के इन हलचल-भरे दिनों में कांग्रेस क्या कर रही थी? राष्ट्रीय भावना की जागृति के इस समय में कांग्रेस के नेता राष्ट्र की रहनुमाई करने के बजाय, पीछे लटक रहे थे। उन्हें एक ठंडी किस्म की राजनीति की आदत हो गई थी, जिसमें जनता का दख़ल नहीं था। बंगाल का धधकता हुआ जोश उन्हें पसंद नहीं था और न उन्हें महाराष्ट्र की वह नई और न झुकनेवाली नीति ही भाती थी, जो तिलक के रूप में खड़ी थी। 'स्वदेशी'-आंदोलन को तो उन्होंने सराहा, लेकिन ब्रिटिश माल के बायकाट से वे हिचकते थे। कांग्रेस में अब दो दल हो गये—एक तिलक और कुछ बंगाली नेताओं के नीचे गरम दल, और दूसरा कांग्रेस के पुराने नेताओं का नरम दल। लेकिन नरम दल के सबसे बड़े नेता एक नवयुवक गोपालकृष्ण गोखले थे, जो बड़े क़ाबिल व्यक्ति थे और जिन्होंने अपना जीवन सेवा के लिए अर्पित कर दिया था। गोखले भी महाराष्ट्रीय थे। अपने-अपने दलों को लेकर तिलक और गोखले एक-दूसरे के सामने डटकर खड़े हो गये। इसका लाज़िमी नतीजा यह हुआ कि सन् १९०७ में कांग्रस के दो टुकड़े हो गयें और उसमें फूट पड़ गई। नरम दलवालों का कांग्रेस पर अधिकार बना रहा, गरम दलवाले निकाल बाहर किये गए। नरम दलवाले जीत तो गये, लेकिन देश में अपनी लोकप्रियता खोकर, क्योंकि तिलक का दल ही जनता में बहुत ज्यादा लोकप्रिय था। कांग्रेस कमज़ोर हो गई, और कुछ वर्षों तक उसका प्रभाव नाम को रह गया।

और इन बरसों में सरकार का क्या हाल था? बढ़ती हुई भारतीय राष्ट्रीयता ने उसमें प्रतिक्रिया पैदा की? सरकारों के पास, किसी ऐसी दलील या मांग का, जिसे वह पसंद नहीं करतीं, जवाब देने का सिर्फ एक ही तरीक़ा हुआ करता है—डंडे का इस्तेमाल। बस, सरकार दमन पर उतर आई। उसने लोगों को जेलों में भरना शुरू किया, प्रेस-क़ानूनों से अख़बारों पर लगाम लगा दी गई और हरेक ऐसे आदमी के पीछे, जिसे कि वह पसन्द नहीं करती थी, खुफिया पुलिस और जासूसों के दल-के-दल लगा दिये। उसी समय से सी०आई०डी० के आदमी भारत के बड़े-बड़े राजनैतिक नेताओं के हरदम के साथी बने हुए हैं। बंगाल के बहुत-से नेताओं को क़ैद की सज़ा दी गई। सबसे अधिक मार्के का मुक़दमा लोकमान्य तिलक का था, जिन्हें छः बरस की क़ैद की सज़ा दी गई थी, और जिन्होंने माण्डले-जेल में अपनी क़ैद के दिनों में एक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गीता-रहस्य' लिखा था। लाला लाजपतराय को भी देश-देकर निकाला बर्मा भेज दिया गया।

लेकिन दमन से बंगाल को कुचलने में सफलता नहीं मिली। इसलिए कम-से-कम कुछ लोगों को तसल्ली देने

के लिए झट-पट प्रशासन-सुधार का एक क़दम उठाया गया। उस समय की नीति, जो कि बाद में भी रही और आज भी है, राष्ट्रवादी दलों में फूट डालने की थी। यानी नरम दलवालों को बढ़ावा देना और मिलाना, और गरम दलवालों को कुचल देना। १९०८ ई० में मार्ले-मिन्टो-सुधारों के नाम से मशहूर नये सुधारों का ऐलान किया गया। इनसे नरम दलवालों को मिलाने में सफलता हुई और वे इन सुधारों को पाकर खुश हो गये। नेताओं के जेल में होने के कारण गरम दलवालों के हौसले टूट गये और राष्ट्रीय आन्दोलन कमज़ोर पड़ गया। लेकिन बंगाल में बंग-भंग के ख़िलाफ आन्दोलन जारी रहा और अन्त में सफल हुआ। १९११ ई० में ब्रिटिश सरकार ने बंग-भंग को फिर उलट दिया। इस विजय ने बंगालियों में नया साहस पैदा कर दिया। लेकिन १९०७ का आन्दोलन ठंडा पड़ चुका था, और भारत फिर राजनैतिक उदासीनता में जा पड़ा।

१९११ ई० में ही यह ऐलान किया गया कि दिल्ली भारत की नई राजधानी होगी। दिल्ली—बहुत-से साम्राज्यों की राजधानी और बहुत-से साम्राज्यों की क़ब्र !

१९१४ ई० में, जिस समय यूरोप में महायुद्ध शुरू हुआ और सौ वर्ष का ज़माना ख़तम हुआ, भारत की हालत इस तरह की थी। महायुद्ध का भारत पर भी ज़बर्दस्त असर पड़ा। ●

इंदिरा प्रियदर्शिनी को लिखे अपने ३ फरवरी, १९३३ के पत्र में विज्ञान के विकास और मानव-जीवन पर उसके प्रभाव का वर्णन किया है ।

विज्ञान की विजय

विज्ञान-वेत्ता तो आज के चमत्कारी लोग हैं। उनका असर भी है और आदर भी । उन्नीसवीं सदी से पहले यह बात नहीं थी। शुरू की सदियों में विज्ञानी की जान यूरोप में सदा जोखिम में रहती थी, और कभी-कभी उसका अन्त सूली पर होता था। तुम जानती हो ही कि रोम के ईसाई-संघ ने ब्रूनो को किस तरह ज़िन्दा जला दिया था। कुछ ही वरस वाद, सत्रहवीं सदी में गैलीलियो भी सूली के बहुत पास पहुंच गया था, क्योंकि उसने यह कहा था कि पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ घूमती है। वह कुफ़्र के अपराध में जला दिया जाने से इसलिए वच गया कि उसने माफी मांग ली और अपने पहले बयान वापस ले लिये। इस तरह यूरोप में ईसाई-संघ की विज्ञान के साथ सदा टक्कर होती रहती थी और वह नये विचारों को दवाता रहता था। क्या यूरोप में और क्या दूसरी जगह संगठित मज़हव के साथ तरह-तरह के कट्टर नियम लगे होते हैं, जिन्हें उसके अनुयायियों को विना संदेह और शंका के मानना चाहिए। विज्ञान का नज़रिया जुदा ही है। वह किसी बात को यूं ही नहीं मान लेता, और न तो उसके कोई कट्टर नियम होते हैं, न होने चाहिए। विज्ञान खुले दिमाग़ से सोचने की आदत को बढ़ावा देना चाहता है और वार-वार प्रयोग करके सचाई तक पहुंचना चाहता है। मज़हवी नज़रिये से यह नज़रिया विलकुल ही जुदा है और इसलिए अगर इन दोनों में अक्सर टक्कर हो जाती थी तो इसमें ताज्जुव की कोई बात नहीं है।

मेरा ख्याल है कि हर युग में अलग-अलग कौमें तरह-तरह के प्रयोग करती रही हैं। कहा जाता है कि प्राचीन भारत में रसायन और चीर-फाड़ में काफी प्रगति हुई थी और ऐसा बहुत-से प्रयोगों के वाद ही हो सका होगा। पुराने यूनानियों ने भी थोड़े-बहुत प्रयोग किये थे। चीनियों के वारे में तो हाल ही में मैंने वड़ा ही अनोखा वयान पढ़ा है। उसमें १,५०० पहले वर्ष के चीनी लेखकों के कथन देकर यह दिखाया गया है कि वे क्रम-विकास के सिद्धान्त से और शरीर में खून के दौरे की वात से परिचित थे। और चीनी जर्राह वेहोशी की दवाएं सुंघाते थे । मगर हमें उस समय का इतना हाल मालूम नहीं है कि हम कोई ठीक नतीजा निकाल सकें। अगर प्राचीन सभ्यताओं ने ये उपाय खोज निकाले थे तो फिर वे आगे चलकर इन्हें भूल क्यों गई ? और उन्होंने और आगे उन्नति क्यों नहीं की ? या यह वात थी कि वे इस किस्म की प्रगति को काफी महत्व नहीं देते थे ? बहुत-से दिलचस्प सवाल उठते हैं हमारे पास उनका जवाव देने को मसाला नहीं है।

अरवों को भी प्रयोग करने का बहुत शौक़ था और मध्य-युगों में यूरोप उनके पीछे चलता था। मगर उनके सारे प्रयोग सच्चे वैज्ञानिक ढंग पर नहीं होते थे। उन्हें हमेशा 'पारस पत्थर' की तलाश रहती थी, जिसमें मामली धातुओं का सोना वना देने का गुण माना जाता था। लोग पेचीदा रासायनिक प्रयोगों में अपन जीवना विता देते थे

कि किसी तरह धातुओं को सोना बना देने का गुर हाथ लगे। इसे क़ीमिया कहते थे। वे बड़ी लगन के साथ अमृत देनेवाले आबेहयात या अमृत की भी खोज में लगे रहते थे। क़िस्से-कहानियों के बाहर और कहीं इसका ज़िक्र नहीं पाया जाता कि किसीको यह अमृत या पारस पत्थर हासिल करने में सफलता मिली हो। धन-सत्ता व लम्बी उम्र पाने की आशा में दरअसल यह एक तरह के जादू के साथ खिलवाड़ करना था। विज्ञान की भावना का इससे कोई वास्ता नहीं था। विज्ञान को जादू-टोनों वग़ैरा से कोई सरोकार नहीं होता।

हां, यूरोप में असली वैज्ञानिक तरीक़ों का धीरे-धीरे विकास हुआ और विज्ञान के इतिहास में सबसे बड़े गिने जानेवाले व्यक्तियों में आइज़क न्यूटन नामक एक अंग्रेज़ भी है, जिसका समय १६४२ से १७२७ ई० तक है। न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण नियम (ला आव ग्रेविटी) की व्याख्या की, यानी यह बताया कि चीज़ें क्यों गिरती हैं! इसकी मदद से, और जो दूसरे नियम खोजे जा चुके थे उनकी मदद से, न्यूटन ने सूर्य और ग्रहों की चालों का भेद समझाया। छोटी-बड़ी सभी चीज़ों का उसके सिद्धान्तों से मेल बैठता हुआ दिखाई देने लगा और उसे वहुत सम्मान मिला।

ईसाई-संघ की कट्टरता पर विज्ञान की भावना विजयी हो रही थी। अब उसे दबा सकना या उसके साधकों को ज़िन्दा जला देना सम्भव नहीं था। कितने ही वैज्ञानिकों ने बड़े गौरव और परिश्रम से प्रयोग जारी रक्खे और तथ्यों को व ज्ञान को इकट्ठा किया। यह ख़ासतौर पर इंगलैण्ड और फ्रान्स में, और आगे चलकर जर्मनी और अमरीका में हुआ। इस तरह वैज्ञानिक जानकारी का कलेवर बढ़ता गया। तुम्हें याद होगा कि अठारहवीं सदी में ही यूरोप के शिक्षित वर्गों में बुद्धिवाद का प्रचार हुआ था। इसी सदी में रूसो, वाल्तेर व दूसरे कितने ही क़ाबिल फ्रान्सीसी हुए थे, जिन्होंने हर विषय की रचनाओं के ज़रिये लोगों के दिमागों में उथल-पुथल मचा दी थी। इसी सदी के गर्भ में फ्रान्स की महान् राज्य-क्रांति की तैयारी हो रही थी। इस बुद्धिवादी नज़रिये का वैज्ञानिक नज़रिये से मेल बैठ गया और दोनों ने ही ईसाई-संघ के कट्टर नज़रिये का विरोध किया।

दूसरी बातों के साथ उन्नीसवीं सदी विज्ञान की सदी थी। उद्योगों की क्रान्ति, मशीनी क्रान्ति और माल ढोने के तरीक़ों में अद्भत परिवर्तन, इन सबका कारण विज्ञान था। बेशुमार कारख़ानों ने उत्पादन के तरीक़ों को बदल दिया था; भाप से चलनेवाली रेलगाड़ियों और जहाज़ों ने दुनिया को एकदम छोटा बना दिया था; बिजली का तार तो फिर भी बड़ा चमत्कार था। इंगलैण्ड के दूरवाले साम्राज्य से उसके यहां दौलत की नदी बहने लगी। इससे पुराने विचारों को भारी धक्का लगना लाज़िमी था और मज़हब का प्रभाव कम होने लगा। धरती पर किसानी जीवन के मुकाबले में कारख़ानी जीवन ने लोगों को मजबूर किया कि वे मज़हबी पाबन्दियों की बनिस्बत आर्थिक संबंधों पर ज्यादा विचार करें।

उन्नीसवीं सदी के बीच में यानी १८५९ ई० में, इंगलैण्ड में एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसने कट्टरपन और वैज्ञानिक नज़रिये की टक्कर को आख़िरी दर्जे पर पहुंचा दिया। यह पुस्तक चार्ल्स डार्विन की 'ओरिजन आव स्पीशीज़' (जीव गणों का मूल) थी। डार्विन की गिनती बहुत बड़े विज्ञानियों में नहीं है; उसने जो कुछ लिखा, उसमें कोई बहुत नई बात नहीं थी। डार्विन से पहले दूसरे भूगर्भ-विज्ञानियों और प्रकृति-विज्ञानियों ने भी काम किया था और बहुत-सी सामग्री जमा की थी। फिर भी डार्विन का ग्रंथ एक नया युग लानेवाला था। इसका ज़बर्दस्त असर पड़ा और किसी दूसरी वैज्ञानिक रचना की बनिस्बत इससे समाजी नज़रिया बदलने में ज्यादा मदद मिली। इसने एक दिमाग़ी भूकम्प पैदा कर दिया और डार्विन को मशहूर कर दिया।

इंगलैण्ड में और यूरोप के दूसरे देशों में विज्ञान और मज़हब के बीच बड़ा वाद-विवाद और झगड़ा हुआ। इसके नतीजे के बारे में तो कोई संदेह ही नहीं हो सकता था। उद्योग और मशीनी ढुलाई की नई दुनिया का दारो-मदार विज्ञान पर था, इसलिए विज्ञान को छोड़ा नहीं जा सकता था।

जैसे-जैसे उन्नीसवीं सदी प्रगति करती गई, वैसे-वैसे परिवर्तनों की गति भी तेज़ होती गई। विज्ञान ने चमत्कार-पर-चमत्कार पैदा किये और खोजों व आविष्कारों की बिना छोरवाली नुमायश से लोगों की आंखें चौंधियां गईं। इनमें से तार, टेलिफोन, मोटर और फिर हवाई जहाज़ जैसे कितने ही आविष्कारों ने जनता के जीवन में महान् परिवर्तन कर दिया। विज्ञान ने दूर-से-दूर आकाश, अदृश्य परमाणु और उसके भी छोटे हिस्सों को नापने की हिम्मत की। उसने मनुष्य की थकानेवाली मशक़्क़त कम करदी और करोड़ों का जीवन सुभीते का हो गया। विज्ञान के कारण दुनिया की, और ख़ासकर औद्योगिक देशों की आबादी में ज़बर्दस्त बढ़ोतरी हो गई। साथ ही, विज्ञान ने विनाश के ख़ूब कामिल साधन भी तैयार कर डाले। मगर इसमें विज्ञान का क़सूर नहीं था। इसने तो प्रकृति पर मनुष्य का काबू बढ़ा दिया; मगर इस तमाम शक्ति को हासिल करके मनुष्य यह नहीं जान पाया कि अपने ऊपर क़ाबू कैसे किया जाता है। इसलिए उसने बदचलनी की और विज्ञान की भेंट को व्यर्थ गंवा दिया। लेकिन विज्ञान की यह विजय-यात्रा जारी रही और उसने डेढ़सौ साल के भीतर ही दुनिया की काया ऐसी पलट दी जैसी पिछले तमाम हज़ारों वर्षों में भी नहीं हो पाई थी। सचमुच विज्ञान ने हर दिशा में और जीवन के हर विभाग में दुनिया को पूरी तरह बदल डाला है।

विज्ञान की यह प्रगति अब भी चल रही है और वह पहले से भी ज्यादा तेज़ी से दौड़ता नज़र आ रहा है। उसके लिए कोई आराम नहीं है। एक रेल-मार्ग बनता है। मगर जबतक उसके चालू होने का वक्त आता है तबतक ज़माना उससे आगे निकल जाता है! एक मशीन ख़रीदकर खड़ी की जाती है कि एक-दो साल में ही उसी तरह की उससे बढ़िया और ज्यादा कारगर मशीनें बनने लगती हैं। बस, यह बेतहाशा दौड़ चलती रहती है। अब हमारे ज़माने में भाप की जगह बिजली लेती जा रही है और इस तरह बहुत-कुछ उतनी ही बड़ी क्रान्ति कर रही है जितनी डेढ़सौ वर्ष पहले की औद्योगिक क्रान्ति थी।

विज्ञान की अनगिनती सड़कों व गली-कूचों में अनगिनती वैज्ञानिक और विशेषज्ञ बराबर काम में लगे हुए हैं। इनकी कतार में सबसे बड़ा नाम आज एल्बर्ट आइन्स्टीन का है, जो न्यूटन के मशहूर नियम को कुछ हद तक सुधारने में सफल हुआ है।

हाल ही में विज्ञान में इतनी ज़बर्दस्त प्रगति हुई है और वैज्ञानिक सिद्धान्तों में इतनी बड़ी-बड़ी नई बातें जुड़ गई हैं और इतने बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं कि खुद वैज्ञानिक भी हक्के-बक्के हो गये हैं। सारी पुरानी मन की खुशी और पक्की बात कहने की शान जाती रही है। अब वे यह नहीं कहते कि उनके निकाले हुए नतीजे बिलकुल ठीक हैं, और आगे के लिए भविष्यवाणियां करते हुए भी सकुचाते हैं।

मगर यह नई बात बीसवीं सदी की और हमारे अपने ज़माने की है। उन्नीसवीं सदी में पूरा आत्म-विश्वास था और विज्ञान अपनी बेशुमार कामयाबियां के घमंड में लोगों पर सवार हो गया था, और उन्होंने इसे देवता मानकर इसके आगे सिर झुका दिया था। ●

१० फरवरी, १९३३ को इंदिरा प्रियदर्शिनी को लिखे पत्र में लोकतंत्री विचारों के विकास की कहानी बताई है।

लोकतन्त्र की प्रगति

तुम्हें याद होगा कि मैंने तुम्हें अठारहवीं सदी के फ्रान्स में विचारधाराओं की टक्कर का हाल बताया था। उस समय के सबसे महान् विचारक और लेखक वॉल्तेर और दूसरे फ्रान्सीसी महापुरुषों ने मजहब और समाज के बारे में कितने ही पुराने ख्यालों को चुनौती दी थी और हिम्मत के साथ नये मतों को पेश किया था। ऐसा राजनैतिक सोच-विचार उस समय खासकर फ्रान्स में ही था। जर्मनी में भी दार्शनिक थे, मगर उनकी दिलचस्पी दर्शन के कठिन प्रश्नों में ही ज्यादा थी। इंगलैण्ड में व्यवसाय और व्यापार बढ़ रहे थे और ज्यादातर लोगों को हालतों से मजबूर हुए बिना सोच-विचार करने का शौक़ नहीं था। हां, अठारहवीं सदी के पिछले हिस्से में इंगलैण्ड में एक मार्के की पुस्तक ज़रूर निकली। यह एडम स्मिथ की 'वेल्थ ऑव नेशन्स' (राष्ट्रों की सम्पत्ति) थी। यह पुस्तक राजनीति पर नहीं थी, बल्कि राजनैतिक अर्थशास्त्र पर थी। उस समय के दूसरे सब विषयों की तरह यह विषय भी मजहब और नीति के साथ मिला हुआ था और इसलिए इसके बारे में बड़ा घपला था। एडम स्मिथ ने इस विषय पर वैज्ञानिक ढंग से लिखा और तमाम नैतिक उलझनों को छोड़कर अर्थनीति को चलानेवाले कुदरती नियमों का पता लगाने की कोशिश की। जैसाकि शायद तुम जानती हो, अर्थशास्त्र इस बात से सरोकार रखता है कि लोगों के या किसी समूचे देश के आमद-खर्च का प्रबन्ध कैसे किया जाता है, वे क्या पैदा करते हैं और क्या उपभोग करते हैं, और आपस में वे दूसरे देशों व लोगों के साथ उनके क्या संबंध हैं। एडम स्मिथ का मानना था कि ये सारी पेचीदा हरकतें कुछ अटल कुदरती नियमों के मुताबिक होती हैं और इन नियमों का उसने अपनी पुस्तक में जिक्र किया। वह यह भी मानता था कि उद्योग-धन्धों के विकास के लिए पूरी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए, जिससे इन नियमों में खलल न पड़े। दखल न देने की नीति की शुरुआत यहीं से हुई। इसका कुछ जिक्र मैं पहले ही कर चुका हूं। उस समय फ्रान्स में जो नये लोकतंत्री विचार अंकुवा रहे थे, उनसे एडम स्मिथ की पुस्तक का कोई वास्ता न था। लेकिन मनुष्यों व राष्ट्रों पर असर डालनेवाली एक सबसे ज्यादा महत्व की समस्या को वैज्ञानिक ढंग से पेश करने का उसका जतन जाहिर करता है कि लोग हर चीज को पुरानी धर्मशास्त्री निगाह से देखना छोड़कर एक नई दिशा में जा रहे थे। एडम स्मिथ अर्थशास्त्र के विज्ञान का जन्मदाता माना जाता है और उसने उन्नीसवीं सदी के कई अंग्रेज अर्थशास्त्रियों को प्रेरणा दी है।

अर्थशास्त्र का यह नया विज्ञान प्रोफेसरों और कुछ अच्छे पढ़े-लिखे लोगों के ही दायरे में रहा। लेकिन इसी बीच नये लोकतंत्री विचार फैल रहे थे और अमरीका व फ्रान्स की क्रान्तियों ने उन्हें खूब ही लोकप्रिय बनाया और उनका जबर्दस्त प्रचार किया। अमरीका की स्वाधीनता की घोषणा और फ्रान्स की अधिकारों की घोषणा के

लच्छेदार शब्दों और फिकरों ने लोगों के दिलों में गहरी हलचल मचा दी। इनसे करोड़ों पीड़ितों और शोषितों के दिल फड़क उठे और उनके लिए ये मुक्ति का संदेश लेकर आये। दोनों घोषणाओं में हर आदमी की स्वतंत्रता का और समानता का और सुखी रहने के हक का ज़िक्र था। इन प्रिय हक़ों की ज़ोरदार घोषणा से ही लोगों को ये हासिल नहीं हो गये। आज इन घोषणाओं के डेढ़सौ वर्ष बाद भी यह कहा जा सकता है कि इन हक़ों का फायदा उठानेवालों की संख्या नहीं के बराबर है। लेकिन इन सिद्धान्तों की घोषणा ही एक अनोखी और जान फूंकनेवाली चीज़ थी।

दूसरे देशों की तरह यूरोप में भी और दूसरे मज़हबों की तरह ईसाइयत में भी पुराना ख़याल यह था कि पाप और दुःख सभी मनुष्यों को लाज़िमी तौर पर भोगने पड़ते हैं। मज़हब ने मानो इस संसार में ग़रीबी व मुसीबत को एक स्थायी और यहांतक कि इज्जत की जगह दे दी थी। मज़हब के वादे व इनाम सारे-के-सारे किसी परलोक के लिए थे; यहां तो हमें यही उपदेश दिया जाता था कि भगवान पर भरोसा करके अपने भाग्य के भोगों को बर्दाश्त करते रहें और किसी बुनियादी परिवर्तन के पीछे न पड़ें। दान-पुण्य, यानी ग़रीबों को टुकड़े डालने को बढ़ावा दिया जाता था, मगर ग़रीबी या ग़रीबी पैदा करनेवाली प्रणाली को मिटाने का कोई विचार नहीं था। स्वतन्त्रता और बराबरी के तो विचार ही ईसाई-संघ और समाज के सत्तावादी नज़रिये के ख़िलाफ पड़ते थे।

लोकतंत्र का यह तो कभी कहना नहीं था कि सब मनुष्य असलियत में बराबर हैं। वह ऐसा कह भी नहीं सकता था, क्योंकि यह तो ज़ाहिर ही है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच असमानताएं होती हैं; तन की असमानताएं जिनके सबब से ही कुछ लोग दूसरों से बलवान होते हैं; दिमाग़ी असमानताएं जिनसे कुछ लोग दूसरों से ज्यादा क़ाबिल व बुद्धिमान दिखाई देते हैं; और नैतिक असमानताएं जो कुछको स्वार्थी बनाती हैं और कुछको नहीं। यह बिलकुल मुमकिन है कि इनमें से बहुत-सी असमानताएं अलग-अलग तरह के लालन-पालन व शिक्षा के सबब से या शिक्षा के अभाव से होती हों। दो एक-सी क़ाबलियतवाले लड़कों या लड़कियों में से एक को अच्छी शिक्षा दे दो और दूसरे को बिल्कुल न दो, तो कुछ बरसों बाद दोनों में ज़बर्दस्त फर्क हो जायगा। या एक को तन्दुरुस्ती बढ़ानेवाला भोजन दो, और दूसरे को ख़राब और नाकाफी भोजन दो तो पहले ठीक तरह से बढ़ेगा और दूसरा कमज़ोर, रोगी और दुबला-पतला रहेगा। इसलिए लालन-पालन, चौगिर्द ट्रेनिंग व शिक्षा मनुष्य में भारी भेद पैदा कर देते हैं और हो सकता है कि अगर सबको एक ही तरह की ट्रेनिंग और मौक़े मिलें तो असमानता आज के मुक़ाबले में बहुत हद तक कम हो जाय। असल में यह बहुत सम्भव है। लेकिन जहांतक लोकतंत्र का सम्बन्ध है, वह मानता है कि मनुष्य दरअसल असमान होते हैं, पर फिर भी वह कहता है कि हरेक मनुष्य के साथ ऐसा बर्ताव किया जाना चाहिए मानों उसका राजनैतिक व समाजी महत्व सबके बराबर है। अगर इस लोकतंत्री सिद्धान्त को पूरी तरह मान लें तो हम तरह के क्रान्तिकारी नतीजों पर पहुंच जाते हैं। यहां हमें इनकी चर्चा करने की ज़रूरत नहीं, लेकिन इस सिद्धान्त से लाज़िमी नतीजा यह निकला कि शासन करने वाली विधान-सभा या संसद के लिए प्रतिनिधि के चुनाव में हर व्यक्ति को वोट देने का हक़ होना चाहिए। वोट देने का हक़ राजनैतिक सत्ता की निशानी है, और यह मान लिया गया है कि अगर हर आदमी को वोट का हक हो तो उसे राजनैतिक सत्ता में बराबर का हिस्सा मिल जायगा। इसलिए सारी उन्नीसवीं सदी में लोकतंत्र की ख़ास मांग यह थी कि मताधिकार बढ़ाया जाय। बालिग मताधिकार का मतलब यह होता है कि हह बालिग व्यक्ति को वोट देने का अधिकार हो। बहुत समय तक स्त्रियों को वोट देने का अधिकार नहीं था, और बहुत दिन नहीं हुए जब स्त्रियों ने, ख़ास तौर पर इंगलैण्ड में, इस बारे में ज़बर्दस्त आन्दोलन किया

था। ज्यादातर उन्नत देशों में आजकल स्त्रियों और पुरुषों, दोनों को वालिग मताधिकार हासिल है।

मगर विचित्र वात यह हुई कि जब ज्यादातर लोगों को वोट का हक मिल गया, तब उन्हें मालूम पड़ा कि इससे उनकी हालत में कोई वड़ा फर्क नहीं पड़ा। वोट का हक मिल जाने पर भी राज्य में या तो उन्हें कुछ भी सत्ता नहीं मिली या वहुत ही थोड़ी मिली। भूखे आदमी को मताधिकार किस काम का ? असली सत्ता तो उन लोगों के हाथों में रही, जो उसकी भूख से फायदा उठा सकते थे और उसे मजवूर करके अपने फायदे का कोई भी मनचाहा काम उससे करा लेते थे। वस, वोट के हक से जिस राजनैतिक सत्ता के मिलने का ख़याल था, वह विना असलियत की परछाईं और विना आर्थिक सत्तावाली सावित हुई। शुरू के लोकतंत्रवादियों के वे रौनकदार सपने कि मताधिकार मिलते ही वरावरी आजायगी, झूठे सावित हुए।

मगर यह वात तो वहुत आगे चलकर पैदा हुई। शुरू के दिनों में यानी अठारहवीं सदी के अन्त और उन्नीसवीं सदी के शुरू में, लोकतंत्रवादियों में वड़ा जोश था। लोकतंत्र सवको आज़ाद और वरावरी का नागरिक वनानेवाला था, और सरकार व राज्य सवके सुख का उपाय करनेवाले ! अठारहवीं सदी के वादशाहों और सरकारों ने जैसी मन-मानी चलाई थी और अपनी निरंकुश सत्ता का जैसा वुरा इस्तेमाल किया था, उसके ख़िलाफ वड़ी प्रतिक्रिया हुई। इससे लोगों को अपनी घोषणाओं में व्यक्तियों के हकों का भी ऐलान करना पड़ा। शायद अमरीका और फ्रांस की घोषणाओं में व्यक्तियों के हकों के ये वयान ज़रूरत से कुछ आगे वढ़ गये थे। समाज की गठरी में से व्यक्तियों को अलग-अलग करके उन्हें पूरी आज़ादी दे सकना आसान नहीं है। ऐसे व्यक्ति और समाज के हित आपस में टकरा सकते हैं और टकराते भी हैं। ख़ैर, कुछ भी हो, लोकतंत्र व्यक्तियों को खूव आज़ादी देने का दम भरता है।

इंगलैण्ड पर, जो अठारहवीं सदी में राजनैतिक विचारों में पिछड़ा हुआ था, अमरीका और फ्रांस की राज्य-क्रान्तियों का गहरा असर पड़ा। उसपर पहली प्रतिक्रिया तो इस दहशत की हुई कि नये लोकतंत्री विचारों से देश में समाजी क्रान्ति न हो जाय। शासक-वर्ग पहले से भी ज्यादा कट्टर और प्रतिगामी हो गये। फिर भी दिमाग़ी लोगों में नये विचार फैलते गये। टामस पेन इस ज़माने का एक दिलचस्प अंग्रेज हुआ है। स्वाधीनता के युद्ध के समय वह अमरीका में था, और उसने अमरीकावासियों की मदद की थी। मालूम होता है कि अमरीकी लोगों का विचार पूरी स्वाधीनता के लिए वदल देने में इसका भी कुछ हाथ था। इंगलैण्ड लौटने पर उसने फ्रांस की राज्य-क्रान्ति की पैरवी में 'दि राइट्स आव मैन' (मनुष्य के अधिकार) नामक पुस्तक लिखी। यह क्रान्ति उस समय शुरू ही हुई थी। इस समय में उसने राजाशाही पर हमला किया और लोकतंत्र की हिमायत की। इसके लिए ब्रिटिश सरकार ने उसे वाग़ी क़रार दिया और उसे भागकर फ्रांस चला जाना पड़ा। पेरिस में वह वहुत जल्द नेशनल कन्वेन्शन का सदस्य वन गया, मगर १७९३ ई० में जैकोविनी लोगों ने उसे क़ैद कर दिया, क्योंकि उसने सोलहवें लुई की हत्या का विरोध किया था। पेरिस के जेलखाने में उसने 'दि एज आव रीज़न' (तर्क का युग) नाम की दूसरी पुस्तक लिखी। इसमें उसने मज़हवी नज़रिये की वुराई की। रोवेसपीर की मृत्यु के वाद उसे पेरिस जेल से छोड़ दिया गया। चूंकि स्पेन अंग्रेज़ी अदालतों के दायरे के वाहर था, इसलिए इस पुस्तक को छापने के जुर्म में उसके अंग्रेज़ प्रकाशक को क़ैद की सज़ा दे दी गई। ऐसी पुस्तक समाज के लिए खतरनाक समझी गई, क्योंकि ग़रीवों को जहां-का-तहां रखने के लिए मज़हव ज़रूरी माना जाता था। पेन की पुस्तक के कई प्रकाशक जेल भेज दिये गए। इनमें स्त्रियां भी थीं। यह दिलचस्प वात है कि कवि शैली ने इस सज़ा के विरोध में न्यायाधीश को एक पत्र लिखा था।

उन्नीसवीं सदी के सारे अगले हिस्से में जो लोकतंत्री विचार फैले, यूरोप में उनकी वुनियाद डालनेवाली फ्रांस

की राज्यक्रान्ति थी। हालतें जल्दी-जल्दी बदल रही थीं, फिर भी क्रांति के विचार सचमुच बने ही रहे। ये लोक-तंत्री विचार बादशाहों के व निरंकुशता के खिलाफ दिमाग़ी प्रतिक्रिया थे। इन विचारों की जड़ उद्योगवाद से पहले की हालतों में थी। लेकिन भाप और बड़ी-बड़ी मशीनों का नया उद्योग पुरानी व्यवस्था को पूरी तरह उलट रहा था। फिर भी यह अजीब बात है कि शुरू उन्नीसवीं सदी के वाम-दली और लोकतंत्रवादी इन परिवर्तनों को दर गुज़र करते रहे और क्रान्ति व मानव-अधिकारों की घोषणा की लच्छेदार भाषा में ही बातें करते रहे। शायद उनके विचारों में ये परिवर्तन निरे दुनियावी चीज़ों से ताल्लुक़ रखनेवाले थे और लोकतंत्र की ऊंची आध्यात्मिक, नैतिक और राजनैतिक मांगों पर उनका कोई असर नहीं पड़ता था। मगर बुनियादी चीज़ों का ऐसा ढंग होता है कि उनको छोड़ा नहीं जा सकता। यह बड़ी दिलचस्पी की बात है कि लोगों के लिए पुराने विचार छोड़ना और नये अपनाना बहुत ही कठिन होता है। वे अपनी आंखों और अपने दिमाग़ों को बन्द कर लेते हैं और देखने से ही इन्कार कर देते हैं और पुरानी बातों से उन्हें नुकसान पहुंचता हो तो उनसे चिपके रहने के लिए लड़ते हैं। नये विचारों को क़बूल करने और अपने-आपको नई हालतों में ढालने के सिवा वे सबकुछ करने को तैयार रहते हैं। कट्टरपन में बड़ी ज़बर्दस्त शक्ति होती है। अपनेको बहुत उन्नतिशील समझनेवाले वामदली लोग भी अक्सर पुराने और थोथे विचारों से चिपके रहते हैं और बदलती हुई हालतों की तरफ से आंखें मूंद लेते हैं। कोई ताज्जुब नहीं कि प्रगति धीमी पड़ जाती है और अक्सर करके असली हालतें लोगों के विचारों से बहुत पीछे रह जाती हैं, जिसका नतीजा यह होता है कि क्रान्तिकारी हालतें पैदा हो जाती हैं।

इस तरह बीसियों वर्षों तक लोकतंत्रवाद का काम सिर्फ फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के विचारों और परम्पराओं को जारी रखना ही रहा। लोकतंत्रवाद ने अपने-आपको नई हालतों में नहीं ढाला। इसका नतीजा यह हुआ कि सदी का अन्त होते-होते वह कमज़ोर पड़ गया और बाद में बीसवीं सदी में तो बहुतों ने उसे बिलकुल ही छोड़ दिया। आज भारत में भी हमारे बहुतेरे प्रगतिशील राजनीतिज्ञ अभी तक फ्रांस की राज्य-क्रान्ति की और मानव-अधिकारों की बातें करते हैं। वे इस बात को नहीं महसूस करते कि तबसे अबतक क्या-क्या हो चुका है।

शुरू के लोकतंत्रवादियों का बुद्धिवाद को अपनाना लाज़िमी था। विचार और भाषण की स्वतंत्रता की उनकी मांग का कट्टरपंथी मज़हब व धर्मशास्त्रवाद के साथ समझौता होना असम्भव था। इस तरह लोकतंत्रवाद और विज्ञान ने मिलकर धर्मशास्त्री रूढ़ियों का शिकंजा ढीला किया। लोग बाइबिल की भी जांच करने की हिम्मत करने लगे, मानो वह एक मामूली पुस्तक थी और ऐसी चीज़ नहीं थी जिसे बिना शंका के अंधी भक्ति के साथ मान लिया जाय। बाइबिल की इस आलोचना को 'ऊंचे दर्जे की आलोचना' कहा गया। इन आलोचकों ने यह नतीजा निकाला कि बाइबिल अलग-अलग युगों के अलग-अलग व्यक्तियों के लेखों का संग्रह है। उनका यह भी मत था कि ईसा का कोई मज़हब चलाने का इरादा नहीं था। इस आलोचना से कितने ही पुराने विश्वास हिल गये।

जैसे-जैसे विज्ञान और लोकतंत्री विचारों के सबब से पुरानी मज़हबी नीवें कमज़ोर होती गईं वैसे-वैसे पुराने मज़हब की जगह बिठाने के लिए एक नया दर्शन रचने के जतन किये गए। ऐसा ही एक जतन आगस्त कौंत नामक फ्रांसीसी दार्शनिक ने किया था। इसका समय सन् १७९८ से १८५७ ई० तक है। कौंत ने महसूस किया कि पुराने धर्म-शास्त्रवाद और कट्टरपन्थी मज़हब का ज़माना जाता रहा। मगर उसे यह भी विश्वास हो गया कि समाज को किसी-न-किसी मज़हब की ज़रूरत है। इसलिए उसने 'मानव-धर्म' का प्रस्ताव किया और उसका नाम 'प्रत्यक्षवाद' या 'वास्तविकवाद' रक्खा। इसके आधार प्रेम, व्यवस्था और प्रगति रक्खे गये। इसमें कोई बात अलौकिक नहीं थी;

इसका आधार विज्ञान था। उन्नीसवीं सदी की दूसरी सब चालू विचारधाराओं की तरह इस विचारधारा के पीछे भी मनुष्य-जाति की प्रगति का विचार था। कौंत के मज़हब पर कुछ गिने-चुने दिमागी लोगों का ही विश्वास रहा, मगर यूरोप के विचारों पर इसका आम असर खूब पड़ा। मानव-समाज और संस्कृति से ताल्लुक रखनेवाले समाजशास्त्र का अध्ययन इसीका शुरू किया हुआ समझना चाहिए।

अंग्रेज़ दार्शनिक और अर्थशास्त्री जान स्टुअर्ट मिल (१८०६-१८७३ ई०) कौंत के ही समय में हुआ था, मगर वह कौंत की मृत्यु के बहुत बरस बाद तक जिन्दा रहा। मिल पर कौन के मतों और समाजवादी विचारों का असर पड़ा था। एडम स्मिथ के मतों को लेकर राजनैतिक अर्थशास्त्र का जो पंथ इंगलैण्ड में बन गया था, उसे मिल ने नई दिशा में ले जाने की कोशिश की और उसने आर्थिक विचारों में कुछ समाजवादी सिद्धान्तों को डाला। मगर वह सबसे बड़ा 'उपयोगितावादी' मशहूर हुआ है। उपयोगितावाद का मत नया था, जो इंगलैण्ड में चल तो कुछ समय पहले ही चुका था, मगर उसे ज्यादा महत्व दिया मिल ने। जैसाकि इसके नाम से पता चलता है, इसको राह दिखानेवाला दर्शन था 'उपयोगिता'। उपयोगितावादियों का बुनियादी सिद्धान्त था 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख'। भलाई-बुराई की सिर्फ यही कसौटी थी। जो काम जितना ज्यादा सुख बढ़ानेवाला होता वह उतना ही अच्छा कहा जाता और जो जितना दुःख बढ़ाता, वह उतना ही बुरा माना जाता। समाज और सरकार का संगठन ज्यादा-से-ज्यादा लोगों के सुख में ज्यादा-से-ज्यादा बढ़ोतरी के वास्ते ही माना गया। यह नज़रिया सबको बराबरी का अधिकार देनेवाले लोकतंत्रवादी सिद्धान्त से अलग तरह का था। ज्यादा-से-ज्यादा लोगों के ज्यादा-से-ज्यादा सुख के लिए थोड़े-से लोगों की क़ुर्बानी या तकलीफ ज़रूरी हो सकती है। मैं तुम्हें सिर्फ यह फर्क बता रहा हूं, उसकी चर्चा करने की यहां ज़रूरत नहीं। इस तरह लोकतंत्र का अर्थ बहुमत के हक़ माना जाने लगा।

जान स्टुअर्ट मिल व्यक्ति की स्वतंत्रता के लोकतंत्री विचार का जोरदार हामी था। उसने 'स्वतन्त्रता पर' नामक एक छोटी-सी पुस्तक लिखी, जो मशहूर हो गई। मैं इस पुस्तक का एक खुलासा यहां दूंगा, जिसमें भाषण की स्वतंत्रता और विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति का समर्थन किया गया है—

हालांकि इस लोकतंत्री विचारधारा का सीधा असर तो जनता पर वहुत मामूली पड़ा, लेकिन नामालूम असर खूब हुआ। मताधिकार की मांग जैसे कुछ मामलों में तो सीधा असर भी वहुत पड़ा।

जैसे-जैसे उन्नीसवीं सदी बीतती गई वैसे-वैसे मज़दूर-आन्दोलन और समाजवाद के अलावा दूसरे आन्दोलनों और विचारों का भी विकास हुआ। इनका असर चालू लोकतंत्री ख्यालों पर पड़ा और इन ख्यालों का असर आन्दोलनों पर पड़ा। कुछ लोग समाजवाद को लोकतंत्र की जगह लेनेवाला समझने लगे; कुछ उसे उसीका एक ज़रूरी अंग समझने लगे। हम देख चुके हैं कि लोकतंत्रवादियों के दिमाग़ में स्वतंत्रता, वरावरी और हरेक को सुख का वरावर हक़ के ख़याल भरे हुए थे। मगर उन्होंने वहुत जल्दी महसूस कर लिया कि सुख को बुनियादी हक़ मान लेने से ही वह हासिल नहीं हो जाता है। दूसरी वातों के अलावा मनुष्य के लिए कुछ ज़िन्दगी का आराम भी ज़रूरी है। जो भूखा मर रहा है, वह सुखी नहीं हो सकता। इससे यह विचार पैदा हुआ कि सुख इस वात पर निर्भर है कि धन का बंटवारा लोगों में ठीक तरह से हो। इससे हम समाजवाद में चले जाते हैं; पर उसका वयान अगले पत्र में किया जायगा।

उन्नीसवीं सदी के पिछले हिस्से में जहां-जहां पराधीन राष्ट्र या क़ौमें आज़ादी के लिए लड़ रहे थे, वहां-वहां लोकतंत्र और राष्ट्रीयता का मेल हो गया था। इटली का मैज़िनी इस तरह के लोकतंत्री देश-प्रेम का एक ख़ास नमूना था। आगे चलकर इसी सदी में राष्ट्रीयता का यह लोकतंत्री रूप धीरे-धीरे नष्ट हो गया और वह दिन-दिन ज्यादा सरगर्म और सत्तावादी वनता गया। राज्य एक ऐसा देवता वन गया, जिसकी पूजा करना सवके लिए लाज़िमी था।

नये उद्योगों के नेता अंग्रेज़ व्यापारी थे। उन्हें ऊंचे-ऊंचे लोकतंत्री सिद्धांतों में और जनता की स्वतंत्रता के अधिकार में कोई ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी। मगर उन्होंने देख लिया कि लोगों को ज्यादा स्वतंत्रता देना व्यापार के लिए अच्छी चीज़ है। इससे मज़दूरों के रहन-सहन की सतह ऊंची उठ जाती है, वे इस भ्रम में फंस जाते हैं कि उन्हें कुछ आज़ादी मिली हुई है, और अपना काम ज्यादा मुस्तैदी के करने लगते हैं। उद्योगों के कामगरों में ज्यादा मुस्तैदी लाने के लिए सब लोगों की शिक्षा भी ज़रूरी थी। इसकी ज़रूरत को समझकर व्यापारी और उद्योगपति परोपकार का ढोंग रचकर जनता को ये मेहरबानियां इनायत करने को राज़ी हो गये। उन्नीसवीं सदी के पिछले हिस्से में इंगलैण्ड और पश्चिमी यूरोप में किसी-न-किसी तरह की शिक्षा तेज़ी से फैलने लगी। ●

१२ अप्रैल, १९३६ को लखनऊ-कांग्रेस के ४९वें अधि-
वेशन में सभा-पति पद से दिया गया भाषण।

समाजवाद ही क्यों ?

कई बरसों के बाद आज मैं इस मंच पर आपके सामने मौजूद हूं। ये बरस हमने काफी जद्दोजहद और परेशानियों में गुजारे हैं। फिर से हमारा मिलना हुआ, यह बहुत अच्छी बात है। अपने पुराने साथियों और दोस्तों का यह जमघट देखकर मुझे बड़ी खुशी हो रही है। हम सब एक ऐसे मजबूत बंधन में एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं, जो टूट नहीं सकता। मैं कुछ थक-सा गया हूं, और एक थके हुए बच्चे की तरह तसल्ली हासिल करने के लिए हम सबकी मां—भारत माता की गोद में फिर-से आ गया हूं। मुझे बड़ी तसकीन हासिल हुई है। लाखों बाहें प्यार और हमदर्दी में मेरी तरफ फैली हैं और लाखों खामोश आवाजों के प्यार-भरे संदेश मेरे दिल में समा गये हैं। मैं इस सारे के लिए आप सबका—हिंदुस्तान के मर्द-औरतों—का कैसे शुक्रिया कर सकता हूं ? मैं उन एह्सासों को लफ्जों में क्यों कर जाहिर करूं कि जो इतने गहरे हैं कि जबान से जाहिर ही नहीं किये जा सकते।

अपने इतिहास के इस नाजुक मौक़े पर हमें चाहिए कि हम बिना किसी रियायत या तरफदारी के अपने अन्दर झांककर देखें कि हमने अबतक क्या किया है और दूसरों ने हमारे लिए क्या किया है, और यह पता लगाने की कोशिश करें कि आज हमारी क्या हालत है। हमें अपने-आपको धोखा नहीं देना है, न ही दूसरों की नाराजी से डरकर सही बात को दरगुजर करना है, चाहे इन दूसरों में हमारे वही साथी क्यों न हों कि जिनकी हम इज्जत करते हैं। यह रास्ता तो खुद को धोखा देने का है, और इसे वे लोग कभी नहीं अपना सकते, जो बड़ी-बड़ी तब्दीलियों की ख्वाहिश करते हैं।

शारीरिक बंधनों और लोहे और फौलाद की बनी जंज़ीरों को तोड़ने से ज्यादा मुश्किल होता है। हम इस युग की आत्मा के नुमाइंदे बन गये और अपने देश में और देश के बाहर लाखों लोगों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलने लगे। जनता के साथ और दुनिया की ताक़तों के साथ एक स्वर होने की खुशी हमपर छा गई और हम ऐसा महसूस करने लगे कि हम इतिहास की किस्मत को बनानेवाले हैं।

हम अपनी राष्ट्रीय लड़ाई में मशगूल थे और जो मोड़ उसने लिया, उसपर हमारे महान नेता की और हमारी राष्ट्रीय प्रतिभा की गहरी छाप थी। हम लोग इस बात से क़रीब-क़रीब अनजान ही थे कि बाहर के देशों में क्या हो रहा है। फिर भी हमारी लड़ाई, एक बहुत ज्यादा फैली हुई आज़ादी की लड़ाई का ही एक हिस्सा थी और जो ताक़त हमें चलाती थी, वह वही ताक़त थी, जो सारी दुनिया के लाखों लोगों को चला रही थी और उनसे काम करा रही थी। भूमध्य सागर से लेकर सुदूर पूर्व तक और पश्चिम के मुस्लिम देशों से लेकर पूर्व के बौद्ध देशों तक, सारा एशिया जाग उठा था, अफ्रीका में भी इस नई भावना का असर हुआ। यूरोप लड़ाई की वजह से छिन्न-भिन्न हो गया था। वह अपनी हालत को फिर से सही करने के लिए नया हल ढूंढ़ने की कोशिश में था। सोवियत रूस के देशों में इन्सान की आज़ादी और समाजी समानता का एक नया ही रूप बन चुका था, जो कि दुश्मनों के भारी दल का मुक़ाबला कर रहा था। आज़ादी की इस लड़ाई का रूप दुनिया के अलग-अलग देशों में जुदा-जुदा था। हम लोग इन बाहरी रूपों को देखकर धोखा खा गये और उस एक साझी भावना को, जोकि सभी जगह काम कर रही थी, न देख सके। फिर भी अगर इन सब अलग-अलग रूपों को समझना चाहते हैं और इनमें से अपनी कौमी लड़ाई के लिए कोई नसीहत हासिल करना चाहते हैं तो हमें इस सारी तस्वीर को देखने और समझने की कोशिश करनी चाहिए। अगर हम ऐसा करेंगे तो ज़रूर ही उन सबके बीच उस बुनियादी कड़ी को देख सकेंगे कि जो बदलती हालतों में भी मौजूद रहती है। अगर एक बार इस बुनियादी कड़ी को समझ लेते हैं तो फिर हमारे लिए तमाम दुनिया की हालतों को समझना आसान हो जाता है और हमारा क़ौमी मामला भी दुनिया में अपनी सही जगह हासिल कर लेता है। इस तरह यह बात समझ में आ जाती है कि हम हिंदुस्तान को या हिंदुस्तान के मसले को दुनिया के मसलों से अलग नहीं कर सकते। अगर हम ऐसा करते हैं तब हम उन बुनियादी ताक़तों को दरगुज़र कर देते हैं कि जो घटनाओं को रूप दे रही हैं और हम अपने-आपको उस भारी ताक़त से महरूम रखते हैं जो कि उससे हमें हासिल होती है। फिर अगर हम ऐसा करते हैं तो हम अपनी समस्या के मुद्दे को नहीं समझ पाते, और जब हम उसे समझेंगे ही नहीं तो हम उसे हल कैसे कर सकते हैं ? ऐसा करने से हम, जैसाकि अबतक दरअसल में करते आये हैं, अपने-आपको छोटी-मोटी समस्याओं में और फिरकापरस्ती जैसे मामूली झगड़ों में, फंसा लेंगे और जो बड़े उद्देश्य हैं, उन्हें भूल जायंगे, हम अपनी ताक़त को (जैसाकि हमारे नरम दल के दोस्त करते हैं) क़ानूनी नुक्तों और वैधानिक समस्याओं पर लम्बी-लम्बी बहसें करने में ही ज़ाया कर देंगे।

हम देखते हैं कि आज दुनिया दो बड़े दलों में बंट गई। एक तरफ साम्राज्यवादी और फासीवादी और दूसरी तरफ समाजवादी और राष्ट्रवादी। इन दोनों के बीच इन्हें एक-दूसरे से बिलकुल जुदा करनेवाली लकीर खींचना आसान नहीं है क्योंकि कई जगह ये आपस में एक-दूसरे से मिल भी जाते हैं। जहां साम्राज्यवाद और फासीवाद के बीच आपसी झगड़े चलते ही रहते हैं, वहां अधीन देशों की राष्ट्रीयता भी कभी-कभी फासीवाद की तरफ झुक ही जाती है। लेकिन खास भेद तो मौजूद रहता है, और अगर हम उसे ध्यान में रखें तो दुनिया के हालतों को और उनके बीच जो हमारी जगह है, उसको समझना आसान होगा।

फिर हमलोग जो एक आज़ाद हिंदुस्तान के लिए लड़ रहे हैं, किस जगह खड़े हैं? बेशक, हम लोग दुनिया की उन तरक्की-पसंद ताक़तों के साथ हैं, जो साम्राज्यवाद और फासीवाद के ख़िलाफ हैं। हमें ख़ास तौर पर एक ही साम्राज्यवाद का मुक़ाबला करना है जोकि सबसे पुराना है और आज की दुनिया में सबसे ज्यादा फैला हुआ है। मज़बूत तो यह है ही, फिर भी यह दुनिया के साम्राज्यवाद का एक ही पहलू है। और हिंदुस्तान की आज़ादी और अंग्रेज़ों से अपना ताल्लुक तोड़ देने की यही हमारी आख़िरी दलील है। हिंदुस्तान की राष्ट्रीयता, हिंदुस्तान की आज़ादी और अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के बीच कभी मेल नहीं हो सकता। और अगर हम इस साम्राज्यवादी गुट के साथ ही रहते हैं तो चाहे हमारा नाम या हमारा ओहदा कुछ भी हो जाय, और हमें कैसे ही सियासी हक़ूक़ मिल जायं, हम प्रतिक्रियावादी ताक़तों और दुनिया के सरमायेदारों के माली फायदे के साथ बंधे रहेंगे, उनसे घिरे रहेंगे और दवाये जाते रहेंगे। हमारी अनगिनित जनता का शोषण पहले की तरह ही जारी रहेगा। हमारे ज़रूरी समाजी मसले हल नहीं हो सकेंगे। समाजी तब्दीलियों की तो वात ही दूर है, सच्ची सियासी आज़ादी भी हासिल नहीं होगी।

दुनिया-भर में ज्यों-ज्यों आज़ादी की तहरीक ज़ोर पकड़ती जा रही है, त्यों-त्यों बहुत-से साम्राज्यवादी और पूंजीवादी मुल्कों की हालत लगातार गिरती जा रही है, और फासीवाद, नात्सीवाद या राष्ट्रीय सरकार के नाम से ये प्रतिक्रियावादी ताक़तें अपनेको फिर से मज़बूत करने की कोशिश कर रही हैं। इन बीते बरसों में यही तरीका हिंदुस्तान में भी देखने में आया है। ज्यों-ज्यों हमारी क़ौमी तहरीक मज़बूत होती गई, त्यों-त्यों हमारे साम्राज्यवादी शासकों ने हमारे बीच फूट डालने और देश के प्रतिक्रियावादी दलों को एक-साथ मिलाकर अपने झंडे के नीचे लाने की ज्यादा-से-ज्यादा कोशिश की। गोलमेज़ कांफ्रेंस भी ऐसी ही एक कोशिश थी। इनसे हमारे शासकों को कुछ फायदा तो जरूर हुआ, लेकिन हमें भी फायदा ही पहुंचा। वह यह कि हम अपने देश में साम्राज्यवाद के हिमायती और उसके मुख़ालफ लोगों को ठीक-ठीक पहचान गये। बदकिस्मती से हमने इस सबक से पूरा फायदा नहीं उठाया और अब भी हमारा यह ख़याल है कि शायद हम इन साम्राज्यवादी दलों में से कुछको हिन्दुस्तान की आज़ादी और साम्राज्यवाद की मुख़ालिफत के लिए अपनी ओर कर लेंगे। ऐसा करने की बेकार कोशिश में हमने अपने आदर्श को झुकाया, अपने मुद्दे को लजाया और अपनी कार्रवाइयों को भी कम किया।

एक बात के बारे में कुछ शब्द अवश्य कहूंगा, क्योंकि मेरी निगाह में जिन चीज़ों की क़ीमत है, उनमें यह सबसे ज्यादा ज़रूरी है। यह है हिंदुस्तान में नागरिक आज़ादियों का बड़े पैमाने पर छीन लिया जाना। जो सरकार क्रिमिनल ला अमेंडमेंट एक्ट और उसी जैसे दूसरे क़ानूनों के भरोसे पर चल रही हो, जिसने साहित्य और अख़बारों पर पाबंदी लगा दी हो, जिसने सैंकड़ों संस्थाओं को ग़ैर-क़ानूनी करार दे दिया हो, जो बिना जांच किये लोगों को जेलों में ठूंस देती हो, और ऐसी ही कई कार्रवाइयां करती हो, जैसीकि आजकल हिंदुस्तान में हो रही हैं, उसकी छाया तक क़ायम रहने का हक़ ख़त्म हो गया है। मैं अपने-आपको इन हालतों के मुताबिक़ कभी नहीं बना सकता और न ही उन्हें बर्दाश्त कर सकता हूं। फिर भी मैं देखता हूं कि मेरे कितने ही देशवासियों को इन सब बातों से कोई फर्क नहीं पड़ता। कई तो इनकी हिमायत भी करते हैं, और कइयों ने चुपचाप बैठे रहने की आदत बना ली है और जब भी इन सवालों पर बहस होती है तो वह लोग तटस्थ बने रहते हैं। और मैं हैरान होता हूं कि मेरे और मेरी तरह सोचनेवाले लोगों, और उन लोगों के बीच किस बात की समानता है। हम लोग, जो कांग्रेस में हैं, हिन्दुस्तान की आज़ादी की लड़ाई में सभी तरह के सहयोग का स्वागत करते हैं, हमारे दरवाज़े उन सभी लोगों के लिए हमेशा खुले हैं, जो इस आज़ादी की हिमायत करते हैं और जो साम्राज्यवाद के ख़िलाफ हैं। लेकिन हमारे

दरवाज़े उन लोगों के लिए बन्द हैं, जो साम्राज्यवाद के साथ हैं, जो दमन के हिमायती हैं और जो नागरिक आज़ादी को रोकने में ब्रिटिश सरकार का साथ देते हैं। हम इनके विरोधी दल के हैं।

हरेक बड़ी लड़ाई में उतार-चढ़ाव और वक्ती नाकामियां आती ही हैं। जब कभी ऐसी रुकावटें आती हैं, तो उसकी प्रतिक्रिया होती है और राष्ट्रीय कुव्वत की पूंजी ख़त्म हो जाती है और वह फिर-से दोबारा जुटानी पड़ती है। ऐसा बार-बार होता है; लेकिन फिर भी यह उस सारे की सही कैफियत नहीं है कि जो कुछ हुआ है। गुज़रे अर्से में हमारी सीधी कार्रवाई की लड़ाइयों की बिना जनता और ख़ासकर किसान थे; लेकिन इसके लिए मध्य-वर्ग ने ही उन्हें ताक़त दी और उनकी रहनुमाई की और उस वक्त के हालात के मुताबिक यह था भी ज़रूरी। मध्य-वर्ग कई दलों का एक मिला-जुला दल है। सबसे ऊपर इनमें वे मुट्ठी-भर लोग हैं, जिनका सीधा ताल्लुक ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ है और सबसे नीचे एक तो वे लोग हैं, जो अपना सब-कुछ खो चुके हैं और दूसरे वे लोग हैं, जो आर्थिक हालतों से लगातार कुचले जाते रहे हैं। इसी वर्ग के लोगों में से प्रगतिशील राजनीतिज्ञ और क्रांतिकारी पैदा होते हैं। इन दोनों के बीच वह दल है, जो अक्सर प्रगतिशील तत्वों की तरफ झुकता है पर साथ ही ऊपर की श्रेणी के साथ भी दोस्ती बनाये रहता है और उस ऊंचे दर्जे में मिल जाने की उम्मीद में जीता है। इसलिए मध्य-वर्ग का नेतृत्व अक्सर कुछ डांवाडोल-सा होता है, जोकि एक वक्त में दोनों तरफ निगाह रखता है। संकट के वक्त में, जबकि लक्ष्य और काम की एकता ज़रूरी होती है, यह दो-तरफा नेतृत्व असली मुद्दे को नुकसान पहुंचा सकता है और जब आगे बढ़ने की ज़रूरत हो तो वह पीछे भी हट सकता है। चूंकि इस वर्ग का जायदादों और बुनियादी सुख-चैन से बहुत लगाव होता है और उन्हें छोड़ने में उसे डर लगता है, इसलिए उसपर दबाव डालना और उसकी ताकत को खत्म कर देना सहज होता है। और यह आश्चर्य की बात है कि मध्य-वर्ग के बुद्धिजीवी लोगों में से ही क्रान्तिकारी नेतृत्व का उदय हुआ है और हम जानते हैं कि हमारे यहां के सबसे बहादुर नेता और सबसे मज़बूत साथी इसी मध्य-वर्ग में से हुए हैं। लेकिन हमारे आन्दोलन का ढंग ही कुछ ऐसा है कि यह चोटी के नेता पहले ही गिरफ्तार हो जाते हैं और दूसरे, जो उनकी जगह आते हैं, हार जाते हैं और उनपर अपने वर्ग के गतिहीन लोगों का ज्यादा असर होता है। यह बात हमारे हाल के आन्दोलन से साफ ज़ाहिर हो गई है, जबकि सरकार ने पैसे और जायदाद की ज़ब्ती की कठोर नीति अपनाई। इस नीति से उन्हें बहुत सख्त चोट पहुंची और इस दबाव से मजबूर होकर उन्हें आन्दोलन छोड़ देना पड़ा।

तब इस समस्या को हल कैसे किया जाय ? ज़रूरी है कि हमारी रहनुमाई मध्य-वर्ग ही करेगा, लेकिन उसे जनता की तरफ ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान देना चाहिए और उससे ताक़त और उत्साह हासिल करना चाहिए। कांग्रेस को, जैसाकि यह दावा करती है, 'जनता के लिए' ही नहीं बल्कि 'जनता की' होकर रहना चाहिए; तभी वह सही मानो में जनता के लिए हो सकती है। मुझे ऐसा महसूस होता है कि आज जो हमारी कमज़ोरी है, वह इसलिए है कि एक तो हमारे मध्य-वर्ग में गिरावट आ रही है और दूसरे जनता के साथ हमारा ताल्लुक खत्म होता जा रहा है। हमारे विचार और हमारी नीतियां ज्यादातर मध्य-वर्ग के नज़रियों से ही बनती हैं, बजाय इसके कि वह आबादी के बड़े हिस्से की ज़रूरतों को ध्यान में रखकर बनाई जायं। यहांतक कि जिन मसलों ने हमें परेशान कर रखा है, वह भी मध्य-वर्ग से ही ताल्लुक रखते हैं, जैसे कि फिरक़ापरस्ती का मसला; जिसका आम जनता के लिए कोई मतलब नहीं है।

मैं सोचता हूं कि इसकी वजह कुछ हद तक पिछले पन्द्रह बरसों में हुई एक ऐतिहासिक तरक्की है, जिसके

साथ हम लोग अपने-आपको ढालने में नाकाम रहे हैं। वह है एक तो उन माली मसलों की दिनोंदिन बढ़ती हुई ज़रूरत, जिनका जनता पर असर होता है, और दूसरा, जनता में बढ़ती हुई जागृति, कि जिसको कांग्रेस के ज़रिये निकलने को काफी रास्ता नहीं मिलता। सन् १९२० में और उसके कुछ अर्से बाद तक भी ऐसी हालत नहीं थी। तब कांग्रेस और जनता के बीच सीधा ताल्लुक था और उसकी ज़रूरतें और उसकी ख्वाहिशें बहुत कुछ स्पष्ट न होने पर भी कांग्रेस के ज़रिये ज़ाहिर की जा सकती थीं। और जब उन ज़रूरतों और ख्वाहिशों का रूप ज्यादा ज़ाहिर हो गया तो कांग्रेस में, जो दूसरे लोग हैं, उन्होंने उसे ज्यादा पसन्द नहीं किया और वह ताल्लुक खत्म हो गया। यूं तो यह हमारे लिए अफसोस की बात है, लेकिन यह वास्तव में तरक्की की निशानी है। इस बात पर अफसोस करने की बजाय हमें चाहिए कि हम एक नया सिलसिला और एक नई बिना पर नया ताल्लुक खोज निकालें कि जिससे कांग्रेस के अन्दर रहकर ही जनता में जागृति को बढ़ने का मौक़ा मिले। मध्य-वर्ग, जो जनता की नुमाइंदगी का दावा करता है, सन् १९२० में कुछ हद तक सही था, आज वह पहले से बहुत कम सही है, हालांकि उससे नीचे का मध्य-वर्ग आज भी आम जनता के बहुत नज़दीक है।

हमारी कांग्रेस के विधान क़ी संकीर्णता भी जनता से हमारा ताल्लुक छूट जाने की एक वजह है। पन्द्रह बरस पहले इसमें जो बुनियादी तब्दीली की गई थी, वह उस वक्त के हालात के मुताबिक सही थी। इसके ज़रिये बहुत ज्यादा तादाद में लोग कांग्रेस की तरफ खिंचे और यह क़ौमी कार्रवाइयों का एक पुरअसर औज़ार बन गया। हालांकि बुनियादी तौर पर इसकी बागडोर मध्य-वर्ग और शहरों के हाथ में थी, उसका असर गांवों में भी दूर-दूर तक फैल गया और इससे आम जनता में राजनैतिक और आर्थिक चेतना पैदा हुई। और इस तरह शहरों और गांवों में राष्ट्रीय मसले की चर्चा समान रूप से दूर-दूर तक फैल गई। हमारे इस लम्बे-चौड़े मुल्क में एक नई जिन्दगी की धड़कन महसूस की जा सकती थी और चूंकि हम उसके साथ तालमेल बैठाये हुए थे, हम उससे ताक़त हासिल करते थे। इसके बाद के अर्से में जब सरकार ने बहुत ज़ोरदार तरीक़े से हम लोगों का दमन करना शुरू किया तो गांवों के साथ हमारा बाहरी और सीधा ताल्लुक टूट गया। लेकिन इतना ही नहीं, इससे भी बुरी बात हुई। वह यह कि पहले वक्त की वह अस्पष्ट मांगें संतोषजनक नहीं रह गई थीं और उन नये आर्थिक मसलों पर हम अपनी साफ राय ज़ाहिर करने में हिचकिचाते थे, जिनका दबाव हमपर बढ़ता जा रहा था। इससे भी बुरी बात यह थी कि मध्य-वर्ग और जनता के बीच दिमाग़ी ताल्लुक भी खत्म हो गया। अब हमारा विधान बदलते हुए हालतों से मेल नहीं खाता था। उसका उन जड़ों से ताल्लुक टूट गया, जो धरती में फैली थीं, और हवा में काम करनेवाली छोटी-छोटी कमेटियों का यह मामला बन गया। इसके पीछे अब भी कांग्रेस के नाम की भारी शोहरत थी। इस शोहरत के बल पर यह काफी देर तक चलता रहा, पर उसमें वह लोकतंत्री पुट नहीं रह गई थी। वह निरंकुशता का शिकार हुआ और एक-दूसरे के मुख़ालिफ गुटों की लड़ाई का मैदान बन गया, जो सत्ता के लिए आपस में लड़ते थे। ऐसी लड़ाई के दौरान में वह बहुत ओछे हथियारों पर उतर आते थे। आदर्शवाद ग़ायब हो गया और उसकी जगह मौक़ापरस्ती और भ्रष्टाचार ने ले ली। कांग्रेस का वैधानिक ढांचा इन नई हालतों का मुकाबला करने के लायक़ नहीं था। यह इतना कमज़ोर था कि थोड़े-से बेईमान लोग इसे झकझोर सकते थे। सिर्फ एक उदार जनतंत्रीय आधार उसे बचा सकता था; लेकिन वह आधार उसके पास नहीं था।

पिछले साल इस विधान को दोहराने की कोशिश की गई थी, ताकि इनमें से कुछेक बुराइयों से छुटकारा मिल सके। इस कोशिश में कहांतक कामयाबी या नाकामयाबी हुई, मैं यह फैसला करने के क़ाबिल नहीं हूं

शायद इससे हमारी संस्था ज्यादा क़ाविल वन गई हो; लेकिन उस क़ावलियत के कुछ माने नहीं कि जिसके पीछे कोई ताक़त नहीं होती, और ताक़त हमें सिर्फ जनता से ही मिल सकती है। मौजूदा विधान संस्था के निरंकुश भाग पर अब भी ज़ोर देता है और वावजूद इस वात के कि उसने गांवों की नुमाइन्दगी पर ज़ोर दिया है, यह जनता के साथ सीधे ताल्लुक की कड़ी मुहय्या नहीं करता ।

हमारे लिए असली समस्या यह है कि हम किस तरह अपने मुल्क की उन सभी ताक़तों को मिला सकते हैं, जो साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ हैं और हम अपनी आम जनता को वड़ी तादादवाले इस मध्य-वर्ग के साथ किस तरह मिला सकते हैं, जो आज़ादी के लिए लड़ता है और इन दोनों को मिलाकर किस तरह एक मज़बूत मोर्चा तैयार कर सकते हैं। एक मिले-जुले मोर्चे के बारे में कुछ वात तो हुई हैं, लेकिन जहांतक मेरा ख़याल है, यह शायद आम जनता की क़ीमत पर उच्च-वर्ग के साथ मेल करने की वात थी। यह कांग्रेस का ख़याल कभी भी नहीं हो सकता और अगर कांग्रेस इस वात की हिमायत करती है तो वह उन हितों के साथ दग़ावाज़ी करती है, जिनकी वह नुमाइन्दा होने का दावा करती है, और इस तरह अपने अस्तित्व की विना तक को खो देती है। मिले-जुले जन-मोर्चे का मक़सद यह होना चाहिए कि साम्राज्यवाद का विरोध करने में समझौते की गुंजाइश न हो, और लाज़िमी तौर पर यह ताक़त किसानों और मज़दूरों के सक्रिय हिस्सा लेने से ही हासिल की जा सकती है ।

मुझे यक़ीन हो गया है कि दुनिया-भर की घटनाओं में एक गहरा ताल्लुक होता है, और पूंजीवादी साम्राज्य-वाद की सारी दुनिया में फैली हुई समस्या का एक हिस्सा हमारी राष्ट्रीय समस्या भी है। एक-एक घटना को एक-दूसरी-से अलग करके देखने में, और उनके बीच के ताल्लुक़ को न समझने से हमारे नज़रिये ग़लत और डांवाडोल हो जायंगे। आज की दुनिया के लंबे-चौड़े दृश्य को वदलते हुए देखें, कि जिसमें भारी ताक़तें एक-दूसरे को दवोच रही हैं और क्षितिज में भयानक लड़ाई का अंधेरा फैल रहा है। जो लोग दूसरों के अधीन हैं, वह आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं, और साम्राज्यवाद उन्हें कुचल रहा है। शोषित लोग अपने शोषकों का मुकावला कर रहे हैं और आज़ादी और समानता चाह रहे हैं। इटली का साम्राज्यवाद वहादुर इथोपियनों पर वम फेंक रहा है और उन्हें मार रहा है; जापानी साम्राज्यवाद का उत्तरी चीन और मंगोलिया में हमला जारी है, व्रिटिश साम्राज्यवाद नेक वनकर दूसरे देशों की असभ्यता पर ऐतराज कर रहा है, पर हिंदुस्तान और सीमा प्रान्त वह भी वही-कुछ कर रहा है; और इस सारे के पीछे गिरती हुई आर्थिक व्यवस्था है, जो इन संघर्षों को और भी उग्र वनाती हैं । क्या हम इन सभी अलग-अलग दृश्यों के बीच एक मूल संवंध नहीं देखते? हमें ऐतिहासिक सूझ-बूझ को वढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए, ताकि हम मौजूदा घटनाओं को उनके सही रूप में देख सकें और उनकी अहमियत को समझ सकें । तभी हम इतिहास की प्रगति की सही कीमत आंक सकेंगे और उसके साथ क़दम मिलाकर चल सकेंगे ।

मेरा यक़ीन है कि दुनिया की और हिंदुस्तान की समस्या का एक ही हल है, और वह है समाजवाद। जब मैं इस शव्द का इस्तेमाल करता हूं तो मैं कोई अस्पष्ट जनसेवी तरीक़े पर नहीं, वल्कि वैज्ञानिक और आर्थिक नज़रिये से करता हूं। समाजवाद एक आर्थिक सिद्धान्त की निस्वत कुछ ज़्यादा माने रखता है। यह ज़िन्दगी का दर्शनशास्त्र है और इसका यह रूप मुझे पसंद भी है। मैं समाजवाद के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं देखता कि जो ग़रीवी, वेकारी, वेइज्जती और ग़ुलामी से हिंदुस्तान के लोगों को नजात दिला सके। इसमें हमारे राजनैतिक और सामाजिक ढांचे में इन्किलावी तब्दीलियां, ज़मीन और उद्योग में निहित स्वार्थों और हिंदुस्तान की देसी रियासतों का निरंकुश और जागीरदारी के तरीक़ों का ख़ातमा भी शामिल है । इसके माने यह हैं कि किसी निश्चित

सीमा को छोड़कर निजी जायदादें ख़त्म कर दी जायंगी और मुनाफ़ाख़ोरी के मौजूदा तरीक़े की जगह सहकारिता-सेवा का बड़ा आदर्श ले लेगा। मतलब यह कि हमारे संस्कारों, आदतों और ख़्वाहिशों में भी परिवर्तन होंगे। सारांश यह कि एक नई सभ्यता का उदय होगा, जो बुनियादी तौर पर मौजूदा सरमायेदारी के तरीक़े से जुदा होगी। इस नई सभ्यता की कुछ-कुछ झलक हमें रूसी इलाकों में दिखाई देती है। वहां बहुत-कुछ ऐसा भी हुआ कि जिससे मुझे बहुत तकलीफ हुई और जो मुझे नापसंद है, लेकिन मैं उस बड़े और चित्ताकर्षक नये नज़ाम तथा नई सभ्यता के उदय को मौजूदा खौफनाक ज़माने में उम्मीद भरी निगाहों से देखता हूं। अगर भविष्य आशापूर्ण है, तो इसकी ज़्यादा वजह रूस है, और जो-कुछ उसने किया है, और मुझे यक़ीन है कि अगर दुनिया में किसी इन्किलाबी तब्दीली ने बाधा न डाली, तो यह नई सभ्यता दूसरे मुल्कों में भी फैल जायगी और उन झगड़ों और लड़ाइयों का ख़ात्मा कर देगी कि जिन्हें पूंजीवाद से ख़ुराक मिलती है।

मैं नहीं कह सकता कि यह नई व्यवस्था हिंदुस्तान में कब और कैसे आयगी। पर मैं अन्दाज़ा करता हूं कि हर मुल्क अपने तरीक़े और अपनी क़ौमी अक्ल के मुताबिक इसे अपनायगा। लेकिन उस नज़ाम की लाज़िमी बुनियाद तो रहेगी ही, और वह सारी दुनिया के उस नज़ाम में एक कड़ी का काम करेगी, जो कि मौजूदा अशांति में से ही उभरेगी।

इस तरह समाजवाद मेरे लिए न सिर्फ़ एक आर्थिक सिद्धान्त है कि जिसकी मैं हिमायत करता हूं बल्कि यह एक अहम सिद्धांत है, जिसे मैं अपने दिलो-दिमाग़ से मानता हूं। मैं हिंदुस्तान की आज़ादी के लिए इसलिए काम करता हूं कि मेरे अन्दर जो क़ौमपरस्ती है, वह दूसरे मुल्क की ग़ुलामी को बर्दाश्त नहीं कर सकती। आज़ादी के लिए मेरे काम करने की इससे भी बड़ी वजह यह है कि सामाजिक और आर्थिक तब्दीली लाने के लिए यह एक निहायत ज़रूरी क़दम है। मैं तो यह चाहूंगा कि कांग्रेस समाजवादी संस्था बन जाय और दुनिया की उन दूसरी ताक़तों के साथ मिलकर चले कि जो नई सभ्यता के लिए काम कर रही हैं। लेकिन मैं इस बात को समझता हूं कि इसके मौजूदा विधान के मुताबिक कांग्रेसियों की ज़्यादा तादाद इस हद तक बढ़ने को तैयार नहीं होगी। हमारी संस्था एक क़ौमी संगठन है और हम क़ौमी योजना के अनुसार सोचते और काम करते हैं। और अब यह साफ ज़ाहिर हो गया है कि यह क़ौमी योजना राजनैतिक आज़ादी के सीमित मुद्दे के लिए भी काफी नहीं है और इसीलिए हम आम जनता और उसकी आर्थिक ज़रूरतों की चर्चा करने लगे हैं। लेकिन इतने पर भी हममें से ज़्यादा लोग अपनी राष्ट्रीय पृष्ठभूमि की वजह से ऐसा क़दम उठाने में हिचकते हैं, जिससे कुछेक निजी स्वार्थों को नुकसान पहुंचने का ख़तरा हो सकता है। ऐसे स्वार्थों की ज्यादा तादाद पहले से ही हमारे ख़िलाफ रही है और हम राजनैतिक लड़ाई में भी उनसे सिवा विरोध के दूसरी कोई उम्मीद नहीं कर सकते।

हालांकि मेरी यह बड़ी ख़्वाहिश है कि इस मुल्क में समाजवाद की तरक्की हो, लेकिन मैं इस मामले को कांग्रेस पर थोपना नहीं चाहता और इस तरह अपनी आज़ादी की लड़ाई के रास्ते में मुश्किलें पैदा नहीं करना चाहता। मैं तो उन लोगों के साथ ख़ुशी-ख़ुशी और अपनी पूरी ताक़त से सहयोग करूंगा, जो आज़ादी के लिए काम करते हैं, चाहे वह इस समाजवादी हल से सहमत हों या न हों। लेकिन मैं बिलकुल साफ़गोई से अपनी स्थिति को बतलाते हुए वैसा करूंगा; और इसी उम्मीद से करूंगा कि वक्त आने पर कांग्रेस और मुल्क को इसी में बदल दूं, क्योंकि मैं सिर्फ़ इसी एक तरीक़े से मुल्क की आज़ादी को हासिल करना पसंद करता हूं। यक़ीनन, हम सब लोग, जो आज़ादी चाहते हैं, चाहे इस समाजवादी मुद्दे पर एकमत हों या न हों, इतना तो कर ही सकते हैं

कि अपने सभी दलों को एक-साथ मिला लें। गुज़िश्ता वक्त में कांग्रेस एक बड़े मोर्चे की सूरत में काम कर रही थी, जो मुख्तलिफ दलों की नुमाइंदगी करते हुए उस साझे करार की बिना पर एक-दूसरे के साथ मिले हुए थे। इसमें शक नहीं कि उन दलों में जो मत-भेद थे, वे ज़्यादा ज़ाहिर हो गये हैं, लेकिन कांग्रेस को चाहिए कि वह अब भी उसी तरीक़े पर अमल करे।

समाजवाद कांग्रेस के मौजूदा आदर्शवाद के साथ कहांतक मेल खाता है? मेरे ख्याल से वह क़तई मेल नहीं खाता। मैं बहुत तेज़ रफ्तार के साथ मुल्क के औद्योगीकरण में विश्वास करता हूं, और मेरे ख्याल में यही एक तरीक़ा है, जिससे हम लोगों के जीवन-स्तर को ज्यादा-से-ज्यादा ऊंचा कर सकते हैं, और ग़रीबी का मुक़ाबला कर सकते हैं। फिर भी, मैंने अबतक खादी के प्रोग्राम में पूरे मन से सहयोग किया है और मैं आगे भी ऐसा ही करने की उम्मीद करता हूं, क्योंकि मेरा यक़ीन है कि मौजूदा माली नज़ाम में खादी और ग्राम-उद्योगों को जगह देना निहायत ज़रूरी है। उनकी समाजी, सियासी और माली नज़रिये से एक ऐसी क़ीमत है, जिसे नाप कर बताना तो मुश्किल है, पर जिन्होंने उनके नतीजों पर ग़ौर किया है, वे इसे अच्छी तरह समझ गये हैं। लेकिन इस बदलते हुए दौर में मैं अपने अहम मसलों के हल के बजाय उन्हें आरज़ी तदबीर ही मानता हूं। वह बदलता हुआ दौर चाहे कितना ही लम्बा हो, लेकिन हिंदुस्तान-जैसे मुल्क में, मुमकिन है, औद्योगीकरण हो जाने के बाद भी ग्रामोद्योग अहम हिस्सा अदा करें, चाहे वे मुख्य न होकर गौण ही हों। लेकिन, हालांकि मैं ग्राम-उद्योगों के प्रोग्रामों में सहयोग देता हूं, फिर भी उनतक मेरी आदर्शवादी पहुंच कांग्रेस के उन बहुत-से दूसरे लोगों से बिलकुल जुदा है, जो समाजवाद और औद्योगीकरण के ख़िलाफ हैं।

अब मैं उस सवाल पर आता हूं, जो शायद आप लोगों के दिमाग़ों पर छाया हुआ है। यह सवाल है वह नया क़ानून, जो ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने पास किया है, और उस मामले में हमारी नीति। यह एक्ट कांग्रेस के पिछले इजलास के बाद से लागू हुआ। लेकिन उस वक्त भी हम लोगों ने इसका कुछ ज़ायका 'व्हाइट पेपर' के रूप में चख ही लिया था। मैं नहीं समझता कि उस विधान की उससे बेहतर भी कोई व्याख्या हो सकती है, जो इस ऊंचे ओहदे से मुझसे पहले के व्यक्ति ने अपनी सदारती तक़रीर में की थी। कांग्रेस ने इस प्रस्तावित विधान को रद्द कर दिया, और फैसला किया था कि वह इससे कोई मतलब नहीं रखेगी। नया क़ानून, जैसाकि सभी जानते हैं, उससे भी ज्यादा हल्का उपाय है और हमारे सबसे ज्यादा नरम दलियों और हमारे राजनीतिज्ञों ने भी उसकी निंदा की। अगर हमने 'व्हाइट पेपर' को ही रद्द कर दिया है, तो फिर साम्राज्यवाद की अधीनता को मज़बूत करनेवाले और हमारी आम जनता के शोषण में वृद्धि करनेवाले इस ग़ुलामी के नये पट्टे का हमें क्या करना है? और अगर हम कुछ देर के लिए उसके मज़मून की उपेक्षा भी कर दें तो क्या हम उस बेइज्जती और चोट को उपेक्षा कर सकते हैं, कि जो वह अपने साथ लाया है? इसके अलावा रोज़मर्रा का यह सिलसिला कि हिकारत से हमारी ख्वाहिशों को ठुकराना, हमारी नागरिक आज़ादी को छीनना और बड़े पैमाने पर दमन करना, क्या हम इस सारे को सहज ही भूल सकते हैं? अगर इस सारे के साथ और इस बेइज्जती के साथ वे हमें आसमान की बादशाहत भी देने को कहें तो हम उसे भी ठुकरा देंगे, क्योंकि यह हमारी कौमी इज्जत, और निजी इज्जत के ख़िलाफ है। इस क़ानून की तो बात ही क्या है?

एक ग़ुलाम के लिए ग़ुलामी का पट्टा किसी तरह क़ानून नहीं होता, और हो सकता है कि मजबूर होकर हम थोड़े अर्से के लिए इसके आगे घुटने टेक भी दें और इसकी, और ऐसे ही दूसरे क़ानूनों की बेइज्जती को बर्दाश्त भी

कर लें, लेकिन इस मजबूरी के साथ ही हमारा यह हक़ और हमारी यह ख़्वाहिश जुड़ी हुई है कि हम इसके ख़िलाफ़ बग़ावत करें और इसे ख़त्म कर दें।

हमारे वकीलों ने इस नये विधान की जांच की है और इसकी निंदा की है। लेकिन विधान तो क़ानूनी दस्तावेज़ों से कुछ ज्यादा ही होते हैं। फर्डीनैंड लैसले ने कहा है कि "असली विधान वह है, जिसमें सत्ता के असली संबंध शामिल हों" और इस एक्ट के पास हो जाने के बाद भी वह सत्ता जिस तरीक़े पर अमल कर रही है, वह हम देख ही रहे हैं। हमें इस विधान का मुक़ाबला करना है न कि उन सुन्दर जुमलों का, जो कभी-कभी हमें सुनाये जाते हैं, और हम इसका मुक़ाबला सिर्फ उस ताक़त और मज़बूती के साथ ही कर सकते हैं, जो मुल्क के लोगों से पैदा होती है।

इस एक्ट के लिए हमारा रवैया यही हो सकता है कि हम इसका सख्ती के साथ विरोध करें, और इसे ख़त्म करने की लगातार जी-तोड़ कोशिश करते रहें। ऐसा हम किस तरह कर सकते हैं ?

यूरोप से लौटने के बाद मुझे वर्किंग कमेटी के अपने साथियों से पूरी तरह और साफगोई के साथ चर्चा करने का मौक़ा मिला। हम सब इस बात पर रज़ामंद थे कि इस एक्ट को ठुकरा देना चाहिए, और इसका मुक़ाबला करना चाहिए, लेकिन हम सब इसका मुक़ाबला करने के तरीकों पर रज़ामंद नहीं हो सके। गुज़िश्ता वक्त में हम लोगों ने मिल-जुलकर काम किया है और मुझे पूरा यक़ीन है कि हम आइंदा भी ऐसा ही करेंगे। इस मामले पर वर्किंग कमेटी की आख़री राय क्या होगी, यह मैं अभी नहीं जानता। इसलिए मैं आप लोगों के सामने अपना ज़ाती-नज़रिया पेश कर रहा हूं, और ऐसा करते वक्त मुझे यह भी मालूम नहीं कि मेरा यह नज़रिया कहांतक कांग्रेस-जनों की नुमाइंदगी करता है। फिर भी, मैं, वर्किंग कमेटी के अपने बुज़ुर्ग साथियों के साथ नेकनीयती की बिना पर यह साफ कर देना चाहूंगा कि उनमें से ज्यादा तादाद मेरे उन नज़रियों से सहमत नहीं है, जिन्हें मैं यहां पेश करने जा रहा हूं। लेकिन चाहे हम एक-दूसरे से सहमत हों, या न हों, और चाहे हम इसी बात पर सहमत हों कि हमारे नज़रिये एक-दूसरे से मेल नहीं खाते, तो भी हममें यह एक ज़बर्दस्त ख्वाहिश है कि हम आपस में मिल-जुलकर काम करते रहें और अपने मत-भेदों पर ज़ोर देने के बजाय उन बहुत-से नुक्तों पर ज़ोर दें कि जिनपर हम सब सहमत हैं। यही हमारे लिए सही रास्ता है और एक लोकतंत्रीय संस्था के नाते हमारे लिए यही एक रास्ता खुला है।

मेरा ख्याल है कि मौजूदा हालतों में हमारे लिए सिवा इसके कोई दूसरा रास्ता नहीं है कि जब भी चुनाव हों। हम सूबाई कौंसिलों के लिए चुनाव लड़ें। हमें चाहिए कि हम बड़े पैमाने पर सियासी और माली प्रोग्रामों की बिना पर चुनाव जीतें और विधान-सभा की अपनी मांग को सबसे ऊपर रखें। मुझे यक़ीन है कि हमारे सियासी और फिरकापरस्ती के मसलों का हल एक ऐसी ही असेम्बली के ज़रिये हो सकता है, बशर्ते कि वह आम जनता और बालिग़ मताधिकार की बिना पर चुनी गई हो। ऐसी असेम्बली तबतक क़ायम नहीं हो सकती जबतक कम-से-कम अर्ध-क्रान्तिकारी हालात पैदा न कर दिये जायं और काग़ज़ी विधान को छोड़कर सत्ता के असली संबंध ऐसे बन जायं कि हिंदुस्तान के लोग अपनी ख्वाहिशों को महसूस करा सकें। ऐसा कब होगा, यह मैं नहीं कह सकता; लेकिन दुनिया आज ऐसी ज़बर्दस्त ताक़तों की जकड़ में है कि हिन्दुस्तान में, या किसी दूसरे मुल्क में मदहोशी की हालतों को क़बूल नहीं कर सकती। इस तरह, हो सकता है कि हमें अपनी उम्मीद से पहले ही इस मसले का सामना करना पड़े। लेकिन यह सही है कि नये एक्ट या नये क़ानूनों से कोई विधान-सभा नहीं बनेगी। हमें इस मांग पर

ज़ोर देना चाहिए और उसे अपने मुल्क और दुनिया के सामने रखना चाहिए, ताकि वक्त आने पर हम इसके लिए पहले से ही तैयार हों।

हम चुनाव लड़ना चाहते हैं, इसकी एक ख़ास वजह यह है कि हम कांग्रेस का संदेश लाखों वोटरों और वोट देने के हक़ से महरूम करोड़ों लोगों तक पहुंचायंगे। उन्हें अपना आगे का प्रोग्राम और नीति बतायंगे, और जनता को यह महसूस करायंगे कि हम न सिर्फ उनकी ओर से खड़े हुए हैं, बल्कि हम भी उन्हीं लोगों में से हैं, और उनकी समाजी और माली मुसीबतों को दूर करने के लिए उनके साथ सहयोग करना चाहते हैं। हमारा संदेश और हमारी अपील सिर्फ वोटरों तक ही महदूद नहीं होगी, क्योंकि हमें यह याद रखना है कि हमारे करोड़ों लोग वोट देने का हक़ नहीं रखते और वही लोग हमारे समाज में सबसे नीचे दर्जे पर हैं, और वही सबसे ज्यादा शोषण के शिकार हैं।

जब हम चुनाव जीत लेंगे तब हम क्या करेंगे ? हम सरकारी ओहदों को मंजूर करेंगे या नहीं ? शायद इस सवाल की अहमियत कुछ कम है, लेकिन फिर भी इस मसले के पीछे सिद्धांत और नज़रियों में मतभेद के गहरे और ज़रूरी सवाल हैं, और उनपर जो भी फैसला हो, उसके नतीजों का असर बहुत दूर तक जायगा। इस सारे की तह में हमारे सामने आज़ादी का सवाल आ जाता है और यह भी कि आया हम हिंदुस्तान में इन्किलाबी तब्दीलियां चाहते हैं या हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद की सरपरस्ती में रहते हुए छोटे-मोटे सुधारों के लिए ही काम कर रहे हैं ? हमारा ख्याल फिर से विचारों की उस कशमकश की तरफ चला जाता है, जो १९२० में कांग्रेस में तब्दीलियों के पहले हुई थी। हमने सोच-समझकर और पक्के इरादे से फैसला किया और सुधारों के पुराने घिसे-पिटे तरीक़ों को छोड़ दिया। क्या हम इतने बरसों तक बहादुरी के साथ कोशिश करने के बाद फिर उसी अंधेरी और दम घोंटनेवाली राह अख्तियार करेंगे, और जो कुछ हमने किया, झेला या हासिल किया, उस सारे की याद को मिटा देंगे ? यही वह ख़ास मसला है। और जब हमें अपना फैसला देना है तो हममें से किसीको भी इसे भूलना नहीं चाहिए। क्या हम, जोकि इस हिंदुस्तान में अहम और बुनियादी तब्दीली के लिए चिल्ला रहे हैं, एक ऐसी दुनिया में, जहां इन्किलाबी और तेज़ी के साथ तब्दीलियां होने जा रही है, अपने मुद्दे को, और अपनी ऐतिहासिक मंजिल को भुला-कर अकर्मण्यता की तरफ झुकेंगे ? और अगर हममें से कुछ लोग थक गये हैं और आराम और चैन की ख्वाहिश करते हैं तो क्या हम यह सोचते हैं कि हिंदुस्तान की आम जनता हमारी नुमाइंदगी क़बूल करेगी, जबकि बुनियादी ताक़तें और माली ज़रूरतें उन्हें अपने फौरी मुद्दे की तरफ धकेल रही हैं ? अगर हम खड़े पानी में चले जाते हैं तो दूसरे बीच धार में हमारी जगह ले लेंगे और धार की तेज़ी को बर्दाश्त करने की हिम्मत करके बहाव के साथ उतर जायंगे।

यह सवाल कैसे पैदा हुआ ? अगर हम इस एक्ट का विरोध करते हैं और इस सारी योजना को नामंज़ूर करते हैं तो क्या इसका यह मतलब नहीं कि हमारा इसकी कार्रवाई के साथ कोई ताल्लुक नहीं होगा और अपनी ताक़त-भर हम इसकी कार्रवाई को रोकेंगे ? इस एक्ट की शर्तों के मूजिब मिनिस्ट्री और ओहदे मंजूर करने के माने हैं कि हम इस नामंज़ूरी को ख़ुद ही रद्द कर देते हैं और इस तरह ख़ुद ही अपनी बात के ख़िलाफ जाते हैं। निजी इज्जत और क़ौमी शान कभी भी इस बात को गवारा नहीं कर सकती, क्योंकि इसके माने यही हैं कि हम साम्राज्यशाही के इस दमन-चक्र में अपने लोगों को कुचलने और शोषण करने में हिस्सेदार बन जायंगे। बेशक, हम जनता के हक़ों की हिमायत करेंगे और दमन का विरोध करेंगे, लेकिन इस एक्ट के मातहत मिनिस्टर होने पर हम राहत

पहुंचाने के लिए कुछ नहीं कर सकेंगे और हमें साम्राज्यशाही का जुज़ बनकर घाटे के बजटों और मज़दूरों तथा किसानों को दबाने के लिए हुकूमत की ज़िम्मेदारी में हिस्सा लेना होगा। लोकतंत्री मुल्कों तक में हुकूमत की ताक़त के बिना ज़िम्मेदारी संभालना ख़तरनाक होता है, फिर इस ग़ैर-लोकतंत्री विधान के साथ तो यह और भी बुरा होगा, कि जिसमें कई तरह के ख़ास हक़ूक, हिफाजतें और गिरवी-शुदा मदें हैं और जिसमें हमें अपने मुख़ालिफों के बनाये क़ायदे-कानूनों पर ही चलना पड़ेगा। साम्राज्यशाही कभी-कभी सहयोग की बात भी करती है, पर सहयोग से उसका मतलब यही है कि उसके आगे घुटने टेक दिये जायं। जो वज़ारती ओहदे मंजूर करेंगे, वे उन सब बातों में से ज्यादा को छोड़कर ही ऐसा करेंगे कि जिनकी हिमायत वे अबतक जनता की ओर से करते रहे हैं। यह एक ऐसी बेइज्जती की बात है, जिसे खुद आत्म-सम्मान मंजूर करने की इजाज़त नहीं देता। इसमें हिस्सेदार होना इस महान कौमी संस्था के लिए अपनी मौजूदगी की बुनियाद और पृष्ठ-भूमि को ही ख़त्म कर देना है।

निजी इज्जत के सवाल को छोड़ दीजिये, मामूली अक्ल से ही हम यह जान सकते हैं कि इस एक्ट की शर्तों के साथ ओहदे मंजूर कर लेने से हमें फायदा कम और नुकसान ज्यादा होगा। इससे हमें कुछ भी फायदा नहीं हो सकता, या इसके ख़िलाफ, इस एक्ट की नुक्ताचीनी करना हमारी भूल है, और हम जानते हैं कि यह बात ऐसी नहीं है। जिन बड़ी-बड़ी बातों की हम हिमायत करते हैं, वे पिछड़ जायंगी और छोटी-छोटी बातों में हमारा ध्यान उलझ जायगा और हम समझौतों और फिरकापरस्ती की पेचीदगियों में अपनेको खो देंगे और सारे मुल्क में नाउम्मीदी की लहर दौड़ जायगी। अगर हम ज्यादा तादाद में होंगे, तभी हमारा ओहदे मंजूर करने का सवाल पैदा होता है, क्योंकि उसी हालत में हम हालात पर क़ाबू पा सकेंगे और साम्राज्यवादियों और तरक्की की राह पर रोड़े अटकानेवालों को उससे फायदा उठाने से रोक सकेंगे। हमारी असली ताक़त ओहदों से बढ़ेगी नहीं, वह हमें उन बहुत-सी बातों के लिए ज़िम्मेदार बनाकर कमज़ोर कर देगी, जिन्हें हम क़तई नापसंद करते हैं।

और फिर अगर हम कम तादाद में हैं तो हमारे ओहदे संभालने का सवाल ही पैदा नहीं होता। यह भी हो सकता है कि हम ज्यादा तादाद के क़रीब हों और दूसरे लोगों और दलों के सहयोग से हम ओहदे ले सकें। अगर हम दूसरों के साथ मिलकर शहरी आज़ादी, माली या दूसरी मांगों के मसलों पर काम करते हैं तो इसमें कोई बुराई नहीं है, बशर्तेकि हम किन्हीं सिद्धांतों के बारे में समझौता न करें। दूसरों की मातहती में ओहदों की मंजूरी के मुक़ा-बिल में चंद ऐसी बातों का भी ख्याल कर सकता हूं, जो ज्यादा ख़तरनाक और हमारे लिए ज्यादा नुकसानदेह हो सकती हैं। अगर वैसा होता है, तो बर्दाश्त के क़ाबिल नहीं है।

यह कहा जाता है कि अगर हम यह ऐलान कर दें कि हम ओहदों को, और मिनिस्ट्री को मंजूर करते हैं तो चुनाव में हमारी जीत के मौक़े बढ़ जायंगे। शायद यह ठीक भी हो, क्योंकि तब सब तरह के दूसरे लोग, जो ओहदों से मिलनेवाले फायदों के ख्वाहिशमंद होंगे, हम लोगों के साथ मिलने को दौड़े आयंगे। क्या कोई कांग्रेसी इसे मुनासिब तरक्की मान सकता है, और क्या इससे हम ताक़त हासिल करेंगे ? फिर यह भी कहा जाता है कि अगर लोगों को यह मालूम होगा कि वज़ारतें बनायंगे तो ज्यादा वोटर हमारे हक़ में वोट देंगे। ऐसा हो सकता है, लेकिन अगर हम उनसे झूठे वादे करते हैं कि इस एक्ट के मातहत हम उनके लिए बहुत-कुछ करेंगे और उन वादों को पूरा करने में हम नाकाम रहते हैं तो जल्द ही बदले की भावना फैलेगी। और अगर उन वादों में कोई सार हुआ तो यक़ीनी तौर पर हम नाकाम होंगे। हमारे लिए एक ही सीधा रास्ता है कि हम अपने प्रोग्राम के साथ जनता तक पहुंचे और उसे साफतौर पर बता दें कि मौजूदा हालतों में हम इसकी बड़ी-बड़ी मदों पर अमल नहीं कर सकते। इसलिए,

जहां हम उस प्रोग्राम को मनवाने के लिए विधान-सभा का इस्तेमाल करेंगे, वहां हम इस कोशिश में रहेंगे कि मौक़ा मिलने पर हम साम्राज्यशाही की इन जमातों के रास्ते में रुकावटें पैदा करके उन्हें खत्म कर डालें। ये रुकावटें उन्हीं प्रोग्रामों पर आनी चाहिए, जिससे जनता जान सके कि यह विधान-सभाएं उन प्रोग्रामों की निगाह से कितनी बेमानी हैं।

मुझे इस बात का यक़ीन हो गया है कि कांग्रेस के लिए ओहदों को मंजूर करना, या इनके बारे में हिच-किचाना और डगमगाना बड़ी भारी भूल होगी। यह एक ऐसा गड्ढा होगा, जिसमें से हमारे लिए बाहर निकलना मुश्किल हो जायगा। जनता का मिज़ाज, जिसे हमने उन्नत करने की कोशिश की है, कांग्रेस की परम्परा और उसके साथ-ही-साथ व्यावहारिक नीति भी इसके ख़िलाफ है। दिमाग़ी तौर पर इस तरह का कोई भी क़दम उठाने का ख़तरनाक नतीजा हो सकता है। अगर हम इन्किलाबी तब्दीलियां लाना चाहते हैं, तो हमें जनता में इन्किलाबी मिज़ाज पैदा करना होगा, और जो भी कोई बात इसके खिलाफ होगी, उससे हमारे मुद्दे को नुकसान ही पहुंचेगा।

यह दिमाग़ी पहलू अहम है। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए, और अपनी जनता को इस ख्याल में कभी गुमराह नहीं क़रना चाहिए कि इन विधान-सभाओं के ज़रिये सच्ची आज़ादी या किसी तरह की असली हुकूमत हासिल कर सकते हैं। बेशक, कुछ हद तक अपने मुद्दे तक बढ़ने में हम उनका इस्तेमाल कर सकते हैं, लेकिन लड़ाई का भार तो जनता पर ही पड़ना चाहिए, और इसलिए हमारा ख़ासतौर पर पुर-असर काम इन विधान-सभाओं से बाहर ही होगा। जनता से, और जनता में काम करने से और जनता को संगठित करने से ही हम ताक़त हासिल करेंगे।

हमने प्रांतीय चुनावों पर विचार किया है, जो, कहा जाता है कि अगले साल के शुरू में होंगे। वह वक्त अभी काफी दूर है, और यह भी नामुमकिन नहीं कि ये चुनाव एक लंबे अर्से तक हों ही नहीं या बिलकुल ही न हों, और इस तरह नया एक्ट अपनी मौत आप ही मर जाय। अगले साल के दौरान में बहुत-कुछ हो सकता है, और हमारी सरकार के प्रोग्रामों और स्कीमों को नाकाम करने के लिए लड़ाई की घटाएं हरदम छाई रहती हैं। लेकिन हम इसपर दांव नहीं लगा सकते और हमें तात्कालिक ज़रूरतों के लिए गुंजाइश रखनी ही होगी। वह फैसला करने में देर भी लग सकती है, लेकिन ख़तरनाक और समझौता करनेवाली प्रवृत्तियां कांग्रेसी नीति पर असर डालने की कोशिश करेंगी और कांग्रेस उस वक्त चुप नहीं रह सकती जब यह मामला उठाया गया हो और उसका सारा भविष्य अंधेरे में लटका हो।

मुमकिन है, प्रांतीय विधान-सभाएं बन जायं, लेकिन चंद ही लोग ऐसे हैं, जिन्हें यह यक़ीन है कि इस गंदे ढांचे का संघ-शासन-प्रणाली (फेडरेशन) का तरीक़ा भी लागू किया जायगा। जहांतक हमारा सवाल है, हम अपनी सारी ताक़त के साथ इसके ख़िलाफ लड़ेंगे, और सूबों की विधान-सभाओं में रुकावटें पैदा करने और नये एक्ट के लागू करने में मुश्किलें पैदा करने का ख़ास मतलब यही है कि हम फेडरेशन (संघ-शासन-प्रणाली) की हत्या करना चाहते हैं। फेडरेशन की मौत के साथ ही सूबों में एक्ट का भी ख़ात्मा हो जायगा और भारत की जनता के हाथों में एक ऐसा कोरा काग़ज़ रह जायगा, जिसपर वह अपनी मर्ज़ी से लिख सकेगी। चाहे जो हो, लेकिन इतना ज़रूर है कि उस लेख में वह हिंदुस्तानी रियासतों के इस हक़ को हर्गिज़ मंजूर नहीं कर सकती कि उनमें सामंती और मन-मर्ज़ी से हुकूमत करने के तरीक़े को जारी रखा जाय। बहुत दिनों तक वे ज़िंदा रह चुकी हैं और एक विदेशी ताक़त ने उनकी परवरिश की है, और आज की बदलती दुनिया में वे एक अजीब-सी बेमेल

सूरत अख्तियार कर चुकी हैं । आइंदा ज़माने में स्वेच्छाचारी शासन या सामंतवाद के लिए कोई जगह नहीं है, और आज़ाद हिंदुस्तान अपनी बहुत बड़ी तादाद की ग़ुलामी और इन्सानी हक़ों से उसका महरूम रहना बर्दाश्त नहीं कर सकता, और न ही वह इस बात को मंज़ूर कर सकता है कि उसके जिस्म की चीरा-फाड़ी की जाय और उसके अंगों को काटा जाय । अगर हम अपने लिए किसी तरह के इन्सानी, सियासी, समाजी या माली हक़ों की हिमायत करते हैं तो रियासतों की जनता के लिए भी हम वही सब चाहते हैं ।

मैंने हिंदुस्तान में ब्रिटिश सरकार द्वारा नागरिक आज़ादियों के खौफनाक दमन का ज़िक्र किया है । लेकिन रियासतों में इससे भी ज्यादा बुरी हालत है और, हालांकि हम जानते हैं, कि इन रियासतों की पीठ पर जो असली ताक़त है, वह है ब्रिटिश साम्राज्यवाद की; लेकिन अपने ही मुल्क के बाशिंदों के ज़रिये अपने भाइयों का यह अफसोसनाक दमन निहायत दर्द-भरा वाक़या है । हिंदुस्तानी राजाओं और उनके वज़ीरों ने फासीवादी तरीक़ों पर ज्यादा-से-ज्यादा अमल भी किया है, और ऐलान भी किये हैं, और पिछले चंद सालों का रिकार्ड यह ज़ाहिर करता है कि उन्होंने हमारी क़ौमी मांगों की हमलावर ढंग से मुखालिफत की है । जिन रियासतों को तरक्की-पसंद समझा जाता है, उन्होंने कांग्रेस को ग़ैर-क़ानूनी क़रार दिया है और कौमी झण्डे की बेइज्जती की है, और अख़बारों को दबाने के लिए नये-नये क़ानून भी बनाये हैं । पिछड़ी हुई और दक़ियानूसी रियासतों के बारे में तो कहना ही क्या है ?

इस एक्ट से ताल्लुक रखनेवाला एक और मामला है, जिसपर काफी बहस हुई है । यह है फिरकापरस्ती का फैसला । बहुत-से लोगों ने सख्ती के साथ इसकी निंदा की है, और मैं समझता हूं कि चंद ऐसे भी हैं, जिन्होंने इसे अच्छा भी बतलाया है । लेकिन मेरा निजी ख़याल उन सबसे कुछ जुदा ही है । मेरा इससे कुछ मतलब नहीं कि उससे एक दल को या दूसरे दल को क्या मिलता है, मैं तो उसके बुनियादी रवैये पर ही अपने ख़याल ज़ाहिर करूंगा । इसके ज़रिये हिंदुस्तान को ख़ासतौर पर मजहब के नाम पर बहुत-से अलग-अलग हिस्सों में बांटने की कोशिश की गई है । और इस तरह यह लोकतंत्री और माली नीतियों की तरक्की के रास्ते में मुश्किलें पैदा करता है । असलियत तो यह है कि फिरकापरस्ती का फैसला और लोकतंत्र साथ-साथ हर्गिज़ नहीं चल सकते । हमें यह मानना होगा कि मौजूदा हालतों में, जबतक मध्य वर्ग के लोग हमारी सियासत पर छाये रहेंगे, तबतक हम फिरकापरस्ती से अपना पिंड नहीं छुड़ा सकते । लेकिन अपने मुस्लिम या सिख भाइयों के लिए एक ज़रूरी अपवाद के तौर पर उनकी हिमायत करना एक जुदा बात है, पर इस बुरे सिद्धांत को दूसरे कई दलों पर भी लागू करना और इस तरह चुनाव की मशीनरी और विधान-सभाओं को कई हिस्सों में बांट देना कहीं ज्यादा ख़तरनाक मसला है । अगर हम चाहते हैं कि लोकतंत्री तरीक़े पर काम करें तो फिरकापरस्ती के इस फैसले को हमें ख़त्म करना ही होगा, और मुझे यक़ीन है कि यह ख़त्म होगा ही । लेकिन यह उन तरीक़ों से ख़त्म नहीं होगा कि जो इस फैसले के ज़बरदस्त मुखालिफों ने अपनाये हैं । इन तरीक़ों की वजह से यह फैसला लगातार ज़िंदा बना रहेगा, क्योंकि वे उस हालत को जारी रखने में मदद करते हैं ।

फिरकापरस्ती के सवाल के बारे में पिछली कांग्रेसी नीति को मैंने पसंद नहीं किया, जिसमें समझौते और इक़रार करने की कोशिशें की गई हैं । इतने पर भी, मेरा ख़याल है कि एक वज़नदार प्रेरणा की बिना पर ही इस नीति को अपनाया गया था । सबसे पहली बात तो यह है कि कांग्रेस ने आज़ादी के सवाल को हमेशा पहली जगह दी है, और फिरकापरस्ती-समेत दूसरे सवालों को उसके बाद रखा है, और इस बात की मंजूरी देने से भी

उसने इन्कार कर दिया है कि उन दूसरे सवालों में से एक को अहम जगह दी जाय। दूसरी बात यह है कि कांग्रेस की दलील यह थी कि फिरकापरस्ती का मसला किन्हीं हालतों की वजह से पैदा हुआ है, जिससे तीसरी पार्टी बाक़ी दोनों का नाजायज़ फायदा उठाने के क़ाबिल हुई। इस मसले को हल करने के लिए या तो तीसरी पार्टी से पिंड छुड़ाना होगा (और उसके माने हैं आज़ादी), या उन हालतों से पिंड छुड़ाना होगा, जिसका मतलब यह है कि दोनों संबधित पार्टियां दोस्ताना ढंग से बातचीत करें और उनके अंदर जो शुबा और डर है, उसे मिटाने की कोशिश करें। तीसरी बात यह कि जो जाति ज्यादा तादाद में है उसे थोड़ी तादादवाली जातियों के अन्दर जो डर और शुबा हो, चाहे वह ग़ैरवाजिब ही हो, उसे दूर करने में उदारता से काम लेना होगा।

रूस के बारे में मिस्टर वेब ने अपनी किताब में बड़ी दिलचस्प बातें लिखी हैं। उसमें उन्होंने बताया है कि रूस का सारा-का-सारा ढांचा किस तरह लोकतंत्री बुनियाद पर खड़ा हुआ है। रूस को पश्चिमी ढांचे की दृष्टि से लोकतंत्री मुल्क नहीं ख्याल किया जाता और इतने पर भी दूसरी किसी भी जगह के मुकाबले में वहां लोकतंत्र की जरूरी शर्तें काफी बड़ी मात्रा में मौजूद हैं। वहां के छः लाख देहातों और कस्बों में अपनी निजी लोकतंत्री संस्थाएं हैं, जो बहस-मुबाहसे करती हैं, नुक्ताचीनी करती हैं, नीति को बनाने में मदद पहुंचाती, और बड़ी कमेटियों के लिए नुमायंदे चुनती हैं। नागरिकों के इस संगठन में १८ बरस की उम्र से ज्यादा के औरत-मर्द सब शामिल होते हैं। इसके अलावा जनता की एक और बड़ी संस्था है, जो पैदावार करनेवालों की है, और तीसरी, जो उतनी ही बड़ी है, उपभोग करनेवालों की है। और इस तरह करोड़ों औरतें और मर्द सार्वजनिक मामलों की बहसों में, और मुल्क के नज़ाम में सही मानों में लगातार हिस्सा लेते हैं। इतिहास में लोकतंत्री तरीक़े को लागू करने की इतनी सही मिसाल कहीं नहीं मिलती।

बेशक, यह सब तो हमारी ताक़त के बाहर की बात है, क्योंकि इसका तजुरबा करने से पहले सियासी और माली ढांचे में तब्दीली की ज़रूरत होगी। लेकिन हम इस मिसाल से फायदा तो उठा ही सकते हैं और कांग्रेस के सबसे नीचे के दर्जे में अपनी महदूद ताक़त के मूजिब लोकतंत्री तरीक़े जारी करके प्राथमिक कमेटियों में जान पैदा कर सकते हैं।

जनता के साथ हमारे संपर्क बढ़ें, इसका एक तरीक़ा और भी है। हम पैदावार करनेवालों के तौर पर उसका संगठन करें और उसके बाद कांग्रेस के साथ ऐसे संगठनों का संबंध जोड़ा जाय। या दोनों के दर्मियान पूरा सहयोग स्थापित किया जाय। पैदावार करनेवालों यानी उत्पादकों की इस तरह की संस्थाओं, जैसेकि मज़दूर संघ और किसान संघ, इन दिनों मौजूद भी हैं और साथ-ही-साथ साम्राज्यवाद-विरोधी संस्थाओं को जनता के फायदे के लिए और क़ौमी आज़ादी की लड़ाई के लिए आपसी सहयोग के इस हल्के के अन्दर लाया जा सकता है। व्यक्ति और संस्थाएं दोनों ही कांग्रेस के सदस्यों में शामिल होंगे, और वे अपनी निजी शक्ल को क़ायम रखती हुई दूसरे बड़े-बड़े बुनियादी मामलों पर असर डाल सकती हैं और उनके ज़ेरे-असर भी हो सकती हैं।

कांग्रेस एक व्यापक संस्था है और बहुत-से स्वार्थों की नुमाइंदगी करती है, लेकिन लाज़िमी तौर पर यह सियासी संस्था है, जिसकी चर्खा-संघ और ग्रामोद्योग संघ जैसी सहयोगी संस्थाएं हैं। ये सहयोगी संस्थाएं माली हल्के के अन्दर काम करती हैं, लेकिन ये भूमि-पट्टा-प्रणाली के मौजूदा तरीक़े के अधीन किसानों के बोझ दूर करने की सीधी कोशिश नहीं करतीं। न ही कांग्रेस पूर्णतया किसान सभा की तरह काम कर सकती है, हालांकि बहुत-से सूबों में इसने किसानों की हिमायत की है और उन्हें काफी राहत भी मिली है। मुझे यह जरूरी जान पड़ता है कि

कांग्रेस किसानों और मज़दूरों की सभाएं बनाने के काम को प्रोत्साहन दे, और जो पहले से मौजूद हैं, उनके साथ सहयोग करे, जिससे कि उनकी माली मांगों और दूसरी शिकायतों की बिना पर जनता की रोज़मर्रा की लड़ाई को चलाया जा सके। जनता की माली लड़ाई के साथ कांग्रेस की इस पहचान से हम उसके ज्यादा नज़दीक हो जायंगे, और उसके नतीजे के तौर पर आज़ादी के भी ज्यादा नज़दीक पहुंच जायंगे। मैं दूसरे स्वार्थों की संस्थाओं का भी स्वागत करूंगा, जैसेकि स्त्रियों की संस्थाएं। आज़ादी की क़ौमी लड़ाई में उनके लिए भी जगह होनी चाहिए। कांग्रेस इन सब अहम ताक़तों का ठीक से जोड़ बैठाने की हालत में है और इस तरह वह इतनी बड़ी बुनियाद पर अपने-आपको खड़ा कर सकती है।

जंगी प्रोग्राम और जंगी कार्रवाई की भी कुछ-कुछ चर्चा हुई है। इसका सही-सही मतलब क्या है, इसका मुझे पता नहीं है, लेकिन अगर इसके माने क़ौमी पैमाने पर सीधी कार्रवाई या सिविल नाफ़र्मानी करने के हैं, तो मैं यह कहूंगा कि फिलहाल इसकी गुंजाइश नहीं है। किसी बड़ी कार्रवाई की तैयारी से पहले हमें बड़ी-बड़ी बातें बनाने में नहीं उलझना चाहिए। मौजूदा वक्त में हमारा फ़र्ज़ है कि हम अपने घर को संवारें, कुछ लोगों के पराजय के नज़रिये को दूर करें, और अपनी संस्था को मज़बूत बनाने के लिए जनता के साथ ज्यादा-से-ज्यादा ताल्लुक जोड़ें और जनता के अंदर काम करें। वह वक्त आ सकता है, और शायद उम्मीद से पहले भी आ सकता है, जबकि हमारा इम्तिहान होगा। हमें उस इम्तिहान की तैयारी कर लेनी चाहिए। सिविल नाफ़र्मानी या ऐसी ही दूसरी बातें जब जी किया, तब चालू या बंद नहीं की जा सकतीं। यह बहुत-सी बातों पर निर्भर करता है, और उनमें से कुछ तो हमारी ताक़त के बाहर हैं; लेकिन इन्किलाबी तब्दीली और दुनिया में लगातार होनेवाली आफ़तों के इन दिनों में हमारी निस्बत वाक़यात अक्सर बड़ी तेज़ी के साथ होते हैं। हमें मौक़ों की तलाश में नहीं रहना चाहिए।

हिंदुस्तान का आज सबसे बड़ा मसला है ज़मीन का, देहातों की ग़रीबी और बेरोज़गारी का, और ज़मीन के दकियानूसी बंदोबस्त का। गुज़िश्ता चंद पीढ़ियों के दौरान में हालात का अजीबोग़रीब मेल हो जाने से हिंदुस्तान पिछड़ा रह गया है और उसके सियासी और माली हालात बेहद बिगड़ चुके हैं। किसी हद तक हमारे किसानों की भी वही हालत है, जो इन्किलाब से १५० साल पहले फ्रान्स में किसानों की थी। बहुत दिनों तक वे इस हालत में नहीं रह सकेंगे। अलावा इसके, हम अंतर्राष्ट्रीय सरमायेदारी के भी जुज़ बन गये हैं और हम उन दर्दों और आफ़तों से पीड़ित हैं, जो इस भद्दे तरीक़े की वजह से होती हैं। दुनिया की ताक़तों की इन बुनियादी उत्तेजनाओं और संघर्षों के नतीजे के तौर पर हिंदुस्तान में क्या होगा, इस बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन हम इतना यक़ीन के साथ कह सकते हैं कि मौजूदा नज़ाम का वक्त ख़त्म हो चुका है और आइंदा वक्त को, जैसा भी हम उसे बनाना चाहते हैं, ढालने की कोशिश करना हमारे ही हाथों में है।

लड़ाई की अफ़वाहों और तैयारियों से दुनिया लबरेज़ है। अबिसीनिया में पिछले कई महीने से ख़ूनी और ख़ौफ़नाक लड़ाई छिड़ी हुई है, और हमने देखा है कि भूखा और लुटेरा साम्राज्यवाद उपनिवेशों की बेतहाशा खोज में कैसा सलूक करता है? हमने इथोपियावासियों की उस बहादुराना लड़ाई को तारीफ़ की निगाह से देखा है, जो वे भारी मुसीबतों का सामना करते हुए अपनी आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं। मुझे यक़ीन है कि आप मुझे इस बात की इजाज़त देंगे कि मैं आपकी ओर से उनको बधाई दूं और उनके साथ गहरी हमदर्दी जाहिर करूं। यह लड़ाई स्थानीय लड़ाई की निस्बत कुछ ज्यादा माने रखती है। अफ्रीकी लोगों ने इतने पुरअसर तरीके से पहली

ही बार बढ़ते हुए साम्राज्यवाद पर रोक लगाई है, और इसमें वे काफी हद तक कामयाब भी हुए हैं।

सुदूर-पूर्व में भी लड़ाई के बादल छाये हुए हैं और एक पूर्वी साम्राज्यवाद बेरहमी के साथ चीन की ओर बढ़ रहा है और विश्व-साम्राज्य स्थापित करने की कोशिश में है। साम्राज्यवाद, पूर्व हो या पश्चिम, जहां भी मौक़ा पाता है, अपने पंजे फैला देता है।

यूरोप में फासीवाद या नात्सीवाद लड़ाई छेड़ने पर तुला बैठा है और उसकी तैयारियों के लिए बड़े-बड़े हथियारबंद खीमे लगाये जा रहे हैं। जान पड़ता है कि इस सारे का नतीजा लड़ाई ही होगा। दूसरे राष्ट्रों से लड़ने के लिए राष्ट्र आपस में मिल रहे हैं और हर मुल्क की तरक्की-पसंद ताक़तें फासीवाद की बुराइयों का मुक़ाबला करने के लिए एक-दूसरे के साथ दोस्ती के गुट बना रही हैं।

इस खौफनाक खेल में हमारी स्थिति क्या है? इस बढ़ती हुई मुसीबत में हम किस तरह हिस्सा बंटायंगे? इसका जवाब देना मुश्किल है, लेकिन हम साम्राज्यवाद के मुद्दों के लिए अपने-आपको कठपुतली बनाने की इजाज़त नहीं देंगे। यह कहने का हमें हक़ होगा कि हम लड़ाई में शामिल होते हैं या नहीं, और उस रज़ामंदी के बिना हमारी ओर से सहयोग नहीं होगा। जब वक्त आयगा, तो हमसे इस मामले में बात तक नहीं की जायगी, और इसी वजह से कांग्रेस के लिए अब यह ऐलान करना जरूरी है कि हिंदुस्तान किसीकी साम्राज्यवादी लड़ाई में हिस्सा लेने के खिलाफ है। और हर वह लड़ाई साम्राज्यवादी लड़ाई मानी जायगी, जिसे साम्राज्यवादी ताक़तें छेड़ेंगी, भले ही उसके लिए कोई भी कारण पेश किये जायं। इसलिए, हमें उससे बाहर ही रहना होगा और हिंदुस्तानी जानों-माल की कुर्बानी नहीं होने दी जायगी।

दुनिया की जो तरक्की-पसंद ताक़तें इन्सानी आज़ादी की हामी हैं, और जो सियासी तथा माली बंधनों को तोड़ने में लगी हैं, उन्हें हम साम्राज्यवाद और फासीवाद के खिलाफ उनकी लड़ाई में अपना पूरा सहयोग पेश करते हैं, क्योंकि हम महसूस करते हैं कि वह लड़ाई हमारी साझी लड़ाई है। हमारी शिकायत किन्हीं लोगों या किसी मुल्क के खिलाफ नहीं है, और हम जानते हैं कि साम्राज्यवादी इंगलैण्ड तक में ऐसे बहुत-से लोग हैं, जो साम्राज्यवाद को पसंद नहीं करते, और आज़ादी के हिमायती हैं।

इस मुसीबत, और तूफान, और तनाव के दौर में लाज़िमी तौर पर हमारे दिलो-दिमाग़ में उस महान नेता की याद आ जाती है, जिन्होंने इन कई सालों में अपने शक्तिशाली व्यक्तित्व से हमें राह दिखाई है और हमें प्रेरणा दी है। बीमारी की वजह से अब वह जन-कार्रवाइयों में अपना पूरा हिस्सा अदा नहीं कर सक रहे। जल्दी ही और पूरी तरह वह तंदुरुस्त हों, इसकी हम दुआएं करते हैं और इन दुआओं के साथ हमारी मतलबी ख्वाहिश यह भी है कि वह फिर से हमारे बीच हों। गुज़रे वक्त में हमारा उनसे मतभेद रहा है, और बहुत-सी बातों पर आइंदा भी हमारा मतभेद होगा, और यह हमारा हक़ है कि हममें से कोई अपने पक्के यक़ीन के मूजिब ही अमल करे। लेकिन जिन बंधनों से हम आपस में जुड़े हुए हैं, वे हमारे मतभेदों की निस्बत ज्यादा ताक़तवर और अहम हैं, और जो वादे हमने मिलकर किये हैं, उनकी गूंज अब भी हमारे कानों में मौजूद है। हिन्दुस्तान की आज़ादी की, और ग़रीबी से तंगहाल जनता को उभारने की जितनी पुरजोश ख्वाहिश उनके दिल में है, उतनी हममें से कितनों में है? आज हमें यह महसूस होता है कि इन लंबे बरसों में उन्होंने हमें कितनी ही बातों की तालीम दी है—निडरता और अनुशासन, और बड़े मुद्दे के लिए अपने-आपको कुर्बान करने की ख्वाहिश। मुमकिन है, ये सबक़ धुंधले पड़ गये हों, लेकिन हम भूले नहीं, और न ही हम उन्हें कभी भूल सकते हैं, जिन्होंने हमें इस क़ाबिल बनाया

है, जो आज हम हैं, और जिन्होंने हिंदुस्तान को गहराइयों से उभारा है। आज़ादी की जो प्रतिज्ञा हमने मिलकर ली थी, उसे हमें दोहराना भी है, और हम उनकी इंतज़ार में हैं कि वह फिर से अपने नेक मशविरों से हमें राह दिखायें।

लेकिन कोई भी नेता, चाहे कितना भी बड़ो क्यों न हो, अकेला ही तो सारा बोझ नहीं उठा सकता। हम सबको भी अपनी लियाक़त के मूजिब अपना हिस्सा अदा करना चाहिए और हाथ-पर-हाथ रखे दूसरों पर यह भरोसा नहीं करना चाहिए कि वे कोई जादू ही कर डालेंगे। नेता आते हैं और चले जाते हैं। हमारे कई प्यारे कप्तान और साथी इतनी जल्द हमसे बिछुड़ गये, लेकिन हिंदुस्तान तो मौजूद है और उसकी आज़ादी की लड़ाई भी अभी जारी है। मुमकिन है, हममें से बहुतों को अभी और तकलीफें सहनी पड़ें, और मर भी जायं, जिससे कि हिंदुस्तान ज़िंदा रहे और आज़ाद हो। और यह भी मुमकिन है कि हमारी मंज़िल अभी हमसे बहुत दूर हो, और वहां पहुंचने के लिए हमें कितने ही वीरानों को पार करना पड़े, लेकिन हमारी उस अमर आशा को कौन छीन सकता है, जो फांसी के तख़्तों और बेहद तकलीफों और परेशानियों के बावजूद ज़िंदा रही है, और कौन है, जो हिंदुस्तान की उस आत्मा को कुचलने की हिम्मत करेगा, जो इतनी बार सूली पर चढ़ने के बाद भी बार-बार जी उठी है? ●

दिसंबर, १९३६ में फैजपुर-कांग्रेस में अध्यक्ष-पद से भाषण।

लोकतंत्र और साम्राज्यवाद की टक्कर

इस दुनिया में आज जिन मर्दों और औरतों ने ज़िम्मेदारी के काम संभाले हुए हैं, उनके सामने बहुत ही पेचीदा और कठिन काम आ गये हैं। कितने ही लोग तो ऐसे कामों को संभालने के योग्य ही नहीं होते। और अगर मैं इस महान गौरव के पद को डरता हुआ मंज़ूर करता हूं तो आपको आश्चर्य नहीं होगा!

इससे पहले कि हम अपने मसलों पर विचार करें, हमें अपने उन साथियों का ध्यान करना चाहिए, जो या तो पिछले चंद महीनों में गुज़र गये हैं या जो अभी तक बरसों से जेलों में पड़े हैं और जिनकी रिहाई की कोई उम्मीद नहीं। हमारे दो प्यारे साथी मुख़तियार अहमद अन्सारी साहब और अब्बास तैयब साहब चल बसे। कांग्रेस के इतिहास में उन्हें ऊंची जगह प्राप्त थी और वे कठिनाइयों में हमारे नेक सलाहकार होते।

हम अपने उन साथियों की याद में सर झुकाते हैं, जो अभी तक जेलों में पड़े हैं। उनकी तकलीफें अभी तक जारी हैं और बराबर बढ़ रही हैं। बंगाल प्रान्त में कितने ही नौजवान लड़के और लड़कियां चिरकाल से जेलों में पड़े हैं। वहां से ख़बर मिली है कि तीन नौजवानों ने अपनी जेल की ज़िंदगी से तंग आकर आत्महत्या भी कर ली इस तरह की मिसालें सिर्फ एक जगह और मिलती हैं, और वह है नाजी जर्मनी; जहां कई जेलों में आत्महत्या एक आम बात है।

कांग्रेस के पिछले इजलास के फौरन बाद ही मुझे वर्किंग कमेटी के मेंबरों को चुनना हुआ, जिनमें श्री सुभाषचन्द्र बोस भी शामिल थे। लेकिन आपको यह मालूम ही है कि उन्हें बम्बई में उतरते ही पकड़ लिया गया। अगर्चे उनकी सेहत खराब है, फिर भी उन्हें अभी तक जेल से रिहा नहीं किया गया। हमारी कमेटी उनकी नेक सलाह से वंचित रही है। हमें उनकी अनुपस्थिति बहुत महसूस हुई है, क्योंकि हमें उनसे बहुत उम्मीदें हैं। अपने लोगों पर इस तरीक़े का दबाव हम बेबसी से सहन कर रहे हैं, लेकिन यह लाचारी हमें अपना यह इरादा और अज़बूत करने में मदद करती है कि हम अपने देश और उसके वासियों की तकलीफों को ख़त्म कर दें।

एक और साहब, जो लखनऊ के इजलास में मौजूद नहीं थे, अब बहुत दिनों की जेल काटकर आ गये हैं, जो यहां मौजूद हैं। हम ख़ान अब्दुल ग़फ्फार ख़ां और सरहदी सूबे के उन बहादुर लोगों का दिली शुक्रिया अदा करते हैं जिन्होंने हिंदुस्तान की आज़ादी की लड़ाई में हिस्सा लिया है। वैसे तो ख़ानसाहब इस वक्त यहां मौजूद हैं, लेकिन ब्रिटिश सरकार ने अभी तक उनपर यह पाबंदी लगा रखी है कि वह सरहदी सूबे या पंजाब में प्रवेश नहीं कर सकते।

आपकी ओर से मैं कामरेड एम० एन० राय का स्वागत करता हूं, जो हमारी आज़ादी की लड़ाई के एक

पुराने नायक हैं। वह बहुत दिनों की जेल काटकर आ रहे हैं। अगर्चे उनकी सेहत काफी गिर गई है, फिर भी वह हमारी आज़ादी की लड़ाई के लिए एक नया जोश लेकर आये हैं।

पिछले दिनों कुदरत ने हमपर बहुत ज़ुल्म ढाये हैं। अकाल और बाढ़ों की वजह से कई प्रान्तों में बहुत नुकसान हुआ है। हाल ही में दक्षिण में गुंतूर ज़िले में एक भारी तूफान आया, जिससे बहुत-से लोग बेघर हो गये, और उनका सारा मालो-असबाब बर्बाद हो गया। प्रकृति पर इन्सान अभी पूरा क़ाबू नहीं पा सका। लेकिन इन्सान अगर चाहे तो अपनी अक्ल से बाढ़ों का कुछ-न-कुछ इंतज़ाम कर सकता है। इसी तरह बाढ़ से होनेवाली बुराइयों का अनुमान लगाकर पीड़ितों के लिए उचित राहत पहुंचाने का भी इंतज़ाम हो सकता है। लेकिन जो लोग आजकल हमारे भाग्य के स्वामी हैं, उनको इसकी परवा नहीं है। हमारे लोग, जो पहले ही से ग़रीब होते हैं, इस क़िस्म के धक्कों को सहन नहीं कर सकते और इसलिए वे ऐसे अवसरों पर बिल्कुल तबाह हो जाते हैं।

आजकल हम प्रांतीय चुनावों में लगे हुए हैं। कांग्रेस ने तकरीबन एक हज़ार से ज्यादा उम्मीदवार खड़े किये हैं। हमारा सारा ध्यान चुनावों में बंटा हुआ है। लेकिन, जैसाकि मैंने लखनऊ के अधिवेशन में भी बतलाया था, हमें दुनिया की घटनाओं से दूर नहीं रहना चाहिए। हमारे देश की राजनैतिक या सामाजिक आज़ादी का सवाल सारी दुनिया के एक बड़े सवाल का ही एक अंश है और अपनी स्थिति को समझने के लिए यह ज़रूरी है कि हम दूसरों को भी समझ लें।

पिछले आठ महीनों में अन्तर्राष्ट्रीय हालतों में बहुत तब्दीली आ गई है। प्रगतिशील ताक़तें और प्रतिक्रियावादी ताक़तें एक-दूसरे की ज्यादा विरोधी बन गई हैं, जिससे लड़ाई के मौक़े भी बढ़ गये हैं। यूरोप में फासीवाद जीत की राह पर बढ़ा चला जा रहा है और वह अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में खुल्लमखुल्ला गुंडापन पर उतर आया है। चूंकि इसकी नींव घृणा और हिंसा पर है, इसलिए अगर उसे रोका न गया तो लड़ाई की चिनगारी ज़रूर भड़क उठेगी। हम देख चुके हैं कि किस तरह अबिसीनिया इसका शिकार हुआ है और अब वही नाटक स्पेन में रचा जा रहा है।

फासीवाद ने कैसे इतनी तरक्की की कि आज यह न सिर्फ यूरोप पर बल्कि सारी दुनिया पर छा जाने की कोशिश में है! इसका जवाब हमें ब्रिटिश विदेश-नीति में मिलेगा। यह नीति, बाहर से चाहे कुछ हो, हमेशा नाज़ी जर्मनी की हिमायती रही है। इंगलैण्ड ने जर्मनी के साथ समुद्र के बारे में जो संधि की थी, उसके अनुसार फ्रांस इटली के अधिकार में आ गया, और इटली ने अबिसीनिया को हड़प लिया। इटली के ख़िलाफ पाबंदी लगाने की चर्चाएं चलीं, लेकिन जब वक्त आया तो इंगलैण्ड ने पाबंदी लगाने से साफ इन्कार कर दिया। यहांतक कि जिस वक्त अमरीका ने इटली पर तेल की पाबंदी लगाने की बात की, तो इंगलैण्ड पीछे हट गया और चुपचाप इथियोपियनों पर बम-बारी होते देखता रहा और इस तरह लीग ऑव नेशन्स, जो सब मुल्कों की ओर से, सबके मेल से सुरक्षा का दावा करती थी, बेकार हो गई। यह सच है कि ब्रिटिश सरकार लीग ऑंव नेशन्स और सबसे मेल से सुरक्षा की बड़ी-बड़ी बातें करती रही, लेकिन उसके कहने में और करने में फ़र्क़ था। और इस तरह फासीवाद को खुला मैदान मिल गया। नाज़ी जर्मनी ने बार-बार लीग की अवज्ञा की और यूरोप की व्यवस्था को भंग किया। लेकिन ब्रिटिश सरकार चुपचाप देखती रही और दबी आवाज़ से उसकी दाद देती रही।

आख़िरी परीक्षा स्पेन में हुई। स्पेन की लोकतंत्री हुकूमत के ख़िलाफ फासीवादी लोग खड़े हो गये, जिनकी मदद विदेशी फौजों ने की। फासिस्ट देशों ने विद्रोह करनेवालों की मदद की, लेकिन लीग ने हस्तक्षेप न करने की

बेकार नीति का ऐलान कर दिया, जिसका साफ मतलब यह था कि स्पेन की हुकूमत विद्रोहियों को दबाने में कामयाब न हो सके ।

इस तरह हम देखते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ज्यादा-से-ज्यादा फासिज्म की ओर झुकता जा रहा है, चाहे ऊपर से यह लोकतंत्र के पक्ष में ही क्यों न नज़र आता हो। चूंकि अंग्रेज़ों के कहने और करने में फ़र्क़ है, इसलिए आज यूरोप में क्या, सारी दुनिया में उनकी उतनी इज्जत नहीं रह गई, जितनी पहले थी ।

आजकल दुनिया में दो बड़ी ताक़तों का आपस में मुक़ाबला है—एक ओर वे लोग हैं, जो लोकतंत्र और सामाजिक आज़ादी चाहते हैं, दूसरी ओर वे लोग हैं, जो इस आज़ादी को साम्राज्यवाद और फासिज्म के नीचे कुचलना चाहते हैं। इस खींचतान में ब्रिटेन, आम जनता नहीं, प्रतिक्रियावादी टोली में शामिल है। अब यह लड़ाई स्पेन में साफ तौर से और ज़ोर के साथ लड़ी जा रही है, जिसके नतीजे पर दुनिया की शांति निर्भर है। इससे हम एक बहुत ज़रूरी बात सीख सकते हैं और वह यह कि लोकतंत्र आपसी बुनियादी भेदों को मिटाने और आर्थिक तथा राजनैतिक तब्दीलियां लाने के योग्य नहीं है । इसके हेतु वे लोग नहीं हैं, जो इन तब्दीलियों को लाना चाहते हैं; वे तो इस लोकतंत्री विधान को मंज़ूर करते हैं; लेकिन जब उस विधान के ज़रिये कुछ खास वर्गों के निजी स्वार्थों पर चोट पड़ती है तो वे उसे मानने को तैयार नहीं होते और इसके ख़िलाफ विद्रोह करते हैं । उनके लिए लोकतंत्र के मानी हैं, हुकूमत करना और अपने स्वार्थों की रक्षा करना। जब लोकतंत्र के ज़रिये यह मुमकिन नहीं होता तो वे इसे असफल बना देना चाहते हैं और ऐसा करने के लिए वे इस बात की परवा नहीं करते कि उनके साधन कैसे हैं। वे विदेशी और अराष्ट्रीय ताक़तों के साथ भी मेल करने से नहीं हिचकिचाते और उनकी मदद से अपने ही भाइयों की हत्या करते हैं, और उन्हें ग़ुलाम बनाते हैं।

आज स्पेन में जो लड़ाई चल रही है, उसे हम अपनी ही लड़ाई मानते हैं। जब हम स्पेन के नौजवानों का विनाश देखते हैं तो हम निराशा में डूब जाते हैं। लेकिन स्पेन की इस घोर निराशा में भी आज़ादी की उम्मीद की झलक टिमटिमाती रही है, जो दुनिया को भावी विजय की सूचना देती रही है ।

मैं इस बात पर ज़ोर देना चाहता हूं कि हम दुनिया की सारी घटनाओं की एकता को महसूस करें। आज फासिज्म और लोकतंत्र में, राष्ट्रीयता और साम्राज्यवाद में समाजवाद और पूंजीवाद में कशमकश जारी है, और राष्ट्र ताक़त हासिल करने के लिए वोटों की जगह संगीनें और बमों का इस्तेमाल कर रहे हैं। दुनिया की बदलती हुई हालत इस बात का तक़ाज़ा करती है कि पुराने आर्थिक और राजनैतिक ढांचे की जगह नई व्यवस्था आये और अगर शीघ्र ही ऐसा नहीं हुआ तो कशमकश बढ़ेगी और लड़ाइयां होंगी। फासिस्ट देशों के सिवा और कोई भी देश लड़ाई पसन्द नहीं करता, लेकिन सब-के-सब लड़ाई की तैयारियों में लगे हुए हैं और इस तरह किसी-न-किसी एक गुट में शामिल हो रहे हैं। हम भी नई उम्मीदें लेकर घूम रहे हैं । वे उम्मीदें क्या हैं ? हमारी इच्छा है कि दुनिया की उस पुरानी व्यवस्था को बदल डालें, जिससे लड़ाइयां पैदा होती हैं और लाखों-करोड़ों लोगों को मौत के घाट उतारा जाता है। ग़रीबी और बेरोज़गारी दूर करके अनगिनत लोगों की ताक़त, जो अभी फिज़ूल और बेकार जा रही है, इन्सानी तरक्की और भलाई करने में लगायें। मतलब यह कि जहां अब बर्बादी होती है, वहां निर्माण के काम होने लगें। पिछले आठ महीनों में मैं इस महान देश में ख़ूब घूमा हूं और मैंने हिंदुस्तान की जनता के दिलों में उस तड़पन को फिर से महसूस किया है, जो वह अपनी आंखों की भाषा से इशारा करती है; और जिस भारी बोझ के नीचे वह दबी हुई है, उससे वह शीघ्र ही मुक्ति पाना चाहती है। यही हमारी मुख्य समस्या

है। इसको हल करने के लिए हमें पहले ब्रिटिश साम्राज्यवाद का खात्मा करना होगा। लेकिन यह साम्राज्यवाद है क्या ? यह केवल एक मुल्क का दूसरे मुल्क पर क़ब्ज़ा कर लेना ही नहीं है। इसकी जड़ें गहरी हैं । मौजूदा साम्राज्यवाद पूंजीवाद से पैदा होता है, जिसके साथ इसका अटूट संबंध है।

जबतक हम साम्राज्यवाद और समाजवाद को अच्छी तरह नहीं समझ लेते, हम अपनी समस्याओं को ठीक तरह से नहीं सुलझा सकते। हमारी बीमारी की जड़ें बहुत गहरी हैं, जिसे ठीक करने के लिए बहुत-सी बुनियादी और इन्किलाबी तब्दीलियों की ज़रूरत है । इसका इलाज है 'समाजवाद'। आज हम समाजवाद के लिए नहीं लड़ रहे हैं, लेकिन 'समाजवाद' हमारी समस्या को हल करने में सहायक हो सकता है और इससे सच्चे स्वराज्य का भी पता हो जाता है । अगर हमें अपने मसले का ठीक पता नहीं है, तो, मुमकिन है, हमारे सभी काम ग़लत और फिजूल हों।

कांग्रेस लोकतंत्र के लिए खड़ी है न कि साम्राज्यवाद के लिए। यह संस्था साम्राज्यवाद की विरोधी है और माली और सियासी मसलों में परिवर्तन लाना चाहती है। मुझे उम्मीद है कि अपने इस ध्येय को पूरा करने के लिए इसे समाजवाद पर आना पड़ेगा, क्योंकि समाजवाद ही हमारी सब बीमारियों का एकमात्र इलाज है। लेकिन हमारे सामने जो सबसे ज़रूरी सवाल राजनैतिक आज़ादी हासिल करने और लोकतंत्री हुकूमत क़ायम करने का है, उसे अमल में लाने के लिए कांग्रेस को दुनिया की प्रगतिशील ताक़तों के साथ मिलकर चलना होगा। हाल ही में, पूर्व में एक नई घटना घटी है और वह है ब्रसेल्स में 'वर्ल्ड पीस कांग्रेस' (विश्वशांति सम्मेलन) । इस कांफ्रेंस में कई गुट और संस्थाएं शामिल हुई, जिन्होंने दुनिया में शांति क़ायम करने की शुरुआत की। यह कहना तो मुश्किल है कि इस कांफ्रेंस से दुनिया में कहांतक शांति हो सकेगी; लेकिन सभी अमन-पसन्द लोग इस योजना का स्वागत करेंगे। इस कांफ्रेंस में हमारी कांग्रेस की ओर से श्री वी०के० कृष्ण मेनन प्रतिनिधि थे और उनकी रिपोर्ट अभी आपके सामने रखी जा रही है । मुझे यक़ीन है कि दुनिया में स्थायी रूप से शांति क़ायम करने के लिए यह संस्था जो काम कर रही है, उसमें कांग्रेस पूरी तरह हाथ बंटायगी। हमें अपनी पोजीशन अच्छी तरह साफ कर देनी चाहिए। दुनिया में अमन क़ायम रखने का जो सवाल है, उसे साम्राज्यवाद से अलग रखकर नहीं सोचा जा सकता। लड़ाइयां हमेशा के लिए तभी बंद हो सकती हैं जबकि साम्राज्यवाद को ख़त्म कर दिया जाय। कांग्रेस ने पहले ही ऐलान कर दिया है कि वह साम्राज्यवादी लड़ाई में हिस्सा नहीं लेगी और इसलिए वह हिंदुस्तान की जनता की शक्ति या देश की संपत्ति का इस्तेमाल उसके लिए नहीं होने देगी।

लीग ऑव नेशन्स अब किसी काम की नहीं रही और शायद ही कोई ऐसा आदमी हो, जो इसे शांति क़ायम करने का उचित साधन मानता हो। हिंदुस्तान की इसमें कोई दिलचस्पी नहीं है, क्योंकि हमारे प्रतिनिधि का चुनाव ब्रिटिश सरकार करती है। हमें एक ऐसी सच्ची लीग ऑव नेशन्स खड़ी करने में मदद देनी होगी, जिसकी नींव लोकतंत्र पर खड़ी हो।

ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय हालत में हमें अपने क़ौमी मसलों पर विचार करना चाहिए। गवर्नमेन्ट ऑव इंडिया एक्ट, १९३५ को हमने ठुकरा दिया था। फिर भी यह गुलामी का पट्टा हमारी इच्छा के विरुद्ध हमें पहना दिया गया है। अब इसी एक्ट के अधीन हम चुनाव लड़ रहे हैं। हम चुनावों में क्यों शामिल हो रहे हैं और उन्हें किस तरह कामयाब बनायेंगे ? यह सारी बातें आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के चुनाव-ऐलान में प्रकट कर ही दी गई हैं। हम विधान-सभाओं में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को सहयोग देने के लिए नहीं जा रहे हैं, बल्कि इस नये एक्ट को ख़त्म करने के

लिए और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की उन कोशिशों को बेकार कर देने की खातिर शामिल हो रहे हैं, जिनके द्वारा अंग्रेज़ हिंदुस्तान पर अपना अधिकार रखना चाहते हैं और जनता का शोषण करते हैं। कांग्रेस की इस बुनियादी नीति को कभी नहीं भूलना चाहिए।

बहुसंख्या बनाने के लिए कुछ लोगों में समझौता करने की प्रवृत्ति काम कर रही है। यह बहुत खतरनाक है। हम चुनाव इसलिए लड़ रहे हैं कि हम अपना संदेश जनता तक पहुंचा सकें और उसको अपने झण्डे के नीचे जमा कर सकें। प्रतिक्रियावादी दलों और व्यक्तियों के साथ समझौता करके विधान-सभा में बड़ी-से-बड़ी तादाद भी कुछ नहीं कर सकती; क्योंकि इससे कांग्रेस का काम पूरा नहीं हो पायगा।

हमें नये एक्ट का मुक़ाबला करना है और जनता के वोट देने के हक़ की बिना पर विधान-सभा की मांग सबसे ऊपर रखनी है। यह विधान-सभा कोई ब्रिटिश सरकार की देन नहीं होगी और न ही उनके साथ किसी समझौते के रूप में क्रियान्वित होगी। इसकी वास्तविकता तभी साबित होगी, जब जनता की ताक़त इसके पीछे होगी और आज़ाद हिंदुस्तान का विधान बनाने की उसमें ताक़त होगी।

कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने सिफारिश की है कि चुनाव के बाद जल्द ही धारा-सभाओं के कांग्रेसी मेम्बरों और दूसरे ऐसे व्यक्तियों की एक सभा बुलाई जाय, जिन्हें कमेटी बुलाना चाहे। इस सभा में विधान-सभा की मांग आगे रखी जाय और उन सब तरीक़ों पर विचार किया जाय, जिससे इस नये एक्ट को रद्द किया जा सके। इस सभा में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के सदस्य भी शामिल होंगे, जिनसे इस आंदोलन को आगे बढ़ाने में और धारा-सभा के अन्दर और बाहर सही दिशा में काम चलाने में काफी मदद मिलेगी। इसका एक लाभ यह होगा कि धारा-सभाओं के कांग्रेसी मेम्बरों में प्रांतीयता और संकीर्णता की भावना का ख़ात्मा होगा; और दूसरे, प्रांतों का छोटी-मोटी बातों में उलझना भी बंद हो जायगा। ऐसी सभा बुलाने का विचार वस्तुतः फायदेमन्द हैं, और आशा है कि कांग्रेस इसे मंजूर कर लेगी।

विधान-सभा के बाद हमारा दूसरा काम होगा एक्ट के अधीन फेडरेशन से संबंधित भाग को रद्द करना। वैसे तो सारा एक्ट ही भद्दा है, लेकिन फेडरेशन को तो किसी भी रूप में सहन नहीं किया जा सकता। हम न सिर्फ ब्रिटिश साम्राज्यवाद के नीचे, बल्कि हिंदुस्तानी सामंतशाही के नीचे भी रहना पसन्द नहीं करते। हिंदुस्तान में लम्बे अर्से तक ब्रिटिश शासन के क़ायम रहने का बड़ा दिलचस्प और नसीहत देनेवाला नतीजा यह है कि वह यहां से जाते वक्त प्रतिक्रियावादी और अडंगा-नीति पर चलनेवाले दलों के हाथ में हुकूमत सौंपकर जाना चाहती है। फेडरेशन का आयोजन भी विचार करने लायक है। हम फेडरेशन के खिलाफ नहीं हैं। यह मुमकिन है कि आज़ाद हिंदुस्तान में फेडरेशन हो जाय, लेकिन यह फेडरेशन ऐसा होगा, जिसमें केंद्र के हाथ में काफी ताक़त होगी। इस वक्त जो फेडरेशन हमें दिया जा रहा है, वह तो हमारी ग़ुलामी क़ायम रखने के लिए ही है; क्योंकि इससे आर्थिक और सामाजिक तंत्रों का अधिकार देश के बहुत ही पिछड़े हुए भाग को मिलेगा। वर्तमान देसी रियासतों का जन्म ब्रिटिश राज्य की शुरू की उस हालत में हुआ, जब वह मजबूत नहीं था। उसी वक्त इन रियासतों के राजाओं के साथ वे सुलहनामें किये गए थे, जो बार-बार हमें दिखलाये जाते हैं और यह बतलाया जाता है कि इनको बदला नहीं जा सकता।

यह अच्छा होगा यदि हम यूरोप की उस वक्त की हालत का मुक़ाबला हिंदुस्तान से करें। उस वक्त यूरोप में बहुत-से छोटे-छोटे राज्य थे, जिनके स्वेच्छाचारी राजा विशेषाधिकारों का प्रयोग करते थे। ग़ुलाम-प्रथा क़ानूनन

जायज़ थी। लेकिन पिछले सौ साल में यूरोप ने इतनी तरक्की की है कि अब उसे पहचानना भी मुश्किल है। कई क्रान्तियों की वजह से वहां बहुत-से राज्य ख़त्म हो गये, और अब बहुत कम राजा रह गये हैं। गुलाम-प्रथा बंद हो गई है। मौजूदा वक्त में उद्योग बढ़ रहे हैं और लोकतंत्री संस्थाएं फैल रही हैं। कुछ देशों में इनकी जगह फासिस्ट तानाशाही आ गई है। रूस एक बहुत ही पिछड़ा हुआ देश था, जिसने एक ही छलांग में समाजवादी व्यवस्था क़ायम कर ली और उसकी वजह से उसने बहुत तरक्की की है। सारी दुनिया में ज़बरदस्त तब्दीलियां आ चुकी हैं, और आ रही हैं। लेकिन भारत में देसी रियासतें जहां-की-तहां हैं। वे पुराने सुलहनामे, जो रियासतों की प्रजा के साथ नहीं, बल्कि उनके राजाओं के साथ किये गए थे, इतने पवित्र माने जाते हैं कि उन्हें छुआ तक नहीं जा सकता।

यह ऐसी हालत है, जिसे कोई भी राष्ट्र सहन नहीं कर सकता। हम इन पुराने सुलहनामों को हमेशा के लिए, और कभी न बदले जा सकने लायक़ नहीं मानते। देसी रियासतों को आज़ाद हिंदुस्तान के साथ मिलकर चलना होगा और वहां की जनता को भी वही व्यक्तिगत और नागरिक आज़ादी मिलनी चाहिए, जो हिंदुस्तान के बाक़ी हिस्सों में है।

पिछले चन्द सालों से ही रियासतों के साथ सुलहनामों और ऊंची सत्ता की बातें सुनने में आ रही हैं। रियासतों के राजा हमेशा से ही जानते थे कि ब्रिटिश राज्य में उनकी जगह क्या है। ब्रिटिश सरकार का ज़ुल्म उन-पर भी चलता था। लेकिन हिंदुस्तान में जबसे राष्ट्रीय आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा तबसे अंग्रेज़ों ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए, यानी उस आंदोलन को दबाने के लिए, देसी राजाओं को व्यर्थ ही महत्व देना शुरू कर दिया। राजाओं ने, और उनके वज़ीरों ने भी उनके दृष्टिकोण की इस तब्दीली को भांप लिया और उससे फायदा उठाया। उन्होंने ब्रिटिश सरकार और हिंदुस्तान की जनता को आपस में भिड़ाकर दोनों से फायदा उठाया। वह काफी हद तक कामयाब हुए हैं, क्योंकि फेडरेशन में उनको विशेष अधिकार प्राप्त हो रहे हैं। वे ख़ुद ऐसे स्वेच्छाचारी राजा रहेंगे, जिनपर हिंदुस्तान को कोई हक़ नहीं होगा। आज वे ऐसी बातें करते हैं, मानो वे आज़ाद हों और फेडरेशन में आने के लिए शर्तें पेश कर रहे हों। अब तो वे वाइसराय की ऊंची सत्ता को भी खत्म करने की बातें करने लगे हैं, जिससे दुनिया में सबसे अलग स्वतंत्र रूप से ऐसे निरंकुश राज्य क़ायम कर सकें, जिनपर किसी भी वैधानिक तरीक़े से बाहर का दबाव न हो। इसका एक भयानक परिणाम यह देखने में आ रहा है कि कुछ बड़ी-बड़ी रियासतों ने फौजें बढ़ानी शुरू कर दी हैं।

इसलिए फेडरेशन के साथ जो हमारा विरोध है, वह केवल उसूली ही नहीं है, बल्कि यह एक बहुत अहम सवाल है, जिसका संबंध हमारी आज़ादी की लड़ाई और हमारे भविष्य से है।

हमारी नीति यह है कि हम इस एक्ट को बिल्कुल ख़त्म कर दें और फिर कोरे कागज़ पर नये सिरे से लिखें। जो लोग सिर्फ धारा-सभाओं में ही काम करना जानते हैं, वे हमें बतलाते हैं कि इस एक्ट को रद्द करना संभव नहीं है; क्योंकि इसमें इतने विशेषाधिकार रखे गये हैं कि बहुसंख्या का विरोध होने पर भी सरकार अपना काम चला सकती है। हमें इन विशेष अधिकारों का ज्ञान है और इसीलिए हम इस एक्ट को रद्द करना चाहते हैं। हमें यह भी मालूम है कि राज्य-सभाएं भी मौजूद हैं, जो हमारे काम में रोड़ा अटकायंगी। हम यह भी जानते हैं कि हम धारा-सभाओं में वैधानिक अड़चनें खड़ी कर सकते हैं, हड़तालें करा सकते हैं और साम्राज्यवादी तंत्र में रुकावटें खड़ी कर सकते हैं, लेकिन सरकार के बच निकलने के लिए रास्ता है। इसलिए धारा-सभाओं की भीतरी

कार्रवाइयों से एक्ट कभी रद्द नहीं हो सकता। इसके लिए वाहर जनता में काम करना चाहिए।

धारा-सभाओं के बारे में कांग्रेस की नीति सर्वथा स्पष्ट है। सिर्फ एक बात का फैसला करना वाक़ी है, और वह यह कि सरकारी पदों को स्वीकार किया जाय या नहीं। संभव है कि यह फैसला चुनाव के बाद तक स्थगित रखना पड़े। लखनऊ के अधिवेशन में मैंने यह कहने का साहस किया था कि मेरी राय में पदों को क़बूल करना एक्ट को ठुकरा देने की हमारी नीति के विरुद्ध होगा और जिस नीति पर हम १९२० से काम करते आ रहे हैं, यह उसके भी विरुद्ध है। उसके वाद कांग्रेस ने अपने चुनाव के ऐलान में अपनी नीति और भी साफ कर दी है कि हम धारा-सभाओं में सहयोग के लिए नहीं वल्कि एक्ट का विरोध करने के लिए जा रहे हैं। हमारे प्रस्तावों और चुनाव के ऐलान में कांग्रेस की नीति के बारे में जो सफाई पेश की गई है, उसका सिर्फ यही मतलव निकल सकता है कि हमारा सरकारी नौकरियों और पदों से कोई वास्ता नहीं है।

हमारे सामने वहुत वड़े-वड़े काम बाक़ी हैं। हिंदुस्तान में और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमें कई वड़ी-वड़ी समस्याएं सुलझानी हैं। हिंदुस्तान में सिवाय हमारी संस्था के, जिसने अपने ५० बरसों के तप और त्याग से जनता की नुमाइन्दगी करने का हक़ हासिल कर लिया है, और कोई भी ऐसी संस्था नहीं है, जो इन समस्याओं पर विचार करे और उनको हल करे। क्या हमारी संस्था जनता की उम्मीदों और इच्छाओं का, उसकी आज़ादी की उस मांग का, जिसे वह दुश्मन से ज़बरदस्ती छीन लेना चाहती है, प्रतिनिधित्व नहीं करती? शुरू में इस संस्था में कुछ वहादुर लोग आये थे। चूंकि यह इतिहास की मांग थी, इसलिए हिंदुस्तान के लोगों की हमदर्दी इस तरफ बढ़ने लगी। हर साल यह तरक्की करने लगी। कुछ ऐसे लोग, जो प्रगतिशील नहीं थे, और जो कांग्रेस को पीछे ले जाना चाहते थे, धीरे-धीरे कांग्रेस से अलग हो गये और उनकी जगह दूसरे लोगों ने ले ली। हिंदुस्तान के सामाजिक जीवन में यह एक बहुत बड़ी संस्था बन गई। लेकिन उस समय इसकी कोई निश्चित रूप-रेखा नहीं थी। इसकी प्रबंध-शक्ति भी कमज़ोर थी और यह वड़े पैमाने पर आंदोलन शुरू करने के लायक़ नहीं थी। गांधीजी के आने पर किसान लोग कांग्रेस में आने लगे। उनकी सलाह पर १९२० में नागपुर में जो नया विधान मंजूर किया गया, उससे कांग्रेस की प्रबंध-शक्ति दृढ़ हुई। इसके मेम्बरों की तादाद आवादी के अनुसार रखी गई और वड़े पैमाने पर मिलकर कार्रवाई करने की ताक़त उसमें आ गई। इसके तुरन्त बाद ही सारे मुल्क में फैलनेवाले आंदोलन शुरू किये गए। लेकिन कांग्रेस की जीत और इसके ऊंचे नाम की वजह से ही बहुत-से अयोग्य लोग इसमें आ घुसे, जिनके कारण उसका विधान ग़लत हो गया। तादाद बहुत बड़ी होती जा रही थी, लेकिन काम की रफ्तार बहुत धीमी थी। दो साल पहले गांधीजी की सलाह पर विधान में फिर बुनियादी परिवर्तन किये गए। इनमें से एक तब्दीली तो यह थी कि डेलीगेटों की तादाद मेम्बरों की संख्या के अनुपात में रखी जाय। इससे हमारे चुनाव ज्यादा सही बने और प्रबंध-शक्ति भी मज़बूत हुई। लेकिन फिर भी जैसी व्यवस्था चाहिए वैसी नहीं है और हमारी संस्थाएं आम जनता से दूर रहकर अलग-अलग ही काम करती हैं।

इसी बुराई का कुछ अंश दूर करने के लिए लखनऊ-कांग्रेस ने प्रस्ताव पास किया था; लेकिन जिस कमेटी को यह काम सौंपा गया था, उसने अपनी रिपोर्ट पेश नहीं की। हमारा सवाल तो जो-कुछ प्रस्ताव में रखा गया था, उससे भी वड़ा है, और वह यह है कि कांग्रेस के सारे विधान को फिर से बदला जाय, जिससे यह एक संगठित संस्था वन जाय और नियम में रहकर प्रभावपूर्ण कार्य कर सके। यह कार्रवाई प्रभावपूर्ण तभी हो सकती है, जब जनता इसमें हाथ वंटाये। यह ठीक है कि कांग्रेस की शक्ति आज भी जनता पर ही आश्रित है, लेकिन इसके विधान में

आम जनता का प्रतिनिधित्व करने की गुंजाइश नहीं है। इसलिए हमारी कार्रवाइयों में यह एक बड़ी कमी है। कांग्रेस पहले समाज के कुछ ऊंचे दर्जे के लोगों की संस्था थी, फिर मध्य वर्ग के लोगों की हुई और अब जनता की बन रही है। ज्यों-ज्यों कांग्रेस में यह परिवर्तन आते गये, त्यों-त्यों इसका राजनैतिक क्षेत्र भी बदलता गया।

हमारा जनता के साथ ऐसा संबंध है, जो टूट नहीं सकता, क्योंकि इस संबंध के अभाव में हम कमज़ोर हैं। यही बात अब हमें कांग्रेस के विधान में भी लानी है जिससे हमारी प्रारम्भिक कमेटियों के मेम्बरों को रोज़ाना की कार्रवाइयों में हिस्सा लेने का ज्यादा मौक़ा मिल सके। दूसरे शब्दों में, हमें कांग्रेस के विधान को अधिकाधिक लोकतंत्री बनाना है।

एक दूसरा सवाल, जिसपर पिछले दिनों बहुत चर्चा हो चुकी है, यह है कि किसानों और मज़दूरों की संस्थाओं को भी कांग्रेस के साथ जोड़ दिया जाय, जिससे देश की साम्राज्यवाद-विरोधी सारी ताक़तें इकट्ठी हो सकें। वैसे तो कांग्रेस की सदस्यता का बहुत बड़ा हिस्सा इन संस्थाओं से ही आता है—७५ फीसदी मेम्बर किसानों में से आते हैं; लेकिन कुछ लोगों का कहना है कि अगर संस्थाओं के रूप में वे कांग्रेस की सदस्य हों तो इसकी ताक़त ज्यादा बढ़ जायगी। लेकिन इस सुझाव के विरुद्ध यह कहा जाता है कि अगर इस तरह की सदस्यता मंजूर कर ली गई तो कांग्रेस में बहुत-से लोग आ जायंगे, जो राजनैतिक रूप में पिछड़े हुए हैं। यह सवाल वैसे तो बहुत अहम है, लेकिन इसके फैसले से इस वक्त कोई फर्क़ नहीं पड़ेगा। हमें उनको निमंत्रित करके अपनी सद्भावना को प्रकट करना चाहिए। किसान या मज़दूर-सभाएं आज इतनी संगठित नहीं हैं कि वे कांग्रेस के साथ मिलकर कुछ अनुचित फायदा उठा सकें। उनका कांग्रेस पर हावी हो जाने का तो बिल्कुल ही ख़तरा नहीं है, और यदि हो भी, तो वह दूर किया जा सकता है। कांग्रेस इन संस्थाओं को शामिल करने के लिए कुछ शर्तें रख सकती हैं,जिससे अनावश्यक लोग नहीं आ सकेंगे। इन संस्थाओं की तरफ से जो मेम्बर आयंगे, उनकी संख्या भी तय की जा सकती है। संयुक्त प्रान्त की कांग्रेस कमेटी ने कुछ इसी क़िस्म की सिफारिशें भी की हैं।

हमारे सामने तो एक ही मुद्दा है और वह है मुल्क की सभी साम्राज्यवाद-विरोधी ताक़तों को मिलाकर एक ज़बरदस्त संगठन पैदा करना। कांग्रेस आज तक संगठित रूप में काम करनेवाली संस्था रही है और भविष्य में भी संगठित कार्रवाइयों का केन्द्र रहेगी। किसानों और मज़दूरों की संगठित संस्थाओं का हमें स्वागत करना चाहिए, क्योंकि कांग्रेस को इससे ताक़त मिलेगी। पिछले बरस से कांग्रेस और इन संस्थाओं में सहयोग बहुत बढ़ गया है। इस मंशा को बढ़ावा देना चाहिए। हमारे देश की सबसे बड़ी ज़रूरत इस वक्त यह है कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध सारी ताक़तों को एक जगह संगठित किया जाय। आज भी कांग्रेस के अन्दर बहुत-सी ऐसी ताक़तें काम कर रही हैं, जिनमें मतभेद हैं, फिर भी वे मिल-जुलकर सबकी भलाई के लिए काम कर रही हैं। इन सबकी बुनियाद एक ही है, "आज़ादी और साम्राज्यवाद का विरोध"। इनकी मांग एक है—विधान-सभा, जिससे एक लोकतंत्री व्यवस्था क़ायम हो सके।

यह तो हुआ हमारा लक्ष्य; लेकिन हम मौजूदा हालत को और अपने लोगों की रोज़ाना की कठिनाइयों को भूल नहीं गये हैं। हमारी जनता की ग़रीबी और बेरोज़गारी, जिसका असर मध्यम वर्ग पर भी पड़ रहा है, हमारे ध्यान में बराबर हैं। वैसे तो सारी दुनिया में ऊंच और नीच के भेद-भाव बहुत बढ़े हुए हैं, लेकिन हिंदुस्तान में तो यह भेद काफी से ज्यादा बढ़ गये हैं। एक तरफ शानदार दिल्ली शहर है, जो ब्रिटिश हुकूमत की ही मूर्ति है, जहां सब तरह की शानो-शौकत और फिज़ूलखर्ची होती है और वहां से चंद मील पर ही ग़रीब किसानों की भी झोंपड़ियां

हैं, जिनकी थोड़ी-बहुत बचत पर ही ये शानदार महल खड़े किये गए हैं और बहुत बड़ी-बड़ी तनख्वाहें और भत्ते दिये जाते हैं। देसी रियासतों के राजा भी अपने महलों में ऐश-आराम की ज़िंदगी बसर करते हैं, जबकि उनकी प्रजा बेहद ग़रीब और परेशान हालत में है । ऐसी दशा में भी ये राजा लोग अपने संधि-पत्रों और सामंत-प्रथा का दावा करते हैं। यह नया एक्ट इन भेद-भावों को क़ायम रखने के लिए ही बनाया गया है, ताकि हिंदुस्तान में साम्राज्य-वाद और सामंतवाद का बोलबाला रहे। इस समय, जबकि यह लिख रहा हूं, रेलों की एक ज़बरदस्त हड़ताल जारी है। रेलवे के कर्मचारी बहुत दिनों से वेतनों में कमी और नौकरियों में छटनी की वजह से जोश खाये बैठे थे। साम्राज्य की तमाम ताक़त उनके ख़िलाफ लगी हुई है। कुछ अर्सा पहले बम्बई के निकट अम्बरनाथ मैच फैक्टरी, जो एक विदेशी फर्म है, में शानदार हड़तालें हुईं। इस फर्म के पीछे साम्राज्यवाद की सारी ताक़त अजीब ढंग से काम कर रही थी। हमारे देश में मज़दूरों को अभी तक बुनियादी हक़ भी नहीं मिले हैं।

लेकिन इससे भी ज्यादा अहम मसला किसानों का है, क्योंकि हमारा देश कृषि-प्रधान देश है। इसी बात को दृष्टि में रखते हुए और कांग्रेस को जनता के ज्यादा निकट लाने के लिए हम किसी बड़े शहर की बजाय आज फैजपुर गांव में इकट्ठे हो रहे हैं। लखनऊ-कांग्रेस ने ज़मीन से संबंध रखनेवाले प्रश्न पर ज़ोर दिया था और प्रांतीय कमेटियों को किसानों से संबंध रखनेवाले प्रोग्राम तैयार करने के आदेश दिये थे। लेकिन यह काम इतना बड़ा और कठिन है कि अभी तक वह प्रोग्राम तैयार नहीं हो सका। यह प्रश्न इतना ज़रूरी है कि इसका बहुत जल्द फैसला हो जाना चाहिए। कई प्रांतों ने भूमि-कर में बुनियादी सुधार करने और ज़मींदारी-प्रथा को ख़त्म करने की मांग की है। किसानों पर कर्ज़ का इतना बोझ बढ़ गया है कि सब जगह से कर्ज़ चुकाने की अवधि बढ़ाने की, और कर्ज को अधिकतर माफ करने की मांगें आ रही हैं। पंजाब में किसानों की रक्षा के लिए कर्ज़ा-कमेटियां बन गई हैं; लेकिन भूमि-संबंधी समस्या का हल अलग-अलग टुकड़ों में करना बहुत मुश्किल होगा, इसके बजाय सारी क़ानून-व्यवस्था को ही बदलना बेहतर होगा। इसके हल का एक ही तरीक़ा है कि सरकार और किसान के बीच से बिचौलियों को हटा दिया जाय। सहकारिता या सामूहिक खेती शुरू की जाय।

ग्रामोद्योग को तथा अन्य उद्योगों को भी तरक्की देनी चाहिए, ताकि करोड़ों लोग काम में लग सकें और उनका जीवन-स्तर ऊंचा उठ सके। इसका ताल्लुक और कई बातों से भी है, जैसे शिक्षा, आवास, यातायात, स्वास्थ्य, दवाइयां और दूसरी सामाजिक सेवाएं। हमारे देश में उद्योगीकरण नहीं हो सकता, क्योंकि सरकार की मौजूदा आर्थिक नीति ऐसी है कि इंगलैण्ड की बनी हुई चीज़ों को हिंदुस्तान में बिकने के लिए बढ़ावा मिलता है और सारा मुनाफा लंदन में ही पहुंचता है। हिंदुस्तान से सोना बराबर विदेश जा रहा है, अगर्चे सारे मुल्क ने इसके ख़िलाफ आवाज़ उठाई है। नये एक्ट के मुताबिक तो हम कोई भी ऐसा काम नहीं कर सकते, जिसको वाइसराय या गवर्नर ब्रिटिश-हितों के विरुद्ध समझें। पुराने क़ाननों की जगह नये क़ानून बेशक बनें; लेकिन ब्रिटिश हितों की सुरक्षा हमेशा की तरह बनी रहेगी।

इस प्रकार हमारे देश में आज कई प्रश्न खड़े हो रहे हैं। हमें चाहिए कि हम ज़मीन के बारे में एक लम्बी-चौड़ी योजना बनायें और मुल्क की सब प्रवृत्तियों को एक सूत्र में इस तरह पिरायें कि हम आम जनता की सेवा कर सकें। लेकिन ये सारी योजनाएं विशेषाधिकार, निहित स्वार्थों और साम्राज्यवादी शोषण के रहते नहीं पनप सकतीं। इनके लिए राजनैतिक और सामाजिक आज़ादी का वायुमण्डल चाहिए।

हम देखने में कमज़ोर जान पड़ते हैं, लेकिन वास्तव में ऐसा है नहीं । हमारी ताक़त बढ़ती जा रही है

जबकि ब्रिटिश साम्राज्य गिरता जा रहा है। यह सही है कि हमारी आर्थिक और राजनैतिक हालत कुचली जा रही है, नागरिक आज़ादी भी छीनी जा रही है, हमारी सैकड़ों संस्थाएं ग़ैर-कानूनी करार दे दी गई हैं, हमारे हज़ारों स्त्री-पुरुष गिरफ्तार होकर जेलों में बन्द कर दिये गए हैं और हर वक्त जासूस हमारे पीछे लगे रहते हैं, जो मुंह से एक लफ्ज़ निकलते ही लिख लेते हैं; लेकिन इनसब बातों के बावजूद हम कमज़ोर नहीं हुए हैं, बल्कि पहले से ज्यादा ताक़तवर हैं और यह सारा ज़ुल्म हमारी बढ़ती हुई क़ौमी ताक़त को ज़ाहिर करता है। सारी दुनिया में लड़ाई के बादल छाये हुए हैं और सब क़ौमें हथियारबंदी की ओर बढ़ रही हैं। लड़ाई छिड़ने पर हिंदुस्तान जो रुख़ अख्तियार करेगा, उसका असर ज़रूर पड़ेगा। अगर हम ठीक तरह से चलें तो कामयाबी हमारे हाथ में है। इसी वजह से आज भी हममें निराशा नहीं है।

हम मुसीबतें और तकलीफें उठाते हुए आगे बढ़ते चले जायंगे। तकलीफें झेलने की तो हमें आदत-सी पड़ गई है और जब हम कठिनाइयों पर क़ाबू पाना भी सीख लेंगे तो हम ज़रूर ही कामयाब होंगे। ●

साइंस कांग्रेस की सिलवर जुबली, कलकत्ता (१९३७) और साइंस कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन, इलाहाबाद (१९३७) में विज्ञान के आधार पर देशोन्नति के सुझाव।

साइंस और प्रगति

बदक़िस्मती से हम सियासत में इतने फंस गये हैं कि जिंदगी की गहरी और अहम वातों की तरफ ज्यादा ध्यान नहीं दे पाते। शायद उस क़ौम में ऐसा होना कुदरती है, जहांकि लोग आज़ादी हासिल करने में और उन वंधनों को तोड़ने की कोशिश में हैं, जो तरक्की के रास्ते में रोड़े हैं। जिस तरह एक वीमार आदमी को हर वक्त सेहत हासिल करने की ही फिक्र रहती है, उसी तरह हमें अपने क़ौम की आज़ादी हासिल करने की धुन है। यह धुन हमें साइंस और संस्कृति की तरफ नहीं जाने देती। हम वेहिसाव उलझनों में फंसे हुए हैं। जनता की खौफनाक ग़रीबी से हमारा दम घुट रहा है। लेकिन, अगर ज़िन्दगी की सही क़ीमतों का माप हमारे सामने होता तो हम इंडियन साइंस कांग्रेस की सिलवर जुबली को इस साल का एक अहम वाक़या मानते; क्योंकि साइंस आज के युग का सवसे बड़ा तत्व है। मौजूदा युग के बजाय विज्ञान भविष्य में और भी ज्यादा तरक्की करेगा और यह उन वैज्ञानिकों के हाथ में रहेगा, जो इन्सान की तरक्की में मददगार होंगे। इस सिलवर जुवली के मौक़े पर मैं इंडियन साइंस कांग्रेस और अपने देश के, और विदेशों के कई मशहूर वैज्ञानिकों को, जो इस वक्त कलकत्ता में इकट्ठे हो रहे हैं, मुबारकवाद देता हूं। कांग्रेस के इस जलसे के लिए जिस शख्स ने सदर का ओहदा मंजूर किया था, वह इस जलसे के होने से पहले ही अपनी ज़िंदगी की मंज़िल पूरी करके इस दुनिया से चले गये; लेकिन उनकी ज़िन्दगी, जो साइंस की ख़िदमत में ही सर्फ हुई, हमारे लिए एक ख़ास पैग़ाम छोड़ गई है। अगर्चे लार्ड रूथरफोर्ड यहां नहीं आ सके, पर उनकी लिखी हुई तक़रीर यहां आ चुकी है, जिसे मैंने संयोजकों की इजाजत से देख लिया है। अगर्चे मैं बहुत अर्से से हिंदुस्तान की सियासत के चक्कर में फंसा रहा हूं, फिर भी मुझे कई बार उन दिनों की याद आती है, जब मैं कैम्ब्रिज की प्रयोगशालाओं में घूमा करता था। हालात से मजवूर होकर मुझे विज्ञान से दूर हटना पड़ा, फिर भी मेरे दिल में उसकी लगन अब भी वाक़ी है। कुछ अर्से वाद मैं घूम-घामकर फिर साइंस की ओर आया, क्योंकि मैंने महसूस किया कि साइंस महज एक मन वहलाने की ही चीज़ नहीं, वल्कि यह ज़िन्दगी का एक ज़रूरी हिस्सा है, जिसके विना हमारी मौजूदा दुनिया ख़त्म हो जायगी। सियासत से मुझे अर्थशास्त्र की ओर जाना पड़ा और वहां से फिर साइंस की ओर। सिर्फ साइंस ही हमारी भूख, ग़रीवी, गंदगी, जहालत और वेजान रिवाजों को दूर कर सकती है। हमारे बड़े-बड़े ज़रिये, जो ख़त्म होते जा रहे हैं और जिनके न होने से मुल्क की जनता भूखी मर रही है, उसका इलाज भी इसीमें है।

मैंने लार्ड रूथरफोर्ड की तक़रीर को वड़ी दिलचस्पी से पढ़ा है। उन्होंने वतलाया है कि क़ौम की ज़िंदगी में साइंस की क्या जगह है, और खोज से ताल्लुक रखनेवाले इल्म की क्या ज़रूरत है। मुझे शक है कि मौजूदा

हालत में कुछ ज्यादा काम नहीं हो सकता। लार्ड रूथरफोर्ड ने क़ौमी आयोजन पर ज़ोर दिया है। मुझे यक़ीन है कि ऐसी योजना के बिना काम नहीं हो सकता। लेकिन क्या यह मौजूदा सियासी और सामाजिक हालत में मुमकिन है?

क़दम-क़दम पर निजी स्वार्थ अड़चनें पैदा करते हैं और हमारी तमाम ताक़त और हिम्मत इन रुकावटों को दूर करने में ही ज़ाया हो जाती है। क्या हम बंधे हुए दायरे में महदूद मक़सद से काम चला सकते हैं? किसी हद तक हम ऐसा कर भी सकते हैं, लेकिन फिर एकदम ऐसा नया मसला सामने आ खड़ा होता है कि हमारी सारी योजना बेकार बन जाती है। ज़िन्दगी एक है और उसे मुख्तलिफ हिस्सों में नहीं बांटा जा सकता। मिसिसिपी वैली कमेटी ने संयुक्त राष्ट्र अमरीका की सरकार को आयोजन के सिलसिले में लिखा है, "पानी पर रोक और उसके इस्तेमाल के सिलसिले में आयोजन करने का मतलब है क़ौमी ज़िंदगी की बहुत-सी बुनियादी ज़रूरतों को जुटाना।" हम उस वक्त तक पानी की योजनाएं नहीं बना सकते, जबतक कि ज़मीन से ताल्लुक रखनेवाले सवालों पर भी विचार न कर लें। पानी और ज़मीन के लिए आयोजन का मतलब है सारी जनता के लिए आयोजन करना। नदियों पर रोक लगाने से क्या फायदा है, अगर हम इन्सान की आज़ादी और हिफ़ाज़त का इंतज़ाम न कर सकें?"

इस तरह हमें इन्सानी ज़िन्दगी की बुनियादी ज़रूरतों पर—सामाजिक और आर्थिक तंत्र पर फिर से विचार करना पड़ता है। अगर मौजूदा ज़िंदगी में साइंस सबसे बड़ा तत्व है, तो सामाजिक और आर्थिक तंत्र भी साइंस से जुड़ा होना चाहिए, वरना यह खत्म हो जायगा। लार्ड रूथरफोर्ड ने साइंटिस्टों और उद्योगपतियों के आपसी सहयोग पर ज़ोर दिया है। इन दोनों में सहयोग की ज़रूरत तो है ही, लेकिन साइंटिस्ट और राजनीतिज्ञ में भी इसी तरह का आपसी सहयोग होना चाहिए।

मैं सरकार की ओर से चलनेवाली अनुसंधानशाला के हक़ में हूं। मैं यह भी चाहता हूं कि सरकार होनहार विद्यार्थियों को बड़ी तादाद में विज्ञान और खास इल्म हासिल करने के लिए दूसरे मुल्कों में भेजे। हम हिंदुस्तान की बुनियाद साइंस पर रखा चाहते हैं—हमें उद्योगीकरण करना है, भूमि-संबंधी जागीरदारी प्रथा का अन्त करना है, और खेतीबाड़ी को आजकल के वैज्ञानिक ढंग से चलाना है और सामाजिक सेवाओं को प्रोत्साहन देना है, जिनकी यहां बिलकुल कमी है। इसी तरह और भी बहुत-से काम बाक़ी हैं। इन सब कामों के लिए हमें पढ़े-लिखे साइंसदां लोग चाहिए।

मेरी इच्छा है कि हमारी केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारें विशेषज्ञों के बोर्ड बैठायें, जो हमारे मसलों पर विचार करें और उनका हल निकालें। राजनीतिज्ञ कभी-कभी साइंटिस्ट को पसन्द नहीं करता और उसको शक की नज़र से देखता है। लेकिन सच तो यह है कि विशेषज्ञ की मदद के बिना राजनीतिज्ञ भी कुछ नहीं कर सकता।

लार्ड रूथरफोर्ड के लफ्ज़ों में "मुझे उम्मीद है कि भविष्य का हिंदुस्तान फिर से साइंस का घर बन जायगा और वह न सिर्फ दिमाग़ी तरक्की करेगा बल्कि जनता की भलाई के लिए भी आगे बढ़ेगा।"

आप लोग आलिम हैं और आपमें से कइयों ने साइंस की दुनिया में बड़ी इज़्ज़त हासिल की है। आपने मुझ-जैसे अजनबी को जो इज़्ज़त और इस सालाना जलसे में शामिल होने की जो दावत दी, उसे मैंने बड़ी खुशी के साथ क़बूल किया। मैं विज्ञान-भवनों और अकादेमियों में ज्यादा वक्त तक नहीं रह सका और मेरी किस्मत और मेरे हालात मुझे खेतों, बाजारों और कारखानों की धूल और शोरो-गुल में घसीट ले गये, जहां इन्सान

रहता है, मेहनत करता है और तकलीफें उठाता है। मैं इन्सानों की उस भारी उथल-पुथल में फंस गया, जिसने हाल के वरसों में हमारे इस मुल्क को हिला दिया। फिर भी बावजूद इन हंगामों और तहरीकों के, जिनसे मैं घिरा रहा, मैं आप लोगों के पास एक बिलकुल अनजान के तौर पर नहीं आया हूं, क्योंकि मैंने भी विज्ञान के मंदिर में पूजा की है और मैं अपने-आपको विज्ञान का एक पुजारी मानता आया हूं। मौजूदा वक्तों में कौन है, जो साइंस की दरगुज़र कर सकता है। क़दम-क़दम पर हमें इसकी मदद की ज़रूरत पड़ती है और आज की दुनिया तो पूरी तरह से साइंस की ही बनाई हुई है। इन्सान की सभ्यता के दस हज़ार बरसों के दौरान में, क़रीब डेढ़ सदी पहले साइंस बेहद तेज़ी से बढ़ी और इन १५० वर्षों में यह ऐसी इन्किलाबी और ज़ोरदार साबित हुई कि जैसी आज-तक नहीं हुई थी। साइंस के इस ज़माने में रहनेवाले हम लोग ऐसी हालतों में रहते हैं और ऐसे हालातों में घिरे रहते हैं कि ज़ो उन लोगों की हालतों से बिलकुल जुदा हैं, जो साइंस से पहले के ज़माने में रहते थे।

लेकिन इस बात को बहुत कम लोग पूरी तरह से समझते हैं और वे आज के मसलों का हल उस कल का हवाला देकर करना चाहते हैं, जो बीत गया है और ख़त्म हो चुका है।

हमारे सामने बहुत-से मसले हैं, जिनका हमें सामना करना है और जिन्हें हमें हल करना है। अकेला राज-नीतिज्ञ उनको हल नहीं कर सकता, क्योंकि उसके पास उस नज़रिये और मज़मून की जानकारी का अभाव हो सकता है। और न ही अकेला साइंटिस्ट उन्हें हल कर सकता है; क्योंकि उसके पास ऐसा करने का हक़ नहीं होगा या फिर ऐसा नज़रिया नहीं होगा, जो हर चीज़ पर और हर तरफ निगाह रख सकता है। यह मसले तो उन दोनों के निश्चित सामाजिक उद्देश्यों के सहयोग से ही हल हो सकते हैं, और होंगे।

हमारे सामने कोई मक़सद होना बहुत ज़रूरी है; क्योंकि उसके बिना हमारी कोशिशें हल्की और बेकार हो जायंगी। हमने सोवियत रूस में देखा है कि किस तरह एक तयशुदा मक़सद को अगर तालमेल की कोशिशों का सहारा मिले, तो एक पिछड़ा हुआ मुल्क भी एक तरक्की-शुदा औद्योगिक राज्य में बदल सकता है, जिसका जीवन-स्तर दिन-दिन बढ़ता जाता है। अगर हम तेज़ी से तरक्की करना चाहते हैं तो हमें भी उसी तरह के कुछ तरीके इस्तेमाल करने पड़ेंगे।

हमारे सामने सबसे बड़ा सवाल ज़मीन का है, लेकिन इसके साथ बड़ी ही नज़दीकी के साथ जुड़ा हुआ उद्योग का मसला है। इन दोनों के साथ-ही-साथ जनता की सेवा का सवाल भी है। इन सबके बारे में एक-साथ विचार करना पड़ेगा और तालमेल बैठाना होगा। यह काम़ बहुत बड़ा है, लेकिन इसकी ज़िम्मेदारी तो उठानी ही पड़ेगी।

पिछले अगस्त में कांग्रेस मिनिस्ट्री बनने के बाद जल्द ही कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें साइंटिस्टों और विशेषज्ञों को दिलचस्पी होगी। इसलिए मैं चाहता हूं कि आप लोग भी उसपर ग़ौर करें। वह प्रस्तांव इस तरह का है—

"वर्किंग कमेटी कांग्रेस मंत्रि-मण्डलों से सिफारिश करती है कि वे विशेषज्ञों की एक ऐसी कमेटी नियुक्त करें, जो उन अहम मसलों पर विचार करे, जिनका हल करना राष्ट्र-निर्माण और समाज-रचना के लिए ज़रूरी है। ऐसे हल के लिए बड़े पैमाने पर जांच-पड़ताल, आंकड़ों का इकट्ठा किया जाना और एक तय-शुदा सामाजिक उद्देश्य ज़रूरी है।

"इनमें से बहुत-से मसले ऐसे हैं, जिनका हल प्रान्तों की बिना पर सही ढंग से नहीं किया जा सकता, और साथ के प्रान्तों के हित एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। भयानक बाढ़ों की रोकथाम करने, पानी को सिंचाई के लिए

इस्तेमाल करने, ज़मीन के कटाव के मसले पर विचार करने, मलेरिया को जड़ से उखाड़ने, और हाइड्रो-इलेक्ट्रिक और दूसरी योजनाएं बनाने के लिए, और नीति तय करने के लिए नदियों की व्यापक जांच-पड़ताल करनी ज़रूरी है। इस मतलब के लिए सारी नदियों की घाटियों का सर्वेक्षण और जांच-पड़ताल करनी होगी और सरकार की तरफ से बड़े पैमाने पर आयोजन करना होगा। उद्योगों की तरक्की और उनपर नियंत्रण के लिए कई प्रान्तों का आपसी सहयोग और ताल-मेल ज़रूरी है। इसलिए वर्किंग कमेटी की यह राय है कि शुरू में विशेषज्ञों की एक अन्तर्प्रान्तीय कमेटी तैनात की जाय, जो इस बात पर विचार करे कि आम मसले क्या हैं, जिनका सामना करना होगा और वे किस तरह से हल किये जा सकते हैं। विशेषज्ञों की कमेटी अगर चाहे तो अलग-अलग मसलों के लिए अलग-अलग खास कमेटियां या बोर्ड बनाने की सलाह दे सकती है, और वह प्रान्तीय सरकारों को, जो काम मिल-जुलकर करने होंगे उनपर भी सलाह देगी।"

बाकी प्रस्ताव चीनी उद्योग के बारे में है। इस दिशा में कुछ काम हुआ है,—बिजली, अलकोहल और अन्य कमेटियां नियुक्त कर दी गई हैं, पर मैं चाहता था कि इससे भी ज्यादा काम हो। मैं चाहता हूं कि हमारे विशेषज्ञ तेज़ी से आगे बढ़कर चारों तरफ के मसलों पर विचार करने लगें। मैं चाहता हूं कि ज़िले में संग्रहालय और नुमाइशें होनी चाहिए कि जिससे हमारी जनता और ख़ासकर किसान लोग ज्ञान हासिल कर सकें। मुझे रूस के शानदार कृषि-संग्रहालय, जो मैंने वहां देखे, अबतक याद हैं। उनके मुक़ाबले में जो हम यहां खेती-बाड़ी की नुमाइशें समय-समय पर लगाते रहते हैं, क़ाबिले-रहम जान पड़ती हैं। मुझे म्यूनिक का ड्यूशेज म्यूज़ियम भी याद है, जो बहुत बढ़िया और हैरत में डालनेवाला है और मैं बड़ी ख्वाहिश के साथ यह सोचता हूं कि क्या कभी हिंदुस्तान में भी ऐसी चीज़ें बनेंगी ?

इस विज्ञान-परिषद् का फर्ज़ है कि वह ऐसे सब मामलों में आगे बढ़े और सरकार को उस बारे में सलाह दे। सरकार को उन्हें सहयोग देना चाहिए, उनकी मदद करनी चाहिए और उनकी विशेष जानकारी से पूरा फायदा उठाना चाहिए। लेकिन परिषद् को हर क़दम उठाने के लिए सरकार का मुंह नहीं देखते रहना चाहिए। यह ठीक है कि सरकार का यह फर्ज़ है कि वह पहल करे; लेकिन साथ ही साइंटिस्टों का भी यह काम है कि वे ख़ुद भी पहल करें। हम एक-दूसरे की इन्तज़ार में रुके नहीं रह सकते। हमें काम चालू कर देना चाहिए।

और अब, आपका इतना वक्त लेने के बाद, मैं आप लोगों ने जो मेहनत की है, उसके लिए आपकी तारीफ करता हूं और यह उम्मीद करता हूं कि आपको हिंदुस्तान की ख़िदमत करने का और उसके लोगों की तरक्की और बढ़ोतरी में मदद करने का मौक़ा मिले। ●

१० फरवरी, १९३८ को हरिपुरा में आल-इंडिया कांग्रेस कमेटी को पेश की गई रिपोर्ट पर चर्चा में इंगलैंड के साम्राज्यवादी स्वरूप का पर्दाफाश किया है ।

इंगलैराड का साम्राज्यवादी लोकतंत्र

मेरे *साथी ने, जो कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी हैं, कांग्रेस के साल-भर के काम की रिपोर्ट आल-इंडिया कांग्रेस* कमेटी को पेश की है । अगर्चे यह रिवाज नहीं है कि विदा होनेवाला सदर इस रिपोर्ट में अपनी ओर से कुछ जोड़े या अलग से कहे, तो भी मैं ऐसा करने का साहस कर रहा हूं, क्योंकि मैं कमेटी के सामने कुछ विचार रखना चाहता हूं। मैंने इस लेख को रिपोर्ट के नाम से पुकारा है, लेकिन यह नामकरण सही नहीं हुआ । मैं उन बातों को दोहराना नहीं चाहता, जो जनरल सेक्रेटरी ने कही हैं, और न ही पिछले साल की कार्रवाई पर ग़ौर करना चाहता हूं । लेकिन मैं यह ज़रूर चाहता हूं कि जो सवाल आज हमारे सामने हैं, उनके अहम पहलुओं पर आप ख़ास ध्यान दें ।

ये सवाल दिन-ब-दिन ज्यादा पेचीदा होते जा रहे हैं और कांग्रेस पर ज़िम्मेदारी का बोझ बढ़ता जा रहा है। यह कांग्रेस के बड़प्पन का, और हमारे मुल्क के करोड़ों वासियों पर इस महान संस्था के लगातार बढ़नेवाले असर का लाज़िमी नतीजा है । हिंदुस्तान की क़िस्मत को बनाने का काम इतिहास ने कांग्रेस पर डाल दिया है, और आनेवाला इतिहास बतलायगा कि हमने इस अहम काम को किस तरह निभाया। बीते अर्से में हमने अच्छे-अच्छे काम करके दिखलाये हैं और बावजूद अपनी कमज़ोरियों और ऐबों के, हमने बड़े इत्मीनान से हिंदुस्तान की सेवा की है और उसकी गमग़ीन संतान के लिए अपने मन में गहरा प्यार रखा है, लेकिन भविष्य हमारे लिए और भी मुश्किल है। हमारा और कांग्रेस का क्या होगा ? हम जो हिंदुस्तान के एक देहात के कोने में सम्मेलन कर रहे हैं, भविष्य का भारी बोझ अपने कंधों पर उठा रहे हैं। हम जो कुछ यहां कहते हैं या करते हैं, उसका आनेवाले वक्त पर कुछ-न-कुछ असर ज़रूर पड़ता है।

हम कौन हैं ? हम ऐसे लोग हैं, जो एक महान संस्था से नाता रखते हैं। हर आदमी जनता के सामने मंच पर अपना-अपना खेल दिखाता है और होनेवाली बातों पर भी अपना असर डालता है । संस्थाएं अनगिनत लोगों की ज़िंदगी को ताक़त देती हैं और उनकी कार्रवाइयों पर भी असर डालती हैं। चूंकि कांग्रेस हिन्दुस्तान में महान ताक़तों का ज़रिया बन गई है और जनसाधारण की आज़ादी की ख्वाहिश और उनकी ग़रीबी से छुटकारा पाने की तमन्ना को ज़ाहिर करने लगी है, इसलिए इसने साम्राज्यशाही के ख़िलाफ हिन्दुस्तान का झंडा बुलंद करने का शानदार काम अपने हाथ में लिया है।

जो ज़िम्मेदारी हमारे ऊपर आ गई है, हम उससे बच नहीं सकते । हमारी ज़िम्मेदारी सिर्फ घरेलू सवालों की ही नहीं है, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय सवालों की भी है, हालांकि घरेलू सवाल भी अहम हैं। हम अपनी आज़ादी की लड़ाई में व्यस्त रहकर भी अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में हिस्सा लेने लगे हैं, और यह सिलसिला दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा

और ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र कमजोर नहीं पड़ जाते। जापान उस वक्त तक हिंदुस्तान में आने का इरादा नहीं कर सकता जबतक पूरे चीन को नहीं हड़प लेता। उसके बाद भी, पहले आस्ट्रेलिया, फिलिपाइन द्वीप, और डच इंडीज़ की बारी आयगी और तब हिंदुस्तान की।

इसी तरह हिंदुस्तान पर इटली या जर्मनी के हमले का विचार करना भी ग़लत है। इन दोनों मुल्कों का कार्यक्षेत्र यूरोप में है। लेकिन अगर किसी वजह से फासिस्ट ताक़तें विश्वयुद्ध में जीत जाती हैं और सारी दुनिया उनके क़दमों के नीचे आ जाती है तो फिर दूसरी बात है। इस हालत में भी हिंदुस्तान अपनी ख़ुशी से किसी भी मुल्क की ग़ुलामी मंजूर नहीं करेगा। फौजों व दूसरे साधनों की कमी के बावजूद भी वह आक्रमणकारी देश का डटकर मुक़ाबला करेगा।

हाल ही में हमारे कुछ शहरों में हवाई हमलों से रक्षा करने का तमाशा किया गया और गैसमास्क का ढोंग दिखाया गया। भूख से तड़पते हुए लोगों को अनाज या काम देने की बजाय गैसमास्क पहनाने का ख़याल सिर्फ एक मजाक-सा मालूम देता है। हो सकता है, यह सिपाही-दिमाग़ की उपज है; लेकिन हिंदुस्तान में आज की हालत में यह एक फिज़ूल-सी चीज़ है। हिंदुस्तान को हवाई हमलों का सीधा कोई ख़तरा नहीं है, सिवाय इसके कि कहीं इक्के-दुक्के हमले हो जायं। क्या जर्मनी, इटली या जापान के हवाई जहाज़ हज़ारों मील का फासला तय करके हिंदुस्तान पर बम गिराने के लिए ही आयंगे। यह तो वैसे ही बहुत मुश्किल काम है, फिर दुश्मन के ख्याल से भी इससे कोई फायदा नहीं है। हिंदुस्तान में हवाई हमलों से रक्षा की तालीम का एक ही उद्देश्य है और वह है हिंदुस्तान की जनता को आनेवाली लड़ाई से परिचित करना और लड़ाई में शामिल होने के लिए उचित वातावरण पैदा करना। हमारे बहुत-से देशवासियों ने इस चाल को नहीं पहचाना है और वे इन मनोरंजक फौजी कार्रवाइयों को पसन्द करते हैं। अब वह समय आ गया है कि वे इस सचाई को समझ लें और इन तैयारियों का विरोध इसलिए करें कि इनका उद्देश्य हमें साम्राज्यवादी लड़ाई में घसीटना है।

इसी कारण हमने चीन में हिंदुस्तानी सिपाहियों को भेजने का भी विरोध किया था। हिंदुस्तान ने चीन की जनता के साथ अपनी दिली हमदर्दी प्रकट की है। जितनी भी हमसे हो सकेगी, हम उनकी मदद करेंगे। लेकिन हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए हिंदुस्तानी सिपाहियों के इस्तेमाल को सहन नहीं कर सकते।

अगर हम साम्राज्यवादी लड़ाई में हिसा लेने के विरोधी हैं तो हम हथियारबंदी में वृद्धि के भी उतने ही विरोधी हैं। हिन्दुस्तान की फौज क़ौमी फौज नहीं है। यह एक साम्राज्यवादी फौज है। इसकी ताक़त बढ़ाने का मतलब है साम्राज्यवाद को मज़बूत बनाना और हम इसमें हर्गिज़ शामिल नहीं हो सकते। हाल ही में हिंदुस्तान में ब्रिटिश फौज को सुसज्जित करने के बारे में केन्द्रीय असेम्बली में चर्चा हुई थी। हम इसके कतई खिलाफ हैं। हमें बतलाया जाता है कि यह भारत की रक्षा के लिए ज़रूरी है, लेकिन हमारे शासकों का "हिंदुस्तान की रक्षा" का मतलब है—"हिंदुस्तान में ब्रिटिश साम्राज्य और ब्रिटिश हितों की सुरक्षा"।

दुनिया में लगातार उथल-पुथल चल रही है और यह कोई नहीं कह सकता कि किस वक्त मुसीबत की घड़ी आ जाय। इसलिए हमें अपने विचारों में बिलकुल स्पष्ट होना चाहिए कि हम कहां खड़े हैं और क्या करना चाहते हैं? फासिज्म और लोकतंत्र के बीच लड़ाई होने पर हम पूरी तौर से लोकतंत्र के पक्ष में होंगे, लेकिन इंगलैण्ड का हमारे साथ जो संबंध है, वह लोकतंत्री रूप का नहीं है। हम उसके साम्राज्यवाद से सहयोग नहीं कर सकते। हिंदुस्तान का प्रश्न तो एक तरफ रहा, ब्रिटेन की विदेश-नीति पिछले आठ साल से लगातार फासिज्म का समर्थन

कर रही है। ब्रिटेन ने पश्चिम में और सुदूरपूर्व में फासिस्ट आक्रमण की या तो खुल्लमखुल्ला मदद की है या उसे चुपचाप सहन कर लिया है। उसके विरोध में बोलते रहने पर भी उसने लगातार फासिस्ट ताक़तों को बढ़ाने में ही मदद की है और लीग ऑव नेशन्स को कमज़ोर बनाया है। मौजूदा ज़माने के अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को समझने के लिए ब्रिटिश राष्ट्रीय सरकार के इस रुख़ को ध्यान में रखना ज़रूरी है। इसी नीति के कारण हथियारबंदी को रोकने की योजना असफल हुई, जर्मनी ने ब्रसेल्स की संधि को तोड़ दिया और ब्रिटेन के साथ समुद्री संधि कर ली। फ्रांस शायद दूसरी तरह की नीति अपना लेता; लेकिन इस डर से कि कहीं वह अकेला न रह जाय वह भी ब्रिटेन की विदेश-नीति का पिछलग्गू बन गया है। इस प्रकार हम देखेंगे कि हथियारबंदी को रोकने की योजना के असफल रहने, लीग ऑव नेशन्स के ख़त्म होने और अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में भयानक गिरावट में ब्रिटेन की बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है।

कांग्रेस की नीति दो मूल धारणाओं पर टिकी है--पूर्ण स्वराज्य यानी जनता के द्वारा चुनी गई विधान-सभा ही हमारा विधान बनाये, और दूसरे, ब्रिटेन की लड़ाइयों में हिंदुस्तान को शामिल करने का विरोध करना। अमन क़ायम रखने की ख़ातिर हम लड़ाई को ग़ैर-क़ानूनी बनाने और विश्व-शान्ति और सामूहिक सुरक्षा क़ायम करने में पूरे तौर पर सहयोग देने के लिए तैयार हैं। हम तो इससे भी आगे जाना चाहते हैं। जैसाकि हमारी क़ौमी तहरीक के बुनियादी उसूलों से प्रकट है कि हम राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में 'हिंसा' को बिल्कुल ख़त्म कर देना चाहते हैं। इसलिए हम हथियारबंदी पर ज्यादा-से-ज्यादा रोक लगाने के पक्ष में हैं। विश्व-व्यवस्था में हमारा विश्वास है, और विभिन्न राष्ट्रों में आपसी सहयोग पैदा करने की हर कोशिश में हम साथ देंगे।

लीग ऑव नेशन्स एक ऐसी ही कोशिश थी। लीग विभिन्न सरकारों की एक संस्था थी और चूंकि हमारी सरकार एक विदेशी सरकार है, इसलिए हमारे लिए लीग में कोई जगह नहीं थी। हिंदुस्तान के नाम पर ब्रिटिश सरकार को एक वोट और मिल गया था। हम इस ग़लत नुमाइन्दग़ी को पसन्द नहीं करते और इसीलिए हमने लीग की निन्दा की और अक्सर हिंदुस्तान को वहां से वापस बुलाने की मांग की है। आज़ाद हिंदुस्तान ख़ुशी-ख़ुशी लीग के साथ सहयोग करेगा और उसको सरकारों की लीग की बजाय जनता की लीग बनाने की भरसक कोशिश करेगा।

विश्व-शान्ति क़ायम करने और दूसरी क़ौमों के साथ सहयोग करने की हमारी तीव्र इच्छा इस बात में प्रकट होती है कि कांग्रेस 'विश्व-शान्ति-सम्मेलन' में शामिल हो गई है? 'विश्व-शान्ति-सम्मेलन' के प्रोग्राम का एक ज़रूरी हिस्सा है लीग ऑव नेशन्स को मज़बूत बनाना। हम इसे स्वीकार करते हैं, लेकिन शर्त यह है कि हमें उसमें उचित जगह मिलनी चाहिए। हमें यह भी साफ कर देना चाहिए कि आज़ाद होने पर लीग में जाना मंजूर कर लेने का यह मतलब नहीं कि हम वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय मामलों को भी ज्यों-का-त्यों मंजूर कर लेंगे या उन बहुत-सी अन्याय-पूर्ण संधियों का भी समर्थन करेंगे, जो साम्राज्यवादी देशों ने कमज़ोर देशों पर लादी हुई हैं। लीग न्याय, लोकतंत्र और साम्राज्यवाद के विरोध की बुनियाद पर रहकर ही ठीक तरह चल सकती है।

सामूहिक सुरक्षा के लिए ज़रूरी है कि आक्रमणकारी राष्ट्र के ख़िलाफ किसी-न-किसी तरह की ताक़त का इस्तेमाल किया जाय। हिंदुस्तान बिना किसी हिचक के इस तरह की ताक़त के इस्तेमाल में हिस्सा लेगा; लेकिन यह याद रखना चाहिए कि इस सवाल और किन्हीं दूसरे सवालों के मामलों में कांग्रेस का रुख अहिंसा की नीति के अनुसार होगा। अगर हम अपनी आज़ादी की लड़ाई में अहिंसा की नीति पर चले हैं, तो उसी तरह अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में, और दोषी और आक्रमणकारी राष्ट्र को मजबूर करने के लिए भी उसी नीति का सहारा लेंगे। शायद इसमें कुछ शक है कि इस नीति पर चलकर किस तरह से विदेशी हमले के ख़िलाफ देश को बचाया जा सकता है?

हममें से कुछ लोग अगर आज स्पेन या चीन में होते तो शायद हालात से मजबूर होकर रक्षा के लिए हिंसा का रास्ता अपना लेते। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में पाबंदी का ख्याल करते हुए, कांग्रेस फौजी ताक़त के इस्तेमाल के ज़रूर विरुद्ध रहेगी; क्योंकि ऐसा करने से और भी बड़े पैमाने पर लड़ाई भड़क जाती है। हमारी नीति होगी आर्थिक पाबंदियों का इस्तेमाल करना, जिनको यदि ठीक तरह से प्रयोग में लाया जाय तो अख़ीर में ज्यादा अच्छे नतीजे निकल सकते हैं।

आजकल दुनिया में इंगलैण्ड की चर्चा एक लोकतंत्री देश के रूप में की जाती है, लेकिन ब्रिटिश सरकार लोकतंत्री उसूलों पर कितना चलती है ? उसका अनुमान हिंदुस्तान के नये विधान से लगाया जा सकता है, जिसमें तमाम संरक्षण और विशिष्ट अधिकार गवर्नरों और वाइसराय को सौंप दिये गए हैं। यह बात संघ-शासन की नई योजना से और भी स्पष्ट हो जाती है, जिसमें देसी रियासतों की आड़ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को स्थिर रखने की कोशिश की गई है। हिंदुस्तान इस संघ-शासन का, और उसके पीछे छुपे हुए साम्राज्यवाद का विरोध करेगा और हम अपनी आज़ादी की लड़ाई को जारी रखेंगे, चाहे लड़ाई छिड़े या न छिड़े।

देसी रियासतें अभी तक पुरानी बेढंगी चाल चल रही हैं और बीते ज़माने के साथ चिपटी हुई हैं। वहां सब तरह की सियासी कार्रवाइयों को कुचलने की कोशिश होती है; लेकिन फिर भी सारे हिंदुस्तान में एक लहर-सी फैल गई है और रियासती जनता में एक जागृति आ गई है। रियासतों के बारे में कांग्रेस का उद्देश्य स्पष्ट है। हिंदुस्तान की आज़ादी में रियासतों की आज़ादी भी शामिल है और रियासतों की प्रजा को वही आज़ादी मिलनी चाहिए, जो बाक़ी हिन्दुस्तान के लोगों को मिलनी है। हमारी आज़ादी के आन्दोलन का क्षेत्र रियासतों में भी है। अगर्चे उद्देश्य स्पष्ट है, लेकिन कांग्रेस के रुख के बारे में लोगों में कुछ शक है। कुछ लोगों का कहना है कि कांग्रेस को रियासतों में दख़ल नहीं देना चाहिए और वहां के आन्दोलन का भार वहां की जनता पर ही छोड़ देना चाहिए। बेशक, भार तो वहां की जनता पर ही पड़ेगा, लेकिन यह नामुमकिन है कि कांग्रेस इससे दूर रहे। हम कांग्रेस की आड़ में शिकार खेलने को रोक सकते हैं, और रोकना भी चाहिए। लेकिन रियासतों में आज़ादी की कोशिशों में कांग्रेस की बहुत दिलचस्पी है और यह भरसक उन्हें मदद देगी। रियासतें दुनिया के वे अंधेरे और गंदे कोने हैं, जहां अक्सर आश्चर्यजनक घटनाएं होती रहती हैं। पिछले बरस मैसूर जैसी उन्नत रियासत ने उत्तरदायी शासन क़ायम करने के आन्दोलन को कुचलकर बेहद बदनामी कमाई है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने एक प्रस्ताव के ज़रिये इस जुल्म की भारी निन्दा की है। गांधीजी ने इस प्रस्ताव को 'नियमविरुद्ध' बतलाया है। लेकिन मेरे ख्याल में तो यह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिकार की बात थी। अगर मैसूर जैसी रियासत इस तरह काम करती है, तो फिर और रियासतों का तो कहना ही क्या है ?

कांग्रेसी मंत्रिमण्डल पिछले छह महीने से काम कर रहे हैं, लेकिन उनके सामने नये मसले होने की वजह से उन्हें चैन नहीं है। अनेक कठिनाइयों में भी मंत्रिमण्डल दृढ़तापूर्वक काम कर रहे हैं। उन्होंने कई अच्छे काम किये हैं। लेकिन हमारी इच्छा है कि वे और भी ज्यादा काम करते। अभी कई काम करने बाक़ी हैं, कितनी ही बुराइयां दूर करनी हैं, और कई कठिन मंज़िलें तय करनी हैं। मंत्रियों का बहुत-सा वक्त और ताक़त उन छोटी-छोटी बातों को पूरा करने में लग जाती है, जिनको पुरानी व्यवस्था के नुमाइन्दे पसन्द नहीं करते।

हम आजकल हिंदुस्तान में समाज के अन्दर कई ताक़तों के उभरने और कभी-कभी उनके बीच जद्दो-जहद को भी महसूस कर रहे हैं। कांग्रेस, जो कई विभिन्न शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है, कभी-कभी इस जद्दो-

जद्दोजहद का केंद्र बन जाती है। इस तरह हमारे अन्दर एक को दूसरे से अलग करनेवाली प्रवृत्तियां काम कर रही हैं; लेकिन इसके बावजूद भी एका पैदा करनेवाली प्रवृत्तियां भी मौजूद हैं, जिनके कारण हम इतने दिनों से इकट्ठे चले आ रहे हैं। मुझे इसमें बिल्कुल शक नहीं कि हमें एका करनेवाली प्रवृत्तियों को कामयाब बनाना है, नहीं तो हमें बहुत नुकसान पहुंचेगा। कांग्रेस के चुनाव के दौरान में, और पहले भी ऐसी बहुत-सी बातें हो चुकी हैं, जिनपर हमने गहरा विचार किया है। इससे दिल को बहुत चोट पहुंची है। मैं इस मामले पर यहां चर्चा करना नहीं चाहता, सिर्फ इतना ही कहना काफी समझता हूं कि आपस में दलबंदी की भावना बहुत बढ़ गई है। यह ज़रूरी है कि कांग्रेस के दो पक्ष रहें—एक दायां और दूसरा बायां। इनके अलावा और बहुत-से बीच के पक्ष भी मौजूद हैं, लेकिन यह सीधा-सादा विभाजन कई बार गुमराह कर देता है। बायें पक्ष को ख़त्म कर देने की कोशिश अगर सफल हो गई तो वह बहुत भयानक बात होगी, क्योंकि यह पक्ष हमारे आन्दोलन के एक आवश्यक अंग का प्रतिनिधित्व करता है; जिसके बिना इसकी बहुत-सी प्रगतिशील शक्तियां ख़त्म हो जायंगी। इससे जनता के दिमाग़ में अशांति पैदा हो सकती है, ख़ासकर किसानों में, जिससे कांग्रेस कमज़ोर बन जायगी। मैं ख़याल करता हूं कि पिछले चन्द महीनें में इसी क़िस्म की कोशिशें की गई हैं, और इनसे बहुत कटुता पैदा हो गई है।

हमें अपनी जगह पर मज़बूती से डटे रहना चाहिए और आजकल के संकट में हमें जोश से, या दलबन्दी के भाव से, या सबकी भलाई की बजाय अस्थायी लाभ उठा लेने की कोशिश से इधर-उधर नहीं भटकना चाहिए। हमें यह याद रखना चाहिए कि हमने राजनैतिक क्षेत्र में नेकी के बहुत ऊंचे दर्जे पर काम किया है और सार्वजनिक कामों में भी हमें सचाई के साथ ही काम करना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अहिंसा हमारे लिए सिर्फ शब्दमात्र नहीं है, बल्कि एक सोच-समझकर अपनाई गई नीति है, जिसपर चलकर हमें अच्छे नतीजे ही मिले हैं। यह सच है कि बहुत-से लोग, जो सत्य और अहिंसा की रट लगाते हैं, दोनों में से किसीपर भी यक़ीन नहीं रखते और वे इन शब्दों का इस्तेमाल सिर्फ अपने स्वार्थों को पूरा करने की ख़ातिर ही करते हैं, लेकिन फिर भी हम भरसक सत्य और अहिंसा की राह पर ही चलेंगे। उस राजनीति के खेल से क्या फायदा, कि हम अपने उसूल ही खो बैठें और अपनी ईमानदारी पर धब्बा लगा दें?

अब हिंदुस्तान पर 'किसान' का राज होनेवाला है। हमें उसके, और उस-जैसों के पास बार-बार जाना पड़ेगा। हमारा भला उसी हालत में हो सकता है जब हम उसकी हमदर्दी हासिल कर लें और उसको लम्बी गुलामी से मुक्ति दिला दें। लेकिन अगर हम उसके काम न आयंगे और जो वादे हमने उसके साथ किये हैं, उन्हें पूरा न करेंगे, तो हमारे लिए यह अच्छा नहीं होगा।

मैं पहले की ही तरह अब भी उतना ही पक्का यक़ीन रखता हूं कि सिर्फ समाजवाद ही हमारी या बाक़ी दुनिया की समस्याओं को सुलझा सकता है। लेकिन इस वक्त हमारे सामने दो बुनियादी सवाल हैं—एक तो साम्राज्यवाद को ख़त्म करना दूसरा, रियासतों और ज़मीन से संबंध रखनेवाली जागीरदारी की प्रथा को ख़त्म करना। ●

४ फरवरी, १९३९ को इलाहाबाद से लिखा सुभाष-चन्द्र बोस के नाम पत्र, जिसमें आपसी मतभेद के कुछ मुद्दों पर चर्चा की है ।

गंभीर प्रश्नों पर आपसी मतभेद

शान्तिनिकेतन में हमने कोई घंटेभर या ज्यादा बातचीत की थी, लेकिन मेरा ख्याल है कि हम स्थिति को साफ करने में कामयाब नहीं हुए । असल में हम कर भी नहीं सकते थे, क्योंकि कई तरह की अनिश्चितताएं हैं और मुझे मालूम नहीं, मामलात की क्या शक्ल बनेगी । हमें इन घटनाओं का इन्तज़ार करना होगा, लेकिन साथ ही ये घटनाएं ख़ुद हमपर और ख़ास तौर पर तुमपर निर्भर करती हैं ।

जैसा मैंने तुमसे कहा, तुम्हें चुनाव लड़ने से कुछ तो फायदा हुआ और कुछ नुकसान । मैं फायदे को मानता हूं, लेकिन जो नुक्सान होगा, उससे आशंकित हूं । मैं अब भी सोचता हूं कि कुल मिलाकर बेहतर होता अगर यह ख़ासतौर का संघष इस तरह न हुआ होता । परन्तु यह तो पुरानी बात है और हमें भविष्य का सामना करना है । इस भविष्य को हमें बड़े नज़रिये से, न कि व्यक्तियों के नज़रिये से देखना होगा । ज़ाहिर है कि हममें से किसीके लिए भी यह अच्छा नहीं कि हमारी इच्छा के अनुसार ही मामलात की शक्ल न बने तो हम गुस्सा कर लें । नतीजा कुछ भी निकले, हमें तो ध्येय में पूरा योग देना है । यह मान लिया जाय तो भी सही रास्ता देखना आसान नहीं है और मेरा मन भविष्य के बारे में चिंतित है ।

पहली चीज़ जो हमें करनी होगी वह यह है कि एक-दूसरे के नज़रिये को पूरी तरह समझ लें । अगर यह कर लें तो तजवीज़ों का बनाना आसान है । लेकिन हमारे मन में संघर्ष और शंकाएं भरी हों कि सामनेवाले का क्या मक़सद है तब भविष्य के निर्माण की कोशिश करना आसान काम नहीं होता । पिछले कुछ बरसों में मैं गांधीजी और वल्लभ-भाई और उनके ख्याल के दूसरे कुछ लोगों के निकट सम्पर्क में आया हूं । हमारी बार-बार और लम्बी चर्चाएं हुई हैं और हालांकि हम एक-दूसरे को क़ायल नहीं कर सके तो भी असर काफी डाला है और मुझे विश्वास है कि हमने एक-दूसरे को बहुत हद तक समझ भी लिया है । १९३३ में ही जेलखाने से निकलकर मैं गांधीजी से मिलने पूना गया था, जहां वह उपवास के बाद आराम कर रहे थे । हमारे संग्राम के जुदे-जुदे पहलुओं के बारे में लंबी बातें हुईं और फिर हमारे बीच पत्र-व्यवहार हुआ, जो बाद में छपा । उन पत्रों और बातचीतों से हमारे स्वभाव-संबंधी और बुनियादी मतभेद भी ज़ाहिर हुए और बहुत-सी चीजें, जो एक-सी थीं, वे भी सामने आईं । तबसे खानगी में और कार्य-समिति में कई बार चर्चाएं हुई हैं । कई मौक़ों पर मैं अध्यक्ष-पद से और कार्य-समिति से भी त्यागपत्र देने को तैयार हो गया था, लेकिन मैं रुका, क्योंकि मैंने सोचा कि इससे ऐसे मौक़े पर संकट पैदा हो जायगा, जब एकता की निहायत ज़रूरत है । शायद मेरी भूल हुई ।

अब यह संकट ऐसे तरीक़े पर आया है, जो दुर्भाग्यपूर्ण है । मेरा अपना कार्यक्रम निश्चित करने से पहले मुझे

कुछ कल्पना होनी चाहिए कि तुम्हारे ख्याल से कांग्रेस को क्या होना चाहिए और क्या करना चाहिए। मुझे तो इस बारे में कुछ भी मालूम नहीं है। वामपक्ष और दक्षिणपक्ष के बारे में और संघ-शासन वगैरा के बारे में बहुत-सी बातें हुई हैं, फिर भी जहांतक मैं याद कर सकता हूं तुम्हारी सदारत के दौरान में हमने कार्यसमिति में इन सवालों के बारे में कोई खास महत्व की बातों पर चर्चा नहीं की। मुझे पता नहीं तुम किसे वामपक्षी और किसे दक्षिणपक्षी समझते हो। अध्यक्ष के चुनाव के दौरान तुम्हारे बयानों में जिस ढंग से इन शब्दों का प्रयोग किया गया, उनसे यह अर्थ निकलता था कि गांधीजी और कार्य-समिति में जो उनकी मंडली समझी जाती है, वे दक्षिणपक्षी नेता हैं। उनके विरोधी जो भी हों, वे वामपक्षी हैं। यह मुझे बिल्कुल ग़लत-बयानी दिखाई देती है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि कई कहे जानेवाले वामपक्षी कथित दक्षिणपक्षियों से अधिक दक्षिणपक्षी हैं। तेज़ भाषा और कांग्रेस के पुराने नेतृत्व की नुक्ताचीनी करने और उनपर हमला करने की क्षमता राजनीति में वामपक्ष की कसौटी नहीं है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि तात्कालिक भविष्य में हमारे मुख्य खतरों में से एक यह है कि ऐसे लोग पदारूढ़ होंगे और ज़िम्मेदारी के स्थान में आ जायंगे, जिनमें कुछ भी ज़िम्मेदारी की भावना नहीं है या स्थिति को वे अच्छी तरह समझते नहीं हैं और न उनमें ऊंचे दर्जे की बुद्धि मालूम होती है। वे ऐसी स्थिति पैदा कर देंगे, जिससे बड़ी प्रतिक्रिया हुए बिना नहीं रहेगी और फिर सच्चे वामपक्षियों का सफाया हो जायगा। चीन का उदाहरण हमारे सामने है और मैं नहीं चाहता कि हिंदुस्तान उस दुर्भाग्यपूर्ण रास्ते को अपनाये। मेरा बस चले तो मैं उसे रोकूं।

मेरे ख्याल से वामपक्ष और दक्षिणपक्ष शब्दों का प्रयोग आम तौर पर बिल्कुल ग़लत और गड़बड़ पैदा करनेवाला हुआ है। यदि इन शब्दों के बजाय हम नीतियों के बारे में बात करें तो कहीं बेहतर होगा। तुम किस नीति के समर्थक हो? संघ-विरोधी? बहुत ठीक। मेरा ख्याल है कि कार्य-समिति के सदस्यों का बड़ा बहुमत उसका समर्थन करेगा और इस मामले में उनकी कमज़ोरी का संकेत करना न्यायपूर्ण नहीं है। क्या तुम्हारे लिए यह बेहतर न होता कि इस मामले की चर्चा कार्यसमिति में पूरी तरह की जाती और इस बारे में कोई तजवीज़ भी पेश की जाती और फिर उसकी प्रतिक्रियाएं देखी जातीं? अपने साथियों के साथ इस मामले की पूरी चर्चा किये बिना उन सबपर पीछे हटने का दोष लगाना अवश्य ही न्याय नहीं था। मैं यहां उस बात को नहीं दोहराऊंगा, जो मैंने तुमसे इस असाधारण अभियोग के बारे में कही थी कि संघ-शासन में मंत्रिमंडलों का बंटवारा पहले ही हो चुका है। अनिवार्य रूप से अधिकांश लोगों ने सोचा कि कार्य-समिति के तुम्हारे साथी दोषी थे।

तुम्हें याद होगा कि मैंने यूरोप से तुम्हें और कार्य-समिति को लम्बी रिपोर्ट भेजी थी। मैंने बहुत ब्यौरेवार चर्चा की थी कि संघ-शासन के प्रति हमारा क्या रवैया होना चाहिए और निर्देशों की मांग की थी। तुमने मुझे कोई निर्देश नहीं भेजा, पहुंच तक नहीं दी। गांधीजी मेरे तरीक़े से सहमत थे और मुझे बताया गया है कि कार्य-समिति के अधिकांश सदस्य भी सहमत थे। मुझे अभी तक पता नहीं कि तुमपर क्या प्रतिक्रियाएं हुई, परन्तु मुझे सूचना देने की बात छोड़ दी जाय तो भी क्या तुम्हारे लिए यह मौक़ा नहीं था कि इस मामले की कार्यसमिति में खूब चर्चा की जाय और इधर या उधर फैसला कर लिया जाय? दुर्भाग्य से इस मामले में और दूसरे मामलों में तुमने कार्यसमिति में बिल्कुल निष्क्रिय वृत्ति धारण की है, हालांकि कभी-कभी बाहर तुमने अपने विचार प्रकट किये हैं। नतीजा यह निकला कि तुमने एक निर्देशक अध्यक्ष की अपेक्षा स्पीकर के रूप में अधिक काम किया है।

महासमिति के दफ्तर का काम पिछले साल के दौरान में बहुत बिगड़ गया है। तुमने उसे देखा तक नहीं और तुम्हारे नाम के पत्रों और तारों का जवाब शायद ही दिया गया हो। नतीजा यह होता है कि दफ्तर के बहुत-से

मामले अनिश्चित काल तक लटके रहते हैं। ठीक जिस समय हमारे संगठन को गहरे ध्यान की जरूरत है, उस समय मुख्य कार्यालय कारगर तरीक़े पर काम नहीं करता।

हमारे सामने रियासतों का सवाल है, हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न है और किसानों तथा मज़दूरों की समस्या है। इनके बारे में कई दृष्टिकोण हैं और कुछ संघर्ष भी हैं। क्या इनमें से किसीपर तुम्हारे निश्चित विचार हैं, जो अपने साथियों के विचारों से भिन्न हैं? बाम्बे ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल को लो। मैं उसकी कुछ धाराओं से सहमत नहीं हूं और यदि मैं यहां होता तो उन्हें बदलवाने की पूरी कोशिश करता। क्या तुम भी असहमत हो और हो तो क्या तुमने उन्हें बदलवाने की कोशिश की? किसानों-संबंधी आम स्थिति के संबंध में, बंगाल-सहित, विभिन्न प्रान्तों में, मुझे पता नहीं कि तुम्हारे निश्चित विचार क्या हैं।

प्रान्तीय कांग्रेसी सरकारें तेज़ी से छोटे-मोटे संकटों की ओर जा रही हैं और यह बिल्कुल संभव है कि रियासती आन्दोलन के बढ़ने से कोई बड़ा संकट उपस्थित हो जाय, जिसमें हम सब और प्रान्तीय सरकारें भी फंस जायंगी। तुम्हारे ख्याल से हमें कौन-सा रास्ता अख्तियार करना चाहिए? बंगाल में मिले-जुले मंत्रिमंडल की तुम्हारी इच्छा का संविधानवाद की ओर बढ़ जाने के खिलाफ तुम्हारी नाराज़ी के साथ मेल नहीं बैठता। मामूली तौर पर इसे एक दक्षिणपक्षी कार्रवाई समझा जायगा और खास तौर पर अब जबकि स्थिति का तेज़ी के साथ विकास हो रहा है।

और फिर वैदेशिक नीति का भी सवाल है। तुम जानते हो कि खास तौर पर इस नाज़ुक मौक़े पर मैं उसे बहुत अहमियत देता हूं। जहांतक मैं समझ सकता हूं, तुम भी देते हो। परन्तु अभी तक मुझे ठीक-ठीक पता नहीं है कि तुम किस नीति की कल्पना करते हो। मुझे सामान्य रूप में गांधीजी का नज़रिया मालूम है और मैं उनसे पूरी तरह सहमत नहीं हूं, हालांकि अंतर्राष्ट्रीय संकट के दो-तीन बरसों में हम साथ-साथ चले हैं और चल सकते हैं और उन्होंने मेरे नज़रिये से पूरी तरह सहमत हुए बिना अक्सर उसे स्वीकार किया है।

ये और कई दूसरे सवाल मेरे मन में पैदा होते हैं और मैं जानता हूं कि और बहुत-से लोगों को भी उनसे परेशानी होती है। उनमें वे लोग भी शामिल हैं, जिन्होंने चुनाव में तुम्हारे लिए राय दी है। यह बिल्कुल मुमकिन है कि इनमें से बहुत-से लोग कांग्रेस में उठनेवाले सवालों पर बिल्कुल दूसरी तरह राय दें और वहां कोई नई स्थिति पैदा हो जाय।

कार्य-समिति की रचना से बहुत-सी समस्याएं खड़ी होंगी। अंतिम समस्या ऐसी समिति बनाने की होगी, जिसे महासमिति का और आम तौर पर कांग्रेस का विश्वास प्राप्त हो। वर्तमान परिस्थिति में यह स्वयं बहुत कठिन बात है। ऐसी समिति का होना बहुत अच्छी बात नहीं है, जो ऐसे लोगों की इच्छा पर क़ायम रहती हैं, जो ज़िम्मेदार नहीं समझे जाते और जिनकी प्रमुखता का मुख्य कारण यह हो कि वे जिसे दक्षिणपक्षी समझते हैं, उनकी उन्होंने टीका-टिप्पणी की है। ऐसी समिति पर किसीका, चाहे वह वामपक्षी हो या दक्षिणपक्षी, विश्वास नहीं होगा। वह या तो उठाकर फेंक दी जायगी या महत्वहीन बनकर रह जायगी।

यह बिल्कुल संभव है कि रियासती संग्राम के बढ़ने पर वल्लभभाई और गांधीजी तक उसमें अधिकाधिक फंस जायंगे। हिंदुस्तान की राजनीति में वह केन्द्रीय वस्तु बन जायगी और कोई कार्यसमिति, जिसमें दूसरे लोग होंगे, कारगर नहीं होगी और उसका महत्व नहीं रहेगा। पिछले दस-पंद्रह साल में कार्यसमिति का हिंदुस्तान में और बाहर भी बहुत ऊंचा दर्जा रहा है। उसके फैसलों का कुछ अर्थ माना जाता है और उसकी बात में ताक़त होती है। वह इतनी चिल्लाती नहीं है, परन्तु जो कुछ वह कहती है उसके पीछे ताक़त और क्रिया होती है। मुझे डर है कि हमारे

बहुत-से कथित वामपक्षी और किसी बात की अपेक्षा तेज़ भाषा में अधिक विश्वास करते हैं। मेरे दिल में नरीमान-ढंग के सार्वजनिक कार्यकर्त्ता के लिए कुछ भी प्रशंसा नहीं और इस क़िस्म के बहुत लोग है।

हम दुखदायी पेंच में फंस गये हैं और फिलहाल मुझे उसमें से निकलने का कोई रास्ता नज़र नहीं आता। मैं पूरी कोशिश करने को तैयार हूं, लेकिन स्पष्टीकरण और नेतृत्व तुम्हारी तरफ से होना चाहिए और तभी दूसरों के लिए यह निश्चय करना संभव होगा कि उनका मेल बैठता है या नहीं। इसलिए तुमको मेरा सुझाव है कि तुम स्थिति के सभी गूढ़ार्थों की जांच करो, ऊपर बताई समस्याओं पर विचार करो और उनपर एक ब्यौरेवार नोट लिखो। इसे प्रकाशित करने की ज़रूरत नहीं, परन्तु उसे उन लोगों को दिखलाना चाहिए, जिन्हें तुम सहयोग के लिए निमंत्रण दो। ऐसा नोट चर्चा का आधार बन जायगा और चर्चा से तुमको मौजूदा गुत्थी सुलझाने में मदद मिलेगी। बातचीत से बहुत फायदा नहीं होता। वे अस्पष्ट और अक्सर गुमराह करनेवाली होती हैं और हमारे यहां पहले ही काफी अस्पष्टता रही है। मैं चाहता हूं कि तुम ब्रिटिश सरकार को चुनौती देने के बारे में अपने सुझाव का खुलासा करो। ठीक-ठीक तुम इस बारे में क्या कार्रवाई करना चाहते हो और बाद में क्या करोगे ? जैसा मैंने तुमको बता दिया है, मुझे यह विचार बिल्कुल पसन्द नहीं है, परन्तु यह संभव है कि अगर तुम इसका खुलासा करो तो शायद मैं उसे ज्यादा अच्छी तरह समझ सकूं। मैंने अख़बारों में तुम्हारा बयान देखा है। मेरे लिए वह इतना अस्पष्ट है कि मैं तुम्हारी इस स्थिति को नहीं समझ सकता। इसलिए मेरा अनुरोध है कि पूरा स्पष्टीकरण करो।

सार्वजनिक मामलों में सिद्धान्त और नीतियां होती हैं। हममें एक-दूसरे को समझने और साथियों की नेक-नीयती में विश्वास रखने की बात भी होती है। अगर यह समझ और विश्वास नहीं है तो लाभदायक सहयोग बहुत कठिन हो जाता है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ मैं साथियों के बीच इस विश्वास और समझ को अधिकाधिक महत्व देने लगा हूं। मैं बढ़िया-से-बढ़िया उसूलों का भी क्या करूं, अगर मुझे संबंधित व्यक्ति में भरोसा न हो ? अनेक प्रान्तों की दलबंदियां इसका उदाहरण हैं और जो लोग मामूली तौर पर सम्माननीय और खरे हैं, उनमें अत्यन्त कटुता और अक्सर बिल्कुल उबेसूलपन पाया जाता है। मैं इस तरह की राजनीति को हज़म नहीं कर सकता और मैंने कई साल से अपने-आपको अससे बिल्कुल अलग रखा है। मैं किसी गुट या किसी दूसरे आदमी के समर्थन के बिना निजी तौर से काम करता हूं, हालांकि मुझे खुशी है कि मुझे बहुतों का विश्वास प्राप्त है। मुझे लगता है कि यह प्रान्तीय खराबी अब अखिल भारतीय स्तर पर फैलाई जा रही है। यह मेरे लिए बड़ी गम्भीर चिन्ता का विषय है।

तो हम फिर इस बात पर आ जाते हैं: राजनैतिक समस्याओं के पीछे मनोवैज्ञानिक समस्याएं हैं और उनसे निपटना हमेशा अधिक कठिन होता है। इसका एक ही उपाय है कि एक-दूसरे के साथ बिल्कुल खुले दिल से बात करें और इसलिए मुझे आशा है कि हम सब पूरी तरह साफ-साफ बातें करेंगे। ●

फरवरी, १९३९ में अखिल भारतीय रियासती प्रजा-परिषद, लुधियाना के सभापति-पद से दिया भाषण।

देसी रियासतें भारत का अभिन्न अंग

हर साल आल इंडिया रियासती प्रजा-परिषद का इजलास होता है, जिसमें रियासतों की समस्याओं पर विचार किया जाता है। हर साल रियासतों में कुशासन, और घूंसखोरी के ख़िलाफ आवाज़ उठाई जाती है। इस परिषद और ख़ासकर कांग्रेस की कोशिशों से रियासती जनता में वहुत जागृति आ गई है। रियासतों में आज़ादी का आन्दोलन ज़ोर पकड़ता जा रहा है और इस आन्दोलन के साथ सारे हिंदुस्तान की गहरी हमदर्दी है। इस अहम मौक़े पर आप लोगों ने मुझे वुलाया है और मैं आपकी आज्ञा मानकर यहां आ गया हूं। मैं यहां सिर्फ इसीलिए नहीं आया कि मुझे रियासती प्रजा की आज़ादी में दिलचस्पी है, वल्कि वाक़ी हिंदुस्तान की ओर से आपके लिए शुभ कामना और एकता का संदेश लेकर आया हूं।

वहुत-से लोगों ने रियासतों की ओर कांग्रेस के रवैये की निन्दा की है। इसके वारे में काफी चर्चा हो चुकी है कि कांग्रेस को रियासतों के मामलों में दख़ल देना चाहिए या नहीं। रियासतों के प्रति कांग्रेस की नीति में कैसे विकास हुआ, यह विचार करने की ज़रूरत है। हरिपुरा-प्रस्ताव कांग्रेस-नीति के विकास के सिलसिले में ख़ास अहमियत रखता है और उसमें यह वात साफ कर दी गई है। हिंदुस्तान की अखंडता और एकता उस आज़ादी का लाज़मी अंग है, जिसके लिए हम कोशिश कर रहे हैं। जो राजनैतिक,समाजी और माली आज़ादी वाक़ी हिंदुस्तान को मिलनेवाली है, वही रियासतों को भी मिलेगी। कांग्रेस ने रियासतों में स्वायत्त शासन और पूरी नागरिक आज़ादी के हक़ में दोवारा ऐलान कर दिया है। इसके वाद रियासतों में इस आदर्श को अमल में लाने के अपने हक़ का भी ऐलान किया गया है। रियासतों में दख़ल न देने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता। कांग्रेस, जोकि समूचे हिंदुस्तान की जनता की इच्छा को ज़ाहिर करती है, किन्ही ऐसी सीमाओं को मानने के लिए तैयार नहीं, जो कि उसे सारे देश में सभी जगह आज़ादी के साथ काम करने से रोके। यह कांग्रेस का हक़ है और उसका फर्ज़ भी है कि जव कभी हिंदुस्तान के हितों की रक्षा करनी पड़े तो कांग्रेस दख़ल दे। अगर कांग्रेस ऐसा नहीं करती तो वह अपना फर्ज़ पूरा नहीं करती और जिस आदर्श को लेकर खड़ी है, उससे गिरती है।

कांग्रेस यह अच्छी तरह जानती थी कि रियासतों की गिरावट राष्ट्र की तरक्क़ी की राह में रुकावट पैदा करने-वाली है, और वह यह भी जानती थी कि जबतक रियासतों की हालत नहीं सुधर जायगी, हिंदुस्तान आज़ाद नहीं हो सकता। कांग्रेस इस निहायत ज़रूरी और अहम तव्दीली को लाने के लिए बेचैन थी, लेकिन इसे यह भी मालूम था कि यह तव्दीली नीचे से ही शुरू हो सकती है, अर्थात् जवकि रियासत की जनता में आत्मविश्वास पैदा हो जाय और वह संगठित होकर आन्दोलन के भार को उठा सके। कांग्रेस ने इस वात पर ज़ोर दिया। अगर कांग्रेस ऐसा न

करती तो लोग गुमराह हो जाते और उसका नतीजा यह होता कि रियासतों के अन्दर ऐसी संस्थाएं क़ायम नहीं की जा सकती थीं, जो जनता की ताक़त और ख्वाहिश को ज़ाहिर कर पातीं।

जब हम हरिपुरा-अधिवेशन के बाद की घटनाओं पर ग़ौर करते हैं तो हमें कांग्रेस की समझदारी का सबूत मिल जाता है। सारी रियासतें जाग उठी हैं, और उनमें से कई में तो ज़बरदस्त जनता के आन्दोलन भी चल पड़े हैं।

रियासतों की जनता भी बाक़ी हिंदुस्तान के लोगों की समानता तक पहुंच गई है और अब वह इतनी पिछड़ी हुई नहीं रही कि हमें बोझरूप साबित हो। अब वह समय आ गया है, जबकि रियासतों में चलनेवाले आन्दोलनों को ब्रिटिश साम्राज्य के ख़िलाफ चलनेवाले प्रमुख संघर्ष के साथ जोड़ दिया जाय। अब तो समूचे हिंदुस्तान को आज़ाद कराने के लिए एक ही ज़बरदस्त आन्दोलन चलाना चाहिए। जैसाकि गांधीजी ने कहा है, "आज़ादी की लड़ाई, चाहे कहीं भी लड़ी जाय, वह सारे हिंदुस्तान के लिए ही है।"

हिंदुस्तान में छोटी-बड़ी सब मिलाकर कुल ६०० रियासतें हैं। इनमें कुछ तो इतनी छोटी हैं कि उनका नक्शे पर देख सकना भी मुश्किल है। इनमें आपस में बहुत विभिन्नता है—कुछ रियासतों ने शिक्षा और उद्योगीकरण में खूब तरक्की की है, और उनके राजा और वज़ीर भी बड़े क़ाबिल हैं। लेकिन उनमें ज्यादा रियासतें तो मक्कार और निकम्मे व्यक्तियों की स्वेच्छाचारिता और अयोग्यता की वजह से रसातल को पहुंची हुई हैं। लेकिन राजा और मंत्री चाहे अच्छे हों या बुरे, असली दोष तो इस नज़ाम में ही है। यह नज़ाम अब दुनिया में कहीं प्रचलित नहीं है। अगर्चे अब यह व्यवस्था गल-सड़ चुकी है, फिर भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद इसको सहारा देकर खड़ा किये हुए है। वह अपने स्वार्थ के लिए इसकी परवरिश करता है।

पिछले चंद सालों में रियासतों की स्वाधीनता के बारे में एक नया ख्याल सामने आया है। यह ख्याल उस सत्ता का है, जिसने रियासतों को अपने पंजे में जकड़ा हुआ है और ग़ुलाम बना रखा है। इस ख्याल का समर्थन न इतिहास से होता है और न वैधानिक रीति से, और अगर हम इन रियासतों के विकास की जांच करें तो देखेंगे कि उनमें से कई राजा लोग महज़ बड़े जागीरदार ही थे। लेकिन हमें क़ानूनी खोज की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि व्यवहार और वाक़यात हमारे सामने मौजूद हैं। ब्रिटिश सरकार इन रियासतों पर पूरी तरह हुकूमत करती रही है, और उसका एक इशारा भी इनके लिए काफी है। भारत सरकार के राजनैतिक महकमे के इशारे पर ये रियासतें नाचती हैं, और स्थानीय रेज़ीडेंट वहां का सर्वेसर्वा है। अब एक और रिवाज पड़ गया है कि रियासतों में दीवान या मन्त्री अंग्रेज़ रखे जाते हैं। अगर इसीका नाम आज़ादी है तो फिर यह जानना बहुत दिलचस्प होगा कि ग़ुलामी किसे कहते हैं?

रियासतें न इस समय आज़ाद हैं और न हो सकती हैं, क्योंकि भौगोलिक परिस्थिति के कारण यह मुमकिन भी नहीं है, और यह आज़ाद संयुक्त भारत की कल्पना के भी खिलाफ है। यह समझ में आ सकता है, और वे ऐसा होना भी चाहिए कि भारतीय संघ-शासन में रहते हुए बड़ी-बड़ी रियासतों को अपने अन्दरूनी इन्तज़ाम में बहुत हद तक आज़ादी हो, लेकिन उनको संघ-शासन का एक अंग बनकर ही रहना पड़ेगा।

यदि संघर्ष केवल जनता और नरेशों में ही रहे, तो यह साफ ज़ाहिर है कि रियासतों की समस्या का हल आसानी से निकल सकता है। बहुत-से राजा स्वेच्छा से जनता के साथ मिलकर चलने को तैयार हैं और अगर वे ऐसा करने से हिचकिचाते हैं, तो जनता का दबाव उनके विचारों को पलट देता है। अगर राजा लोग ऐसा करने को तैयार नहीं होंगे तो उनकी स्थिति ख़तरे में पड़ जायगी और इसका एक ही नतीजा निकल सकता है कि वे बिल्कुल हटा

दिये जायंगे। कांग्रेस और प्रजामंडलों ने अवतक हर मुमकिन कोशिश की कि राजाओं को जनता के साथ मिला लिया जाय और उत्तरदायी सरकार की स्थापना की जाय। लेकिन राजाओं को यह समझ लेना चाहिए कि उनकी रज़ामन्दी न होने का यह मतलब नहीं कि प्रजा की आज़ादी रोकी जा सकती है। उनके विरोध से सिर्फ इतना ही होगा कि राजा और जनता के बीच में एक ऐसी दीवार खड़ी हो जायगी, जिसे लांघना आसान नहीं होगा और दोनों के बीच में समझौता होना भी कठिन हो जायगा। पिछले सौ सालों में दुनिया का बहुत-कुछ नक्शा बदल चुका है, अब भी हमारी आंखों के सामने यह नक्शा बदलता जा रहा है। यह बतलाने के लिए किसी पैग़म्बर की ज़रूरत नहीं कि देशी रियासतों का मौजूदा ढांचा अवश्य नष्ट होगा। यह समझदारी और दानिश्मंदी की बात होगी कि राजा लोग प्रजा के साथ मिलकर खड़े हो जायं और उनकी नई आज़ादी में हिस्सा लें।

कुछ रियासतों के राजाओं ने इस बात को समझ लिया है और उन्होंने ठीक दिशा में कुछ क़दम भी उठाया है। उनमें से एक छोटी-सी रियासत अवध के राजा ने उत्तरदायी हुकूमत क़ायम की है और यह काम बड़ी ख़ुशी और शान के साथ किया जा रहा है।

लेकिन दुर्भाग्य से बहुत-से राजा ऐसे हैं, जो अभी तक पुरानी चाल को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। लेकिन अगर रियासतों के राजा लोग रज़ामंद हो जायं तो भी काम नहीं चलेगा, क्योंकि ब्रिटिश सरकार के एजेंट, जो उनके भाग्यविधाता हैं और जिनको वे हर्गिज़ नाराज़ नहीं कर सकते, वहां रहते ही हैं। हमने राजकोट में देखा कि वहां किस तरह एक राजा जनता के साथ समझौता करने पर रज़ामंद होगया था, लेकिन बाद में ब्रिटिश एजेंटों के दबाव के कारण उसे अपने वचन-भंग करने पड़े।

इसलिए रियासतों में राजाओं के साथ संघर्ष तो प्रासंगिक है। दरअसल तो यह संघर्ष ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ है। यही वजह है कि रियासतों में जनता के विरुद्ध ब्रिटिश सत्ता का हस्तक्षेप करना ख़ास अहमियत रखता है। हम देख रहे हैं कि सरकार ज्यादा-से-ज्यादा दख़ल दे रही है। यह हस्तक्षेप केवल भारत सरकार के राजनैतिक महकमों, एजेंटों और रेज़ीडेंटों द्वारा ही नहीं, बल्कि फौज द्वारा भी हो रहा है, जैसाकि उड़ीसा में हुआ है। जनता को कुचलने के लिए इस किस्म के दख़ल को हम अब सहन नहीं कर सकते। अगर भारत सरकार जनता को कुचलेगी तो कांग्रेस अवश्य पूरी ताक़त के साथ बीच में पड़ेगी। हमारे साधन दूसरे हैं—वे शांतिपूर्ण हैं, लेकिन पुरअसर हैं।

गांधीजी ने बार-बार ब्रिटिश सरकार को और उनके कारकुनों को इस संघर्ष के आइंदा नतीजों के बारे में चेतावनी दी है। यह साफ ज़ाहिर है कि संघर्ष को सिर्फ रियासत की सीमा के अन्दर ही महदूद रखना और साथ-साथ कांग्रेस के प्रांतों में प्रबन्ध करने के लिए ब्रिटिश सत्ताधारियों से सहयोग करना नामुमकिन है। संघर्ष का तो असर भारत के कोने-कोने तक पहुंचे बिना नहीं रह सकता और उस हालत में यह एक या दूसरी रियासत का ही सवाल नहीं रह जाता, बल्कि ब्रिटिश सत्ता को ही जड़ से उखाड़ देने की बात सामने आ जाती है।

इस संघर्ष के माने क्या हैं, यह साफ तौर से समझ लेना चाहिए। इस संघर्ष का रूप हर रियासत में जुदा-जुदा है, लेकिन सब जगह मांग उत्तरदायी हुकूमत के लिए ही है। इस समय संघर्ष उस मांग को मनवाने के लिए नहीं है, लेकिन उस मांग के लिए जनता को संगठित करने के हक़ के लिए है। जब यह हक़ भी नहीं दिया जाता और नागरिक आज़ादी को भी छीन लिया जाता है, तो जनता के सामने वैधानिक रीति से हलचल पैदा करने के सिवा और कोई चारा नहीं रहता। इस सूरत में उनके पास दो रास्ते रह जाते हैं—एक तो यह कि वह झुक जायं

और सारी राजनैतिक कार्रवाइयों को छोड़ बैठें, अर्थात् अपनी आत्मा का पतन होने दे और जिस जुल्म के नीचे वह पिस रही है उसे बराबर जारी रहने दे, या फिर सीधी कार्रवाई शुरू करें। इस सीधी कार्रवाई का अर्थ है शांतिपूर्ण की सत्याग्रह और हिंसा और बुराई के सामने किसी को भी मत पर न झुकना। इसलिए बहुत-सी रियासतों में आज सवाल नागरिक आज़ादी का है हालांकि ध्येय सब जगह उत्तरदायी हुकूमत क़ायम करने का ही है।

हम हिंदुस्तान में और ख़ासकर देसी रियासतों में क्या अनुभव कर रहे हैं ? हमारे शांतिपूर्ण प्रचार, व्यवस्थाओं और समझौतों की कोशिशों का जवाब रियासत के अधिकारियों की ओर से पाशविक हिंसा से दिया जाता है। इसलिए जहां कहीं आज़ादी और प्रजातंत्र के नाम पर तब्दीली लाने की कोशिश की जाती है, चाहे वह कितने ही जायज़ और शांतिपूर्ण ढंग से क्यों न हो, उन कोशिशों को बेरहमी से कुचल दिया जाता है। लेकिन जहां फ़ासीज्म और साम्राज्यवाद अपने मतलब की ख़ातिर तब्दीली लाना चाहते हैं और प्रजातंत्र और आज़ादी को दबाना चाहते हैं वहां सत्ता और हिंसा को खुली छूट मिल जाती है।

राजपूताना की एक मशहूर रियासत में टाईप राईटर पर भी रोक लगाई गई है और वहां इसके रजिस्टर कराने के बारे में एक क़ानून बना हुआ है। काश्मीर में एक बहुत ही भयानक क़ानून लागू है, जैसाकि कुछ साल पहले बर्मा की बग़ावत के समय लगाया गया था। हैदराबाद जैसी बड़ी रियासत में नाम को भी नागरिक आज़ादी नहीं है और हाल ही में शांतिपूर्ण सत्याग्रहियों के साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार की ख़बरें मिली हैं। उस्मानिया यूनीवर्सिटी से सैकड़ों विद्यार्थियों को इस दोष के लिए निकाल दिया गया कि उन्होंने "वन्दे मातरम्" का गीत गाया। ट्रावनकोर में पिछली गरमियों में किये गए अत्याचार की याद अभी ताज़ा ही है।

कुछ रियासतों ने हमारे संघर्ष में आगे बढ़कर काम किया है इसलिए उनका ज़िक्र करना पड़ेगा। राजकोट और जयपुर के मसले हमारे सामने हैं, जिनका सारे देश के साथ संबंध है। हमारे बहुत-से साथी अभी तक वहीं संघर्ष में पड़े हुए हैं और इसलिए वे हमारे सम्मेलन में शरीक नहीं हो सके। राजकोट से हमें बहुत-कुछ सीखना है। कुछ महीनों के संघर्ष के बाद, ऐसा मालूम हुआ कि जनता जीत गई और हम खुशियां मनाने लगे। हमें लगा कि हमारे आन्दोलन के ढंग और जनता की शांत और वीरतापूर्ण कुरबानियों द्वारा हमें कामयाबी हासिल हो गई है। लेकिन हमारी यह ख़ुशी रंज में बदल गई। राजा ने जो इकरार किया था, उसे भंग कर दिया, इसलिए संघर्ष फिर शुरू करना पड़ा। यह सर्वविदित है कि किस तरह ब्रिटिश सत्ता के डर से, और दबाव से कोई समझौता न हो सका। जयपुर में तो प्रधान मंत्री ही एक अंग्रेज है और अगर्चे महाराजा ने उसे तैनात किया है फिर भी हुकूमत वास्तव में उसीके हाथ में है और शायद वह गवर्नमेंट आव इंडिया के राजनैतिक महकमे की हिदायतों के मुताबिक ही काम करता है। यह किसीको भी कल्पना नहीं कि नवयुवक महाराजा को अहम मसलों में दख़ल देने का हक़ नहीं है।

उड़ीसा में ब्रिटिश एजेंट मेजर बेज़लगेट के अफसोसनाक क़त्ल से बहुत बुरे नतीजे निकले हैं—जैसाकि ऐसी घटनाओं का, चाहे वे मूर्खता में ही की गई हों, हमेशा बुरा असर होता है। उड़ीसा की रियासतों की जनता पिछड़ी हुई है और उसे हमारे बुनियादी सिद्धांतों का पता न होने की वजह से कष्ट भोगना पड़ा। इस घटना से हमें खबरदार हो जाना चाहिए कि हम अपने आन्दोलन को इस ढंग से चलायें कि लोग इसकी अहमियत को समझ लें और अहिंसा की नीति पर दृढ़ रहें।

रानपुर की दुर्घटना से ब्रिटिश सत्ता पर जो प्रतिक्रिया हुई है, वह खास अहमियत रखती है। हिंदुस्तान के सुदूर प्रदेश से फौजें बुलाई गई और ब्रिटिश सत्ता को सिद्ध करने के लिए उड़ीसा में बहुत बड़े सैनिक समूह को

संयोजित किया गया। इन सैनिकों के रखने की क्या मुराद थी ? कोई विद्रोह या हिंसात्मक आक्रमण तो था नहीं ? भूखे मरते हुए किसान लोग सैनिकों को देखकर भाग गये और रानपुर की रियासत उजाड़ हो गई। ऐसा कहा जाता है कि पिछड़ी हुई जंगली जातियों—गौंड़ आदि से कुछ उपद्रव का डर था। लेकिन गौंड़ों ने न तो कुछ किया है और न करेंगे, जबतक उन्हें असह्य दुःख देकर तंग न किया जाय। उनके साथ नम्रता का वर्ताव करना चाहिए और उनकी शिकायत दूर करनी चाहिए। लेकिन साम्राज्यवाद का रास्ता दूसरा ही है। उड़ीसा में फौजी लश्कर लाने का कारण गौंड़ों द्वारा किसी कार्रवाई का डर नहीं था, बल्कि सेना रियासत के किसान लोगों को डराने के लिए और वहां के राजा को किसानों के विरुद्ध उनकी मांगों को पूरा न करने में मदद देने के लिए आई थी। सैनिकों का उपयोग आज़ादी को दबाने में किया गया था।

हैदराबाद और काश्मीर हिंदुस्तान की दो सबसे बड़ी रियासतें हैं और हमें उम्मीद थी कि वह उत्तरदायी हुकूमत क़ायम करके दूसरी रियासतों के लिए मिसाल क़ायम करेंगी। लेकिन दुर्भाग्य से दोनों ही रियासतें सामाजिक और राजनैतिक नज़रिये से बहुत पिछड़ी हुई हैं। हैदराबाद में ज्यादातर हिंदू हैं और वहां के अधिकारी मुसलमान हैं; काश्मीर में ज्यादा तादाद में मुसलमान हैं, लेकिन अधिकारी हिंदू हैं। इस तरह दोनों रियासतों में एक-जैसी समस्याएं हैं—जनता में हद दर्जे की ग़रीबी है, अज्ञानता है। दोनों रियासतें उद्योगीकरण में पिछड़ी हुई हैं। एक ओर ग़रीबी और दीन अवस्था में पड़ी हुई जनता और दूसरी ओर ये दोनों राजा शायद सारे हिंदुस्तान में सबसे ज्यादा मालदार हैं। राजनैतिक दृष्टि से काश्मीर कुछ ज्यादा उन्नत है, क्योंकि वहां एक प्रकार की धारा-सभा भी मौजूद है, लेकिन इसकी कोई सत्ता नहीं है और जो क़ानून वहां बनाये जाते हैं, वे निहायत सख्त हैं। हैदराबाद में सम्भवतः सारे हिंदुस्तान की अपेक्षा सबसे कम नागरिक आज़ादी है और हाल ही में वहां मज़हबी रीति-रिवाजों पर भी पाबंदी लगा दी गई है।

दरअसल, दोनों रियासतों में राष्ट्रीयता की बिना पर ही आन्दोलन जारी है और मुझे यह बतलाते हुए खुशी होती है कि काश्मीर में कुछ ऐसे समझदार हिंदू निकल आये हैं, जिन्होंने उत्तरदायी हुकूमत क़ायम करने की राष्ट्रीय मांग का साथ दिया है। मुझे यक़ीन है कि हैदराबाद में भी बहुत-से दूरदर्शी मुसलमान ऐसा ही करेंगे। इन दोनों आन्दोलनों के नेता फिरकापरस्ती से दूर रहने की ज़रूरत को अच्छी तरह समझते हैं और इसलिए उन्होंने उससे दूर रहने की कोशिश भी की है। उनमें किसी भी वक्त कमज़ोरी नहीं आनी चाहिए, वरना वह अपना काम खुद बिगाड़ लेंगे। अल्प-संख्यकों को भी यह समझ लेना चाहिए कि रियासतों में उत्तरदायी हुकूमत का आना लाज़मी है और आज़ादी का उनको भी उतना ही फल मिलेगा, जितना दूसरों को। जनता के ऐसे आन्दोलनों का विरोध करना या ऐसे समय में चुपचाप तमाशा देखते रहने का मतलब है कि हम उस भविष्य के लायक़ नहीं हैं, जो हमारे सामने आने-वाला है।

हैदराबाद में कुछ दिन हुए एक ख़ास हालत पैदा हो गई थी, जिससे जनता में कुछ भ्रम पैदा हो गया था। स्टेट कांग्रेस को ग़ैरक़ानूनी करार दे दिया गया, हालांकि इसकी कार्रवाई वैधानिक और पुरअमन तरीक़े पर केवल सदस्य बढ़ाने और संस्था को मज़बूत बनाने की ही थी। स्टेट कांग्रेस ने इस पाबंदी के ख़िलाफ अपनी कार्रवाई जारी रखी। इसके लिए सत्याग्रह करना पड़ा और सैकड़ों लोगों ने मुसीबतें उठाईं। इसी समय या उसके कुछ बाद, एक मज़हबी संस्था ने भी एक प्रकार का सत्याग्रह शुरू कर दिया, जिसकी वजह यह थी कि हुकूमत ने कुछ ऐसे धार्मिक रीति-रिवाजों पर पाबंदी लगा दी, जो बाक़ी सारे हिंदुस्तान में प्रचलित है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि

हुकूमत ने ऐसा क़दम उठाया, जिससे जनता की धार्मिक आज़ादी ख़तरे में पड़ी। यह कुदरती था कि इससे लोग भड़कें। लेकिन ऐसे समय में धार्मिक मसले को लेकर सत्याग्रह शुरू करना अच्छा नहीं था। इससे राजनैतिक मसला गड़बड़ में पड़ गया और रियासत के अधिकारियों को राजनैतिक आज़ादी को पीछे धकेलने का मौक़ा मिल गया।

स्टेट कांग्रेस ने सब पहलुओं पर विचार करने के बाद सत्याग्रह को मुलतवी करना तय किया, ताकि राजनैतिक मसला धार्मिक और फिरकेवाराना मसले के साथ न जुड़ जाय। लेकिन बदक़िस्मती से यह साम्प्रदायिक और मज़हबी संस्थाओं द्वारा चलाया जाता रहा, जिसका नतीजा यह हुआ कि इस सवाल के साम्प्रदायिक पहलू पर अधिक ज़ोर आगया और हिंदुस्तान के कई प्रांतों में यह संघर्ष बढ़ गया। जिन लोगों ने इसे शुरू किया, उन्होंने यह विचार नहीं किया कि वे क्या कर रहे हैं और न ही उन्होंने यह महसूस किया कि जन-आन्दोलन का विकास स्वाभाविक रूप से होता है और वह ऊपर से ठूंसा नहीं जा सकता। इसका नतीजा यह हुआ कि राष्ट्रीय आन्दोलन को धक्का पहुंचा और फिरकापरस्ती का सवाल आज सबसे ऊपर आ गया है।

पिछले साल कश्मीर में भी सत्याग्रह-आन्दोलन इसलिए वापस ले लिया गया था कि रियासत की सरकार अपना क़दम वापस हटा ले और जो बुराइयां उसने की हैं, उन्हें दूर करे। लेकिन सरकार में न समझदारी है, न शिष्टता। आन्दोलन वापस लेने पर भी सैकड़ों सत्याग्रही, जिनमें आन्दोलन के नेता शेख अब्दुल्ला भी शामिल हैं, क़ैद में पड़े रहे और दमन बराबर जारी रहा।

यह साफ जाहिर है कि काश्मीर और हैदराबाद की रियासतों में हालात गवारा नहीं किये जा सकते और अगर रियासत की सरकारें अब भी पुरानी चाल चलती रहेंगी तो सत्याग्रह दोबारा शुरू करना पड़ेगा।

हिंदुस्तान में काले बादलों में भी रोशनी की झलक दिखाई दे गई है। यह झलक नव-जागृत रियासती प्रजा की ओर से आ रही है। हमने जो उनके संघर्ष का बोझ उठाने का फैसला किया है, वह एक बड़ी ज़िम्मेवारी का काम है, जिसे पूरी तरह निभाने में सारी ताक़त और अक्ल काम में लानी पड़ेगी। ज़ोरदार शब्दों से ही काम नहीं चलता--कई बार तो यह कमजोरी की निशानी होती है, जो निकम्मेपन का स्थान ले लेती है। आज काम करने की ज़रूरत है--ऐसा काम जो हमें अपने ध्येय तक जल्दी पहुंचा दे। आपस में फूट डालनेवाली ताक़तों को हमें काबू में लाना है और अखंड भारत के अपने सपनों को पूरा करना है।

रियासती जनता की आज़ादी एक बड़ा मसला है, लेकिन यह सारे हिंदुस्तान की महान आजादी का एक अंग है और जबतक वह प्राप्त नहीं हो जाती, हम लड़ते रहेंगे। यदि संघ-शासन हमपर ठोंस दिया गया तो हम इसका मुक़ाबला करेंगे और उसे खत्म कर देंगे। जहां कहीं रियासती प्रजा के खिलाफ ब्रिटिश सत्ता अड़ेगी, हम इसका मुक़ाबला करेंगे।

रियासती प्रजा-परिषद् ने भूतकाल में खूब काम किया है, लेकिन जितना काम यह कर सकती थी उतना नहीं हुआ है। अब इसे अपनी सब कार्रवाइयों को संगठित कर लेना चाहिए, ताकि रियासतों-संबंधी सब विषयों को सुलझाने का यह केन्द्र बन जाय, और आन्दोलन में भाग लेनेवाले साथियों को सहारा और उत्साह भी दे। इसे रियासतों में प्रजामंडल या जनता की संस्थाओं के क़ायम करने में मदद देनी चाहिए। इसे फिरकापरस्ती से दूर रहना है और यह भी याद रखना है कि हमारे आन्दोलन की बुनियाद अहिंसा है। ●

२० अगस्त, १९३९ से १ सितंबर, १९३९ तक चीन-
यात्रा के संस्मरण ।

चीन में मैंने क्या देखा ?

चीन की यात्रा में मैंने हर शाम को दिनभर की घटनाओं और अनुभवों को लिखते जाना शुरू किया। पहले भी डायरी रखने का शुभ संकल्प मैंने कई मर्तबा किया था; पर दूसरे कई अच्छे इरादों की तरह यह संकल्प भी वहुत जल्द कमज़ोर पड़ गया; लेकिन इस बार मैंने सोचा कि अपने अनुभवों को उनके ताज़े रहते लिख डालना अच्छा है, ताकि हिंदुस्तान के अपने दोस्तों और साथियों को भी उसका आनंद ले लेने दूं। इसलिए मैंने शुरू तो किया, मगर दिमाग़ में यह वात ज़रूर थी कि मैं यह सिलसिला जारी नहीं रख सकूंगा। कलकत्ते से जिस दिन रवाना हुआ उसी सांझ को अपने अनुभवों की पहली लेखमाला मने सैगोन से भेज दी। पहले दिन मैं कुनमिंग पहुंच गया और उस दिन थका हुआ था, तो भी दूसरे दिन का वर्णन लिख लिया और अगले दिन बड़े तड़के उसे डाक में डलवा दिया। मैं चुंगकिंग पहुंचा और उस रात को फिर बड़ी देर तक वैठा लिखता रहा। इसी तरह चौथी रात को भी लिखता रहा। लेकिन ये दोनों पिछले लेख हिंदुस्तान नहीं भेजे गये। कुछ तो इसका कारण यह था कि मैंने सोचा कि दिन-भर के व्यस्त व भारी कार्यक्रम के वाद रोज़ाना लिखने का नियम पालन करना वड़ा मुश्किल है और कुछ कारण यह था कि मेरे वर्णन या संस्मरण हवाई डाक से भी हिंदुस्तान वड़ी देर से पहुंचेंगे और फिर उन दिनों चुंगकिंग में लड़ाई के कारण पत्रों पर सेंसर था। हालांकि जो कुछ मैं लिखता था, सेंसर को उसपर कोई ऐतराज़ हो नहीं सकता था, फिर भी इस सोच-विचार के बाद मैंने यह तय किया कि इस तरह का लिखना वंद कर दूं। लेकिन असल में ठीक-ठीक सबब तो यही था कि मुझे वक्त ही नहीं मिलता था।

सिर्फ चार राततक तो मने लिखा। बाद में अपने ऊपर लदा हुआ यह काम मैंने छोड़ दिया। लेकिन घटनाएं एक-के-वाद एक होती गईं और नये-नये अनुभव दिमाग़ में भरते गये। मैंने अपना अधिकांश वक्त चुंगकिंग में विताया और फिर चुंगतू गया। मेरा इरादा तो दूसरी कई जगह देखने का था——ख़ासकरके उत्तर-पश्चिमी को तो——जहां कि आठवीं सेना ने जापानी फौजों को रोक लिया था——मैं देखना ही चाहता था। फिर अपना कांग्रेस का डाक्टरी दल भी था। वहां जाकर उसका काम देखने की भी मेरी इच्छा थी ही। लेकिन यह सब नहीं होना था। जब मैं चुंगतू में था, मेरे पास एक संदेश पहुंचा——पहले-पहल मुझे काफी अचरज हुआ कि वह ब्रिटिश ब्राडकास्ट के ज़रिये पहुंचा——कि राष्ट्रपति ने मुझे शीघ्र स्वदेश वुलाया है। मैं फौरन चुंगकिंग को लौट पड़ा और हिंदुस्तान आनेवाले एक हवाई जहाज़ में जगह पाने की मैंने कोशिश की। इस कोशिश में मैं कामयाव न हो पाया, तब चीन सरकार ने मेरी मदद की और मुझे एक उम्दा डगलस कंपनी का हवाई जहाज़ दिया, जो मुझे तीन ही घंटे में लाशियो ले आया। यह वर्मा की सरहद पर है। इरादा मेरा था कि नई वरमा सड़क से लौटूंगा, मगर हुआ यह कि मुझे उसके ऊपर उड़कर आना पड़ा।

इस प्रकार तेरह दिन में मैंने इस महान् देश की यात्रा समाप्त की। ये तेरह दिन बड़े व्यस्त रहे और मैं चाहता तो क्या-क्या दृश्य मैंने देखे, किन-किन लोगों से मैं मिला, क्या-क्या मैंने अनुभव किया—यह सब लिखकर आसानी से एक किताब तैयार कर सकता था। मैंने पांच हवाई हमले देखे—जबकि मैं अंधेरी खाइयों में बैठा था, लेकिन कभी-कभी आसमान में होनेवाली लड़ाई को देखने के लिए बाहर झांक लेता था। जापान के बम बरसानेवाले हवाई जहाज़ सर्चलाइट की किरणों से देख लिये जाते थे। वे जहाज़ आस-पास के अंधेरे में बड़े तेज चमकते थे और पीछा करनेवाले चीनी हवाई जहाजों के हमले से बचने की कोशिश करते थे। जब सर पर मौत मंडरा रही थी तब भी मैंने देखा कि चीनी गिरोहों में आश्चर्यजनक शांति से काम हो रहा है। लड़ाई की भयानक सरगर्मी के बावजूद मैंने देखा कि नगर में जिंदगी की चहल-पहल साधारण गति से हो रही है। मैंने कारखाने देखे, गर्मियों के स्कूल देखे, सैनिक स्कूल देखे, जवानों के डेरे देखे, और देखे शिक्षणालय—जो मानो अपनी पुरानी जड़ से उखड़कर बांस के छप्परों में आ गये थे और नया जीवन और बल पा रहे थे। गांवों की सहयोगसभा के आन्दोलन और घरेलू धंधों की उन्नति ने मुझे बड़ा लुभा लिया। मैं विद्वानों से, राजनेताओं से, सेनापतियों से और नवीन चीन के नेताओं से मिला, और सबसे ज्यादा बढ़कर तो मुझे चीन के सर्वश्रेष्ठ नेता और अधिनायक, प्रधान सेनापति च्यांग-काई-शेक से कई मर्तबा मिलने का सुअवसर मिला।

लेकिन चाहे मैं वहां के प्रमुख स्त्री-पुरुषों से मिला, पर कोशिश मेरी हमेशा यही रही कि मैं चीन के निवासियों को समझ सकूं और उनसे कुछ प्रेरणा ले सकूं। उनके विषय में और उनके गौरवपूर्ण सांस्कृतिक इतिहास के संबंध में पढ़ा था और मैं उस वास्तविकता को देखना चाहता था। वास्तविकता मेरी आशा के अनकूल ही निकली—मैंने उस जाति को विज्ञ, गंभीर और अपने महान् अतीत के अनकूल बुद्धिमान ही नहीं पाया, बल्कि मैंने पाया कि वे बड़े बलिष्ठ तथा जीवन और शक्ति से परिपूर्ण लोग हैं और आधुनिक परिस्थिति से सामंजस्य स्थापित करनेवाले हैं। बाजार में जाते हुए मामूली आदमी के चेहरे पर भी हज़ारों वर्षों की संस्कृति की छाप है। कुछ हद तक मैंने यही आशा बांधी थी, लेकिन मुझे जिसने सचमुच प्रभावित किया, वह नवीन चीन की अद्भुत शक्ति थी। सैन्य-बल का मैं कोई पारखी नहीं था, पर मैं यह कल्पना तक नहीं कर सकता कि ऐसी जीवनी शक्ति और संकल्पवाली और युग-युग का बल अपने पीछे रखनेवाली वह जाति कभी कुचली जा सकती है।

हर जगह मुझे भारी सद्भावना और आतिथ्य मिला और मुझे शीघ्र ही मालूम हो गया कि व्यक्तिगत महत्व से यह वस्तु बड़ी है। मुझे भारत का, कांग्रेस का, प्रतिनिधि समझा गया, हालांकि मेरी ऐसी कोई हैसियत नहीं थी और चीनवासी इस बात के लिए उत्सुक और उत्कंठित थे कि भारतीयों से मित्रता करें और संपर्क बढ़ायें। मेरी भी तो यह हार्दिक इच्छा थी। इसलिए इससे ज्यादा खुशी की बात मुझे और क्या हो सकती थी?

इस तरह तेरह दिन बाद मैं लौट आया—विवश होकर, लेकिन उसे लाजमी समझकर, क्योंकि भारत का बुलावा उस संकट के समय में अनिवार्य था। लेकिन वह मेरी छोटी-सी यात्रा सचमुच मेरे ही लिए नहीं हिंदुस्तान और चीन के लिए कीमती हो गई है।

३ सितंबर, १९३९ को द्वितीय महायुद्ध के अवसर पर वक्तव्य ।

परीक्षा की घड़ी

हमने कई बार कहा है कि हमारा इरादा किसी प्रकार का सौदा करना नहीं है। अंग्रेज़ों की परेशानियों का नाजायज़ फायदा उठाकर हम किसी समस्या को हल करना नहीं चाहते ।

यह लड़ाई बहुत-सी चीज़ों में तब्दीली लानेवाली है । पुराने तौर-तरीक़ों का खात्मा हो चुका है और उन्हें फिर से लागू नहीं किया जा सकता । अगर हम नये तरीकों को लाना चाहते हैं तो हमें काफी सावधानी से सोच-समझकर, आज से ही आगे के लिए उनको काम में लाना है। यह सही है कि लोकतंत्र और आज़ादी के लिए जो एक तरफ लड़ाई हो रही है, और दूसरी तरफ अराजकता और मुल्क पर आक्रमण की बात है, तो हमारी हमदर्दी लोकतंत्र के साथ होगी और हम अराजकता और साम्राज्यशाही की जीत की बात ख़ुशी के साथ नहीं सहन कर सकते । लोकतंत्र और आज़ादी की बात को बार-बार कहने-दोहराने का मतलब यह नहीं होता कि कोई लड़ाई लोकतंत्र के लिए है। पिछली लड़ाई ने हमें दिखा दिया कि शांति और आज़ादी के नाम पर लोकतंत्र को कैसे धोखे में डाला जा सकता है।

इसका मतलब यह हुआ कि लोकतंत्र और आज़ादी के लिए हम बार-बार उसके सिद्धान्तों को न दोहरायें, बल्कि उसको हम काम में लायें। अगर इंगलैण्ड अपने संकल्प पर खड़ा रहता है तो भारत उसके लिए कसौटी है ! जिस संघ का सुझाव उन्होंने दिया है, उसका मतलब फिर से दोनों बातों को मान्यता न देना है। मैं पूरे तौर पर महसूस करता हूं कि यह लड़ाई, राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से इंगलैण्ड में और सारी दुनिया में फौरन बहुत-सी बातों में तब्दीली लानेवाली है। जैसाकि मैंने आपसे कहा कि पुराने तरीक़े मर चुके हैं और उनको फिर से ज़िन्दगी नहीं दी जा सकती । अगर हम नये तरीक़ों के लिए प्रयत्न करते हैं तो हमें सावधानी रखनी होगी, सही मतलब समझना होगा, और जहांतक संभव हो सके उसपर सोच-समझकर चलना होगा । इस नये तौर-तरीक़ों का सम्बन्ध फासिज्म और साम्राज्यशाही से नहीं है । मैं चाहूंगा कि हिंदुस्तान इसमें पूरी तरह हिस्सा ले और अपनी सारी ताक़त नये तरीक़ों से उसे पाने में लगा दे । मुझे उम्मीद है कि मेरा मुल्क इस समस्या को संकुचित राष्ट्रीय भावना से नहीं सुलझायगा, बल्कि बड़ी अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से देखेगा और सारी दुनिया की भलाई की बात सोचेगा, क्योंकि अपनी भलाई इसीमें निहित है। मुझे उम्मीद है कि हम सभी इतने बुद्धिमान और मज़बूत हैं कि आपस के लड़ाई-झगड़े को भूल जायंगे और समय के साथ ऊपर उठने के लिए हिंदुस्तान की आज़ादी, और नये ज़माने को बनाने की बात सोचेंगे ।

ऐसे मौक़े पर यह ठीक और उचित होगा कि सारा हिंदुस्तान आपस में मिलकर एक आवाज़ बुलंद करे और

एकता से आगे बढ़े। स्वार्थ की बातों को हम सब भूल जायं और अपने विचार आपस में तय करके उस नीति पर चलें, जिनको हमने तय किया है! मैं पूरी तरह आशा करता हूं कि इस संकट की घड़ियों में कांग्रेस अपने कर्तव्य का पालन करेगी, और न केवल हिंदुस्तान, बल्कि सारी दुनिया की आजादी के लिए कोशिश करेगी।

मैं सुदूर चीन से इसीलिए लौट आया हूं कि मैं इस नाजुक मौक़े पर आपके साथ रहूं, ताकि इस परीक्षा की घड़ी में अपनी ज़िम्मेदारी को और कर्तव्य को अदा कर सकूं। हम इन मुसीबतों और जिम्मेदारियों को आपस में मिल-जुलकर दूर करेंगे, जैसाकि हम पहले से करते आये हैं, लेकिन इसमें स्वार्थ की भावना न होकर हमारे उन विश्वास और आदर्शों का सबक़ है, जिसको हम वर्षों से सीखते आये हैं! भविष्य में अधिक कठिनाइयां आ सकती है। हमें इन मुसीबतों का हिम्मत और विश्वास के साथ मुक़ाबला करना होगा और हिंदुस्तान की आज़ादी—सारी दुनिया की आजादी के लिए हमें अपना फर्ज़ अदा करना होगा। हमारी कार्यकारिणी ने न केवल हिंदुस्तान में, बल्कि दुनिया के लोगों को भी इस मार्ग को अपनाने में मदद दी है। हमें अपने इन्हीं सिद्धान्तों, विचारों और भावनाओं का पूरी तौर से पालन करते हुए आगे बढ़ना है। हम न ऐसी बातें कहें और न करें, जो अपने विरोध में जायं। ●

व्यक्तिगत सत्याग्रह के सिलसिले में ३ नवम्बर १९४०, को गोरखपुर जेल की अदालत में दिया गया बयान।

मैं भारत का प्रतीक हूं

मेरी यह मंशा नहीं है कि मैं उन बहुत-सी ग़लतियों और भूलों का ब्यौरा दूं, जो इन रिपोर्टों में हैं। ऐसा करने का मतलब होगा उन्हें दुबारा नये सिरे से लिखना। इससे आपका और मेरा दोनों का ही समय नष्ट होगा और कोई ख़ास मतलब भी हल नहीं होगा। मैं अपना बचाव नहीं कर रहा हूं और जो-कुछ मैं अपने इस बयान में कहूंगा, उससे आपका काम हल्का हो जायगा। मैं अभी तक भी यह नहीं जानता कि जो इल्ज़ाम मेरे खिलाफ लगाये गए हैं, उनका सही रूप क्या है? मैं यह अनुमान करता हूं कि यह भारत रक्षा क़ानून के सिलसिले में हैं और ये मेरी उन बातों से ताल्लुक रखते हैं, जो मैंने लड़ाई के बारे में कही हैं, और मेरी उन कोशिशों के बारे में हैं, जो मैंने हिंदुस्तान के लोगों को लड़ाई में हिस्सा न लेने को मजबूर करने के लिए की हैं। अगर ऐसी बात है तो मैं प्रसन्नता-पूर्वक ये इल्ज़ाम क़बूल कर लेता हूं। यह ज़रूरी नहीं कि यह मालूम करने के लिए कि मैं या दूसरे कांग्रेसी हिंदुस्तान या लड़ाई के बारे में क्या करते हैं, एक ऐसी रिपोर्ट को देखा जाय कि जिसमें सारा मतलब तोड़-मरोड़कर ग़लत कर दिया गया हो। कांग्रेस के प्रस्ताव और बयान, जो सोचे-समझे हुए और निश्चित शब्दों में हैं, दुनिया के सामने हैं। मैं उन्हीं प्रस्तावों और बयानों का समर्थन करता हूं और अपना यह कर्तव्य समझता हूं कि कांग्रेस का पैग़ाम हिंदुस्तान के लोगों तक पहुंचा दूं।

इसका यह मतलब नहीं है कि अगर मैं इस काम के लिए चुना गया, या मुझसे पहले श्री विनोबा भावे चुने गए, तो हम अपने निजी नज़रियों को ज़ाहिर करने के लिए चुने गए हैं। हम तो वे प्रतीक हैं, जो हिंदुस्तान के, या कम-से-कम हिंदुस्तान की बहुसंख्या के मन की बात को ज़ाहिर करते हैं। ज़ाती तौर पर चाहे हमारी क़ीमत बहुत थोड़ी हो, लेकिन ऐसे प्रतीक के रूप में हमारी बहुत बड़ी क़ीमत है। उस जनता के नाम पर हमने उसकी आज़ादी के, और वह क्या करेगी और क्या नहीं करेगी, इस बात का खुद फैसला करने के उसके हक़ का दावा किया है; हमने किसी भी ऐसी दूसरी सत्ता को चुनौती दी है, जो जनता को उसके इस हक़ से महरूम करे और उसपर अपनी मर्ज़ी लादे। कोई भी शख्स या दल हिंदुस्तान के लोगों पर अपनी मर्ज़ी नहीं लाद सकता कि जिसे उन्होंने हक़ नहीं दिया और जो किसी भी तरीक़े से उनके प्रति जिम्मेदार नहीं, और हिंदुस्तान के करोड़ों लोगों को या उनके नुमाइंदों को इत्तिला दिये बिना उन्हें इस ज़बरदस्त लड़ाई में भी नहीं धकेल सकता, जिसे वे नहीं चाहते थे। मुझे यह बड़ा अजीब और अहम जान पड़ता है कि यह सबकुछ आज़ादी, आत्मनिर्णय और लोकतंत्र के नाम पर किया जा रहा है और यह कहा जाता है कि यह लड़ाई भी इन्हींकी ख़ातिर लड़ी जा रही है।

हम लोग बहुत सोच-समझकर अपने आखिरी फैसले पर पहुंचे थे; हम हिचकिचाते रहे और बातचीत करते

रहे और यह कोशिश करते रहे कि ऐसा कोई रास्ता निकल आय, जो सब संबंधित पक्षों के लिए सम्मानपूर्ण हो। हम नाकामयाब रहे और यह ज़रूरी फैसला हमपर लाद दिया गया कि जहांतक ब्रिटिश सरकार और उसके नुमाइंदों का ताल्लुक है, हम अभी तक गिरवी की रक़म की तरह समझे जाते रहे, जो उनकी मर्ज़ी पर चले और उनके साम्राज्यवादी ढांचे के ज़रिये शोषित होता चला जाय। यही वह हालत थी, जिसे हम कभी भी बरदाश्त नहीं कर सकते थे, चाहे इसका नतीजा कुछ भी हो।

मेरा ख्याल है कि हिंदुस्तान में बहुत थोड़े लोग होंगे, चाहे वे हिंदुस्तानी हों या अंग्रेज़, जिन्होंने मेरी तरह इतने बरसों तक लगातार फासीवाद और नाज़ीवाद के ख़िलाफ आवाज़ उठाई हो। मेरे स्वभाव ने इसके खिलाफ एकदम बग़ावत कर दी और कई मौक़ों पर मैंने ब्रिटिश सरकार की फासिज्म की हिमायत और उसकी नीति की सख्त नुक्तांचीनी की है। मंचूरिया के हमले के बाद अबीसिनिया, मध्य यूरोप, स्पेन और चीन, एक-के-बाद एक सब पर हमले हुए और मैंने बड़े रंज और परेशानी के साथ देखा कि किस तरह एक-के-बाद-एक मुल्क को इनके नाम पर धोखा दिया जाता रहा और आज़ादी के दीये बुझाये जाते रहे। मुझे यह महसूस हुआ कि साम्राज्यवाद या उसकी अपनी उसूली बुनियाद कमज़ोर पड़ गई है। उसे अपने इस दिवालियेपन में लोकतंत्री आज़ादी की राह को चुनने के लिए मजबूर होना पड़ा। उसके लिए बीच का कोई रास्ता ही नहीं था।

उस समय के इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री का कहना था कि वे ऐसे "सुदूर देश हैं, जिनके बारे में बहुत थोड़े लोगों ने शायद ही कभी सुना हो"। उन मंचूरिया, अबिसीनिया, चेकोस्लोवेकिया, स्पेन और अल्बानिया पर जबतक यह नीति लागू रही, उससे कोई ख़ास फर्क नहीं पड़ा और ईमानदारी के साथ उसका पालन किया गया। लेकिन जब वह अपने ही घर पर लागू करने की बारी आ गई और ब्रिटिश सल्तनत को उससे ख़तरा पैदा हो गया तो संघर्ष हुआ और लड़ाई शुरू हो गई।

अब ब्रिटिश सरकार के सामने या प्रत्येक उस सरकार के सामने, जो इस लड़ाई में हिस्सा ले रही थी, दो ही रास्ते थे--एक यह कि वह अपने पुराने साम्राज्यवादी ढंग को जारी रखें और दूसरा यह कि सारी दुनिया में फैली हुई आज़ादी की मांग और इन्किलाबी तब्दीली की वह रहनुमा बन जायं। उन्होंने पहले रास्ते को चुना हालांकि वे अब भी आज़ादी के हक़ में बातें करते थे और वे आज़ादी जबानी तौर पर भी महज़ यूरोप तक ही सीमित थी। ज़ाहिरा तौर पर उसका मतलब अपनी सल्तनतों में ही पुराने तरीक़े पर लागू की जानेवाली आज़ादी थी। उनका अपनी सल्तनत पर क़ब्ज़ा रखने और अपने आधीन लोगों पर अपनी मर्ज़ी लादने का इरादा ख़तरों और आफतों से भी कमज़ोर नहीं हुआ।

हिंदुस्तान में एक साल से युद्धकालीन सरकार चल रही है। लोगों के ज़रिये चुनी गई विधान-सभाओं पर पाबंदी लगा दी गई और उनकी उपेक्षा की गई है और दुनिया की किसी भी जगह की निस्बत यहां कहीं ज्यादा स्वेच्छाचारी राज्य का बोल-बाला है। हाल ही के जिन उपायों द्वारा अखबारों को जो तथ्य और राय देने की सीमित आज़ादी दी गई थी, उसे भी पूरे तौर पर छीन लिया गया। अगर यही उस आज़ादी की, जिसका हमसे वादा किया जा रहा है, या उस 'नई व्यवस्था' की, जिसके बारे में बहुत-कुछ कहा गया है, भूमिका है, तो हम अच्छी तरह अंदाज़ा कर सकते हैं कि बाद में जब इंगलैण्ड पूरे तौर पर एक फासिस्ट देश बनकर सामने आयगा, तो उस वक्त की हालत क्या होगी !

इस लड़ाई की वजह से पहले ही चारों तरफ तबाही फैल चुकी है और यह आगे और भी ज्यादा भय और

तकलीफें लायगी। जो लोग तकलीफें उठाते हैं, उनके साथ हम गहरी और पूरी ईमानदारी के साथ हमदर्दी रखते हैं। लेकिन जबतक यह लड़ाई मौजूदा ढांचे को खत्म करने और उसकी जगह ऐसा ढांचा, जिसकी वुनियाद आज़ादी और सहयोग पर हो, तैयार करने का इन्किलावी मुद्दा अख्तियार नहीं कर लेती, तवतक वह जारी रहेगी, और हद दर्जे की तवाही भी लायगी।

यही वजह है कि हमें अपने-आपको इस लड़ाई से दूर रखना चाहिए और अपने लोगों को भी ऐसा ही करने और पैसे या आदमियों के ज़रिये किसी भी तरह की मदद न करने की सलाह देनी चाहिए। ऐसा करना हमारा सवसे वड़ा फर्ज़ है। लेकिन इसके अलावा भी, पिछले वरस के दौरान ब्रिटिश हाकिमों का हिंदुस्तान के लोगों के साथ किया गया सलूक, हर फूट डालनेवाली या प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति को उकसाना, लड़ाई के लिए उनका ग़रीव आदमियों तक से ज़वरदस्ती पैसा वसूल करना, हिंदुस्तानी राष्ट्रीयता पर वार-वार अपनी ताक़त का प्रदर्शन, ये सारी ऐसी बातें हैं, जिन्हें हम कभी नहीं भूल सकते और न ही दरगुज़र कर सकते हैं। कोई भी आत्म-सम्मान रखने वाले लोग ऐसे सलूक को वरदाश्त नहीं कर सकते और हिंदुस्तान के लोग इसे क़तई वरदाश्त नहीं करना चाहते। मैं आपके सामने एक ऐसे व्यक्ति के रूप में हाज़िर हूं, जिसपर राज्य के खिलाफ कुछ इल्ज़ामों का मुक़दमा चलाया जा रहा है। लेकिन मैं एक व्यक्ति से कुछ ज्यादा भी हूं, मैं इन मौजूदा क्षणों में एक प्रतीक भी हूं—हिंदुस्तानी राष्ट्रीयता का प्रतीक, जिसका पक्का इरादा है ब्रिटिश सल्तनत से अलग होना और हिंदुस्तान की आज़ादी हासिल करना। यह सिर्फ मैं ही नहीं हूं वल्कि हिंदुस्तान के करोड़ों लोग हैं, जिनकी आप जांच करना चाह रहे हैं और निन्दा करना चाहते हैं, और यह एक वहुत बड़ा काम है, चाहे वह एक घमंडी सल्तनत के लिए ही क्यों न हो! शायद यह भी हो सकता है कि, हालांकि मैं आपके सामने जांच के लिए खड़ा हूं, यह खुद ब्रिटिश सल्तनत ही हो, कि जो दुनिया की अदालत के सामने अपनी जांच के लिए खड़ी है। आज क़ानूनी अदालतों से भी ज्यादा वड़ी ताक़तें हैं, जो दुनिया में काम कर रही हैं। आज़ादी, खुराक और सुरक्षा की वनियादी मांगें जनता को तेज़ी के साथ चला रही हैं और उनके द्वारा इतिहास का रूप ढाला जा रहा है। भविष्य में इस इतिहास को लिखनेवाला यह कह सकेगा कि उस कठिन परीक्षा की घड़ी में ब्रिटिश सरकार और ब्रिटेन के लोग हार गये; क्योंकि वे अपने-आपको वदलती हुई दुनिया के मुताबिक नहीं वना सके। शायद वह साम्राज्य के इस भाग्य पर हँसे, जो हमेशा इस कमज़ोरी की वजह से नष्ट हो जाता है, और जिसे वह होनहार का नाम दे। कई एक कारण होते हैं, जिनके नतीजे लाज़िमी होते हैं। हम कारणों को जानते हैं और उनके सिलसिले में नतीजे भी दूसरे नहीं हो सकते। ●

१३ सितम्बर, १९४६ की अंतरिम राष्ट्रीय सरकार के निर्माण के बाद संविधान-सभा में १३ दिसंबर, १९४६ को नेहरू जी का भाषण।

हमारा रास्ता

साहबे सदर, कई दिनों से यह कांस्टीटुएंट असेम्बली अपनी कार्रवाही कर रही है। अभी तक कुछ ज़ाब्ते की कार्रवाही हुई और अभी और भी ज़ाब्ते की कार्रवाही बाक़ी है। हम अपना रास्ता साफ कर रहे हैं, ताकि आइन्दा उस साफ ज़मीन पर विधान की इमारत खड़ी करें। यह ज़रूरी काम था; लेकिन मुनासिब है कि कब्ल इसके कि हम और आगे बढ़ें, इस बात को साफ कर दें कि हम किधर जाना चाहते हैं, हम देखते किधर हैं और कैसी इमारत हम खड़ी किया चाहते हैं। ज़ाहिर है कि ऐसे मौक़ों पर किसी तफसील में जाना मुनासिब नहीं होगा। वह तो आप बहुत ग़ौर करके इस इमारत की एक-एक ईट और पत्थर लगायेंगे। लेकिन जब कोई इमारत बनाई जाती है तो उसके पहले कुछ-कुछ नक्शा दिमाग़ में मौजूद होता है और तब ईट-पत्थर जमा किये जाते हैं। हमारे दिमाग़ों में एक ज़माने से आज़ाद हिंदुस्तान के तरह-तरह के नक्शे रहे हैं। लेकिन अब, जबकि हम इस कांस्टीटुएंट असेम्बली का काम शुरू कर रहे हैं तो मुझे यह ज़रूरी मालूम होता है, और मैं उम्मीद करता हूं कि आप भी इसको मंजूर करेंगे कि इस नक्शे को हम ज़रा ज्यादा ज़ाब्ते से अपने सामने, हिंदुस्तान के लोगों के सामने और दुनिया के लोगों के सामने रखें। चुनांचे, जो रिज़ोल्यूशन मैं आपके सामने पेश कर रहा हूं, वह इस तरह के एक मक़सद को साफ करने का, कुछ थोड़ा-सा नक्शा बतलाने का कि किधर हम देखते हैं, और किस रास्ते पर हम चलेंगे, इस मज़मून का है।

आप जानते हैं कि यह जो कांस्टीटुएंट असेम्बली है, बिलकुल उस क़िस्म की नहीं है, जैसाकि हममें से बहुत-से लोग चाहते थे। ख़ास हालत में यह पैदा हुई और इसके पैदा होने में अंग्रेजी हुकूमत का हाथ है। कुछ शरायत भी उसमें उन्होंने लगाये हैं। हमने बहुत ग़ौर के बाद उस बयान को, जो कि इस कांस्टीटुएंट असेम्बली की बुनियाद-सा है, मंजूर किया है। हमारी कोशिश रही है, और रहेगी कि जहांतक मुमकिन हो, हम उन हदों में चलें, लेकिन इसके साथ आप याद रखें कि आखिर इस कांस्टीटुएंट असेम्बली के पीछे क्या ताक़त है और किस चीज़ ने इसको बनाया है। ऐसी चीज़ें हुकूमतों के बयानों से नहीं बनतीं। हुकूमत के जो बयान होते हैं, वे किसी ताक़त की और किसी मजबूरी की तरजुमानी करते हैं और अगर हम यहां मिले हैं तो हिंदुस्तान के लोगों की ताक़त से मिले हैं। जो बात हम करें, उसी दरजे तक कर सकते हैं, जितनी कि उसके पीछे हिंदुस्तान के लोगों की ताक़त और मंजूरी हो, कुल हिंदुस्तान के लोगों की, किसी ख़ास फिरके या किसी ख़ास गिरोह की नहीं। चुनांचे, हमारी निगाह हर वक्त हिंदुस्तान के उन करोड़ों आदमियों की तरफ होगी और हम कोशिश करेंगे कि उनके जो जज़बात हों, उनका तर्जुमा हम इस विधान में करें। हमको अफसोस है कि इस असेम्बली के अक्सर मेम्बरान इसमें इस वक्त शरीक नहीं हैं। इससे हमारी एक मानी में ज़िम्मेदारी बढ़ जाती है। हमें ख्याल करना पड़ता है कि

हम कोई बात ऐसी न करें जो औरों को तकलीफ पहुंचाये, या जो बिलकुल किसी उसूल के ख़िलाफ हो। हम उम्मीद करते हैं कि जो लोग शरीक नहीं हैं, वे जल्द शरीक हो जायंगे और वे भी इस आईन के बनाने में पूरा हिस्सा लेंगे, क्योंकि आखिर यह आईन उतनी ही दूर तक जा सकता है जितनी ताक़त इसके पीछे हो। हम चाहते हैं कि इससे हिंदुस्तान के सभी लोग सहमत हों और हमारी कोशिश यह रही है, और रहेगी कि ऐसी चीज़ हम बनायें जो कसरत से हिंदुस्तान के करोड़ों आदमियों को मंजूर हो और उनके लिए मुफीद हो। इसके साथ यह भी ज़ाहिर है कि जब कोई बड़ा मुल्क आगे बढ़ता है तो फिर चन्द लोगों के या किसी गिरोह के रोकने से वह रुक नहीं सकता। अगर्चे यह असेम्बली बावजूद इसके कि चन्द मेम्बरान हसमें शरीक नहीं है, बैठी है, ताहम, यह अपना काम जारी रखेगी और यह कोशिश करेगी कि बहर सूरत इस काम को जारी रखे।

यह जो रिज़ोल्यूशन मैं आपके सामने पेश कर रहा हूं, एक घोषणा है, एक ऐलान है, जो रिज़ोल्यूशन की शक्ल में है। काफी ग़ौर और फिक्र से यह बनाया गया है। इसके अल्फाज़ पर ग़ौर किया गया है और कोशिश की गई है कि इसमें कोई ऐसी बात न हो, जो ख़िलाफ समझी जाय और बहुत ज्यादा बहस-तलब हो। यह तो ज़ाहिर है कि एक बड़े मुल्क में बहस करनेवाले ज्यादा हो सकते हैं; लेकिन कोशिश यही हुई है कि इसमें बहस-मुबाहसा की बातें कम-से-कम हों। इसमें बुनियादी बातें हों, उसूल की बातें हों, जोकि एक मुल्क आमतौर से पसन्द करता है और मंजूर करता है। मैं नहीं समझता कि इस रिज़ोल्यूशन में कोई ऐसी बात है, जो कि अव्वलन इस ब्रिटिश केबिनेट के बयान के हद से बाहर हो, दोयम यह कि कोई भी हिंदुस्तानी चाहे वह किसी गिरोह में हो, उसको ना-मंजूर करे। बदक़िस्मती से हमारे मुल्क में बहुत-सारे एख़तलाफ हैं, लेकिन इन बुनियादी उसूलों में, जो इसमें लिखे हैं, इक्के-दुक्के आदमियों के अलावा कोई एखतलाफ मैं नहीं जानता। इस रिज़ोल्यूशन का क्या बुनियादी उसूल है? वह यह है कि हिंदुस्तान एक आज़ाद मुल्क हो--एक सौवरन रिपब्लिक हो। रिपब्लिक लफ्ज़ का ज़िक्र हमने अभी तक ज़ाहिर नहीं किया था, लेकिन आप ख़ुद समझ सकते हैं कि आज़ाद हिंदुस्तान में और हो क्या सकता है! सिवाय रिपब्लिक के कोई रास्ता नहीं है। इसकी एक ही शक्ल है कि हिंदुस्तान में रिपब्लिक हो।

हिंदुस्तान की जो रियासतें हैं, उनपर क्या असर पड़ेगा, मैं इस बात को साफ किया चाहता हूं, क्योंकि इस वक्त ख़ासतौर से रियासतों के नुमाइन्दे इसमें शरीक़ नहीं हैं। यह भी तजवीज़ हुई है, और शायद एक तरमीम की शक्ल में पेश हो कि चूंकि बाज लोग यहां मौजूद नहीं हैं, इसलिए यह रिज़ोल्यूशन मुलतवी कर दिया जाय। मेरा ख्याल यह है कि यह तरमीम मुनासिब नहीं है। चूंकि पहली बात, जो हमें करनी है और जो हमारे सामने है, दुनिया के सामने है, वह अगर हम न करेंगे तो हम बिलकुल एक बेजान चीज़ हो जायंगे और मुल्क हमारी बातों में दिलचस्पी नहीं रखेगा। लेकिन रियासतों का जो ज़िक्र किया गया है, उसके मुताल्लिक हमारा इरादा है, और हम चाहते हैं और उसको समझना भी लाज़मी बात है कि हिंदुस्तान का जो यूनियन बने उसमें हिंदुस्तान के सब हिस्से ख़ुशी से आयं। कैसे आयं, किस ढंग से आयं, उनके क्या अख्तियारात हों, ये तो उन सबोंकी ख़ुशी पर है। प्रस्ताव में कोई तफसील नहीं है, सिर्फ बातें हैं। उसमें कुछ ख़ुदमुख्तार हिस्से हैं, उसकी कोई भी तफसील रिज़ो-ल्यूशन में नहीं है। लेकिन उसकी जो मौजूदा शक्ल है, उससे रियासतों के ऊपर कोई मजबूरी नहीं आती है। यह ग़ौर करने की बात है कि वह किस ढंग से आयंगे। रियासतों में अन्दरूनी हुकूमत कैसी हो, इस बारे में मेरी अपनी एक राय है; लेकिन मैं उसको आपके सामने नहीं रखूंगा। सिवाय इसके कि ज़ाहिर है कि किसी रियासत में वह काम नहीं हो सकता, जो हमारे बुनियादी उसूलों के ख़िलाफ हो या जो और हिंदुस्तान के हिस्सों के मुक़ाबिले में

आज़ादी कम करे। वहां किस शक्ल की हुकूमत हो, जैसेकि आजकल की तरह राजा-महाराजा या नवाब (हैं, या नहीं) इस रिज़ोल्यूशन को इस बात से मतलब नहीं है। यह वहां के लोगों से ताल्लुक रखता है। यह बहुत मुमकिन है कि राजाओं को अगर लोग चाहें तो रखें, क्योंकि इन बातों से उन्हींका ताल्लुक है, फैसला वही लोग करेंगे। हमारी रिपब्लिक सारे हिंदुस्तान की यूनियन है और उसके अन्दर अलग किसी हिस्से में वहां के लोग अगर चाहें तो अपना अन्दरूनी इन्तज़ाम दूसरा करें।

इस रिज़ोल्यूशन में जो लिखा हुआ है, मैं नहीं चाहता कि आप उसमें कमी या बेशी करें। मैं यह मुनासिब समझता हूं कि इस कांस्टीटुएंट असेम्बली में कोई ऐसी बात न हो, जो मुनासिब न हो, और किसी वक्त में ख़ास-तौर से वे लोग, जिनका इन सवालों से ताल्लुक है और यहां मौजूद नहीं हैं, यह कहें कि इस असेम्बली में बेक़ायदा बातें हुई हैं। जहांतक इस रिज़ोल्यूशन का ताल्लुक है, मैं चाहता हूं कि आपकी ख़िदमत में उसे पेश कर दूं। एक तफसीली चीज़ की तरह नहीं बल्कि, इस तरह से कि हमें हिंदुस्तान को किस तरह पर ले जाना चाहिए। आप उसके अलफाजों पर ग़ौर करें और मैं समझता हूं कि आप उसे मंजूर करेंगे। लेकिन असल चीज़ यह है कि इस रिज़ोल्यूशन का क्या जज़वा है। क़ानून वगैरा लफ्जों से वनते हैं; लेकिन यह उससे ज्यादा ज़रूरी चीज़ मालूम होती है। अगर आप उसके लफ्ज़ों में एक क़ानूनदां की तरह जायंगे तो आप एक बेजान चीज़ पैदा कर सकते हैं। हम इस वक्त एक दरवाज़े पर हैं, एक ज़माना खत्म हो रहा है और एक नया ज़माना शुरू होनेवाला है। इस मौक़े पर हमें एक जानदार पैग़ाम हिंदुस्तान को देना है और हिंदुस्तान के वाहर भेजना है। उसके बाद हम अपने विधान और आईन को लफ्जों का ऐसा जामा पहनायंगे जैसा मुनासिब समझेंगे। लेकिन इस वक्त एक पैग़ाम भेजना है और यह दिखाना है कि हम क्या करना चाहते हैं। इसलिए इस रिज़ोल्यूशन से, इस घोषणा से और इस ऐलान से हमें यह दिखाना है कि इससे क्या शक्ल और तस्वीर पैदा होती है। यह इन्सानी दिमाग़ में जान पैदा करने-वाली चीज़ है, क़ानूनी चीज़ नहीं है। लेकिन क़ानून भी ज़रूरी है, ज़रूरी मामलों में। मैं उम्मीद करता हूं कि आप साहेवान इस रिज़ोल्यूशन को मंजूर करेंगे और जिस शक्ल में चाहे मंजूर करेंगे। रिज़ोल्यूशन आपके सामने आया है और यह एक ख़ास हैसियत रखता है। एक तरह से यह एक इक़रारनामा-सा है, अपने साथ—अपने लाखों करोड़ों भाई-वहनों के साथ, जो इस मुल्क में रहते हैं। अगर हम इसे मंजूर करते हैं तो यह एक तरह की प्रतिज्ञा या इक़रार होगा कि हम इसको पूरा करेंगे। इस शक्ल में मैं इसको आपके सामने पेश करता हूं। आपके पास हिंदुस्तानी में रिज़ोल्यूशन की नक़लें मौजूद हैं। वह रिज़ोल्यूशन यह है—

> यह संविधान-सभा हिंदुस्तान को एक सर्व-प्रभुत्व-सम्पन्न लोक-तंत्रात्मक गणराज्य ऐलान करने और उसकी आइंदा, की हुकूमत के लिए एक ऐसा संविधान पेश करने का अपना पक्का और संजीदा इरादा ज़ाहिर करती है—
>
> जिसके अन्दर वे प्रदेश, जो ब्रिटिश इंडिया में शामिल हैं, वे प्रदेश, जिनसे देशी रियासतें वनी हैं, और हिंदुस्तान के ऐसे हिस्से जो ब्रिटिश इंडिया और रियासतों से वाहर हैं, और ऐसे दूसरे प्रदेश, जो आज़ाद हिंदुस्तान के गणराज्य में शामिल होने के ख्वाहिशमंद हैं, मिलकर एक संघ कहलायंगे;

जिसके अन्दर हिंदुस्तान की सारी जनता को समाजी, माली और सियासी इंसाफ; दर्जे की, मौके की, और संविधान की रूह से बराबरी; क़ानून और शिष्टाचार को ध्यान में रखते हुए विचार, विश्वास, धर्म, पूजा, धंधा, और काम की आज़ादी की हिफाज़त होगी और हासिल होगी ।

जिसके अंदर अल्पसंख्यकों, पिछड़े हुए और आदिमवासी इलाकों और दलित तथा दूसरी पिछड़ी हुई जमातों के लिए संरक्षण होंगे ;

जिसके ज़रिये थल, जल और नभ में उसके पूर्ण सत्तात्मक अधिकार स्थिर रखे जायंगे । और यह प्राचीन देश दुनिया में अपनी मुनासिब और बाइज़्ज़त जगह हासिल करेगा और दुनिया में अमन और इन्सानियत की भलाई की अभिवृद्धि करने के लिए अपनी मर्ज़ी से पूरा योग देगा । ●

एशियाई सम्मेलन में २३ मार्च, १९४७ को भाषण जिसमें एशियाई देशों में आपसी भाईचारे और आपसी सहयोग से प्रगति करने की इच्छा प्रकट की।

एशिया फिर से करवट बदल रहा है

एशिया के नर-नारियो, आप किसकी पुकार सुनकर यहां आये हैं ? आप मातृ-महाद्वीप के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से दिल्ली के इस क़दीम शहर में क्यों इकट्ठा हुए हैं ? हम लोगों ने बड़ी हिम्मत करके आपको इस सम्मेलन के लिए दावतनामे भेजे और आपने उनके पुरजोश जवाब दिये। लेकिन आप महज़ हमारे बुलावे पर ही यहां नहीं आये, बल्कि आपके दिलों में एक गहरी भावना थी, जिसने आपको यहां आने की प्रेरणा की।

एक दौर ख़त्म हो रहा है और हम इतिहास की एक नई मंजिल पर खड़े हैं। जिस जगह हम खड़े हैं वहां इन्सान के इतिहास और कोशिशों के दो दौर जुदा होते हैं, एक तरफ पीछे हमारा पुराना इतिहास है, दूसरी तरफ आंखों के सामने भविष्य है, जो बन रहा है। बहुत मुद्दत की खामोशी के बाद अचानक, एशिया फिर से दुनिया की आंखों में अहम बन गया है। अगर हम अपने पुराने इतिहास को देखें तो मालूम होगा कि एशिया के इस महान देश ने, जिसके साथ मिस्र का गहरा सांस्कृतिक संबंध रहा है, इन्सान की तरक्की में बड़ा अहम हिस्सा लिया है। यही वह जगह है, जहां संस्कृति का जन्म हुआ और इन्सान अपनी ज़िंदगी के बहुत लम्बे और रोमांचकारी रास्ते पर बढ़ा। यहीं इन्सान ने लगातार सचाई की खोज जारी रखी और यहीं इन्सान की आत्मा सारी दुनिया के लिए प्रकाश बनकर चमकी। यह गतिशील एशिया, जहां से संस्कृति की बड़ी-बड़ी नदियां चारों ओर बहीं, गतिहीन और परिवर्तनहीन बन गया। दूसरे लोग, और दूसरे महाद्वीप आगे आये और अपनी गतिशीलता की वजह से फैले। उन्होंने दुनिया के बड़े-बड़े हिस्सों पर क़ब्ज़ा कर लिया। यह महान देश यूरोप के एक-दूसरे के ख़िलाफ साम्राज्यवादों की लड़ाई का अखाड़ा बन गया और यूरोप इन्सानियत के इतिहास और तरक्की का केन्द्र बन गया।

अब दृश्य फिर से बदल रहा है और एशिया एक बार फिर से जाग उठा है। जिस ज़माने में हम रह रहे हैं, वह बहुत तेज़ी से बदल रहा है और अगला क़दम यही होगा कि एशिया दूसरे मुल्कों के बीच अपनी वाजिब जगह हासिल कर ले।

आज हम इस अहम मौक़े पर एक-दूसरे से मिल रहे हैं और हिंदुस्तानियों की यह ख़ुशक़िस्मती है कि वे दूसरे मुल्कों के एशियाई भाइयों का स्वागत करें, उनके साथ वर्तमान और भविष्य के मामलों पर ग़ौर करें और आपसी तरक्क़ी, दोस्ती, और भलाई की बुनियाद डालें।

एशियाई सम्मेलन करने का यह ख्याल कोई नया नहीं है, इससे पहले ऐसा ख्याल कई बार किया गया है। दरअसल यह ताज्जुब की बात है कि यह सम्मेलन आज से कई साल पहले नहीं बुलाया गया; लेकिन शायद इसके लिए मुनासिब वक्त नहीं था और सबसे पहले ऐसी कोई भी कोशिश बेकार साबित होती, क्योंकि इसका दुनिया

के वाक़यात के साथ मेल नहीं बैठता था। ऐसा इत्तिफाक हुआ कि हमने यह सम्मेलन हिंदुस्तान में करने का फैसला किया और इसी तरह के सम्मेलन का ख्याल कई दिमाग़ों में और कई मुल्कों में एक साथ उठा। सबके दिलों में यह पुकार थी और यह अहसास था कि अब वह वक्त आ गया है जब हम सब एशियाइयों को एक जगह इकट्ठा होना चाहिए और मिलकर तरक़्क़ी करनी चाहिए। यह महज हमारी ख्वाहिश ही नहीं थी, बल्कि घटनाओं से मजबूर होकर हमने इस दिशा में विचार करना शुरू किया, और यही वजह है कि जो दावतनामा हमने हिंदुस्तान से भेजा, उसका एशिया के हरेक मुल्क ने शानदार जवाब दिया।

हम आये हुए डेलीगेटों और प्रतिनिधियों का स्वागत करते हैं—चीन का महान मुल्क, जिसका तमाम एशिया एहसानमंद है और जिससे बहुत-कुछ उम्मीद रखी जाती है; मिस्र और पश्चिमी एशिया के अरब देश, जिनको पुश्त-दर-पुश्त वह ऊंची संस्कृति मिली है, जो दूर-दूर तक फैली और जिसका हिंदुस्तान पर गहरा असर पड़ा; ईरान, जिसका ताल्लुक हिंदुस्तान के साथ इतिहास की शुरुआत से ही रहा है; इन्डोनेशिया और हिन्द-चीन, जिनकी संस्कृति हिंदुस्तान की संस्कृति के साथ गुंथी हुई है और जहां हाल ही में आज़ादी के लिए जो लड़ाई जारी रही है, वह हमें याद दिलाती है कि आज़ादी तोहफे की शक्ल में नहीं मिला करती, उसे जीतना पड़ता है, तुर्की, जिसने एक महान नेता की रहनुमाई में एक नई ज़िंदगी हासिल कर ली है; कोरिया, मंगोलिया, स्याम, मलाया और फिलिपाइन, और एशिया के रूसी प्रजावादी हिस्से, जिन्होंने हमारे देखते-ही-देखते बहुत तेज़ी के साथ तरक़्क़ी कर ली है, और जिनसे हमें बहुत-से सबक सीखने हैं; और हमारे पड़ौसी देश—अफ़ग़ानिस्तान, तिब्बत, नेपाल, भूटान, बर्मा और लंका, जिनसे हम दोस्ताना सलूक और सहयोग की उम्मीद रखते हैं। इस सम्मेलन में एशिया की पूरी तरह नुमाइन्दग़ी की जा रही है और एक या दो मुल्क अगर अपना नुमाइन्दा नहीं भेज सके, तो वह इसलिए नहीं कि वे भेजना नहीं चाहते थे, बल्कि इसलिए कि कुछ ऐसे वाक़यात रास्ते में आ गये, जो उनके क़ाबू से बाहर थे। हम आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड से आये हुए प्रेक्षकों का भी स्वागत करते हैं, क्योंकि उनके और हमारे बहुत-से मसले एक से हैं—खासकर प्रशान्त महासागर से और एशिया के दक्षिण-पूर्वी हिस्से से ताल्लुक रखनेवाले और दूसरे मसलों को हल करने के लिए हमें मिलजुलकर काम करना है।

इस वक्त, जबकि हम यहां इकट्ठा हो रहे हैं, एशिया का पुराना इतिहास हमारी आंखों के सामने आ जाता है। मौजूदा वक्त की मुश्किलातें ग़ायब हो जाती हैं और हज़ारों क़िस्म की यादें जाग उठती हैं। लेकिन मैं आपके सामने गुज़रे हुए इतिहास, उसके बड़प्पन, उसकी कामयाबी और नाकामयाबी का ज़िक्र नहीं करूंगा, और न ही मौजूदा ज़माने की उन मुसीबतों का ज़िक्र करूंगा जिनकी वजह से हम इतने परेशान हुए हैं और अब भी किसी हद तक हो रहे हैं। पिछले दोसौ सालों में हमने पश्चिमी साम्राज्यों की तरक्की और एशिया के बहुत बड़े-बड़े मुल्कों को औपनिवेशिक ग़ुलामी की हालत तक पहुंचते देखा है। इन सालों में बहुत-से अहम वाक़यात हुए हैं। एशिया भर में यूरोप के प्रभुत्व का एक खास नतीजा यह निकला कि एशिया के मुल्क एक-दूसरे से दूर हो गये। उत्तर-पश्चिम, उत्तर-पूर्व, पूर्व और दक्षिण-पूर्व सभी तरफ के मुल्कों से हिंदुस्तान का नज़दीकी ताल्लुक था; लेकिन हिंदुस्तान में ब्रिटिश राज्य के क़ायम होते ही सारे ताल्लुक टूट गये और हिंदुस्तान बाक़ी एशिया से बिलकुल जुदा-सा हो गया। खुश्की के सब पुराने रास्ते बंद हो गये और सिर्फ इंगलैण्ड को जानेवाले समुद्री रास्ते खुले रहे। एशिया के दूसरे मुल्कों की भी यही हालत हुई। उनकी माली हालत यूरोप के साम्राज्यवाद के साथ बंध गई और संस्कृति तक के लिए वह यूरोप का मुंह ताकने लगे और अपने उन पड़ोसी मुल्कों को भूल गये, जिनसे उन्होंने गुजिश्ता वक्त

में बहुत-कुछ पाया था ।

आज यह अकेलापन सियासी और दूसरे कारणों से दूर होता जा रहा है और साम्राज्यवाद का ख़ात्मा हो रहा है। ख़ुश्की के रास्ते फिर से खुल गये हैं और हवाई रास्तों के ज़रिये हम एक-दूसरे के नज़दीक आ गये हैं। यह सम्मेलन इस बात का सबूत है कि बावजूद उस अकेलेपन के, जो यूरोपियन प्रभुता के नीचे बढ़ गया था, हमारे दिलों में मिलन की एक गहरी ख्वाहिश लहरें मारती रही है। आज, जब वह प्रभुता ख़त्म हो रही है, हमारे चारों तरफ़ की जेल की दीवारें टूटकर गिर रही हैं, हम एक बार फिर पुराने दोस्तों की हैसियत से मिलने के लिए एक जगह इकट्ठा हो रहे हैं।

इस सम्मेलन में न कोई नेता है और न पीछे चलनेवाला । एशिया के सभी मुल्क बराबरी की हैसियत से इस मिली-जुली कोशिश को पूरा करने के लिए जमा हुए हैं। यह वाजिब ही है कि इस नई तरक्कीज़दा कोशिश में हिंदुस्तान अपना हिस्सा ले । सिर्फ यही बात नहीं कि अब हिंदुस्तान आज़ाद होने जा रहा है, बल्कि वह एशिया में काम करनेवाली तमाम ताक़तों का कुदरती केन्द्र है। उसकी भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि वह पश्चिमी, उत्तरी, पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया का संधि-केन्द्र बनने के क़ाबिल है। इसी वजह से हिंदुस्तान का लम्बा इतिहास एशिया के दूसरे मुल्कों के साथ जुड़ा रहा है। पश्चिम और पूर्व से जो संस्कृति की धाराएं निकलीं, वे हिंदुस्तान में इस तरह घुल-मिल गई कि मौजूदा बहुरूपा संस्कृति पैदा हुई। साथ ही हिंदुस्तान की संस्कृति की धारा एशिया के सुदूर मुल्कों में पहुंची। हिंदुस्तान को पूरी तरह समझने के लिए अफगानिस्तान, पश्चिमी एशिया, मध्य एशिया, चीन, और जापान, और दक्षिण-पूर्वी एशिया के मुल्कों में जाना चाहिए। इन मुल्कों में हिंदुस्तान की संस्कृति का परिचय मिलेगा, जिसका असर वहां की बहुसंख्या पर पड़ा है।

बहुत पुराने जमाने में ईरान की संस्कृति का प्रवाह भारत में आया। इसके बाद भारत और सुदूरपूर्व, ख़ासकर चीन के दरमियान निरन्तर लेन-देन क़ायम हो गया। आखिरी बरसों में दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय कला और संस्कृति की ज्योति जगमगा उठी। वह ज़बरदस्त प्रवाह अरब देश से शुरू हुआ और ईरानी संस्कृति के साथ मिलकर फैलता हुआ हिंदुस्तान में आ गया। ये सब प्रवाह आये और इन्होंने हमपर असर डाला; लेकिन हिंदुस्तान की संस्कृति की छाप इतनी गहरी थी कि खुद बिना दबे या बरबाद हुए इसने इन तमाम प्रवाहों को अपने अन्दर जज़्ब कर लिया। फिर भी इस सिलसिले में कुछ तब्दीली ज़रूर आई और आज हिंदुस्तान में हमसब इन जुदा-जुदा तब्दीलियों की मिली-जुली पैदायश हैं। एक हिंदुस्तानी एशिया में जहां भी कहीं जाता है, वहां की ज़मीन के साथ और वहां के उन इन्सानों से, जिनसे वह मिलता है, एक तरह का अपनापन महसूस करता है ।

मैं आप लोगों के सामने गुज़िश्ता वक्त के बारे में नहीं, बल्कि मौजूदा वक्त के बारे में ज़िक्र करना चाहता हूं। हम यहां अपने पिछले इतिहास और आपसी ताल्लुक के बारे में चर्चा करने के लिए इकट्ठा नहीं हुए हैं, बल्कि भविष्य में एक-दूसरे से नाता जोड़ना चाहते हैं। मैं यह भी बतला देना चाहता हूं कि इस सम्मेलन के पीछे जो विचार-धारा है, वह किसी तरह का भी हमलावर रूप लिये हुए नहीं है और न ही यह किसी दूसरे मुल्क के ख़िलाफ़ है। जबसे इस सम्मेलन की खबर बाहर मुल्कों में गई है, अमरीका और यूरोप के कुछ लोग इसे शक की नजरों से देख रहे हैं और उनका ख्याल है कि हम यूरोप और अमरीका के खिलाफ अखिल एशियाई गुटबंदी कर रहे हैं । लेकिन मैं यह बतला देना चाहता हूं कि हमारा किसीसे विरोध नहीं है और हमारी योजना है कि सारी दुनिया में अमन और तरक्की का राज हो। एशिया बहुत दिनों तक पश्चिम की ओर ताकता रहा है । अब यह नहीं चल सकता ।

हम अपने पैरों पर खड़ा होना चाहते हैं और जो लोग तैयार हों, हम उनके साथ सहयोग करना चाहते हैं । लेकिन अब हम दूसरों के हाथ का खिलौना बनना नहीं चाहते ।

दुनिया के इतिहास में एशिया इस मौक़े पर अहम हिस्सा लेगा । एशिया के मुल्क अब दूसरों के हाथों में नहीं बिक सकते । दुनिया के मामलों में वे ख़ुद अपनी नीति तय करेंगे । यूरोप और अमरीका ने इन्सान की तरक्की में बहुत मदद की है और इसके लिए हम उनकी तारीफ और इज्जत करते हैं, और उनकी बहुत-सी बातें, जो वह सिखा सकते हैं, सीखने को तैयार हैं । लेकिन पश्चिमी की बदौलत हम अनगिनत लड़ाइयों और जद्दोजहद में आ फंसे हैं और अब एक खौफनाक लड़ाई के बाद इस आनेवाले परमाणु युग में फिर से लड़ाई की बातें सुन रहे हैं । इस परमाणु युग में अमन क़ायम करने के लिए यक़ीनन एशिया अपना असर डालेगा । सच तो यह है कि जबतक एशिया हिस्सा नहीं लेता अमन क़ायम नहीं हो सकता । आज कई मुल्कों में लड़ाई चल रही है और हम सब एशिया के बाशिंदे अपनी-अपनी मुसीबतों में फंसे हुए हैं । लेकिन एशिया का नज़रिया अमन का है और दुनिया के मामलों में उसका असर अमन क़ायम करने के लिए होगा ।

अमन उसी वक्त हो सकता है जब सभी मुल्क आज़ाद हों और सब जगह इन्सानों को आज़ादी, हिफाज़त, और तरक्क़ी का मौक़ा मिले । इसलिए अमन और आज़ादी के साथ उनके माली और सियासी पहलुओं पर भी विचार करना चाहिए । हमें याद रखना चाहिए कि एशिया के मुल्क बहुत पिछड़े हुए हैं और उनकी ज़िंदग़ी का माप बहुत नीचा है । इन माली मसलों को जल्द ही हल करना पड़ेगा वरना हम किसी मुसीबत में फंस जायंगे । इसलिए हमें आम आदमी की नज़र से विचार करना चाहिए और अपने सियासी, समाजी और माली ढांचे को इस तरह तब्दील कर देना चाहिए कि वह बोझ, जिसके नीचे वह दब रहा है, दूर हो जाय और उसको तरक्की करने का पूरा मौक़ा मिल सके ।

हम इन्सानी संबंधों की उस मंज़िल पर आ पहुंचे हैं, जहांकि 'एक विश्व' का उसूल या किसी-न-किसी तरह का विश्व-संघ ज़रूरी जान पड़ता है, अगर्चे ऐसा करने में हमारे रास्ते में बहुत ख़तरे और रुकावटें आयंगी । हमें इसी उसूल के लिए कोशिश करनी चाहिए, न कि किसी ऐसी गुटबंदी के लिए, जो इस विश्व-संगठन में रुकावट डाले । इसलिए हम संयुक्त राष्ट्र के उस विधान की हिमायत करते हैं, जो अपने बचपन से निकलकर अब धीरे-धीरे बढ़ रहा है । लेकिन 'एक विश्व' के लिए ज़रूरी है कि हम सब एशिया-वासी उस ऊंचे मुद्दे को पूरा करने के लिए एक-दूसरे के साथ पूरा सहयोग करें ।

यह सम्मेलन एशिया के मुल्कों की एक-दूसरे के साथ मिलने की ख्वाहिश को किसी हद तक ज़ाहिर करता है । इससे कुछ परिणाम निकले या न निकले, यह दूसरी बात है, लेकिन हमारा एक होना ही एक ऐतिहासिक वाक़या है । यह मौक़ा इतिहास में बेमिसाल है, क्योंकि ऐसा सम्मेलन आज से पहले कहीं भी नहीं हुआ । मेरा यक़ीन है कि महज एक जगह इकट्ठा होने से ही हमने बहुत-कुछ हासिल कर लिया है और इस सम्मेलन से बहुत-सी अहम बातें पैदा होंगी । जब मौजूदा ज़माने का इतिहास लिखा जायगा तो आज का वाक़या एशिया के पिछले इतिहास को भविष्य के इतिहास से जुदा करने के लिए एक निशानी के तौर पर रहेगा । चूंकि हम सब इस इतिहास के बनाने में हिस्सा ले रहे हैं, इसलिए ऐतिहासिक घटना का कुछ महत्व हमें भी मिल जाता है ।

यह सम्मेलन कई कमेटियों और ग्रुपों में बंट जायगा, जो हमारे साझे हितों से ताल्लुक रखनेवाले मसलों पर विचार करेंगे । हम किसी भी मुल्क की अन्दरूनी सियासी हालत के बारे में चर्चा नहीं करेंगे, क्योंकि यह हमारे

सम्मेलन की मर्यादा के बाहर की बात होगी। यह कुदरती बात है कि हमें इन अन्दरूनी सियासी चर्चाओं में दिलचस्पी है, क्योंकि इनकी आपस में क्रिया और प्रतिक्रिया होती है, लेकिन हमें ऐसी चर्चा इस वक्त नहीं करनी है; क्योंकि अगर हम ऐसा करेंगे तो लगातार बहस-मुबाहिसों में उलझे रहेंगे और हो सकता है कि हम अपने उस मक़सद में कामयाब न हों, जिसके लिए हम यहां इकट्ठे हुए हैं। मैं उम्मीद करता हूं कि इस सम्मेलन के नतीजे से हम कोई-न-कोई ऐसी स्थायी एशियाई संस्था खड़ी कर सकेंगे, जो हमारे साझे मसलों पर विचार करेगी और हमें एक-दूसरे के नज़दीक लायगी। इसके बाद हम एक-दूसरे के मुल्क में आने-जाने का इंतज़ाम भी कर सकेंगे और पढ़ने और पढ़ानेवालों की अदला-बदली भी कर सकेंगे, जिससे हम एक-दूसरे को ज्यादा सही तरीके से समझ सकेंगे।

हम संकीर्ण राष्ट्रीयता नहीं चाहते। राष्ट्रीयता के लिए हर क़ौम में जगह है और उसे पैदा भी करना चाहिए, लेकिन वह ऐसी नहीं होनी चाहिए जो हमलावर रूप बना ले या अन्तर्राष्ट्रीय तरक्की के रास्ते में रुकावट डाले। एशिया अपनी दोस्ती का हाथ यूरोप, अमरीका की तरफ, और साथ-ही-साथ अफ्रीका में तकलीफें पानेवाले भाइयों की तरफ भी वढ़ाता है। हम एशियावासियों की अफ्रीका की जनता के लिए ख़ास जिम्मेदारी है। मानव-परिवार में मुनासिब जगह हासिल करने में हमें उनकी ज़रूर मदद करनी चाहिए। जिस आज़ादी की हम ख्वाहिश करते हैं, वह एक या दूसरे मुल्क के लिए या ख़ास-ख़ास लोगों के लिए ही नहीं होगी, बल्कि यह सारे मानव-समाज के लिए होगी। यह दुनिया-भर में फैलनेवाली इन्सानी आज़ादी किसी एक ख़ास दर्जे की प्रभुता पर निर्भर नहीं रह सकती। यह आज़ादी आम जनता को सब जगह मिल सकेगी और उसे अपनी तरक्की करने का मौक़ा हर वक्त मिलेगा।

आज हम एशिया की आज़ादी के महान निर्माताओं—सनयात सेन, जगलुल पाशा और अतातुर्क कमाल पाशा वग़ैरा का ध्यान करते हैं, जिनकी कोशिशों का नतीजा हमको मिल रहा है। आज हम उस महामानव महात्मा गांधी का भी ध्यान करते हैं, जिनकी मेहनत और प्रेरणा से ही हिंदुस्तान आज़ादी के दरवाज़े तक पहुंच सका है। इस सम्मेलन में उनकी ग़ैरहाज़िरी को हम महसूस करते हैं, फिर भी मैं उम्मीद करता हूं कि वह इसके ख़त्म होने से पहले एक वार ज़रूर दर्शन देंगे। वह हिंदुस्तान की जनता की सेवा में लगे हुए हैं। एशियाई सम्मेलन जैसा महत्वपूर्ण सम्मेलन भी उन्हें यहांतक खींचकर नहीं ला सका।

हम लोग एशिया-भर में परीक्षाओं और मुश्किलों में से गुज़र रहे हैं। हिंदुस्तान में भी जद्दोजहद और मुसीबतें देखने में आयंगी। लेकिन हमें घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि भारी इन्किलाब के ज़माने में ऐसा होना ज़रूरी है। एशिया के सभी लोगों में नई ताक़त और सृजनात्मक भावनाएं मौजूद हैं। जनता जाग उठी है और वह अपने अधिकार चाहती है। एशिया-भर में तूफान-सा आ गया है। लेकिन हमें इससे डरना नहीं चाहिए, वल्कि इसका स्वागत करना चाहिए, क्योंकि इसीकी मदद से हम अपने स्वप्नों का नया एशिया खड़ा कर सकेंगे। हमें इस बड़ी ताक़त में और उस नव-रचना में विश्वास रखना है, और सबसे ज्यादा उस इन्सानियत में विश्वास रखना है, जिसका प्रतीक एशिया बहुत पुराने ज़माने से रहता आया है। ●

१४ अगस्त, १९४७ की रात को १२ बजे संविधान-सभा में नेहरू जी का भाषण।

किस्मत से सौदा

बहुत साल हुए हमने क़िस्मत के साथ एक सौदा किया था और अब अपना वादा पूरा करने का वक्त आया है—पूरे तौर पर जितना चाहिए उतना तो नहीं, फिर भी काफी हद तक। जब आधी रात के घंटे बजेंगे, जबकि सारी दुनिया सोती होगी, उस वक्त हिंदुस्तान जागकर नई ज़िन्दगी और आज़ादी हासिल करेगा। एक ऐसा क्षण आता है, जोकि इतिहास में कम ही आता है, जबकि हम पुरानी को छोड़कर नई ज़िन्दगी में क़दम रखते हैं, जबकि एक युग खत्म होता है, जबकि क़ौम की लम्बे अर्से से कुचली हुई आत्मा का उद्धार होता है। यह लाज़िम है कि इस संजीदा लहमे में हम हिंदुस्तान और उसके लोगों और उससे भी बढ़कर इन्सानियत की भलाई के लिए खिदमत करने की प्रतिज्ञा करें।

इतिहास के उदयकाल में भारत ने अपनी अनंत खोज शुरू की, बेनिशान सदियां उसकी जी-तोड़ मेहनत, उसकी कामयाबी की शान और उसकी नाकामियों से भरी हुई हैं। चाहे अच्छा वक्त आया, चाहे बुरा, उसने अपनी इस खोज को आंखों से ओझल नहीं होने दिया; न ही उन उसूलों को भुलाया, जिनसे उसे ताक़त हासिल हुई है। आज हम बदक़िस्मती की एक मियाद पूरी करते हैं, और हिंदुस्तान अपने-आपको फिर से पहचानने लगा है। जिस कामयाबी पर आज हम खुशी मना रहे हैं, यह उनसे भी बड़ी खुशियों और कामयाबियों की जानिब महज एक क़दम है और आगे आनेवाले मौक़ों का एक रास्ता है। क्या हम इतने बहादुर और समझदार हैं कि इस मौक़े की पकड़ कर सकें और भविष्य की चुनौती को क़बूल कर सकें ?

आज़ादी और ताक़त अपने साथ जिम्मेदारी लाती हैं। वह ज़िम्मेदारी इस सभा पर है, जो हिंदुस्तान के सत्ताधारी लोगों की नुमाइन्दगी करनेवाली संपूर्ण सत्ताधारी सभा है। आज़ादी के उदय से पहले हमने मेहनत करने की सारी तकलीफें बर्दाश्त की हैं और हमारे मन उन तकलीफों की याद से भारी हैं। इनमें से कुछ तकलीफें अब भी जारी हैं। फिर भी गुज़रा वक्त अब ख़त्म हो गया है और भविष्य हमें बुला रहा है।

यह भविष्य आराम करने या दम लेने के लिए नहीं है, बल्कि लगातार जी-तोड़ मेहनत करने के लिए है, जिससे हम उन शपथों को, जो हमने बहुत बार ली हैं, और उस शपथ को जो हम आज लेंगे, पूरा कर सकें। हिंदुस्तान की ख़िदमत का मतलब है उन करोड़ों लोगों की ख़िदमत, जो तकलीफें उठाते हैं। इसका मतलब ग़रीबी, अज्ञान, बीमारी और सभी लोगों को समान मौक़े न मिलने का अन्त करना है। हमारी पीढ़ी के सबसे बड़े आदमी की यह ख्वाहिश रही है कि हर आंख का हर आंसू पोंछ दिया जाय। हो सकता है कि यह हमारी ताक़त से बाहर हो; लेकिन जबतक आंसू हैं और दर्द है, हमारा काम ख़त्म नहीं होता।

इसलिए हमें काम करना है, हमें मेहनत करनी है, और सख्त मेहनत करनी है ताकि हम अपने स्वप्नों को सचाई में बदल सकें। ये स्वप्न हिंदुस्तान के लिए हैं, साथ ही ये दुनिया के लिए भी हैं, क्योंकि आज सभी मुल्क और लोग आपस में एक-दूसरे से इस तरह गुंथे हुए हैं कि कोई भी सबसे अलग होकर रहने की कल्पना नहीं कर सकता। अमन के लिए कहा जाता है कि वह बंटवारे की चीज़ नहीं, है आज़ादी भी ऐसी ही है, समृद्धि भी ऐसी ही है और इस दुनिया में, जो अब अलग-अलग टुकड़ों में बांटी नहीं जा सकती, मुसीबत भी ऐसी ही है।

हिंदुस्तान के लोगों से, जिनके हम नुमाइन्दे हैं, हम अपील करते हैं कि वे भरोसे और ईमान के साथ हमारा साथ दें। यह छोटी-मोटी और नुकसानदेह नुक्ताचीनी का वक्त नहीं है; न ही यह बुरी भावना या दूसरों पर इल्ज़ाम लगाने का वक्त है। हमें आज़ाद हिंदुस्तान की इस शानदार इमारत को बनाना है, जिसमें उसके सब बच्चे रह सकें।

जनाब, मैं यह प्रस्ताव पेश करने की इजाज़त चाहता हूं यह निश्चय हो कि :

१. आधी रात के आख़िरी घंटे के बाद, इस मौक़े पर हाज़िर संविधान-सभा के सभी सदस्य शपथ लें :

"इस पुनीत क्षण में, जबकि हिंदुस्तान के लोगों ने दुःख-झेलकर और त्याग करके आज़ादी हासिल की है, मैं, जो कि भारत की संविधान-सभा का सदस्य हूं, पूर्ण विनयपूर्वक हिंदुस्तान और उसके बाशिंदों की ख़िदमत के तई, अपनेको इस उद्देश्य से अर्पित करता हूं कि यह प्राचीन भूमि दुनिया में अपनी वाजिब जगह हासिल करे और सारी दुनिया में अमन और इन्सानियत की भलाई के लिए अपनी पूरी और बाख़ुशी इमदाद पेश करे।"

२. जो सदस्य इस मौक़े पर हाज़िर नहीं हैं, वे यह शपथ (ऐसी लफ्जी तब्दीलियों के साथ, जो सभापति निश्चित करें) उस वक्त लें, जबकि वे अगली बार इस सभा के इजलास में हाज़िर हों।" ●

१५ अगस्त, १९४७ को स्वाधीन भारत के प्रधान मंत्री के रूप में प्रथम भाषण, जिसमें मेहनत और सहयोग के लिए जनता का आह्वान किया है ।

जनता का प्रथम सेवक

आज एक शुभ और मुबारक दिन है । जो स्वप्न हमने बरसों से देखा था, वह कुछ हमारी आंखों के सामने आ गया । चीज़ें हमारे क़ब्ज़े में आईं । दिल हमारा ख़ुश होता है कि एक मंज़िल पर हम पहुंचे । यह हम जानते हैं कि हमारा सफर ख़तम नहीं हुआ, अभी बहुत मंज़िलें बाक़ी हैं । लेकिन, फिर भी, एक बड़ी मंज़िल हमने पार की और यह बात तय हो गई कि हिंदुस्तान के ऊपर कोई ग़ैर हुकूमत अब नहीं रहेगी ।

आज हम एक आज़ाद लोग हैं, आज़ाद मुल्क है । मैं आपसे आज जो बोल रहा हूं, एक हैसियत, एक सरकारी हैसियत मुझे मिली है, जिसका असली नाम यह होना चाहिए कि मैं हिंदुस्तान की जनता का प्रथम सेवक हूं । जिस हैसियत से मैं आपसे बोल रहा हूं, वह हैसियत मुझे किसी बाहरी शख्स ने नहीं दी, आपने दी है और जबतक आपका भरोसा मेरे ऊपर है, मैं इस हैसियत पर रहूंगा और उस ख़िदमत को करूंगा ।

हमारा मुल्क आज़ाद हुआ, सियासी तौर पर एक बोझा, जो बाहरी हुकूमत का था, वह हटा । लेकिन आज़ादी भी अजीब-अजीब ज़िम्मेदारियां लाती है और बोझे लाती है । अब, उन ज़िम्मेदारियों का सामना हमें करना है और एक आज़ाद हैसियत से हमें आगे बढ़ना है और अपने बड़े-बड़े सवालों को हल करना है । सवाल बहुत बड़े हैं । सवाल हमारी सारी जनता का उद्धार करने के हैं, हमें ग़रीबी को दूर करना है, बीमारी को दूर करना है, अनपढ़पने को दूर करना है और आप जानते हैं, कितनी और मुसीबतें हैं, जिनको हमें दूर करना है । आज़ादी महज एक सियासी चीज़ नहीं है । आज़ादी तभी एक ठीक पोशाक पहनती है जब उससे जनता को फायदा हो । आजकल हमारे सामने ये आर्थिक और इक़्तसादी सवाल बहुत सारे हैं, बहुत काफी जमा हुए हैं, जो हमारी ग़ुलामी के ज़माने के हैं । बहुत-कुछ पिछली लड़ाई की वजह से, पिछली बड़ी लड़ाई जो दुनिया में हुई और उसके बाद जो हालात दुनिया में हुए हैं, उनकी वजह से ये सवाल जमा हैं । खाने की कमी है, कपड़े की कमी है और ज़रूरी चीजों की कमी है और ऊपर से चीज़ों के दाम बढ़ते जाते हैं, जिससे जनता की मुसीबतें बढ़ रही हैं ।

हम इन सब बातों को कोई जादू से तो दूर नहीं कर सकते, लेकिन फिर भी हमारा फर्ज़ है कि इन सवालों को लेकर जनता को आराम पहुंचायं, और पूरे तौर से इन सवालों को हल करने की भी कोशिश करें । लेकिन इसके पहले एक और सवाल है और वह यह है कि हमारे सारे देश में अमन हो, शान्ति हो, आपस में लड़ाई-झगड़े बिलकुल बन्द हों, क्योंकि जबतक लड़ाई-झगड़े होते हैं उस वक्त तक कोई काम माकूल तरीक़े से नहीं हो सकता । तो यह आपसे मेरी पहली दरख्वास्त है और आज जो हमारी नई गवर्नमेंट बनी है, उसने भी आज यह पहली दरख्वास्त हिंदुस्तान से की है—जो आप शायद कल सुबह के अखबारों में पढ़ें—वह यह है कि यह जो आपस की नाइत्तिफाकी,

आपस के झगड़े हैं, वे फौरन बन्द किये जायं। क्योंकि आख़िर अगर नाइत्तिफाकी है तो वह भी इन झगड़ों और मार-पीट से किस तरह से हल होगी। आपने देख लिया कि एक जगह झगड़ा होता है, दूसरी जगह उसका बदला होता है। उसका कोई अन्त नहीं और ये बातें आज़ाद लोगों को कुछ ज़ेब नहीं देती हैं। ये ग़ुलामी की बातें हैं।

हमने कहा कि हम इस देश में लोकतंत्रवाद चाहते हैं। लोकतंत्रवाद में, डेमोक्रेसी में, इस तरह की बातें नहीं होतीं। जो सवाल हैं, हमें आपस में सलाह-मशवरा करके एक-दूसरे का ख्याल करके हल करने हैं। और अपने फैसले पर अमल करना है।

इसलिए पहली बात तो यही है कि हमें फौरन अपने इस क़िस्म के सारे झगड़े बन्द करने हैं। फिर फौरन ही हमें वे बड़े आर्थिक सवाल उठाने हैं जिनका अभी मैंने आपसे ज़िक्र किया। हमारा ज़मीन का, बहुत सारे प्रान्तों में ज़मीन का जो क़ानून है, आप जानते हैं, वह कितना पुराना है, कितना उसका बोझा हमारे किसानों पर रहा है और इसलिए अरसे से हम उसको बदलने की कोशिश कर रहे हैं और जो ज़मींदारी-प्रथा है, उसको भी हटाने की कोशिश कर रहे हैं। इस काम को भी हमें जल्दी करना है और फिर हमें सारे देश में बहुत-कुछ आर्थिक तरक्की करनी है, कारख़ाने खोलने हैं, घरेलू धन्धे बढ़ाने हैं, जिससे देश की धन-दौलत बढ़े, और इस तरह से नहीं बढ़े कि वह थोड़ी-सी जेबों में जाय, बल्कि आम जनता को उससे फायदा हो। आप शायद जानते हैं कि हमारी बड़ी-बड़ी स्कीमें हैं, हिंदुस्तान में काम करने के बड़े-बड़े नक्शे हैं। बहुत सारी जो नदियां और दरिया हैं, उनके पानी की ताक़त से फायदा उठाकर हम नई-नई ताक़त पदा करें, बड़ी-बड़ी नहरें बनायें और बिजली पैदा करें, जिस ताकत से कि हम फिर और बहुत काम कर सकेंगे। इन सब बातों को हमें चलाना है, तेज़ी से चलाना है, क्योंकि आख़िर में देश की धन-दौलत इसीसे बढ़ेगी और उसके बाद जनता का उद्धार होगा।

बहुत सारी बातें मुझे आपसे कहनी हैं और बहुत सारी बातें मैं आपसे कहूंगा। लेकिन, आज सिर्फ ये दो-चार बातें मैं आपके सामने रखना चाहता हूं। मैं आशा करता हूं कि मुझे आइन्दा मौक़े होंगे कि कैसे-कैसे हम काम कर रहे हैं, कैसे-कैसे हमारे दिमाग़ में विचार हैं, वह सब मैं आपके सामने पेश करूंगा। क्योंकि लोकतंत्रवाद में हमेशा जनता को मालूम होना चाहिए कि क्या हम करते हैं, क्या हम सोचते हैं। और वह उसको पसन्द होना चाहिए। उसीकी सलाह से सब काम होना चाहिए। इसलिए यह ज़रूरी है कि आपसे हमारा संबंध बहुत क़रीब का रहे।

आज मैं अधिक नहीं कहना चाहता। लेकिन, यह मैं ज़रूर चाहता था कि आज के शुभ दिन आपसे मैं कुछ कहूं, आपसे एक पुराना संबंध कुछ-न-कुछ ताज़ा करूं। इसलिए मैं आज आपके सामने हाज़िर हुआ। फिर से मैं आपको इस शुभ दिन की मुबारकबाद देता हूं। लेकिन उसीके साथ आपको याद दिलाता हूं कि हमारी ज़िम्मेदारियां जो हैं, इसके माने हैं, कि हमें आइन्दा आराम नहीं करना, बल्कि मेहनत करनी है, एक-दूसरे के सहयोग के साथ काम करना है, तभी हम अपने बड़े सवालों को हल कर सकेंगे। ●

पाकिस्तान की शह पर काश्मीर पर आक्रमण होने तथा काश्मीर के भारतीय संघ में विलय पर २ नवम्बर, १९४७ को नई दिल्ली रेडियो से श्री नेहरू का भाषण।

काश्मीर का विलय

आज रात मैं आपसे काश्मीर के बारे में कहना चाहता हूं, इस घाटी की खूबसूरती के बारे में नहीं, बल्कि उस खौफनाक हालत के बारे में जिसका काश्मीर को हाल में सामना करना पड़ा। हम लोग बहुत संकट के दिनों में से होकर गुज़रे हैं और हमें कितने ही अहम और दूरतक असर डालनेवाले फैसले करने पड़े हैं। उन्हींके बारे में मैं आपको बताना चाहता हूं।

पड़ोसी सरकार ने ऐसी ज़बान में, जो सरकारों की तो क्या बल्कि ज़िम्मेदार लोगों की भी ज़बान नहीं है, भारत सरकार पर इल्ज़ाम लगाया है कि उसने काश्मीर को धोखेबाज़ी से भारतीय संघ में शामिल कर लिया है। ऐसी ज़बान के इस्तेमाल में मैं उनकी बराबरी नहीं कर सकता और न ऐसा करने की मेरी ख्वाहिश है; क्योंकि मैं एक ज़िम्मेदार सरकार और ज़िम्मेदार जनता की ओर से बोल रहा हूं। मैं मानता हूं कि काश्मीर में दंगा-फसाद हुआ है, लेकिन इसके लिए ज़िम्मेदार कौन है? जम्मू और काश्मीर के बाहरी हिस्सों को हथियारबन्द हमलावरों ने बर्बाद किया है, और उन्होंने शहरों और गांवों को लूटा तथा तबाह किया है। उन्होंने वहां के वाशिंदों को तलवार के घाट उतारा और इस शांत घाटी में बदअमनी पैदा की। श्रीनगर का शहर भी तबाह होते-होते बच गया।

मैं सबसे पहले यह बता देना चाहता हूं कि काश्मीर के बारे में हमने जो क़दम उठाया, उसपर हमने पूरी तरह विचार किया और इसके नतीजों का भी हमने ध्यान रखा। मेरा यक़ीन है कि हमने जो कुछ किया, वह ठीक है। अगर हम यह क़दम न उठाते तो हम अपनी ज़िम्मेदारी को पूरा न करने के दोषी बनते और स्त्रियों के साथ बलात्कार और क़त्ल की उन वारदातों के सामने बुज़दिली के साथ झुक जाते कि जो वहां हुई हैं।

कुछ हफ्तों से हमें यह खबरें मिल रही थीं कि हमलावरों के गिरोह जम्मू के इलाकों में चोरी से घुस रहे हैं और काश्मीर तथा सरहदी सूबे की सरहद पर हथियारबंद आदमियों का जमाव हो रहा है। हमें इससे चिंता हुई। सिर्फ इसलिए नहीं कि काश्मीर के साथ हमारा ताल्लुक है, बल्कि इसलिए कि काश्मीर बड़े-बड़े राष्ट्रों का सरहदी इलाक़ा है। लेकिन हम किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं करना चाहते थे, और न हमने ऐसा कोई क़दम ही उठाया।

यह कहा गया है कि जम्मू की ओर से सरहद पार करके हमले हुए थे और मुसलमान मारे, भगाये या निकाल दिये गए। हमने बुराई की हमेशा निन्दा की है, चाहे उसके करनेवाले हिन्दू हों, या सिख हों या मुसलमान। इसलिए अगर हिंदुओं या सिखों या रियासत के कर्मचारियों ने कोई बुरा सलूक किया है, तो हम उसकी निन्दा करते हैं और उसके लिए अफसोस ज़ाहिर करते हैं।

लेकिन मेरे सामने जम्मू सूबे के ९५ गांवों की एक फहरिस्त है, जिनको पाकिस्तान से आये हमलावरों ने तबाह किया है। भिम्बर के काफी बड़े क़स्बे को लूटकर उसे बर्बाद कर दिया गया है। पुंछ और मीरपुर के काफी बड़े हिस्से आज हमलावरों के क़ब्ज़े में हैं। क्या इससे यह ज़ाहिर होता है कि काश्मीर की ओर से पश्चिमी पंजाब पर हमले हुए ? क्या इससे यह ज़ाहिर नहीं होता कि पश्चिमी पंजाब से काश्मीर पर संगठित हमले होते रहे हैं। हमलावरों के पास नये-से-नये ढंग के हथियार और एक बिगड़ा हुआ टैंक भी है।

इस वक्त के आस-पास रियासत काश्मीर ने हमसे हथियारों की मांग की। इस बारे में हमने जल्दबाज़ी नहीं की, हालांकि हमारे रियासती और रक्षा मंत्रियों ने मंजूरी दे दी थी, फिर भी अमली तौरपर हथियार नहीं भेजे गए।

२४ अक्तूबर की रात को मुझे मालूम हुआ कि एक और धावा हुआ है। और यह धावा ऐबटाबाद-मानसरा सड़क की ओर से हुआ है, जो काश्मीर में मुज़फ्फराबाद के पास दाख़ल होती है। हमें बताया गया कि एक सौ से ऊपर लारियों में हथियारबंद और सामान से लैस आदमियों ने सरहद पार कर मुज़फ्फराबाद को लूट लिया है और बहुत-से आदमियों की हत्या की है, जिनमें ज़िले के मजिस्ट्रेट भी थे। और अब वे जेहलम की घाटी की सड़क से श्रीनगर की तरफ बढ़ रहे हैं। रियासती फौजें थोड़ी-थोड़ी तादाद में सारी रियासत में फैली हुई थीं और वे इनका मुक़ाबला नहीं कर सकती थीं। नागरिक जनता--हिंदू और मुसलमान--इन हमलावरों के सामने से भाग रही थी।

२४ अक्तूबर की रात को पहली बार काश्मीर रियासत की ओर से भारत में शामिल होने की और फौजी मदद की प्रार्थना की गई। ता० २५ को सवेरे हमने इसपर विचार किया, लेकिन फौजें भेजने के बारे में मुश्किलों को ध्यान में रखते हुए, कोई फैसला नहीं किया। ता० २६ को हमने फिर इस मामले पर विचार किया। अवतक हालत और भी नाजुक हो चुकी थी। हमलावरों ने कई क़स्बों में लूटमार की थी और महूरा के बिजलीघर को नष्ट कर दिया था, जहां से सारे कश्मीर में बिजली पहुंचती है। वे कश्मीर की घाटी में दाख़ल होने ही वाले थे। श्रीनगर और सारे काश्मीर की क़िस्मत तराज़ू के कांटे पर थी।

हमारे पास मदद के संदेसे सिर्फ महाराजा की सरकार की ओर से नहीं बल्कि जनता के नुमाइंदों की ओर से भी आये--ख़ासकर काश्मीर के उस बड़े नेता और नेशनल कांफ्रेंस के सदर शेख मुहम्मद अब्दुल्ला की ओर से। काश्मीर सरकार और नेशनल कांफ्रेंस दोनों ने ही ज़ोर दिया कि काश्मीर के भारतीय संघ में शामिल होने को मंज़ूर किया जाय। हमने इसे मंजूर किया और हवाई जहाज़ों से फौजें भेजने का फैसला किया, लेकिन हमने यह शर्त लगाई कि रियासत में शांति और व्यवस्था क़ायम हो जाने पर संघ में शामिल होने के बारे में जनता की राय ली जाय।

यहां मैं यह ज़ाहिर कर देना चाहूंगा कि हमारी बराबर यह नीति रही है कि जहां भी किसी रियासत के शामिल होने के बारे में झगड़ा हो, वहां जनता का फैसला ही आख़री माना जायगा। इसीलिए हमने यह शर्त जोड़ी।

हमने २६ अक्तूबर के तीसरे पहर काश्मीर में फौजें भेजने का फैसला किया। श्रीनगर ख़तरे में था और हालत बड़ी नाजुक हो चुकी थी। हमारे कर्मचारियों ने दिन-रात मेहनत की और २७ को पौ फटते ही हमारी फौजें हवाई जहाजों से रवाना हो गई। शुरू में उनकी तादाद बहुत थोड़ी थी, लेकिन पहुंचते ही वे हमलावरों को रोकने में जुट गई। उनका साहसी कमांडर, जो हमारी फौज का एक बहादुर अफसर था, दूसरे ही दिन मारा गया।

तबसे सेना और सामान हवाई जहाज़ों से बराबर वहां पहुंचाये गए हैं। हमारे सिपाहियों ने, हमारे

पाईलेटों ने और हमारे कर्मचारियों ने जिस जी-जान से इस काम को किया, उसकी मैं अपनी ओर से और अपनी सरकार की ओर से बड़ी तारीफ करता हूं। श्रीनगर ख़तरे में था और दुश्मन उसके दरवाज़े तक आ गया था। न पुलिस थी, न फौज थी वहां। रोशनी और बिजली भी वहां नहीं थी। फिर भी वहां खलबली या घबराहट नहीं थी। दुकानें खुली थीं और कारोबार जारी था। यह हुआ कैसे! शेख अब्दुल्ला और नेशनल कांफ्रेंस के उनके साथियों और स्वयंसेवकों ने सारा इंतज़ाम किया और जनता के हौसले को बनाये रखा। उनकी कोशिशों की वजह से वहां फिरकापरस्ती जैसी बुरी बातें पैदा नहीं हुईं, और शहरी अमन बना रहा। इससे भी हमारी फौजों को काफी मदद मिली।

इस नाज़ुक मौक़े पर काश्मीर के महाराजा ने शेख अब्दुल्ला को हुकूमत का प्रधान बनाया। इसके लिए वह बधाई के पात्र हैं। इसलिए हमें याद रखना चाहिए कि काश्मीर की लड़ाई एक जन-नेता की रहनुमाई में काश्मीर के लोगों की हमलावरों के ख़िलाफ लड़ाई है। हमारी फौजें इस लड़ाई में उनकी मदद के लिए गईं हैं और जैसे ही काश्मीर हमलावरों से ख़ाली हो जायगा, हमारे सैनिकों को वहां से रहने की जरूरत नहीं रहेगी। और काश्मीर की क़िस्मत का फैसला काश्मीर के लोगों पर छोड़ दिया जायगा।

काश्मीर पर धावा करनेवाले पूरी तरह से हथियारबंद और समान से लैस हैं। ये सभी पाकिस्तान की राह से आये हैं। पाकिस्तान सरकार से हमें यह पूछने का हक़ है कि ये लोग सरहदी सूबा या पश्चिमी पंजाब पार कर वहां कैसे पहुंचे और कैसे ये इस क़दर हथियारबंद हैं? क्या यह अंतर्राष्ट्रीय विधान के ख़िलाफ नहीं है? क्या पाकिस्तान सरकार इतनी कमज़ोर है कि उसके इलाक़े को पार कर दूसरे मुल्क पर हमला करनेवाली फौजों को वह रोक नहीं सकती या वह चाहती है कि ऐसे हमले हों! इसके सिवा दूसरी बात नहीं हो सकती।

हमने यह ऐलान किया है कि काश्मीर की क़िस्मत का आख़री फैसला वहां के लोगों के हाथ में रहेगा। हमने यह प्रतिज्ञा न सिर्फ काश्मीर के लोगों से बल्कि सारी दुनिया से कर रखी है और महाराजा ने इसकी ताईद की है। हम इससे पीछे न हटेंगे और न हट सकते हैं। हम इसके लिए तैयार हैं कि संयुक्त राष्ट्र जैसी अंतर्राष्ट्रीय जमात की देखरेख में जनमत लिया जाय। हम चाहते हैं कि जनता को इन्साफ और मुनासिब तरीके पर अपनी राय ज़ाहिर करने का मौक़ा दिया जाय और हम उसके फैसले को मंजूर करेंगे।

इस बीच हमने काश्मीर के लोगों से यह वादा किया है कि हम हमलावरों से उनकी रक्षा करेंगे और हम उस वादे को पूरा करेंगे। ●

देश की अर्थ-व्यवस्था को उन्नत करने के लिए १८ जनवरी १९४८ को आल इंडिया रेडियो से प्रसारित भाषण ।

उत्पादन बढ़ाओ

आज मुझसे उम्मीद की गई है कि मैं पैदावार के बारे में कुछ विचार ज़ाहिर करूं। उत्पादन यानी पैदावार के माने हैं दौलत। अगर हम उत्पादन नहीं करते तो हमारे पास काफी दौलत नहीं होगी। वितरण यानी पैदावार के बंटवारे का भी उतना ही अहम सवाल है, जिससे कि चंद लोगों के हाथों में दौलत न जमा हो जाय। फिर भी, वितरण के बारे में सोचने से पहले उत्पादन होना चाहिए।

आप जानते हैं कि हमें आज बहुत-से मसलों का—माली मसलों का और दूसरे मसलों का—सामना करना है। लड़ाई के जमाने की अर्थ-व्यवस्था से शांतिकाल की अर्थ-व्यवस्था पर लौटने का सिलसिला काफी धीमा रहा है। और दरअसल उन्नति के बजाय अक्सर अवनति हुई है। अब यह मामला बहुत गंभीर हो गया है, जिसपर कि हमें विचार करना है, क्योंकि जैसे-जैसे इस तरह की बातें होती रहती हैं, वैसे-वैसे हमारी अर्थ-व्यवस्था में भी बहुत बड़े पैमाने पर गिरावट होती जाती है। उससे सारे मुल्क, सारे राष्ट्र को नुक्सान पहुंचता है।

हम चाहते हैं कि हमारे खेतों से, हमारे पुतलीघरों से और कारखानों से दौलत का एक प्रवाह निकले, जो देश के करोड़ों लोगों तक पहुंचता रहे, जिससे कि हम आखिरकार हिंदुस्तान के बारे में अपने सपनों को पूरा हुआ देख सकें।

हम आज़ादी की चर्चा करते है; लेकिन जबतक माली आज़ादी न हो तबतक सियासी आज़ादी हमें बहुत आगे नहीं ले जा सकती। दरअसल, एक भूखे इंसान के लिए या एक बहुत गरीब मुल्क के लिए आज़ादी का कोई मतलब नहीं रहता। इसलिए हमें अपना उत्पादन बढ़ाना चाहिए, जिससे कि हमारे पास काफी दौलत हो जाय और मुनासिब आर्थिक योजना द्वारा हम उसका ऐसा वितरण करें कि वह करोड़ों लोगों तक, खासकर आम लोगों तक पहुंच सके। तब न सिर्फ करोड़ों लोग भरे-पूरे होंगे, बल्कि सारा मुल्क दौलतमंद और ताकतवर होगा। बहुत-से लोग तरह-तरह के खतरों से डरते हैं और ऐसे भी लोग हैं, जोकि दूसरे मुल्कों से लड़ाई की बात कर बैठते हैं। मैं उम्मीद करता हूं कि ऐसी कोई लड़ाई न होगी।

फिर भी, एक नये मुल्क को, एक नये राज्य को, जिसने कि अभी हाल में अपनी आज़ादी हासिल की हो, अपनी आज़ादी की रक्षा पूरी सावधानी से करनी चाहिए। यह ठीक ही कहा जाता है कि आज़ादी के लिए लगातार चौकसी की कीमत चुकानी होती है। किस तरह हम इसे अमली जामा पहनायें? जबतक हमारे पास लगाने को धन न हो, हम सुधार की या निर्माण और विकास की योजनाओं को किस

तरह अमल में लायं ? हम उधार से हासिल की दौलत पर ज्यादा वक्त तक नहीं रह सकते, उसके लिए साख की ज़रूरत है। हममें वह ताकत होनी चाहिए कि उस दौलत को उचित दिशाओं में लगा सकें। इस सारे के लिए उत्पादन की दरकार है, जिससे कि हम अपनी सबसे बड़ी ज़रूरतों को पूरा कर सकें, ताकि हम विकास-संबंधी योजनाओं में लगाने के लिए कुछ बचा सकें। इस तरह हम उत्पादन की बुनियादी ज़रूरत पर लौट आते हैं। अब, उत्पादन के लिए कड़ी और लगातार मेहनत करने की ज़रूरत है। उत्पादन के लिए यह ज़रूरी है कि काम न रोका जाय, हड़तालें न हों, और न ही मज़दूरों को निकाला जाय।

मैं आखिरी आदमी होऊंगा, जो मज़दूरों के हड़ताल के हक से इन्कार करूं। क्योंकि मैं जानता हूं कि हड़ताल का औज़ार एक बेशकीमती औज़ार रहा हैं, जिसके ज़रिये मज़दूरों ने बहुत-से मुल्कों में ताकतवर और अहम जगह हासिल कर ली है। फिर भी ऐसा वक्त होता है, जबकि हड़तालें खतरनाक हो जाती हैं, जबकि वे न सिर्फ मुल्क के लिए नुकसानदेह होती हैं, बल्कि खुद मज़दूरों के हितों के लिए भी नुकसानदेह साबित होती हैं। आज भी एक ऐसा ही वक्त है, और इसी वजह से दिल्ली की एक कांफ्रेंस में सरकार, मज़दूरों और उद्योगपतियों ने एकमत से यह तय किया था कि हम सबके बीच तीन सालों का एक इकरारनामा होना चाहिए, और उस अर्से में हड़तालें बन्द रहें। यह ज़ाहिर है कि अगर हमने ऐसा करना तय किया है तो हमारे पास इसे अमल में लाने के लिए कोई संगठन भी होना चाहिए वरना कुछ लोग इससे फायदा उठाना चाहेंगे। इसीलिए उस कांफ्रेंस में यह तय किया गया था कि एक ऐसा संगठन बनाया जाय, जिसमें कि मज़दूर या किसान को उसके हक़ मिलें, उनके साथ वाजिब सलूक हो, और वे इंतज़ामी मामलों में भी कुछ हिस्सा ले सकें, खासकर, जहांतक कि उनकी ज़रूरतों का ताल्लुक हो।

बेशक, एक व्यवस्थित राज्य में, जहांकि हरेक को उसका हक हासिल हो, हड़तालों वग़ैरा की कोई ज़रूरत नहीं रहेगी। हड़तालें और मज़दूरों का कारखानों से निकाला जाना ज़ाहिर करते हैं कि अर्थ-व्यवस्था में किसी तरह की बुनियादी कमी है। सच तो यह है कि हमारे माली नज़ाम में आज बहुत-सी कमियां हैं, न सिर्फ हिंदुस्तान में बल्कि दुनिया के और हिस्सों में भी। हमें इस सबको बदलना है, लेकिन तबदीली के दौरान में हमें इस बात के लिए सावधान रहना है कि जो कुछ भी हमारे पास है, उसे भी बर्बाद न कर दें। इस बात का भी डर है कि जल्दी में कुछ कर डालने से कहीं हम अपने मुद्दे से भटक ही न जायं। इसलिए, मौजूदा वक्त में, जबकि यह सब संकट हमारे सामने हैं, हमारे लिए यह निहायत ज़रूरी है कि हमारे व्यवसाय में एक तरह की शांति की हालत कायम रखी जाय, जिसमें सब लोग मिल-जुलकर देश के उत्पादन के कामों में और विकास की बड़ी-बड़ी योजनाओं के ज़रिये देश के निर्माण में सहयोग दें।

आप जानते हैं कि हमारे सामने ये योजनाएं काफी अर्से से रही हैं। बदकिस्मती से, उनमें से अभी तक कई कागजी योजनाएं ही बनी हुई हैं। वक्त आ गया है कि हम उन्हें अमल में लायं। उनमें नदी-घाटी की भी बड़ी-बड़ी योजनाएं हैं, जोकि इस मुल्क में न सिर्फ आबपाशी करेंगी, बल्कि नदियों की बाढ़ों को रोकेंगी, बिजली पैदा करेंगी, मलेरिया तथा दूसरी बीमारियों को रोकेंगी, बल्कि आम तौर पर ऐसे हालात पैदा करेंगी, जिनमें तेजी के साथ उद्योगों का विकास हो और हमारी खेती-बाड़ी में नवीनता पैदा हो। क्या आप जानते हैं कि इतनी बड़ी आबादी होते हुए भी यहां बहुत-सी बड़ी-बड़ी ज़मीनें ऐसी हैं, जहांकि

आदमी नहीं बसते, क्योंकि वहां या तो पानी की कमी है या धरती को सुधारने की ज़रूरत है।

हमारी मौजूदा आबादी को पूरा-पूरा काम मिल सकता है, बेकारी दूर हो सकती है और उसके साथ मुल्क की दौलत भी बढ़ सकती है। जिस मुल्क में सबके पास धंधे हों, उसे ज़रूरत से ज्यादा आबादीवाला मुल्क नहीं कहा जा सकता। हमारी यह कोशिश है कि सबको काम मिले। हमें इस उद्देश्य से कुछ उपाय जल्द ही करना है। कुछ हद तक यह तय भी हो चुका है, लेकिन अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। हमें उत्पादन करना चाहिए। लेकिन जो कुछ उत्पादन हम कर रहे हैं, वह निजी जेबों के लिए नहीं, बल्कि मुल्क के लिए, जनता के रहन-सहन के दर्जे को उठाने के लिए और आम लोगों के फायदे के लिए ही करना होगा। अगर हम ऐसा करेंगे तो अपने मुल्क को तेजी के साथ उन्नति करता हुआ देखेंगे। हिंदुस्तान के पुर्नानिर्माण का काम आसान काम नहीं है। यह बहुत बड़ी समस्या है।

यह सब शांति पर निर्भर करता है, अंतर्राष्ट्रीय शांति पर, राष्ट्रीय शांति पर, आर्थिक शांति पर और उद्योगों में शांति पर। हमें वह शांति हासिल करनी चाहिए। इस वक्त मैं खासतौर पर उद्योगों में शांति के बारे में कह रहा हूं, और आइये हम सब उत्पादन के उद्योग में लगें, और यह याद रखें कि यह उत्पादन सिर्फ व्यक्तियों को अमीर बनाने के लिए नहीं, बल्कि मुल्क को दौलतमंद बनाने के लिए है। क्योंकि अगर हिंदुस्तान ज़िंदा रहता है तभी हम भी ज़िंदा रहते हैं। ●

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की हत्या के पश्चात्
३० जनवरी, १९४८ को रेडियो से प्रसारित भाषण।

ऊंचे दर्जे का इन्सान

किस तरह से मैं कुछ कहूं और क्या कहूं ? एक अंधेरा-सा छा गया है। मेरा और देश के करोड़ों वासियों का दिल टूट गया है। हमारे प्यारे बापू, देश के—राष्ट्र के पिता का देहान्त हो गया है। एक पागल आदमी के हाथ से यह बात हुई है और हमारी जो बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं, वे एकदम से ख़तम-सी हो गई हैं और हम निराश-से हो गये हैं। देशभर में अत्यधिक दुःख होगा, तकलीफ होगी और गुस्सा भी चढ़ेगा। इस समय हमें क्या करना चाहिए, क्या नहीं, यह हम सोचेंगे, विचार करेंगे। मेरा दिल दुःख और अफसोस से भरा हुआ है।

पहली बात जो मैं इस समय आपसे कहा चाहता हूं, वह यह है कि ऐसे ही मौक़े पर हमारा और देश का इम्तिहान होता है। ज़ाहिर है कि ऐसे समय हमें ऐसी बात करनी है, जो प्यारे बापू पसन्द करते। ज़ाहिर है कि इस समय हमें उनकी हिदायतें और जो कुछ उन्होंने सिखलाया उसे याद रखना है और कोई ऐसी बात नहीं करनी है, जो अनुचित हो, बेज़ा हो अथवा जिसको वे पसन्द न करते। आख़िर में वे गये—देहान्त उनका हुआ, लेकिन न तो हिंदुस्तान कभी उनको छोड़ सकता है और न ही वह हिंदुस्तान को छोड़ेंगे। मुझे आशा है, मुझे विश्वास है कि उनकी आत्मा कहीं-न-कहीं से हमारी ओर देखेगी, हमें बचायगी। जिस काम में उन्होंने अपनी सारी उम्र गुज़ारी, उस काम में उनकी निगाह लगी रहेगी।

इस वक्त मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि कितना ही आपको दुःख हो, कितनी ही आपको तकलीफ हो और ग़ुस्सा चढ़े, फिर भी हमें इस समय संभल के चलना है, देश को संभालना है और कोई ग़लत और अनुचित बात नहीं करनी है। आपको याद है कि अपनी इस ७८ वर्ष की उम्र में क्या सबक उन्होंने सिखाये, किस तरह से हमारे देश को हज़ार मुसीबतों से निकालकर आज़ादी के दरवाज़े तक पहुंचाया। अब यह मुसीबत हमपर आई कि जिसने हमें रास्ता दिखाया, अंधेरे से निकालकर रोशनी में पहुंचाया, वह नज़र नहीं आता। वह चला-सा गया।

मैंने आपसे कहा कि रोशनी ग़ायब होगई, अंधेरा छाया है; लेकिन मैंने ग़लत कहा। क्या कभी वह रोशनी खत्म हो सकती है, जोकि महात्मा गांधी ने इस देश में और दुनिया में डाली ! आज से हज़ार वर्ष बाद भी वह रोशनी चमकेगी और इस देश को और दुनिया को चमकायगी। आज से हजार वर्ष बाद भी वह याद किये जायंगे कि एक ज़माना था, जबकि एक इतने ऊंचे दर्जे का इन्सान आया और उसने फिर से दुनिया को सही रास्ता दिखाया और इस देश को, पुराने देश को आज़ाद कराया। वह रोशनी खत्म नहीं हो सकती।

अब सवाल यह है कि कहांतक हम उनके क़दमों पर चल सकते हैं। हज़ार बार जो प्रतिज्ञाएं हमने उनके सामने कीं, उनको पूरा कर सकते हैं। खैर, इस समय मैं आपसे कुछ अधिक नहीं कहना चाहता। केवल यही

प्रार्थना है कि आप ज़रा मर्दों की तरह से, मिलकर अपने छोटे-छोटे झगड़े ख़त्म करके इस मुसीबत का मुक़ाबला करें, जो हमपर इस समय आई है।

एक पागल आदमी ने हाथ उठाया, वह एक पागल था। लेकिन हम जानते हैं कि पिछले ज़माने में, पिछले दिनों में, कितना ज़हर फैला, क्या-क्या ज़हर कहा गया, किस तरह से लोगों को ग़लत बातें करने की उत्तेजना दी गई और आखिर उसका यह फल हुआ। अब तो हमें उस ज़हर का सामना करना है, उसको क़ाबू में लाना है और उसको ख़त्म करना है। लेकिन अपने रास्ते पर चलकर, ग़लत रास्ते पर चलकर नहीं। इसलिए आपसे यह दरख्वास्त है कि आप इस वक्त पूरे तौर से याद रखिये कि हमारा मुल्क एक शानदार मुल्क है और उसका एक शानदार और बहुत बड़ा नेता था। था नहीं, वरन् हमारे दिलों में हमेशा रहेगा और हमारे बाद औरों के दिलों में भी रहेगा। तो उसके रास्ते पर हमें चलना है और कोई बात ऐसी नहीं होने देनी है, जो ग़लत हो, जो उनकी शान के ख़िलाफ हो।

...कल का दिन हमें उपवास करके और प्रार्थना करके बिताना चाहिए और जो लोग मुझे हिंदुस्तान के और हिस्सों में सुन रहे हों, उनसे मैं कहूंगा कि कल के दिन जो लोग उपवास करना चाहते हैं करें और प्रार्थना करें कि हम किसी तरह महात्माजी के दिखाये रास्ते पर कायम रहें और सचाई के रास्ते से न हटें।

आप अपने दिल के अन्दर देखें और जो-जो हममें ख़राबियां हैं, उनको निकाल दें। जो सबक हमको महात्माजी ने सिखाये हैं, उनको पूरा करें। यह उनकी सबसे अच्छी याद होगी। यह सबसे अच्छा तरीक़ा होगा जिसे वे भी देखकर ख़ुश होंगे कि आखिर सारी ज़िंदगी उन्होंने हिंदुस्तान की ख़िदमत की, मरकर भी उन्होंने ख़िदमत की और मरने के बाद भी उनकी ख़िदमत हज़ारों वर्षों तक जारी रहेगी। बस, इतना ही मुझे आपसे कहना है। जयहिन्द! ●

इंडियन कौंसिल ऑव वर्ल्ड अफेअर्स, नई दिल्ली में
२२ मार्च, १९४९ को दिया गया भाषण।

हमारी विदेश-नीति

मेरा खयाल है कि बीते वक्त में विदेश-नीति एक मुल्क के आस-पास के पड़ोसी मुल्कों के संबंधों के बारे में हुआ करती थी—चाहे वे दोस्त हों या और कुछ। लेकिन मौजूदा वक्त में सभी मुल्क हमारे पड़ोसी हैं, इसलिए हम आस-पास के मुल्कों तक ही अपनी विदेश-नीति को महदूद नहीं रख सकते। हमें करीब-करीब दुनिया के सारे मुल्कों पर ध्यान रखना पड़ता है और उसमें होनेवाले संघर्षों, व्यापारों और माली मामलों वग़ैरा पर भी ग़ौर करना पड़ता है। अब यह समझ लिया गया है कि अगर बड़े पैमाने पर दुनिया में कहीं संघर्ष होता है, तो सारी दुनिया में उसके फैलने की गुंजाइश हो जाती है। इसलिए हमारी विदेश-नीति अपनेको निकट के मुल्कों तक महदूद नहीं रख सकती। फिर भी आस-पास के मुल्क आपस में एक दूसरे के साथ दिलचस्पी रखते हैं, और भारत को भी लाज़िमी तौर पर, थल और जल के रास्तों से अपने नज़दीकी मुल्कों से संबंध के बारे में विचार करना होगा। ये मुल्क कौन-से हैं? बाईं तरफ से चलें तो पाकिस्तान है; मैं अफ़ग़ानिस्तान को भी शरीक कर लूंगा, अगर्चे भारत की सरहदों को वह छूता नहीं; तिब्बत और चीन, नेपाल, बर्मा, मलाया, इंडोनेशिया और लंका। जिस हालत में पाकिस्तान का निर्माण हुआ है और भारत का विभाजन हुआ है, उससे हालत बड़ी अजीब रही है। न सिर्फ़ यह कि दोनों ओर बहुत बड़ी उथल-पुथल हुई है, बल्कि उससे भी गहरी बात हुई है। और वह यह है कि इन घटनाओं की वजह से भारत और पाकिस्तान के लोगों के दिलों का तवाज़न भी नष्ट हो गया। इस बात से पेश पाना बड़ा मुश्किल होता है। यह मनोवैज्ञानिक बात है और ऊपरी ढंग से इसे नहीं निपटाया जा सकता। डेढ़ साल या कुछ ज़्यादा अर्सा हुआ, बेशक, हमारे ताल्लुक कुछ सुधरे हैं। मुझे इस बात में कतई शक नहीं कि भारत और पाकिस्तान के बीच आइंदा वक्त में गहरे ताल्लुक होकर ही रहेंगे। मैं कह नहीं सकता ऐसा कब होगा, लेकिन जो हमारी हालत है, और जैसा हमारा इतिहास रहा है, उसे देखते हुए हम लापरवा पड़ोसियों के तौर पर नहीं रह सकते। हम एक-दूसरे के मुख़ालिफ हो सकते हैं या दोस्त हो सकते हैं। आख़िर में हम दोस्त ही हो सकते हैं, क्योंकि हमारे हित एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं।

जहांतक ताल्लुक दूसरे मुल्कों का है, हमारे संबंध दोस्ताना हैं। मिसाल के लिए अफ़ग़ानिस्तान को ले लीजिये। उसके साथ हमारे दोस्ताना ताल्लुक हैं, और तिब्बत, नेपाल और पड़ोसी मुल्कों के साथ हमारे दोस्ताना संबंध हैं। दरअसल, मेरा यह कहना वाजिब होगा कि इस दुनिया में कोई भी ऐसा मुल्क नहीं, जिससे हमारे संबंध वैर या विरोध के कहे जा सकें। यह कुदरती बात है कि कुछके प्रति ज़्यादा खिंचाव होगा या हमारे आर्थिक हित

और हमारे व्यापार हमें कुछ मुल्कों के साथ ज़्यादा और कुछके साथ कम जोड़े रहें, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि हमारी सबके साथ दोस्ती है।

अगर एक ओर हमारे दिल में पड़ोसी मुल्कों का ख्याल सबसे पहले आता है, तो दूसरी ओर एशिया के और मुल्क हैं, उनके साथ भी हमारा गहरा संबंध है। एशिया में भारत की एक अजीब स्थिति है। और उसके इतिहास पर उसकी भौगोलिक स्थिति और दूसरी बातों का भी असर पड़ा है। एशिया के किसी भी मसले को ले लीजिये, किसी-न-किसी सूरत में भारत का नक्शा सामने आ जाता है। चाहे आप चीन या मध्यपूर्व या दक्षिण-पूर्वी एशिया पर विचार करें, भारत का चित्र आ ही जाता है। चाहे प्रतिरक्षा का सवाल हो, चाहे व्यापार, उद्योग या आर्थिक नीति का, भारत को दरगुज़र नहीं किया जा सकता। उसे इसलिए भी दरगुज़र नहीं किया जा सकता कि वह एक ठोस ताकत और अनेक साधनों से भी सम्पन्न है।

इसलिए, हमारे निजी नज़रिये जो भी हों, अपनी व्यावहारिक स्थिति के कारण, और दूसरे कारणों से जो मैंने बताये हैं, भारत का एशिया-भर में—चाहे पश्चिमी एशिया हो, चाहे सुदूर-पूर्व और चाहे दक्षिणी-पूर्व एशिया—एक अहम हिस्सा होना लाज़िमी है। सांस्कृतिक नज़रिये से भी इन सारे प्रदेशों के साथ हमारे बहुत पुराने संबंध हैं, और लगातार बने रहे हैं।

मोटे तौर पर कहा जाय तो जब भारत में अंग्रेज़ी ताकत आई और यहां उनकी हुकूमत क़ायम हो गई, तब एक अजीब बात हुई। इसीकी वजह से हम एशिया में अपने पड़ोसी मुल्कों से अलग हो गये। हमारे ताल्लुक इंगलैंड के साथ हो गये और हम कुछ हद तक इस हुकूमत के ख़िलाफ़ लड़ते रहे और इन संबंधों पर एतराज़ करते रहे। फिर भी संबंध तो था ही, और हम दुनिया को उस खिड़की से—ब्रिटिश खिड़की से—देखते रहे। भारत से एशियाई मुल्कों में बहुत कम लोग गये और वहां से यहां बहुत कम लोग आये। और जिन थोड़े-से एशियावासियों से हम मिले भी, इनसे एशिया में नहीं बल्कि यूरोप में मिले।

जैसाकि आप जानते हैं, दो साल हुए एशियाई कांफ्रेंस हुई थी। जब एशियाई कांफ्रेंस का प्रस्ताव किया गया—यह प्रस्ताव परीक्षा के तौर पर किया गया था—तो हम ठीक-ठीक नहीं जानते थे कि इसकी प्रतिक्रिया क्या होगी। कई मुल्कों को दावतनामे भेजे गए और मैं आपको बताऊं कि हमें प्रतिक्रिया देखकर हैरत हुई, और कांफ्रेंस, जैसाकि आप जानते हैं, बहुत क़ामयाब रही।

इसलिए, आप देखते हैं कि एशिया के दिमाग़ में एक क्रिया चल रही है, भारत में ही नहीं बल्कि सारे एशिया में। किसी चीज का अंकुर फूट रहा है, और अगर उसे मौक़ा मिला तो वह बाहर आ जायगा। हमें यक़ीन है कि एशियाई मुल्कों में मिल-जुलकर काम करने की, आपस में सलाह-मशविरा करने की और एक-दूसरे पर भरोसा रखने की बड़ी ख्वाहिश है। मुमकिन है, बीते वक्त में यूरोप ने जो सलूक किया है, उसीकी नाराज़ी की वजह से ऐसा हो। लेकिन इस ख्याल की वजह से भी है कि एशियाई मुल्कों को अब यूरोप अपने स्वार्थ-साधन का क्षेत्र न बनाये। मैं यह भी ख्याल करता हूं कि बहुत-कुछ पुराने संबंधों की याद ताज़ा होने की भी वजह है, क्योंकि हमारे साहित्य में उसके वर्णन भरे पड़े हैं। इसीसे जब कोई क़दम उठाया जाता है, तो फौरन उसका स्वागत होता है। इसकी ताज़ा मिसाल इंडोनेशिया के बारे में हुई कांफ्रेंस है। बहुत थोड़ी सूचना से यह कांफ्रेंस बुलाई गई थी; लेकिन इसमें सभी लोग शरीक हुए। उसने उन्हें इसलिए आकर्षित किया कि उनकी इंडोनेशिया में दिलचस्पी थी। लेकिन मेरा विचार है कि इससे ज़्यादा यह ख्वाहिश थी कि एक साथ मिलकर

मशविरा किया जाय और आपस में सहयोग किया जाय ।

विदेश-नीति एक ऐसी चीज़ है, जो धीरे-धीरे विकसित होती है। कुछ सैद्धांतिक सुझावों के अलावा, कि जिन्हें हम बनाते हैं, यह एक ऐसी चीज़ है, जो अगर असलियत है, तो उसका संबंध असलियत के साथ होगा, कोरे सिद्धांत के साथ नहीं। इसलिए हम सही तौर पर अपना आम नजरिया या रास्ता तय नहीं कर सकते बल्कि धीरे-धीरे उसका विकास होता है। हम एक आज़ाद देश के रूप में अभी नये हैं, हालांकि हमारा मुल्क एक बहुत पुराना मुल्क है और हमें पुराना मुल्क होने के नाते कई सुविधाएं हासिल हैं। फिर भी विदेश-नीति के ख्याल से हमारा देश नया ही है, और इसलिए हमारी विदेश-नीति धीरे-धीरे बढ़ रही है। और कोई वजह नहीं कि हम सभी जगह क्यों दौड़कर पहुंच रहे। इस तरह कोई ऐसी बात क्यों कर दें, जोकि इस विकास में रुकावट हो। इस बारे में कि हम कहां जाना चाहते हैं, क्यों जाना चाहते हैं, हम ज़ाहिर कर सकते हैं और हमें ऐसा करना चाहिए, लेकिन किसी खास मुल्क के बारे में अपनी नीति तय कर लेना हमें मुश्किल में डाल सकता है।

जैसाकि मैंने कहा, हमारी आम नीति सारे मुल्कों से दोस्ती क़ायम करने की कोशिश कर रही है, लेकिन यह ऐसी बात है, जिसे कोई भी कह सकता है। इस ख्याल से बहुत मदद नहीं मिलती। अगर मैं कहूं कि यह राजनीति से बाहर की बात है तो ठीक होगा। यह एक नैतिक प्रेरणा हो सकती है। फिर भी राजनैतिक क्षेत्र में इसके हक़ में कुछ कहा जा सकता है। हम, मुमकिन है, सभी देशों से हमेशा दोस्ती नहीं रख सकते। दूसरी बात यह हो सकती है कि कुछके साथ गहरी दोस्ती हो और दूसरों के साथ विरोध रहे। किसी मुल्क की अक्सर यही विदेश-नीति होती है यानी कुछके साथ गहरी दोस्ती। इसका नतीजा यह होता है कि इससे दूसरों के साथ विरोध पैदा होने लगता है। आपकी कुछ मुल्कों के साथ गहरी दोस्ती हो सकती है, लेकिन सभीके साथ एक जैसी दोस्ती हो सकना नामुमकिन है। कुदरती तौर पर उनसे आपकी ज़्यादा दोस्ती होती है, जिनके साथ आपके नज़दीकी ताल्लुक हैं, लेकिन वह गहरी दोस्ती अगर सक्रिय है, तो अच्छी है। अगर उसमें किसी दूसरे मुल्क के प्रति वैर-भाव हो तो बात और हो जाती है, और आखिर में आपका वैर-भाव दूसरे लोगों में वैर का कारण बनता है। यह रास्ता संघर्ष का है और इससे कुछ हल नहीं होता।

खुशी की बात है कि भारत की किसीके साथ पुरानी दुश्मनी नहीं है। इसलिए हम किसी मुल्क के साथ वैर का सिलसिला क्यों चलावें? बेशक, अगर हालात की मजबूरी हो तो हम कर ही क्या सकते हैं? लेकिन वैर-भाव की पृष्ठ-भूमियों से हमें अपनेको दूर ही रखना ठीक है। यह भी हो सकता है कि हमारी कुछ मुल्कों से दूसरों की निस्बत ज़्यादा दोस्ती हो, क्योंकि इससे एक-दूसरे को फायदा पहुंचता है। फिर और देशों से हमारी दोस्ती जहांतक हो सके, ऐसी नहीं होनी चाहिए कि जो हमें लाज़िमी तौर पर दूसरों से संघर्ष में ले आवे! अब, लोग यह कह सकते हैं कि दो विरोधी दलों के बीच दोनों से भला बने रहने की या गड्ढों को बचाकर चलने की यह नीति है, या सड़क के बीच से चलने की नीति है। जिस रूप में मैं इसकी कल्पना करता हूं, उसमें ऐसी कोई चीज़ नहीं। यह बीच सड़क से चलने की नीति नहीं है। यह एक धनात्मक, रचनात्मक नीति है, जिसका एक निश्चित उद्देश्य है, जो जान-बूझकर और देशों से, जहांतक हो सभी देशों से, वैर बचाने का प्रयत्न करती है।

हम इसे कैसे हासिल कर सकते हैं? स्पष्ट है कि इसमें जोखिम है और खतरा है, और हरेक देश का पहला कर्तव्य अपनी रक्षा करना है। अपनी रक्षा का अर्थ दुर्भाग्य से यह होता है कि सशस्त्र सेनाओं आदि पर निर्भर रहा जाय, इसलिए हम, आवश्यकता पड़ने पर अपना प्रतिरक्षा-संबंधी यंत्र खड़ा करते हैं। ऐसा न करने

का हम जोखिम नहीं उठा सकते, अगर्चे महात्मा गांधी ने निस्संदेह यह जोखिम उठाया होता और मैं यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि उनका यह कार्य गलत होता। वास्तव में यदि कोई देश इतना मज़बूत है कि यह जोखिम उठा ले, तो यही नहीं कि वह जीवित रहेगा, बल्कि वह एक महान् देश बनेगा। लेकिन हम सब छोटे लोग हैं और ऐसा जोखिम उठाने का साहस नहीं कर सकते, लेकिन अपनी रक्षा करते हुए, हमें ऐसा करना चाहिए जिसमें हम किसी दूसरे को बैरी न बना लें, और यह भी न मालूम पड़े कि हम किसी देश की स्वतंत्रता पर आक्रमण करना चाहते हैं। यह महत्त्व की बात है। साथ ही हमें कोई ऐसी बात लिखनी या कहनी न चाहिए, जिससे कि राष्ट्रों के बीच के संबंध और बिगड़ें। दूसरे देशों के, उनकी नीतियों के और कभी-कभी उनके राजनीतिज्ञों के विरुद्ध कहने या करने की प्रेरणा बड़ी प्रबल होती है। क्योंकि दूसरे लोग कभी-कभी बड़े नागवार हो जाते हैं, वे कभी-कभी बड़े अग्रसर हो जाते हैं। अगर वे अग्रसर होते हैं तो हमें उनकी अग्रसरता से अपनी रक्षा करनी पड़ती है। अगर भविष्य में आक्रमण की आशंका हो, तो उससे भी अपनेको बचाने का उपाय करना पड़ता है। यह तो मैं समझ सकता हूं, लेकिन इसमें और मकान की छतों पर खड़े होकर हमेशा बुलंद आवाज में इस या उस देश पर आक्रमण करने में, स्पष्ट अन्तर है—चाहे वह देश आलोचना या आक्रमण के योग्य ही क्यों न हो। पर इस प्रकार चीखने-चिल्लाने से कुछ मदद नहीं मिलती, इससे बात बिगड़ती ही है, क्योंकि इससे भय की वह मनोवृत्ति, जिसकी कि मैंने चर्चा की, भयानक रूप में बढ़ जाती है। जब दोनों ओर से चीखना-चिल्लाना चलता रहता है, तो तर्क और विचार जाते रहते हैं, क्योंकि लोगों के आवेश जागृत हो जाते हैं और अन्त में उन्हें युद्ध में पड़ना होता है।

युद्ध छिड़ जाने पर उसका सामना करना पड़ता है। कुछ हदतक उसका पहले से उपाय होना चाहिए, और अगर युद्ध छिड़ता है तो उसके सभी परिणामों को स्वीकार करना पड़ता है। जैसा मैंने कुछ समय पहले कहा थां, मैं मानता हूं कि इस संसार के अधिकतर लोग युद्ध नहीं चाहते। तब हमारी नीति का मुख्य ध्येय युद्ध से बचना या युद्ध को रोकना होना चाहिए। युद्ध को रोकने में अपनी रक्षा का उपाय करना पड़ता है, यह बात तो ठीक है, लेकिन इसके अन्तर्गत चुनौतियां जवाबी चुनौतियां, आपस का बुरा-भला कहना, धमकियां आदि नहीं आनी चाहिए। निश्चय ही इस तरह से युद्ध नहीं रोका जा सकता, बल्कि इससे वह और निकट आयगा, क्योंकि इससे दूसरी सरकारें डरेंगी, और दूसरी सरकारें भी इसी तरह की चुनौतियां देंगी, तब आप डरेंगे, और हरेक व्यक्ति एक भय के वातावरण में रहेगा, और भय के इस वातावरण में कुछ भी हो सकता है।

अब, क्या कोई देश, क्या भारत, इस तरह के परस्पर दोषारोपण को रोकने में सफल हो सकता है? क्या हम इस बात में सफल हो सकते हैं—जैसाकि हम चाहते हैं—कि प्रत्येक प्रश्न पर उसके गुणों के अनुसार विचार हो? आज अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर इस दृष्टि से विचार होता है कि भविष्य में आनेवाले किसी संघर्ष में उनका क्या प्रभाव पड़ेगा; परिणाम यह होता है कि हम दोनों ओर के दलों को विषय के गुणों को भुलाते हुए पाते हैं, पर भारत जिसका विचार करने का दृष्टिकोण अन्य देशों से कुछ भिन्न है, हर प्रकार से एक असुविधा का हेतु समझा जाता है; दुर्भाग्य से असुविधा का कारण ही नहीं समझा जाता बल्कि हरेक वर्ग यह संदेह करता है कि वह विरोधी दल से मिला हुआ है। लेकिन मैं समझता हूं कि दूसरे देशों द्वारा अब कुछ ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि हम वही कहते हैं, जो हमारा आशय है। यह कोई गहरा दांव-पेच या षड्यंत्र नहीं है और हम चाहते हैं कि प्रश्नों पर उनके गुणों के अनुसार विचार हो, और गुणों के अन्तर्गत निश्चय ही ऐसे प्रश्नों से संबंधित और सभी

वातें भी आ जाती हैं। हाल के दो या तीन मामलों पर—कोरिया, पैलेस्टीन और अणुशक्ति पर—हमारा रुख ले लीजिये। यह अणुशक्ति का मामला संयुक्त राष्ट्रों की साधारण सभा में, पेरिस में, पिछले अधिवेशन में आया था, और इसपर बड़ी बहस हुई थी कि क्या करना चाहिए। इस विषय पर विचार करनेवाली समिति का भारत एक सदस्य वनाया गया, और हमारे प्रतिष्ठित प्रतिनिधि जो कि इस समिति में थे, जो इस कार्य के लिए आदर्श रूप में उपयुक्त हैं और जवकि दूसरे उत्तेजित होते हैं, वह कभी उत्तेजित नहीं होते और प्रश्न पर शांति और निरपेक्षता से विचार करते हैं—समिति के वातावरण को बदल देने में असमर्थ रहे। कोई बड़ा परिणाम निकला हो या नहीं, यह दूसरी वात है, लेकिन परिणाम प्राप्त करने का मार्ग हमने दिखाया था। कुछ देश हैं, जो चाहे कुछ हो जाय, अपने आसन से हटने से इन्कार करते हैं। अव, मैं यह नहीं कहता कि हम इतने दृढ़ हैं कि कोई चीज़ हमें अपने आसन से डिगाती ही नहीं। ऐसा कदापि नहीं है। फिर भी हमारी कोशिश यह रहती है कि हम अपने पैरों के वल खड़े रहें, नाचें-कूदें या गिरें नहीं।

क्या मैं कहूं कि मैं एक क्षण के लिए भी शेष दुनिया को सलाह देने या उसकी आलोचना करने का, भारत के पक्ष में किसी ऊंचे पद का, दावा नहीं करता ? मैं समझता हूं कि हमारी कोशिश केवल यह है कि इन समस्याओं पर हम उत्तेजित न हों; कम-से-कम, कोई कारण नहीं कि हम इसकी कोशिश न करें। इससे नतीजा यह निकलता है कि जिन्हें शक्ति-दल कहते हैं, उनकी पंक्ति में हमें शरीक नहीं होना चाहिए। विना ऐसा किये हुए हम कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते है। इस वात की भी किंचित संभावना है कि किसी और के ऊपर कुछ संकट की अवस्था में हमारे शांतिपूर्ण और मैत्रीपूर्ण प्रयत्न स्थिति में अंतर ला सकें, संकट का निवारण कर सकें। अगर ऐसा है तो यह प्रयत्न करने योग्य है। जव हम कहते हैं कि हमें किसी शक्ति-दल से न मिल जाना चाहिए, तो स्पष्टतया इसकी यह मानी नहीं है कि हमें औरों की अपेक्षा कुछ देशों से निकटतर संबंध न रखना चाहिए। यह विल्कुल और ही वातों पर निर्भर करता है, जो मुख्यतया आर्थिक, राजनैतिक, कृषि-संवंधी हैं, तथा अन्य वहुत-सी वाते हैं। इस समय, आप देखेंगे कि वास्तव में पश्चिमी दुनिया के कुछ देशों से हमारे अपेक्षाकृत कहीं निकट के संवंध हैं। कुछ तो इतिहास के कारण, कुछ अन्य कारणों से, आजकल के विविध कारणों से ऐसा है। ये निकट संवंध निश्चय ही वढ़ेंगे और हम उनको बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन देंगे, लेकिन हम अपनेको ऐसी स्थिति में नहीं रखना चाहते हैं, जहांकि राजनैतिक दृष्टि से यह कहा जा सके कि हम किसी खास दल से मिल गये हैं और अपने विदेशी कार्यों के विषय में उसके साथ वंध गये हैं। भारत स्वयं इतना बड़ा देश है कि वह किसीके पीछे क्यों वैठेगा, दूसरा देश चाहे जितना वड़ा हो। भारत एक ऐसा देश होने जा रहा है, और निश्चय ही होगा कि संसार के मामलों में उसकी गिनती होगी। ऐसा फौजी अर्थ में नहीं, वल्कि और दूसरे अर्थों में, जोकि अन्त में अधिक महत्त्व के और अधिक कारगर होते हैं। हमारी—अर्थात् यहां की आज की सरकार की—किसी एक दिशा में वहुत दूर तक जाने की कोशिश हमारे ही देश में कठिनाइयां उत्पन्न करेगी। इसपर आपत्ति की जायगी और हम अपने ही देश में एक संघर्ष उत्पन्न करेंगे, जो न हमारे लिए न किसी और देश के लिए ही सहायक होगा। शक्ति-गुटों से अलग रहते हुए हम कहीं अच्छी स्थिति में हैं कि ठीक अवसर आने पर हम शांति के पक्ष में अपना जोर डाल सकें, और इस वीच में, आर्थिक तथा अन्य क्षेत्रों में, हमारे संवंध उन देशों से, जिनसे कि हम अपने संवंध विकसित कर सकते हैं, ज्यादा निकट के हो सकते हैं। इसलिए अलग-अलग या शेष दुनिया से कटकर रहने का प्रश्न नहीं है। हम अलग-अलग होकर रहना नहीं चाहते। हम निकटतम संपर्क चाहते हैं, क्योंकि शुरू से ही हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि

संसार आपस में निकटतर आ रहा है और अन्त में उस आदर्श की सिद्धि होगी, जिसे कि अब 'एक संसार' का आदर्श कहा जाता है। लेकिन, हमें विश्वास है कि भारत इस क्रम में एक स्वतंत्र स्थिति ग्रहण करके और अपनी इच्छानुसार कार्य करते हुए, जब कभी संकट आवे, अधिक सहायता दे सकता है, बजाय इसके कि वह दूसरों में अपने को विलीन करके कड़े बंधनों में बंध जाय।

हम पाते हैं कि युद्ध की परिभाषा में विचार करने की एक ख़तरनाक प्रवृत्ति पैदा हो गई है। निश्चय के साथ कुछ कह सकना ज़रा मुश्किल है, फिर भी युद्ध की संभावना इतनी बुरी है और उसके नतीजे इतने ख़तरनाक होंगे कि युद्ध का नतीजा जो भी हो, हर आदमी को लड़ाई को बचाने के लिए अपनी पूरी ताकत से कोशिश करनी चाहिए। हम कहीं भी युद्ध नहीं चाहते। हम कम-से-कम १० या १५ बरसों के लिए शान्ति चाहते हैं, जिसमें कि हम अपने साधनों का विकास कर सकें। अगर दुनिया में कहीं भी लड़ाई होती है तो बाकी दुनिया का क्या हाल होगा ? युद्ध के बाद आप करोड़ों आदमियों को भूखों मरते पायंगे।

इसलिए अगर हम जल्दी से युद्ध रोकने के लिए कोशिश करें और इस घटना से लाभ उठायं कि पिछले जाड़ों में जो गंभीर संकट पैदा हुआ था, और जो अब दब गया है और आगे और दब सकता है, तो मैं समझता हूं कि हम शान्ति की संभावना को अच्छी तरह बढ़ा सकते हैं। जहांतक हमारा संबंध है, हमें ऐसा करने की कोशिश करनी चाहिए। दूसरे संघर्ष हैं—चाहे वे बर्लिन में हों, चाहे यूरोप में, चाहे दूसरी जगहों में। इनके अलावा, दुनिया में दो और सवाल हैं, जिन्हें संतोषजनक तरीके से हल न किया गया तो वह बड़े पैमाने में संघर्ष पैदा कर सकते हैं। इनमें से एक तो वह है जिसकी मिसाल इन्डोनेशिया है, यानी एक देश के द्वारा दूसरे देश पर हुकूमत। और जबतक हुकूमत जारी रहती है—चाहे वह एशिया में हो, चाहे अफ्रीका में—तबतक वहां शान्ति नहीं हो सकती है। लोगों के मन में भी लगातार संघर्ष, और एक दूसरे के प्रति लगातार संदेह बना रहेगा और यूरोप के प्रति एशिया के मन में बराबर बेयकीनी बनी रहेगी और इसलिए एशिया और यूरोप के बीच जो दोस्ती का संबंध होना चाहिए, वह सहज में कायम न हो सकेगा। इसलिए यह जरूरी है कि औपनिवेशिक हुकूमत के इन क्षेत्रों को आजाद किया जाय और वे स्वतंत्र देशों के रूप में काम कर सकें।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है जातिगत बराबरी की। यह भी दुनिया के कुछ हिस्सों में, जैसा आप जानते हैं, सामने आ गई है। मिसाल के लिए दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के सवाल को ले लीजिये। यह एक ऐसा विषय है, जिससे सबका संबंध है। यह भारतीयों या दक्षिण अफ्रीकावालों का ही सवाल नहीं है, बल्कि यह दुनिया के लिए एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है, क्योंकि यह भी दुनिया की हालत का एक प्रतीक है। अगर यह बना रहता है तो संघर्ष, बड़े पैमाने पर संघर्ष लाजिमी है, क्योंकि यह बड़ी संख्या में दुनिया के लोगों के आत्म-सम्मान के प्रति एक लगातार चुनौती है और वे इसे नहीं सहेंगे। इसलिए यह विषय संयुक्त राष्ट्र के सामने है और मैं उम्मीद करता हूं कि संयुक्त राष्ट्र इसे हल करने में सहायक होंगे। लेकिन इसमें ज़रा भी संदेह नहीं हो सकता कि अगर ऐसी नीति संयुक्त राष्ट्र से बिलकुल अलग चलती है तो यह संघर्ष पैदा करेगी। और यह संघर्ष दक्षिण अफ्रीका के या दूसरी जगह के खास क्षेत्रों तक ही सीमित न रहेगा; इसका असर बड़े महाद्वीपों के लोगों पर भी होगा।

तीसरे विषय के संबंध में यानी कि आर्थिक नीति के बुनियादी विषय के संबंध में मैं विचार नहीं करूंगा—यह बहुत बड़ा विषय है। मैं इसके बारे में सिर्फ यह कहना चाहूंगा कि जहांतक मैं देखता हूं कि दुनिया में आगे बढ़ने का आज एक ही तरीका यह है कि हर देश को महसूस करना चाहिए कि दूसरे देश की आर्थिक नीति में

उसकी दखलंदाजी ठीक नहीं हैं। अन्त में वे नीतियां सफल होंगी, जो अपनेको फायदेमंद साबित होंगी, जो ऐसा नहीं करतीं वे सफल नहीं होंगी। दूसरे देशों की नीतियों में हमलावर तरीके से दखलंदाजी करने की प्रवृत्ति लाजिमी तौर से झगड़े पैदा करती है। हमें यह महसूस करना चाहिए कि आज संसार में तरह-तरह की आर्थिक नीतियां चल रही हैं, और उनमें उन देशों के लोगों का विश्वास है। तो फिर, एक ही बात करने को रह जाती है, वह यह कि उन्हें अपनी-अपनी किस्मत का फैसला करने के लिए छोड़ दिया जाय।

भाषण खत्म करने से पहले क्या मैं एक बात और कहूं ? हम 'एक संसार' की हिमायत में कोशिश कर रहे हैं और यातायात के साधनों और दूसरी चीजों के फलस्वरूप हम एक दूसरे के ज्यादा नजदीक आते जा रहे हैं। हम एक दूसरे के बारे में पहले की बजाय कहीं ज्यादा जानते हैं। फिर भी मेरा ख्याल है कि हमारा एक दूसरे के बारे में ज्ञान अजीब तरीके से छिछला है, और हम अपनी छोटी या बड़ी लीकों में पड़े हुए यह कल्पना करते हुए जान पड़ते हैं—हरेक देश ऐसी कल्पना करता हुआ जान पड़ता है—कि हम कमोवेश संसार के केंद्र हैं, और जो कुछ भी हमारे सिवा है, वह किनारे की चीज है, और यह कि हमारे रहने का ढंग ही ठीक ढंग है और दूसरों के रहने का ढंग या तो बुरा है, या पागलपन का ढंग है, या किसी तरह पिछड़ा हुआ ढंग है। मैं समझता हूं कि यह आदमियों की एक आम कमजोरी है कि वे ख्याल करें कि वे ही सही रास्ते पर हैं और दूसरे गलती पर हैं। गलत या सही होने की बात अलग रखी जाय, तो यह हो सकता है कि दोनों सही हों या दोनों गलती पर हों; हर हालत में, जहांतक लोगों के रहने के ढंग का संबंध है, न केवल यूरोप, अमरीका, एशिया और अफ्रीका के बीच अन्तर हो सकते हैं, बल्कि एक ही महाद्वीप के भीतर भी अन्तर हो सकते हैं। यूरोप और अमरीका की, चूंकि वे हुकूमत रखनेवाले देश हैं और उनकी एक मजबूत संस्कृति रही है, यह प्रवृत्ति रही है कि रहन-सहन के जो ढंग उनके ढंग से जुदा हैं, वे उनकी नजर में लाजिम तौर पर घटिया हैं। वे घटिया हैं या नहीं यह मैं नहीं जानता। अगर वे घटिया हैं तो वहां के लोग ही उन्हें बदल देंगे। लेकिन एक देश का दूसरे देश को इस नजर से देखने का ढंग बहुत बुरा और बे-अक्ली का है, क्योंकि यह दुनिया बहुरंगी है। भारत में भी हमारी सारी संस्कृति ही इस बात का सबूत है कि हम इंसान की विविधता को समझते हैं, लेकिन बावजूद इसके हम एकता पर जोर देते है। संसार विविधता से भरा हुआ है और मैं कोई वजह नहीं देखता कि उसपर पाबंदियों लगाई जायं। फिर भी लोगों की यह प्रवृत्ति है कि उसपर पाबंदी लगा दें और उसे एक खास नमूने में ढालें। हो सकता है कि भारत का नजरिया अपना जीवन-दर्शन के कारण हो। अपने सीमित नज़रिये और कमियों की वजह से हम जो भी करें, हमारा एक खास जीवन-दर्शन रहा है जो कि, 'खुद जियो और दूसरों को जीने दो' इस तरह का है। हममें दूसरे लोगों के नजरिये या विचारों को बदलने की कोई खास इच्छा नहीं है। हम हरेक से बहस करने और उसे समझाने के लिए तैयार हैं, पर मानना न मानना दूसरे के हाथ है, और अगर वह अपने रास्ते जाना चाहता है तो भी हम खुश है। अगर वह हमारे रास्ते में दखल देता है तो हमें बिल्कुल खुशी नहीं होती।

इसलिए अगर हम समझ लेते हैं कि इस दुनिया में रहने, काम करने, विचार के जुदा-जुदा ढंग हैं, तो हमें दुनिया की बुराई को दूर करने की कोशिश करनी तो चाहिए, पर उसकी विविधता को बने रहने देना चाहिए। इसमें एकता लानेवाली काफी प्रबल शक्तियां काम कर रही हैं और मुमकिन है कि यह एकता उत्पन्न हो और विविधता कदाचित कम हो। यह दुर्भाग्य की बात होगी, अगर यह विविधता किसी दिन बिल्कुल उठ जाय और हमसब एक तरह के ढांचे में ढाल दिये जायं; इसकी कल्पना ही भयानक है। ●

भारतीय गणतंत्र के समारंभ पर २६ जनवरी १९५० को राष्ट्र के नाम नेहरूजी का संदेश।

एक ऐतिहासिक दिन

हम लोगों पर एक साथ ही बहुत-से वाक़यों का ढेर-सा लग गया। और चूंकि ये वाक़ये, एक-के-बाद एक बड़ी तेज़ी से आये, यह कुदरती है कि हम इनकी अहमियत को भूल जायं। हममें से कुछ लोग हरेक मौक़े पर ऐसे पैग़ाम देते हैं कि जिनसे लोगों को भारी कोशिश करने की प्रेरणा मिले। यहांतक कि ये पैग़ाम इतने पुराने हो चुके हैं कि दोहराये नहीं जा सकते।

फिर भी, इसमें कोई शक नहीं है कि २६ जनवरी, १९५० का दिन, हिंदुस्तान और हिंदुस्तान के लोगों के लिए एक बड़ी अहमियत का दिन है। इसका मतलब है कि हमारी क़ौमी तहरीक का एक ज़रूरी दौर पूरा हो गया है। हमारा सफर खत्म हुआ, इस बात के लिए कि दूसरा सफर शुरू हो, जोकि शायद पहले सफर से भी ज्यादा मुश्किलातों से भरा हुआ हो। एक शपथ पूरी करदी गई, और किसी भी शपथ को पूरी करने पर तसल्ली हासिल होती है और आगे आनेवाली कोशिश के लिए ताक़त मिलती है।

इस २६ जनवरी के बारे में एक अजीब-सी बात है, क्योंकि यह दिन गुज़रे और मौजूदा वक्त की कड़ी को जोड़ता है और यह मौजूदा वक्त गुज़रे वक्त में से ही पैदा हुआ देखा गया है। बीस साल पहले हमने आज़ादी की पहली शपथ उठाई थी। इन बीस बरसों के दौरान में हमने जद्दोजहद, झगड़े, नाकामयाबियां और कामयाबी देखी है। वह शख्स, जिसने हमें स्पष्ट नाकामयाबी में से कामयाबी का रास्ता दिखाया, अब हमारे बीच नहीं रहा, पर उसकी मेहनत का फल हमको मिला। हम इस नतीजे से क्या करते हैं, यह बहुत-सी बातों पर मुनहस्सिर है, जिनमें बुनियादी बातें, जिनपर गांधीजी अपने काम के दौरान में हमेशा जोर देते रहे हैं—ऊंचा चालचलन, विचारों और उद्देश्यों में ईमानदारी, सहन करने और सहयोग करने की भावना और कड़ी मेहनत। मैं अपने लोगों को केवल यह सुझाव दे सकता हूं कि वे अपनी इस लोकतंत्री आज़ादी की नींव इन सभी चलनों पर रखें और अपने मन से डर और नफरत को निकाल दें और हमेशा अपने करोड़ों लोगों की भलाई की ही बात सोचें।

यह हमारी खुशक़िस्मती है कि हम लोकतंत्री भारत के उदय के साक्षी हैं और हमारे बाद आनेवाले लोग इस दिन के लिए हमें ईर्ष्या की निगाह से देखेंगे, लेकिन खुशकिस्मती एक ऐसी अमानत है, जिसकी अपने निजी अच्छे काम के ज़रिये बहुत लगन के साथ रखवाली करनी पड़ती है, और अगर हम अपनी कोशिशों में ढील देते हैं या गलत दिशा की तरफ देखते हैं तो यह फिसलकर दूर जा पड़ती है। ●

सामुदायिक विकास-योजना कांफ्रेंस, नई दिल्ली में
७ मई, १९५२ को श्री नेहरू का भाषण

सामुदायिक विकास-योजना

यह सारा इस बात पर निर्भर करता है कि मैं और हम सब इस सवाल को कैसे हल करते हैं । क्या यह भी हमारी उन बहुत-सी योजनाओं में से एक है, जो बेशक बहुत अच्छी हैं, और जिनपर हम दिन-भर काम करते हैं और बाकी को मौका मिलने के लिए छोड़ देते हैं या यह उससे कुछ ज्यादा माने रखती है ? क्या यह कुछ ऐसी चीज़ है कि जिसे आप अफसराना तौर पर ऊपर से हिदायतें देंगे या यह कुछ ऐसी चीज़ है कि जो आपको निचले दर्जे से उन ताक़तों को मुक्त करने के लायक बना देगी कि हमारी जनता काम कर सके ? जो ताक़तें किसी निश्चित उद्देश्य और उचित संगठन के बिना मुक्त की जाती हैं, उनसे कभी-कभी तो अच्छे नतीजे हासिल होते हैं, और कभी बुरे भी । बेशक, यह निहायत ज़रूरी है कि ऊपर की तरफ से एक अच्छी रहनुमाई और एक अच्छा संगठन होना चाहिए, लेकिन इतने पर भी अगर निचले दर्जे की ताकत को मुक्त नहीं किया जाता तो यह सब बेकार हो जाता है ।

ऊपर से की जानेवाली इस रहनुमाई के बारे में अक्सर मैं शक करने लग जाता हूं और कभी-कभी डर भी जाता हूं । हमारी यह आदत बन गई है कि हम देश को, अपनी जनता को, और हर किसीको नेक सलाह देने लगते हैं । मेरा यह निजी तजुरबा है कि जो लोग बहुत ज्यादा सलाहें देते हैं, वे लोकप्रिय नहीं होते । कहने का मतलब यह है कि अगर हम निचले दर्जे से गहरा ताल्लुक रखे बिना ऊपर की तरफ से ज़रूरत से ज्यादा कार्रवाई करते हैं, तो इससे हमें कोई नतीजा हासिल नहीं हो सकता ।

ज़ाहिरातौर पर, योजना बनाना, हिदायत करना, संगठन करना और सारे का ताल-मेल बैठाना भी ज़रूरी है, लेकिन इससे भी ज्यादा ज़रूरी यह है कि ऐसे हालात पैदा किये जायं, कि जिससे नीचे से भी खुद-ब-खुद काम करने की प्रवृत्ति पैदा हो । क्या यह सामुदायिक योजना कुछ ऐसी चीज़ है कि जो ऊपर के लोगों और दूसरे लोगों के बीच गठजोड़ पैदा कर सकती है ? 'ऊपर के लोगों' से मेरा मतलब है उन लोगों से, जो संचालन करते हैं और जो संगठन करते हैं, और 'दूसरे लोगों' से मेरा मतलब है उन करोड़ों लोगों से, जो काम में हिस्सा बटायंगे । असलियत तो यह है कि आख़िर में न तो 'ऊपर' वाली बात रहेगी, और न कोई दर्जे की बात रहेगी । जो हो, मैं महसूस करता हूं कि संगठन करनेवालों की रहनुमाई गेंद की तरह से ऊपर से नीचे की ओर नहीं लुढ़कती रहनी चाहिए, और जहां भी मुमकिन हो सामुदायिक योजनाओं की पहल उन्हीं लोगों की तरफ से होनी चाहिए, जिनपर उनका सबसे ज्यादा असर होता है ।

अक्सर हम लोग अपने दफ्तरों में बैठे रहना पसंद करते हैं और जनता की भलाई के लिए जो हमें अच्छा

लगता है, उसीके मुताविक फैसला कर देते हैं। मैं समझता हूं कि जनता को खुद ही इस वारे में सोचने का मौका देना चाहिए, और इससे हमारे विचार करने पर उनका असर होगा, जैसाकि हमारे विचारों का उनपर होता है। इस तरीक़े पर चलने से कुछ ज्यादा अर्थ-पूर्ण हासिल हो सकेगा—एक तरह की गंभीर हिस्सेदारी की भावना पैदा हो जायगी। इस हिस्सेदारी से मेरा मंशा काम को करने के वारे में नहीं, वल्कि काम की योजना वनाने और उसके वारे में विचार करने का है।

मेरा यह भी ख़याल है कि सामुदायिक योजनाओं का वहुत वड़ा महत्व है और यह इसलिए नहीं कि इस तरह की योजना की ठोस सफलताओं को आप कागज़ पर उतार सकते हैं, वल्कि यह इसलिए खयाल करने लायक होगी कि इनकी वजह से अतिरिक्त अनाज पैदा होगा और मकान, स्कूल, अच्छी सड़कें और तालाव तथा कुएं वगैरा वनेंगे। इन चीजों के आप आंकड़े वना सकते हैं, और उन्हें देखकर आप खुशी भी महसूस करेंगे। लेकिन मेरा ख़याल है कि ऐसा घर या उसमें रहनेवाले लोगों से ज्यादा महत्व है उस घर को वनानेवाले का। इसलिए मेरा ध्यान हमेशा इन घर वनानेवालों की तरफ रहता है; क्योंकि हमें भारत के हर आदमी को ऐसा वनाना है। मेरी दृष्टि में सामुदायिक योजनाओं का महत्व केवल हमारी समृद्धि को वढ़ाना ही नहीं है, वल्कि इससे भी अधिक यह है, कि इनके द्वारा हमारे देशवासी अपने गांवों को और वड़े पैमाने में पूरे भारत को गढ़ने में अधिक कुशल हो जायंगे। मुमकिन है कि इस प्रकार योजना आदि वनाने से हमें यह गलतफहमी हो जाय कि सवसे ज्यादा जरूरी काम ये ही है, अर्थात्, संभवतः हमें यह महसूस होने लगे कि हम ही सव काम वड़े-वड़े दफ्तरों और इमारतों में वैठे-वैठे कर रहे हैं। हम ऐसा कुछ भी नहीं कर रहे हैं। हम तो केवल यह दिखा रहे हैं कि यह काम कैसे होगा। इस को पूरा करने वाले तो और लोग हैं। लेकिन, न मालूम क्यों, ऐसे लोग इस ओर से उदासीन हैं। लोगों को कैसे इन कामों की तरफ अग्रसर किया जाय? कैसे उनमें मिलकर काम करने का, कुछ कर गुजरने का उत्साह पैदा किया जाय?

वीते दिनों की ओर देखकर मुझे याद आता है कि भूतकाल में हमने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय तौर पर इसी प्रकार सोचा, महसूस किया और काम किया है। ऐसी भावना आदमी को ऊंचा उठाती है। हालांकि ऐसी वात हमारे देश में हो चुकी है। फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि इसी तरह की वात फिर हमारे जीवन में आयगी या नहीं। वदली हुई हालतों में शायद पहले की-सी वात पैदा न हो सके। लेकिन मैं गुजरी हुई पीढ़ी का होने के नाते यह नहीं कह सकता कि नई पीढ़ी को भी हमारी तरह ही महसूस करना चाहिए। महसूस हम चाहे कुछ भी करें, यह स्पष्ट है कि जव भारत को दुवारा मजवूत करने का भारी काम करना होगा तो कितावों, आंकड़ों, योजनाओं और वाद-विवादों से भी वढ़कर, उस जोश और भावना की जरूरत होगी, जिससे कोई देश ऊंचा उठ सकता है। क्या हम सामुदायिक विकास-योजनाओं को इस निगाह से देख सकते हैं?

किसी भी देश को अनादर की दृष्टि से न देखते हुए भी मैं यह ख़याल करता हूं कि शायद ही किसी देश के आदर्श भारत के समान ऊंचे हों। साथ ही मैं यह भी कह सकता हूं कि आदर्श और क्रिया के वीच जितना फासला भारत में है, शायद ही और किसी देश में हो। इसलिए वड़ी वातें कहना, लेकिन उनके नजदीक भी न पहुंचना, खतरनाक है। फिर भी इस विचार से कि हम उनतक नहीं पहुंच सकेंगे, अपने आदर्शों को नीचे लाना भी गलत है। अगर हम सितारों तक नहीं पहुंच सकते तो क्या उनकी ओर देखना भी छोड़ दें? हमारी समस्या है कि सामुदायिक-विकास-योजनाओं को दफ्तरों तक सीमित न रख कर किस प्रकार लोगों में उन्हें जोश के साथ अपनाने

की भावना पैदा की जाय ? हम उस खर्चे का भी अदांज करते हैं जो इस काम को करने में होगा। यह जरूरी भी है। लेकिन मेरे विचार में इससे भी ज्यादा जरूरी उस आदमी का खयाल करना है, जो इस काम को करेगा, जो इसे महसूस करेगा और अपनी भावना को साकार करेगा। ऐसा आदमी हमें गढ़ना नहीं होगा—वह हमारे सामने है। हमें तो केवल उसके दिल और दिमाग तक पहुंचना है। केवल उपदेश देने से यह नहीं होगा। उपदेश देने की वजाय खुद काम कीजिए, और लोग खुद ही आपकी बात मानेंगे। क्या आप यह समझते हैं कि आपका काम इसलिए बड़े दफ्तरों में बैठकर हुक्म जारी करना है कि आप डिवेलपमेंट कमिश्नर हैं ? हरगिज़ नहीं। इससे बेहतर है कि आप कहीं और जाकर कोई दूसरा काम करें।

डिवेलपमेंट कमिश्नर और अन्य अफसरों को चाहिए कि वे हुक्म जारी करने के वजाय हाथ में फावड़ा लें। इस योजना से संबंधित किसी भी व्यक्ति को यह हक नहीं है कि वह दफ्तर में खाली बैठे। आप खुद काम कीजिए, तभी दूसरे लोग आपका अनुसरण करेंगे। यही तरीका है दूसरों से काम कराने का। हम लोग शारीरिक और मानसिक रूप में आलसी बनते जा रहे हैं। मैं यह आशा करता हूं कि आप जहां भी हों रोज सुवह, जहांतक हो सके, सामुदायिक विकास-योजना की दिशा में कुछ शारीरिक काम कर।

मुझे मालूम नहीं, कि हमारे डिवेलपमेंट कमिश्नरों या ऐडमिनिस्ट्रेटरों ने इन योजनाओं से संबंधित परचों आदि के वारे में क्या किया, एक परचा मैंने देखा है। यह अंग्रेजी में है और सीधा-सादा और संक्षिप्त है। मुझे उम्मीद है कि भारत की अन्य भाषाओं में भी इन्हें छापा जायगा। लेकिन यही काफी नहीं है। मैं चाहता हूं कि इस मसले को ऐसे तरीके से समझाया जाय कि जिससे लोगों के मन में दिलचस्पी पैदा हो। आप लोग, जो डिवेलपमेंट कमिश्नर हैं, लोगों से उदारता से पेश आयें, उनसे नम्रता से वात करें, उनकी वात को समझें और उन्हें यह समझायं कि इस काम को पूरा करना उनका भी फर्ज है; और कैसे इस योजना के द्वारा उन्हें और उनकी भावी पीढ़ी को लाभ होगा। यह ध्यान रहे कि आप उनके दिल और दिमाग तक पहुंचकर उनसे काम करायं; हुक्म के जोर पर नहीं, बल्कि भाईचारे और इन्सानियत के नाते से।

यह स्पष्ट है कि मुझे आप लोगों के बारे में जानकारी है। मुझे आप लोगों की आलोचना करने में कोई भय नहीं है। अभी मैंने आपको आलसी कहा था। लेकिन मेरा विश्वास है कि भारत का मनुष्य बहुत ऊंचा है, और मौका दिये जाने पर बहुत ऊंचा उठ सकता है। इस अपार जन-समह को आप कैसे मौका दे सकते हैं, यही मुख्य समस्या है। यह पल-भर में नहीं हो सकता। हरेक का ध्यान रखकर योजना वनानी होगी और तभी आप आगे कदम बढ़ा सकेंगे। इस प्रकार आप एक ऐसी प्रणाली शुरू करेंगे जो खुद-ब-खुद बढ़ती चली जागगी। जैसे—इस साल आपने पचपन योजनाएं लीं, अगले साल आप सौ लेंगे और इसी तरह काम आगे बढ़ता जायगा। हम चाहते हैं कि अगले पांच-छः साल में आपके पास पांच-छः सौ केन्द्र हो जायं।

यह एक वहुत बड़ा काम है, और इसका असर अधिकतर जनता पर पड़ेगा। लेकिन मैं इसके अलावा कुछ और भी सोचता हूं। जैसे—एक केंद्र में सौ गांव हों; वहां जो आप काम करेंगे, उसका असर आस-पास के गांवों पर भी पड़ेगा। मगर अफसराना ढंग से यह काम नहीं होगा। आपका काम एक खास ढांचे तक ही सीमित नहीं होना चाहिए, उसमें हालतों के साथ-साथ विकसित होने की क्षमता होनी चाहिए। लेकिन एक खतरा है—वह यह कि मार्गदर्शन और अधिकार से हम किसी भी चीज़ को सीमित बनाकर उसमें से तरक्की का अंश खत्म कर देते हैं। इस तरीके से सामुदायिक योजनाएं आगे नहीं बढ़ सकतीं। अफसरों का होना जरूरी है, लेकिन उनमें हालतों

के मुताबिक काम करने की ताकत होना जरूरी है। ऐसी योजना की सफलता के लिए समय भी जरूरी चीज है। निश्चित कह सकना तो कठिन है पर आपको काम पर लगनेवाले समय का अंदाज होना जरूरी है।

वास्तव में हमारा कर्त्तव्य कुछ सामुदायिक केन्द्रों को चलाना ही नहीं है, वरन् भारत की आधार जनता और पिछड़े और दलित लोगों को आगे बढ़ाना है। अनुसूचित जातियों के अलावा हमारे देश में एक 'बैकवर्ड क्लासेज़ लीग' भी है। आर्थिक दृष्टि से भारत की ९६ प्रतिशत जनता पिछड़ी हुई है। लेकिन जो ज्यादा पिछड़ गए हैं, उन्हींपर ज्यादा ध्यान देना हमारा उद्देश्य है। हमें सबको समानता देनी है और आज की दुनिया में, पिछड़े लोगों और उन लोगों के बीच, जिन्होंने तरक्की कर ली है, फासला ज्यादा देर तक नहीं रह सकता। इसलिए मैं उम्मीद करता हूं कि सामुदायिक केन्द्र केवल कुछ स्थानों को सहायता देने तक ही सीमित न रहकर, ऐसी जगहों में सहायता करेंगे और वहां के लोगों की समस्याओं को हल करेंगे, जो आर्थिक, सामाजिक और अन्य प्रकार से पिछड़े हुए हैं, और इस प्रकार भारत की पिछड़ी हुई जनता की इस भारी समस्या को जल्द-से-जल्द हल कर सकेंगे। ●

२४ अप्रैल, १९५५ को बांडुंग में अफ्रीकी और एशियाई देशों के सम्मेलन में श्री नेहरू का भाषण।

बांडुंग सम्मेलन

सात दिनों से हम बांडुंग के इस ख़ुशनुमा शहर में हैं—और इस दौरान में वह एशिया और अफ्रीका का अहम केन्द्र ही नहीं, बल्कि मैं तो यह कहूंगा कि राजधानी ही वना रहा है।

हम एशिया और अफ्रीका की जनता के अदम्य उत्साह की वजह से यहां इकट्ठा हुए हैं। हमारे एकत्र होने की यह वजह है कि ऐसी बड़ी-बड़ी ताक़तें इन विशाल महाद्वीपों में काम कर रही हैं, जो करोड़ों लोगों पर असर कर रही हैं और उनके दिमाग़ों में अपनी हालत को वदलने की प्रेरणा, लालसा और ख्वाहिश पैदा कर रही हैं।

किसलिए हम इकट्ठा हुए—और हमने यहां क्या हासिल किया ? आप लोगों ने उस प्रस्तावित बयान को देखा है, जो आपको पढ़कर सुनाया जा चुका है। मेरे ख़याल में हमारी कामयाबी का यह काफी सबूत है। लेकिन इससे भी ज्यादा मैं आपका ध्यान इस बात की ओर खींचना चाहूंगा कि हम लोग एक-दूसरे से मिले हैं, और हमने एक-दूसरे को देखा है, और एक-दूसरे के साथ दोस्ती क़ायम की है, और अपनी समाजी मुश्किलों का हल खोजने के लिए एक-दूसरे के साथ बहस की है।

मेरे दोस्त, वर्मा के प्रधान मंत्री ने हमारे भिन्न विचारों को आपसी मत-भेद के रूप में देखा है, और इन सात दिनों में हम एक-दूसरे से लगातार उलझते रहे, क्योंकि हम एक साझे खयाल और साझे दृष्टिकोण को हासिल करना चाहते थे। ज़ाहिर ही है कि जिस नज़रिये से आप दुनिया को देखेंगे, उसीके मुताविक जुदा तरीक़े की वह दिखाई देगी। अगर आप एशिया के सुदूर-पूर्व में बैठे हैं तो आपको दुनिया और उसके मसले का एक ख़ास स्वरूप नज़र आयगा। अगर आप दुनिया के सुदूर-पश्चिम में होंगे तो आपको एक जुदा स्वरूप दिखाई देगा। इसी तरह अगर आप अफ्रीका में हैं, तो वह बिलकुल ही जुदा होगा।

इस तरह हम सब अपने निजी स्वरूपों के साथ यहां आये और हर किसीका यही ख़याल था कि दुनिया में उसीकी मुश्किल सबसे ज्यादा ज़रूरी है। साथ-ही-साथ हम दुनिया के अहम मसलों को समझने और इस बड़े संदर्भ में अपने मसलों को सही बैठाने की कोशिश कर रहे हैं; क्योंकि आख़िरकार, हमारे सारे मसले, चाहे वह कितने ही ज़रूरी क्यों न हों, इन बड़े मसलों से अलग नहीं रखे जा सकते। इसलिए हम अपनी मुश्किलें कैसे सुलझा सकते हैं, जवकि ख़ुद शांति ही ख़तरे में है ? इसलिए शांति का हमारा सबसे पहला मसला है। हम सब अपने देशों को शांतिपूर्वक उन्नत करने के लिए बहुत उत्सुक हैं। हम पिछड़े रहे हैं। दौड़ में हम पीछे रह गये हैं, और हमें एक वार फिर अपनेको ठीक करने का मौक़ा मिला है। वाक़यात की लाचारी से हमें बहुत तेज़ी के साथ अपनी कमी को पूरा करना है। अगर हम इस वक्त अपनी कमी को पूरा नहीं करते तो हम ख़त्म हो जायंगे और लंबे अर्से तक फिर नहीं उठ पायंगे।

हमने इरादा किया है कि हम नाकाम नहीं होंगे। एशिया और अफ्रीका के इस नये दौर में हमने इरादा किया है कमियों को पूरा करने का। हमने इरादा किया है कि हम किसी भी दूसरे मुल्क या महाद्वीप की किसी भी तरह की अधीनता में नहीं रहेंगे। हमने इरादा किया है कि हम अपने देशवासियों को खुशहाल और समृद्ध बनायंगे और ोड़ फेंकेंगे, जिन्होंने हमें न सिर्फ सियासी तौर पर बल्कि माली तौर पर भी जकड़ रख हैं उपनिवेशवाद की और अपनी ही बनाई दूसरी मुश्किलों की। इसमें शक नहीं कि ेद भी आये, और कुछ रिज़ोल्यूशनों की सख्त नुक्ताचीनी भी हुई—हमें ऐसी नुक्ताचीनी क ा; क्योंकि हम एक साझे लक्ष्य को हासिल करना चाहते थे। लेकिन रिज़ोल्यूशन पास व हीं होंगे, जिनका आज हमें सामना करना पड़ रहा है। महज हमारे तरीक़े और कार्रवाइ ौर आदर्शों को कामयाब बना सकते हैं। केवल तभी हम उन कमियों को पूरा कर स में हममें आई। हमें हक़ीकत के नज़रिये से ही सब बातों पर ग़ौर करना है और हक़ीकत सामना करना है।

लेकि एक और भावना है। एशिया अब दबा हुआ नहीं रहा, हर गुज़िश्ता वक्त में वह काफ़ी अब वह पराजित एशिया नहीं रहा; काफी लंबे अर्से तक उसने पराजय को भी सहन कि या महाशक्तिशाली है; वह ज़िंदगी से लबरेज़ है। एशिया, मुमकिन है, ग़ल्तियां करे ता है, उनकी इसे परवा नहीं; जहां ज़िंदगी है, वहां प्रगति है।

इ कामयाबियां हासिल की हैं, क्योंकि हम अपने सारे रिज़ोल्यूशनों में एक-मत थे, लेकिन इन कहीं ज्यादा बड़ी हैं। हमें अपने मतभेदों से उलझना पड़ा। हम हां-में-हां मिलाने अ ुल्क की, और एक-दूसरे की जी-हज़ूरी करने के लिए यहां इकट्ठा नहीं हुए हैं। जो बिना किसीकी ताबेदारी के आज़ादी से रहते हैं। अगर एशिया दुनिया को कुछ बतान के भविष्य में किसी तरह की ताबेदारी या आदेश वह नहीं चाहता। मुझे उम्मीद है, न एरि का में कोई किसीकी जी-हुज़ूरी करेगा। गुज़िश्ता वक्त में हम इसके काफी मज़े चख चुके ी दोस्ती की क़द्र करते हैं, लेकिन हम उनके साथ केवल भाइयों की तरह ही बैठ सकते

ं बारे में घृणा या नापसंदी या लड़ाकूपन की किसी भावना के बिना यह कह रहा हूं। उन्हें अपनी शुभकामनाएं भेजी हैं और हम उनके साथ दोस्ती रखना चाहते हैं, और सह लेकिन आनेवाले दिनों में हम बराबरी के दर्जे पर उनसे सहयोग करेंगे। जब राष्ट्रों के होती, जब एक को दूसरे का हुक्म मानना पड़े और जब एक या दूसरे पर प्रभुत्व हो, तो सकती। इसीलिए हम उस प्रभुत्व और उपनिवेशवाद के खिलाफ आवाज़ बुलंद कर रहे इयों को लंबे अर्से तक तकलीफें उठानी पड़ी हैं। और इसीलिए हमें बहुत सावधान रहना तरह का प्रभुत्व हमारी राह में न आ जाय। हम पश्चिम के साथ दोस्ती करना चाहते स्ती करना चाहते हैं, और हरेक के साथ दोस्ती करना चाहते हैं। एशिया के दिमाग़ ने का रास्ता सिर्फ सहनशीलता और दोस्ती और सहयोग का ही है, लड़ाकूपन का नहीं।

बांडुंग

मैं किसीकी बुराई नहीं करना चाहता। एशिया में, हम सबमें, देशों के रूप में और व्यक्तियों के रूप में, कई कमियां हैं। हमारे पिछले इतिहास से यह बातें ज़ाहिर होती हैं। फिर भी, मैं कहता हूं कि यूरोप एक ऐसा महाद्वीप था, जो झगड़ों, तकलीफों और नफरत से लबरेज़ था। यूरोप के झगड़े चल रहे हैं, उसकी लड़ाइयां चल रही हैं और हम इन लड़ाइयों में धकेल दिये गए हैं, क्योंकि हम यूरोप के साथ बंधे हुए थे। क्या हम अब भी यूरोप के झगड़ों, यूरोप की नापसंदगियों और यूरोप की तकलीफों के साथ बंधे ही रहेंगे? मैं उम्मीद करता हूं कि ऐसा नहीं होगा।

बेशक, यूरोप, एशिया और अमरीका—सब एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। आज की दुनिया में सबसे जुदा रहने की भावना ठीक नहीं है, क्योंकि मौजूदा वक्त में वह एक विश्व-राज्य की स्थापना की ओर बढ़ रही है। लेकिन फिर भी, यूरोप तथा कुछ दूसरे बड़े मुल्कों को, उनकी राजनैतिक विचारधारा चाहे कुछ ही हो, यह ख्याल हो गया है कि उनके झगड़े समूची दुनिया के झगड़े हैं, और इसलिए सारी दुनिया को उनके साथ शामिल होना ही चाहिए। मैं इस दलील को पसंद नहीं करता। मैं नहीं चाहता कि यूरोप, एशिया या अमरीका में कोई झगड़ा करे, लेकिन, अगर दूसरे झगड़ा करते हैं, तो मुझे क्यों लड़ना चाहिए और क्यों मुझे दूसरों के झगड़ों और लड़ाइयों में धकेला जाना चाहिए?

मैं मानता हूं, जैसाकि बर्मा के प्रधान मंत्री ने कहा है, कि हम दुनिया पर किसी तरह का निश्चयात्मक असर नहीं डाल सकते। लेकिन इसमें भी कोई शक नहीं कि हमारा प्रभाव बढ़ेगा। वस्तुतः, वह बढ़ भी रहा है, और आज भी हमारा कुछ-न-कुछ प्रभाव तो है ही। लेकिन चाहे हमारा प्रभाव ज्यादा हो या कम, उसे सही दिशा में ही लागू किया जाना चाहिए। उसकी दिशा वही होनी चाहिए, जो हमारे रिज़ोल्यूशन में शामिल ध्येयों, आदर्शों और मुद्दों को ईमानदारी के साथ ज़ाहिर करनेवाली है। यह रिज़ोल्यूशन एशिया के आदर्शों और नई ताक़त का प्रतीक है। हम यूरोपियनों, अमरीकनों या रूसियों की नक़ल करनेवाले नहीं हैं। हम एशियाई और अफ्रीकी हैं। यह हमारी शान और नई आज़ादी के शायां नहीं होगा कि हम अमरीका या रूस या यूरोप के किसी दूसरे मुल्क के पिछलग्गू हों।

जैसाकि मैंने कहा है, मैं किसीका बुरा नहीं चाहता। हम यूरोप और अमरीका को अपनी शुभकामनाएं भेजते हैं। हम आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड को अपनी शुभकामनाएं भेजते हैं, और आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड तो तकरीबन हमारे ही क्षेत्र के हैं। वह यूरोप के हर्गिज़ नहीं और अमरीका के भी क़तई नहीं हो सकते। वह हमारे क़रीब ही हैं और मैं चाहूंगा कि आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड एशिया के निकट आयं।

हमने इस या उस देश की हालतों के बारे में रिज़ोल्यूशन पास किये हैं। लेकिन मेरे ख्याल में, पिछले चंद सौ सालों में जो अफ्रीका पर गुज़री उससे भयंकर और दुःखपूर्ण दूसरी कोई बात नहीं है। इसके मुक़ाबले में हर बात छोटी जान पड़ती है, जब मैं अफ्रीका की उस दयनीय हालत का ख्याल करता हूं कि जब लाखों अफ्रीकियों को अमरीका तथा दूसरी जगहों में ग़ुलाम बनाकर, ज़बरदस्ती ले जाया गया था। हम सबको इसकी ज़िम्मेदारी लेनी होगी। चाहे हम ज़ाहिरा तौर पर उसमें शामिल नहीं भी थे, लेकिन दुर्भाग्यवश, अब भी अफ्रीका की हालत, जाति-भेद या सियासी नज़रिये से, किसी भी दूसरे महाद्वीप के मुक़ाबले अत्यधिक दयनीय है। अफ्रीका की मदद करने का भार अब एशिया पर है, क्योंकि दोनों महाद्वीप भाई-भाई हैं।

मुझे यक़ीन है, इस कांफ्रेंस का महत्वपूर्ण असर हमारे दिमाग़ों पर छा चुका है। दुनिया पर भी, मैं

यक़ीन करता हूं, इसका असर पड़ा है। हम यहां इतिहास-निर्माण की परंपरा के प्रतिनिधि के रूप में आये थे और हमने यहां इतिहास का निर्माण किया है । हमने जो-कुछ यहां कहा है, उसे करके भी दिखाना है, और उससे भी ज्यादा हमें वह करना है, जिसकी उम्मीद हमसे एशिया करता है, और जिसकी उम्मीद इन देशों के करोड़ों लोग हमसे करते हैं।

मुझे उम्मीद है, हम जनता के विश्वास के, और अपने भाग्य-निर्माण के योग्य साबित होंगे। ●

१७ सितम्बर १९५५ को लोकसभा में पंचशील के उदय पर दिया गया भाषण।

पंचशील का विचार

जैसाकि यह सभा जानती है, एक प्रस्ताव है कि हिंदुस्तान को अमरीका में रहनेवाले चीनियों या नागरिकों से संबंधित कुछ जिम्मेदारियां उठानी चाहिए। मेरा विचार है कि इतनी अहमियत दिये बिना भी यह कहा जा सकता है कि हिंदुस्तान ने कठिनाइयों के वक्त एक खास पार्ट अदा किया है। अक्सर यह कोई सार्वजनिक पार्ट नहीं था, बल्कि यह संबंधित पार्टियों तक दोस्ताना पहुंच का एक सहज काम था। इससे कई बार उन्हें एक दूसरे के नजदीक लाने में मदद मिली। हमने कभी भी मध्यस्थ बनना नहीं चाहा, न ही ऐसे रूप में काम किया।

लेकिन दो बड़े मुल्कों के बीच मध्यस्थता का कोई सवाल ही नहीं। जो हमने सुझाव दिया या करना चाहा वह यही था कि वे बड़े मुल्क एक-दूसरे के आमने-सामने आयं, और एक-दूसरे से बातचीत करें और अपने मसलों को खुद ही तय करें। यह हमारा काम नहीं था कि हम उन्हें राय दें कि वे क्या करें! हम ज्यादा-से-ज्यादा यह कर सकते थे कि उन रुकावटों को दूर कर दें, जो पिछले कुछ वर्षों में पैदा हो गई हैं।

इस दिशा में हिंदुस्तान की देन को शायद एक या दो शब्दों में कहा जा सकता है—वह है पंचशील और उसके भीतरी ख़याल। उन ख़यालों के बारे में सिवा इसके कि ये एक खास सिलसले में लागू किये जायं और कोई नई बात नहीं है। और यह सभा यह देखेगी कि जबसे यह शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के विचारों की पहले-पहल चर्चा हुई और इनकी घोषणा की गई, न सिर्फ यह कि ये दुनिया में फैल गये और इन्होंने ज्यादा-से-ज्यादा देशों को प्रभावित किया, बल्कि ये बहुत गहरे और अर्थपूर्ण बन गये। मतलब यह कि महज एक मामूली तौर पर इस्तेमाल किये गए शब्द के बजाय पंचशील ने दुनिया के मामलों में एक ख़ास और अहम जगह हासिल करनी शुरू कर दी।

मेरा विचार है कि हम इस शान्तिपूर्ण समझौते और इससे ज्यादा दख़ल न देने के विचार को फैलाने का श्रेय ले सकते हैं। हरेक देश दूसरों के मामलों में दख़ल दिये बिना अपने भाग्य का ख़ुद निर्माण करे यह एक अहम विचार है, हालांकि यह कोई नई बात नहीं है। कोई भी सचाई बड़ी नई नहीं होती। लेकिन यह सच है कि दखल न देने के विचार पर कुछ ज्यादा जोर डालने की जरूरत है। क्योंकि बीते वक्त में बड़े मुल्कों की दूसरों के मामलों में दखल देने, उनपर हावी होने के लिए दबाव डालने की, और उन दूसरे देशों को अपने साथ मिला लेने की प्रवृत्ति रही है। मेरा अनुमान है कि यह बड़ा होने का कुदरती नतीजा है। इतिहास में हमेशा यही होता आया है।

सियासी, माली विचारधारा या भावनाओं में किसी तरह के दख़ल न देने पर यह ज़ोर डालना दुनिया की मौजूदा हालत का एक जरूरी अंश है। यह बात कि यह यहां या वहां पूरी तरह से अमल में नहीं लाया जायगा, कोई

खास माने नहीं रखती। हम एक कानून बनाते हैं और उस कानून का उस मुल्क की जिन्दगी के पूरे ढांचे पर धीरे-धीरे असर होता है, और यहांतक कि कुछ लोग उसे नहीं भी मानते। और वे लोग भी, जो इसपर यकीन नहीं करते, धीरे-धीरे उसके दायरे में आ जाते हैं।

पंचशील के विचार के माने यह हैं कि तरक्की के रास्ते अलग-अलग हो सकते हैं, और नजरिये भी मुमकिन है, जुदा-जुदा हों, लेकिन मोटे तौर पर जो बुनियादी मुद्दा है, वह एक ही रहेगा। अगर मैं इसी बात को दूसरे रूप में कहूं तो सचाई किसी एक मुल्क या लोगों तक ही सीमित नहीं है; इसके इतने ज्यादा पहलू हैं कि कोई भी यह नहीं सोच सकता कि वह उन सबको जानता है, और हर मुल्क और लोगों को, बशर्ते कि वे अपने तई ईमानदार हैं, तो उन्हें परीक्षा और गलतियों में से,तकलीफों और तजुरबों के ज़रिये अपना रास्ता खुद ही खोजना पड़ेगा। तब ही वे बढ़ सकेंगे। अगर वह महज दूसरों की नकल करेंगे तो नतीजा यह होगा कि वे बढ़ नहीं पायंगे। और चाहे वह नकल बिलकुल ठीक ही हो, यह एक ऐसी चीज होगी, जो उन्होंने अपने दिमाग की कुदरती बाढ़ के बिना ही अपना ली होगी।

करीब पिछले तीस बरसों से हमारा विकास महात्मा गांधी की सरपरस्ती में हुआ है। इस बात को एक तरफ रखकर कि उन्होंने हमारे लिए क्या किया और क्या नहीं किया, उनकी नुमाइन्दगी में इस मुल्क का ठोस विकास हुआ है। यह कुछ ऐसी चीज थी, जो कि हिंदुस्तान के विचार और भावना से मेल खाती थी। फिर भी वह नई दुनिया से भिन्न नहीं थी, और हम उसके अनुरूप ही साबित हुए। यह मेल बैठाने का तरीका चलता रहेगा। यह कुछ एसी चीज है, जो हिंदुस्तान के मन और आत्मा से फूटती है, हालांकि इसपर हमारी बाहर से सीखी हुई बहुत-सी बातों का भी असर होता है। इसी तरह पंचशील का विचार भी उस अहम सचाई को पेश करता है, जो हर मुल्क को आखिरकार खुद ही अपने लिए जुटानी पड़ेगी। मैं फौजी ताकत बढ़ाने के नज़रिये से नहीं सोचता, बल्कि बद्धिमत्ता, नैतिकता, और आध्यात्मिकता के लिए मेहनत करने के नज़रिये से सोचता हूं। इसके अलावा, दूसरों के विचार लेने में हर तरह से तैयार रहने, और दूसरों के तजुरबे से कुछ सीखने के बारे में भी सोचता हूं। हरेक मुल्क को दूसरे की ऐसी कोशिश को हमदर्दी और दोस्ताना समझदारी के साथ और बिना किसी दखलंदाजी या दबाव की निगाह से ही देखना चाहिए।

यही वह हिस्सा है, जो हिंदुस्तान ने अदा किया है। चाहे यह पार्ट कितना ही छोटा रहा है, लेकिन पिछले कुछ बरसों के दौरान में वह आम नीति जो हमने अपनाई है और उसपर चलने की भरसक कोशिश की है, तेजी के साथ दूसरे देशों में भी मान्यता प्राप्त कर रही है। मुमकिन है, सभीने इसे न भी मंजूर किया हो, और कुछ लोग इसके कुछ अंशों से और कुछ इससे बिलकुल ही सहमत न हों लेकिन धीरे-धीरे हिंदुस्तान की नीति की सचाई पर यकीन पैदा होने लगा है। यह बात मानी जाने लगी है कि यह एक ईमानदारी की नीति है, जो कि दूसरों मुल्कों के साथ खासकर सद्भावना और भाईचारेपन पर आधारित है और किसी भी मुल्क के साथ कोई बुरी नीयत नहीं रखती। ●

चीनी हमले के बाद २२ अक्तूबर, १९६२ को श्री नेहरू का रेडियो से प्रसारित भाषण।

चीन का हमला

मैं बहुत दिन बाद रेडियो पर बोल रहा हूं। लेकिन इस वक्त मैंने बोलना जरूरी समझा, क्योकि एक अहम हालत है, हमारी सीमा पर जबरदस्त हमले चीनी फौज़ों ने किये हैं, और करते जाते हैं। ऐसी हालत पैदा हो गई जिसका हमें अपनी पूरी ताकत से मुकाबला करना है, हर इस देश में अमनपसन्द हैं, शान्तिपसन्द हैं और शान्ति के तरीकों के आदी हैं। हम नहीं आदी हैं लड़ाई की जरूरीयात के। इसी वजह से, और, और भी वजूहात हैं, हम एक शान्ति के रास्ते पर चले हैं और जब लद्दाख पर हमला, पांच बरस हुए, हुआ था, उस वक्त भी हमने कोशिश की कि कोई शान्ति का तसफीया हो जाय और ऐसा क़ोई रास्ता हमें मिले। सारी दुनिया में हम शान्ति चाहते थे और जाहिर है, अपने मुल्क में भी चाहते थे। हम जानते हैं कि आजकल के ज़माने में लड़ाई कितनी भयानक है और हमने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की कि कोई भी लड़ाई, जो दुनिया को डुबा दे, वह न हो। लेकिन हमारी क़ोशिश हमारी ही सरहद पर कामयाब नहीं हुई, जहां एक बहुत ताकतवर और बेशर्म दुश्मन, जिसको जरा फिक्र न शान्ति क़ी थी, न शान्ति के तरीकों की, जिसने हमें धमकी दी और उस धमकी पर अमल भी किया। इसलिए वक्त आ गया है कि हम इस खतरे को पूरी तौर से समझें, जोकि हमारे मुल्क के लोगों की आजादी और हमारे मुल्क की स्वतन्त्रता पर हमलावर है। मैं कहता हूं, बावजूद इसके कि मुझे पूरा इत्मीनान है कि कोई ताकत एसी नहीं है जो हमारी आजादी को हमसे छीन सके। आखिर में जिस आज़ादी को हमने इत्ती मुसीबत से, मेहनत से और त्याग से हासिल किया और बाद बहुत जमाने के, जबकि हमारा मुल्क औरों की हुकूमत में था। लेकिन इस आज़ादी को, और मुल्क के हर हिस्से को मुल्क में रखने के लिए हमें पूरी तैयारी करनी है, कमर कसनी है। और इस वक्त, सामना करना है इस वक़्त का जो सबसे बड़ा खतरा हमारे सामने आया है, जबसे हम आज़ाद हुए हैं। मुझे कोई शक नहीं कि कामयाब होंगे, और हर बात, और हर चीज़ उसके बाद में उसका नंबर है; क्योकि सबमें अव्वल चीज़ हमारे लोगों की, और मुल्क की आज़ादी है। और हमें तयार होना चाहिए, हम हर चीज क़ो इसपर न्यौछावर कर दें।

मैं आपको कोई लंबी कहानी नहीं सुनाऊंगा इस वक्त, जो पांच बरस से चीनियों ने हमला किया लद्दाख में और जिस तरह से उन्होंने उस हमले के हक में अजीब बयान और बहसें पेश कीं और कमाल की ग़लत बातें कहीं और उसीके साथ बदनाम किया हमारे मुल्क को। शायद ही आपको इतिहास में ऐसी कोई मिसाल मिले जैसेकि एक मुल्क यानी हिंदुस्तान—खासतौर कोशिश करके दोस्ती उसने की और सहयोग किया चीनी हुकूमत से, और वहां के लोगों से, और उसकी तरफ से वकालत की, दुनिया की अदालतों में; और उसी चीनी गवर्नमेंट

ने इस भलाई का बदला दिया बुराई से, और यहांतक कि हमारे मुल्क पर हमलावर हुए और उसके बाज़ हिस्सों पर कब्ज़ा किया। कोई भी खुद्दार मुल्क इसको बर्दाश्त नहीं कर सकता, न इसको सहन करेगा। ज़ाहिर है, हिंदुस्तान, जिसके लोग आज़ादी से मुहब्बत करते हैं, कभी भी इसके नीचे सिर नहीं झुका सकता, चाहे जो कुछ भी इसका नतीजा हो। पांच बरस तक लद्दाख़ की सीमा पर हमले हुए। जो दूसरा, हमारी सीमा है नेफा में, वह इनसे भारी रहा। जब हम ख़ासतौर से बातें कर रहे थे कि कौन तरीका निकले इस कशमकश को कम करने का, ताकि हवा ऐसी हो, मुनासिब हवा हो, जिसमें हम बातें करें, असली मामले पर और हमारे लोग यानी हिंदुस्तान के और चीनी नुमाइंदे मिलें, इस बात पर गौर करने को, कैसे वह हम करें, कैसे हवा को साफ करें और कशमकश को कम करें। उस वक्त फिर एक नया हमला चीनियों ने हमारे ऊपर किया नेफा की सीमा पर। आठ सितंबर को यह शुरू हुआ। यह एक अजीब तरीका था हवा को साफ करने और कशमकश को कम करने का। यह एक नमूना है किस तरह से चीनी हुकूमत ने हमारे साथ बर्ताव किया है। हमारी सरहद चाईना के साथ, तिब्बत के हलके में और हमारी तरफ नेफा के हलके में अच्छी तरह से लोग जानते हैं, और ज़मानों से, वह एक मज़बूत सरहद रही है। उसको मैक्मोहन लाइन कहते हैं, लेकिन यह लाईन कोई उस वक्त नहीं बनी, मैक्मोहन साहब ने नहीं बनाई। लेकिन हिंदुस्तान और तिब्बत के बीच में जो सबमें ऊंचे पहाड़ हैं, वह लाइन गिनी गई है।

यह हमारे इतिहास में, हमारे साहित्य में, हमारे और मुसलमानों में हर जगह इसका ज़िक्र है, कब्ल इसके कि मैक्मोहन लाईन कहलाई जाय। चीनियों तक ने इसको बाज़ तरीकों से माना, हालांकि वे कहते थे, मैक्मोहन लाईन ग़ैरकानूनी है। चीनियों ने कुछ नक्शे अपने बनाये हैं, जिसमें नेफा का एक बड़ा हिस्सा उन्होंने अपनी तरफ खींच लिया है, जो हिस्सा हमारी हुकूमत में एक ज़माने से है। चीन की हुकूमत कोई १२ बरस हुए कायम हुई थी, उसके पहले तिब्बती लोग थे। उन्होंने कभी एतराज़ नहीं किया उस सरहद पर। और जो चीनी भी नक्शे दिखाते थे, वो भी पुराने ज़माने के थे और वो खुद कहते थे कि फिर से हमें इनपर गौर करना है और इनको सही करना है। बावजूद इसके यह सीमा, जहांकि कभी कोई झगड़ा नहीं हुआ था, लड़ाई नहीं शांति की सीमा थी, वहां चीनियों ने इस ८ सितंबर को ख़ासतौर से हमला किया और बड़ी भारी फौजें उधर भेजीं, बड़े इंतज़ाम के साथ एक बड़ी लड़ाई के लिए।

मुझे अफसोस है कि हमारी फौज को जो कई जगह धक्के लगे और कई जगह से वह हटाई गई। उनके ऊपर इत्ते ज्यादा फौज के लोग उनके मुखालिफ हुए, और जिनके पास बड़ी-बड़ी तोपें थीं, पहाड़ी बन्दूकें और मोर्टार, कि हमारे लोगों के सामने बहुत मुश्किल हो गई। मैं, अपने, हमारे अफसर और लोग, जिन्होंने इस बड़ी फौज का सामना किया हिम्मत से, उनकी तारीफ करता हूं। अब भी, फिर भी, और हो सकता है कि हमें और धक्के लगें सरहद पर, हमारी फौजें और हटाई जायं, लेकिन एक बात मेरी राय में तय है, और वह यह कि आख़िरी नतीज़ा इस मुक़ाबले का हमारे हक में होगा और कोई भी नहीं हो सकता। हमें एक ज़बर्दस्त मुल्क का सामना करना है, जो कि बहुत जाब्तों में नहीं पड़ता है। हमें उसका सामना मज़बूती से करना है और अपने ऊपर भरोसा करके।

यह झगड़ा, मालूम नहीं कितने दिन चले, लम्बा हो सकता है। हमें उसके लिए अपनी तैयारी करनी है, दिमाग़ी और, और तरह से, अपने पर भरोसा हमें करना है; क्योंकि मुझे इतमीनान है कि हमारे भरोसे से और अपनी तैयारियों से, हम आख़िर में जीतेंगे, और कोई नतीज़ा हो नहीं सकता।

तो हम पक्के इरादे से आगे बढ़ें, इस भरोसे से और इस इरादे से कि हम अपने मुल्क से, जो लोग हमला करके आये हैं, उनको हटा देंगे। हमें इस वक्त करना क्या है? सबमें पहले तो अपने दिल को और दिमाग को मज़बूत करना और एक लोहे की तरह से बनाना है और मुल्क की ताक़त को उस तरफ लगाना है, यानी इसका सामना करने को, जो मुसीबत हमारे ऊपर आई है। हमें नये तरीक़े के काम करने हैं, जो कि तेज़ी से हो सकें और हल्के-हल्के जैसे सब होते हैं, वो न रहें। हमें अपनी फौजी ताक़त बढ़ानी है, लेकिन फौजी ताक़त काफ़ी नहीं है, उसके पीछे मुल्क का सारा काम है, इंडस्ट्री है, खेती है। तो मैं सबोंसे दरख़ास्त करूंगा, जो हमारे काम करने वाले भाई-बहिन हैं कि इस मौक़े पर, जबकि हमारा पहला काम है कि हम अपनी पैदावार बढ़ायें, कोई हड़ताल, स्ट्राइक न करें। गांवों में, खेतों में और कारखानों में, दोनों जगह हमें अपनी पैदावार खूब बढ़ानी है। इस मौक़े पर, कोई कौम के खिलाफ, मुल्क के खिलाफ या खुदगर्जी की कार्रवाई बर्दाश्त नहीं हो सकती है, जबकि मुल्क खतरे में है। हमें एक बड़ा बोझा उठाना है, हम सबोंको, चाहे हमारा पेशा कुछ भी हो, लेकिन आजादी की क़ीमत पूरी तौर से देनी होती है और कोई क़ीमत जरूरत से ज्यादा नहीं है, जबकि हमारे मुल्क की आजादी और हमारे लोगों की आजादी का सवाल हो। मैं आशा करता हूं कि सब हमारे मुल्क के जो दल हैं, पार्टीज हैं और गिरोह हैं वो सब मिलकर, मिल जायंगे और अपने आपस के झगड़ों को बन्द करेंगे। इस वक्त मौका आपस की बहस और झगड़ों का नहीं है, हमें, सबों को मिलकर सामना करना है खतरे का, जो मुल्क के सामने आया है। बोझा बहुत हमारे ऊपर होनेवाला है।

हमें अपने पैसे बचाने हैं और हमारी सेविंग में पोस्ट आफिस या बांड्स में देने हैं, ताकि हमारे पास रुपया आय अपनी रक्षा के लिए और जो हमें चीजें बनानी हैं, उनके कारखानों के लिए। अगर कोई कीमत बढ़ती है, तो हमें उसको रोकना है। यह बहुत नामुनासिब बात है, गलत बात है, कोई आदमी मुल्क को खतरे के वक्त अपने खुद फायदा उठाने की कोशिश करे।

हम तीसरी पंचवर्षीय योजना के बीच में हैं। यह कोई सवाल नहीं उठता कि हम उसको छोड़ दें। हां, उसको ज़रा-सा हम संभाले, उसको ऐसा कहीं-कहीं बदलें जिससे आजकल की जरूरत पूरी हो, लेकिन जो उसमें बड़ी बातें हैं, उसको हमें पूरा करना है क्योंकि उसीसे मुल्क की ताकत बढ़ती है अब भी और बाद में भी। और बहुत सारी बातें हैं, जो हमारे लोग कर सकते हैं। किसी और दिन बाद में आपका ध्यान उधर दिलाऊंगा। लेकिन अव्वल चीज यही है कि हम सारे अपने दिमाग और दिल को मजबूत कर डालें कि आजादी के लिए और आजादी की हमारी जो ताकत है, वह मजबूत हो और हम जोरों से काम करें।

हम नहीं कह सकते कितना वक्त इसमें लगेगा। जबतक हम नहीं जीतें, हम इस लड़ाई को चलायंगे, क्योंकि कुछ भी हो, हम कभी सिर नहीं झुका सकते, दुश्मन के हमले के सामने। हमें कोशिश करनी है कि कोई घबड़ाना नहीं है। घबराये हुए लोग कुछ ठीक काम नहीं कर सकते हैं। हमारे पीछे और घबरायं हम क्यों? हमारे पीछे एक बड़े मुल्क की ताकत है। इसमें हमें खुश होना है और इस ताकत को हमें आपको जो सबमें बड़ा काम है, उसमें लगाना है, यानी भारत की आजादी और उसकी ज़मीन कोई छीन न सके और जो उसपर हमला करे उसको हटाना है। हमें इसका सामना करना है मजबूती से। महज़ अफवाहों पर आप यकीन न कीजिए और जिनके दिल कमज़ोर हों, न उनका कीजिए। हमारा इम्तहान है यह। मुमकिन है, हम ज़रा ढीले से हो गये थे, हमें सख्त हो जाना है।

एक बात और, हमने अबतक इस नीति पर अमल किया था कि किसी फौजी गिरोह में हम नहीं आयंगे, दोस्ती सबों से करेंगे। अब भी वही हमारी पालिसी रहेगी, क्योंकि यह पालिसी छोड़ देना, किसी दिक्कत से ठीक नहीं है। बल्कि उसको रखने में ही हम कामयाब होंगे। मैं चाहता हूं कि आपका और हमारे देश का भला हो और हम लोग हमेशा अपना सिर ऊंचा रखें और पूरा इत्मीनान रखें अपने देश के भविष्य में।

जयहिन्द !

नेपाल के राजा महेंद्र द्वारा गंडक-बांध-योजना के शिलान्यास के अवसर पर ४ मई, १९६४ को श्री नेहरू का भैंसालोटन में भाषण । इसके बाद उन्होंने कोई सार्वजनिक भाषण नहीं दिया ।

भारत और नेपाल की समृद्धि

भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने नेपाल के राजा महेंद्र की सहयोग और सह-अस्तित्व की भावनाओं का स्वागत किया, और कहा :

कोसी और गंडक-बांध-योजनाओं के पूरा होने से दोनों मुल्कों की प्रगति और समृद्धि का नया दौर शुरू होता है ।

खाद्य-समस्या भारत और नेपाल की अहम समस्या है । दोनों देशों में खेती-वाड़ी के तरीके वहुत पिछड़े ढंग के हैं । जो देश अपना विकास करना चाहते हैं, उन्हें उत्पादन यानी पैदावार को बढ़ाने के लिए मौजूदा ज़माने के नये तकनीकी और वैज्ञानिक तरीके अपनाने होंगे । आज का युग बिजली का युग है और किसी भी देश की समृद्धि के लिए बिजली की अनिवार्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता । मुझे उम्मीद है कि गंडक-बांध-योजना से जो बिजली पैदा की जायगी, उससे दोनों मुल्कों की समृद्धि में बढ़ोतरी होगी ।

जिस गंडक-योजना का शिलान्यास आज हुआ है, यह चार माह पहले ही होनेवाला था, लेकिन मेरी बीमारी की वजह से यह काम मुल्तवी करना पड़ा । इस बीच कुछ और भी बातें तय कर ली गई हैं, और वह यह कि नेपाल की तराई के सप्तरी ज़िले में भारत दो सड़कें बनायगा और साथ-ही-साथ नेपाल के दो शहरों—विराट नगर और राजविराज तक कोसी-बिजली-घर ट्रांसमीशन की दो लाइनें भी भारत ही बिछायगा । तराई की सड़कें जमुनानगर से राजाधिराज और फतहपुर से कनौली बाज़ार तक वनेंगी । इससे पहले भी भारत त्रिभुवन नारायण और सिनोली-पोखरा रोड नेपाल में बना चुका है ।

मुझे यकीन है कि नेपाल और भारत में इस तरह का सहयोग लगातार रहेगा और दोनों देशों की प्रगति और समृद्धि भी इसके ज़रिये बढ़ती रहेगी । ●

नेहरूजी की राष्ट्र को सौंपी गई आख़िरी वसीयत, जो उन्होंने २१ जून, १९५४ को लिखी थी और जिसको उनके निधन के बाद ३ जून, १९६४ को प्रसारित किया गया ।

आख़िरी वसीयत

मुझे, मेरे देश की जनता ने, मेरे हिंदुस्तानी भाइयों और बहनों ने, इतना प्रेम और इतनी मुहब्बत दी है कि मैं चाहे जितना कुछ करूं, वह उसके एक छोटे-से हिस्से का भी बदला नहीं हो सकता । सच तो यह है कि प्रेम इतनी क़ीमती चीज़ है कि इसके बदले कुछ देना मुमकिन नहीं । इस दुनिया में बहुत-से लोग हुए, जिनको अच्छा समझकर, बड़ा मानकर, उनका आदर किया गया, पूजा गया, लेकिन भारत के लोगों ने, छोटे और बड़े, अमीर और ग़रीब, सब तबकों के बहनों और भाइयों ने, मुझे इतना ज्यादा प्यार दिया कि जिसका बयान करना मेरे लिए मुश्किल है और जिससे मैं दब गया । मैं आशा करता हूं कि मैं अपने जीवन के बाक़ी बरसों में अपने देश-वासियों की सेवा करता रहूंगा और उनके प्रेम के योग्य साबित होऊंगा ।

बेशुमार दोस्तों और साथियों के मेरे ऊपर और भी ज्यादा एहसान हैं । हम बड़े-बड़े कामों में एक-दूसरे के साथ रहे, शरीक रहे, मिलजुलकर काम किये । यह तो होता ही है कि जब बड़े काम किये जाते हैं, उनमें काम-याबी भी होती है, नाकामयाबी भी होती है । मगर हम सब शरीक रहे कामयाबी की ख़ुशी में भी और नाकामयाबी के दुःख में भी ।

मैं चाहता हूं, और सच्चे दिल से चाहता हूं, कि मेरे मरने के बाद कोई धार्मिक रस्में अदा न की जायं । मैं ऐसी बातों को मानता नहीं हूं और सिर्फ रस्म समझकर उनमें बंध जाना, धोखे में पड़ना मानता हूं । मेरी इच्छा है कि जब मैं मर जाऊं तो मेरा दाह-संस्कार कर दिया जाय । अगर विदेश में मरूं, तो मेरे शरीर को वहीं जला दिया जाय, और मेरी अस्थियां इलाहाबाद भेज दी जायं । उनमें से मुट्ठी-भर गंगा में डाल दी जायं और उनके बड़े हिस्से के साथ क्या किया जाय, मैं आगे बता रहा हूं । उनका कुछ भी हिस्सा किसी हालत में बचाकर न रखा जाय ।

गंगा में अस्थियों का कुछ हिस्सा डलवाने की इच्छा के पीछे, जहांतक मेरा ताल्लुक है, कोई धार्मिक ख्याल नहीं है । इसके बारे में मेरी कोई धार्मिक भावना नहीं है । मुझे बचपन से गंगा और यमुना से लगाव रहा है, और जैसे-जैसे मैं बड़ा हुआ, यह लगाव बढ़ता रहा । मैंने मौसमों के बदलने के साथ इनमें बदलते हुए रंग और रूप को देखा है, और कई बार मुझे याद आई उस इतिहास की, उन परम्पराओं की, पौराणिक गाथाओं की, उन गीतों और कहानियों की, जो कि कई युगों से उनके साथ जुड़ गई हैं और उनके बहते हुए पानी में घुल-मिल गई हैं ।

गंगा तो विशेषकर भारत की नदी है, जनता की प्रिय है, जिससे लिपटी हुई हैं भारत की जातीय स्मृतियां, उसकी आशाएं और उसके भय, उसके विजयगान, उसकी विजय और पराजय । गंगा तो भारत की प्राचीन सभ्यता

का प्रतीक रही है, निशानी रही है, सदा बदलती, सदा बहती, फिर वही गंगा की गंगा। वह मुझे याद दिलाती है हिमालय की, बर्फ से ढंकी चोटियों की और गहरी घाटियों की, जिनसे मुझे मुहब्बत रही है, उनके नीचे उपजाऊ और दूर-दूर तक फैले मैदानों की, जहां काम करते मेरी ज़िन्दगी गुज़री है, मैंने सुबह की रोशनी में गंगा को मुस्कराते, उछलते-कूदते देखा है, और देखा है शाम के साये में उदास, काली-सी चादर ओढ़े हुए, भेद-भरी, जाड़ों में सिमटी-सी आहिस्ते-आहिस्ते बहती सुन्दर धारा, और बरसात में दौड़ती हुई, समुद्र की तरह चौड़ा सीना लिये, और सागर को बरबाद करने की शक्ति लिये हुए, यही गंगा मेरे लिए निशानी है भारत की प्राचीनता की, यादगार की, जो बहती आई है वर्तमान तक, और बहती चली जा रही है भविष्य के महासागर की ओर।

भले ही मैंने पुरानी परम्पराओं, रीति और रस्मों को छोड़ दिया हो, और मैं चाहता भी हूं कि हिंदुस्तान इन सब जंज़ीरों को तोड़ दे, जिनमें वह जकड़ा है, जो उसको आगे बढ़ने से रोकती हैं और देश में रहनेवालों में फूट डालती हैं, जो बेशुमार लोगों को दबाये रखती हैं और जो शरीर और आत्मा के विकास को रोकती हैं। चाहे यह सब मैं चाहता हूं, फिर भी मैं यह नहीं चाहता कि मैं अपनेको इन पुरानी बातों से बिलकुल अलग कर लूं। मुझे फख्र है इस शानदार उत्तराधिकार का, इस विरासत का, जो हमारी रही है और हमारी है, और मुझे यह भी अच्छी तरह से मालम है कि मैं भी, हमसबों की तरह, इस जंजीर की एक कड़ी हूं, जोकि कभी नहीं और कहीं नहीं टूटी है और जिसका सिलसिला हिंदुस्तान के अतीत के इतिहास के प्रारम्भ से चला आता है। यह सिलसिला मैं कभी नहीं तोड़ सकता, क्योंकि मैं उसकी बेहद क़द्र करता हूं; और इससे मुझे प्रेरणा, हिम्मत और हौसला मिलता है। मेरी इस आकांक्षा की पुष्टि के लिए और भारत की संस्कृति को श्रद्धांजलि भेंट करने के लिए, मैं यह दरख्वास्त करता हूं कि मेरी भस्म की एक मुट्ठी इलाहाबाद के पास गंगा में डाल दी जाय, जिससे कि वह उस महासागर में पहुंचे, जो हिंदुस्तान को घेरे हुए है।

मेरे भस्म के बाक़ी हिस्से को क्या किया जाय? मैं चाहता हूं कि इसे हवाई जहाज़ में ऊंचाई पर ले जाकर बिखेर दिया जाय, उन खेतों पर, जहां भारत के किसान मेहनत करते हैं, ताकि वह भारत की मिट्टी में मिल जाय और उसीका अंग बन जाय। ●

जन्म से लेकर मृत्यु तक का तिथि-क्रम से घटना-प्रवाह

जीवन का घटना-क्रम

तिथि	घटना
१८८९, नवम्बर १४	जन्म, प्रयाग में।
१९०५, मई	शिक्षा के लिए इंगलैंड को रवाना।
१९०७	ट्रिनिटी कालेज, कैम्ब्रिज में भरती हुए।
१९०९	जर्मनी और फ्रांस घूमने गये।
१९१०	साइंस में एम.ए. की परीक्षा पास की।
१९१२	बैरिस्ट्री की परीक्षा पास की, भारत लौटे और इलाहाबाद में वकालत आरंभ की। कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस के बांकीपुर-अधिवेशन में सम्मिलित हुए।
१९१३	उत्तर प्रदेश कांग्रेस में शामिल।
१९१५	प्रयाग में अख़बारों पर प्रतिबन्धक क़ानून के विरोध में पहला भाषण।
१९१६, फरवरी	विवाह कमला कौल से; लखनऊ-कांग्रेस में गांधीजी से भेंट।
१९१७	होमरूल-आन्दोलन में शामिल।
१९१७, नवम्बर १६	पुत्री इन्दिरा का जन्म।
१९१८	कांग्रेस महासमिति के सदस्य।
१९१९	पंजाब-हत्याकांड की जांच के सिलसिले में चित्तरंजन दास को सहायता।
१९२१, दिसंबर ६	प्रिंस ऑव वेल्स के आगमन के समय हड़ताल कराने के कारण गिरफ्तार।
१९२२, मार्च ३	जेल से रिहाई।
मई ११	विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के लिए पुनः गिरफ्तार।
१९२३, जून ३१	रिहाई।
सितम्बर २२	नाभा में प्रवेश-निषेधाज्ञा को भंग करने पर गिरफ्तारी।
अक्तूबर ४	रिहाई।
	इलाहाबाद म्युनिसिपल कौंसिल के चेयरमैन चुने गये।
	कोकोनाडा-कांग्रेस के महामंत्री (१९२४-२५ और १९२७-२९ में भी)।
१९२५	इलाहाबाद म्युनिसिपल कौंसिल की अध्यक्षता से त्यागपत्र।
१९२६, मार्च	पत्नी कमलाजी की बीमारी। कमला को चिकित्सा के लिए स्विट्ज़रलण्ड ले गये। यूरोप के देशों की और रूस की यात्रा।
१९२७, फरवरी	ब्रसेल्स, बेलजियम में पराधीन जातियों की कांग्रेस में भारत की राष्ट्रीय महासभा के प्रतिनिधि के रूप में शामिल।
	भारत लौटे और मद्रास-कांग्रेस में स्वाधीनता का प्रस्ताव पास कराने में पहल की।
१९२८, नवम्बर २९	लखनऊ में साइमन कमीशन के बहिष्कार के लिए पुलिस की लाठियों से घायल।
	स्वाधीनता लीग की स्थापना। उसके प्रधान मन्त्री चुने गये।
१९२९	लाहौर-कांग्रेस के अध्यक्ष, पूर्ण स्वतन्त्रता का लक्ष्य, 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' पुस्तक प्रका-

	शित । आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के नागपुर-अधिवेशन के अध्यक्ष ।
९३०, अप्रैल १४	नमक-सत्याग्रह—६ मास की क़ैद ।
अक्तूबर ११	नैनी सेंट्रल जेल से रिहाई ।
सितम्बर २९	किसान-सम्मेलन में भाग लेने पर दो साल की क़ैद ।
९३१, जनवरी २६	रिहाई ।
फरवरी ६	पिताजी 'पंडित मोतीलाल नेहरू' की मृत्यु ।
मार्च ५	गांधी-इर्विन-समझौता ।
दिसम्बर २६	प्रयाग से बाहर न जाने के हुक्म को तोड़ने पर दो साल की सज़ा ।
९३३, अगस्त ३०	माताजी की बीमारी के कारण जेल से रिहाई ।
९३४, जनवरी	बिहार-भूकम्प-पीड़ित प्रदेश में दौरा और सहायता-कार्य का संगठन ।
फरवरी १६	कलकत्ता में राजद्रोहात्मक भाषणों के कारण दो साल की क़ैद ।
अगस्त ११	कमला नेहरू की गम्भीर बीमारी के कारण ग्यारह दिन की रिहाई । 'विश्व इतिहास की झलक' अंग्रेज़ी में प्रकाशित ।
९३५, फरवरी १४	अल्मोड़ा जेल में 'आत्मकथा' लिखना पूर्ण किया ।
सितम्बर ४	कमलाजी की बीमारी के कारण रिहा । कमलाजी के साथ यूरोप गए ।
९३६, फरवरी २८	कमलाजी की मृत्यु । रोम तथा लंदन की यात्रा ।
अप्रैल २३	लखनऊ-कांग्रेस के अध्यक्ष । कांग्रेस के चुनाव-अभियान में भाग ।
दिसम्बर २६	फैजपुर-कांग्रेस के अध्यक्ष ।
१९३८	माता स्वरूपरानी की मृत्यु । राष्ट्रीय योजना समिति के अध्यक्ष । स्पेन के गृह-युद्ध के समय वहां की यात्रा ।
१९३९	चीन-यात्रा ।
१९४०, अक्तूबर ३१	व्यक्तिगत सत्याग्रह में चार वर्ष की क़ैद ।
१९४१, दिसम्बर	रिहाई ।
१९४२	च्यांग-काई-शेक से भारत में बातचीत । क्रिप्स-मिशन से बातचीत । 'भारत छोड़ो'-प्रस्ताव पेश किया । गिरफ्तारी । अहमदनगर किले में नज़रबन्द ।
१९४४, अप्रैल १३	'डिस्कवरी ऑव इंडिया' (हिन्दुस्तान की कहानी) पुस्तक का लिखना प्रारम्भ किया ।
१९४५, जनवरी १५	नज़रबन्दी से रिहाई ।
१९४५, जून २५	ब्रिटिश सरकार से समझौता-वार्ता में भाग लेने शिमला-सम्मेलन में शरीक हुए । आज़ाद हिन्द फौज के अफ़सरों और सैनिकों की पैरवी का प्रबन्ध ।
१९४६, मार्च	'डिस्कवरी ऑव इंडिया' (हिन्दुस्तान की कहानी) अंग्रेज़ी में प्रकाशित । दक्षिण-पूर्व एशिया का दौरा ।
मई ९	चौथी बार कांग्रेस-अध्यक्ष निर्वाचित ।
अगस्त १७	वाइसराय का अन्तरिम सरकार बनाने का निमन्त्रण स्वीकार किया ।
सितम्बर २	वाइसराय की कौंसिल के उपाध्यक्ष तथा परराष्ट्र-विभाग के सदस्य के पद की शपथ ली ।
१९४६, अक्तूबर	फ्रंटियर प्राविन्सेज़ का दौरा ।
दिसम्बर	केबिनेट मिशन प्लान की बातों के स्पष्टीकरण के लिए ब्रिटिश सरकार से बात करने लन्दन गये ।
दिसम्बर ३०	संविधान-सभा में ध्येय-प्रस्ताव पेश किया ।
१९४७, जनवरी ३	भारतीय विज्ञान-परिषद के दिल्ली-अधिवेशन की अध्यक्षता की ।

१९४७, मार्च २३	दिल्ली में एशियाई सम्मेलन का उद्घाटन।
१५ अगस्त	स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री नियुक्त।
अगस्त ३१	लियाक़त अली खां एवं सरदार पटेल के साथ पंजाब के दंगाग्रस्त क्षेत्रों का दौरा।
१९४८, जनवरी ३०	महात्मा गांधी की हत्या। रेडियो पर देश के नाम संदेश।
१७ फरवरी	संविधान-सभा में तटस्थता की नीति का प्रतिपादन।
अक्तूबर ६	राष्ट्र-मण्डल के प्रधान मन्त्री-सम्मेलन में शामिल।
नवम्बर ३	पेरिस में सं० रा० महासभा में भाषण।
१९४९, जनवरी २०	इण्डोनेशिया में डच-आक्रमण के विरोध में १९ एशियाई राष्ट्रों के सम्मेलन का उद्घाटन।
अप्रैल १९	राष्ट्रमंडल के प्रधान मंत्री सम्मेलन में गये।
सितम्बर २४	पाकिस्तान से युद्धबंदी-प्रस्ताव।
अक्तूबर ७ से १९	अमरीका-यात्रा।
	अमरीकी कांग्रेस तथा सं० रा० संघ की ट्रस्टीशिप कौसिल में भाषण।
अक्तूबर २४	कनाडा-यात्रा, वहां की संसद में भाषण।
१९५०, जनवरी १५	लंका विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में भाषण।
१९५०, जनवरी २८	सर्वोच्च न्यायालय का उद्घाटन
मार्च	योजना-आयोग की स्थापना व अध्यक्षता।
	नेहरू-लियाकत-समझौता।
अप्रैल २६	कराची-यात्रा।
जुलाई १४	कोरिया-युद्ध खत्म करने की अपील।
१९५१	काहिरा, जिनेवा, लंदन, पेरिस यात्रा।
११ जून	नेपाल-यात्रा।
अक्तूबर १८	दिल्ली में ५७वें कांग्रेस-अधिवेशन की अध्यक्षता।
१९५२, फरवरी २५	भारत-सीरिया-संधि पर हस्ताक्षर
१९५३, जनवरी ९	विश्व-गांधी-विचार-गोष्ठी, नई दिल्ली में भाग लिया।
१९५३, जनवरी १७ से १८	हैदराबाद कांग्रेस-अधिवेशन का सभापतित्व।
मई २८	महारानी एलिजाबेथ द्वितीय के राजतिलक में गये।
जुलाई २५	पाकिस्तान सरकार के निमंत्रण पर कराची गये।
१९५४, जनवरी १५	श्रीलंका के प्रधान मंत्री सर जान कोटलेवाला उनसे मिलने आये।
अप्रैल २७ से मई ३	श्रीलंका की एक सप्ताह की यात्रा।
जून २५	चीन के प्रधान मंत्री चाऊ एन लाई मिलने आये।
	पंचशील-संबंधी संयुक्त विज्ञप्ति पर हस्ताक्षर।
अक्तूबर	चीन-यात्रा।
दिसम्बर १७	यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति टीटो का भारत-आगमन।
१९५५, जनवरी-फरवरी	राष्ट्रमण्डल के प्रधान मंत्री सम्मेलन में गये और महारानी एलिजाबेथ से मिले।
मार्च १७	कम्बोडिया के राजकुमार सिंहनूक और वहां के प्रधान मंत्री मिलने आये।
मार्च २५	बर्मा के प्रधान मंत्री, ऊ नू मिलने आये।
अप्रैल १३	मिस्र के प्रधान मंत्री नासर से मिले।
अप्रल १५-२५	बाण्डुंग में अफ्रेशियाई सम्मेलन में गये।
१३-१८ मई	पाकिस्तान के प्रधान मंत्री मोहम्मद अली और गृहमंत्री इस्कंदर मिर्जा से बातचीत की।

जून ५	रूस, यूरोप तथा मिस्र की यात्रा। काहिरा में प्रधान मंत्री नासर से मिले।
जुलाई १५	राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद द्वारा 'भारत रत्न' की उपाधि से विभूषित।
जुलाई १९	राष्ट्रपति सुकर्ण से मिले।
सितम्बर २१	लाओस के राजकुमार और प्रधान मंत्री के साथ लाओस पर जेनेवा-समझौते के बारे में संयुक्त विज्ञप्ति पर हस्ताक्षर।
नवम्बर १८	रूस के प्रधान मंत्री मार्शल बुल्गानिन और उस समय के रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रथम सचिव श्री ख्रुश्चोव का भारत में स्वागत किया।
१९५६, मार्च	ब्रिटेन, अमरीका और फ्रांस के विदेश मंत्रियों तथा रूस के प्रथम उप-प्रधान मंत्री से मिले।
अप्रैल २८	बम्बई की अणु-भट्टी की स्थापना के बारे में कनाडा से समझौते पर हस्ताक्षर।
जून २७	लन्दन में राष्ट्रमण्डल प्रधान मंत्री सम्मेलन में गये।
जुलाई २३	अस्थायी तौर पर वित्त-विभाग संभाला।
अगस्त १८	अंचर (सौराष्ट्र) के पास एक जीप-दुर्घटना हुई।
नवम्बर१२-१४	नई दिल्ली में मिस्र की स्थिति पर विचार करने के लिए कोलम्बो देशों के प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन में भाग लिया।
नवम्बर २८	नई दिल्ली में चीनी प्रधान मंत्री चाऊ-एन-लाई से सीमा-विवाद पर बात की।
दिसम्बर २०	अमरीका, कनाडा और यूरोप की यात्रा की और संयुक्त राष्ट्र महासभा में भाषण किया।
१९५७, जनवरी २	दिल्ली में चाऊ-एन-लाई से वार्ता।
जनवरी १२	दलाई लामा तथा पंचन लामा के साथ नालंदा की यात्रा—२५००वीं बुद्ध परिनिर्वाण-जयन्ती के संबंध में।
जनवरी २८	ट्राम्बे में एशिया की प्रथम अणु-भट्टी का उद्घाटन।
जनवरी ३०	अस्थायी रूप से प्रतिरक्षा-विभाग संभाला।
अप्रैल १७	नेहरू के नेतृत्व में नया केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल बना।
जून २६ से जुलाई ५	राष्ट्रमंडल प्रधान मंत्री सम्मेलन में भाग लिया।
जुलाई	हालैण्ड, मिस्र और सूडान की यात्रा।
अक्तूबर ४ से १३	जापान की यात्रा।
नवम्बर २८	नई दिल्ली में चीनी प्रधान मंत्री चाऊ एन लाई से सीमा-विवाद-संबंधी बातचीत।
दिसम्बर २	नई दिल्ली में राष्ट्रमंडल-सम्मेलन में भाषण किया।
१९५८, जनवरी ३-५	चेकोस्लोवाकिया के प्रधान मंत्री से वार्ता।
जनवरी ७-८	इन्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण से वार्ता।
जनवरी ८ से १०	ब्रिटिश प्रधान मंत्री मैकमिलन से वार्ता।
फरवरी १३	अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कम करने के लिए बैठक की अपील के सिलसिले में अफगानिस्तान के शाह के साथ संयुक्त वक्तव्य।
मार्च १०	रूमानिया के प्रधान मंत्री के साथ संयुक्त वक्तव्य।
मई ३	प्रधान मंत्री-पद से हटने की इच्छा व्यक्त की, परन्तु पार्टी के सदस्यों के एकमत से कहने से अपना विचार त्यागा।
सितम्बर १६ से अक्तूबर २	भूटान-यात्रा।

अक्तूबर ८	'भारत १९५८ प्रदर्शिनी' का उद्घाटन
१९५९	घाना के प्रधान मंत्री का स्वागत।
जनवरी १२ से १५	पूर्वी जर्मनी के प्रधान मंत्री और यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति टीटो से वार्ता।
अप्रैल २४	मसूरी में दलाई लामा से भेंट।
जुलाई ११ से १५	नेपाल-यात्रा।
सितम्बर	पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब से वार्ता।
	अफगानिस्तान-यात्रा।
	चीन से भारत और बर्मा के संबंधों के बारे में बर्मा के क्रांतिकारी परिषद के अध्यक्ष ने विन से वार्ता।
१९६०, अप्रैल	नई दिल्ली में चीन के प्रधान मंत्री चाऊ-एन-लाई से भेंट।
मई	लंदन में राष्ट्रमंडल प्रधान मंत्री सम्मेलन में भाग लिया और पेरिस मिस्र, तुर्की तथा लेबनान की यात्रा।
सितम्बर १९	पाकिस्तान से सिंधु-पानी-संधि।
	महाराष्ट्र तथा गुजरात के पृथक राज्यों का निर्माण।
	पेरिस-यात्रा।
	मिस्र, तुर्की, लेबनान, सीरिया और पश्चिमी पाकिस्तान की यात्रा।
	पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब से वार्ता।
	विश्व-शान्ति पर सं० रा० महा-सभा में भाषण।
१९६१, जनवरी १६	बम्बई में कनाडा भारत-अणु-भट्टी का उद्घाटन।
जनवरी १८	नई दिल्ली में घोषणा की कि चीन ने भारत की उत्तरी सीमा पर निश्चित रूप से हमला किया है और पाकिस्तान को काश्मीर की सीमा-निर्धारण के बारे में चीन से वार्ता करने के लिए राज़ी होना गलत काम है।
फरवरी ८से १३	भूटान के महाराजा से बातचीत।
मार्च	राष्ट्रमंडल प्रधान मंत्री सम्मेलन में गये।
सितम्बर	बेलग्रेड में तटस्थ देशों के शिखर सम्मेलन में भाग लिया।
दिसम्बर १३	रूस के राष्ट्रपति ब्रेजनोव से मिले।
१९६२, जनवरी १	आसाम में नूनमाटी तेलशोधक कारखाने का उद्घाटन।
जनवरी ११	बर्मा के प्रधान मंत्री ऊ नू से मिले।
	राष्ट्रमण्डल शिक्षा-सम्मेलन का उद्घाटन।
जनवरी २४	भारत में बनी पहली मोटर गाड़ी 'निशान' का समारंभ किया।
अप्रैल १०	तीसरा आम चुनाव हुआ और नई सरकार बनाई।
अप्रैल १८	नेपाल के महाराजा महेन्द्र से मिले।
मई १	तीसरे आम चुनाव के बाद नये मंत्रिमण्डल का निर्माण।
सितम्बर	कहिरा तथा पेरिस-यात्रा के बाद राष्ट्रमण्डल के प्रधान मंत्रियों की कान्फ्रेंस में शामिल
सितम्बर २१	पेरिस में यूनेस्को की बैठक में भाषण।
अक्तूबर २०	चीन का भारत की उत्तरी सीमा पर हमला।
अक्तूबर २२	चीन के आक्रमण का दृढ़ता से सामना करने के लिए राष्ट्र को संगठित रहने का संदेश।
नवम्बर १	अस्थायी रूप से प्रतिरक्षा-विभाग संभाला।
नवम्बर ३०	भारत-पाक -विवाद को समाप्त करने के लिए राष्ट्रपति अय्यूब के साथ संयुक्त विज्ञप्ति।

९६३, जनवरी १३	लंका, संयुक्त अरब गणराज्य और घाना के प्रतिनिधियों से भारत-चीन-सीमा-विवाद पर कोलम्बो-प्रस्ताव पर वार्ता ।
नवम्बर १	दिल्ली में लाओस के प्रधान मंत्री से भेंट । अफ्रीकी देशों के प्रतिनिधियों के सम्मेलन का उद्घाटन ।
दिसम्बर	जोर्डन के शाह हुसैन से भेंट ।
१९६४ जनवरी	भुवनेश्वर-कांग्रेस अधिवेशन के समय बीमार पड़े ।
फरवरी	वर्मा की क्रांतिकारी परिषद के अध्यक्ष जनरल ने विन से मिले ।
फरवरी	सिंगापुर के प्रधान मंत्री से भेंट ।
मई	कोसी और गंडक योजना के शिलान्यास के अवसर पर नेपाल के महाराजा से भेंट ।
मई २३–२६	आराम के लिए देहरादून गये ।
मई २७	पार्थिव शरीर त्यागा ।

● ● ●